



PURCHASED







THE  
KASHI SANSKRIT SERIES

235  
\*\*\*\*\*

# CATURVARGACINTĀMAṆI

OF

ŚRĪ HEMĀḌRI

Volume II

VRATAKHAṆḌA

PART II

EDITED BY

PAṆḌITA BHARATAÇANDRA SĪROMAṆI

PAṆḌITA YAJÑEŚVARA SMṚTIRATNA

and

PAṆḌITA KĀMĀKHYĀNĀTHA TARKAVĀGĪṢA



**CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN**

*Publishers and Distributors of Oriental Cultural Literature*

P. O. Chaukhambha, Post Box No. 1139

Jadau Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane

VARANASI ( INDIA )

© Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi

Phone : 65889

Price Rs. 2500-00 for the set of four volumes in seven parts

Rs. 1000-00 for Volume II ( Vratakhaṇḍa, Part 1-2 )

THE ASIATIC SOCIETY  
CALCUTTA 700016

Acc No. S. 507

Date. 22.5.86

S  
294.592  
H 487 E  
- 12, P. 2.

Originally Published by The Asiatic

Society of Bengal in 1879

Reprinted 1985

22.5.86

COMPUTERISED

C 1034

Also can be had of

**CHAUKHAMBHA VISVABHARATI**

Post.Box No. 1084

Chowk (,Opposite Chitra Cinema,)

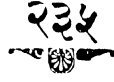
VARANASI-221001

Phone : 65444

Printers-Srigokul Mudranalaya, Gopal Mandir Lane, Varanasi  
and Globe Offset Press, New Delhi

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला



# चतुर्वर्गचिन्तामणिः

श्रीहेमाद्रिविरचितः

तत्र

प्रतखण्डनाम्नो

द्वितीयखण्डस्य

द्वितीयो भागः

श्रीभरतचन्द्रशिरामणिना

श्रीयज्ञेश्वरस्मृतिरत्नं

श्रीकामाख्यानाथतर्कवागीशेन

च

परिशोधितः

**चौरवम्भा संस्कृत संस्थान**

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० न० ११३६

जड़ाव भवन, के. ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी ( भारत )



प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

मूल्य : रु० २५००-००

संपूर्ण १-४ खण्ड, ७ भाग

रु० १०००-००

द्वितीयखण्ड ( व्रतखण्ड, भाग १-२ )

मूल रूप से आसियाटिक् सोसायिटि आफ बंगाल द्वारा प्रकाशित, १८७६

पुनर्मुद्रण १९८५

अन्य प्राप्तिस्थान

**चौखम्भा विश्वभारती**

पोस्ट बाक्स नं० १०८४

चौक ( चित्रा सिनेमा के सामने )

वाराणसी-२२१००१ ( भारत )

फोन : ६५४४४

---

मुद्रक - श्रीगोकुलमुद्रणालय, गोपाल मंदिर लेन, वाराणसी एवं

ग्लोब भाफसेट प्रेस, नई-दिल्ली

## सूचीपत्रम् ।

— १०० —

|   | पृथ  |  | पृष्ठा |
|---|------|--|--------|
| <b>अ</b>                                      |      |  |        |
| अग्निपनेत्रविधिः . . . . .                    | १५६  | अक्षरप्रश्न . . . . .                    | ६५४    |
| अग्निवैकृत्यं . . . . .                       | १०८  | अस्मिन्मातृ . . . . .                    | ८६४    |
| अनङ्गयद्योदशौवतं ( कान्तोक्तोक्त ) . . . . .  | ८    | <b>आ</b>                                 |        |
| अनङ्गयद्योदशौवतं ( भविष्योक्तोक्त ) . . . . . | १    | आङ्गामकान्तिवतं . . . . .                | ७२८    |
| अनन्तचतुर्दशौवतं . . . . .                    | २६   | आदित्यवतं ( भविष्यपुराणोक्तं ) . . . . . | ५२१    |
| अनन्तवतं ( पिष्णमृग्योभरीक्तं ) . . . . .     | ६६७  | आदित्यवतं ( भविष्योक्तोक्त ) . . . . .   | ५२०    |
| अनन्तवतोद्यापनविधि . . . . .                  | १६   | आदित्यशयनवतं . . . . .                   | ६८०    |
| अनन्तवतं . . . . .                            | ८६६  | आदित्यशान्तिवतं . . . . .                | ५२२    |
| अनशन विधिः . . . . .                          | १४८  | आदित्यहृदयविधि . . . . .                 | ५२६    |
| अमावस्यावतं ( कर्मपुराणोक्तं ) . . . . .      | २४७  | आदित्याभिमुखविधि . . . . .               | ५२५    |
| अमावस्यावतानि . . . . .                       | २४६  | आनन्दवतं . . . . .                       | ८४०    |
| अर्कवतं . . . . .                             | ५०६  | आन्दीननवाध . . . . .                     | ७४५    |
| अर्वावकृतोपशमनं . . . . .                     | १०८८ | आयुधवतं . . . . .                        | ८३१    |
| अर्वावाचिकवतं . . . . .                       | ७४७  | आयुर्वतं . . . . .                       | २२७    |
| अर्वादयवतं . . . . .                          | २४६  | आयुःमकान्तिवतं . . . . .                 | ७७७    |
| अरुन्धतीवतं . . . . .                         | ३१२  | आरोग्यवतं . . . . .                      | ७६१    |
| अशोकाजरावतं . . . . .                         | २७८  | आशादित्यवतं . . . . .                    | ५२२    |
| अशोकपूर्णमासवतं . . . . .                     | १६२  | आश्विनवतानि . . . . .                    | ७४८    |
| अश्ववतं . . . . .                             | ६१२  | आषाढवतानि . . . . .                      | ७४१    |
| अश्वगान्ति . . . . .                          | १०२१ | <b>इ</b>                                 |        |
| अश्विवास्त्रानि . . . . .                     | ५२७  | इन्द्रपोषमाधीनं . . . . .                | १२६    |

|                                  | पृष्ठा |                                   | पृष्ठा |
|----------------------------------|--------|-----------------------------------|--------|
| इन्द्रवतं ...                    | ८८७    | कार्तिकव्रतानि ...                | ७६२    |
| ई                                |        | कालविराचितं ...                   | ७२६    |
| ईश्वरवतं ...                     | १४८    | कौत्सव्रतं ...                    | ८६३    |
| उ                                |        | लच्छवतानि ...                     | ७६४    |
| उपस्करवैखान्तीपत्रम्             | १०८६   | लक्ष्मणव्रतं ...                  | १०८    |
| उमामहेश्वरव्रतच्छापः ...         | ७८६    | लक्ष्मणव्रतं ( श्रीवधर्माज्ञां )  | ५६०    |
| उमामहेश्वरव्रतं देवीपुराणोक्तं   | ६६१    | लक्ष्मणव्रतं ( श्रीपुराणोक्तं )   | ६५     |
| ऋ                                |        | लक्ष्मणव्रतं ( श्रीवधर्माज्ञां )  | १५६    |
| ऋतुव्रतानि ...                   | ८५८    | लक्ष्मणव्रतं ( श्रीवधर्माज्ञां )  | १५५    |
| ए                                |        | लक्ष्मणव्रतं ( श्रीपुराणोक्तं )   | १५६    |
| एकभक्तव्रतं ...                  | ७४८    | कौत्सव्रतं ...                    | ७५५    |
| एकभक्तव्रतं विष्णुधर्मोत्तरोक्तं | ८६७    | कौमुदीव्रतम् ...                  | २५०    |
| औ                                |        | कौमुदीव्रतं ...                   | ७६०    |
| औपतिकं                           | १०७८   | समव्रतं ...                       | १५४    |
| क                                |        | ग                                 |        |
| कदलोव्रतं ...                    | १२५    | गजनीराजव्रतविधिः ..               | २२६    |
| करकव्रतं ...                     | ७१८    | गजपूजाविधिः ..                    | २२९    |
| करव्रतानि ...                    | ७१८    | गजश्राद्धं ..                     | १०३६   |
| करिव्रतं ...                     | ६११    | गन्धव्रतं ...                     | २४१    |
| करुणव्रतं ...                    | ६१०    | गणेशव्रतं ...                     | ८६१    |
| काङ्कनपुरीव्रतं ..               | ८६८    | गायत्रीव्रतं ...                  | ६२     |
| कामचयीदशौघव्रतं ...              | २५     | गणेशव्रतं ...                     | ४६६    |
| कामदेवव्रतं ...                  | १८     | गुह्यव्रतं ...                    | ५०८    |
| कामधेनुव्रतं ...                 | २५४    | गोविन्दव्रतकथा ...                | २६३    |
| कामव्रतं ...                     | ७५     | गोविन्दव्रतं ( भविष्योत्तरोक्तं ) | ३०३    |
| कामावाप्तिव्रतं ...              | १५५    | गोविन्दव्रतं ( स्कन्दपुराणोक्तं ) | २८८    |
| कारोषाग्निमाधनं ...              | ६६०    | गोपदक्षिणव्रतं ...                | ३२३    |
| कार्तिकमाधनं ...                 | ७०२    | गोयुग्यव्रतं ...                  | ६६४    |

सूचीपत्रम् ।

३

|                                  | पत्रा |                                | पृष्ठा |
|----------------------------------|-------|--------------------------------|--------|
| वीरकवचं ...                      | ८९५   | अथपौषमाधीवतं                   | १६२    |
| मोक्षानिः ...                    | १०२७  | अथवत (विष्णुधर्मोत्तरोक्तं)    | १५५    |
| प्रवृत्तिधर्मकथामभावात्प्रकीर्णं | ५६०   | अथविधि                         | ५२०    |
| घ                                |       | अथानामिप्रवतं                  | ७५     |
| घटिकाभिषेकः ..                   | १०१५  | आतिथिराचितत                    | ३२०    |
| घृतभाजनवत                        | १५०   | शान्तावाप्रवत                  | ७४८    |
| घृतस्नानविधि                     | ८११   | जाहावतानि                      | ७५०    |
| घृतावेषकविधि.                    | ८८२   | जाहावत                         | ६२५    |
| घ                                |       | त                              |        |
| घण्टिकावत                        | ५१०   | ताम्बूलसंज्ञान्निवतं           | ७४०    |
| घृतुर्दशोत्तमवत                  | १४८   | निधियन्त्रवतारवतानि            | ५८८    |
| घृतुर्दशोत्रतं                   | १५६   | निधियन्त्रवतारवत               | ६८७    |
| घृतुर्दशोत्रतानि                 | २६    | नीवत                           | ८१७    |
| घृतुर्दशोत्रत(भविष्णोत्तरोक्तं)  | १२२   | नेत्रभक्तान्निवत               | ७७४    |
| घृतुर्दशोत्रतान्निवत             | १५८   | तयोदशोत्रतानि                  | १      |
| घृतुर्दशोत्रतानि                 | ८००   | तयोदशोत्रत                     | १८     |
| घृतुर्दशोत्रत                    | ५००   | तिपुत्रसद्वत                   | ५२५    |
| घण्टिकावत                        | ५५८   | त्रिविक्रमवत                   | ३१८    |
| घण्टिकावत                        | २४५   | त्रिविक्रमवत                   | ८५४    |
| घण्टिकावत पद्मपुराणोक्तं         | ८८४   | त्रिविक्रमवत (मोक्षपुराणोक्तं) | ८५६    |
| घण्टिकावत विष्णुधर्मोत्तरोक्तं   | २५६   | त्रिविक्रमवत                   | ११७    |
| घण्टिकावत विष्णुधर्मोत्तरोक्तं   | १७५   | द                              |        |
| घण्टिकावत पराशरसंज्ञाम्          | ११२१  | दक्षोत्तमपञ्चाङ्ग              | ११२१   |
| घण्टिकावत                        | ८८७   | दक्षोत्तमपञ्चाङ्ग              | ५५५    |
| ज                                |       | दशादित्यवत                     | ५५८    |
| जन्मशास्त्राणि.                  | १००७  | द्विषाकवत                      | ५६८    |

|                                     | पृष्ठा |                    | पृष्ठा |
|-------------------------------------|--------|--------------------|--------|
| दीपदानविधि                          | २७५    |                    |        |
| दीपव्रत                             | २८२    | न                  |        |
| दीपव्रतं                            | २८६    | नक्षत्रपुरुषव्रत   | ६८६    |
| दुर्गात्मदौर्भाग्यनाशनवयोदशव्रतं    | १४     | नक्षत्रपूजाविधि    | ५८५    |
| दूर्वाचिराचरण                       | ३१५    | तक्षत्रव्रताण      | ५८७    |
| देवव्रत पद्मपुराणोक्तं              | २६२    | नक्षत्रसोमविधि     | ६८५    |
| देवव्रत                             | ६४     | नक्षत्रार्थव्रत    | ६८६    |
| देवसुमित्रव्रत                      | ५०४    | नदीव्रत            | ५६२    |
| देवशयनोत्थानविधि                    | ६००    | नन्दव्रत           | १८     |
| देवीव्रत                            | २७६    | नन्दादिविधि        | ५२२    |
| देवीव्रत देवीपुराणोक्तं             | ७७५    | नन्दादिव्रतविधि    | ५२७    |
| देवीव्रत भविष्योत्तराणोक्तं         | ६८५    | नन्दानिधि          | ५२७    |
| देवीव्रत देवीपुराणोक्तं             | ६१५    | नन्दाव्रत          | ६३२    |
| द्वितीयाभद्राव्रतं                  | ७२५    | मवनसप्तशक्ति       | ६८८    |
| द्वीपव्रत                           | ४६५    | मवस्यायुपवासव्रत   | ५०६    |
|                                     |        | नवपणिमाव्रत        | १६६    |
| ध                                   |        | नरसिंहसप्तदशव्रत   | ४१     |
| धनसक्तान्त्रिकव्रत                  | ७३६    | नरसिंहसप्तदशव्रत   | ५४     |
| धनावापिव्रतं विष्णुधर्मोत्तराणोक्तं | १५५    | नानातथिव्रतानि     | २५८    |
| धनावापिव्रत                         | ५०१    | नानाफलपूणिमाव्रत   | २४२    |
| धनावापिव्रतं विष्णुधर्मोत्तराणोक्तं | ७५६    | नानासाधनव्रतानि    | ८००    |
| धराव्रत                             | ६८६    | निकम्भपूजा         | २४१    |
| ध्यानसक्तान्त्रिकव्रत               | ७३०    | नीराजनविधि         | ६७५    |
| धामचिराचरण                          | ६२७    |                    |        |
| धाराव्रत                            | ६४०    | प                  |        |
| भूतिव्रत                            | ५८६    | पञ्चषष्ठपूणिमाव्रत | १६५    |
| भोजनव्रत                            | ६८६    | पञ्चसुमित्रव्रत    | १६८    |
|                                     |        | पंचव्रत            | ६६२    |
|                                     |        | पथीव्रत            | ६५५    |

सूचीपत्रम् ।

५

|                                    | पृष्ठा |                                    | पृष्ठा |
|------------------------------------|--------|------------------------------------|--------|
| पञ्च नक्तत्रयं ..                  | ६०५    | पत्तिमातृत्वं                      | ५०     |
| पञ्चभूभाजनत्रयं ..                 | ६०६    | प्रदीपविधि                         | ७६३    |
| पवित्रादीरुणविधि ...               | ४१०    | प्रदोषवृत्तं                       | १६     |
| पातास्तत्रयं                       | ४०६    | प्रभातृत्वं                        | ६४     |
| पात्रत्रयं ..                      | २६२    | प्रमथश्लेष                         | १०८६   |
| पादोदकस्नान                        | ६५०    | प्रजापत्यावृत्त                    | १०३    |
| पापमोचनत्रयं ..                    | २६६    | प्राग्निवृत्त                      | ६६६    |
| पापसंक्रान्तित्रयं ...             | ७२६    | फलवृत्तं                           | ६१६    |
| पाल्लोच्चतुर्दशोपन ..              | २१०    | फलसंक्रान्तिवृत्ति                 | ७२३    |
| पाशपतत्रयं ..                      | २४४    | फाल्गुणविधि                        | ७२६    |
| पाशपतत्रयं वायुमन्त्रितोक्त        | २७३    | फाल्गुणवृत्तानि                    | ७२७    |
| पाशपतत्रयं ( मन्त्रशुद्धिर्न )     | २७७    |                                    |        |
| पितृत्रयं                          | २४२    | वज्र्यामिषकावाध                    | १०१७   |
| पितृत्रयं ( भविष्यपुराणीकोक्त )    | २४४    | वाणिज्यनामत्रयं                    | ६४६    |
| पितृत्रयं ( विष्णुपुराणीकोक्त )    | २४४    | वृषत्रयं                           | ४५०    |
| पितृत्रयं ( शिवधर्मोपनिषत्कोक्त )  | ४०४    | शुक्लीरपातशमन                      | १०८१   |
| पृथकामत्रयं ..                     | १७७    | सङ्काशत्रयं                        | २७७    |
| पुत्रदोषविधि ..                    | ४२४    | सङ्काशत्रयं विष्णुधर्मोपनिषत्कोक्त | २७६    |
| पुत्रत्रयं ..                      | ६८२    | सङ्काशत्रयं चन्द्रोदरणीकोक्त       | २७४    |
| पुत्रप्राग्नित्रयं                 | ६८१    | सङ्काशप्राग्नित्रयं                | ३००    |
| पृथोत्पत्तित्रयं ..                | ६४६    | सङ्काशवृत्तं                       | ६७७    |
| पुराणश्रवणविधि ...                 | २६७    | सङ्काशादिचोदना                     | २४०    |
| पुराणमात्रं विष्णुधर्मोपनिषत्कोक्त | २४२    | स्राग्ण्यप्राग्नित्रयं             | २४४    |
| पुराणमात्रं ब्रह्मपुराणीकोक्त ...  | २४४    |                                    |        |
| पुराणमात्रं त्रैलोक्यत्रयानि       | १००    | मन्त्रसूत्रयंत्रयंत्र              | ७१३    |
| पुरोपवृत्तानि                      | ८८२    | मन्त्राविधि                        | ४०३    |
| पुरोक्तवृत्तानि                    | ८८८    | मन्त्रानुवृत्त                     | १०७    |
|                                    |        | मन्त्रपदवृत्तानि                   | ७४८    |

## सूचीपत्रम् ।

|                                   | पृष्ठा |                                 | पृष्ठा |
|-----------------------------------|--------|---------------------------------|--------|
| भौमवृतं                           | ८८७    | मन्वेष्टवृतं                    | १५२    |
| भौषपञ्चकवृतं                      | ३३१    | मन्वेष्टवृत्तान्तं              | १००८   |
| भूभाजनवृतं                        | ८६०    | मन्वेष्टवृतं                    | १४८    |
| भूतभावप्रसवः                      | २८५    | माघमासवृत्तानि                  | ०८८    |
| भूमिवृतं                          | ६२     | माघश्रावणविधिः                  | ०८०    |
| भूमिपतनविधिः                      | ८६१    | मार्गशीर्षवृत्तानि              | ७८४    |
| भोमसंक्रान्तिवृतं                 | ०३३    | माघमसिधारावृतं                  | ८२५    |
| भोगावाप्तिवृतं                    | ७५१    | माघवृत                          | ८५२    |
| भौमवारवृतं                        | ५६०    | माघवृत्तानि                     | ०४४    |
| भौमवृतं                           | ५६०    | माघोपवासवृतं                    | ०७६    |
| भौमवृतं ( पद्यपुराणोक्तं )        | ५६८    | मन्ववृत                         | ८६५    |
| <b>म</b>                          |        | मन्वश्रावणः                     | ६४५    |
| मङ्गलवृत्तोद्यापन                 | ५०४    | मूलश्रावण                       | ६४४    |
| मङ्गलावृतं                        | ३३२    | मृगपक्षिवेहतोपश्रमं             | १०८    |
| मदनमन्वीरवृतं                     | २१     | मौमवृतम्                        | ४८२    |
| मनोरथपूषिभावृतं                   | १३३    | मौमवृत्तोद्यापनम्               | ४८२    |
| मनोरथसंक्रान्तिवृतं               | ०५१    | <b>य</b>                        |        |
| मन्वातपोवृत्तानि                  | ८१०    | यमलज्जननश्रावणः                 | १०९३   |
| मन्वापौषमासोवृतं                  | १८१    | यमवृत                           | १५१    |
| मन्वाप्रस्थानं                    | ८५५    | यमवृतं ( मन्वाभारतोक्तं )       | ३००    |
| मन्वाफलावृतं                      | २६२    | यमवृतं ( विष्णुसंख्योक्तोक्तं ) | १५३    |
| मन्वारान्तवृतं                    | १३८    | यमाद्देशनयथाद्देशीवृतं          | ८      |
| मन्वालक्ष्मीवृतं                  | ४८४    | युगावतारवृतं                    | ५१८    |
| मन्वावृतं                         | ३००    | युगादिविधिः                     | ५१०    |
| मन्वावृतं ( लक्ष्मणपुराणोक्तं )   | ३८८    | युगादिवृतं                      | ५१४    |
| मन्वावृतं ( विष्णुसंख्योक्तं )    | ४६१    | यौमवृतं                         | ०००    |
| मन्वश्रावणः                       | ५८०    | यौमवृत्तानि                     | ०००    |
| मन्वाश्रावणः ( भविष्यपुराणोक्तं ) | १००९   |                                 |        |

|                              | पृष्ठा |                             | पृष्ठा |
|------------------------------|--------|-----------------------------|--------|
|                              |        | वसुवृतं                     | ८८५    |
| र                            |        | व्यक्तिचिराचवृतं            | १११    |
| रक्षाबन्धनपौर्णमासीवृतं ...  | १८०    | वक्रवृतं                    | १५५    |
| रथयात्रीत्यव. देवीपुराणोक्तः | ४१०    | वायुवृतं                    | १४१    |
| रथयात्रीतसवः                 | ४१४    | वारव्रताभि                  | ४१०    |
| रक्षाचिराचवृतं               | १८३    | वारिवृतं                    | ८५०    |
| रविवृतं                      | ७८५    | विद्यावाग्निवृतं            | ७८६    |
| रामिवृतं                     | १३८    | विनायकस्वपन                 | १००१   |
| रुद्रवृतं                    | ८६६    | विकृपाचवृतं                 | १५३    |
| रुद्रवृतं (पद्मपुराणोक्तं)   | ३८४    | विल्वचिराचवृतं              | १०८    |
| रुद्रस्नानम्                 | १०११   | विश्वीकसंक्रान्तिवृतं       | ७४१    |
| रूपसववृतं                    | ६७१    | विष्टिवृतं                  | ७१८    |
| रूपसंक्रान्तिवृतं            | ७७४    | विष्णुद्वयकीर्तन            | ८३६    |
| रूपावाग्निवृतं               | ७४४    | विष्णुपटवृतं                | ६६५    |
| रोमहरविधिः                   | ५१६    | विष्णुवृतं                  | ४५८    |
| रोचिणीवृतं                   | ४८८    | वृष्णाकृत्यामविधिः          | ८०८    |
| रोचिणीस्नानं                 | ४८८    | वृषवृतं                     | २४२    |
| रु                           |        | वृषत्वसर्ग                  | ८८१    |
| रुक्मीनाराधनवृतं             | १६४    | वृष्टिविस्तृतिप्रशमनं       | १०८४   |
| रुक्मितापुत्रं               | ५१०    | वेदवृतं                     | ८६७    |
| रुक्मिणीवाग्निवृतं           | ७८५    | वेद्यावृतं                  | ५४१    |
| रुक्मिवृतं                   | ४६३    | वेशाचव्रताधि                | ७४८    |
| रु                           |        | वेशाचोकार्त्तिकोऽग्नीविधिः  | १६६    |
| रुद्रवृत्तविधीयते            | १४७    | वेशानरवृतं                  | ८६०    |
| रुद्रवृतं                    | ८८६    | वैश्यावृतं                  | ८१८    |
| रुद्रवृतं पद्मपुराणोक्तं     | ८०५    | यतीपातवृतं नारदीयपुराणोक्तं | ७०८    |
| रुद्रवृतं                    | १३६    | यतीपातवृतं                  | ७१३    |
| रुद्रोपनिषद्                 | ८८८    | यीमवृतं                     | ८८१    |



## सूचेपत्रम् ।

| श                                   | पृष्ठा |                                 | पृष्ठा |
|-------------------------------------|--------|---------------------------------|--------|
|                                     |        | शुक्लवृत्तं                     | ५७८    |
| शकध्वजोच्छ्रावणविधि                 | ४०१    | शूलानवृत्तं                     | ...    |
| शकवृत्तं                            | ...    | शूलवृत्तं                       | ४६३    |
| शकवृत्तं                            | ८६६    | श्रीयन्त्रवृत्तं                | ...    |
| शङ्करनारायणव्रत                     | ६६३    | शिवमहावृत्तं                    | ...    |
| शतभिषाञ्जान                         | ६५३    | शिवमहावृत्तमपरां                | ४४८    |
| शकनाशनव्रतं                         | ५८७    | शिवोपवासवृत्तं                  | ३८७    |
| शनिवृत्तं                           | ५८०    | श्यामाशुभोत्थन                  | ६१२    |
| शनिश्चरदिशान्ति                     | ५८७    | शयनपासनविधि                     | ...    |
| शङ्कव्रत                            | ८६७    | शङ्कावृत्तं                     | ८६९    |
| शान्तिपौष्टिकाणि                    | १००३   | शावणवृत्तं                      | ...    |
| शाङ्कराद्यणोत्रं                    | ६५६    | शाप्रभिरवृत्तं                  | ...    |
| शिवचतुर्दशोत्र                      | ५८     | श्रीवृत्त                       | ४६६    |
| शिवनक्षत्रं                         | ३८८    | म                               |        |
| शिवशिवव्रतं                         | ८५६    | मटावृत्तं नाम अन्नदानमाहात्म्य  | ४६६    |
| शिवरात्रिव्रतं                      | ...    | मन्त्रानन्दवृत्तं भविष्योत्तरां | २३८    |
| शिवरात्रिव्रतमाहात्म्य              | ६०     | मन्त्रपिठवृत्त                  | ५६८    |
| शिवरात्रिव्रतं स्कन्दपुराणोक्त      | ७१     | मन्त्रमाहावृत्त                 | ५०७    |
| शिवलिङ्गव्रत                        | १०७    | मन्त्रानन्दवृत्त                | ८८६    |
| शिवव्रत                             | ३४३    | मन्त्रवृत्त                     | ३३४    |
| शिवयोग्युक्त शिवरात्रिव्रतमाहात्म्य | ५७७    | मन्त्रलाक्षण्यवृत्तं            | १०८५   |
| शिववृत्तं कालोत्तरां                | ३८८    | मन्त्राक्षयव्रतानि              | ७६७    |
| शिवव्रतं पद्मपुराणोक्तं             | ...    | सकान्तिव्रतानि दशपुराणोक्तानि   | ७३८    |
| शिवव्रतं कालोत्तरां                 | ८१८    | सप्तमविधि                       | ...    |
| शिवोपरोत्तरव्रतं                    | ८५३    | मघाटकव्रतं वराहपुराणोक्त        | २८०    |
| शालावापिव्रतं                       | ७८६    | सम्यक्वृत्तं                    | ८७०    |
| शकुन्तलाव्रतं                       | २२०    | सम्यक्वृत्तं भविष्यपुराणोक्त    | ३०३    |
|                                     |        | भवनवृत्तं विष्णुवृत्तं          | ३३६    |

## ग्रन्थानां वचनसंख्या ।

—→ ०००)०० ←—

| पृष्ठा  | पृष्ठा                               |
|---|--------------------------------------|
| <b>अ</b>  | <b>न</b>                             |
| अथर्वणमोपयन्नाष्टक — ८११, ८१२ ।   | नरसिंहपुराणं—१४, ४८, २०४, १००,       |
| अथर्वपरिशिष्टं—६१८, ६२३, ६२६ ।  | २८१ ।                                |
| अथर्ववेदः—८१६ ।   | नारदीयपुराणं—०१०, ००१ ।              |
| <b>आ</b>  | समिच्चपुराणं—४११ ।                   |
| आदिपुराण—२४२, २४३, २१४ ।  | <b>प</b>                             |
| आदित्यपुराण—३४८, ५१०, ६४०, ७२०, ७४०, ७५०, ७६०, ७७० ।  | पद्मपुराणं—२४, १४७, १०४, १०८,        |
| <b>क</b>  | २१८, २४०, २४४, २१८, ३२२, ३८४, ४०४,   |
| कालिकापुराण—१४१, १८०, ३३२, ३८०, ४०२, ४२२ ।  | ६०८, ६८४, ६८४, ७४८, ८१८, ८५०, ८६०,   |
| कालीभद्र—२, ४००, ४८०, ८११ ।   | ८६२, ८६३, ८६४, ८६६, ८६७, ८८३,        |
| कर्मापुराणं—१४१, १४६, २४०, २४८ ।  | ८८४, ८८४, ८८६, ८८७, ९०१, ९०१, ९०४,   |
| <b>ग</b>  | ९०४, ९११ ।                           |
| गर्ग—६८८,   | पालकथाः—२२२ ।                        |
| गावडपुराण—६१, ०२८, ८०६ ।  | प्रभासखण्ड—२४४ ।                     |
| <b>द</b>  | <b>ब</b>                             |
| देवोपुराण—०१३, ३३४, ४२४, ४४४, ४४४, ४२०, ६८३, ६८४, ६८४, ६८८, ७४०, ७८६, ८४४, ८४६, ९१६, ९१४, ९१० । | ब्रह्मपुराण—०८८, ८०१, ९१४, ९४०, ९८४, |
|   | ब्रह्मवैवर्तः—८०४, ९०१, ९८२ ।        |
|   | ब्रह्माण्डपुराण—४४२, ०१८, ०४४, ९१४   |
|   | <b>भ</b>                             |
|   | भविष्यपुराणं—९८२, १०१२,              |

पृष्ठा

पृष्ठा

अविष्णुपुराण—२५, १५८, १७५,

१८०, २१८, २४०, २५४, ३८४, ४८४, ५८०, ६८०,  
७८८, ८४०, ९०८, ९१८, ९२१, ९२२, ९२४,  
९२६, ९२९, ९३८, ९८०, १०८४, १०८६, १०८८,  
१०९०, १०९६, १०९८, १०९९, १०९९।

अविष्णोत्तरं—८, १४, १६, १७, १८,

२४, ५६, ५८, ६५, ६५, ७१, १२०, १२२,  
१३२, १३८, १४०, १५८, १६२, १७१, १८४,  
१८०, १८५, १८६, २१८, २०२, २८२,  
३०८, ३२२, ३२४, ३३६, ३४२, ३८२, ३८८,  
४०५, ४८२, ५१०, ५१०, ५२२, ५२४,  
५२०, ५२८, ५४८, ५४८, ५६०, ५७८,  
५७८, ५८०, ५८०, ५८८, ६३८, ६७५, ६८०,  
७००, ७२४, ७२६, ७४८, ८०२, ८१२, ८१५,  
८५३, ८५६, ८५७, ८७२, ८८०, ८८४, ८८४,  
८८६, ८८८, ९००, ९०२, ९१०, ९५५, ९६४  
९०१५।

अ

अतस्यपुराण—६१, ५०८, ५४१, ७०३,

८४३, ९०२, ९८५, १०२८, १०८८।

अथ—६९१, ६९३, ६९६, ८८२।

अष्टाभाषा—१५५, ३००, ६१८।

अ

अमर्याद—३८०,

आश्विन—१००१, १००३,

अ

आश्विन—८४८, ८६१

अ

अज्ञपुराण—११४, ११२, १८०, २८८,

६२०, ८१०, ८५४, ८५६।

अ

अज्ञपुराण—२३३, ३०५, ७१२, ७८८

अज्ञपुराण—१४५, ३४८, ७८२, ८६८

आयुपुराण—८५६।

आयुचिन्ता—२२२

आश्विनपुराण—२१, ८५८, ८६१

आयुचिन्ता—१८, १५२, २४५, ४६१,

५०९, ७५२, ७८०, ७८८, ८४८, ८५४, ८५४,  
८५४, ८७२, ८७२, ८८४

आयुचिन्ता—१८, १५२, १५४, १५४

१६४, १६६, १६७, २०५, २०६, २०७, २३८,  
२४८, २५३, २९३, ३२०, ४६०, ४६१, ४६२,  
४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६८, ४६९, ४६९,  
४७०, ५०१, ५०२, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७,  
५०८, ५०९, ५१०, ५१०, ६००, ६१०, ६१०

६२४, ६३०, ६४८, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६,  
६६०, ६६१, ६६२, ७०६, ७२८, ७४४, ७५०

७५१, ७५८, ७५९, ७६१, ७६८, ७८५, ७८७,  
७८८, ८००, ८२०, ८२८, ८२८, ८३१, ८३२,  
८५८, ८६०, ८६३, ८६४, ८६७, ८६८,  
८६९, ८७६, ८७८, १०१०, १०२५।

आयुचिन्ता—२५५, २५६, ८६५

आयुचिन्ता—३१०, ५५३, ७००, ७०१,

७०३, ८४३, ८६०, ८६८

|                               | पृष्ठा | पृष्ठा                             |
|-------------------------------|--------|------------------------------------|
| विष्णु कृतिः—०६१              |        | शौरपुराण—२४, १५६, ३६८, ८१५,        |
| श्र                           |        | ८१७, ८५५, ८६६                      |
| शिवशर्माः—१५४, १५६, ३८५, ८४३, |        | शान्दपुराण—८०, ८२, ११२, १४०,       |
| ८५३, ८८८, ८९२, १०२०           |        | १४८, १५९, १७८, १८८, १८३, ३१९, ३१५  |
| शिवशर्मोत्तर—३८६, ८८२         |        | ४८९, ४८९, ४८८, ५१४, ५२०, ५६६, ५६७, |
| शिवरचन—८६१                    |        | ५८८, ६४०, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, |
| स                             |        | ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ८६७, ८६९  |
| शौरशर्मा—५५७                  |        | शान्दमहाकाण्ड शब्द—१५१, २४१ १      |



## अथ सप्तदशोऽध्यायः ।

—000—

अथ त्रयोदशीव्रतानि ।

धर्मादपेतं न कदाचिदेव यदीयवाचो विषयत्वमेति ।  
स एव हेमाद्रिरनुक्रमेण त्रयोदशीषु व्रतवृन्दमाह ॥

बुधिष्ठिर उवाच ।

भगवन् भूतभक्ष्येण संसारार्णवतारका ।  
व्रतं कथय किञ्चिन्मै रूपसौभाग्यदायकं ॥  
अनङ्गः प्रीणितो येन फलं यच्छ्रुति केशव ।  
आत्मवद्रूपसौभाग्यं तस्मिन्निस्तरतो वद ॥

कृष्ण उवाच ।

अनङ्गः श्रूयते देवः शूलपाणिः पिनाकभृत् ।  
तस्मिन् सम्पूजिते\* पार्थ किञ्चाप्नोति नरोभुवि ॥  
तेन ते कथयिष्यामि शूलपाणिव्रतेष्विदम् ।  
यत्र कस्यचिदाख्यातं व्रतानामुत्तमं व्रतं ॥  
चीर्त्स्वा भक्त्या नरोमर्त्ये यद्यदिच्छति पाण्डव ।  
तत्तदाप्नोत्यसन्दिग्धमनङ्गाख्यां त्रयोदशीम् ॥  
किं व्रतैर्व्युभिः पार्थ उक्तमात्रफलप्रदैः ।  
त्रयोदशी त्वियं पुण्या सर्वव्रतफलप्रदा ॥

\* तस्मिन्नुपूजित इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

तस्मात् कार्या प्रयत्नेन बहुपुण्यमभीष्टता ।  
 अयोदशीज्ञानङ्गास्त्वा सखीऽघोष\* विनाशनी ॥  
 सर्वदुष्टीपशमनी सर्वमङ्गलदायिनी ।  
 अतुल्यसुखसौभाग्यरूपलावण्यदायिनी ॥  
 पुरा दग्धेन कामेन त्रिनेत्रनयनाग्निना ।  
 भस्मीभूतेन लोकेऽग्निम् सङ्कल्पस्थेन पाण्डव ।  
 अमङ्गेन कृताज्ञेया तेनानङ्गवयोदशी ॥  
 अपरं श्रूयते यस्यां पुराणेनेतिविश्रुतम् ।  
 नाम निर्व्वचनं पार्थ कथयामि शृणुष्व तत् ॥  
 अनङ्गी भगवान् शम्भुस्तेजोऽमूर्त्तिरगोचरः ।  
 स एव देवोयेनास्यां तेनानङ्गवयोदशी ॥  
 प्रमिहा समनुपाप्ता नित्या सर्व्वफलप्रदा ।  
 मार्गशीर्षमले पक्षे त्रयोदश्यां समाहितः ॥  
 ज्ञान नद्यां तद्भागो वा गृहे वा कूपतोऽपि वा ।  
 कृत्वाभ्यर्च्य महादेवं विधानाच्छशिभूषणं ॥  
 लिङ्ग स्वयम्भवं भूतमभावे यत्प्रतिष्ठितं ।  
 तदनङ्गमितिप्रोक्तं पूजयेद्भक्तिव्रततो ॥  
 दधि, दुग्ध, घृत, क्षौद्र, शर्कराद्यस्मृतैः शुभैः ।  
 श्याप्यः एवास्मृतैः पश्चात्स्नापयेद्भस्मवारिषा ॥  
 धूपदीपादिनैवेद्यैः पुष्पैस्तत्कालसम्भवे ।

\* सखीऽघोषेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

† विष्णुरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

‡ स्नापयति पुस्तकान्तरे पाठः ।

फलैर्नावाविधैर्भक्षैर्गीतवाह्मिस्त्रिभुजैः ॥

शुतनामान्यघोषार्थ्य होमःकार्यस्त्रिभुजैः ।

अष्टादश, जाति, नारङ्ग, पायसैर्भुजा पिबेत् ॥

अष्टादशादि क्रमात् काष्ठपुष्पफलनैवेद्यप्राशनानि ॥

एवमुत्तरेष्वपि मासेषु

अनङ्गं पूजयेद्दादौ मधुमत्यासमन्वितं ।

अनङ्गनाम्ना संपूज्य मधु प्राश्य स्वपेक्षिणि ॥

मधुप्राशनयोगेन जायते मधुरध्वनिः ।

अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति भक्तिमान् ॥

पुष्येद्यौदुम्बरैर्ष्वीरि शुभदाङ्गिमभोदकैः ।

चन्दनेन च योगीशं मद्दयन्त्या सुतं यजेत् ॥

स्नाप्य चौंरादिभिः पार्थं पूजयित्वा विधानतः ।

योगेश्वरेति संस्पृश्य चन्दनं प्राशयेन्निशि ॥

सौम्यः शीतः सुगन्धश्च चन्दनप्राशनाद्भवेत् ।

राजसूयस्य यज्ञस्य तद्गतः फलमाप्नुयात् ॥

माघे न्यषीधसक्तन्द मातुलिङ्गं सुमालिकैः ।

सुमालिकं सोमलकं मुक्ता भोतिश्च योगीशं मद्दयन्त्या सद्वितं

यजेत् ।

माघेस्मरेति संकृत्य प्राशयेन्भौक्तिकोदकं ॥

प्राशनस्य प्रभावेन निर्मला धीः प्रजायते ।

रूपाण्यश्च वपुःस्त्रीणां मनोनयनमन्दनं ॥

मुक्तापूर्णापमे नेत्रे पद्मपत्रायते हृदिः ।

सौम्यः शान्तः सुगन्धश्च चन्दनप्राशनाद्भवेत् ॥



बहुशर्माख्यहृत्तस्य प्राप्नोत्यविकलं फलं ।  
 फाल्गुने वदरीकैश्च गीरजीवीरणोदकैः ॥  
 कङ्कोलेनच वीरेशं सशीतं निशि पूजयेत् ।  
 वीरनाम जपेद्राशौ कङ्कलं प्राशयेन्निशि ॥  
 तेनास्य सुरभिर्गन्धो जायते कायवक्रयोः ।  
 तथा गुणगणावासी द्रुतकाञ्चनसन्निभः ॥  
 गोमेधस्य फलं प्राप्य शक्रलोके महीयते ।  
 चैत्रे करञ्ज, दमन, द्राक्षा, वटुक, शीतलैः ॥  
 शीतलः कर्पूरः ।

देवेशं रूपनामानं यज्ञे सुभगया सह ।  
 पूर्वोक्तविधिना पार्थ कर्पूरं प्राशयेन्निशि ॥  
 कर्पूरवान् प्रियालोके गन्धगौरवसंयुतः ।  
 चन्द्रवत्सर्वलोकानां लोचनाङ्गादकारकः ॥  
 जायते स नरः पार्थ यः करोतीह भक्तिमान् ।  
 नरमेधफलावामिर्जायते नात्र संशयः ॥  
 वैशाखे सहकारार्कपुष्यान्फलसक्तुभिः ।  
 जातीफलैर्मंहारूपमिन्द्राख्या सहितं यजेत् ॥  
 प्राशयेद्द्राक्समये जातीफलमनुत्तमं ।  
 सफलास्तस्य सर्वाशा भवन्ति भुवि भारत ॥  
 गोसहस्रफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते ।  
 ष्येष्ठे जम्बूविश्वपत्रैः त्रीफलैः पूषकैस्तथा ॥  
 कवचनाथं संपूज्य प्रद्युम्नं ललितान्वितम् ।  
 कवचं प्राशयेद्द्राक्षौ सावस्त्रं तेनचाप्नुयात् ॥

वाजयेयफलं लब्ध्वा मोदते दिवि भारत ॥  
 आषाढे ऽपामार्गनीपं नास्त्रिकेरकदम्बकैः ।  
 तिलैश्चोमापतिं रात्रौ पूजयेच्च तिलोत्तमां ।  
 उमापतिं जपन् प्राज्ञः प्राशयेच्च तिलोदकं ॥  
 तिलोत्तमावद्भवत् रूपसम्पदनुत्तमा ।  
 प्राप्नोति पुण्डरीकस्य फलं कुरुकुलाह्वह ।  
 श्रावणे सुमनोभ्योऽजरुदलीफलमण्डकैः ॥

सुमना जाती ।

गन्धतोयेः शूलपाणिं शुक्लवासोन्वितं यजेत् ।  
 गन्धोदकञ्च संप्राश्य स्वपेद्रात्रौ त्रिमकरः ॥  
 सुगन्धः सर्वसौख्यान्वशिरायुयोपजायते ।  
 अग्निष्टंभस्य यज्ञस्य तस्य स्यात् फलमुत्तमं ॥  
 भाद्रे पालाशचाम्पेयशर्करान्ध पुरेस्तथा ।

आज्यपुरी घृतपूरः ।

यजेतागुरुणा सद्योजातं गीर्थासमन्वितं ॥  
 अगुरुं प्राशयित्वा तु गुरुर्भवति भूतले ।  
 तुलापुरुषदानस्य हेमस्य फलमश्रुते ॥  
 आश्विने चाप्यपामार्गकर्मभ्युगुहपूरकैः ।  
 स्वर्णाभूमिः सुवर्णञ्च त्रिदशाधिपतिं यजेत् ॥  
 हेमोदकञ्च संप्राश्य हेमवर्णः प्रजायते ।  
 नरमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति निश्चितं ॥  
 जर्जे कदम्बकं द्रोणकुशाण्डं लवणेन तुः ।  
 फलेषु विश्वाधिपतिं यजेन्मदनवाह्वह ॥

फलैरमृतफलास्यैर्भक्ष्यलवणवान् ज्ञेयः ।

लवणं प्राशयेत्तत्र अह्नया परयान्वितः ।

रूपलावण्यसंयुक्तः प्राशनादस्य जायते ॥

नैवेद्यानामप्यलाभेऽहविष्यान्नं प्रकल्पयेत् ।

इह प्रतिश्लोकं दन्तधावनं कुसुमं नैवेद्यं प्राशनानां यथा  
क्रममभिहितानां तस्य तस्याभावे अयमनुकल्प उक्तः ।

सर्वेषु पारशेषे व भीजयित्वा द्विजोत्तमान् ।

सदक्षिणस्ततोऽग्नीयाहभुभिः सहितो वशी ।

व्रतविघ्नो यदा तस्यामशक्तो सूतकेऽथवा ॥

उपोष्य एषोपवास्य तद्दहः पारयेत् पुनः ।

एवं सम्बत्सरस्यान्ते शक्ता रक्षाद्यलङ्घनं ॥

उमामहेश्वरं हैममधिवास्य ततोनिशि ।

पुष्यं धूपैस्तथागन्धैर्नैवेद्यैर्विविधैः फलैः ॥

ततः प्रभातसमये कृतहोमवलिक्लियः ।

वक्ष्यमाणमिदं सर्वं प्रदद्यात्तु द्विजातये ॥

लिङ्गाकारमनङ्गञ्च सौवर्णं कारयेच्छिवं ।

ताम्रपात्रेषु संस्थाप्य कलशोपरिविन्यसेत् ॥

शुक्लवस्त्रेण संष्ठाप्य पुष्यनैवेद्यपूजितं ।

ब्राह्मणाय प्रदातव्यं शिवभक्त्या सुश्रुत ॥

शक्तिमान् शयनं दद्यात्सवत्सं गां पयस्त्रिणैः ।

हृत्वीपानत्प्रदानञ्च कलशा सोदकान्विताः ॥

हादयात्रं प्रकर्त्तव्याः सक्चन्दनविभूषिताः ।

सितपक्वानसंक्ष्मा ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥

देवस्यैव प्रदातव्याः कुम्भा द्वादशगण्डकाः ।  
 वितानं पञ्चवर्णञ्च ध्वजकिङ्किणिनादिनम् ॥  
 घण्टाञ्च सुम्बनां भद्रास्वप्नीयाङ्किवमन्दिरे ।  
 तस्मिन्नेव दिने पार्थ सम्प्रीड्याम्बानमर्चयेत् ॥  
 देवदेवं त्रिशूलेशं पुष्पनैवेद्यदोपकैः ।  
 गीतवादिन्नृत्यादि प्रेक्षणैर्विधिभैरपि ॥  
 दानान्यत्र प्रदेयानि स्ववित्तस्थानुसारतः ।  
 सूर्यीपरागसदृशोयतःसदिवसो मतः ॥  
 भोजनञ्च यथा शक्त्वा घट्टसं मधुरोत्तमम् ।  
 प्रदद्याङ्किवभक्तानां देयानि च विशेषतः ॥  
 अर्चितो नावमन्येत अक्षिपेन्नामृतं वदेत् ।  
 एवं तदुत्सवं कृत्वा शिवयज्ञमनुत्तमं ॥  
 ततः स्वयन्तु भुञ्जीयाद्भृत्यवर्गसमन्वितः ।  
 शान्ताचारकनिष्ठस्तु हृदि देवं निवेश्य च ।  
 एवं निर्वर्त्य विधिवत्कृतकृत्यःपुमान् भवेत् ॥  
 नारी वा नृपशार्दूल कृत्वितद्भूतमुत्तमं ।  
 फलं त्वेतद्वाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।  
 एवं कृत्वा नरः सम्यक् भक्तिभावेन भावितः ॥  
 मुच्यते सर्वपापोचेर्त्रह्यहत्यादिकैरपि ।  
 इह कीर्त्तिसमवाप्य वै मृतः स्वर्गं मञ्जीयते ॥  
 पुष्यश्रेयादिद्वागत्य सार्वभौमो नृपो भवेत् ।  
 व्रतस्यास्य प्रभावेण मूर्त्तिमान् मदनोभवेत् ॥  
 सोभाग्यधनसौख्याब्जःशान्तचित्तो जितेन्द्रियः ॥

पुत्रपौत्रै सुसपूर्णेः जीवेच्च शरदां शतं ।  
 शिवभक्तपरो भूत्वा शिवकगतमानसः ॥  
 अन्तकाले शिवं स्मृत्वा शिवसायुष्यतां व्रजेत् ।  
 कामेन याकिल्ल पुरा संसृपोषिता सीत्  
 शुभ्रान्तिथिं त्रिदशदेहमवाप्तिहेतोः ।  
 तां प्राशनैरुदितनामयुतैरुपोथ  
 दिव्यं प्रयाति परमं पदमिन्दुमौलेः ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्तं मनङ्गत्रयोदशीव्रतं ।

चैत्र शुक्लत्रयोदश्यामनङ्गं तु पटे लिखेत् ।  
 नीलदूर्वाङ्कुरश्याम हस्तमात्रं प्रमाणतः ॥  
 रतिघीत्युभयोपेतं पीष्यसायकवापष्टक् ।  
 पटेषु सुस्थितः कार्यः सर्वैषाण्यरसां गणैः ॥  
 नानापुष्पैस्तु संपूज्य वस्त्रनैवेद्यदीपकैः ।  
 धूपैर्नानाविधैर्घ्नैर्नानातोद्यरवेषु तु ॥  
 पुष्पमण्डपमध्ये तु रम्योद्याने तु पूजयेत् ।  
 आचार्य्योविधिवैर्भक्त्या पूजितव्यः प्रयत्नतः ॥  
 वस्त्रहेमाद्रपानैश्च यथा शक्त्या तु भक्तितः ।  
 पुमान् कामंत्वमाप्नोति सर्व्वस्यैव प्रियो भवेत् ॥  
 सौभाग्यं प्राप्नुयाच्चार्यी इह लोके परत्र च ।  
 मासि मासि यजेद्वापि यथानुक्रमयोगतः ॥  
 एकास्मिन् वा दिने वक्ष्य वक्षरे वा समर्चयेत् ।

मदनं चित्तभवनं मन्मथन्तु रतिप्रियं ।  
 धनङ्गं चैव कन्दर्पं संपूज्य मकरध्वजम् ॥  
 कुसुमायुधसंज्ञञ्च तथा पूज्य मगोभवं ।  
 तथा विषमवाणञ्च द्वादशं मासतीप्रियं ॥  
 मासि भाद्रपदे यद्वादनङ्गं पूजयेत्तदा ।  
 इत्येतन्नियमेनैव कामव्रतं समाचरेत् ॥

इति कालोत्तरोक्तमनङ्गव्रतम् ।

—ooo—

युधिष्ठिर उवाच ।

यमस्याराधनं ब्रूहि श्रीवत्सपुरुषोत्तमं ।  
 यथा न गम्यते रौद्रस्वरकं नरकान्तकम् ॥

कृष्ण उवाच ।

हारवत्यां पुरे पार्थ ज्ञातोऽहं लवणाश्रसि ।  
 दृष्टवान् मुनिमायातं मुद्गलं नामनामतः ॥  
 प्रज्वलन्तमिवादित्यं तपसा द्योतितं वरं ।  
 स प्रणम्याद्य सत्कारैरिहं पृष्टोयुधिष्ठिर ॥  
 यमादर्शननामेदं व्रतं जन्तुभयापहं ।  
 कथयामास स मुनिर्मुद्गलो विष्णुयान्वितः ॥

मुद्गल उवाच ।

वृत्तान्त कथयिष्यामि यदृष्टं स्वप्नरौरके ।  
 अकस्माद्भोगरहितः पतितोऽस्मि धरातले ॥  
 पश्यामि चण्डपुरुषैः समन्तादाहृतं वपुः ।

अङ्गुष्ठमात्रपुरुषो वलादाकथ्यते तु सः\* ॥  
 बद्धा यमभट्टैर्गाढं नीयते वेगवाहभिः ।  
 क्षणात्सभायां पश्यामि यमं पिङ्गललोचनं ॥  
 क्षणावदातं रौद्रास्यं मृत्युव्याधिसमन्वितम् ।  
 वातपित्तकफाद्यैश्च मूर्त्तिमद्भिरुपासितं ॥  
 कामशोकज्वरछर्दिप्लीहानाहभगन्दरैः ।  
 राजयत्नप्रमेहाद्यैर्नेत्ररीशैरनेकधा ॥  
 निजाङ्गन्तु त्रणै रौद्रैर्ज्वालागर्दभकादिभिः ।  
 रोगैर्बहुविधैः क्षण्य नानारूपैर्भयावहैः ॥  
 मूर्त्तिमद्भिश्च संग्रामे नरकैर्घोरदर्शनैः ।  
 राक्षसैश्च पिशाचैश्च समन्तात्परिवारितः ॥  
 विषारकैर्विशिष्टाद्यैश्चित्तगुप्तादिलेखकैः ।  
 आदित्यादिकदिकपालैः कर्मसाक्षिभिरावृतः ॥  
 दूतेरौद्रमुख्याद्यैश्च सिंहसर्पादिवाहनैः ।  
 पाशांकुशादिहस्तैश्च भ्रुकुटीकुटिलाननैः ॥  
 वृहत्कायैश्च हाघोरैः पापिष्ठानां नियामकैः ।  
 असिपत्र वनाङ्गारक्षारगर्तास्रपूरकैः ॥  
 अस्त्रिभङ्गाभिषक्केदरुधिरस्तावकादिभिः ।  
 तत्रस्थो वृकतीभाति यमीनान्यो जनोऽपरः ॥  
 स प्राह किङ्करान् सर्वान् धर्मराजोरुषान्वितः ।  
 लज्यतां किं समानीतोयुष्माभिर्भान्तमानसैः ॥  
 मुहलोनाम कुण्डिन्ये नगरे भीष्मकात्मजः ।

\* बानदाकथ्यतेमुया इति पुस्तकान्तरे ।

क्षत्रियः समानीयतां क्षीणायुस्त्वय्यतां मुनिः ॥  
 इत्युक्त्वास्ते गतास्तस्मादायाता. पुनरेष ते ।  
 जर्च्यमभटाः प्राज्ञा धर्मराजं सुविस्मयाः ॥  
 क्षीणायुस्तत्र चास्माभिर्न कश्चिन्नक्षितो गतैः ।  
 न जानीमो भ्रान्तचित्ताः क्षमस्व जगतांपते ॥

यमउवाच ।

प्रायेण ते न दृश्यन्ते पुरुषे धर्मकिङ्करैः\* ।  
 कृता त्रयोदशो यैस्तु नरकर्त्तृविनाशनो ॥  
 उज्जयन्त्यां प्रयागे वा भैरवे वापि ये मृताः ।  
 तिलान्नगोहिरण्यादि दत्तं यैस्तु गवाङ्गिकं ॥

किङ्कराजसुः ।

कौटुम्भं तद्धतं स्वामिच्छंस नो भास्करात्मज ।  
 किं तत्र चैव† कर्त्तव्यं पुरुषार्थचतुष्टये ॥

यमउवाच ।

पूर्वाङ्गे मार्गशीर्षादौ वर्षमेकं निरन्तरं ।  
 त्रयोदश्यां सौम्यादिने सूर्यागङ्गारकवर्जिते ॥  
 मम नाम्ना द्विजानष्टौ पञ्च चैव समाह्वयेत् ।  
 पुराणवेदतत्त्वज्ञान् स्वाचारान्स्तत्र दर्शनान् ॥  
 सूर्यैः कशरणान् साधून् सर्वभूतहिते रतान् ।  
 शुचौ देशे शुभे पट्टे प्राङ्मुखानुपवेशयेत् ॥  
 अन्तर्धामोयतान् भक्त्या यत्नेनाभ्यङ्गयेत तान् ।

\* यमकिङ्करैरिति पुलकान्तरे पाठः ।

† इति पुलकान्तरे पाठः ।



आरभ्य उत्तमाङ्गांस्तु तिलतैलेन मर्दयेत् ॥  
 स्नापयेत्कामाषाद्यैः सुखोष्णेन च वारिणा ।  
 पृथक् पृथक् स्नापयित्वा सर्वानेव द्विजोत्तमान् ॥  
 सुखस्नातान्तथाचान्तान् व्रती भक्तिपरायणः ।  
 स्वयं सभृत्यः शूद्राणां तेषां कुर्यात्समाहितः ॥  
 प्राङ्मुखानुपदिष्टाय त्रयोदश पृथक् पृथक् ।  
 संस्थापयेच्चामिसुखान् गुडपूपान् सुपूजितान् ॥  
 सव्यञ्जनं सुपक्वान्नं भूयो भूयो निवेदयेत् ।  
 यथासुखं यथाहृत्ति यथाकाममयाचितं ॥  
 देयं भावं समालस्य इच्छन्निः श्रेय आत्मनः ।  
 शचिर्भूत्वा तथाचाच दक्षयेत्तिलतण्डुलैः ॥  
 प्रस्थमात्रैरथैकैकं तान्स्वपात्रसमन्वितैः ।  
 सदक्षिणैश्च संकृन्ने जलकुम्भैः पवित्रकैः ॥  
 चर्मप्रावरणैः श्रेष्ठैर्वस्त्रपुष्पैश्च दूतकाः ।  
 मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्रान् दक्षयेत्तान् पृथक् पृथक् ॥  
 ब्राह्मणान् समरूपांस्तान् पंक्तिभेदेन कारयेत् ।  
 यमःशनैश्चरो मृत्युर्दण्डहस्तो विनायकः ॥  
 अभावः प्रलयः शान्तिर्दुःस्वप्नश्चमनोऽन्तकः ।  
 लोकपालो धनी क्रूरो रौद्रो घोराननः शिवः ॥  
 मम प्रसादसुसुखोददात्वभयदक्षिणाम् ।  
 इत्युक्त्वा म प्रयच्छेत् देयं दत्त्वा व्रती पुनः ॥  
 द्विजानानुग्रजेत्तस्मात् स्वगृहविधिनाथितान् ।  
 पुवं यः पुरुषः कश्चित्कृतमिदं चरेत् ॥

स मृतोऽपि नरो दूता न याति यममन्दिरं ।  
 अदृष्टोसौ समायाति विमानेनार्कमण्डलम् ॥  
 तस्माद्याति पुरीं विष्णोस्ततः शिवपुरीं व्रजेत् ।  
 न्यूनं शीर्षं व्रतं तेन मुद्गलेन यथोदितं ॥  
 तेन नायात्यसौ खोकं मम क्षत्रियपुङ्गव ।

मुद्गलउवाच ।

यमस्यैतद्वचः श्रुत्वा क्वापि दूता गतास्तु मे ।  
 अहञ्च सर्वमाकर्ण्य विस्मयाविष्टमानसः ॥  
 स्वशरीरस्ततः प्राप्य सुप्तएवोत्थितो हरेः ।  
 ततोहरत्वमाविष्टो त्वां द्रष्टुमिदमागतः ।  
 श्रुतन्तु च मया तच्च कथितन्ते मयात्विह ॥

कृष्णउवाच ।

इत्युक्त्वा मुद्गलो राजन् प्रयातःस्वाश्रमं प्रति ।  
 इदं कुरुष्व कौन्तेय त्वमप्यत्र महीतले ॥  
 ततो यास्यस्यसन्दिग्धं परित्यज्यान्तकं दिवं ।  
 एवं येऽन्येऽपि पुरुषाः स्त्रियोवापि युधिष्ठिर ॥  
 त्रयोदश्यां त्रयोदश्यां ये करिष्यन्ति भूतले ।  
 एकभक्तेन नक्तेन उपवासेन वा पुनः ॥  
 यमादर्शननाम्ना वै व्रतं सर्वव्रतीक्ष्णम् ।  
 ते सर्वपापनिर्मुक्ता विमानेनार्कवर्षसा ॥  
 यास्यन्तीन्द्रपुरीं रम्यामप्सरोगणसंघतां ।  
 दीभूयमानाचमरैस्तूयमानाः सुरासुरैः ।  
 गीतवादित्रनिर्घोषैश्छतपङ्क्तिविराजिताः ।

अष्टौ घोररूपैस्ते यमदूतैर्युधिष्ठिर ॥  
 अनाहिता व्याधिशतैः पिशाचाद्यैरगोचराः ।  
 अताडिता महारौद्रेर्नानाप्रहरणाः क्षताः ॥  
 यमदृष्टिपथाश्रुताः सर्वसौख्यसमन्विताः ।  
 सर्वालङ्कारसंयुक्ताः स्वशिरःसौम्यदर्शनाः ॥  
 स्वर्गं वसन्ति सुचिरं भाविताः स्वेन कर्मणा ।  
 स्नाप्य त्रयोदशमुनीन् द्रुतपायसेन  
 सन्भोज्य पूज्य तिलतण्डुलसम्प्रदानैः ।  
 कुर्वन्ति ये व्रतमिदं त्रिदशेऽङ्गि पार्थ  
 पश्यन्ति ते यममुखं न कदाचिदेव ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं यमादर्शनत्रयोदशीव्रतम् ।

गुरुवारि त्रयोदश्यामपराङ्गे जलप्लुतः ।  
 तर्पयित्वा देवपितॄन् ऋषींश्च तिलतण्डुलैः ॥  
 नरसिंहं समभ्यर्च्य यः करोत्युपवासकं ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीपते ॥

इति नरसिंहपुराणोक्तं नरसिंहत्रयोदशीव्रतम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

ब्रूहि मे यदुशादूर्ल व्रतं गन्धविनाशभम् ।  
 तिलताम्रहृच्च देहस्य दीर्घान्धनाशन तत्रा ॥

कृष्ण उवाच ।

इमं प्रज्ञं पुरा पार्श्वं जातूकशीमहासुनिः ।  
 पृष्टीराज्ञा महामत्या कालनन्दनया तथा ॥  
 कथयामास तां हृष्ट उपविष्टा मृचोति सा ।  
 देवी कृताञ्जलिपुटा जातूकशीऽबद्भुतं ॥  
 न्येहेमासि सिते पक्षे चयोदम्नां बुधिशिर ।  
 स्नात्वा पुष्यनदीतीथे पूजयेद्बुभदेशजम् ॥  
 श्वेतमन्दारमर्कं वा करवीरञ्च रत्नकम् ।  
 निम्बञ्च सूर्यदेवञ्च वल्लभं दुर्लभं तथा ॥  
 दीप, नैवेद्य, पुष्याद्यैर्मन्त्रेणानेन पाण्डव ।  
 निरीञ्च गगने सूर्यं स्नात्वा हृदि समुच्चरेत् ॥  
 सूर्यं त्वं श्वेतमन्दारश्चेताकार्कस्य सश्वव ।  
 करवीर नमस्तुभ्यं निम्बहृत् नमोऽस्तु ते ॥  
 इत्थं योऽर्चयते भक्त्या वर्षे वर्षे पृथक् नरः ।  
 द्रुमत्रयं नृपत्रेह नारी वा भक्तिसयुता ॥  
 तस्याः शरीरेदुर्गन्धोदुर्भाग्यं वा न जायते ।  
 न सापन्नभयं लोके न बन्ध्यादीषज्जन्वेत् ॥  
 जायतेऽतीव सौभाग्यमन्यस्त्रीदुर्लभं नृप ।  
 कथितं यासरिष्यन्ति गन्धदीर्भाग्यनाशनं ॥  
 सर्व्वदीपैर्विनिर्मुक्ताः सुष्ठमञ्जलि भारत ।  
 निम्बं नवार्ककरवीरललासुपुष्यं ॥  
 याः पूजयन्ति कुसुमाक्षतदीपदानैः ।

• दौर्मन्त्रनाशकानि पुस्तकानि पाठः ।

ताः सर्व्वं कामसुखवृष्टिसमृद्धिभाजो  
 दौर्भाग्यदोषरहिताः सुभगा भवन्ति ।  
 इति भविष्योत्तरोक्तं दुर्गन्धदौर्भाग्यनाशन  
 त्रयोदशीव्रतम् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

कान्तारवनदुर्गेषु प्रविशन्नि नदीषु च ।  
 समुद्रतरणे चैव संग्रामेषु वरार्दने ॥  
 देवतां कां स्मरेत्तत्र परिचाणकरीं विभो ।  
 कथञ्च देव कुरुते परित्याणकृते जनः ॥

कृष्ण उवाच ।

सर्व्वमङ्गलमाङ्गल्यां दुर्गां भगवतीं उमां ।  
 नाप्नोति दुःखं पुरुषः संस्मरन् सर्व्वमङ्गलां ॥  
 अलक्ष्यलक्षं भूतस्य सर्व्वस्य हृदये स्थितां ।  
 न भयं समवाप्नोति संस्मरन्मृगदस्त्रिकां ॥  
 यदा तु शास्त्रं विज्ञातुमवन्यामहमागतः ।  
 गुरोः सन्दोषनेपार्श्वं त्रलेन सह भारत ॥  
 प्रामविद्येन च मया प्रतिज्ञाताय दक्षिणाः ।  
 दिव्यं भावं विदित्वा मे तेनाहं भावितस्तदा ॥  
 प्रभासतीर्थं पुत्रो मे सृतोऽसौ दीयते त्वया ।  
 मया ध्याता ततो देवी सर्व्वापत्सु च तारणी ।

अङ्गावङ्केति विख्याता तदा देवी च मङ्गला ॥

त्रितयं योऽर्चयेत्पार्थ तस्य सर्वत्र मङ्गलं ।

संहितात्तरक्तत् बलभद्र मङ्गला वेतित्रयं ॥

ततः प्रभृति तत्रस्थाः पूजयन्ति जनाः सदा ।

माश्वेव बलभद्रश्च मध्यस्थां सर्वमङ्गलां ॥

वामे नारायणः सोऽहं कपादी भवतस्ततः ।

त्रयोदश्यां सिते पक्षे मासि मासि धृतव्रतः ॥

एकभक्तेन नक्तेन उपवासेन वा पुनः ।

गन्धैः पुष्पैः सदीपैश्च मधुमीधुसुरासवैः ।

पल्लोडरकैः क्षिप्रं वलिभक्तैश्च भक्तिः ॥

योऽभ्यर्चयेत् राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

सर्वापत्नुतरत्नैश्च त्रितयं संस्मरेच्च यः ॥

अथवा दूरदेशस्थः कारयेत् प्रतिमात्रयं ।

मृगमयं काष्ठनं चापि लिखितं चित्रवर्णापि च ॥

पूजयित्वा विधानेन सर्वं तत् फलमश्नुते ।

एतन्नयं चिह्नमेऽङ्गि सिते सदेव

यः पूजयेत् कृष्णममांससुरोपहारेः ।

नश्यन्ति तस्य भवनेष्वतिभीषणानि

चीरारिजन्तुजनितानि भयानि सद्यः\* ॥

इति भविष्योत्तरोक्त\* सर्वमङ्गलात्रयोदशीव्रतम् ।

\* मन्थारति पुस्तकालयेपाठः ।

। इति भविष्योत्तरोक्त अङ्गावङ्गामङ्गला त्रयोदशी व्रत मिति पुस्तकालये पाठः ।

मार्कण्डेय उवाच ।

शुक्लपक्षे महाराज त्रयोदश्यासुपोषितः ।  
 पूजयेत् कामदेवमु वैशाखात् प्रभृति प्रभो ॥  
 गन्ध, मास्य, नमस्कार, दीप, धूपान्नसम्पदा ।  
 दद्यान्नतान्ते विप्राय गन्धवस्त्रयुगं तथा ॥  
 कृत्वा व्रतं वस्त्ररमितदिष्ट  
 मासाद्य नाकं \* सुचिरे मनुष्यः † ।  
 मानुष्यमासाद्यं भवत्यरोगः  
 सुखान्वितोरुपसमन्वितथ ॥  
 इति विष्णुधर्मोक्तं कामदेवव्रतं ।

मार्कण्डेय उवाच ।

शुक्लपक्षे महाराजं त्रयोदश्यासुपोषितः ।  
 फाल्गुनात्तु समारभ्य नित्यं संपूजयेन्नरः ॥  
 महाराजमु धनदं ।  
 गन्धमास्यनमस्कार दीपधूपान्नसम्पदा ।  
 सुवर्षे ब्राह्मणेन्द्राय व्रतान्ते प्रतिपादयेत् ॥  
 कृत्वा व्रतं वस्त्ररमित दिष्टं  
 पक्षेषु राजन् सुचिरं † उपोष्य ।

\* • प्राज्ञोत्पसन्विश्य मिति पुस्तकान्तरे पाठः

† मनुष्य इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मानुषमासाद्य भजान्वितः स्यात्  
 सीमाप्यनुक्तश्च तथा विरोधः ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं नन्दव्रतं ।

व्यासउवाच ।

त्रयोदशान्तवा रात्री सोपहारं त्रिकोचनं ।  
 दृष्टेयं प्रथमं यानि सुच्यते सर्वपातकैः ॥  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तं प्रदोष व्रतं ॥

सप्तकुमार उवाच ।

पञ्च स्वस्वयनं पुंसां नृश्वतामघनाशनं ।  
 त्रयोदशान्तवा महाबुधे व्रतमितत्रिंशद्वयम् ॥  
 नवनीतं नवहृद्यं रजताहसमप्रभं ।  
 कपिरत्नफलमात्रं यक्षमादावसुसंयतः ॥  
 रोप्यलान्द्रमयै पात्रे सीवर्णे वाच सुहृदये ।  
 सुवर्चरहिते तस्य निक्षिपेत् प्राणुषः उचिः ॥  
 स्यात्तस्य स्रतजप्यश्च दृष्टाभ्यरथरः खड्गं ।  
 नखसं पुष्पनिकरै रचतैर्वा प्रकल्पयेत् ॥  
 तस्मिन्मण्डपे पद्मं कारयेत् कुसुमोत्करैः ।  
 तत्र सङ्घ्रीपतिं देवं लक्ष्म्या युक्तमु दिव्यया ॥  
 कर्षिकायां समावाह्य दक्षिणावाहयेत्तथा ।  
 यज्ञीरष्टौ तु तन्मन्त्रैर्दिशां पाशास्तु वाह्यतः ॥



विधाय देवयजनं स्वादुमूलफलानि च ।  
तद्ये तत्समानीय नवनीतं नवमं शुचिः ।  
द्विधा कृत्वा तदेकैकं मन्त्रेणैवाभिमन्त्रयेत् ॥

मन्त्रः ।

पुरुषः पूर्णकामस्य हरिर्भद्रं करोतु नः ।  
योषिद्वते सदा लक्ष्मीर्भक्तं दिशतु स्वयं ॥  
एवं कृत्वा ततः पत्नीं दद्यादेकैकमघतः ।  
पूर्व्वं पुंलक्षितं पिण्डमितरञ्च तथापरम् ।  
इतरं स्त्रीलक्षितं ।

प्राश्याचम्य स्थितां पत्नीं प्रयतामभिमन्त्रयेत् ।  
यस्त्वत्तरात्मा भूतानामनादिनिधनच्युतः ॥  
स परःपरया भक्त्या कुक्षि रक्षन्तु मे सदा ।  
सर्व्वपुष्टिप्रजननी सर्व्वार्त्तिशमनी तथा ॥  
लक्ष्मीः कुक्षिगतं गर्भं रक्षतादच्युतप्रिया ।  
सर्व्वार्त्तिक्षयदक्षिणि दिव्यगक्तियुतान्यपि ॥  
त्वा रक्षन्तु सदा विष्णोःसर्व्वप्रहरणान्यपि ।  
तथा दिक्पतयः सर्व्वे रक्षन्तु ग्रहदेवताः ॥  
पान्तु संसारसंयुक्ता सर्व्वे रक्षन्तु सर्व्वदा ।  
इति कृत्वा ततः कुर्याद्वाह्मणानाञ्च तर्पणम् ॥  
गुरवे च वरं दत्त्वा नियमान् प्रतिपालयेत् ।  
वध्वा सहोपवस्तव्यं तद्दिनं प्रयतात्मना ॥  
चतुर्दश्यान्तु सुस्नातः कृतपूजाविधिः शुचिः ।  
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु दद्याच्च गुरुदक्षिणाम् ॥

भुञ्जीत वास्यैः साष्टं नियमानुत्सृजेत्ततः ॥  
 एवं कुर्वन् नरः शुद्धो बह्वपत्यश्च विन्दति ।  
 वन्द्यापि लभते पुत्रं मनोनयननन्दनम् ॥  
 कन्यापि सुपतिं विन्देत् व्रतेनानेन सुव्रता ।  
 माङ्गल्यं परमं प्राप्य दीर्घमायुश्च विन्दति ॥

इति वाराहपुराणोक्तं त्रयोदशीव्रतम् ।

कृष्ण उवाच ।

गौरीं विवाह्य जघाह हरः पाशुपतं व्रतम् ।  
 उमापतिः पशुपतिर्ध्यानासक्तो बभूव ह ॥  
 ब्रह्मादिभिश्च संमन्त्रा विशुद्धपुत्रलब्धये ।  
 गौर्या मनोभिनषितप्रणाय प्रहर्षितेः ॥  
 प्रहृष्टः शोभणार्घाय समर्प्यति मन्त्रयः ।  
 ततोमारी जगामाद्य आश्रयं रतिसंयुतः ॥  
 ईश्वरस्य धनुःपाणिर्व्यमन्त्रासहायवान् ।  
 सचेक्षुवापमाकृत्य मदनीक्यादनं गरम् ॥  
 चिक्षेप त्रिपरघ्नाये समाधिर्भङ्गहेतवे ।  
 बद्धा तु तस्य सकल्पं रुद्रः क्रोधज्वलद्वपुः ॥  
 ललाटे वक्रिमसृजत् तृतीयनयनाहरः ।  
 कामीवलीकितस्तेन भस्मीभूतश्च तत्क्षणात् ॥  
 दग्धं दृष्ट्वा स्मरं गीकाद्रतिप्रोत्थिते सदा ।

कुरु च विलपन्वो च सञ्चमन्वदिशागने ।  
 ततः शोकार्द्रुदवा गौरी वदसुवाच ह ।  
 भगवन् मदर्षे संरुहः कामं निर्दग्धवानसि ॥  
 तेनैते पश्यताम्य हे कामस्य इदितः कथम् ।  
 कुरु प्रसादं देवेश रतिप्रौखीष्टध्वज ॥  
 सञ्जीवय पुनःशशो मूर्त्तिमन्तं पुनः कुरु ।  
 तच्छ्रुत्वा तु महादेवो हृष्टः प्रोवाच पार्वतीं  
 उपभ्रुतं जगत्सर्वं मन्मथेन शरीरिणा ।  
 मया दग्धस्य कामस्य पुनरागमनश्च तः ॥  
 किञ्च ते मानवहास्य करोमि सफलं प्रिये ।  
 अस्मिन्वसन्तसमये शुक्लपक्षे त्रयोदशी ॥  
 अस्यां मनोभवोदेवी भविष्यति शरीरवान् ।  
 एतेन वीजभूतेन जगद्वसिष्यतेऽखिलम् ॥  
 एवं वरभिदं दत्त्वा मन्मथाय युधिष्ठिर ।  
 जगाम हृिमवत्पृष्ठे कैलाशं पार्वतीप्रियः ।  
 तदेतन्ने समाख्यातं हरस्य चरितं नृप ॥  
 पूजाविधानमपरं कथयामि शृणुष्व तत् ।  
 अस्यां स्नात्वा त्रयोदश्यामशोकाख्यं नगं लिखेत् ॥  
 सिन्दूररजनीरङ्गै रतिप्रौतिसमन्वितम् ।  
 कामदेवं मत्तवाजिवक्त्रं तत्र वृषध्वजम् ॥  
 सीवर्षं वा महाराजवृषभक्षेत्रमथापि वा ।  
 लीलाविलासगमनगर्वितस्नानस्फुरोगणं ॥

नम्यर्व गीतवादिप्रप्रेक्षणीय समाकुलम् ।  
 नद्यावत्तं कृतक्रीडाप्रीति विद्याधरीयुतं ॥  
 मध्याह्ने पूजयेत् भक्त्या भक्ष्यैर्धूपैः सुमन्थकैः ।  
 मन्त्रेशानेन राजेन्द्र नरनारीसमन्वितं ।  
 नमः कामाय देवाय देवदेवाय मूर्त्तये ॥  
 ब्रह्मविष्णुसुरेशानां\* मनःक्षोभकराय वै ।  
 छत्विवमर्षयित्वा तु देवदेवं मनोभवं ॥  
 ततस्तदपतो देया मोदकाः सुखमोदकाः ।  
 जानाप्रकारान् भक्ष्यांश्च कामो मे प्रीयतामिति ॥  
 ततो विसर्जयेद्दिपान् दत्त्वा सुम्भं सद्दक्षिणं ।

युम्भं गोमिद्युनं\* ।

स्वपतिं पूजयेत्तारी वस्त्रमाख्यविभूषणैः ।  
 कामोयमिति सखिम्यप्रहृष्टेनाम्तरात्मना ॥  
 मन्त्रदाय महापूजां\* यजमानः सुहृद्दतः ।  
 रात्रौ जागरणं कुर्यात् सुस्वराचिर्यथा भवेत् ॥  
 कर्पूरं कुङ्कुमसोदगन्धताम्बूलसर्जनैः ।  
 शूद्राणां मन्त्रदानेन कुर्याद्रास महोत्सवं ॥  
 दोषप्रख्यसनेद्विस्थौः नृत्यैः प्रेक्षयन्कोशवेः\* ।

- सुरेन्द्राद्यामिति पुस्तकान्तरे ।
- वस्त्र मन्त्रमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।
- मन्त्रदायस्त्वापूजानीया पुस्तकान्तरे पाठः ।

एवं यः कुरुते पार्थ वर्षे वर्षे महीक्षत्रं ॥  
 वसन्तसमये प्राप्ते ह्यष्टः पुष्टीनृपः पुरे ।  
 तस्य संवत्सरं यावत् शोकरोगैर्विसुच्यते ॥  
 सुभिष्यच्चेममारोग्य यशश्चौसौख्यमुत्तमं ।  
 कामवर्षी च पर्जन्यः तस्मिन् राष्ट्रे प्रजायते ॥  
 तुष्यते नात्र सन्देहोद्वाद्दशाक्षावर्द्धलोचनः ।  
 तथा कामश्च विष्णुश्च वसन्तश्च प्रजापतिः ॥  
 चन्द्रसूर्यादिकाः सर्व्वे ग्रहा ब्रह्मर्षयस्तथा ।  
 सर्व्वेपि तस्य तुष्यन्ति यच्चगन्धर्व्वराक्षसाः ॥  
 असुरा यातुधानाश्च सुपर्णः पन्नगा नगाः ।  
 तुष्टाः प्रयच्छन्ति सुखं तस्य कर्त्तुर्न संशयः ॥  
 चैत्रीत्सवे सकललोक मनो निवासे ।  
 कामं वसन्तमलयाद्रिमरुत्सहायं\* ॥  
 पन्नगा संहारं पुरुषप्रवरोऽथ योषित् ।  
 सौभाग्यरूपसुतसौख्ययुता सदा स्यात् ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्तमदनमच्चेत्सवः ।

व्यास उवाच ।

मन्दवारयुता पुण्या शकपक्षे त्रयोदशी ।  
 तस्यामुपोष्य विधिवत्सम्पूज्य गिरिजापतिं ॥  
 ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुक्तो भवति मानवः ॥  
 इति सौरपुराणोक्तं सर्व्वव्रतम् ।

\* कामश्चपन्नमयाद्रिर्भवेत्प्राप्तिति पुलकाकरे पाठः ।

पुष्पादितस्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तंमधौ पुनः ।  
 अशोकं काञ्चनं दद्यादित्तुयुक्तं दशाङ्गुलं ॥  
 विप्राय वस्त्रसंयुक्तं प्रदत्तः प्रीयतामिति ।  
 कल्पं विष्णुपुरे स्थित्वा विशोकः स्वात् पुमान् नृपः ॥  
 एतत् कामव्रतं नाम सदा शोकविनाशनं ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तं कामव्रतम् ।

ब्रह्मीवाच ।

कामं पूर्व्यं<sup>१</sup> त्रयोदश्यां सुरूपी जायते ध्रुवम् ।  
 इष्टां रूपवतीं भार्यां लभेत् कामांश्च पुष्कलान् ॥  
 मूलमन्त्राः स्तसंज्ञाभिरङ्गमन्त्राय कीर्त्तिताः ।  
 पूर्व्यं वत् पद्मपत्रस्यः कर्त्तव्यं त्रयोश्ररः ॥  
 गन्धपुष्पोपहारैश्च यथाशक्ति विधीयते ।  
 पूजाशाठेन शाठेन कृतापि तु फलपदा ॥  
 आज्यधारा समिद्धिश्च दधिक्षीरान्नमाक्षिकैः ।  
 पूर्व्वीक्तफलदोहोमः कृतः शास्त्रेण चेतसा ॥  
 एतद्धतं वैश्रवाभरप्रतिपद्धतवत् व्याख्येयम् ।  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तं कामत्रयोदशीव्रतम् ।  
 इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीमहादेवस्य समस्त  
 करणाधीश्वर-सकल-विद्याविगारद श्रीश्रीमाद्भिः  
 विरचिते चतुर्व्वर्गविन्तामणी प्रतखण्डे  
 त्रयोदशीव्रतानि ॥

\* नरदिति पुस्तकालये पाठः ।

• कामपुञ्जिति पुस्तकालये पाठः ।

## अथ षष्ठादशोऽध्यायः ॥

—०००—

अथ चतुर्दशोऽध्यायः ।

दिग्दन्ताबलकर्णतालपवन-प्रेङ्गीसम्प्राङ्गना  
सङ्गीतिश्रुति मिश्रितं सुमधुरं वैकुण्ठ-कुण्डलस्वरैः ।  
कीर्त्तिं किञ्चरयोषितः प्रतिदिशङ्गायन्ति यस्यानिशं  
हेमाद्रिः स चतुर्दशोऽध्यायः ब्रूते महासिद्धिदं ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

अनन्त व्रतमप्यन्यत्तिथा वस्यामनुत्तमं ।  
सर्वपापहरं नृणां स्त्रीणां चैव युधिष्ठिर ॥  
शुक्लपद्मे चतुर्दश्यामासि भाद्रपदे भवेत् ।  
तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वपापाद्भ्रपोहति ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कृष्ण कीयमनन्तेति प्रीच्यते यस्तया विभो ।  
किं शेषनाग आहोस्त्रिदशस्तत्तकः स्मृतः ॥  
परमात्मा तथानन्त उताहो ब्रह्म उच्यते ।  
क एषोऽनन्तसंज्ञो वै तथ्यं मे ब्रूहि कीशव ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

अनन्त इत्यहं पार्थ ममरूपं निबोध वै ।  
आदित्वादिपद्मा वारा यः काल उपपद्यते ॥

कक्षा-काष्ठा-सुहृत्तीदि दिनरात्रि शरीरवान् ।  
 पञ्चमासर्तु-वर्षाणि युगकल्प-व्यवस्थया ॥  
 घोऽयं काशी मया ख्यातः सोऽनन्त इति कीर्त्यते ।  
 सोऽहं कलावतीर्णीऽत्र भुवो भारावतारणात् ॥  
 दानवानां विनाशाय साधूनां पाकनाय च ।  
 अनादि मध्यमर्थ्यन्तकृष्णं विष्णुं हरिं शिवं ॥  
 ब्रह्माणं भास्वरं सोमं सर्वव्यापकमीश्वरं ।  
 विश्वरूपं महाकालं सृष्टि संहारकारकं ॥  
 प्रत्ययार्थं मया रूपं फाल्गुनाय प्रदर्शितं ।  
 सर्वमेव महाबाहो योगिध्येयमनुत्तमं ॥  
 विश्वरूपमनन्तश्च यस्मिन्नित्द्रासतुर्ह्ययम् ।  
 वसवोऽष्टौ द्वादशार्का द्वादश एकादशमलाः ॥  
 सप्तर्षयः समुद्राश्च पञ्चताः सरितीदृमाः ।  
 नक्षत्राणि दिशोभूमिः पातालं भूर्भुवः स्वह ।  
 मा कुर्वन्नात्र सन्देहं सोऽहं पार्थ न संशयः ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

अनन्तव्रतमाहात्म्यविधिं विधिविदास्वर ।  
 किं पुण्यं किं फलं यत्स्याद्गुष्ठानवतां नृणां ॥  
 केन वादौ पुरा चीर्यं मर्त्ये केन प्रकाशितं ।  
 एवं सविस्तरं कृष्ण ब्रह्मनन्त व्रतंमम ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

आसीत् पुरा कृतयुगे सुमन्तुर्नाम वे द्विज ।



वसिष्ठगोत्रे चोत्पन्नः सुसुरूपां भृगोः सुतां ॥  
 दीक्षां नामोपयेमे तां वेदोक्तविधिना नृप ।  
 तस्याः कालेन सञ्जाता दुहिता नन्ददायिनी ॥  
 शीला नाम सुशीला सा न्यवसन्मातृसन्ननि ।  
 ततः कालेन कियता ज्वरदाहेन पीडिता ॥  
 विननाश नदीतीये ययौ स्वर्गं पतिव्रता ।  
 समन्तुस्तु ततो यज्ञे धर्मं पुंसः सतां पुनः ॥  
 उपयेमे विधानेन कर्कशां नाम नामतः ।  
 दुःशीलां कर्कशां चर्णीं नित्यं कलहकारिणीं ॥  
 सापि शीला पितुर्गोत्रे गृहार्चनरता बभौ ।  
 कुष्ठप्रस्तम्भाङ्गन-हार-देहली-तीरणादिषु ॥  
 वर्णकौशिकमकरोत् नौल-पीत-सिता-सितैः ।  
 स्वस्तिकैः शङ्खपद्मैश्च अर्चयन्ती पुनः पुनः ॥  
 ततः काले बहुतिथे गते मारदशानुगा ।  
 पित्रा दृष्टा तदातेन स्त्रीचिह्ने योवने स्थिता ॥  
 कस्मै देया मया शीला विचार्यैवं सुदुःखितः ।  
 पिता ददौ हिजेन्द्राय कौण्डिन्याय शुभे दिने ॥  
 गृहोक्तविधिना पार्थं विवाहमकरोत्तदा ।  
 निर्वस्त्रीहाहिकं सर्वं प्रोक्तवान् कर्कशां हिजः ॥  
 किञ्चिद्वायादिकं देयं जामातुः परितोषकं ।  
 तत् श्रुत्वा कर्कशाक्रुहा प्रोच्छ्वाय गृहमण्डनं ॥  
 पटायां सुस्थितं कृत्वा स्वगृहं गम्यतामिति ।  
 भोज्यावसिष्टेषु पाथेयश्च चकार सा ॥

कौण्डिन्याऽपि विवाहोनां पथि गच्छन् शनैः शनैः ।  
 शीलां सुशीलामादाय नवीढां गौरधेन हि ॥  
 मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य सरित्तटे ।  
 ददर्श शीला स्त्रीणां सा समूहं रक्तवाससां ॥  
 चतुर्हृश्यामर्चयन्तं भक्त्या देवं जनार्दनं ।  
 उपगम्य शनैः साथ प्रप्रच्छ स्त्रीकदम्बकं ॥  
 पार्या किमेतन्मे ब्रूत किं नाम व्रतमीदृशं ।  
 ता ऊचु र्योषितस्तां तु शीलां शीलविभूषणां ॥  
 अनन्तव्रतमेतद्धि व्रतेऽनन्तस्तु पूज्यते ।  
 सा ववीदहमेतत्ते करिष्येः तसुत्तमं ॥  
 विधानं कीदृशं तच्च किं दानं कीऽत्र पूज्यते ।

स्त्रिय ऊचुः ।

शीले सदन्नप्रस्थस्य पुत्रामसंस्कृतस्य च ।  
 अर्घं विप्राय दातव्यं अर्घमात्मनि भोजनं ॥  
 शक्त्या च दक्षिणां दद्यादित्तयाऽठशिविर्जितां ।  
 कर्त्तव्यं स सरौक्षीरे विधिनानेन मानिनि ॥  
 ज्ञात्वा नन्तं समभ्यर्थ्यं गन्धलेपनधूपनैः ।  
 पुष्ये गन्धैः सुनैवेद्यैः पीतरक्तैश्चतुःसमैः ॥  
 तस्यापतो दृढं सूतं कुङ्कुमाक्तं सुर्वाशकं ।  
 चतुर्दशग्रन्थियुतं वामे करतले न्यसेत् ॥  
 मन्त्रेणानेन सुश्रोण्यावावहर्षं समाप्यते ॥

अनन्त संसारमहासमुद्रे

मम्वान् समभ्यूह्य वासुदेव ।

अनन्तरूपी विनियोजयस्व

अनन्त सूत्राय नमोनमस्ते ॥

अनेन डोरकंवद्वाभीक्ष्व्यं स्वस्यमानसैः ।

ध्यात्वा नारायणं देवमनन्तं विश्वरूपिणं ।

भुक्त्वाचान्तो ब्रजेद्देश्म भद्रे उक्तं व्रतं तव ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवमाकल्पं राजेन्द्र प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।

सापि चक्रे व्रतं शीला करे बद्धा सुडोरकम् ॥

पाथेयसर्षं विप्राय दत्त्वा भक्तं स्वयं तथा ।

पुनर्जंगाम संहृष्टा गोरथेन पतेर्गृहं ॥

भर्तासहैव शनकैः प्रत्ययस्तक्षणादभूत् ।

तेनानन्तव्रतेनास्या बालं गोरस-संकुलं ॥

गृह्णात्रमं त्रियासुष्टं धन-धान्य-समन्वितं ।

कुलमव्याकुलं रम्यं सर्वं चातिधिपूजनं ॥

सापि माणिक्यकाञ्चीभिर्मुक्ताहारविभूषिता ।

देवाङ्गवस्त्रसंख्यया सावित्री प्रतिमाभवत् ॥

कदाचिदुपविष्टाया हृष्टोवचः सडोरकः ।

शीलायाहस्तमूले तु भर्ता नेन द्विजकनना ॥

स्त्रीमदान्धेन कौरव्य साक्षेपं त्रीटितं हृषा ।

कोऽनन्त इति मूढेन जल्पता पापकारिणा ॥

चिद्वा ज्वाला कुलेवङ्गी हाहाकृत्वा प्रधाविता ।

शीला गृहीत्वा सूत्रञ्च क्षीरमध्ये समाक्षिपेत् ॥

तेन कर्मविपाकैश्च तस्य सा श्रीः स्वयं गता ।  
 गोधनं तस्करैर्नीतं गृहं सुष्टमकाशनं ॥  
 यद्यप्येवागतं तत्र तत्रैव च विनिर्गतम् ।  
 स्वजनैः कलहोमिषैर्वैश्वनं भर्जनं तथा ॥  
 भगन्ताप्तेपदोषेषु दारिद्र्यं पतितं गृहे ।  
 न कश्चिद्दत्तो लोके तेन सार्धं युधिष्ठिर ॥  
 शरीरेणाति सन्तप्तो मायया प्यतिदुःखितः ।  
 निर्वेदं परमं प्राप्तः कैण्डिन्यः प्राह तां प्रियां ॥  
 शीले किमेतदुत्पन्नं सहसाश्रीककारकम् ।  
 येनातिदुःखतोऽस्माकं जातः सर्वधनक्षयं ॥  
 स्वजनैः कलहोमेष्टे न कश्चिन्नेप्रभाषते ।  
 शरीरे तीव्रसन्तापः चेद्वेत्सि दारुणः ॥  
 जानासि दुर्नयः कोऽत्र किं कृतं दुष्कृतं भवेत् ।  
 प्रत्युचाय तं शीला सुशीलाशीलमण्डना ॥  
 प्रायोऽनन्तकृताप्तेषु पापसम्भवजं फलं ।  
 भविष्यति महामाग तदर्थं यत्नमाचर ॥  
 एवमुक्तः सविप्रिषिं जगाम मनसा हृदि ।  
 निर्वेदो विजगामाद्य कैण्डिन्यः प्रयतो वनं ॥  
 तपसे कृतसङ्कल्पो वायुभक्षो द्विजोत्तमः ।  
 मनस्याध्याय चानन्तं कद्रुष्यामि ततो विभुं ॥  
 यस्याप्रसादात्क्षणात्तमाप्तेषु पार्श्विर्धनं गतं ।  
 धनादिकं ममातीव सुखदुःखप्रदायकं ॥  
 एवं सञ्चिन्तयत् सोऽथ वभ्राम विजने वने ॥

तत्रापश्यत् महासूतं फलितं पुष्पितं तथा ।  
 वर्जितं पक्षिसङ्घातैः क्रीकटे विभवं यथा ॥  
 तमपृच्छस्त्वयानन्तः कथिदृष्टेः महातरो ।  
 ब्रूहि सौम्य ममातीव दुःखं चेतसि वर्त्तते ॥  
 सौम्रवीरुद्र नानन्तं वेद्मि द्रक्ष्यामि वा हिज ।  
 एवं निराकृतस्तेन जगामाथ हिजस्ततः ॥  
 क्व द्रक्ष्यामिति गच्छन् स गामपश्यत्भवत्सका ।  
 तृणमध्ये प्रधावन्तीमितचेतश्च पाण्डव ॥  
 अपृच्छद्वेनुके ब्रूहि यद्यनन्तस्त्वयेक्षितः ।  
 साचीवाचाथ कौण्डिन्यं नानन्तं वेद्मिगृहं हिजः ॥  
 ततो व्रजन् ददर्शाथ रम्यं पुष्करिणीहयं ।  
 अन्येन्यजलकल्लोल-वीचिपर्यङ्कसङ्गमम् ॥  
 पृच्छन् किञ्चत्ककङ्कार-कमलोत्पलमण्डलैः ।  
 मेधितं भ्रमरैर्हंसैश्चक्रैः कारण्डवैर्वकैः ॥  
 तेचापृच्छद्विजोऽनन्तो भवतोभ्यां न लक्षितः ।  
 जपतस्तेहिजश्चेष्ट नानन्तं वेद्मि हे किल ॥  
 ददर्शाथ वने तस्मिन् गर्हभं कुञ्जरं तथा ।  
 तावद्योतीहिजेनोक्ती ऊचतुर्नैव विद्महे ॥  
 एवं सम्यक् क्व द्रक्ष्यामि तत्रैव भूवि तादृशः ।  
 कौण्डिनी विह्वलीभूतोनिराश्रीजीविते नृप ॥  
 दीर्घमुष्णश्च निश्वस्य पपात भुवि भारत ।  
 प्राप्य संज्ञामनन्तेतिजल्पन् रथाय स हिजः ॥  
 नूनं पश्याम्यहं प्राणानिति सङ्कल्प्यचेतसि ।

उखायोद्बुध इच्छेऽस्मिन् तावन्नारत सत्तम ॥  
 कृपयानन्तदेवोऽस्त्र प्रत्यक्षं समजायत ।  
 एतन्नाम्नरूपेषु एतन्नेहीचेत्युवाच तं ॥  
 प्रगृह्य दक्षिणे पाशौ गुह्यामावेश्य तं स्वतः ।  
 स्त्रां पुरीं दर्शयामास दिव्यनारीनरैर्युतं ॥  
 तस्यां निविष्टमात्मानं दिव्यसिंहासने शुभे ।  
 पार्श्वस्थं शङ्खचक्रञ्च गदागरुडयोभितं ॥  
 दर्शयामास विप्राय विश्वरूपमनन्तकम् ।  
 विभूतिभेदैश्चानन्तैरनन्तममितीजसं ।  
 तं दृष्ट्वा तादृशं रूपमनन्तमपराजितम् ॥  
 वेपमानो जगादौचैर्जयशब्दपुरःसरं ।  
 जय ज्ञाथ जयानन्त विश्वमूर्त्ते जयाव्यय ॥  
 जय सर्वैककर्त्तेति संहर्त्ते च जयाच्च त ।  
 अनादि निधना, व्यक्त जय नित्य जयाक्षर ॥  
 जय सर्वग सर्वान् सार्वभ्य हृदयेश्वरः ।  
 एवमादि प्रणम्याद्य पुनरप्याह तं द्विजं ॥  
 पापोऽहं पापकर्त्ताहं पापात्मा पापसम्भवः ।  
 त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्व पापहरो भव ॥  
 तच्छ्रुत्वा नन्तदेवश्च प्राह सुखिन्धया गिरा ।  
 माभैस्त्वं ब्रूहि विप्रेन्द्र यत्ते मनसि वर्त्तते ॥  
 कौण्डिन्य उवाच ।  
 मया भूत्वा बिलुप्तेन त्रीटितोऽनन्तकोरकः ।  
 तेन पापविपाकेन भूतिर्मे प्रलयं गता ॥

( ५ )

स्वजनैः कलहो गेहे न कश्चिन्मां प्रभावते ।  
निर्वेदात् भूमितोऽरण्ये तव दर्शनकाङ्क्षया ॥  
कृपया देवदेवस्य त्वया आकां प्रदर्शितः ।  
तस्य पापस्य मे शान्तिं कारुण्याद्दत्तमर्हसि ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

तच्छ्रुत्वानन्तदेवेश उवाच द्विजसत्तमं ।  
भक्त्या माता पिता देवः किं न दद्यात्सुधिष्ठिर ॥

अनन्त उवाच ।

स्वगृहं गच्छ कौण्डिन्य मा विलम्बं करिष्यसि ।  
वरानन्तव्रतं कुर्यात् नववर्षाणि पञ्च च ॥  
ततः पापविशुद्धात्मा प्राण्यसे ऋद्धिसुत्तमां ।  
पुत्रपौत्रान् समुत्पाद्य भुक्त्वा भोगान्मनोनुगान् ॥  
अन्ते च स्मरणं प्राप्य मामुपोष्यस्यसंशयम् ।  
अन्यक्षते वरन्द्विज सर्वलोकोपकारकम् ॥  
इदमाख्यानकं श्रुत्वा शीलानन्तव्रतादिकम् ।  
करिष्यति नरोयस्तु कुर्वन् व्रतमिदं शुभम् ॥  
सोऽचिरात्पापनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिं ।  
गच्छ विप्र गृहं शीघ्रं यथायेनागतोऽस्मि ॥

कौण्डिन्य उवाच ।

स्वामिन् पृच्छामि मे ब्रूहि किञ्चित् कीतूहलं मया ।  
अरुण्ये भ्रमता दृष्टं न तद्द्विज जगद्गुरो ॥  
स चूत इच्छसास्मिन् गौरिका च इवभस्तदा ।

कमलोत्पलकङ्कारैः शोभितं सुमनोहरं ॥  
 मया दृष्टं महारक्षे किं तत् पुष्करिणीद्वयं ।  
 कः खरः कुम्भरः कोऽसौ कोऽसौ वृषोद्विजोत्तमः ॥  
 धनन्त उवाच ।

स चूतवृषीविप्रोऽसौ वेदार्थत्व विगारदः ।  
 सोर्धितोऽपि नवै प्रादा ष्विष्वेभ्य स्तसताङ्गतः ॥ ॥  
 सा गौ वसुन्धरा दृष्टा सुफला या त्वया द्विज ।  
 वृषोधर्मस्तयादृष्टः ग्राहकं सत्यमाश्रितः ॥  
 धर्मं व्यवस्थानं तच्च यस्त्युष्करिणीद्वयं ।  
 ब्राह्मण्यो केचिद्व्यास्तां भगिन्यौ ते परस्परं ॥  
 धर्माधर्मादि यत्किञ्चित् तं निवेदयतोमिद्यः ।  
 विप्राय न कश्चिद्वत्तमतिद्वौ दुर्बलोऽपि वा ॥  
 भिक्षा दत्ता न चार्थिभ्यो तेन पापेन कर्मणा ॥  
 वीचीकङ्कोकमालाभिर्मच्छतस्ते परस्परम् ॥  
 खरः क्रोधः स्तयादृष्टः कुम्भरो रोगचञ्चते ।  
 ब्राह्मणी सावनन्तोऽहं गुहासंसारमङ्गरम् ॥  
 इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रै वान्तरधीयत ।  
 स्वप्नप्रायश्च तद्दृष्ट्वा ततः स्वगृहमागतः ॥ १  
 कृत्वानन्तव्रतं सम्यक् नववर्षाणि पञ्च च ।  
 भुञ्जासर्वमनन्तेन यद्योक्तं पाण्डुनन्दन ॥  
 अन्ते च स्मरयं प्राप्य गतोऽनन्तपुरे द्विजः ।  
 तत्रा त्वमपि राजेन्द्र कर्वा मृच्यन् व्रतं कुर्व ॥

• उपपन्नं भः द्विषेभ्यो नन्तां विद्यां न दत्तवामिति पुस्तकान्तरे पाठः ।



प्राप्स्यसे चिन्तितं सर्वमनन्तस्य वचो यथा ।  
 यच्चतुर्दशमे वर्षे फलं प्राप्तं द्विचक्षणा ॥  
 वर्षेकेन तदाप्नोति कृत्वा साख्यानकं व्रतं ।  
 यत् कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥  
 येऽपि शृण्वन्ति सततं तद्यान्ये च पठन्ति ये ।  
 तेऽपि पापविनिर्मुक्ताः प्राप्सन्ति च हरेः पदं ॥  
 संसारगङ्गरगुहाः समुखं विहृत्सु  
 वाञ्छन्ति ये कुरुकुलोद्भव शुद्धचित्ताः ।  
 सम्पूज्य च त्रिभुवनेशमनन्तदेव  
 व्रजन्ति दक्षिणकरेवरुणोरकान्ते ॥

इत्यनन्तव्रतं ।

अथोद्यापनविधिरभिधीयत ।

बुधिष्ठिर उवाच ।

देवदेवं समाप्यैव व्रतस्य परमाहुतम् ।  
 उद्यापनविधिं कृत्वा अनुपाश्रोक्षि केशव ॥  
 उद्यापनविधिं विना न व्रतस्य फलं भवेत् ।  
 तस्माद्यज्ञातया कुर्याद्विज्ञातं विवर्जयेत् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मासि भाद्रपदे प्राप्ते परिपूर्णं व्रते ततः ।  
 यज्ञायां च चतुर्दशं ब्रह्मचारी व्रतौ नतः ॥

एकभक्त्येन नियमं कृत्वा भक्तिसमन्वितः ।  
 ज्ञात्वा नद्यां देवस्ताते तीर्थप्रश्रवणे तथा ॥  
 सर्व्वीषधैः सर्व्वगन्धैः स्थिलकक्षैरघामलैः ।  
 वेदीकविधिना सम्यक् तर्पयेत् पिष्टदेवताः ॥  
 ततो गृहं समागत्य वेदिं कृत्वा सुशोभनां ।  
 तत्रालिखेन्मण्डलकं पञ्चवर्णैः सुशोभितैः ॥  
 नवनालं सुसम्पूर्णं सर्व्वतोभद्रमेव च ।  
 तस्योपरि न्यसेत् कुम्भमग्रथं सुदृढं नवं ॥  
 ताम्रपात्रा समायुक्तं पञ्चरत्नसमन्वितम् ।  
 माघकेण सुवर्णस्य द्रिद्रेषापि पार्थिवः ।  
 कृत्वानन्तं प्रयत्नेन ताम्रपात्रोपरि न्यसेत् ॥  
 शय्यां सुविस्तारां कृत्वा तत्रानन्तं न्यसेद्भृती ।  
 लक्ष्म्या युक्तं वासुदेवं मुशलेन हलेन च ॥  
 आचार्यं पूजयित्वा च वस्त्रैराभरणैस्तथा ॥  
 वर्णाङ्गुलीयचिचैश्च भक्त्या च सुसमाहितः ।  
 ततस्तं पूजयेद्देवमनन्तं विष्णुरूपिणं ॥  
 वस्त्रयुग्मसमाच्छन्नं पीतयज्ञोपवीतनं ।  
 चन्दनेन सुगन्धेन कर्पूराशुकमिन्त्रिणा ॥  
 लेपयेच्च ततोङ्गानि\* प्रीयतां मधुसूदनम् ॥

अशुलेपनमन्त्रः ।

ततः पुष्पाणि संगृह्य पूजयेन्नामभिः पृथक् ।  
 अन्ताय नमः पादौ शुष्को सहस्रवर्षाय च ॥

\* तत्राङ्गानि पुस्तककारे पाठः ।

कायात्मने तु जानुर्भ्यां जघनं विश्वरूपिणे ।  
 क्रीटिं वै विश्वरूपाय मेढ्रं वै विश्वरूपिणे ॥  
 नाभ्यान्तु पद्मनाभाय हृदये परमात्मने ।  
 काण्ठं श्रीकण्ठनाथाय बाह्वुः सर्वास्त्रधारिणे ।  
 वाचस्पते नमस्तुभ्यं सुखे संपूजयेत्परिं ।  
 ललाटे केशवायेति शिरः सर्व्वात्मने नमः ॥  
 लोकात्मा सर्वभूतात्मा निमिषस्तुटिसंलवः ॥  
 जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-संसारभयनाशन ।  
 वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।  
 आहारः सर्वभूतानाम्पूज्यं प्रतिगृह्यतां ।

धूपमन्त्रः ।

त्वं ज्योतिः सर्वभूतानां तेजसां तेजोत्तमं ।  
 आत्मज्योतिः परं धाम दीपोऽयं प्रतिगृह्यतां ॥

दीपमन्त्रः ।

अन्नं चतुर्विधं स्वादु भूतानां जीवनं परं ।  
 नैवेद्यन्ते मया दत्तं देव प्रीत्या प्रगृह्यतां ॥  
 पूगीफलं सहान्वेन कर्पूरश्च मनोहरं ।  
 पवित्रौक्तमन्यन्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यतां ॥  
 वस्त्रयुग्मं शुचियस्त्राहासुदेवस्य वक्षभं ।  
 अन्नन्तः प्रीयतां तेन पीतवर्णेन मे सदा ॥  
 एवं पूजान्ततः कृत्वा गच्छेत्कुण्डसमाश्रयं ।  
 स्वगृहोक्तविधानेन कृत्वाग्निस्थापनं ततः ॥

प्रारभेत् ततो होममश्वत्थसमिधस्तिलैः ।  
 व्रीहिभिश्च यवैश्चैव हृतेन तु विधानतः ॥  
 पुरुषसूक्तेन जुहुयादतो देवेति वा पुनः ।  
 इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधेपदम् ॥  
 शतमष्टोत्तरं यावत्प्रत्येकं जुहुयाद्गुरुः ।  
 सर्व्वं हुत्वा विधानेन मन्त्रैरेतैर्विचक्ष्वचः ॥

अनन्ताय स्वाहा । कासाय स्वाहा । संवत्सराय स्वाहा ।  
 अहोरात्राय स्वाहा । अर्धमासाय स्वाहा । मासाय स्वाहा ।  
 ऋतुभ्यः स्वाहा । संवत्सराय स्वाहा । ततो महाव्याहृतयः ।  
 सर्व्वं प्रायश्चित्तं चक्षुषां आण्वतिलैः स्निष्टकृत्, प्रजापतिभ्यां  
 जुहुयात् ।

ततो वै लोकापालांश्च यद्गान् पूज्य यथाक्रमं ।  
 गीतवादित्रनिन्दैर्दत्त्वा पूर्वाहुतिं प्रती ॥  
 पुराणत्रयचैस्तद्वत् रात्रिशेषं नयेद्ब्रती ।  
 ततः प्रभातसमये स्नात्वा शुद्धः कृताङ्गिकः ॥  
 पूर्व्वोक्तेन विधानेन पूजयेद्दिशरूपिणम् ।  
 पूजयित्वा हरिं देवमाचार्य्यं पूजयेत्ततः ॥  
 परिधाप्य सपत्नीकं वस्त्रालङ्कारभूषितं ।  
 मन्त्रैः संपूज्य विधिवद्देतुं दद्यात् प्रयत्नतः ॥  
 सुरभी वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता ।  
 आसं गृह्णन् मया दत्तं गीमातस्नातु सर्व्वसि ॥

गावोममाद्यतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।  
 गावोमे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहं ॥  
 गोदानस्याधानार्थं दद्यात् स्वर्णं यथाविधि ॥  
 मन्त्रेणानेन सम्पूज्य आचार्याय निवेदयेत् ॥  
 अन्यच्च परिवासञ्च आचार्याय निवेदयेत् ।  
 आमन्त्रितानथो विप्रान् पूजयेच्च चतुर्दश\* ॥  
 वस्त्रोपवीतैः संपूज्य भोजयेदन्नविस्तरेः ॥  
 ततस्तु दक्षिणास्तभ्यो वित्तशाठप्रविवर्जितः ।  
 स्वशक्त्या दक्षिणां दद्यादाचार्याय चमापयेत्† ॥  
 क्रियाहीनं भक्तिहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।  
 मन्त्रहीनं पठेत्पश्चात् व्रतसम्पूर्णं‡ हृतवे ॥  
 अनन्त संसारमहासमुद्रे  
 मग्नं समभ्युद्धर वासुदेव ।  
 अनन्तरूपे विनियोजयस्व  
 अनन्तरूपाय नमोनमस्ते ॥  
 इत्यनन्तं विसर्ज्याथ ब्राह्मणांश्च तथैव च ॥  
 दीनेभ्यः कृपणेभ्यश्च\* दद्याच्चैव तथा धनं ॥  
 ततद्दृष्टैः समस्तैश्च पुत्र सम्बन्धितान्धवैः ।  
 यद्योपपन्नं भोक्तव्यं कृत्वा मामसमव्यये ॥  
 आचार्यं च शुचिर्भूत्वा चिन्त्योविष्णुश्च तद्दिने ।

\* आमन्त्रितान् विप्रान् पूजयेच्च चतुर्दश इति कश्चित् पाठः ।

† स्वशक्त्या दद्यादाचार्यं प्राक्षिपत्य चमापयेदिति पुस्तकालये पाठः ।

‡ सम्पूर्णं इति पुस्तकालये पाठः ।

¶ दीनान् कृपणान् च इति पुस्तकालये पाठः ।

एवंकृते नृपश्रेष्ठ कर्मणाश्च जनार्दनः ।  
 अतन्तरूपी भगवांस्तुष्टोभवति सर्व्वदा ॥  
 व्रतस्य फलमाप्नोति विष्णुस्त्रीके महीयते ।  
 सूत उवाच ।

हिरण्यकशिपुं हत्वा देवदेवं जगद्गुरुं ।  
 सुखासीनं तदुत्सङ्गे शान्तकीपं रमापतिं ॥  
 प्रह्लादीन्नानिनां श्रेष्ठः प्रालयन् राज्यमुत्तमम् ।  
 एकाकी च तदुत्सङ्गे प्रियं वचनमवधीत् ॥

प्रह्लाद उवाच ।

नमस्ते भगवन् विष्णो नृसिंहरूपिणे नमः ।  
 त्वद्भक्तोऽहं सुरैर्गैकं त्वां पृच्छामि च तत्त्वतः ॥  
 स्वामिन् त्वयि ममामित्रे भक्तिर्जाता त्वनेकधा ।  
 कथञ्च ते प्रियोजातः कारणं वद मे प्रभो ॥

नृसिंह उवाच ।

कथयामि महाप्राज्ञ नृणुष्वैकाग्रमानसः ।  
 भक्तैर्यत्कारणं वक्ष्ये प्रियत्वस्य च कारणं ॥  
 पुरा काले ह्यभूद्दिपः किन्तु त्वं नाप्यधीतवान् ॥  
 नाम्ना त्वं वासुदेवोहि वेश्यास्वासक्तमात्रसः ।  
 यस्मिन् जन्मनि नैव त्वं चकार सुकृतं कियत् ॥  
 सुज्ञा तु मद्गतं चैकं वेश्यासङ्गतिस्त्रालसः ।  
 मद्गतस्य प्रभावेन भक्तिर्जाता तवानघ ॥

• नृपतेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

प्रज्ञाद् उवाच ।

श्रीनृसिंहीच्यतां तावत् कस्य पुत्रस्य किं व्रतम् ।  
 वेश्यायां वर्त्तमानेन कथं तच्च कृतं मया ॥  
 येन तद्विष्णामा हात्म्यं वक्तुमर्हसि साम्प्रतम् ॥

नृसिंह उवाच ।

पुरावन्तीपुरे त्वासीत् ब्राह्मणी वेदपारगः ।  
 तस्य नाम सुशर्मति बहुलोकेषु विद्युतः ॥  
 नित्यहीमत्रियांचैव विदधाति द्विजोत्तमः ।  
 ब्राह्मक्रियासु नियतः सर्वासु किलतत्परः ॥  
 अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टाः सर्वे सुरोक्तमाः ।  
 तेनापि विद्यमानेन कृतम्भो दुष्कृतं कियत् ॥  
 तस्य भार्या सुशीलाभूद्विख्याता भुवनत्रये ।  
 पतिव्रता सदाचारा पतिभक्तिपरायणा ॥  
 जज्ञिरे स्थां सुताः पञ्च तस्माद्द्विजवराक्षया ।  
 सदाचाराः श्रुविद्वांसः पिष्टभक्तिपरायणाः ॥  
 तेषां मध्ये कनिष्ठस्त्वं वेश्यासङ्गतितत्परः ।  
 तथा निषेधमानेन सुरापानं त्वया कृतम् ।  
 सुवर्णं चापहृतं तैश्च समं चीर्णमघं बहु ॥  
 विलासिन्या गृहे नित्यं हससे विनिवारितः ।

विलासिनी वेश्या ।

एकदा तद्गृहे ज्ञासी महाकलिस्तया सह ।  
 तेन कलहभावेन भोजनं न त्वया कृतं ॥

अज्ञानात् मद्गतं चक्रे व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।  
 तस्यां विहारयोगेन रात्रौ जागरणं कृतं ॥  
 वैश्याया वल्लभं कश्चित् प्रजातं न त्वया समं ।  
 रात्रौ जागरणं शीर्षं त्वत्तं भोग्यमनेकशः ॥  
 व्रतेनानेन शीर्षेण मोदन्ति दिवि देवताः ।  
 सृष्ट्यर्थं च पुरा व्रद्धा चक्रे ह्येतदनुत्तमं ॥  
 मद्गतस्य प्रभावेन निर्मितं स चराचरम् ।  
 ईश्वरेण पुरा शीर्षं बधार्थं त्रिपुरस्य च ॥  
 माहात्म्येन व्रतस्याद्य त्रिपुरस्तु निपातितः ।  
 अन्यैश्च बहुभिर्देवै ऋषिभिश्च पुरानघ ॥  
 राजभिश्च महाप्राज्ञैर्विहितं व्रतसुत्तमम् ।  
 एतद्गतप्रभावेन सर्वं सिद्धिसुपागताः ।  
 वैश्यापि मत् प्रिया जाता त्रैलोक्ये सुखचारिणी ॥  
 ईदृशं मद्गतं वत्स-त्रैलोक्येषु च विद्युतं ।  
 कलहेन विलासिन्या व्रतमेतदुपस्थितम् ॥  
 प्रह्लाद तेन ते भक्तिर्मयि जाता ह्यनुत्तमा ।  
 धूर्त्तया च विलासिन्या ज्ञात्वा व्रतदिनं मम ॥  
 कलहश्च कृतोयेन मद्गतश्च कृतं भवेत् ।  
 सा वैश्या त्वप्सरा जाता भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥  
 सुक्ता कर्म विलासि त्वं प्रह्लाद सुविस्मयः ।  
 कार्यार्थं भगवानास्ते मत्सरी च पृथक् तथा ॥  
 विधाय सर्वकार्याणि शीघ्रं त्वच्च गमिष्यसि ।  
 य इदं व्रतमावश्यं प्रकरिष्यति मानवः ॥



न तेषां पुनरावृत्तिर्मत्तः कल्पयतैरपि ।  
 अपुत्रो लभते पुत्रान् मङ्गलस्य सुवर्चसा ॥  
 दरिद्रोलभते लक्ष्मीं धनदस्य च यादृशीं  
 तेजःकामो लभेत्तेजोराज्येषु राज्यमुत्तमं ॥  
 आयुःकामो लभेदायुर्यादृशं च शिवस्य हि ।  
 स्त्रीणां व्रतमिदं साधु पुत्रदं भाग्यदं तथा ॥  
 अवैधव्यकरण्तासां पुत्रशोकविनाशनं ।  
 धनधान्यकरं चैव जातित्रैल्यकरं शुभं ॥  
 सार्वभौमसुखं तासां दिव्यं सौख्यं भवेत्ततः ।  
 स्त्रियो वा पुरुषाद्यापि कुर्वन्ति व्रतमुत्तमम् ॥  
 तेभ्योददाम्यहं सौख्यं भुक्तिमुक्तिसमन्वितं ।  
 बहुनोक्तेन किं वक्तुं व्रतस्यास्य फलं महत् ॥  
 महत्तस्य फलं वक्तुं नाहं शक्तोऽन शङ्करः ।  
 ब्रह्मा चतुर्भिर्व्यक्तेषु न लभेन्नाहिमावधिं ॥

प्रह्लाद उवाच ।

भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रुतं व्रतमनुत्तमं ।  
 व्रतस्यास्य फलं साधु त्वयि मे भक्तिकारणं ॥  
 स्वामिन् प्रातिविशेषेण त्वत्तः पापनिक्तस्तनं ।  
 अधुना श्रोतुमिच्छामि व्रतस्यास्य विधिं परं ॥  
 कस्मिन् मासे भवेदेतत् कस्मिंश्च वासरे प्रभो ।  
 एतद्विस्तारतोदेव वक्तुमर्हसि साम्प्रतं ॥  
 विधिना येन वै स्वामिन् समयफलभुग्भवेत् ।  
 ममोपरि कृपां कृत्वा ब्रूहि त्वं सकलं प्रभो ॥

वृत्तिं च उवाच ।

साधु साधु महाभाग व्रतस्यास्य विधिं परं ।  
 सर्वं कथयतो मेऽथ त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥  
 वैयाखण्डकपक्षे तु चतुर्दश्यां समाचरेत् ।  
 मन्त्रसम्भवं पुण्यं व्रतं पापप्रणाशनं ॥  
 वर्षं वर्षं तु कर्त्तव्यं मम सन्नुष्टिकारकम् ।  
 महाशुभमिदं श्रेष्ठमानुषैर्भवभीरुभिः ।  
 तेनैव क्रियमाणेन सहस्रहादशीफलं ॥  
 जायते मन्त्रस्त्वा वरिम मानुषाणां महाकरां ।  
 स्वातीनक्षत्रयोगेन शनिवारेण संयुते ॥  
 सिद्धियोगस्य संयोगे वणिजे करके तथा ।  
 पुण्यसौभाग्ययोगेन लभ्यते दैवयोगतः ॥  
 सर्वैरेतैस्तु संयुक्तां हत्वा कौटिलिनाशनम् ।  
 एतदन्यतरे योगे तद्दिनं पापनाशनम् ॥  
 केवले तत्प्रकर्त्तव्यम् महिने व्रतमुत्तमम् ।  
 अन्यथा नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥  
 यथा यथा प्रवृत्तिः स्यात्पातकस्य कलौ युगे ।  
 तथा तथा प्रणश्यन्ति तद्गतस्य प्रभावतः ॥  
 मद्ब्रतस्य प्रभावेन मतिर्नस्यादुरात्मनाम् ।  
 विचार्यैतद्यं प्रकर्त्तव्यं माधवे मासि मद्ब्रतं ॥  
 नियमश्च प्रकर्त्तव्यं दन्तधावनपूर्वकं ।  
 औत्सिंह्यमहोपस्रवं दद्यां कृत्वा ममोपरि ॥

अद्याह च विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय ।

इति नियममन्त्रः ।

व्रतस्थेन न कर्त्तव्या सङ्कतिः पापिभिः सह ।  
 सिथ्यालापोन कर्त्तव्यः समग्रफलकाङ्क्षिभिः ॥  
 स्त्रीभिर्हेतैश्च आलापान् व्रतस्थो नैव कारयेत् ।  
 स्मर्त्तव्यं मे महारूपं मद्दिने सकले शुभे ॥  
 ततो मध्याह्नवेलायां नद्यादौ विमले जले ।  
 गृहे वा देवखाते वा तद्भागे विमले शुभे ॥  
 यैदिकेन च मन्त्रेण स्नानं कृत्वा विचक्षणः ।  
 मृत्तिकागोमयेनैव तथा धात्रीफलेन च ॥  
 तिलैश्च सर्वपापघ्नैः स्नानं कृत्वा महात्मभिः ।  
 परिधाय शुचिर्व्वासो नित्यकर्म्म समाचरेत् ॥  
 ततो गृहं समागत्य स्नानं माश्रुतियोगतः ।  
 गोमयेन च लिप्याथ कुर्यादष्टदलं शुभं ॥  
 कलशस्तत्र संस्थाप्य ताम्ररत्नसमन्वितं ।  
 तस्योपरि न्यसेत्यात्र तच्छुल्लैः परिपूरितं ॥  
 हेमौ तत्र च मन्मूर्तिः स्थाप्या लक्ष्म्या तथैव च ।  
 पलेन च तदर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः ॥  
 यथा शक्तिं तथा कार्यां वित्तशोभनविवर्जितः ।  
 पञ्चासृतेन संस्थाप्य पूजनन्तु समाचरेत् ॥  
 ततो ब्राह्मणमाह्वयं तमाचार्यमलोलुपं ।  
 सदाचारसमायुक्तं शान्तं दान्तं जितेन्द्रियं ॥

तैर्नैव कारयेत् पूजां दृष्ट्वा शास्त्रानुसारतः ।  
 आचार्यवचनाद्गीमान् पूजां कुर्याद्यथाविधि ।  
 मण्डपं कारयेत्तत्र पुष्यस्तबकशीभितं ॥  
 ऋतुकालीङ्गवैः पुष्यैः पूजयेद्यतमानसः ।  
 उपचारैः षोडशभिर्भस्मैर्नामभिस्तथा ।  
 ततः पीराणिकैर्भस्मैः पूजनीयो यथाविधि ।  
 चन्दनं शीतलं दिव्यं चन्द्रकुङ्कुममित्यतं ।  
 ददामि तव तुष्ट्यर्थं नृसिंह परमेश्वर ॥

इतिचन्दनमन्त्रः ।

कालीङ्गवानि पुष्याणि तुलस्यादीनि वै प्रभो ।  
 पूजयामि नृसिंहन्त्वां लक्ष्म्या सह नमोऽस्तुते ॥

पुष्यमन्त्रः ।

कालागरुमयसूपं सर्व्वदेवसुवक्त्रभं ।  
 करोमि वै महाविष्णो सर्व्वकामसमृद्धये ॥

इति धूपमन्त्रः ।

दीपः पापहरः प्रोक्तस्तमोरागिविनाशनः ।  
 दीपेन लभ्यते तेजस्तस्माद्दीपं ददामि ते ॥

इति दीपमन्त्रः ।

नैवेद्यं सौख्यदश्चारु भक्ष्यभोज्यसमन्वितं ।  
 ददामि ते रमाकान्त सर्व्वपापक्षयं कुरु ॥

इति नवेद्यमन्त्रः ।

वृसिंहाशु तदेवेयं लक्ष्मीकान्तं जगत्पते ।  
अनेनार्घ्यप्रदानेन सफलाः स्वर्मनोरथाः ॥

इत्यर्घ्यमन्त्रः ।

पीताम्बर महाबाहो प्रह्लाद भयनाशकृत् ।  
यथाभूतेनार्चनेन यथोक्तफलदीभव ॥

इति प्रार्थनमन्त्रः ।

रात्री जागरणं कार्यं गीतवादितनिस्वनैः ।  
पुराणपठनेर्नृत्यै श्रोतव्या च कथा शुभा ॥  
ततः प्रभातसमये स्नानं कृत्वा ह्यतन्द्रितः ।  
पूर्वाङ्गेन विधानेन पूजयेन्मां प्रयत्नतः ॥  
वैष्णवं तु चरेच्छ्राद्धं मद्ये स्वस्थिमानसः ।  
ततो दानानि देयानि वक्ष्यमाणानि चानघ ॥  
पात्रेभ्यस्तु द्विजिभ्यो हि लोकद्वयजिगीषया ।  
सिंहः स्वर्णमयो देयो मम सन्तोषकारकः ॥  
गो-भूतिल-हिरण्यानि देयानि च फलैः शुभैः ।  
ग्रथ्या सतूलिका देया सप्तधान्यसमन्विता ॥  
अन्यानि च यथाशक्त्या देयानि मम तुष्टये ।  
वित्तश्राठं न कुर्वीत यथोक्तफलकाङ्क्षया ॥  
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो देया च दक्षिणा ।  
निर्दनेरपि कर्त्तव्यं देयं शक्त्यनुसारतः ॥  
सर्वेषामेव वर्षानामधिकारोऽस्ति मे व्रत ।

मङ्गलैस्तु विशेषेण कर्त्तव्यं मत्परायणैः ॥  
 महंशे ये नरा जाता ये निष्पत्तिपरायणाः ।  
 तान् समुच्चर देवेश दुस्तरात् भवसागरात् ॥  
 पातकार्णवमन्त्रस्य व्याधिदुःखाम्बुवारिभिः ।  
 जीवैस्तु परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे ॥  
 करावलम्बनन्देहि शेषशायिन् जगत्यते ।  
 श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भवनाशन ॥  
 श्रीराम्बुधिनिवासस्तु चक्रपाञ्चिर्जनाईनः ।  
 व्रतेनानेन देवेश भुक्ति-मुक्ति-प्रदो भव ॥

इति प्रार्थनामन्त्रः ।

एवं प्रार्थ्य ततो देवं विसृज्य च यन्नाविधि ।  
 उपहारादिकं सर्वमाचार्याय निवेदयेत् ॥  
 दक्षिणाभिः सुसन्तोष्य ब्राह्मणांस्तु विसर्जयेत् ।  
 मध्याह्ने तु समायुक्तो भुञ्जीत वन्धुभिर्नरः ॥  
 यद्ददं शृणुयाद्भक्तग व्रतं पापप्रणायनं ।  
 तस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या व्यपोहति ॥  
 पवित्रं परमं गुह्यं कीर्त्तयेद्यस्तु मानवः ।  
 सर्वान् कामानवाप्नोति व्रतस्यास्य फलं लभेत् ॥  
 इति श्रीनरसिंहपुराणे नरसिंहप्रादुर्भावे  
 नरसिंहचतुर्दशीव्रतम् ।

—000—

( ७ )

शिव उवाच ।

अथ लिङ्गव्रतान्यत्र मृगुलेशेन घण्टुख ।  
 कार्तिकात् सम्यगारभ्य व्रतं वै शंसितव्रतः ॥  
 कार्तिकस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां पूजयेच्छिवं ।  
 महास्नानं प्रकर्त्तव्यं महापूजामथो पुनः ॥  
 लिङ्गव्रतानां सर्वेषां तथा नत्नेन वर्त्तनं ।  
 पूजां कृत्वाद्य यत्नेन बल्लनैवद्यकादिभिः ।  
 शालिपिष्ठमयं लिङ्गं कुर्याद्रत्निप्रमाणातः ॥

रत्निर्वहसुष्टिकरः ।

तिलप्रस्थं सुवर्णस्य लिङ्गस्योपरि विन्यसेत् ।  
 धूपवैकुण्ठरुदेयं सदनशागरत्नघा ॥  
 शिवरूपाय दातव्यं शिवं-यात्यक्षयङ्गतः ॥

शिवरूपाय विप्राय लिङ्गं दातव्यं ।  
 मार्गशीर्षे चतुर्दश्यां शुक्लायां वै विशेषतः ।  
 संपूज्य पूर्ववन्निङ्गं महास्नानेन तत्त्वतः ॥  
 विलिप्य कुङ्कुमेनैव शिवन्तेन प्रपूजयेत् ।  
 खेतं चन्दनलिङ्गन्तु कर्त्तव्यं पूर्वमानतः ॥  
 सुवर्णं तच्छुलप्रस्थं पृष्ठे सर्पं शिवाग्रतः ।  
 कर्पूरे च तु धूपन्तु चतुर्दिक्षु प्रकल्पयेत् ।  
 महावर्त्यादिकं देयं दधिपात्रं सुभाष्टकं ॥

‘शुभाष्टकं’ मङ्गलाष्टकम् ।

एवं कृत्वा विधानेन लिङ्गायविनिवर्त्तयेत् \* ।

\* लिङ्गं लिङ्गाय विनिवर्त्तयेत् इति लिङ्गचित् पाठः ।

ईशान रुद्रसंज्ञाय प्राचार्याय प्रकल्पयेत् ॥

ईशानोरुद्रः, प्रीयतामिति लिङ्गाय समर्चप्राचार्याय दद्यात्  
एवमन्येष्वपि मासेषु जहनीयं ।

शिवसायुज्यतां याति व्रतेनानेन वस्सुख ।

पौषशुक्लचतुर्दश्यां पूर्ववत् पूजयेच्छिवं ।

पूजान्ते गुग्गुलुशतं शिवस्य परितोवहेत् ॥

शतं, पलानां ।

पायसं घृतसंमिश्रं सखण्डं प्रखसन्मितं ॥

प्रस्यं, तण्डुलानां ।

नैवेद्यं पुरतीदेयं पताकाः शक्तिसङ्ग्रहा ।

शक्तयो अष्टौ

ध्वजा तथा पुनश्चेत् लिङ्गं वै पालिपिष्टजं ।

तिलाढकं सुवर्णञ्च लिङ्गं दक्षिणतो न्यसेत् ॥

शङ्कराख्यस्य रुद्रस्य व्रतमेतत् समर्पयेत् ।

माघशुक्लचतुर्दश्यां शिवं संपूज्य वर्त्तयेत् ॥

शाख्योदनाक्षतं लिङ्गं तिलप्रस्यं सुवर्णकं ।

शिवस्य दक्षिणे भागे धारितव्यं प्रयत्नतः ॥

सुन्नीदनं सघृतञ्च पूर्वस्यां प्रखसन्मितं ।

अगरुं सिद्धकं चन्द्रं दहेद्भूपं शिवाग्रतः ॥

व्रतमेवं विधानेन उग्रमावाञ्च निर्वपेत् ।

व्रतान्ते तु गुरुं भक्त्या यथाशक्त्या प्रपूजयेत् ॥

फल्गुशुक्लचतुर्दश्यां शिवं पूज्य विधानतः ।

गुग्गुलुं सघृतं धूपं महावर्त्तिचतुष्टयं ॥



मोदकानि विचित्राणि क्षीरी देवा घृतप्लुता ।  
 पूर्वोक्तेन विधानेन तथा लिङ्गं निवेदयेत् ।  
 शर्वाय च नमः पूज्य त्वाचार्यो भूरिदक्षिणः ॥  
 एवं कृत्वा महासेन प्राप्नोति तन्मयङ्कचित् ।  
 चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां शिवं पूज्यविधानतः ॥  
 भवरुद्राय निर्वर्त्य चाचार्य्यं पूजयेत्ततः ।  
 एवं कार्यं प्रयत्नेन चाक्षयं लोकमिच्छता ॥  
 चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे वैशाखस्य प्रयत्नतः ।  
 शिवं पूज्य विधानेन महास्रपनपूर्वकं ॥  
 विलिप्प कुङ्कुमेनैव चन्दनैश्चर्चयेच्छिवं ।  
 लिङ्गं पिष्टमयं कृत्वा हेमपुष्पविभूषितं ॥  
 तिलप्रस्थं सुवर्णञ्च दक्षिणादिकं विन्यसेत्  
 महावर्त्तिहृद्यं देयं दीपमाख्यं घृतेन तु ॥  
 सघृतं गुग्गुलं दद्यात् पलानान्तु शतहयं ।  
 अगुरुं शिङ्खलं चन्द्रं प्रत्येकन्तु फलन्दहेत् ॥  
 ततोदमनपुष्पैस्तु शिवं संपूज्य भक्तितः ।  
 सुवर्णं तिललिङ्गञ्च भवरुद्राय निर्वपेत् ॥  
 रुद्रसंख्यास्तु गुरवी दक्षितव्याः प्रयत्नतः ।  
 भूदानवस्त्रदानैश्च सुवर्णादि प्रविस्तारैः ॥  
 एतद्भृतीक्षमं नाम व्रतं संवत्सरं हितं ।  
 एवं यः कुरुते भक्त्या सगच्छेत्पपरमम्पदं ॥  
 पितरस्तस्य नन्दन्ति रुद्रलोके महीयते ।  
 दिव्यवर्षायुतं स्नायं तदन्ते तु धनेश्वराः ॥

आत्मज्ञानं पुनस्ते तु शिवे नित्ये लयं ययुः ।  
यः करोति महासेन शिववत् स च पूज्यते ॥  
ज्यैष्ठे शुक्लचतुर्दश्यां नित्यं कृत्वा शिवं जपेत् ।  
विलिप्य चन्दनेनैव जातीपुष्पेषु पूजयेत् ॥  
कुङ्कुमं लघुचन्द्रश्च धूपं देयं शिवायतः ॥

लघु, अगुरु ।

दीपमास्ता तु दातव्यां घारिका किङ्किणीध्वजं ।  
लावणयागालकाश्चैव क्षीरिपो घृतसंयुतः ॥  
खण्डपात्राणि देयानि घृतपात्राणि तद्वहिः ।  
एवं यः कुरुते वाङ्मन् भोक्षमक्षय्यमैश्वरं ॥  
पितृनुद्धरते सोऽपि दशपूर्वान् दशापरान् ।  
आषाढस्य चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे विशेषतः ॥  
शिवं पूज्य विधानेन महास्रपनपूर्वकं ।  
विलिप्य चन्दनैर्देवं प्रपला तु चतुःसमं ॥  
चन्द्रचन्दनकाश्मीरं यन्त्रिला च शिखिध्वजः ।  
एवं चतुःसमं नाम अङ्गरागः शिवप्रियः ॥  
सस्यकुङ्कुमकर्पूरं लघुवत्पलसंयुतं ।  
धूपन्तु परतो दद्यात् नैवेद्यं किरणान् बह्वन् ॥  
किरणान् कर्पूरान् । लिङ्गाख्याम्नचपतत् ।  
घोरिका लहडुकाश्चैव घृतपूरं पटत्रिकं ॥  
निवेद्य क्षीरपानञ्च स्नेहाद्देवस्य यत्नतः ।  
पिष्ठलिङ्गं सुवर्णं च पूगपत्रञ्च निर्वपेत् ॥  
वितानञ्च पताकाञ्च व्यजनं दर्पणं तथा ।

आचार्यं पूजयेत् पञ्चाह्वमन्नवाहनैः ॥  
 एवं यः कुरुते सम्यक् स याति परमं पदं ।  
 पितरस्तस्य मोदन्ते रुद्रलीकं समंततः ॥  
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटि शतानि च ।  
 श्रावणस्य चतुर्दश्यां शुक्लपक्षे व्रतं चरेत् ॥  
 नित्यनैमित्तिकं चैव कृत्वा काम्यं समाचरेत् ।  
 स्नानं पूजाजपोध्यानं होमं चैवतु पञ्चमं ॥  
 इति नित्यं समाख्यातामहन्वहनि सन्मख ।  
 अष्टम्यादिनिमित्तेषु पूजासु द्विगुणा तथा ॥  
 पवित्रारोहणं तद्वन्नित्याङ्गं नियमं स्थितं ।  
 दीक्ष्याचैव प्रतिष्ठा च ग्रहणमयनं तथा ॥  
 पङ्गुयति सुखाश्चैव निमित्तकमुदाहृतं ।  
 काम्यव्रतानि कार्याणि ज्ञेयानि हि तथा परं ॥  
 संपूज्य परमेशानं पूर्ववच्च विलेपनं ।  
 वानरेनुहितं धूपं नैवेद्यं पायसं तथा ॥  
 वानरं सिद्धकम् ।

वसूपतोदकं चन्द्र पानन्देवाय कल्पयेत् ।  
 ताम्बूलपिटिकं जिह्वं सुवर्णञ्च समर्पयेत् ॥  
 व्यजनं पादुकां पट्टं गन्धं धूपकपट्टकं ।  
 नैवेद्यं विधिवत् भक्त्या भीमरुद्राय भक्तितः ॥  
 आचार्यपूजपरतैः कर्त्तव्यां शाठवर्जितैः ।  
 अनेन व्रतमुख्येन शिवे यान्ति लयं परं ॥  
 पितृनुद्धरते सोऽपि दशपूर्व्यान् दशापरान् ।

पितरस्तस्य नन्दन्ति रुद्रलोकेषु सन्मुख ।  
 दिव्यवर्षायुतान्यष्टौ ततो याति दिवाकरं ॥  
 मासि भाद्रपदे शुक्ले चतुर्दश्याम्बृतं चरेत् ।  
 स्नानं पञ्चामृतेनैव लघुना तु विलेपनं ॥  
 धूपञ्च वर्तुलं दद्याच्छशिलालोहिते न च ।  
 धूपान्तरसमायुक्तं तदभावे घृतान्वितं ॥  
 खण्डकाद्यान्यनेकानि मोदकाः। किरणानि च  
 घारिकावटकाद्यैव श्वेताशिशिरिणी शुभा ॥  
 शालितण्डुलप्रस्थन्तु पिष्टलिङ्गं सुवर्णकं ।  
 ताम्बूलं नियतं तदहसनासनपादुकाः ।  
 जानुनी भूमिगे कृत्वा निवेद्यान्तं पिनाकिने ॥  
 पूर्ववद्गुरुपूजा च कर्त्तव्या श्राठ्यवर्जिता ।  
 प्रयाति शिवसायुज्यं बभ्रुभिः सहितो नरः ॥  
 पितरस्तस्य मोदन्ते रुद्रलोकेषु रुद्रवत् ।  
 शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां मासि चाश्वयुजि व्रतं ॥  
 स्नानं पञ्चामृतेनैव रीचनायाः पलेन तु ।  
 विलेपनं तु शशिना तूष्णत्तैस्तु समर्चयेत् ॥  
 दीपमालाश्रतेनैव भक्ष्यं शान्द्योदनं घृतं ।  
 पूषखण्डानि सिद्धानि क्षीरया तं घनं शुभं ॥  
 पुलाककीलपत्रन्तु जातीपूगफलानि च ।  
 गन्धलिङ्गं सुवर्णं च शिवाय निनिवेदयेत् ॥  
 आचार्यस्तु ततः पूज्यो हेमवस्त्रास्त्रवाहनैः ।  
 शिवसायुज्यतां याति पिष्टभिः सह शाङ्करे ॥

चतुर्दश्यां कार्तिकस्य शुक्लपक्षे व्रतं शृणु ।  
 महाज्ञानं परं कार्यं लेपनन्तु चतुः समं ।  
 दीपमालाग्रतेनैव महावर्त्तिचतुष्टयम् ॥  
 हारेध्वजा वैजयन्ती मध्ये दिक्षु विदिक्षु च ।  
 पट्टजं चन्द्रकन्द्याद्दिक्षु मध्ये समुत्तकं ॥  
 चन्द्रकं वितानं, लघुनाम रमालं संपुटं ।  
 शीतकर्पूरः । श्रेष्ठञ्च धूपो समुगाकनामा ॥  
 विदिक्षु गुग्गुलुष्टतं ग्रतेकैकेन धूपनं ।  
 शालिपिष्टेनाष्टग्रतं पूर्वस्यान्द्रोषकल्पितं ॥  
 तत् पृष्ठे पिष्टजं लिङ्गं द्वादश्याङ्गुलसम्भितं ।  
 हेममाला समायुक्तं सुक्तादाम विभूषितं ॥  
 निवेद्य परया भक्त्या शाश्वताय प्रयत्नतः ।  
 भुक्तार्थम्बाधसुक्तार्थं ब्रूयादेवं समाहितः ॥  
 इदं तेस्तु महादेव इदमेवास्तु सिद्धिदं ।  
 निवेद्यविधिवत्सम्यक् व्रतं सम्यग्यथोदितं ॥  
 प्राप्नोत्वैश्वर्यं मतुलमिच्छन् मोक्षं सनातनं ।  
 कृतघ्नो ब्रह्महाचैव सोऽपि रुद्रपदं लभेत् ॥  
 जायते परया भक्त्या गुरुं सम्पूज्य भक्तितः ।  
 हेमवस्त्राद्यनेष मणिभिर्मौक्तिकादिभिः ॥  
 हस्तियानं प्रदातव्यं स्वभावाद्दशसम्भवम् ।  
 एवं कृतेन सम्पूर्णं लिङ्गव्रतकृते भवेत् ॥  
 इति कालोत्तरोक्तां लिङ्गव्रतम् ।

अधुना तु प्रवक्ष्यामि प्रतिमाव्रतमुत्तमम् ।  
 महास्नानं महावर्त्ति-दीपमालाशतं तथा ॥  
 विलेपनं कुङ्कुमेन धूपं वै गुग्गुलेन तु ।  
 शतेनाष्टीक्षरेणैव नैवेद्यं पयसा हृतम् ॥  
 तालमात्रा चतुर्विंशत्त्रिनेत्रा च चतुर्भुजा ।  
 शूलासिन्धु धनुर्वाणा नानाभरण-भूषितां ॥  
 शालिपिष्टमयी कार्या हृषपृष्ठे च शोभना ।  
 चामरैर्वीज्यमानन्तु शिवं तत्र प्रकल्पयेत् ॥  
 दर्पणश्चैव ताम्बूलं व्यजनं पादुकासनम् ।  
 वैजयन्तीध्वजं यानमाचार्याय प्रयत्नतः ॥  
 मासि मासि प्रकर्त्तव्यं चतुर्दश्यान्दिने दिने ।  
 कार्त्तिकन्तु समारभ्य यावदाश्वयुजावधि ॥  
 एतद्धतोत्तमं नाम प्रतिमाव्रतमीरितम् ।  
 ब्रह्महा गुरुहा यस्तु पञ्चपातक-संयुतः ॥  
 मित्रघ्नश्च हतघ्नश्च योऽपि विश्वासघातकः ।  
 सोऽपि रुद्रपदं याति त्रिसप्तकुलसंयुतः ॥  
 कीटिकीटिसहस्रन्तु शिवलोके तु मीदते ॥  
 तदन्ते जायते राजा स एको वीर्यवान् सुधीः ।  
 ज्ञानेश्वर्यमवाप्नोति शिवदीक्षाप्रभावतः\* ॥  
 परं पद्मवाप्नोति येन भूयो न जायते ।  
 एवं वोपदिशेत्तस्य भूमिदानन्तु कारयेत् ॥

\* साक्षादिति पुस्तकाकारे पाठः ।

महागजं महाश्वखा महायानमथापि वा ।

दापयेत्तु प्रयत्नेन तदन्ते व्रतमाप्नुयात् ॥

इति कालोत्तरीक्तं प्रतिमाव्रतम् ।

— — —  
नन्दिकेश्वर उवाच ।

शृणुष्व्वावहितो ब्रह्मन् वक्ष्ये माहेश्वरं व्रतं ।

त्रिषु लोकेषु<sup>१</sup> विख्यातं नाम्ना शिवचतुर्दशौ ॥

मार्गशीर्षे त्रयोदश्यां शितायामेकभोजनः ।

प्रार्थयेद्देवदेवेशं त्वामहं शरणङ्गतः ॥

चतुर्दश्यां निराहारः समभ्यर्च्य च शङ्करम् ।

सुवर्णहृषभं कृत्वा भोजये चापरेऽग्नि ॥

एवं नियमकृत् सुष्वा प्रातःकृत्वाय मानवः ।

कृतस्नानजपः पद्यादुमया सह शङ्करम् ।

पूजयेत् कमलैः शुक्लैः गन्ध धूपानुलेपनैः ॥

उमामहेश्वरं रूपं अविद्योगद्वादशौव्रतोक्तं वेदितव्यं ।

पादौ नमः शिवायेति गिरः सर्वात्मने नमः ।

ललाटन्तु त्रिमैत्राय नेत्राणि हृदये नमः ॥

मुखमिन्दु-मुखायेति श्रीकण्ठायैति कम्बरं ।

सद्योजाताय कर्णौ तु वामदेवाय वै भुजे ।

अघोरहृदयायेति हृदयश्चाभिपूजयेत् ।

स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशायेति शोदरं ॥

पार्श्वे चानन्तधर्माय ज्ञानभूताय वै कृतिं ।

१ विष्णुलोकेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

उरुचानन्तवैराग्यसिंहायेति प्रपूजयेत् ॥  
 अनन्तैश्वर्यनाथाय जानुनी चार्चयेद्बुधः ।  
 प्रधानाय नमो जह्नु गुल्फौ श्योमात्मने नमः ॥  
 श्योमकेशात्मरूपाय\* केशान् पृष्ठञ्च पूजयेत् ।  
 नमः पुण्ड्रौ नमस्तुष्ट्यै पार्वतीं चाभिपूजयेत् ॥  
 ततस्तु वृषभं हेममुदकुम्भ समन्वितं ।  
 शुक्लमाख्याम्बरयुतं पञ्चरत्नसमन्वितं ।  
 भण्डैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक् ।  
 ततस्तु विप्रान्नेन तर्पयेच्छक्तितः शुचिः ॥  
 पृषदाज्यन्तु संप्राश्य स्वपेङ्गुमावुदन्मुखः ।  
 पञ्चदश्यां ततः पूज्य विप्रान् भुञ्जीत वाग्वतः ॥  
 तद्दत्तकृष्णचतुर्दश्यामेतत्सर्वं समाचरेत् ।  
 चतुर्दशेषु सर्वासु कुर्यात् पूर्वबदचनं ॥  
 ये तु मासविशेषास्तु स्तान्निबोध क्रमादिह ।  
 मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत् ॥

आश्विनास्तेष्विति ज्ञेयं ।

शङ्कराय नमस्तुभ्यं नमस्ते करवीरक ।  
 त्राम्बकाय नमस्तेस्तु श्याणवे च ततः परं ॥  
 नमः पशुपते नाम नमस्ते शम्भवे पुनः ।  
 नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे ॥  
 नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः ।



गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ॥  
 पञ्चगव्यं तथा द्विष्वं पञ्चगोमृक्कारि च ।  
 तिलाद्य कृष्णा विधिवत् प्राशनं क्रमशः स्मृतम् ॥  
 प्रतिमासं चतुर्दश्यामेकैक प्राशनं स्मृतं ।  
 मन्दारैर्मालतीभिश्च तथा मधुरकैरपि ।  
 सिन्द्वारैरशोकैश्च मल्लिकाभिः स पाटलैः ॥  
 अक्षुष्यैः कदम्बैश्च शतपत्रा तथोत्पलैः ।  
 एकैकेन चतुर्दश्यामर्चयेत्पार्ष्वं तीपतिं ॥  
 पुनश्च कार्तिके मासि सम्प्राप्ते तर्पयेद्विजान् ।  
 अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रमाख्यविभूषणैः ॥  
 कृत्वा नीलवृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः ।  
 उमामहेश्वरं हैमं वृषभश्च गवा सह ॥  
 मुक्ताफलाष्ठकयुतं सितनेत्रपटान्वितं ।  
 सवर्षीपस्करसंयुक्तां शय्यां दद्यात्सकुम्भकां ॥  
 ताम्रपात्रीपरि पुनः शालितण्डुलसंयुतां ।  
 स्नाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय वै ॥  
 ज्यैष्ठ्ये सामविदे देयं न वक्रव्रतिने क्वचित् ।  
 गुणजे श्रोत्रिये दद्यादाचार्य्यं तत्स्ववेदिनि ॥  
 अव्यङ्गाङ्गाय सौम्याय सदा कल्याणकारिणे ।  
 सपत्नीकाय सम्पूज्य माख्य वस्तु विभूषणैः ॥  
 गुरौ सति गुरौ देयं तदभावे द्विजातये ।  
 न वित्तशायं कुर्वीत कुशं दोषात्पतत्यधः ॥  
 अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छिवचतुर्दशीं ।

सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥  
 ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदत्र वा मूत्र वा कृतं ।  
 पितृभिर्भ्रातृभिर्वापि तत् सर्वं नाशमाप्नुयात् ॥  
 दौर्घायुरारोम्यकुलाभिहृष्टि  
 रत्राक्षयामूत्र चतुर्भुजत्वम् ।  
 गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटि  
 शतं वसित्वा पदमेति शम्भोः ॥  
 न हृहस्यति रघ्यलं तदस्याः  
 फलमिन्द्रो न पितामहोऽपि वक्तुं ।  
 नच सिंहगणोप्यलं न चाहं  
 यदि जिह्वायुतकोटयोऽपि वक्तुं ॥  
 भवत्यमरवज्रवः पठति यः स्मरे हा-  
 सदा शृणोत्यपि विमत्सरः ।  
 सकलपापनिर्भीचनीं इमां शिवचतुर्दशीं ॥  
 ममरकामिनी कोटय स्तुवन्ति ।  
 तम निन्दितं किमुसमाचरेद्यः सदा ॥  
 यानाथनारी कुरुते च भक्त्या  
 भर्तारमापृच्छ्य गुरुं सुतम्बा ।  
 सापि प्रसादात्परमेश्वरस्य-  
 परं पदं याति पिनाकपाणेः ॥  
 इति मत्स्यपुराणोक्तं शिवचतुर्दशौव्रतम् ।

सनत्कुमार उवाच ।

अथोत्तमं परं ब्रह्मनपरं शृणु भद्रदं ।  
 चतुर्दश्यां महाभाग सर्व्वं रोगार्त्तिशान्तये ॥  
 ज्वरगुल्मप्लीहशूलकुष्ठातिसारसंयुतः ।  
 मर्त्ये बिल्वमिदं कार्य्यं तदार्त्तिव्यपनुत्तये ॥  
 स्नात्वा तु घृतसंकल्पः सर्व्वकामविवर्जितः ।  
 आदित्यमुपतिष्ठेत् गायत्रीञ्च जपन्मुहुः ॥  
 उदयात्पूर्व्वमारभ्य यावदस्तं गतो रविः ।  
 निराहारो जितक्रोधोतावत्तिष्ठेत्समाहितः ॥  
 रवावस्तङ्गते देवमर्चयेत् पुरुषोत्तमं ।  
 उपोष्य विधिवत् स्नात्वा तथा पर्वणि सुव्रत ॥  
 पर्वणि, पौर्णमास्यां ।

एतच्च शुक्लचतुर्दशीव्रतं, पुराणे शुक्लपक्षस्य व्रतप्रकरणे  
 पठितत्वात् ।

अर्चयित्वा यथा योग्यं परमात्मानमश्नुतम् ।  
 गायत्रीमभ्यसेत्तत्र देवदेवस्य सन्निधौ ॥  
 सहस्रं दशसाहस्रं शतञ्चापि स्वशक्तितः ।  
 अथ ताम्रमयं पात्रं सृष्ट्वा समानयेत् ॥  
 घृतेन पूर्णं तत् कृत्वा पञ्चप्रस्थमितेन च ।  
 सुवर्णं रजतं मुक्तां रक्ताब्जानि तिलांस्तथा ॥  
 अन्तर्निधाय तत् कुर्व्यात् नववस्त्रदशान्वितम् ।  
 स्थापयित्वा तु तस्याग्रे पूजनान्ते महामतिः ॥  
 तत्र मार्त्तण्डमारभ्य संपूज्य च यथाविधि ।

प्रदक्षिणं नमस्कार स्त्रीबालापैर्मुदा युतः ॥  
 स्थितः प्रकृतिमिरनिर्भेदचतुरप्रभः ।  
 नानाव्याधिसमुत्थार्त्तिं मम संशमयत्वितः ॥  
 पुरुषः पुष्कराक्षस्य सर्वांतरसमास्थितः ॥  
 परमात्मासयक्लेशं व्यपीडतु ममाश्रुत ।  
 इत्यनेनेति \* मन्त्रेण स तद्वासीतिहृत्य च ॥  
 आत्मानं दर्शयेत्तत्र यथा सुस्पष्टलक्षितं ।  
 विप्राय वेदविदुषे दरिद्राय च दापयेत् ॥  
 गुरवे दक्षिणां दत्त्वा कुर्व्याद्वाङ्मणभोजनं ।  
 भुञ्जीत बान्धवैः सार्द्धमुत्सृजेन्निग्रमानपि ॥  
 एवं कुर्वन्नरो लोके सर्वभोगविवर्जितः ।  
 सौम्यगात्रप्रवृत्तश्चै र्धिरमायुय विन्दति ॥  
 यथापः श्रमपत्वाग्निं समिद्धमतिक्रामतः ।  
 तथा व्रतमिदं ब्रह्मन् रोगाग्निं श्रमयेदिह ॥  
 नाना व्याधि भृशार्त्तानां नराणामिह सुव्रत ।  
 तत् प्रतापशमी गयीव्रतादन्यत्र विद्यते ॥

इति गारुडपुराणे क्तं गायत्रीव्रतम् ।

— ००० —

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां यदातिथ्या कर्मभवः ।  
 पूजयेत् सूर्यं विधिना उपवासित शून्यिनं ॥  
 पूर्ववत् विधिना लिङ्गव्रतात्कृतेत्यर्थः ।

कुङ्कुमेनाङ्गरागन्तु गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥  
 पायसं घृतसंयुक्तं कुर्यात् प्रस्थप्रमाणतः ।  
 भूमि दानं प्रकर्त्तव्यं शिवभक्ताय यत्नतः ॥  
 अनेन व्रतसुख्येन पृथ्वीपतित्वमाप्नुयात् ।  
 एतद्भूमिव्रतं नाम पृथ्वीपालस्तु कारयेत् ॥

इति कालोत्तरोक्तं भूमिव्रतम् ।

—000—

बृहस्पतिमघायोगं चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।  
 उपोष्य पूजयेत्तस्यां देवदेवं महेश्वरं ॥  
 महास्नानप्रचारेण महावर्त्तिपुरःसरं ।  
 अङ्गरागन्धनेन शक्तापुष्पैः प्रपूजयेत् ॥  
 धूपस्तु सफली देयः लघुना चन्द्रसंयुतः ।  
 सितवस्त्राणि वास्तञ्च आचार्याय प्रदापयेत् ॥  
 जातोफलैः प्राशनञ्च रात्रौ जागरणं हितं ।  
 एतदेवव्रतं नाम आयुःश्रीकीर्त्तिवर्द्धनम् ॥

इति कालोत्तरोक्तं देवव्रतम् ।

—000—

आश्विन्यादित्यवारितु यदि शक्ता चतुर्दशी ।  
 स्नानं विशिषतः कार्यं शिवस्य परमात्मनः ।  
 अङ्गरागं रोचनयारक्तापुष्पैः प्रपूजयेत् ।  
 कपिलाज्यं तथा क्षीरं नैवेद्यं परिकल्पयेत् ॥

शिवभक्ताय विप्राय हेमदानं प्रकल्पयेत् ।  
 प्राशनं कुङ्कुमेनैव कर्त्तव्यं साधकेन तु ॥  
 एतद्द्वयं व्रतं कार्यं भक्त्या पुत्रार्थिभिर्नरैः ।  
 पुत्रावै तस्य जायन्ते सर्व्वक्षयस्य संयुताः ॥  
 इति कालोत्तरोक्तं सूर्यव्रतम् ।

—000—

ईश्वर उवाच ।

वालहवातराणाञ्च भोगिनां स्त्रीषु वालिषी ।  
 विधानन्तेषु वञ्चामि सुच्यन्ते ते यथा सुत ॥  
 भूतायां फाल्गुणे कुर्यात् कृष्णपक्षेऽतिभक्तिः ।  
 दरिद्राणामनाद्यानामक्षमाणां विशेषतः ।  
 सर्व्वकामप्रदं कृष्ण चतुर्दशं शिवव्रतम् ॥  
 रात्रौ विशेषपूजा तु महाक्षपनसञ्चिता ।  
 महाद्वीपद्वयं देयं व्रतमष्टोत्तरं पुनः ॥  
 सघृतं गुग्गुलुं धूपं शिवं पशुपतिं यजेत् ।  
 खण्डखान्यान्यनेकानि भक्ष्याणि विविधानि च ॥  
 यथा समर्प्यते भक्त्या वित्तशाय्यं विना सुत ।  
 रात्रौ जागरणं कार्य्यं शिवस्याग्रे शिवं जपेत् ॥  
 शिवं, शिवपञ्चाक्षरं मन्त्रं ।  
 एवं व्रतधरः शम्भोः प्रभति पूज्य निर्व्वपेत् ।  
 शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्व्वमिदं जगत् ॥  
 शिवो जयति सर्व्वत्र यः शिवः सीऽङ्गमेव च ।  
 कर्मणा मनसा वाचा सुकृतं यन्नया कृतं ॥

( ८ )

न्यूनाधिकं महादेव द्रव्यमन्त्रक्रियात्मकम् ।  
 तत्सर्वं परमेशान गृह्णाण परमेश्वर ॥  
 नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यत्कृतन्तु मया शिव ।  
 तत्सर्वं परमेशान मया तुभ्यं समर्पितं ॥  
 कलात्मना तथा देव स्थितोऽसि वेदवित्पते ।  
 क्लिष्टं मे वास्तु साम्यं तत् यद्यत्त्वधिकं पुनः ॥  
 कृपया सर्वं भूतानां कुरु देव जगत्पते ।  
 न कृतन्तु मया किञ्चिद्भूतं दानादिकं क्वचित् ॥  
 अनेन व्रतमुख्येन सर्वं सम्पादितं मया ।  
 व्रतदानादिकं शम्भो त्वत्प्रसादात्त्वदाश्रया ॥  
 इदं व्रतवरं देव मया तुभ्यं समर्पितम् ।  
 दरिद्रैश्च परीतैश्च ज्ञानिभिर्योगिभिस्तथा ॥  
 बालवालिग्रहृद्दैश्च स्त्रीनरैर्व्याधिपीडितैः ।  
 प्रयत्नात् फासगुणे कार्यः शिवस्याये तु जागरः ॥  
 एतस्मिन् भूतदिवसे विशेषान्नाचर्यन्ति ये ।  
 शस्त्राभूतपतिन्लेषां भूतैश्च परिभ्यते ॥  
 फासगुणेनैव भूतायां तस्माद्भूतपतिं यजेत् ।  
 षष्ट्याश्च चतुर्दशान् व्रतान्युक्तानि सर्व्वशः ।  
 तानि सर्वाणि तेनैव व्रतान्येव कृतानि तु ॥

स्कन्द उवाच ।

व्रतस्थोद्यापनं कर्म किं कर्त्तव्यञ्च मानवैः ।  
 कौविधिः कानि द्रव्याणि कथं कार्यं वद प्रभो ॥

ईश्वर उवाच ।

नृणु वक्षुस्तु तस्मिन् लोकानां हितकाम्बया ।  
 चतुर्दशब्दं कर्त्तव्यं शिवरात्रिपूजितं शुभं ॥  
 एकभक्तं च यो दृश्यां चतुर्दशानुपोषणं ।  
 सम्पाद्य सर्वसम्भारान्मण्डपं तत्र कारयेत् ॥  
 वस्त्रैः पुष्पैः समाच्छ्रितं पट्टकूलैश्च शोभितं ।  
 तन्मध्ये लेखयेद्दिव्यं लिङ्गं ततो भद्रमण्डलं ॥  
 अथवा सर्वतोभद्रं मण्डपान्तः प्रकल्पयेत् ।  
 शोभोपशोभासंयुक्तं दीपैः सर्वत्र योज्यं ॥  
 प्राचार्यं वरयेत्तत्र ऋत्विग्भिः सहितं शुचिं ।  
 शिवरूपाय ते विप्राः पूज्याश्चन्दनपुष्पकैः ॥  
 अनुप्रातश्च तैर्विप्रैः शिवपूजां समारभेत् ।  
 अत्र च सजसं कुम्भं तस्योपरि तु विन्यसेत् ॥  
 सोवर्षं राजतं ताम्रं सृण्वश्चापि कारयेत् ।  
 वस्त्रयुग्मेन संवेष्ट्य वस्त्रपत्रैः प्रपूजयेत् ॥  
 पलेन वा तदर्धेन तदर्धाद्येन वा पुनः ।  
 उमामहेश्वरीं मूर्त्तिं पूजयेद्दृषभस्थितां ॥  
 आगच्छ देवदेवेश मर्त्यलोकं हितेच्छया ।  
 पूजयामि विधानेन प्रसन्नः सुसुखो भव ॥

आवाहनमन्त्रः ।

पादासनं कुरु प्राज्ञ निर्मलं स्वर्णनिर्मितं ।  
 भूषितं विविधैरङ्गैः कुरु त्वं पादुकासनं ॥



हृदिस्यं चिन्तयेद्देवं शुद्धस्फटिकसन्निभं ।  
 व्याघ्रचर्मपरीधानं चिन्तयेद्व्ययं हृदा ॥  
 गन्धोदकेन पुष्पेण चन्दनेन सुगन्धिना ।  
 अर्घ्यं गृहाण देवेश भक्तिं मेत्यचलाङ्कुर ॥  
 वस्त्रं सूक्ष्मं दुकूलञ्च देवानामपि दुर्लभं ।  
 गृहाण त्वमुमाकान्त प्रसन्नस्त्रं सदा भव ॥  
 श्रीखण्डं चन्दनं दिव्यं मलयचलसम्भवं ।  
 विलेपनं सुरश्रेष्ठ गृहाण परमेश्वर ॥  
 यज्ञोपवीतं सहजं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।  
 आयुष्यशुभवर्चस्यमुपवीतं गृहाण मे ॥  
 माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।  
 मया हृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यतां ॥  
 वनस्पतिरसो धूपो गन्धाढाः सुमनोहरः ।  
 आघ्रे यः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यतां ॥  
 आग्यञ्च वर्त्तिसंयुक्तं वञ्चिना योजितञ्च यत् ।  
 दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापहं ॥  
 नैवेद्यं गृह्यतां देव भक्तिं मे अचलां कुह ।  
 ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च परां गतिं ॥  
 इदं फलं मया देव स्थापित पुरतस्तव ।  
 तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥  
 पूगीपलं महादिव्यं नागवह्नीदलैर्युतं ।  
 कर्पूरेषु समायुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यतां ॥  
 हिरण्यगर्भगर्भस्यं हेमवीजं विभावसौः ।

अमन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥  
 सीमञ्च सगणश्चैव पूजयित्वा महेश्वरं ।  
 होमं कुर्यात् प्रयत्नेन रौद्रमन्त्रैर्यथाविधि ॥  
 ब्राह्मणान् पूजयेद्ब्रह्मया भोजयेच्च चतुर्दश ।  
 आचार्यञ्च सपत्नीकं वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥  
 यज्ञीपवीतवस्त्रादि दद्यात्तेभ्यः पृथक् पृथक् ।  
 गां सवक्षां सवसनां नानालङ्कारभूषितां ॥  
 दद्यादाचार्यवर्याय शिवो मे प्रीयतामिति ।  
 ततः सकुम्भां तां मूर्त्तिं सवस्त्रां हृषभस्थितां ॥  
 सर्वालङ्कारसहितामाचार्याय निवेदयेत् ।  
 व्रतमेत् कृतं यन्मे पूर्णं मे पूर्णमेव वा ॥  
 सर्व्वं सम्पूर्णतां यातु प्रसादाद्भवतां मम ।  
 इति संप्रार्थ्य तान्विप्रान् प्रणम्य च पुनः पुनः ॥  
 नाममन्त्रैस्ततस्तेभ्यो दद्यात् कुम्भान् पृथक् पृथक् ॥  
 अजैकपादद्विवृद्धो भवः शर्व्व उमापतिः ।  
 रुद्रः पशुपतिः शम्भुर्वरदः शिव ईश्वरः ।  
 महादेवो हरीभीमो नामान्ये वं चतुर्दश ॥

स्कन्द उवाच ।

एवं विधानं भूतेषु श्रुतं बहुविधं मया ।  
 पूजामन्त्रविधानेन कथयन्व पदे पदे ॥

शिव उवाच ।

श्रूयतां धर्मसर्व्वस्त्रं शिवरात्रौ शिवाचनं ।

व्रते येन विधानेन सर्गपुष्पेन कर्मणा ॥  
 कृत्वा स्नानं श्चिर्भूत्वा धीतवत्समन्वितः ।  
 स्नापयेद्देवदेवेशं मन्त्रैर्ब्रह्मसुहृद्वैः ॥  
 ततः पूजा प्रकर्त्तव्या यद्योक्तविधिना सुत ।  
 नमो यज्ञजगन्नाथ नमस्त्रिभुवनेश्वर ॥  
 पूजां गृह्ण मया दत्तां महेश प्रथमे पदे ।

इति प्रथमयामे ।

द्वितीयः ।

नमोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय नमस्ते त्रिपुरान्तक ।  
 पूजां गृह्णाथ देवेश यथाशक्तोपदक्षिणां ॥  
 यथाशक्त्युपपादितां ।

तृतीय मन्त्रः ।

वक्षोऽहं विविधैः पापैः संसारभक्त्यनैः ।  
 पातितं मोहजासैर्मा त्वं समुद्धर शङ्कर ॥

चतुर्थः ।

ततः पूजान्ते प्रतिमासं पुष्यचन्दनाक्षत दूर्वा ।  
 कुशयुतमर्घ्यं दद्यात् ।

नमः शिवाय शास्ताय सर्व पापहराय च ।  
 शिवरात्री मया दत्त गृह्णाचार्यं मम प्रभी ॥

प्रथम प्रह्वरार्घ्यमन्त्रः ।

मया कृतान्यनेकानि पातकानि च शङ्कर ।

गृहाणार्घ्यमुभाकान्त शिवरात्रौ प्रसीद मे ॥

द्वितीयप्रहरार्घ्यमन्त्रः ।

दुःखदारिद्र्यभारैश्च दग्धोऽहं पाष्वर्त्तीपते ।

मां त्वं त्राहि महादेव गृहाणार्घ्यं नमोस्तु ते ॥

इति द्वितीयप्रहरार्घ्यमन्त्रः ।

किञ्चजानासि देवेश तावद्भक्तिं प्रयच्छ मे ।

पदान्मयुगले देवदास्यं देहि जगत्पते ॥

इति चतुर्थप्रहरार्घ्यमन्त्रः ।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं यत्कृतम्तु यथा शिव ।

तत्सर्वं परमेशान मया तुभ्यं समर्पितं ॥

प्रार्थना ।

कुर्वन्ति ये वत्सरकं शिवपूजां कुरुष्व मे ।

शुभक्लातुयथाकषश्चित् सकृत्प्रयान्त्येव शिवस्यलोकं ।

व्याधोऽपियातोऽसौक्यदीशमस्यात् ॥

इति कालोत्तरे सोघापनं कृष्णचतुर्दशी व्रतम् ।

— ००० —

सुत उवाच ।

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जम्बुकं ।

पञ्चचक्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शुलपाणिनं ॥

कपालखट्वाङ्गधरं धनुषमर्धरं शुभम् ।

पिनाकधारिणं भीमं वरदन्वाभयप्रदम् ॥

भस्माश्रयालशोभाठं शषाङ्कतशेखरं ।  
 नीलजीमूत सङ्घाशं सूर्यकीठिसमप्रभम् ॥  
 प्रणिपत्य सूरः सर्वं उपासन्सुमापतिं ।  
 क्रोडते भगवांस्तत्र स्वगणैः परिवारितः ॥  
 विसृज्य देवताः सर्वा स्तिष्ठते उमया सह ।  
 दृष्ट्वा तं देवदेवेशं प्रहस्योत्फुल्ललोचना ॥  
 एकाकिनं सुरयेष्ठं पृच्छते तत्र पार्वती ॥

पार्वतीपुवाच ।

कथयस्व प्रसादेन यज्ञीप्यं व्रतमुत्तमं ।  
 व्रतानि देवदेवेश कथितानि त्वया मम ॥  
 दानधर्माश्रयनेकानि तपतीर्थान्यनेकशः ।  
 नानाविधास्त्वयादेव भ्रामिताहं त्वया पुनः ॥  
 व्रतानामुत्तमं देव भुक्तिमुक्तिप्रदायकं ।  
 तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व मम प्रभो ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि परं गुह्यं व्रतानामुत्तमं व्रतं ।  
 यत्कस्यचिदाख्यातं रहस्यं मुक्तिदायकं ।  
 येन वै कथ्यमानेन यमोपि विलयं व्रजेत् ।  
 तदहं कथयिष्यामि शृणु चेकाग्रमानसा ॥  
 माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।  
 शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया सर्वयज्ञोत्तमोत्तमा ॥  
 दानयज्ञैस्तथा यज्ञैरन्यैश्च बहुद्विषैः ।

शिवरात्रिसमं नास्ति कृत्वा यज्ञसहस्रकम् ॥  
 कृत्वा सा कलिहन्त्री च यमपद्मविनायिनी ।  
 न ते यमपुरीं वाप्सि उपोष्यन्ति शिवानिग्रहं ॥  
 भुक्तिमुक्तिप्रदां देवि सत्यं सत्यं वरानने ।  
 शिवव्रतं करिष्यंस्तु एकचित्तः समाचरेत् ॥  
 श्रीदेव्युवाच ।

कथं यमपुरीं देव वर्जयित्वा शिवं व्रजेत् ।  
 एतदेव महाचर्यं प्रत्यक्षं कुरु मे प्रभो ॥

शिव उवाच ।

शृणु देवि यथा वृत्तं कथाम्पीराणिकीं शुभा ।  
 यमशामनहन्त्री च शिवस्थानप्रदायिनी ॥  
 कथिदासीत् पुरा काले निषादद्यामिषप्रियः ।  
 प्रत्यन्तदेशवासी च भूचरो जीवभक्षकः ॥  
 मांसाहारी सदा पृष्ठे कुटुम्बपरिपालकः ।  
 स्थूलः पीनो धनुर्धारी चामाङ्गो नीलकंचुकः ॥  
 वङ्गगोधाङ्गुलित्राणो वाम बाहुः सचर्मकः ।  
 धनुर्व्यामि गृहीत्वा तु दक्षिणे शरमुत्तमं ॥  
 निर्गतोऽसौ वने दुर्गे निषादी जीवघातकः ।  
 जीववृत्तिषु सा तस्य कुटुम्बपरिपालने ॥  
 तस्य निर्गच्छमानस्य माताप्यस्त्राशिषो ददी ।  
 प्रहृष्टा मां प्रभेदेन भरणे जठरप्लव च ॥  
 शीघ्रं रक्षतु ते शक्री बाहू धनद एव च ।

हृदयं पातु ते चन्द्रयाननश्च बृहस्पतिः ।  
 उदरं पातु ते वह्निर्णितम्बं दक्षिणापतिः ॥  
 आत्मानं पातु ते मृत्युं रादित्यः सर्वमेव च ।  
 वनं गच्छ समाकीर्णं श्वापदैर्बहुभिर्वृतम् ॥  
 व्याघ्राणां दीर्घनिर्घोषैर्नादितं तद्वनं महत् ।  
 महादंष्ट्रा महाकाया दीर्घजिह्वा भयाननाः ॥  
 शार्दूलास्तत्र दृश्यन्ते वनं वीरुहशीलतं ।  
 तस्मिन् वने महादुर्गं भीषणे द्रुमसंकुले ॥  
 वनजीवविशेषैस्तु संख्यातगिरिगङ्गरे ।  
 तेनैव वृत्तियोगे च निषादः कायपीषणं ।  
 वनं गत्वा निरीक्षेत दिशः सर्वा इतस्ततः ॥  
 पदश्च पदमार्गश्च आश्रमं मृगशूकरान् ।  
 इतश्चेतश्च वै धावदामिषे लुब्धचेतसः(१) ॥  
 वनं तत् पृष्ठतः सर्वं निषादस्य गतन्निवह ।  
 न प्राप्या श्वापदाः के तु मृगशूकरचित्तलाः ॥  
 निराशो लुब्धकीतिष्ठन् वददस्तं गतो रविः ।  
 ददर्श च सरस्तत्र निर्मूलं विमलं जलं ॥  
 हंससारससंकीर्णं चक्रवाकीपशोभितं ।  
 दृष्ट्वा तु चिन्तयामास तद्भागे जीवघातनम् ॥  
 प्रकरिष्याम्यहं राक्षी जीवहृत्वां न संसयः ।  
 विमृश्य सुषिरन्देवि तद्भागाभिसुखं ययौ ॥  
 तत्र तीरं समासाद्य चतुर्दिशमितस्ततः ।

अमिता कारयामास आश्रमं त्वस्य गुप्तये ॥  
 तत्तीरे वृक्षं तालञ्च सादलं बहुपत्रकं ।  
 तस्य मध्ये महालिङ्गं तिष्ठते वरवर्षिणि ॥  
 तन्मध्ये च महावृक्षं विश्वञ्चैव वरानने ।  
 तेन वृक्षस्य पत्राणि गृह्णीत्वा मार्गशीर्षने ॥  
 क्षिप्तानि दक्षिणे भागे तानि लिङ्गस्य मस्तके ।  
 न दिवाभोजनन्तस्य आमिषेतु सुचेतसः ॥  
 प्रविष्टस्तु ततस्तत्र न निद्रां लुब्धकीकृतां ।  
 तस्य गन्धप्रभावेन नस्यन्ति सृगशूकराः ॥  
 न तिष्ठन्ति सृगास्तत्र शरघातवशानुगाः ।  
 ततस्तु सर्षरी क्षीणा उर्दते सूर्यमण्डले ॥  
 निराशो लुब्धको भूत्वा निःसृतोजालमभ्यतः ।  
 चलितो गृहमार्गेषु क्षुधात्तिलुब्धकस्ततः ॥  
 तावद्दालास्तु ते सर्वे निरीक्ष्य पिष्टमार्गगाः ।  
 निषादमपि ते दृष्ट्वा कथं रात्रिसुपखिता ॥  
 मानोतमामिषन्तात निराशाः शिशवो गताः ।  
 रुदन्ति करुणैः शब्देर्भोजनं दीयताञ्च नः ॥  
 ततस्तूष्णीं पिता भूत्वा ह्यधोवदनदुःखितः ।  
 भोजनं कुर्वन् हे स्वामिन् तस्य भार्या वचोऽप्रवीत् ॥  
 उपोषितस्त्वहोरात्रं कष्टन्तुभ्यं प्रवर्त्तते ।  
 भोजनञ्च कृतन्तेन यथा दत्तन्तु भार्यया ॥  
 धर्महीनो निषादस्तु पापात्मा जीवघातकः ।  
 अकामोजागरं रात्रौ शिवरात्र्यां वरानने ॥



पूजा तु बिम्बपत्रैस्तु सञ्जाता लिङ्गमस्तके ।  
 गृहोऽसौ काशपर्याये गृह्यते यम किङ्करैः ॥  
 शिवेन प्रेषितास्तस्य विमानवरकोटयः ।  
 शीघ्रमानीयतां व्याधो गृह्यते यमकिङ्करैः ॥  
 निर्दग्धं कल्पसन्तस्य शिवरात्र्यां न संशयः ।  
 यः पूर्वं लुब्धकोभूत्वा करोति प्राणिनां बधम् ॥  
 इति श्रुत्वा बधोदिव्यं गणास्ते गन्तुमुद्यताः ।  
 स्तुयमानाः परं देवं शिवं शान्तं निरामयं ॥  
 यावन्नच्छन्ति ते सर्वे तावत्पश्यन्ति लुब्धकं ।  
 हन्यमानं लौहदण्डैर्बहुभिर्मुष्टिभिस्तादा ॥  
 सर्वे कोलाहलं चक्रुरस्माकमितरेगणाः ।  
 परस्परं बध्यमाना ऊचुस्ते यमकिङ्कराः ॥

यम किङ्करा ऊचुः ।

नमोऽस्मामोवयञ्चैनं निषादं जीवघातिनं ।  
 यमोयावन्नपश्येत्तु शुद्धय नभवेत्ततः ॥

शिव किङ्करा ऊचुः ।

लुब्धकोऽयं पूर्वमासीत्पापिष्ठोयमकिङ्कराः ।  
 अनेन शिवरात्रिस्तु कृताकामेन कानने ॥  
 तस्माच्छिवाज्ञया सर्वे विमानैः परमागताः ।  
 यावच्छिवं न पश्याम न मुञ्चामोऽहम् नरं ॥  
 ततोऽहम् समारब्धाः खड्गमुद्गरपट्टिशैः ।

प्रवृत्तं तन्महायुद्धमन्योन्यजय काङ्क्षिणां ॥  
 भस्माङ्गसन्धयः केचित् केचिन्मूर्च्छां समाश्रिताः ।  
 जर्जरीकृतदेहास्तु क्रन्दन्ते यमकिङ्कराः ॥  
 नाहि नाहीति जल्पन्ति गतास्ते यमसादनं ।  
 निषादोऽपि गणैर्नीतो यत्र देवो महेश्वरः ॥  
 दृष्टिमात्रस्तु देवेन निषादोगणताङ्गतः ।  
 स्थितोऽसौ दिव्यदेहस्तु दिव्याभरणभूषितः ॥  
 तस्य दत्तं महेशेन विमानं सार्वकामिकं ।  
 रुद्रकन्यासमाकीर्णं पुष्पमालाविभूषितं ॥  
 नानातूर्यसमायुक्तं नानारत्नोपशोभितं ।  
 क्रीडते सुचिरं कालं यावदाभूतसङ्गवं ॥  
 एवं लम्बवरो भूत्वा क्रीडते यमशासने ।  
 अथातो यमदूतास्तु धर्मराजपुरोगताः ॥  
 रुधिरारुण सर्वाङ्गाः रुदन्ते भग्नमस्तकाः ।  
 जर्जरीकृतदेहा स्ते भिन्नगाथाः समन्ततः ॥  
 दृष्ट्वा धर्मोदत्येतत्\* कोसौ कालेन योजितः ।  
 प्रिययिथ्याम्पहं देवं काममेतद्वि कथ्यतां ॥  
 केन चैवच युष्माकं कृतं विविधघातनं ॥  
 यमदूता जघुः ।  
 शृणु राजन् यथावृत्तं युद्धं शिवगणैः सह ।  
 नीतोऽसौ पापकर्मा च निषादो जीवघातकः ॥  
 अस्माभिर्गृह्यमासस्त गणैः शैवैर्बलाङ्गतः ।

\* इदानीं धर्मराजनेति पुरुषान्तरे पाठः ।

तच्छ्रुत्वा कुपितो धर्मः पापिष्ठो वशगो मम ॥  
कथं शिवपुरं याति चित्रगुप्त विचारया ।

चित्रगुप्त उवाच ।

इदितं पुस्तकं येन न किञ्चित् सुकृतं कृतं ।  
धर्मबुद्धिं न जानाति धर्माधर्मं न विन्दति ।  
एतन्मे निश्चितं देव सत्यं सत्यं वदाम्यहं ॥

शिव उवाच ।

इति ज्ञात्वा निषादस्य चित्रगुप्तनिवेदितं ।  
चरित्रं धर्मराजस्तु स्तागतं वाक्यमवचीत् ॥

धर्मराज उवाच ।

नाहमद्य दिनादूर्ध्वं जन्तोयिन्तां करोमि तु ।  
गत्वा समर्पयिष्यामि व्यापारन्तु शिवस्य च ॥  
एवमुक्त्वा ततः शीघ्रं चित्रगुप्तो यमस्य सः ।  
गत्वा च देवदेवेशं यमस्तोतुं प्रचक्रमे ॥

यम उवाच ।

नमस्ते लोकनाथाय महाबलविनाशन ।  
साक्षात् कालविनाशाय कालनिर्देशिने नमः ॥  
त्रिनेत्राय नमस्तुभ्यं नमस्ते शूलधारिणे ।  
कपालिने नमस्तुभ्यं नमः खट्वाङ्गधारिणे ॥  
नमो उमुहहस्ताय शक्तिसर्पनिधाय च ।  
नमोऽस्तु गीलकण्ठाय हस्तिचर्मधराय च ॥

नमस्त्रै लीक्यनाशाय\* महापातकनाशने ।  
 कालकूटविनाशाय नमः कामविदाङ्घ्रिने ॥  
 अशोध्यं शोधसे देव एतस्मै कौतुकं महत् ।  
 गृहापापी निषादस्तु यतः सन्तारितस्त्वया ॥  
 न पापानां करिष्यामि चिन्तां वै त्रिपुरास्तक ।  
 इत्युक्त्वा देवदेवे तु प्रणामी दण्डवत् कृतः ॥  
 दण्डमुद्राञ्च पादाद्ये ख्याप्य तूष्णीं बभूव ह ॥

ईश्वर उवाच ।

किमर्थं दण्डमुद्रां त्वं त्यजसे धर्मवर्धन ।  
 केनापराधितो<sup>†</sup> वत्स मानस्ते केन मर्दितं ॥  
 धर्मराज उवाच ।

त्वद्गणैर्देवदेवेश गत्वा पापस्य कारणे ।  
 मदीयाः किङ्करा देव बहुधा घातिता भृशं ॥  
 पापकर्मा दुराचारी निषादो जीवघातकः ।  
 धर्मी नोपार्जितस्तेन जन्मप्रभृति ईश्वर ॥  
 अयोग्यं देवदेवेश त्वद्गणैर्बहुधा कृतं ।  
 गृह्णीतः शिवपुरीं नीतः स पापी न हि मेऽर्पितः ॥  
 तेनाहमागतो देव त्यक्त्वा मुद्रां चरास्यहं ।

शिव उवाच ।

वदन्त्येवं शमे गीरिं प्रहस्याह मया कृतम् ।  
 निषादः पापकर्माच्च जीवेत् प्राणिवधेन च ॥  
 कदाचित् स वनं गत्वा न किञ्चित् प्राप्तवांस्तदा ।

● यद्विद्विष्टकारक इति पुस्तकाक्षरं पाठ ।

† कनापमानित इति पुस्तकाक्षरं पाठ ।

दिनान्ते च निरागोऽसौ च्छुटत्युक्तो जलान्तिके ॥  
 अकरोदाश्रमं मध्ये महाजाख्यां तदा निशि ।  
 जालिमध्ये महालिङ्गं तिष्ठते चिरकालिकम् ॥  
 मुख्याथे विस्वपत्राणि गृह्णीत्वा मार्गतोऽक्षिपत् ।  
 कथञ्चिद्देवसंयोगाद्वायुना लिङ्गमूर्धनि ॥  
 निक्षिप्तानि प्रेतराज कीमलान्यप्यकामतः ।  
 शिवरात्रिः कृता तेन जाग्रतामृतज्ञेयना ॥  
 शिवरात्रिप्रभावेन स गतो ममशासनं ।  
 गणत्वमक्षयं दिव्यं मोक्षदं शिवशासने ॥  
 स मुक्तो रुद्रवन्नित्ये भोगान् भुङ्क्ते सदा दिवि ।  
 भोगान्ते परमं याति शिवं परमकारणं ।  
 शिवरात्रिप्रभावेन आगतो मम शासने ॥  
 तद्गृहाण महाधर्मं दण्डं मुद्राञ्च सर्व्वदा ।  
 पापिष्ठो ये सदा मर्त्या न ते यान्ति ममान्तिकं ॥  
 अद्यप्रभृति धर्मेश अवमानञ्च मा कृथाः ।  
 गृह्ण गृह्ण महाधर्मं मुद्रां दण्डं यदृच्छया ॥  
 पालनाय स्वधर्मस्य पाहि सत्यं महायम ।  
 स्वगृहं गम्यतां शीघ्रं दण्डं गृह्ण समुद्रकं ॥  
 ताडयन् पापकर्माणं पालयन् वै स्वधर्मिणं ।  
 एव मुक्तो धर्मराजो गतोऽसौ स्वगृहं शुभं ॥  
 एवं देवि मयाख्यातं शिवरात्रिर्महाव्रते ॥  
 पार्वत्युवाच ।  
 अकामीलुब्धको देव कृत्वा ह्यमरताङ्गतः ।

प्राथम्यमेतद्देवेभ्य ममाद्यैतत्तरं महत् ॥  
 कामतः शास्त्रदृष्टेन यः करोति शिवव्रतं ।  
 तदहं श्रेतुमिच्छामि प्रसादाद्ब्रह्ममर्हसि ॥  
 शिव उवाच ॥

शृणु देवि महाभागे सर्वतथाकवाचिणि ।  
 शिवरात्रिप्रभावश्च कथक पापकर्षणाम् ॥  
 माघमासे तु यां कृष्णा फाल्गुनादी चतुर्दशी ।  
 सा तु पुण्या तिथिर्ज्ञेया सर्वपापविनाशिनी ॥  
 शान्तात्मर क्रीधहीनस्तु तपस्वी धनसूयकः ।  
 तस्मै देयमिदं देवि गुरुपादानुगे सदा ॥  
 अन्यथा यो ददातीदं स दाता नरकं व्रजेत् ।  
 वर्षे वर्षे महादेवि नरोनारी पतिव्रता ॥  
 वीक्षयामि जगत् सर्वं क्रीमां भक्त्या प्रपूजयेत् ॥  
 शिवमन्त्रैर्जपं कृत्वा होममर्चनदीपनम् ॥  
 जागरं शिवरात्र्यान्तु शिवं पश्येत् समाहितः ।  
 मम भक्तो जनो देवि शिवरात्रेरुपोषकः ॥  
 गणत्वमद्यं दिव्यमद्यं शिवशासनम् ।  
 सर्वं कृत्वा तु भजते भोगानमृतसम्भवान् ॥  
 एवं द्वादशवर्षाणि शिवरात्रेरुपोषकः ।  
 योमां जानरते रात्रिं मनुजः स्वर्गमाप्नुयात् ॥  
 अज्ञत्वा मां न जानाति व्रतमितदुदाहृतं ।  
 शिवश्च पूजयित्वा यो जागर्ति च चतुर्दशीं ॥

• मेरुवर्षाक्षेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

( ११ )

मातुः पयोधररसं न पिबेत्कदाचन ।  
 यदीच्छेच्चक्षयान् भोगान् दिवि देवसमः पुमान् ॥  
 आममोक्तविधिं कृत्वा प्राप्नोति सकलं फलं ॥  
 आदौ मार्गशिरि मासि दीपोत्सवदिनेऽपि वा ।  
 गृहीयान्माघमासे वा द्वादशैवमुपोषणं ॥  
 निशि जागरणं कृत्वा दीपद्योतितदिङ्मुखः ।  
 गीतवाद्यविनोदेन पूजा जाप्यैः शिवेरतः ॥  
 एवं द्वादशवर्षं तु द्वादशैव तपोधने ।  
 श्रीचार्यं शिवशास्त्रज्ञं ब्राह्मणांश्च विशेषतः ॥  
 आमन्त्र्य परया भक्त्या गृहं गत्वा तपोधनान् ।  
 आचार्यं \* वरयित्वा तु गृहीयाच्चरणद्वयं ॥  
 आगच्छ मे गृहं तात कृतकृत्यं गृहं कुरु ।  
 आमन्त्र्या निशि नानेवं प्रभाति विमले पुनः ॥  
 गृहीभ्यर्चालिङ्गन्तु स्यावरं जङ्गमं पुनः\* ।  
 पञ्चाशतेन दिव्येन स्नाप्य\* शोहर्त्तनादिभिः ॥  
 स्नापयेद्द्वारिकुम्भानां सदृशेण शतेन वा ।  
 पञ्चाशता तदर्हेन स्नापयेच्छीतलेन तु ॥  
 चन्दनेन विलिप्याथ स्यावरं जङ्गमं तथा ।  
 शतपत्रैर्जातिपुष्पै रर्चयेद्विल्वपत्रकैः ॥  
 दीपान् दिक्षु च सर्वांसु प्रज्वाल्य सघनांस्तथा ।

- 
- आचार्यं भक्तिपुत्रस्तु गृहीयाच्चरणद्वयमिति कृषित् पाठः ।
  - गृहीतीभयर्चिङ्गन्तु स्यावरं जङ्गमं पुन इति पुस्तकान्तरे पाठः ।
  - घृतेनाभ्यर्च्य यत्नेन तुमन्मैर्मांस्त्रकादिभिरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

सघनान् सकर्पूरान् ।

नैवेद्यमपि भस्माद्य क्षीरखण्डसमण्डकान् ।  
 गुडाद्यं लड्डुकाद्यैव अत्र च कचिदं बहु ॥  
 निवेद्येत्तद्यैतानि गुरुदेवतपस्विनां ।  
 देवाद्ये तु गुरुं पूज्य कृत्वा मण्डलकं शुभम् ॥  
 सुसूक्ष्माणि च वस्त्राणि शय्यां सोपस्करां तथा ॥  
 हादशैव तु गा दद्यात् परिधानादिकं तथा ।  
 अथवा दक्षिणामेव प्रदद्यात् जुहुयात्तिलान् ॥  
 दत्त्वा च भोजयेत्सर्वान् गुरुं यैव तपस्विनः ।  
 पश्चात् क्षमापयेदेवं प्रीयतां मे महेश्वरः ॥  
 सर्वं चैव तथाचार्य्यं शिवव्रतपरायणे ।  
 गन्धादिविधिः सर्वानन्यास्तत्र समागतान् ॥  
 दक्षिणाभिश्च कुम्भैश्च नवाग्रेश्च प्रपूजयेत् ।  
 एवं कृत्वा महादेवि न भूयो देहमाप्नुयात् ॥  
 यदासौ म्रियते देवि शिवलोकं व्रजेन्नरः ।  
 तस्मान्न व्यवते स्थानात् कल्पकोटिशतैरपि ॥  
 अथातः कालपर्याये द्रष्टुं याति स्वयम्भुवम् ।  
 सहितो लोकपालैश्च विमानैः सर्वकामिकैः ॥  
 ततः पश्येन्महादेवं नानागणसमाहृतं ।  
 तं दृष्ट्वा स्तौति देवेशं शिवं त्रिभुवनेश्वरम् ॥  
 नमस्तुभ्यं जगन्नाथ ललाटे चन्द्रशिखरः ।  
 नमस्ते उमयायुक्त भुक्तिमुक्ति प्रदायक ॥  
 नमस्ते कामदहन त्रैलोक्यव्यापिने नमः ।



नमस्ते कालीयकालभीतीस्त्रि देव शङ्कर ॥  
इति स्तुतोभैरवस्तु ददाति वरमीक्षितं ।  
भैरव उवाच ।

तुष्टोऽहं तव भक्तस्य शिवरात्रेरुपोषणात् ।  
वरं ददाम्यहं तुभ्यं देवदानवदुर्लभं ॥  
एताः कन्या महादिव्या स्त्रिनेत्राश्चतुर्भुजाः ।  
रूपधौवनसम्पन्ना पीनीव्रतपयोधरा ॥  
हेमगौर्या महातेजा संयुक्ताः सूर्यवर्चसः ।  
देवाङ्गवस्तसञ्चक्षा चन्द्रनागरुचर्चिताः ।  
सर्वलक्षणसम्पन्नाः कुण्डलैर्द्योतिताननाः ।  
एवं विधा मया दत्ता मनस्त्रिन्यः सुमध्यमाः ॥  
विमानकोटिसंयुक्ताः सर्वाभरणभूषिताः ।  
क्रीडस्वच महाभाग गणस्त्वं मम पुत्रक ॥  
सर्वगामी भवाद्येह लोकलोकेश्वराचरं ।  
तुष्टोऽहं तव भक्तस्य शिवव्रतरतस्य च ॥  
रुद्रलोके तु या कन्यास्त्रिनेत्राश्चतुर्भुजाः ।  
अतीव भर्तृभक्ताश्च यथाहमुमया सह ॥  
ताभिः सार्धं महाभाग भुञ्ज्व भोगान् यद्येषितान् ।  
कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥  
अस्ते व्रतप्रभावेन शिवसायुज्यतां व्रज ।  
सर्वव्यापी भवत्वश्च स्त्रीयसे परमे पदे ॥  
परात्परतरं नास्ति शिवरात्रिव्रतात्परम् ।

\* कुण्डलैरित पुस्तकाकारे पाठः ।

न पूजयति देवेशं रुद्रं त्रिभुवनेश्वरं ॥  
 जन्तुर्जन्मसहस्रेषु भ्रमते नात्र संशयः ॥  
 यदा तद्भावसंयुक्तः स रुद्रगणतां व्रजेत् ।  
 तत्र दत्तं हुतं जप्तमर्चनं गुरुपूजनं ॥  
 जागरः शिवरात्र्यां तु सर्व्वं तच्चाक्षयं भवेत् ।  
 कथित् पुण्यविशेषेण व्रतहीनोपि यः पुमान् ॥  
 जागरं कुरुते तत्र स रुद्रसमतां व्रजेत् ।  
 सूर्य्यग्रहे कुरुक्षेत्रे हिमवत्कुरुजाङ्गले ॥  
 शिवरात्र्यां तथा भक्त्या दत्तं भवति चाक्षयं ।  
 अशुण्डितव्रतो योहि शिवरात्रिमुपोषयेत् ॥  
 स सर्व्वकाममाप्नोति ब्रह्मेण सह मोदते ।  
 शिवरात्रिदिने ह्यसं तच्चा भवति चाक्षयं ॥  
 अशुण्डितव्रतो योहि शिवरात्रिमुपोषयेत् ।  
 सर्व्वकाममनः पूर्णः क्लीङ्गते शिवसन्निधौ ॥  
 धन्यास्ते मानवा लोके शिवरात्रिपरायणाः ।  
 अर्णवा यदि शृण्वन्ति क्षीयते हिमवानपि ॥  
 मेरुमन्दारलङ्काय योशैली विम्ब्यएव च ।  
 चलन्ते नेकदा सर्व्वे नियतं हि शिवव्रतं ॥  
 अतस्तस्यां त्रयोदश्यां कृष्णायामेकभुक्त्वरः ।  
 मन्त्रेणानेन गृह्णोयान्नियमं भक्तिमान्तरः ॥  
 शिवरात्रिव्रतं स्मृतत् करिष्येहं महाफलं ।  
 निर्विघ्नमस्तु मे चात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते ॥  
 रात्रौः प्रपद्ये जननीं शृङ्गां चैव समाहितः ।

गृह्णीयाद्वाङ्मणस्त्वेवं नियमं वेदविद्भिर्भो ॥

शिवरात्रि व्रतमित्यनेन मन्त्रे ण शूद्रादिर्नियमं गृह्णीयात् ब्राह्म-  
णादिषु ।

रात्रौ प्रपद्ये जननीं सर्वमृतनिवेशनीं ।

भद्रां भगवतीं कृष्णां विश्वस्य जगतो' निशां ॥

संवेशनीं संयमनीं ग्रहणक्षत्रमालिनीं ।

प्रपन्नोऽहं शिवां रात्रौ भद्रे पारमशीमहि ॥

भद्रे पारमशीमन्तोत्तमः ।

इति मन्त्राभ्यामृग्वेदसिद्धाभ्यां नियमं गृह्णीयादित्यर्थः ।

शिवमिष्ट्यागुरुं दृष्ट्वा स्वाचान्तः शचिरात्मवान् ॥

संकल्पैवं व्रतं कुर्यात् पूर्वद्युः प्रातरेवच ।

ततोऽहश्चरमे भागे स्वगायत्रा ह्यतन्द्रितः ॥

स्नानं कृष्णतिलैः कुर्याद्गृहे वाथ जलाशये ।

रम्ये निशामुखे गच्छेच्छिवस्यायतनं व्रती ।

दिनान्ते स्नपनं कुर्याच्छिवं नाम्ना प्रपूजयेत् ॥

धूपनैवेद्यगन्धैश्च नृत्यगीतैः सदीपकैः ।

शङ्खचक्रनिनादैश्च कुर्यात् पुस्तकवाचनं ॥

द्वितीये प्रहरे चैव नाम्ना शङ्करमर्चयेत् ।

पूर्वोक्तिन विधानेन पूजयेत्परमेश्वरम् ॥

तृतीये प्रहरे देवं नाम्ना महेश्वरं तथा ।

यामे चतुर्थे सम्प्राप्ति रुद्रं नाम्ना प्रपूजयेत् ॥

एवं हि भक्तियुक्तश्च जागरं कारयेन्नशि ।

सकलं फलमाप्नोति सत्यमेतद्वरानने ॥

उषः स्नानं जपो होमः भोजयेच्छिववत्सलान् ।  
 खितान् कुम्भान् प्रदद्याच्च यथाशक्त्या सदन्विषान् ॥  
 पूजयेद्वाङ्मणाम् भक्त्या क्रते माहेश्वरे स्थितान् ।  
 वाचयेच्छिवशास्त्रञ्च स गच्छेच्छिव मन्दिरं ॥  
 उपोष्य पुण्यकर्माद्यो नियतं स्वर्गगामिनः ।  
 शिवव्रतस्य चाख्यानं यः पठेच्छिवसन्निधौ ॥  
 रमते शिवलोके च यावदिन्द्रासत्सुर्दश ।  
 एवं देवि मयाख्यातं शिवरात्रेर्महाव्रतम् ॥  
 शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ।  
 इति श्रीस्कन्दपुराणोक्तं सोद्यापनं शिवरात्रि व्रतं ।

—000@000—

कैलासशिखरे रम्ये नानाधातु विचित्रिते ।  
 नानाद्रुमलताकीर्णे नानारत्नोपशोभिते ॥  
 अक्षरोगणसङ्घीर्णे सिद्धगन्धर्वसेविते ।  
 क्रीडते भगवांस्तत्र गणैः स्वैः परिभ्ररितः ॥  
 नन्द्यादयोगणास्तत्र क्रीडन्ते शिवसन्निधौ ।  
 कीतूहलं परं तत्र पञ्चशब्दनिनादितं ॥  
 वीणाविणुमृदचैश्च पञ्चचैश्च तद्या गिरि ।  
 देवकन्यासमाकीर्णं तं गिरिं सुमनोहरं ॥ ,  
 प्रसादात्तत्र तिष्ठन्ति सौवर्णाः सुमनोहराः ।  
 ध्वजमालाकुलं रम्यं कैलासं सर्व्वदेवतैः ॥  
 विशुद्ध्य देवताः सर्वाः रमते चोमया सह ।  
 तत्र स्थितं महादेवं उमा पृच्छति शङ्करम् ॥

उभो उवाच ।

देव देव जमनाथ सर्वलोक नमस्कृत ।  
 कृत्वा प्रसादं देवेश कथयत्व मम प्रभो ॥  
 नमो नमो महादेव स्वस्थं तिष्ठति सर्वदा ।  
 उद्दिगस्तु महाशित्ते कस्मान्मे परिवर्त्तते ॥  
 न मया हि महादेव कृतं किञ्चिच्छुभं व्रतं ।  
 कृत्वा प्रसादं देवेश व्रतं मे कथ्यतां प्रभो ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि परं गुह्यं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।  
 यत्र कस्यचिदाख्यातं रहस्यं मुक्तिदायकम् ॥  
 येन वै कथ्यमानेन यमोपि विलयं व्रजेत् ।  
 तदङ्गं कीर्त्तयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः सदा ॥  
 माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।  
 शिवरात्रिस्तु विज्ञेया सर्वयज्ञोत्तमा तिथिः ॥  
 दानयज्ञैस्तपोयज्ञैरन्यैश्च बहुदक्षिणैः ।  
 शिवरात्रिसमं नास्ति कृत्वा यद्भ्रसहस्रकम् ॥  
 न ते यमपुरस्थास्ते यैः कृतियं शिवप्रदा ।  
 भुक्तिमुक्तिप्रदा देवि सत्यं सत्यं वरानने ॥

देव्युवाच ।

कथं यमपुरीं देव वर्जयित्वा शिवं व्रजेत् ।  
 एतदेव महाशर्थं प्रत्ययं कुरु मे प्रभो ॥

शिव उवाच ।

शृणु देवि प्रयत्नेन कथां पौराणिकीं शुभां ।

मम शासनं हंत्री च शिवलोकप्रदायिनी ॥  
न ते यमपुरं याति यैः कृतेयं शिवप्रदा ।  
मृणु देवि महासूर्यं यज्जातं शिववक्त्रभे ॥  
आसीद्राजा विदेहायां प्रजापालनतत्परः ।  
सुधर्मा नाम विख्यातः सदा परमधार्मिकः ॥  
पृथिव्यां सर्वे राजानो वर्तन्ते वशवर्तिनः ।  
तस्य राज्ये न वै कश्चित् व्याधितो दुःखितोऽभवत् ॥  
साधून् पालयते राजा पुत्रवत् सुरसुन्दरि ।  
एवं गुणविशिष्टस्य तस्य राज्यः प्रिया शुभा ॥  
भार्या तिलोत्तमा नाम सर्वैः समुदिता गुणैः ।  
रूपलावण्यसंयुक्ता स्थिरशौचनसंस्थिता ॥  
हंसकीकिलसम्भाषा मत्तमातङ्गगामिनी ।  
यथा रूपा तथा शीला तस्य भार्या महीपतेः ॥  
भर्तुः प्रियहिते युक्ता भर्तुः यैव हि वक्त्रभा ।  
या य रम्या परा भार्या शतमाहस्रसम्भिताः ॥  
सर्वाम्ना गुणसंयुक्ता दास्य एव व्यवस्थिताः ।  
एवं गच्छति काले तु कस्मिंश्चित् सुरसुन्दरि ॥  
अतः परं स्वधर्मात्मा जगाम रिपुमर्दन ।  
दृष्ट्वा तिलोत्तमा देवी सर्वैः समुदिता गुणैः ॥  
आगच्छन्तं ततो दृष्ट्वा राजानं रिपुमर्दनम् ।  
ततश्च स्वयमुत्थाय ददौ राजासनं तदा ॥  
वन्दत्येवं ततो राज्ञी शिवेति च पुनः पुनः ।  
उपविष्टा ततो राज्ञः समीपे वशवर्तिनी ॥

स च राज्ञा तदा राज्ञ्या शिवेति समुदीरितं ।

श्रुत्वेति शेषः ।

सम्भार प्राप्तानं कर्म अन्यजन्मनि यत्कृतं ।  
 तत्याजासौ तत स्मृत्वा ताम्बूलं करसंस्थितम् ॥  
 चकार मनसा राजा सङ्कल्पं शिवपूजने ।  
 ततः प्रयच्छ सा देवी किमिदन्त्यागकारणं ॥  
 यदि वक्ष्यसि मे न त्वं मरिष्यामि तवाग्रतः ।  
 सोऽपि राजा ततो देवीं मरणे कृतनिश्चयां ॥  
 विज्ञाय कथयामास पूर्वजन्मनि चेष्टितं ।  
 शृणुष्व वाहिता भूत्वा वचनं सुरसुन्दरि ॥  
 श्रुत्वा त्वयेरितं वाक्यं शिवनामसमन्वितं ।  
 स्मृतं मे सर्वचरितं पूर्वजन्मनि यत्कृतं ॥  
 श्रूयतामभिधास्यामि सावधाना भव प्रिये ।  
 अहमासं पुरा वैश्यः स्वधर्मनिरतः शुचिः ॥  
 कालेन गच्छता देवि पूर्वजन्मवशेन च ।  
 स्वधर्मनिरतस्यापि चौर्यं मतिरजायत ॥  
 निशानिष्क्रमणं कृत्वा चौर्यं कर्तुमहं गतः ।  
 तस्मिन् काले शुभे देवि माघमासोऽभवत्तदा ।  
 ततश्चैवासिते पक्षे शिवयोगोऽभवत्तदा ॥  
 चतुर्दशी तिथिश्चासौष्णिकवरात्रि स्तु सा स्मृता ।  
 मम वै भ्रममाणस्य पक्षरात्रमभूत्तदा ॥  
 भ्रमता हि मया दृष्टः समवायो जनस्य व ।  
 जागरं तु प्रकुर्वाणः शिवस्याग्रतने शुभे ॥

अन्तरन्तु समासाद्य उपविष्टस्तत क्षणं ।  
 कस्यचित् गृहमेधिन्याः कर्णसंस्थञ्च कुण्डलं ॥  
 हृत्वा पलायमानस्तु दृष्टोऽहं रक्षपालकैः ।  
 ततस्ते तद्धिताः सर्वे खड्गपाणिधनुर्धराः ॥  
 तत स्त्रिकेन क्रुडेन शिरच्छिन्नं महासिना ।  
 तद्गयाञ्च मया तत्र मुखे क्षिप्तन्तु कुण्डलं ॥  
 ततश्च कर्मणा तेन रात्रौ जागरणेन च ।  
 चौर्येण च कृते नापि राजाहं स बभूव ह ॥  
 ततश्च जातिस्मरणं जातं मम तिलीप्तमे ।  
 शिवयोगस्तु चाद्यैव माधमासस्तु शोभने ॥  
 चतुर्दश्या तिष्ठियाद्य ताम्बूलं तन्मयोज्झितं ।  
 एतच्छ्रुत्वा च सा देवी प्राचाय्यं परमं महत् ॥  
 उवाचैनं तदा राज्ञो विस्मयं परमं गता ।  
 यदि मे प्रत्ययं कश्चिदुत्पादयसि भूमिप ॥  
 तदा जीवामि नृपते नान्यथेयं प्रतारणा ॥  
 एतच्छ्रुत्वा तदा राजा उवाच सुरसुन्दरि ॥  
 एतदेव शिरो मे च पश्येदं कूपसंस्थितं ।  
 कालेन कूपः पूर्णायं लोष्ट्रैश्च तृणसञ्चये ॥  
 उत्थाय च गतौ तत्र दम्पती विस्मयान्विता ।  
 खनयित्वा ततो देव्यै दर्शयामास तच्छिरः ॥  
 कुण्डलन्तु मुखे दृष्ट्वा विस्मयं परमं गती ।  
 ततस्तु दम्पती तत्र चक्रतुर्नियमं परं ॥  
 उपवासस्य नियमं तथा जागरणस्य च ।



शिव उवाच ।

एव हि माघमासे तु संप्राप्ते सुरसुन्दरि ।  
 तद्भ्रतं जागरं चैव कुर्यात् पूजनमेव च ॥  
 ततश्च भगवानोशस्तुष्टी भवति तत्क्षणात् ।  
 कालेन गच्छता तौ तु पुत्रपौत्रसमन्वितौ ॥  
 संपूर्णे च तयोः काले मरणं समुपागतौ ।  
 युग्मन्तु परमं लोके शिवभक्तिसमन्वितौ ॥  
 शिवरात्रिप्रभावेन दम्पती शिवसन्निधौ ।  
 शिवरात्रिभिमान्देवि यः करोति नरो भुवि ॥  
 सर्वं पापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।  
 ब्रह्मिष्ठा कथिता देवि शिवरात्रिस्तवाग्रतः ॥  
 सर्वपापहरा पुण्या सर्व तीर्थफलप्रदा ।  
 यः करोति नरो देवि शिवरात्रिमिमं शुचि ॥  
 सर्वं पापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।  
 य इमां शृणुयान्नित्यं शिवपात्रिकथां नरः ॥  
 कृता तेन महादेवि शिवरात्रिर्न संशयः ।

इति श्रीस्कन्दपुराणे शिवयोगयुक्तशिवरात्रिव्रतमाद्यात्म्यं ।

—000—

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुं ।  
 पञ्चवक्त्रं दशभुजं त्रिनेत्रं शूलपाणिनं ॥  
 कपालखट्वाङ्गधरं खड्गखेटकधारिणं ।  
 कपालधारिणं भीमं वरदञ्चाभयप्रदं ॥  
 भस्मांगव्यालशोभाढं शशाङ्कतशिखरं ।

नीलजीमूतसङ्काशं सूर्यकीटिसमप्रभं ॥  
 दृष्ट्वा तन्देवदेवशं प्रहस्योत्फुल्ललोचना ।  
 देवी पप्रच्छ भर्तारं शङ्करे लोकशङ्करं ॥  
 देव्युवाच ।

कथय त्वं प्रसादेन यद्गोप्यं व्रतमुत्तमम् ।  
 यत्कृत्वा देवदेवेशः पापहानिः प्रजायते ॥  
 श्रुतानि देवदेवेश व्रतानि तिथिनियमं ।  
 दानधर्माख्यनेकानि तपस्तीर्थान्यनेकयः ॥  
 न!स्ति मे निश्चयो देव भ्रामिताहं त्वया पुनः ।  
 तस्माद्दस्व देवेश एकं निःसंशयं व्रतं ॥  
 भुक्तिमुक्तिप्रदञ्चापि सर्वपापक्षयं करं ।  
 तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुनि ॥  
 ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि परं शुद्धं व्रतानामुत्तमं व्रतम् ।  
 कस्यचिन्न समाख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां ॥  
 यस्य श्रवणमात्रेण पातकं विलयं व्रजेत् ।  
 तदहं कीर्त्तयिष्यामि शृणुष्वेकमनाः प्रिये ॥  
 माघास्ते यक्षुलेपचे सदा कार्य्या चतुर्दशमी ।  
 शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया सर्वयज्ञोत्तमोत्तमा ॥  
 दानैर्यज्ञैस्तपोभिश्च व्रतैर्व्यङ्गुविधैरपि ।  
 तीर्थैश्चापि न तत्पुण्यं यत् पुण्यं शिवरात्रितः ॥  
 शिवरात्रिसमं नास्ति व्रतं पापविनाशकत् ।  
 अज्ञानात् ज्ञानतोवापि कृत्वा मुक्तिमवाप्नुयात् ॥

सर्वमाङ्गल्यकरणी सर्वाशुभविनाशिनी ।  
 मृतास्ते नरकं यान्ति यैरेषा न कृता क्वचित् ॥  
 सर्वमङ्गलशीला च सर्वाशुभविनाशिनी ।  
 भुक्तिमुक्तिप्रदा चैषा सत्यं सत्यं वरानने ॥

पार्ष्वत्युवाच ।

कथं यमपुरे मार्गं त्यक्त्वा देवं व्रजेन्नरः ।  
 एतन्मे महदाश्चर्यं प्रत्ययं कुरु शङ्कर ॥

शिव उवाच ।

शृणु देवि यथावृत्तं कथाम्बौराणिकीं शुभाम् ।  
 यमशासनहन्त्री च शिवशासनदायिनी ॥  
 कश्चिदासीत् पुरा कल्पे निषादशामिषप्रियः ।  
 प्रत्यन्तदेशवासी च भूधरासन्नभूधरः ॥  
 सीमान्ते सर्वदा तिष्ठेत् कुटुम्बपरिपालकः ।  
 तन्वापीनोधनुर्धारी श्यामाङ्गः कृष्णकञ्चुकः ॥  
 बह्वगोधाङ्गुलिषाणः सदैव मृगघातकः ।  
 एवम्विधी निषादोऽसौ चतुर्दश्यान्दिनोदये ॥  
 स हत्यार्थं वणिग्भिश्च देवतायै निरुन्धितः ।  
 तेनापि देवतादृष्टा जनानां वचनं श्रुतम् ॥  
 उपवासरतानाञ्च जल्पतां शिवशिविति च ।  
 दिनान्ते स तदा मुक्तः प्रातर्द्रव्यं प्रदूयतां ॥  
 ततोऽसौ धनुरादाय दक्षिणेन गतः स्वयम् ।  
 जगाम च वनोद्देशं जनहासश्चकार ह ॥  
 शिवः शिवः किमेतद्देवदन्ति नगरे जनाः ।

वने चरोनिरोक्षन् स चतुर्दिक्षु इतस्तातः ॥  
 पदञ्च पदमार्गञ्च मृगसूकरचित्तलान् ।  
 धावतस्तस्य सर्वासु दिक्षु वै लुब्धचेतसः ॥  
 वनं सपर्वतं सर्वं भ्रमतस्तु दिनङ्गतम् ।  
 अपाप्ता एव गच्छन्ति सकला मृगजातयः ।  
 संप्राप्तमपि चापश्यन् न मृगं न च चित्तलं ॥  
 निराशो लुब्धको यावत्तावदस्ताङ्गतोरविः ।  
 चिन्तयित्वा जलोपास्ते जागरं मृगघातनं ॥  
 सखिधास्याम्यहं रात्रौ नियतं मम जीवनं ।  
 तडागमन्निधौ गत्वा तप्तीरे जालमध्यतः ॥  
 निलयं कर्तुमारब्धमात्मार्थं गुप्तिकारणं ।  
 जालमध्ये महालिङ्गमस्ति स्वायम्भुवं शुभम् ॥  
 ततो विल्वस्य पत्राणि चोटित्वा मार्गगोधने ।  
 क्षिप्तानि दक्षिणे भागे गतानि लिङ्गमूर्धनि ॥  
 न दिवाभोजनं जानं स रुदस्य प्रभावतः ।  
 मृगास्त्रिरोक्षतस्तस्य निद्रानाशोप्यजायत ॥  
 जालमध्यगतस्यापि प्रथमः प्रहरोगतः ।  
 ततो जलार्थमायाता हरिणीगर्भसंयुता ॥  
 निरोक्षन्ति दिशः सर्वा उत्फुल्लनयना भृशं ।  
 लुब्धकेनाथ सा दृष्टा वाणगोचरताङ्गता ॥  
 कृतञ्च वाणमभ्यानं तेनैकायेण चितमा ।  
 त्रीटित्वा विल्वपत्राणि प्रक्षिप्तानि शिवोपरि ॥  
 स्मरन् शिवेति वादञ्च शीतेन परिपीडितः ।

विल्व मध्ये स्थितो दृष्टो हरिण्यालुब्धकस्तदा ॥

लुब्धकः स्वस्वरूपेण कृतान्त इव तिष्ठति ।

दृष्ट्वा च तस्य सन्धानं यमदंष्ट्रासमप्रभं ॥

सा मृगी दिव्यया वाचा लुब्धकं वाक्त्रमब्रवीत् ।

मृग्युवाच ।

स्थिरो भव महाव्याध सर्वजीवनिहन्तन ।

किमर्थं मां हनिष्ये त्वं कथयस्व मम प्रभो ॥

शिव उवाच ।

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा लुब्धकः प्राह तां मृगीं ।

समाह्वयं कुटुम्बं मे क्षुधया पीब्यते मृगं ।

धनं च मङ्गृहे नास्ति तस्मात्त्वां हन्मि शोभने ॥

सूत उवाच ।

जातपूजाप्रभावेन जागरोपोषणेन च ।

चतुर्थांशेन पापानां विमुक्तो लुब्धकस्तदा ॥

विस्मयोत्फुल्लनयनो मृगीदाक्ष्येन पार्ष्वति ।

उवाच वचनं तां वै धर्मयुक्तमसंगयं ॥

मया हि पातिता देवि उक्तमाधममध्वमाः ।

न श्रुतात्वीदृशी वाणी स्नापदानां कश्चन ॥

कस्मिन् देशे त्वमुत्पन्ना कस्मात् स्थानादिहा गता ।

कथय त्वं प्रयत्नेन परं कीर्तूहलं हि मे ॥

मृग्युवाच ।

मृगु त्वं लुब्धकश्चेष्ट कथयामि तवाखिलं ।

आसं पूर्वं महं रक्षां स्वर्गे शक्यस्व चाचरा ॥

अनन्तरूपलावण्यसौभाग्येन च गर्विता ।  
 सौभाग्यमदसंयुक्तो दानवो मदगर्वितः ॥  
 मयैव सत्कृतीभर्ता हिरण्याक्षो महासुरः ।  
 तेन सार्द्धं चिरं कालं मया भुक्तं यथेप्सितम् ॥  
 अन्यस्मिन् दिवसे व्याध क्रोडिते वै सुरेण च ।  
 गतो बहुतरः क्षालो महादेवस्य कोपकृत् ॥  
 प्रत्यहं प्रेक्षणं नृत्यं शङ्करस्यायतयरेत् ।  
 यावद्दृच्छाम्यहं तत्र तावद्द्रोऽववीत् क्रुधा ॥  
 हिरन्मे क्व गतामि त्वं केन वा सङ्गता शुभे ।  
 सौभाग्यमदगर्वेण नागता मम मन्दिरं ॥  
 सत्यं कथय शोघ्रं त्वं नो वा प्रापस्दामि ते ।  
 प्रापभीत्या मया तत्र सत्यमुक्तं शिवायतः ॥  
 शृणु देव प्रवक्ष्यामि प्रापानुग्रहकारक ।  
 मम भर्ता ममः प्राणैर्दानवो बलदर्पितः ॥  
 तेन सार्द्धं मया देव क्रोडितं निजमन्दिरे ।  
 तस्य भागेन लुब्धाहं शयनादेव नात्थिता ॥  
 तेनाहं नागता शोघ्रं सृष्टिसंहारकारक ।  
 रुद्रस्तद्वचनं श्रुत्वा सकीपो वाक्यमववीत् ॥  
 मृगः कामातुरो नित्यं हिरण्याक्षो भविष्यति ।  
 त्वं मृगी तस्य भार्या वै भविष्यसि महावने ॥  
 तस्मात्तु निर्जले देशे लणाहारा भविष्यसि ।  
 द्वादशाब्दानि भद्रन्ते भविता प्राप एष ते ॥  
 परस्परस्य शोकेन प्रापान्तोऽपि भविष्यति ।

( १३ )

कृतस्वनग्रहो व्याधे गङ्गरेण गृहच्छया ।  
 यदा कथित् व्याधतरो मम मान्निध्यमाश्रितः ॥  
 बाणायै तस्य सम्प्राप्ता पूर्वजन्म स्मरिष्यति ।  
 गङ्गारस्य तदा रूपं दृष्ट्वा भोजनवाप्सामि ॥  
 गङ्गरो न मया दृष्टो वसन्त्यस्मिन् महावने ।  
 तेन दःखमनुप्राप्ता भेदोमांसविवर्जिता ॥  
 भर्ताक्रान्ता विगेषेण श्रवध्या चिति निश्चितं ।  
 सकुटुम्बस्य ते नूनं भोजनं न भविष्यति ॥  
 आयास्यति मृगोत्वन्या मार्गिणानेन लुपकः ।  
 रूपयौवनसम्पत्ना बहुमांसमदाडता ॥  
 भोजन सकुटुम्बस्य तथा नूनं भविष्यति ।  
 अश्रवान्यो मृगोव्याध तव बाणस्य गोचरे ॥  
 प्रभाते ते क्षुधात्तस्य निशयादागमिष्यामि ।  
 सुक्ताशवा व्याध गर्भं वालानादिश्य बभूव ॥  
 शपथैरागमिष्यामि सन्दिश्य च सखीजनम् ।  
 तस्यास्तदहनं युत्वा व्याधो विस्मितमानसः ॥  
 कष्टमेवं तदा ध्यात्वा व्याधावाच मृगाङ्गनां ।  
 नागमिष्यति यद्यन्यो मृगस्त्वमपि गच्छति ॥  
 क्षुधया पीडितोहं वै कुटुम्बश्च भविष्यति ।  
 प्रातस्त्वया मम गृहमागन्तव्यं यदा भवेत् ॥  
 व्रज त्व गयश्रं कृत्वा यथा मे निशयो भवेत् ।  
 पृथिवी वायुरादित्यः सत्ये तिष्ठन्ति देवताः ॥  
 पालनीयं ततः सत्यं लोकाह्वयमभीष्टुभिः ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागर्भार्त्ता तदा सृगी ।  
चक्रे सत्यप्रतिष्ठां ये व्याधय्यान्ते पुनः पुनः ॥

सृग्युवाच ।

द्विजो भूत्वा तु यो व्याध वेदभ्रष्टोऽभिजायते ।  
स्वाध्यायसम्यहारहितः सत्यशौचविवर्जितः ॥  
अविक्रयाणां विक्रेता अयाज्यानाञ्च याजकः ।  
तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि ॥  
धूर्त्वं दृष्टे शठे यज्ञ यत्पापं मानकूटके ।  
दानं दातुं प्रशक्तश्च पार्थित न ददाति च ॥  
तेन पापेन लिप्यामि गच्छामि न पुनर्यदि ।  
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत्सागरांवरं ॥  
देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं ब्रह्मद्रव्यं तथा हरेत् ।  
तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि ॥  
दोषेन दोषो दोष्ये त पादं पादेन धावयेत् ।  
भर्त्सारं स्वामिनं मितमात्मानं बालमेव च ॥  
गाञ्च विप्रं गुरुं नारीं व्यापादयति दुर्मतिः ।  
तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि ॥  
दानस्य कोत्सेने पापं सत्पापंदांभिके तथा ।  
अमञ्जितेन्द्रिये नित्यं परदोषानुकारीने ॥  
कतमे च कटय्ये च नास्तिके वेदनिन्दके ।  
सदाचारविज्ञाने च परपीडाप्रदायके ॥  
परपशुन्ययूकेपि कलाविक्रयकारके ।  
परापवादमन्तुष्ट सर्वधर्मवहिष्कृते ॥



वृषलीपती च यत् पापं मातापितोरपोषके ।  
 हेतुके वकवृत्तौ च आहृतीर्थविवर्जिते ।  
 एतेषां पातकं मद्यं नागच्छामि पुनर्यदि ॥  
 यत्पापं ब्रह्महत्यायां पितृमातृवधे तथा ।  
 यत्पापं लुब्धकानां तु भोचोरविषघातिनां ॥  
 तेन पापेन लिप्यामि यद्यहं नागमे पुनः ।  
 द्विभार्यः पुरुषोयस्तु समदृष्ट्या न पश्यति ॥  
 यस्मिन् हले बलीवर्दान् विषमान् वाहयेन्नरः ।  
 तेन पापेन लिप्यामि नागच्छति पुनर्यदि ॥  
 सकृद्वत्सा तु यः कन्यां द्वितीये दातुमिच्छति ।  
 यस्य संग्रहणी भार्या ब्राह्मणी च विशेषतः ॥  
 एकाकी मिष्टमश्नाति भार्यापुत्रविवर्जितः ।  
 आत्मनो गुणमम्पन्नां समाने सदृशे वरे ॥  
 न ददाति च यः कन्यां नरो वै ज्ञान दुर्बलः ।  
 तेन पापेन लिप्यामि नागच्छामि पुनर्यदि ॥  
 मृगी वाक्यं ततः श्रुत्वा लुब्धकी हृष्टमानसः ।  
 गुप्तोच हरिणीं सद्यो मुक्ता वाणं धनुस्ततः ॥  
 तस्या उक्तिप्रभावेन लिङ्गार्चाकरणेन च ।  
 सं पातकचतुर्थां गान्धुकोऽसौ तत् क्षणात्प्लुवं ॥  
 द्वितीये प्रहरे प्राप्तिं ह्यर्द्धरात्रे वरानने ।  
 स्मरन् शिवं शिवं वाक्यं न निद्रां लब्धवांस्तथा ॥  
 द्वितीयेऽथ ततः प्राप्ता कामार्चा मृगसन्दरी ।  
 सन्धस्ता भयसंविन्ना पतिमन्वेपती तदा ॥

जालिमध्ये स्थितेनाद्य दृष्टा सा तु वृकोत्तये च ।  
 पुनर्विष्वस्य पत्राणि त्रोटितानि करेण तु ॥  
 क्षिप्त्वाणि दक्षिणे भागे लिङ्गस्योपरि पार्ष्वति ।  
 तस्याः अधार्थं व्याधेन वाणं धनुषि सन्दधे ॥  
 हृषीपूर्णं मनसा कुटुम्बार्थं भृशं प्रिये ।  
 निरोक्ष्य लुब्धका यावत्तस्यां वाणं विमुञ्चति ॥  
 तावन्मृगी सुमन्त्रस्ता व्याधं वचनमव्रवीत् ।  
 धनुर्धर ऋणु व्याध सर्व्वमत्वभयङ्कर ॥  
 देहि मे वचनं ह्येकं पद्यान्मास्विनिपातय ॥  
 आयाता हरिणी चेका मार्गेषानेन लुब्धक ।  
 समायाताश्रवा नैव मत्वं कथय सुव्रत ॥  
 तहचो लुब्धकः श्रुत्वा विस्मितस्तत्क्षणादभूत् ।  
 तस्यास्तु यादृशी वाणी अमुष्या अपि तादृशी ॥  
 सैवेशमागतानूनं प्रतिज्ञापालनाय वै ।  
 अथ कान्या समायाता या तया कथिता पुरा ॥  
 एवं सञ्चित्य मनसा लुब्धकावाक्यमव्रवीत् ।  
 शृणु त्वं मृगि मे वाक्यं गता सा निजमन्दिरं ॥  
 त्वं दत्त्वा मम नूनं हि सा भवेत्क्षत्यवागपि ।  
 अहोरात्रं कृतं कष्टं कुटुम्बार्थं मृगाङ्गने ॥  
 अधुना त्वां हनिष्यामि देवतास्मरणं कुरु ।  
 व्याधोक्तं वचनं श्रुत्वा हरिणी दुःखिता भृशं ॥  
 व्याधं प्राह हृदित्वा सा मा मां व्याध निपातय ।  
 नास्ति मांसं तथा मेदः शरीरे हृदिरं मम ॥

तेजो बलं मे सकलं निर्दग्धं विहराग्निना ।  
 अहं प्राणैर्विधीज्यामि भोजनन्ते न जायते ॥  
 बलवान् सुमहातेजा मेदमांसपरिप्लुतः ।  
 अत्यन्तस्थूलपीनाङ्गी मृगी ह्यत्रागमिष्यति ॥  
 तयोक्तं लुब्धकः श्रुत्वा किङ्करोमीत्यचिन्तयत् ।  
 मृगो ब्रूते ह्यसन्दिग्धं निश्चयोऽयं परं मम ॥  
 चिन्तयित्वेति स प्राह मृगीं कामातुरान्तदा ।  
 कुरु प्रतिज्ञां सत्यान्त्वं निश्चयोमे यथा भवेत् ॥  
 तद्व्याधक्चनं श्रुत्वा मृगी शोकममाकुला ।  
 सत्यां प्रतिज्ञां विदधे व्याधस्याग्रे पुनः पुनः ॥

मृग्युवाच ।

क्षत्रियस्तु रणं दृष्ट्वा संग्रामाद्योनिवर्त्तते ।  
 तेन पापेन लिप्यामि यद्यहमनृत वदे ॥  
 परद्रव्यरता नित्यं मायावन्तोऽनुपासकाः ।  
 भेदगन्ति तडागानि वापीनाञ्च गवामपि ।  
 मार्गं स्थानञ्च ये घ्नन्ति सर्वसत्वभयङ्कराः ॥  
 परित्यजति सन्मार्गं पशून् मृत्यां स्तथैव च ।  
 ब्राह्मणास्त्रिन्दतेयथ तथैवाश्रमनिन्दकः ॥  
 तेन पापेन लिप्यामि तद्वै तदनृतं वदे ।  
 आकर्षित्थं वचस्तेन मुक्त्वा मा तत्क्षणात्प्रिये ॥  
 जलं पीत्वा गता सापि अदृष्टः सोऽभवत्तदा ।  
 जानिमध्यस्थितस्यापि द्वितीयप्रहरीगतः ॥  
 पौडितस्तीव्रगतेन क्षुधया परिपीडितः ।

शिवं शिवं प्रजन्यन्वे न निद्रामुपलब्धवान् ॥  
 कृतं शिवार्चनं तेन द्वितीये प्रहरेऽपि च ।  
 वीक्षते स दिग्ः सर्वा जीवनाथं वरानने ॥  
 मोभाग्यवलदर्पादगो मृगस्तावत् समागतः ।  
 वाणं गृहीत्वा तं दृष्ट्वा मीर्यामाशु न्यथोजयत् ॥  
 आहर्णान्तं धनुर्नास्य हृष्टतृष्टेन चेतसा ।  
 यावन्मृञ्चति वाणं स तावद्दृष्टेऽसृगेण वै ॥  
 कालरुपन्तु तं दृष्ट्वा मृगशिल्पां परां ययौ ॥  
 निश्चितं भविता मृत्युः यदि पादो विचान्यते ।  
 भार्या प्राणमसा चैव व्याधिनेव निपातिता ॥  
 तथा परहितस्यापि मम मृत्युर्भविष्यति ।  
 हा कालविकृतं पापं यद्भार्या दुःखमागता ॥  
 न हि भार्या ममं सोऽप्य गृहे वापि वनेऽपि वा ।  
 तथा विना न धर्मोऽत्रि नार्थकामो विधिपतः ॥  
 वृत्तमृलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति तद्गृहं ।  
 प्रामादीऽपि तथा हीन कान्तारादतिरिच्यते ॥  
 धर्मार्थकामकार्येषु पु माभ्यर्षा महायनी ।  
 विद्वेगगमने चापि संव विश्वामकारिणा ॥  
 नास्ति भार्याममो वभृर्नास्ति भार्याममं सुखम् ।  
 नास्ति भार्याममं लोके नरस्यार्चस्य भेषजं ॥  
 यस्य भार्या गृहे नास्ति साध्वो च प्रियवादिनी ।  
 तेनारण्यं न गन्तव्यं यथारण्यं तथागृहं ॥  
 तथा विना जीवतोऽपि निष्कलं मम जीवितं ।

एका प्राणसमा मे भू द्वितीया प्रमदा मम ॥  
 भार्या विरहितस्याद्य जीवितं निष्फलं मम ।  
 एवं सचिन्त्य शनकैर्लुब्धकं वाक्यमव्रवीत् ॥  
 शृणु व्याध महासत्व आमिघाहारनियय ।  
 त्वां हि पृच्छामि किञ्चिद्द्वै सत्यं कथय सुम्फुटं ॥  
 आयातन्तं हरिणीयुग्मं केन मार्गेण तद्वतं ।  
 त्वया विनाशितं नैव सत्यं कथय मेऽग्रतः ॥  
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लुब्धक्यापि चिन्तयन् ।  
 असावपि न सामान्यो देवता कापि विद्यते ॥  
 ध्यात्वेति सत्वन्तस्याग्रे लुब्धको वाक्यमव्रवीत् ।  
 ते गतेऽनेन मार्गेण प्रतिज्ञाय भमाग्रतः ॥  
 ताभ्यां दत्तो भोजनार्थं मम त्वं नात्र संशयः ।  
 अधुना त्वां हनिष्यामि न हि मोक्षामि कर्हिचित् ॥  
 व्याधोक्तं हि वचः श्रुत्वा हरिणः प्राह सत्वरं ।  
 तत्सत्यं कीदृशं व्याध ताभ्यामुक्तं तवाग्रतः ॥  
 येन ते प्रत्ययोजातस्तन्मुक्तं हरिणीद्वयं ।  
 व्याधेन कथिताः सर्वे ये ह्यताः शपथाः पुरा ॥  
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा हरिणी ऋष्टमानसः ।  
 व्याधं प्राह ततः शीघ्रं वचनं धर्मसंहितं ॥

शृणु उवाच ।

ताभ्यां यदुक्तं भी व्याध तत्सत्यं हि भवेन्नम ।  
 प्रभाते त्वद्दृष्टं न्यूनमागमिष्यामि हिंसक ॥  
 भार्या ऋतुमती मेऽद्य कामार्त्तापि च साम्प्रतं ।

गत्वा गृहेऽद्य तां भुक्त्वा अनुज्ञाप्य सुहृज्जनं ॥  
 शपथैरागमिष्यामि त्वन्नेहं नात्र संशयः ।  
 न मद्देहेस्त्वसृष्ट्वांसं यत्त्वं भोक्तुमभीषसि ॥  
 तद्दृश्या मरणं मे स्याद्यदि मान्स्व हनिष्यसि ।  
 तन्मृगस्य वचः श्रुत्वा व्याधी वचनमत्रब्रवीत् ॥

व्याध उवाच ।

असत्यं भाषसे धूर्त्तं प्रतारयामि मामिह ।  
 ज्ञाता मृत्युः स्फुटं यत्र तत्र गच्छति कल्पधीः ॥  
 व्याधस्य बचनं श्रुत्वा वाक्यं प्राह वरं मृगः ।  
 शपथान् वै करिष्यामि यथा ते प्रत्ययो हृदि ॥

व्याध उवाच ।

मम त्वं शपथान् ब्रूहि विश्वासो येन जायते ।  
 यथा हि प्रेषयामि त्वां स्वगृहं प्रति कामुक ॥

मृग वाच ।

भर्त्तारं वञ्चयेद्या स्त्री स्वामिनं वञ्चयेन्नरः ।  
 मित्रं वञ्चयते यस्तु गुरुद्रोहं करोति यः ॥  
 तेन पापेन लिप्यामि यदेतदनृतं वदे ।  
 भेदयेद्यस्तु मित्राणि प्रमादं आवयेत्तु यः ॥  
 विषमन्तु रसं दद्यादेकपङ्क्त्यां हि भुञ्जतां ।  
 तेन पापेन लिप्यामि यदेतदनृतं वदे ॥  
 प्रवासशीला ये विप्राः क्रयविक्रयकारिणः ।  
 सन्ध्यास्नानविहीनाश्च वेदशास्त्रविवर्जिताः ॥

( १४ )

मद्यपस्त्रीसमासक्ताः परनिन्दारतास्तथा ।  
 परस्त्रीलेखका नित्यं परपैशुन्यगूचकाः ॥  
 शूद्रान्नभोजकाश्चैव रसविक्रयकारकाः ।  
 तेन पापेन लिप्यामि नाशामि यदि ते गृहं ॥  
 मद्याद्यं-विक्रयेद्यस्तु शूद्रालोभमिमीहितः ।  
 सर्वांगी सर्वविक्रेता विप्राणामपि निन्दकाः ॥  
 विप्रवाक्यं परित्यज्य षाण्ड्याभिरत्तस्तथा ।  
 तेन पापेन लिप्यामि यदि नायाति ते गृहं ॥  
 गां यः स्पृशति पादेन उदितेऽर्के प्रवृज्यते ।  
 एकाकी भिष्टमश्नाति विकर्भेणि तथा रतः ॥  
 मातापितारभक्तश्च क्रियामुद्दिश्य पाचकः ।  
 कन्याशुल्कोपजीवी च देवब्राह्मणनिन्दकः ॥  
 एतेषां पातकं सन्नं यदि नाशानि ते गृहं ।  
 यः पठेत् स्वरङ्गीनञ्च लक्षणेन विवर्जितम् ॥  
 रथ्यां पक्ष्यटमानस्तु वैदमुद्दिरते यदि ।  
 पठमानस्य विप्रस्य चाण्डालः शृणुते यदि ॥  
 तेन पापेन लिप्यामि यदि नाशामि ते गृहं ।  
 वेश्यारताः सदा ये च देवदायनिन्दारकाः ॥  
 तेषां पापेन लिप्यामि यदि नाशामि ते गृहं ।  
 शूद्रान्नेषु सदा सक्ताः शूद्रसंपर्कदूषिताः ॥  
 सन्ध्याभ्रष्टा च ये विप्रा दातृदाननिवारकाः ।  
 तेषां पापेन लिप्यामि यदि नाशामि ते गृहं ॥  
 भर्तारमर्थहीनञ्च कुरूपं व्याधिपीडितं ।

या न पूजयते नारी रूपधीवनगर्विता ।  
 तस्याः पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहं ॥  
 अथ किं बहुनोक्तेन भी लुब्धक तवाग्रतः ।  
 यदि नायामि ते गेहं ममासत्यं भवेत्तदा ॥  
 तेन वाक्येन सन्तुष्टो व्याधो वै वीतकल्मषः ।  
 संष्ट्वत्य बाणं धनुषां सृगं मुक्ता वनं प्रति ॥  
 जगाम प्रीतमनसा मुक्तपापो वरानने ।  
 जलं पीत्वाथ हरिणः प्रविष्टो गहनं वनं ॥  
 गतोऽमी तेन मार्गेण येनायानं सृगीह्वयम् ।  
 लुब्धकेन तदा तत्र जालिमध्ये स्थितेन हि ॥  
 छित्वा विल्वस्य पत्राणि निक्षिपानि शिवोपरि ।  
 अज्ञानाच्छिवपूजा तु कृता तेन तथा व्रतं ॥  
 ब्रुवन् शिवगिवं सोऽथ निःसृतो जालिमध्यतः ।  
 उदिते सूर्यबिम्बे तु अज्ञानाज्जागरे कृते ॥  
 पापान्मुक्तोऽभवद्दगधः शिवरात्रिप्रभावतः ।  
 यावन्निरोक्षते दिक्षु निशान्ते भोजनं प्रति ॥  
 तावच्छिशुवृता चान्या सृगी तत्र समागता ।  
 दृष्ट्वा सृगीं तथा व्याधो बाणं धनुषि सन्दुभे ॥  
 यावन्मुञ्चति बाणं स तावन् प्रीवाच तं सृगी ।

सृग्युवाच ।

मा वाणं मुञ्च धर्मात्मन् धर्मं पालय सुव्रत ।  
 अहमवध्या सर्वेषां सर्वशास्त्रनिर्दर्शनम् ॥  
 शयानं मैथुनासक्तं मदनव्याधिपीडितं ।



न हि हन्ति मृगं राजा मृगीं च शिशुनाहतां ॥  
 अथ त्वं धर्ममुत्सृज्य मां वधिष्यसि मानद ।  
 बालकान् हि गृहे लब्ध्वा आगमिष्याम्यहं पुनः ॥  
 या भर्त्तारं समुत्सृज्य परपुंसि रता भवेत् ।  
 तस्याः पापेन लिप्यामि यदि नायामि ते गृहं ॥  
 ये कृताः श्रयथाः पूर्वं तवाग्रे व्याधसत्तम ।  
 ते सर्वे मम सन्त्यत्र यदि नायाम्यहं पुनः ॥  
 व्याधेन सा तदा मुक्ता जगाम\* निज मन्दिरम् ।  
 व्याधोऽपि तत्परन्त्यक्त्वा जगाम स्वगृहं प्रति ॥  
 सर्वेषां वचनं ध्यायन्मृगाणां सत्यवादिनां ।  
 एतेषां घातको नित्यमहं यास्यामि कां गतिं ॥  
 एवं सञ्चिन्तयन् गेहे दृष्टाः क्षुधितबालकाः ।  
 निरामिषन्तु तं दृष्ट्वा जग्मुस्तेपि निराशाः ॥  
 नाम्नं मांसं गृहे तस्य भोजनं येन जायते ।  
 व्याधोऽपि स तदा तत्र तेषां वाक्यानि संस्मरन् ॥  
 न भोजनं च निद्रां च लभते विस्मयान्वितः ।  
 आगमिष्यन्ति ते नूनं शपथैरतियन्विताः ॥  
 तानहं निहनिष्यामि सतां व्रतमनुस्मरन् ।  
 लुब्धकेन तदा मुक्ता मृगीऽपि शपथैः कृतैः ॥  
 स्वाश्रमं चाशु संप्राप्ती यत्र तद्वरिणीहयं ।  
 सद्यः प्रसूता तत्रैका द्वितीया रतिलालसा ॥  
 तृतीयापि समायाता बालकैः परिवारिता ॥

\* व्याधेनेति पुलकाकारं पाठः ।

सर्वाः समेता एकत्र मरणे कृतनिश्चयाः ।  
 परस्परैर्ण जल्पन्ति लुब्धकस्य विचेष्टितं ॥  
 ततो मृगीसृतुमतीं भुक्त्वा वाक्यं मृगोऽब्रवीत् ।  
 स्थातव्यमत्र युष्माभिः कर्त्तव्यं प्राणरक्षणं ॥  
 व्याघ्रहिपात् लुब्धकेभ्यो बालकानाञ्च रक्षणं ।  
 अहमत्र समायातः शपथैरतियन्वितः ॥  
 अस्या ऋतु प्रदानाय पुनःसन्तानहेतवे ।  
 ऋतुमतीं तु योभार्यां नैव सेवेत मोहितः ॥  
 भ्रूणहत्या भवेत्तस्य धर्मस्यैव निरर्थकः ।  
 सन्तानात् स्वर्गमाप्नोति इह कीर्त्तिञ्च श्रावतीं ॥  
 सन्तति र्यत्नतः पाश्या स्वर्गसौख्यप्रदायका ।  
 अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च ॥  
 येन केनाप्युपायेन पुत्रमत्पादयेत् पुमान् ।  
 मया तत्रैव गन्तव्यं यत्र व्याधस्य मन्दिरं ॥  
 सत्यं तु पालनीयं स्यात् सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ।  
 तास्तद्भर्तृवचः श्रुत्वा प्रोचु धर्मयुतं वचः ॥  
 अस्माकं पारणं श्लाघ्यं भर्ता सह मृग प्रभो ।  
 वयमप्यागमिष्यामस्त्वया सार्द्धं मृगीक्षम ॥  
 तथा ते विप्रियं कान्त न स्मरामः कदाचन ।  
 पुष्पितेषु वनान्तेषु नदीनां सङ्गमेषु च ॥  
 कन्दरेषु च शैलःना मवतारमिता वयं ।  
 न कार्यमप्यतः कान्त जीवितेन विना त्वया ॥  
 न दीनां पतिहोनानां जीवितं निष्प्रयोजनं ।

मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः ॥  
 अमितस्य हि दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ।  
 अपि द्रव्ययुता नारी बहुपुत्रसङ्घृता ॥  
 शीघ्रा सा वन्धुवर्गस्य पतिहीना कुरङ्गम ।  
 वैधव्यसदृशं दुःखं स्त्रीणामन्यन्न विद्यते ॥  
 धन्या स्ता योषितोयास्तु म्रियन्ते भर्तुरग्रतः ।  
 नातन्वी वाद्यते वीणा नाचक्री वाह्यते रथः ॥  
 नापतिः पूज्यते नारी अपि पुत्रशतैर्हता ।  
 निर्धनी व्यसनी वृद्धो व्याधितो विह्वलस्तथा ॥  
 पतितः कृपणो वापि भर्ता स्त्रीणां सदा गतिः ।  
 नास्ति भर्तृ समो धर्मो नास्ति भर्ता समः सुहृत् ॥  
 नास्ति भर्ता समो नाथः स्त्रीणां भर्ता गतिः परा ।  
 एवं विलप्य ताः सर्वा मरणे कृतनिश्चयाः ॥  
 बालकैस्ताः समायुक्ता भर्तृशोकेन पीडिताः ।  
 तासां याक्यं मृगः श्रुत्वा हृदि चिन्तापरोऽभवत् ॥  
 सर्वथापि हि गन्तव्यं मया व्याधस्य सन्निधौ ।  
 सर्वतः सत्यसंरक्षा कुटुम्बस्य क्षयोऽन्यतः ॥  
 यदि गच्छामि तत्राहं कुटुम्बस्य क्षयोभवेत् ।  
 नोवा प्रयामि तत्राहं मम सत्यं व्रजेत् पुनः ॥  
 वरं पुत्रस्य मरणं भार्याया आत्मनस्तथा ।  
 सत्यलोपाक्षरो नूनं सृष्ट्यन्तं नरकं व्रजेत् ॥  
 तस्मात् सत्यं पालनीयं नरैः श्रेयोर्थिभिः सदा ।  
 सत्येन धार्यते पृथी सत्येन तपते रविः ॥

सत्येन वायवो यान्ति सत्ये न वर्द्धते परं ।  
 एवं सच्चिन्त्य स मृगो धर्मान् हृदि मनोहरान् ॥  
 ताभिः सह कुरङ्गैरभिरायमात् तत्क्षणं ययौ ।  
 तस्मिन् सरसि स्नात्वा तु कर्मन्यासश्चकार ह ॥  
 तच्च लिङ्गं नमस्कृत्य हृदि ध्यायन् शिवं शिवं ।  
 स्नानं पानं परित्यज्य मैथुनं भोगमेव च ॥  
 कामं क्रोधं तथा लोभं मायां भोक्तृविनाशिनीं ।  
 खाद्यपेयादिकञ्चैव लुब्धकाभिमुखो ययौ ॥  
 तस्य भार्या तथा पुत्राः पृष्ठलग्नाः व्रजन्ति वै ।  
 अनाशकम्परं गृह्य मरणे कृतनिश्चयाः ॥  
 भार्या पुत्रैःपरिवृती मृगस्तन्देगमागतः ।  
 क्षुधितो वालकैर्युक्तो लुब्धको यत्र तिष्ठति ॥  
 मृगस्तन्देगमागत्य कुटुम्बेन समन्वितः ।  
 पालयन् सत्यवाक्यानि लुब्धकं वाक्यमब्रवीत् ॥

मृग उवाच ।

हन्या मां प्रथमं व्याध पथाज्ञार्याः क्रमेण तु ।  
 वालकानि ततः पथाह्वयन्ता मा विलम्बय ॥  
 मृगाणां भक्षणाद्वाध न ते दोषोऽस्ति कथन ।  
 यास्यामः स्वर्गं वै सर्वं शस्त्रपूता न संगयः ॥  
 तवापि सकुटुम्बस्य प्राणयात्रा भविष्यति ।  
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनं मृगोक्तं लुब्धकस्तदा ॥  
 आत्मानं निन्दयित्वा तु हरिणं वाक्यमब्रवीत् ।

व्याध उवाच ।

अहोमृग महासत्व गच्छ गच्छ स्वमालयं ।  
 आमिषेण न मे कार्यं यद्वाच्यं तद्भविष्यति ॥  
 सत्वानां हि वधात्पापं तर्जने बन्धने तथा ।  
 नैव पापं करिष्यामि कुटुम्बार्थं कथञ्चन ॥  
 धर्माणाञ्च दया मूलं सत्यं शाखाफलन्दमं ।  
 त्व गुरु र्श्मम धर्माणामुपदेष्टा हि सांप्रतं ॥  
 गच्छ गच्छ कुरङ्ग त्वं कुटुम्बेन समन्वितः ।  
 न्यस्तानि तु मयास्त्राणि सत्यधर्मसमाश्रितः ॥  
 तद्ग्राधवचनं श्रुत्वा हरिणः प्राह तं पुनः ।  
 कर्मन्यासमहं कृत्वा त्वत्सकाशमिहागतः ॥  
 हन्यतां हन्यतां शीघ्रं न ते पापं भविष्यति ।  
 मया दत्ता पुरा वाचा तया वद्धी मराम्यहं ॥  
 मया मम कुटुम्बेन त्यक्तलोभः स्वजीवने ।  
 एतच्छ्रुत्वा च वचनं लुब्धको वाक्यमब्रवीत् ॥  
 त्वं गुरुस्त्वं पिता माता त्वं मे बन्धुः सखा सुहृत् ।  
 मया त्यज्यानि शस्त्राणि त्याज्य मायादिकं वलं ॥  
 कस्य भार्या सुतः कस्य कुटुम्बं कस्य हे मृग ।  
 तैस्तेः स्वधर्मं भोक्तव्यं मृगं गच्छ यथासुखम् ॥  
 इत्युक्त्वा लुब्धकस्त्पूर्णं मुक्त्वा चापं शरैः सह ।  
 मृगान् प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्य क्षमापयेत् ॥  
 प्रीतुर्बुधांश्च पुरस्तत्र वचःपीपूषसन्निभं ।

एतस्मिन्नन्तरे नेदु देवदुन्दुभयो दिवि ॥  
 आकाशात् पुष्पवृष्टिश्च बभूव सुमनोहरा ।  
 देवदूताः समायाता विमानं गुह्यगोभनं ॥

देवदूत उवाच ।

अहो व्याध महामत्वं सर्वसत्त्वभयङ्कर ।  
 विमानवरमारुह्य सदेहस्तिदिवं व्रज ॥  
 शिवरात्रिप्रभावेन पातकान्ते क्षयं गतं ।  
 उपवासस्य संजातस्तथा वै निशिजागरः ॥  
 यामि यामि कृता पूजा अज्ञानान् शिवस्य च ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छ त्वं रुद्रमन्दिरं ॥  
 मृगराज महासत्वं सर्वभार्यासमन्वितः ।  
 भार्याहितयसंयुक्तो नाक्षत्रं पदमाप्नुहि ॥  
 तव नाम्ना चयं ऋचं लोके ख्यातिं गमिष्यति ।  
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनं लुब्धकोऽथ मृगास्तथा ॥  
 विमानानि समारुह्य नाक्षत्रं पदमागताः ।  
 हरिणीहयमार्गंस्तु दृश्यतेऽद्यापि पार्वति ॥  
 तत्पृष्ठसन्तारारणां हितयं मणिसन्निभं ।  
 ऋचं लुब्धकनाम्ना तु दृश्यते द्योतनं शुभं ॥  
 तारात्रितयसंयुक्तं मृगशीर्षं तदुच्यते ।  
 बालकहितयश्चाद्ये तृतीया पृष्ठतो मृगी ॥  
 पृष्ठतस्तत्र संप्राप्ता मार्गशीर्षस्य संनिधी ।  
 मृगराट् दृश्यतेऽद्यापि ऋचं व्योमगमुत्तमं ॥

( १५ )

अकामाज्जागरं रात्री तक्षीपीवणपूजनम् ।  
 जातं शुभकराजस्य तत्फलं परिवर्तितं ॥  
 ये नरा भक्तिभावेन शिवरात्रिव्रतं शुभं ।  
 सोपवासं करिष्यन्ति जागरेण समन्वितं ॥  
 तेषां फलं हि वै वक्तुं ब्रह्मापि च जडायते ।  
 शिवरात्रिसमं नास्ति व्रतं पापभयापहं ॥  
 यत् कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संग्रहः ।  
 यत्फलं माघमासे वै प्रयागे मञ्जतां नृणां ॥  
 वैशाखे द्वारकायाम् तु तपस्याषाढनेवनात् ॥  
 गयायां पिण्डदानेन कार्तिके माघवायतः ।  
 तत्फलं जायते नूनं श्रवणादेव पार्व्वति ॥

इति श्रीलिङ्गपुराणे उमामहेश्वर संवादे

शिवरात्रिव्रतमाहात्म्यं ।

—000—

ऋषय ऊचुः ।

शिवरात्रिरितिस्थिता कस्मिन् काले तु सा भवेत् ।  
 किंफला किंविधाना सा तत्वज्ञो विस्तराहद् ॥

सूत उवाच ।

माघस्य क्षणपक्षीयतिष्विष्वैव चतुर्दशे ।  
 तस्या रात्रिः समाख्याता शिवरात्रिरिति द्विजाः ॥

तस्यां सर्वेषु लिङ्गेषु सदा संक्रमते हरः ।  
विशेषादमरैः सर्वैः स्याता वेवं कसेञ्जरे ॥

ऋषयञ्जयः ।

शिवराशिः कथं जाता केन वापि विनिर्मिता ।  
कक्षाद्बहुफला चेति सर्व्वे वै विस्ताराद्दद ॥

सूत उवाच ।

कषयिष्यामि पूर्व्वं तत् पूर्व्वहृत्तं कथानकं ।  
भर्तृयज्ञस्य संवादमश्नन्नेनस्य भूपतेः ॥  
आनर्त्ताधिपतिः पूर्व्वमश्नन्नेन इति स्मृतः ।  
आसीदश्विपरो नित्वां वेदवेदाङ्गपारगः ॥  
भर्तृयज्ञः पुरा तेन इदं श्रुतः कृतहृत्तात् ।  
कलिकालं सन्तुहीष्य यश्चमानन्दिनेन्द्रे ॥

भर्तृन्नेन उवाच ।

कलिकाले कृते किञ्चिद्दत्तं मे वद सन्ने ।  
खलायां मङ्गजं पुण्यं सर्व्वपापप्रणाशनम् ॥  
अत्यायुषः \* सदा मर्या पूताः कृतयुगे पुरा ।  
त्रेतायां हापरे चैव किन्तु प्राप्ती कलौ युगे ॥  
तस्माद्दर्भत्रतं त्यक्त्वा किञ्चिदैकाहिकं वद ।  
अः कार्यमद्यकुर्वीत पूर्व्वान्ने चाराङ्गिकं ॥  
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं वास्य न वा कृतं ।

● वेद्यायुष इति पुस्तकान्तरे पाठः ।



तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भर्तृयज्ञ उदारधीः ॥  
 अत्रवीत् हुचिरं ध्यात्वा प्रात्वा दिव्येन चक्षुषा ।  
 अस्ति राजन् व्रतं पुण्यं शिवरात्रीतिसंज्ञितं ॥  
 एकाहिकं महाराज सर्वपातकनाशनं ;  
 तस्यां यद्दीयते दानं हृतञ्जमं तद्यैव च ॥  
 सर्वमन्त्रयतां याति रात्रिजागरणे कृते ।  
 अपुत्रो लभते पुत्रानधनो धनमाप्नुयात् ॥  
 स्वल्पानुर्दीर्घमायुष्यं शत्रूणाञ्चैव संक्षयं ।  
 यं यं काममभिध्याय व्रतमेतत्समाचरेत् ॥  
 तं तं समाप्नुयान्मर्त्या निष्कामो मुक्तिमाप्नुयात् ।  
 तथा वर्षकृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥  
 पठनादेकचित्तेन यदि कुर्यात् प्रजागरं ।  
 यानि कान्यत्र लिङ्गानि चराणि स्थावराणि च ।  
 स च संक्रमते देवस्तस्यां रात्री यतो हरः ॥  
 शिवरात्रिस्ततः प्रोक्ता तेन सा हरवत्सभा ।  
 प्रार्थितः स सुरैः सर्वैर्लोकानुग्रहाकाम्यया ॥  
 भगवन् कलिकालेऽस्मिन् सर्वपापसमन्वितः ।  
 वर्षपापविमुक्त्यर्थं विनायकं चित्तौ व्रतं ॥  
 एतया पूजया पूता मर्त्याः शुद्धिमवाप्नुयुः ।  
 ततो दत्तं हृतं वैषामस्माकमुपतिष्ठते ॥  
 यथोच्छिष्टैश्च यद्वत्तं तद्दत्ताज्जायतेऽखिलं ।  
 कलिकालेन चास्माकं किञ्चिद्देवोपतिष्ठति ॥  
 यत् किञ्चिद्मानवैर्दत्तं प्रभूतमपि शङ्करं ॥

भगवानुवाच ।

माघमासस्य कृष्णायां चतुर्दश्यां सुरेश्वर ।  
 अहं यास्यामि भूमिष्ठो रात्री नैव दिवा कालो ॥  
 लिङ्गेषु च समस्तेषु तलेषु स्थावरेषु च ।  
 प्रपूजयेत् सम्पदिच्छुः सर्वपापविशुद्धये ॥  
 तस्यां रात्री हि मे पूजां यः करिष्यति मानवः ।  
 मन्त्रेरेतैः सुरश्रेष्ठ विपाप्मा स भविष्यति ॥

ॐ सदाय नमः । ॐ वामाय नमः । ॐ तत्पुरुषाय नमः ।

ॐ ईशानाय नमः ।

पञ्चवक्त्राणि संपूज्य गन्धपुष्पानुलेपनेः ।  
 वस्त्रेदीपे न नैवेद्येस्ततीऽर्घ्यं च प्रदापयेत् ॥  
 मन्त्रेणानेन मङ्गलो माभ्यात्वा मनसि स्थितं ।  
 गौरोवल्लभ देवेग सर्पाद्यैः शशिशेखरः ॥  
 वर्षपापविशुद्धार्थं अर्घामि प्रतिगृह्णातां ।  
 ततः संपूजयेद्विप्रं भोजनाच्छादनादिभिः ॥  
 दत्त्वा प्रदक्षिणां तस्मै वित्तगाठं विवर्जयेत् ।  
 ततो जागरणं कुर्याद्भोतवादिनिश्चनैः ॥  
 धर्मशास्त्रानकथाभिश्च जलास्यैस्ताण्डवैस्तथा ।  
 एवं करिष्यते योऽत्र व्रतमेतत्सुरेश्वर ॥  
 सर्वपाप विशुद्धार्थं प्रार्थाद्यत्तं भविष्यति ।  
 तच्छ्रुत्वा त्रिदशाः सर्वे प्रणम्य शशिशेखरं ॥  
 सम्प्रहृष्टा नृपथेष्ठा स्वानि स्थानानि भेजिरे ।

त्रेत्रयामाहुर्बुद्ध्यां वै नारदं मुनिव्रतमं ॥  
 प्रबोधनाय लोकानां शिवरात्रिस्तते तदा ।  
 सोऽपि मत्वा भरादृष्टं श्रावणमास सर्व्वतः ॥  
 शिवरात्रेस्तु माहात्म्यं बहुक्तं शूलपात्रिणा ।  
 ततः प्रवृत्ति संज्ञाता शिवरात्रिर्धरातले ॥  
 सर्व्वकामप्रदा पुष्पा सर्व्वपातकनाशिनी ।  
 तत्र ते कौत्तत्रिष्वामि पुराहृतां कथां वरां ॥  
 यद्वक्तं नैमिषारण्ये सुभ्यक्त्याच कस्त्वचित् ।  
 तत्रासीदुभयकः कश्चिज्जातिमात्रा न सर्व्वतः ॥  
 व्यसनेनाभिभूतोऽयं परविष्ठापहारकः ।  
 न कदाचिद्धतन्मेन न दत्तं न जपः कृतः ॥  
 केवलन्तु त्वत्तं वित्तं लोकानाव्यलखंश्रयात् ।  
 कस्यचित्त्वद्य कालस्य शिवरात्रिः समागता ॥  
 माघमासे सिते पक्षे सर्व्वपातकनाशिनी ।  
 तत्रास्त्वावतमं पुष्पं देवदेवस्य शूलिनः ॥  
 ततो जागरणं रात्रौ प्रारब्धमभितोजनैः ।  
 मारोभिर्गणशार्दूल भूषिताभिः सुभूषणैः ॥  
 अथासी चिन्तयामास चीरो वित्तेन जागरः ।  
 गच्छामि यदि काचित् स्त्री भूषणैः परिभूषिता ॥  
 निद्रिता वाह्यतः श्वास्त्य प्रवासादुपशाम्यहं ।  
 ततोहत्वा समादाय भूषणानि व्रजाम्यहं ॥  
 एवं निश्चित्य मनसा गतस्तस्य समीपतः ।  
 कर्णिकारं समाह्वय स्थितो गुप्तस्ततो हि सः ॥

वीक्ष्यमाचो दिग्ः सर्वा नारी निष्क्रमणीइवा ।  
 चौयकर्मवृत्तस्य गीतार्त्तस्य विशेषतः ॥  
 स्तस्यापि निद्रिता याता न च नारीति निर्गता ।  
 तस्याधस्तात्ततो लिङ्गमवधूतं हरोद्भवं ॥  
 एतस्मिन्नेव काले तु प्रोद्गतस्तीक्ष्णादौधितिः ।  
 असनाच्चैव चौराणां कामिनां विमुखावहः ॥  
 ततो नराश्च नार्यथ जग्मूः स्वं स्वं निकेतनं ।  
 उमथा तं धरं शान्तं प्रणिपत्य महेश्वरं ॥  
 सोऽपि चोरो निराश्रय च्छुत्क्षामः शीतविह्वलः ।  
 अथवर्यं द्रुमात्तस्माद्दर्माधिः क्षविदासते ॥  
 ततः कालेन महता पञ्चत्वं समपद्यत ।  
 जातो जातिश्चरो भूत्वा दर्पणाधिपतेर्गृहे ॥  
 उपवासप्रभावेन तस्मां रात्रौ प्रजागरात् ।  
 शिवरात्रेस्तथा तस्य लिङ्गस्यापि प्रपूजनात् ॥  
 ततो रात्र्यं समासाद्य पित्रपैतामहं मद्यत् ।  
 कारयामास लिङ्गस्य प्रासादं तस्य शोधनं ॥  
 वर्षे वर्षे समागत्य शिवरात्र्यां प्रजागरात् ।  
 उपवासपरी भूत्वा गीतवादित्रनिष्यनैः ॥  
 धर्मास्थानकक्षाभिश्च क्षामध्वनिभिरेव च ।  
 \* नेत्रैः पूर्वोक्तैः संपूज्य अर्घ्यं दत्त्वा विधानतः ॥  
 सन्तर्प्य ब्राह्मणान् कामैर्जगाम विषयं निजं ।  
 कस्यचित्स्वयं कालस्य शिवरात्रिः समागता ।

प्रासादे तत्र मुनयः प्राप्ताः शाण्डिल्यपूर्वकाः ॥  
 शाण्डिल्योऽथ भरहाजो जवक्रीतश्च जालवः ।  
 पुलस्त्यः पुलहो गार्ग्यं स्थान्ये वह्वी नृपाः ॥  
 सोऽपि राजा बृहत्सेनो दशाशाधिपतेः सुतः ।  
 सम्प्राप्तो जागरं कर्तुं तस्य लिङ्गस्य चाग्रतः ॥  
 पूजयित्वा ततो देवं प्रणिपत्य मुनींश्च तान् ।  
 उपविष्टस्तथाप्ये अनुज्ञातोद्विजोत्तमैः ॥  
 नृत्यंस्तस्यायतश्चतुः कथावहुविधो नृप ।  
 राजर्षीणामतीतानां ब्राह्मणानां विशेषतः ॥  
 ऋषे तस्मिन् कथयति तैः पृष्टो ब्रह्मवादिभिः ।  
 कौतुकाविष्टचित्तैश्च विस्मयोत्फुल्लोचनैः ॥  
 राजन् पृच्छामि हे सर्व्वे वयं कौतूहलान्विताः ।  
 यदि ब्रवीषि नः सत्यं देवतायतने स्थितः ॥

राजोवाच ।

यदि ज्ञास्यामि विप्रेन्द्राः कथयिष्याम्यसंग्रयं ।  
 देवस्याग्रे तु संपूज्य सत्येनात्मानमालभे ॥

ऋषयञ्जतुः ।

सुलभानि परित्यज्य कस्माद्दामान्यनेकशः ।  
 जागरं कर्तुकामोऽत्र हा देशादुपतिष्ठसि ॥  
 वर्षे वर्षे सदा प्राप्तिं नूनं त्वं वेत्सि कारणं ।  
 रहस्यं यदि ते न स्वात्तद्ब्रवीहि नराधिप ।  
 सविलस्यं स्मितं कृत्वा ततः प्राह सुदुर्भवाः ॥  
 रहस्यं परमं ह्येतद्वार्थं हि द्विजोत्तमाः ।

तद्यपि वेदपिथामि अन्नदेवाग्रतोयतः ॥  
 ततः स कषयामास पूर्वदेहसमुद्भवम् ।  
 मलिन्नुचनरोनूनं वृत्तान्तं हि नराधिप ॥  
 चौर्यभावेन देवस्य पूजनं जागरस्तथा ।  
 उपवासं विना तेन शिवरात्रौ पुराभवत् ॥  
 जातिस्मरणसंयुक्तं तेषां सर्वं यथातथम् ।  
 कषयामास मूपात्नो वृत्तान्तं पूर्वजन्मनः ॥  
 तत स्ते मुनयः सर्वे साधुवादान् पृथक्विधान् ।  
 नृपोत्तमस्य राजर्षेर्दयाशोर्भिसमन्वितान् ॥  
 रात्रौ जागरणं कृत्वा जग्मुस्ते च तथाग्रमम् ।  
 सोऽपि राजा समभ्यर्च्य तदैव तान् द्विजोत्तमान् ॥  
 अगाम स्वपुरं पश्चात्कृत्वा रात्रिप्रजागरं ॥

भक्तृयुक्त उवाच ।

शिवरात्रिः समुत्पन्ना एवभूमितले नृप ।  
 एवम्बिधं च माहात्म्यं तस्यास्ते परिकल्पितं ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या सा नृपसप्तम ।  
 कलिकाले विशेषेण यदीच्छेद्भूतिमात्मनः ॥  
 एषा कृता विष्णुपेन नस्तेन नहुषेण च । ,  
 मात्स्याचा धुम्भुमारिण सगरेण युयुत्सुना ॥  
 तथान्ये च महीपालाः सम्यक् अद्यासमन्विताः ।  
 प्राप्ताश्च ईप्सितान् कामानृपोदिव्यायचक्षुषा ॥  
 सत्यवताश्च सावित्र्या त्रिया देव्या च सौतया ।  
 अहम्बत्या सरस्वत्या पनया रश्मया तथा ॥

इन्द्राख्या च वृषाख्या च स्वधया स्वाहया तदा ।  
 रत्या प्रीत्या प्रभावत्या गायत्र्या च नृपोत्तम ॥  
 सर्वे प्राणाः परान् कामानतिसौभाग्य संयुतान् ।  
 यथैताः शृणुयाद्वापि पठेद्वा शिवसन्निधौ ॥  
 दिनजात् पातकात् सोऽपि मुच्यते नात्र संग्रहः ।  
 नास्ति गङ्गासमन्तोयं नास्ति देवोद्दरोपमः ॥  
 शिवरात्रिसमं नास्ति व्रतं सत्यं मयोदितं ।  
 सर्व्वरत्नमयो मेरुः सर्व्वार्थसमन्वितः ॥  
 सर्व्वधर्ममयी राजन् शिवरात्रिः प्रकीर्त्तिता ।  
 गरुडः पत्निष्ठां यद्वत् नदीनां सागरी यथा ।  
 प्रधाना सर्व्वधर्माणां शिवरात्रिस्तथोत्तमा ॥

इति स्कन्धपुराणीयेनागरखण्डे शिवरात्रिव्रतम् ।

— ००० —

कृष्ण उवाच ।

चतुर्दशीं महाराज गतमुद्रियते मदा ।  
 नष्टस्तदा हव्यवाहः पुनरस्ति त्वमाप्रुयात् ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कथमग्निः परा नष्टे देवकार्सेणुपस्थितः ।  
 केनाग्नित्वं कृतं तत्र कथं हि विदितन्तव ॥

कृष्ण उवाच ।

पुरा सरा महाराज तारकेण पराजिताः ।  
 अष्ट च न् विश्वकर्मारि तारकं को वधिष्यति ॥

उवाचासौ चिरञ्छात्वा रुद्रोमासस्त्रिसश्वरः ।  
 गङ्गास्वाहाग्निरेजोत्तमः शिष्टहैत्वं बध्निष्यति ॥  
 एवं कृत्वा ब्रह्मा देवा बध्नन्तुः सङ्घोमया ।  
 प्रथम्य ते तमूर्चुर्ह्येवदुक्तं ब्रह्मणा तदा ॥  
 पतिमन्त्रश्च ब्रह्मैव उवाच सहितो नतः ।  
 प्रबलमकरोत्तश्च यदुक्तमसुरैस्तुतः ॥  
 दिव्यं वर्षयतां साधुं ततः कालोऽथ मेघुने ।  
 न चाप्यपरमस्तत्र ततो रस्तात् कश्चन ॥  
 भयञ्च सुमहत्तथा देवानां समजावत ।  
 रुद्रोमासश्चर्षोर्वा वै भविष्यति महाबलः ॥  
 स हैत्वान् दानवगणान् बध्निष्यति न संग्रयः ।  
 केन कालेन भवति रेतो विरतिरेतबीः ॥  
 एतद्दिचिन्म्य प्रहितो देवैस्तत्रामिलानलो ।  
 गतो तो वां मया हृष्टो समस्तो विषमस्त्वया ॥  
 अगपञ्च रुषा देवो देवैः स्मर्हं त्रिवर्जिता ।  
 यस्मान्मे जनित विप्रभयं ह्यति दिवोक्तमां ॥  
 अथोवाच तदा देवादेवान् सर्वगणान् शनैः ।  
 अग्निं शृङ्गातु वायुंश्चै मथतं सुचिरं हि यत् ॥  
 एवमुक्तीऽथ ब्रह्मैव नष्टोऽस्मिर्देवसहस्रात् ।  
 न स्वस्यो न भुविस्त्वादा न न्यस्यस्वी न भूतले ॥  
 देवतायतने यत्नं न कुर्वान्नग्निघर्शनं ।  
 क्रिमिकोटपतंगाय त्वपृष्टो चिदिषीकता ।  
 हं ह्यो केकाः शुक्रं वह्निः शान्नं गद्गण गताः ॥



शशापान्निर्हिं जिह्वाहि हि गुचा वो भविष्यति ।  
 घृष्टा तु विबुधाः सर्वं पक्षिणं पक्षिणावरं ॥  
 जीवन्जीवकनामानं भागोः सत्यं वदस्व नः ।  
 क्वचिदृष्टस्त्वया वक्त्रिर्वनेऽस्मिन्नटता सदा ॥  
 न भद्रं नाप्यभद्रं वा किञ्चिदेव वचोऽब्रवीत् ।  
 भृगोभूयस्तु घृष्टोऽपिनान्यामुच्चारयेद्विरं ॥  
 तुष्टस्तस्याब्रवीद्वक्त्रिखिरञ्जीव वदामि ते ।  
 यस्मान्न किञ्चिदुक्तं ते तस्माच्चित्रतनूरुहः ॥  
 जीव जीव पुनर्जीव यावद्विष्णा तथायुषः ।  
 द्वितीयं ते वरं दधि जीवजीवक शोभनम् ॥  
 व्यक्ता ते मानुषो वाचा स्वष्टार्या च भविष्यति ।  
 कश्चिद्यदि च बाधस्ताद्बुधः स्नानं करिष्यति ॥  
 शस्त्राचापीङ्गीशान् दीपः क्षणाहालो भविष्यति ।  
 मांसं यच्च तृतीयं वै भक्षयिष्यति निन्दितं ॥  
 अजरः सोऽमरश्चैव सर्वकालं भविष्यति ।  
 इदं दत्त्वा वरन्तस्य वक्त्रित्वमक्षप्राप्तवान् ॥  
 विबुधा अपि तत्रैव तमपश्यन् वंश्रगं ।  
 उत्पाद्य जातकर्माद्यं शास्त्रसन्दृष्टमानसः ॥  
 तुष्टा वंशमथोचुस्ते देवास्त्रिभुवनेश्वरं ।  
 जज्ञयाकल्मषीभूत्वा अग्निगर्भान् बरिष्यति ॥  
 येयं हि वैणवीयष्टिः ब्रह्मचारी च नैष्ठिकः ।  
 यश्चाग्निपालनेपुष्यं यद्वष्टं ब्रह्मवादिभिः ॥

बहूतः कल्पस्यै यष्टिं तं प्राप्नोति द्विजोत्तमः ।

वंशस्यानुग्रहं कृत्वा देकाङ्कतिमद्याद्भुवन् ॥

गृह्णीत शुल्कं भद्रस्य तव पुत्रो भविष्यति ।

युधिष्ठिर उवाच ।

यदाग्निर्दृष्टी देवानां केनाधित्वं तदा कृतं ।

भूयोऽपि केन कालेन अग्निरग्नित्वमाप्नुयात् ॥

कृष्ण उवाच ।

त्रिरात्रं विप्र नष्टोऽग्निर्व्येनाग्नित्वं कदाचन ।

यस्मिन् काले तिर्थो यस्यां पुनरग्नित्वमाप्नुयात् ।

उतथ्यांगिरसोः पूर्वमासीद्वातिकरोमहान् ॥

अहं विद्यातपोभ्यां धै न चञ्चयायान् सुते न च ।

उतथ्यै नैवमुक्तस्त अङ्गिरा प्राह तं मुनिं ॥

गच्छ वो ब्रह्मसदनं मदीचिप्रमुखैर्द्विजैः ।

उपेतद्यान्यमुनिभिर्ब्रह्मराजर्षिसत्तमैः ॥

उतथ्यः प्राह स ब्रह्मन् तातृपीत्तप्तमानसः ।

ध्यायान्वा कतमोऽस्माकमिति नः कथ्यतां स्फुटं ॥

अथोवाच मुनिर्ब्रह्मातावभौ क्रुहमानसो ।

आनय बहुधा गत्वा विवुधान् भुवनेश्वरान् ॥

ततो विवाहं पश्यामि भवतां तै समीक्ष्य च ।

ततस्ती सहितो गत्वा ऋषोनिव समानयेत् ॥

लीकपालाद्भृङ्गादीन् सयमान्वा रुषानिलान् ।

साध्यमाद्भृङ्गान् विश्वान् भरद्वाजाच्च नारदान् ॥

गन्धर्वान् वित्तवान् ब्रह्मान् राक्षसान् दैत्यदानवान् ।  
 नायातस्वन्न तिस्रःशः सर्वेषाम्बि समागताः ॥  
 दृष्ट्वा तु विदुषान् सर्वान् ब्रह्मा प्रोवाच तादृशीन् ।  
 ध्यानयध्वमितस्सूर्षं साक्षा दष्टेन वा पुनः ॥  
 एव मुक्त्वा गतस्तावदुत्तमः सूर्यमण्डलं ।  
 स गत्वा प्राह मार्त्तं श्रीभ्रमेद्वावसञ्चिदं ॥  
 स उत्तम्यमधीवाच कथं ब्रह्मन्व्रजाम्यहं ।  
 एव मुक्त्वागतः सूर्योभुवमे मयिनिर्गते ॥  
 एव मुक्तोमुनिः प्रायात् स्वस्वदेवसभागतं ।  
 पाचचक्षे च सत् प्रीक्षं भास्वता तपनंप्रति ॥  
 उवाचाङ्गिरसं ब्रह्मा श्रीभ्रमेव तमानय ।  
 सत्वयोक्तो गतस्तत्र रक्षासौ तपते रविः ॥  
 एष्टेहि भगवान् सूर्य उततद्यभवने पुनः ।  
 एवमुक्तो गतः सूर्यो यच्च देवाः सभागताः ॥  
 स्थित्वा मुहूर्त्तं प्रोवाच किं वा कार्यमुपस्थितं ।  
 पृच्छन्तमेवं मार्त्तं ब्रह्मा प्रोवाच सादरं ॥  
 गच्छ श्रीभ्रं न दहते भुवनं यावदङ्गिराः ।  
 सद्यं प्रयातुं गोलोकं वर्त्तते कृष्णपिङ्गलं ॥  
 पाटलं हरितं शीतं श्वेतोवषं प्रलाशितं ।  
 शाकदीपं कुशदीपं मौञ्जदीपं सपत्तनं ॥  
 दग्धमङ्गिरसा सर्वं भूयोऽपि प्रदृष्ट्विति ।  
 यावन्तं दहते सर्वं भुवनं तपनाङ्गिराः ॥

व्रतचक्रं १८७ भावः ।] हेमाद्रिः ।

गच्छ तावदितः शीघ्रं स्वस्थानेन प्रभास्कर ।  
 एवमुक्तः सविधुना स्वस्थानमधिरुढवान् ॥  
 विष्टिवानङ्गिसङ्काशं सकाशं देवतं रविः ।  
 गत्वाङ्गिरा उवाचेदं गतं किङ्करवान्महं ॥  
 विवृधाङ्गिरस प्राहुस्तपोराशिम कल्पय ।  
 सप्रशस्वाङ्गुरम्नित्वं कुरु तावन्महातले ॥  
 पूर्वं यथाग्निः कृतवान् स्तथात्वमपि सत्तम ।  
 यावदग्निं प्रशस्वामि क्वासीनष्टः क तिष्ठति ॥  
 एवमुक्तः स देवैस्तु अग्निं कृतवांस्तदा ।  
 देवेर्दृष्टो यथाग्निं य स मे सर्वं निवेदितं ॥  
 देवकार्यं कृते तस्मिन् देवा वङ्गिमथाब्रुवन् ।  
 अग्निंऽग्निं कुरुष्वत्वमाङ्गिरसमकल्पयं ॥  
 उवाच सुष्ठु मत्स्थानं वचस्तोषाकरं नृणः ।  
 अहन्ते तनयश्रेष्ठो भविष्ये प्रथमे मुने ॥  
 हृदस्यतीतिमानाय तथा न्येवहवः सुताः ।  
 एव सुक्लो मुनिस्तुष्टो वङ्गं य जनयत् सतान् ॥  
 वङ्गं सो जनयामास पुत्राङ्गोत्रां स्तदाङ्गिराः ।  
 अवाप पुनरत्वाग्निं मग्निं रश्वातिश्रो नृपः ॥  
 स्वपन् सर्वं चतुर्दश्यां सञ्जातो हृदयवाहनः ।  
 हृदयवाहन देवानां भूतानां गृह्यचारिणां ॥  
 ते तेष्वियं तिथिस्तस्मै रुद्रेण प्रतिपादिता ।  
 पूजनेयं तिथिर्हेतुं मुनिभिः पार्थिवैस्तथा ॥  
 गलसन्धातुमन्वाद्यैरन्यमानपुपादिभिः ।

प्रिया सहस्रहृत्पुगां संगामिवैव कुचचित् ॥  
 अन्नानतिथयो ये च व्यालवक्रजलाशयाः ।  
 स्वापदैर्भक्षिता ये च तपनादिषु ये मृताः ॥  
 उद्वन्निक्ता ये च शूलाद्यैरविधानकैः ।  
 तेषांशस्तचतुर्दश्यां तद्वत् स्वर्गसुखप्रदं ॥  
 अनिष्टावैव दशनिदानानि विविधानि च ।  
 प्रभूतफलभोग्यानि उपतिष्ठन्ति ते नराः ॥  
 एवं तिथिरियं राजन्नाग्नायी पठ्यते जनैः ।  
 सैन्द्रीं केचिद्वदन्त्ये रुद्रोग्निरिति पठ्यते ॥  
 अस्यां मनोरथावाप्तिः कृतायां स्यान्नशंसयः ।  
 अथ नक्तोपवासस्य विधानं शृणु पार्थिव ।  
 (नक्तमेवोपवासः) येन विज्ञानमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 शिवार्चनपरोभूत्वा जितक्रोधः शुचिर्नरः ।  
 वसुधाभाजनं कृत्वा भुञ्जीयाद्भक्तभोजनं ॥  
 उपवासात्परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितं ।  
 प्रायाचितात्परं नक्तं तस्मान्नक्तेन वर्त्तयेत् ॥  
 देवैस्तु भुक्तं पूर्वार्द्धे मध्याह्ने मुनिभिस्तथा ।  
 अपराह्णे तु पितृभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः ॥  
 सर्ववेलामतिक्रम्य नक्तभोजी तथा भवेत् ।  
 हृदयभोजनं स्नानमाहारस्य च साधवं ॥  
 अन्निकार्यमधः शय्यां नक्तभोजी समाचरेत् ।  
 सन्ध्यायां मण्डलं कृत्वा शुचिना गोमयेन तु ॥  
 दीपं दद्यात्तद्यार्घ्यं च पुष्यगन्धाक्षतैः फलैः ।

• आपदेरक्षित।येषति पुस्रकानरे पाठः ।

मन्त्रेषानेन राजेन्द्र ध्यात्वा चेतसि बह्वरं ।  
 भूतभर्ता विभुर्देवः स्वयम्भूः सर्वगः शिवः ॥  
 ममार्घ्यं दानसंप्रीत स्त्रिधा पात्रं व्यपोहत् ।  
 दत्त्वाद्यं ब्राह्मणं भोज्यं स्वयं भुञ्जीत वास्यतः ॥  
 एवं संवत्सरस्यान्ते व्रते पूर्णं सदक्षिणे ।  
 दद्यात्तामीकरं पात्रं रोष्यं वा ताम्रमेव च ॥  
 अशक्तो कृष्णयं पात्रं पूर्णं गव्येन सर्पिणा ।  
 पूर्णकुम्भोपरि स्थाप्य श्वेतवस्त्रयुगन्तया ॥  
 सौवर्ण्यं च शिवं व्रजया स्थाप्य पश्चात्पतादिना ।  
 वस्त्रोपरि समास्थाप्य पूजयेत्प्रकृतितत्परः ॥  
 पुष्पैर्गन्धैस्तथा धूपैः सदीपैः सहचन्द्रमैः ।  
 एवं संपूज्य विधिवदर्घ्यमष्टाङ्गं मुत्सृजेत् ॥  
 देवस्य पूज्यमन्त्रेषु भक्तिभावेन भावितः ।  
 फलं पुष्पं गवां क्षीरं दधि दूर्वाङ्गु रास्त्रिधाः ॥  
 चन्दनं तण्डुलास्तोयमर्घ्यमष्टाङ्गमुच्यते ।  
 फलादिभिरष्टभिर्युक्तं तोयमष्टाङ्गम् ॥  
 शिरसा धारयित्वा तु जानुभ्यामवनीकृतः ।  
 महादेवाय दातव्यं गन्धधूपं सखात्मकम् ॥  
 भस्मोदनैर्बर्लिं दत्त्वा प्रथम्य परमेष्ठिनम् ।  
 धेनुं सदक्षिणां दद्याद्द्विजप्राठा विवर्जितः ॥  
 श्रीचिदाय च दातव्यं पुराणविदुषे द्विजे ।  
 एतं भक्त्या प्रदद्याद्यः सर्वमेतदुदाहृतं ॥

( १० )

सर्वपापविनिर्मुक्तः पुत्रपौत्रसमन्वितः ।  
 धनधान्यसमायुक्तो जीवेत्तु शरदां शतं ॥  
 अन्तकाले शिवं स्मृत्वा शिवलोकं व्रजेन्नरः ।  
 तत्र स्थित्वा स चत्वारि युगानि परया मुदा ॥  
 चेतायां पार्थिवेन्द्रोऽसौ भूयाद्भरतसत्तम ।  
 यस्त्वष्टमीषु च शिवासु चतुर्दशीषु  
 नक्तं समाचरति शास्त्रविधानदृष्टं ।  
 स्वर्गाङ्गनाकुलरवाकुलिते विमाने  
 आरुह्य याति सुसुखेन महेशलोकं ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्तं चतुर्दशीव्रतं ।

— ००० —

युधिष्ठिर उवाच ।

अश्वपूर्णतडागेषु महातोयाग्रामेषु च ।  
 कस्यान्वयं संप्रयच्छन्ति क्षण्ये ताः कुलपोषितः ॥

कृष्ण उवाच ।

मासि भाद्रपदे पक्षे शुक्ले भूततिथौ नृप ।  
 तदा भक्त्या प्रदातव्यं वरुणायाध्यं मुत्तमम् ॥  
 ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैस्त्रोभिस्तथैव च ।  
 फलपथैस्तथावस्तैर्दीपालक्तकचन्दनैः ॥  
 विरूढैः समधान्यैश्च दधिपिष्टाश्वचन्दनैः ।  
 अग्निपाकमिश्रैस्त्रैस्तलतण्डुलमिश्रितैः ॥

ब्रह्मरुनीरकोलेषु बोजपूर्णातुकेस्तथाः ।

आतुकं फलविशेषः ।

द्राक्षाद्वाङ्गिमपूगैश्च पुष्पैश्चापि प्रपूजयेत् ।  
 आलिख्य महल्ले देवं वरुणं यादसांपतिं ॥  
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्रे पूजयेद्भक्तिभाषितः ।  
 वरुणाय नमस्तुभ्यं नमस्ते यादसांपते ॥  
 अपांपते नमस्तुभ्यं रमानां पतये नमः ।  
 माङ्गदं मा च दीर्घं वैरभ्यं मा मुखेऽस्तु मे ॥  
 वरुणो वारुणीभर्ता वसुदोऽस्तु मदा मम ।  
 एवं यः पूजयेद्भक्त्या पुरुषो वरुणं नृप ।  
 मध्याह्नेऽनग्निपाकं हि भुङ्क्ता नियतमानसः ।  
 चतुर्वर्णीऽथवा नारी व्रतेनानेन पाण्डव ॥  
 निवेद्यं ब्राह्मणे देयं नैवेद्यञ्च प्रकल्पयेत् ।  
 एवं यः कुरुते पार्थिवान्नीव्रतमनुव्रतं ॥  
 तत्क्षणात् सर्वपापेभ्यो मुच्यतेनात्र मंगलः ।  
 यथा समुद्रे मानं हि ज्ञायते नैव केनचित् ॥  
 एवं हि व्रतिनाङ्गिहे धनं ज्ञातुं न शक्यते ।  
 आयुषा यशसा कीर्त्या सौभाग्येन वलेन च ॥  
 युज्यन्ते व्रतमाहात्म्याफलं वा नात्र मंगलः ।

संरुहशुद्धमलिलातिवली विगाला

पालीमुपेत्य बहुभिस्तनुभिः कृतानी ।

\* बोजपूर्णावर्कदेशेति पलकालरे पाठः ।

† च पुष्पैश्चिति क्वचित् पाठः ।



ये पूजयन्ति वरुणं सहितं समुद्रे  
 तेषां गृहे भवति भूतिरनर्घगाधा ॥  
 इति भद्रिष्योत्तरोक्तं पालीचतुर्दशोद्वर्तम् ।

— ०८० —

कृष्ण उवाच ।

अस्मिन्नेव दिने पार्थ ऋण ब्रह्म सभातले ।  
 देवलेन पुरा गीतं देवर्षिगणसन्निधौ ॥  
 कृपया परया पार्थ कलाव्रतमनुत्तमं ।  
 तत्ते ऽहं संप्रवक्ष्यामि लोकानुग्रहकारकं ॥  
 नाकपृष्ठे पुरा देवैर्गन्धर्वैर्यज्ञकिन्नरैः ।  
 अम्बरोऽमर कन्याभिर्नागकन्याभिरर्चिताः ॥  
 संसारासारतां ज्ञात्वा कदलीनन्दने स्थिताः ।  
 शक्ते पक्षे चतुर्दशां मासि भाद्रपदे नृप ॥  
 देयमर्घ्यं वरस्त्रीभिः फलैर्नामाविधैस्तथा ।  
 विरूढैः समधान्यैश्च दीपालकाकचन्दनैः ॥  
 दधिदूर्वाधतैर्वस्त्रैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः ।  
 जातीफलैः पूगफलैर्लवङ्गकदलीफलैः ॥  
 तस्मिन्नहनि दातव्यं स्त्रीभीरम्याभिरप्यर्णम् ।  
 मन्त्रेणानेन चैवार्घ्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥  
 चित्तेत्वां कदलीनित्यं कदली कामदायिनी ।  
 शरीरारोग्यलावण्यं देहि देवि नमोऽस्तुते ॥  
 इत्थं यः पूजयेद्ब्रह्मां पुरुषो भक्तिमासृप ।

नारी वानग्निपाकात्वा वर्णाश्च चतुरोपि वा ॥  
 तस्मिन्कुले न हि भवेत् काचिन्नारी कुलाटनी ।  
 दुर्गता दुर्भंगा व्यङ्गा स्वैरिणी पापचारिणी ॥  
 विलासनी वा वृषली पुनर्भूःपुनरेव सा ।  
 गणिका फेनवारावा च्छलकर्षकरी खला ॥  
 भर्तृव्रताश्च चलिता न कदाचित् प्रजायते ।  
 भवेत्सौभाम्यसौख्याटा पुत्रपौत्रत्रियावृता ॥  
 आयुष्मती कीर्तिमती जीवेद्दुर्घशतं मुवि ।  
 एतद्व्रतं पुराचीर्णं गायत्र्या स्वर्गसंस्थया ॥  
 तथा गौर्या च कैलासे पौलोम्या नन्दने वने ।  
 खेतहीपे तथा लक्ष्म्या राधया भुविमण्डले ॥  
 अरुन्धत्या दारुवने स्वाश्रया मेरुपर्वते ।  
 सीतया चित्रकूटे च वेदवत्या हिमालये ॥  
 मानुमत्या कृतं पार्थ नगरे नगराह्वये ।  
 श्रेष्ठव्रतमिदं भद्रं भद्रं भाद्रपदे सति ॥  
 यत्करोति न सा दुःखैः कदाचिद्भिभूयते ॥

उद्भिन्नकन्दलां कदलीं मनीषां  
 ये पूजयन्ति कुसुमाक्षतधूपशीपैः ।  
 तेषां गृहेषु न भवन्ति कदाचिदेव  
 नार्याश्चनार्याश्चरिता विधवा विरूपाः ॥

इति भविष्योत्तरीक्तं कदली व्रतं ।

युधिष्ठिर उवाच ।

लोकप्रसिद्धाः श्रूयन्ते श्रावण्यो नाम देवताः ।  
काएताः किञ्च कुर्वीत धर्मन्तासां ब्रवीहि मे ॥

कृष्ण उवाच ।

विद्यन्ते देवताः पुण्याः श्रावण्यो नाम पाण्डव ।  
ब्रह्मणा प्रथमं सृष्टा नियोगश्च जने कृतः ॥  
योयद्ददति लोकोऽत्र शुभम्वाप्यथवाशुभं ।  
प्रापयन्ति च ताः शीघ्रं ब्रह्मणः कर्णगोचरं ॥  
अतश्च लोके पूज्यास्ता नियमेन प्रजापतेः ।  
दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूरादर्शनगोचरं ॥  
तासामस्तीतियत्पार्थ अचिन्त्यतर्कहेवभिः ।  
नरैस्तुष्टैश्च पुष्टैश्च श्रोतव्यं कार्यकारणात् ॥  
तं श्रावयन्ति धात्रे स्याच्छ्रावण्यस्तीन ताः स्मृताः ।  
यथा देवा यथादैत्या यथा विद्याधरा नराः ॥  
यथैह सिद्धमन्थर्व्यां नागाः किंपुरुषाः खगाः ।  
राक्षसाश्च पिशाचाश्च देवानामष्टयोनयः ॥  
तथैताः पुण्यकर्तृत्वादिन्द्राद्याः श्रावणिकाः स्मृताः ।  
तासामुद्दिश्य कर्तव्यं व्रतं नारीनरैः सह ॥  
किन्तु तासां महोद्ये तु व्रतसंयमनं सदा ।  
आघ्राय धूपं पक्वान्नं जलं वा गन्धमेव च ॥  
दातव्यं पुनरन्यासां नारीणां भोज्यपारणे ।  
अन्यव्रतपारणे भुक्तं चेत्स्वयमपि तद्व्रतं

कर्त्तव्यं नीचेदक्ष्यमाणदोष इति महीयत्वात् ॥  
 अदत्त्वा यदि मृत्युः स्यादन्तकालेऽपि पाण्डव ॥  
 तदा गलग्रहग्रस्तस्यामुखाः स्युर्धर्वरश्मनाः ।  
 सफेनरुधिरीद्वारा स्त्रियस्तेऽतीव दुःखिताः ।  
 शूयते तु पुरा पार्थ पृथिव्या मनवो नृपः ॥  
 तस्य भार्या महादेवो जपश्रीर्नाम भारत ।  
 सर्वाङ्गरूपसम्पन्ना सर्वैः समुद्रिता गुणैः ॥  
 भर्तृसुश्रूषणपरा भर्तृसातीव वल्लभा ।  
 सा कदाचिद्वता स्नातुं गङ्गाया प्रायमे मुनेः ॥  
 वगिष्ठस्य ददर्शाथ सार्धं भार्यामरुन्धती ।  
 भोजयन्ती मुनीनान्तपत्नीनां नामभोजनैः ॥  
 तथा च प्रणिपत्याथ पृष्ठा देव्या महासती ॥  
 पूज्यते भगवति ब्रूहि किमेतद्गतमुच्यते ॥  
 ममापि कुरु कन्याणि करुणां त्वं महासति ।

अरुन्धत्युवाच ।

शृणु भद्रे प्रवक्ष्यामि नाम्ना यावणिकं व्रतं ।  
 एतद्भर्ता समाख्यातं वसिष्ठेन महात्मना ॥  
 गुह्यं धर्मस्य सर्वस्व पतिव्रतकरं शुभ ।  
 गच्छ वा तिष्ठ वा रात्रि तवातिथ्यं करोम्यहं ॥  
 एवमुक्त्वा जयश्रीस्तु भोज्य तस्मिन्वदृच्छया ।  
 वुभोजातिप्रियं पार्थ मुनि पद्मराक्तादरात् ॥  
 भक्ताचम्य जगामाशु स्वपुरं परमेश्वरी ।

\* ममापि इति पुस्तकान्तर प्राठः ।

कालेन विस्मृतं तस्यास्तद्व्रतन्तु सभोजनं ॥  
 ततः सा समये पूर्णं न्नियमाणा महासती ।  
 जयश्रीं घर्घरारावं कुर्व्याणा कण्ठगद्गदं ॥  
 फेनं लालाविलं वक्रादुद्गिरन्ती मुहुर्मुहुः ।  
 स्थिता पञ्चदशाहानि वीभत्सादारुणाननाः ॥  
 ततः षोडशमे प्राप्ते श्रुत्वा चेष्टामरुन्वती ।  
 प्रविष्टाभ्यन्तरन्तूर्णं तां राज्ञीमवलीक्य च ॥  
 नहुषाय समाचष्टे यद्भुक्तं श्रावणीव्रते ।  
 तच्छ्रुत्वा नहुषी राजा व्रतं भोज्यं चकार वै\* ॥  
 यद्योक्तं तदरुन्वत्या पुष्कलं यावदीप्सिगितं ।  
 दत्ताय करका श्रष्टौ उद्दिश्य च जयश्रियं ॥  
 चणाञ्जगाम पञ्चत्वं मुक्ताजायगीं जनाधिप ।  
 जगाम शक्रलोकं सा विमानेनार्कवर्चसा ॥  
 दोधूयमाना चमरैस्तयमाना सुरासुरैः ।

बुधिष्ठिर उवाच ।

किं तत्र देव कर्त्तव्यं पुरुषैः पुरुषोत्तम ।  
 सुविस्तरं मम ब्रूहि स्त्रीभिर्वा श्रावणीव्रतं ॥

कृष्ण उवाच ॥

मार्गशीर्षेऽमलेपक्षे चतुर्दश्यां नराधिप ।  
 षष्टम्बाच्च नरः स्नात्वा मध्याह्ने विमले जले ॥

\* राजाभुक्तं मोहं चकारवे इति पुस्तकान्तरेपाठः ।

† चणाञ्जनाधिप इति पाठान्तरम् ।

आमन्त्रयेच्च गौरिस्थः शत्रुघ्नकामधापि वा ।  
 सदाचाराः सगोत्रिणो ब्राह्मणो वा स्वयत्कृतः ॥  
 यथैकं ब्राह्मणं तत्र वेदवेदाङ्गपारगं ।  
 मन्त्रमितिहासमन्त्रं शुचिं ग्राम्तं जितेन्द्रियं ॥  
 अर्घ्यं दत्त्वा विधानेन पादक्षालनपूर्वकं ॥  
 चन्दनेन सुगन्धेन पुष्पधूपदिभिस्तथा ।  
 धीवासूत्रकसिन्दूरकुङ्कुमाद्यैर्विभूषयेत् ॥  
 ततो दद्यात् सुपक्वान्नं भक्ष्यभोज्यमनुत्तमं ।  
 तासामथेषु दातव्या वर्षन्त्यो द्वादशैव तु ॥

वर्षन्तो वारिधानी ।

अष्टिद्रा जलपूर्णीस्तु सुव्यक्ताः सूत्रवेष्टिताः ॥  
 सीमालकैस्तु सञ्ख्याः पुष्पमालाविभूषिताः ।  
 चन्दनेन समालम्बाः सहिरण्याः पृथक् पृथक् ॥  
 तन्मध्ये वर्षनीमेकां स्रक् शीर्षे निधापयेत् ।  
 स्थित्वा मण्डलके पार्श्वे यजमानः स्वयं तदा ।  
 द्रुममृच्चारयेन्मन्त्रं ध्यात्वा मनसि केगवं ।  
 यद्वात्ये यच्च कौमारे वार्दिके वापि यस्मिन् ॥  
 ऋणं मे तत्समं यातु पितृदेवमनुष्यजं ।  
 अयं मे समयः पूर्णस्तारयन्म भवार्णवात् ॥  
 अन्वृणो गन्तुं मिच्छामि विष्णोः उदमनामयं ।  
 एवमस्त्विति तां ब्रूयुः स्त्रियः सर्वा युधिष्ठिर ॥  
 ततो ब्राह्मणमाह्वयं यजमान इदं वदेत् ।

( १८ )

ब्रूहि साङ्गण मन्मन्व' सुने येनाचयं व्रजेत् ॥  
 ततस्तां शीघ्रं संख्यातुं वर्हणीं पाण्डुनन्दन ।  
 उच्चारयौत यत्नेन मन्त्रेषामेन सच्चिजः ॥  
 अमुष्याः शिरसोदेव्याः समूर्त्ता दह मेऋण' ।  
 कदुकं निस्त्रयक्ष्मा ततोमधुकमातुह' ॥  
 ततो गच्छ मन्त्रादेवं आव्यं आवणिके शुभे ।  
 एवमुच्चार्यतां विप्रो वचनं शिरसातदा ॥  
 तावद्दैनिकान्तस्मै विप्राय प्रतिपादयेत् ।  
 इति ताः समयं कृत्वा दस्वाशीघ्रंवनानि च ॥

समय एकवाक्यता ।

गृहीत्वा करका नार्यीं व्रजेयुः स्वं निकेतनं ॥  
 गृहीत्वाकरकं भुङ्क्ता समये वा प्रयच्छति ।  
 स्वगृहे पाथिव अष्ट आवणीव्रतमादरात् ॥  
 तस्याः काले तु संप्राप्ते सुखे मृत्युः प्रजायते ।  
 धनधान्यसमायुक्ता पुत्रपौत्रैरलङ्कृता ॥  
 भर्तृशुश्रूषणपरा आधिव्याधिविर्वर्जिताः ।  
 सौभाग्यातुलसंयुक्ता जीवेद्वर्षव्रतं सती ॥  
 अन्तकाले हरिं स्मृत्वा प्रयाति हरिमन्दिरं ।  
 \* जाता जाता तु मर्त्येषु गौर्याः सा वक्रभा भवेत् ॥  
 पुरुषोऽपि व्रतं चीर्त्वा विधिनानेन पाण्डव ।  
 पुम्भिस्तु समयं कृत्वा फलमेतदवाप्नुयात् ॥  
 भक्त्या शृणुन्ति ये लोका पठ्यमानमिदं व्रतं ।

\* जाताहुमन्त्रेभक्तः सा कृत्वा सा वक्रभा भावदिति पाठान्तरं ।

सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गं यास्यत्यसंग्रयं ॥  
 उद्दिश्य देव पित्रसिद्धिगणान् अवप्यो  
 नार्थी न वं हि जनितं स गुहाज्यमन्नं ।  
 या भोजयन्ति करकाय जलान्नयुक्तान् ।  
 यच्छन्ति ता भुवि विद्वत्य सुखं त्रियन्ते ॥  
 इति भविष्योक्तरोक्तं श्रावणिका व्रतं ।

श्वशुर उवाच ।

अनिष्टा योऽप्यभेधादीन् तमापि महत्तपः ।  
 अदस्वा ब्राह्मणेभ्यश्च हेमं विद्याश्चलो भवान् ॥  
 अस्नात्वाखिलतीर्थेषु अनधीत्याखिलान्मुतीः ।  
 अनभ्यस्यान्नयोगश्च कथमिष्टां गतिं व्रजेत् ॥  
 सर्वकामाप्तये किञ्चिद्दिदृश्लोके परत्र च ।  
 कथं स्याच्छिवलोकश्च पुनरावृत्तिदुर्लभः ॥  
 ब्रह्महत्यादिपापैर्विबुजन्मन्नतैरपि ॥  
 कथं अथाहिसुच्येत तन्मे कथय धरम सुख ।  
 अन्नत्वापि शिवस्यार्चां पुराणोक्तैः सुविस्तारैः ॥  
 अल्पायासेन यस्तुष्टः शिवो देवश्च तद्दद ।

स्कन्द उवाच ।

शीर्षं व्रते महाराजे सर्वमेतद्वाप्यते ।  
 मुनेस्वर्गापवर्गाद्यं सद्यः शङ्करतुष्टिदं ॥  
 चतुर्दशैकुम्भजातशिवनक्षत्रसंयुता ।  
 कुम्भजातैस्त्रयस्त्रयस्य सम्बोधनं । शिवनक्षत्रमाद्री ।



यावाभाद्रपदा युग्मस्यैकेन सहिताधुना ।

पूर्वाभाद्रपदीन्तरा भाद्रपदयोर्युग्मस्य मध्ये एकेन यायुक्ता  
भवति सावा इत्यर्थः ।

तस्यांश्चि त्रिपुरं रुद्रो जितवानभ्यक्तथा ।

क्षपयामास दक्षश्च चक्रे दर्पवियुक्तकं ॥

जयदानादमौतस्मात्तिस्रिः शङ्करतुष्टिदां ॥

तस्याङ्गोरी वरं लेभे तस्मादेव वरा शुभा ।

तस्यां जातश्च नकुली नाम देवः स्वयं शिवः ।

तस्मादतिशिवप्रौढ्यै व्रतं तस्यां कृतं भवेत् ।

ददाति देवो राज्यञ्च विमुक्तिञ्चापि शङ्करः ॥

महाराजव्रतानाञ्च शिवस्यैव तु तीषणत् ।

व्रतान्येतानि सर्वाणि बहूनि कृतवान्नरः ॥

अश्वभेधसहस्रैस्तु राजसूयशतैरपि ।

नानाव्रतैस्तथाचीर्णैर्योगाभ्यासैस्तथोत्तमैः ॥

फलं व्रतेन चीर्णं महाराजेन नो समं ।

विप्रेभ्यः शुभपात्रेभ्यः कपिलानां सतार्तुदं ॥

यो दद्याद्य इदं कुर्यात्तयोरेतत्करोवरः ।

सप्तदशैश्च तेश्चोः कल्पकोटिशतैरपि ॥

पूजितस्याहमिति च हरि राहः स्वयं वचः ।

जन्मकोटिशतैर्यत्र भवेत् पुण्यमनुष्ठितं ॥

तच्च व्रतं महाराज अविघ्नं कर्तुमर्हसि ।

अगस्त्य उवाच ।

व्रतराजस्य माहात्म्यं श्रुतव्यसोमया गुह्यं ।

अधुना त्र्योतुकामोहं विधिं तस्यैषितप्रदं ॥

स्कन्द उवाच ।

यदा गणस्य चतुर्दश्यामाद्रीं भाद्रपदाद्यथा ।  
शितायामसितायां वा न विशिषो यथा गवि ॥  
तदा लब्धैकभूर्भूत्वा त्रयोदश्यां यथाविधि ।  
सर्व्वव्रत\* मञ्जाराज तदा संकल्पयेत्तरः ॥  
चतुर्दश्यां ततः कुर्यात्तिलगोमृत्तृगोमयैः ।  
मृदाथ पञ्चगव्येन ज्ञानं शुभास्वना ततः ॥  
शिवसंकल्पमन्त्रस्य ततो दशशतं पठेत् ।

शिव संकल्प मन्त्रो यथाप्यती

दूरमित्यादिर्यजुःशास्त्राप्रसिद्धः ।

षडक्षरस्तु शूद्रस्य जम्बूकोटि कर्तैस्ततः ।

षडक्षरस्तनमः शिवायेति ।

मुच्यते पातकैः सर्वैस्तत्कृत्वा नात्र संशयः ।

गृहे पञ्चामृतैः शम्भुं स्नापयेदुमयामह ॥

पञ्चगव्येक्षुनिर्यामगन्धतोयैस्तथोषधैः ।

पुष्करेक्षपिलाधेनूकोटिदानफलं लभेत् ॥

गोरोचना चन्दन कुङ्कुमैला

कर्पूर लक्ष्णागुरुदेव काष्ठैः ।

कस्तूरिकाद्यैरनुलिप्य शम्भुं

प्राप्नोति पुण्यं हृद्यमेधकाशं ॥

त्रीपञ्चकैः कुशशमीमरिचैस्तु लक्ष्या

\* सर्व्वं व्रतेषु सुमहाविति पुण्यकान्तरे पाठः ।

श्रीफालिकाभिरतिमुक्तकमलिकाभिः ।

ओमालतीकुमुदकैः शतपत्रभृङ्गैः

मार्सीऽपवासशतकोटि फलाय पूजा ॥

श्रीविष्णुः पद्मिनी । भृङ्गामार्कवः ।

पञ्चाङ्ग धूपमधवा विहितं दशाङ्गं

दद्याद्दृष्टताक्तगुडं गुग्गुलमीशराये ॥

सर्वाभिर्मां बसुमतीन्धनधान्यपूर्णां

दत्त्वाफलं भवतियत्तद्वाप्यमाशु ।

सुगन्धतैलीज्वलदीपमालां

गवाञ्चजातानधवा प्रदीपान् ॥

दत्त्वाशिषीवाथ कुमारिकाणां

कोटिप्रदानस्य फलं लभेत ।

क्षैरेयवटकासारमीदकाशोक वर्तिभिः ।

निवेदितैः कुरुक्षेत्रे हैमदानस्य पुण्यभाक् ॥

प्राग्धीवमूर्धरोमाथ न्यसेत् कृष्णाजिने व्रतौ ।

महेश्वरस्य पुरतः इतिशेषः ।

राशिंशिलाकृतं तत्र कुर्यादाटकमानतः ।

न्यूनन्तु प्रस्थयुग्मेन दरिद्रप्रस्थ मानतः ॥

शुभं दारुमयं पीठं विस्तीर्णमुपरि न्यसेत् ।

कुङ्कुमोदसर्जनस्नानं न्यसेत्तपोपरि द्विकं\* ॥

द्विकं उभामहेश्वराख्यं ।

सितवस्त्रेण संवेष्टा तं कुर्यात्सुखिरं ततः ।

\* द्विपमिति पुस्तकान्तरे पाठः; द्विपंचलिभं ।

तं द्विपं ।

उत्तरेण ततोन्वत्तु सितवस्त्रावृतं न्यसेत् ॥

अन्यद्वितीयं द्विपं ।

अयोहारमततो मध्ये त्रिशूलं परशुं धनुः ।

असिङ्गपालं खट्वाङ्गं गङ्गां सीमं महावृषं ॥

हेमान्येतानि संस्थाप्य हेमङ्गोमिधुनं तथा ।

अनन्तरं गजयोर्मध्ये द्वारं न्यसेत् ततो द्वारं गजमहेन्द्र-  
राणां मध्ये त्रिशूलं परशुं धनुरादीनि न्यसेत् ।

गन्धपुष्पाद्यतेर्धूपैर्दीपै र्वस्त्रै र्निवेदनैः ।

स्नेहपक्वैर्भक्ष्यभोग्यैः फलैश्चिचैश्च पूजयेत् ॥

अध्यापयित्वा विप्राणां कीटिं विदत्तुष्टयं ।

दत्त्वा सर्वपुराणानि यत्फलं तत्फलं लभेत् ॥

एकामृषं यजुषैकं सामैकश्चाप्यथार्वण्यैः ।

सकलजन्तून् चतुर्वेदं परायणशतं लभेत् ॥

प्रदक्षिणीकृत्य मुनेषु दण्डव

त्पुण्यदेवं दशकृत्व ईश्वरं ।

विमुक्तिमाप्नोति नि काममानः

स काममाप्नोति यद्यार्थितं व्रतौ ॥

विश्वपचसहस्रान्तु शिवसंकल्पमुच्चरन् ।

ब्रह्मकं वा जपन् मन्त्र इति बाह्यो मये जतः ॥

सर्वं तीर्थेषु यः ज्ञातः सर्व्यज्ञेषु सर्वदा ।

सर्वं व्रतं कदाप्नोति यत्फलं तत्फलं लभेत् ॥

अथ दद्याच्छिवस्यार्घ्यं गन्धपुष्पाक्षतैः सितैः ।

सवञ्चमणि माणिक्यैर्मुक्तामरकतैः सह ॥

रत्नहेमरजतादिभाजने

कांस्यताम्रमयभाजने तथा ।

आहतार्घ्यमवनीस्थजानुकी

भाजने द्विजललाटगेंजली ॥

शिवाय शान्ताय समस्त हे तवे

नमोस्तुते सर्वगसर्ववेदिने ।

अनन्तसर्वेश्वरसर्वदायिने ।

नमोस्तु सर्वार्चितवाममूर्त्तये

मन्त्रेणानेन दत्त्वा र्घं कुरुष्वेत्तरविग्रहे ।

गोभूहेमादिकं दत्त्वा यत्फलं लभते व्रती ॥

मोक्षोपिसुलभस्तस्य देव राज्येषु का कथा ।

तस्मा व्रते महाराजे महेशायार्घ्यं मुत्तमं\* ।

नयेन्निशाशेषमशेषशर्वरो'

प्रजागरं स्तैस्तवकीर्त्तनादिभिः ।

भवेत्पुमांसो न नरकारादिकारणं

हे कृष्ण नाकार्यफल महात्मनां ॥

दिवा वानिशिवा या च ढट् शुधातत् समागमः ।

कृष्णाजिनादिकं तावत् सर्वं मन्त्रेण कल्पयेत् ॥

सर्वोयस्करयुक्ताश्च कपिला दश पञ्च वा ।

हौ तथैकां शुभांशुं मन्त्रेणैव प्रकल्पयेत् ॥

\* यावत्तियर्थं समामम रति पुत्रकामार्थं पाठः ।

प्रीयतां मम शिवः सनातनः  
 क्लृप्तपत्रय करीमहेश्वरः ।  
 तोषितो व्रतमहाराजो  
 भुक्तिमुक्ति फलदोऽस्तु मे सदा ॥  
 ततः प्रभाते पुनराशितो व्रतौ  
 द्विजायदध्याह्निकदिदेशिकाय ।  
 मुनीन्द्रकृष्णाजिनपीठपूर्वकं  
 प्रदान मन्त्रेण कृताञ्जलिस्थितः ॥  
 प्रसीद सर्वेश्वर मामुमापते  
 समुहरास्माद्भववारिर्धनतं ।  
 सदाव्रताधिराजेन मयासि सत्कृत  
 स्ववासीति तारं शरणागतोऽहम् ॥  
 इति शमीक्ष्यमनमस्कृति पूर्वकं  
 गुरुवरो यथोक्तमिदन्दत् ।  
 शिव लयम्बिदधाति स ग्राह्यतो  
 नपुनरेति घटोद्भवसन्निधिं ॥  
 पञ्चगव्यन्ततः प्राश्य व्रतौ तूष्णीं कृताग्रनः ।  
 सर्वं विघ्नानि विच्छिष्य प्राप्नोति परमं पदं ॥

स्कन्द उवाच ।

अत्रापि श्रूयते गस्त्रविष्णुदेवोऽजित्तमः ।  
 क्रीडाविनोदपरमं उमाया देवसंसदं ॥  
 रविब्रह्मादयो देवा निर्जितास्तेन तेजसा ।

( १८ )

तेभिर्भूतप्रभासा च भीता ब्रह्माणमावयुः ॥

ब्रह्मोवाच ।

पुराव्रतं महाराजं चक्रे चैव पितामहः ।  
 मुहूर्त्तक्रियमाणस्तश्चिन्वादेवीयमैक्षत ॥  
 तत्प्रसादात् प्रभावोयं सदा क्षिपति विपराट् ।  
 त्रिलोकात् खल्लितास्त्वस्य सर्वसप्तोकपूर्वकाः ॥  
 दृष्ट्वा व्रतं महाराजं भवद्ग्रीभ्यधिकः प्रभः ।  
 यथा व्रत महाराज मत्तः कुरुत देवताः ॥  
 यस्तु स्वयं व्रतं चक्रे मुहूर्त्तोऽस्याः क्षितामहः ।  
 स मोक्षं दुर्लभं लेभे मुहूर्त्तो न पुनर्भवः ॥  
 अहं चैतद्भ्रतं चोर्त्वा विश्वकारित्वमाप्नुयात् ।  
 लोकस्तथापि व्यामोहं वित्तशायस्य कारणात् ॥  
 स्कन्दोऽपि पितरं सभूं लोभे कृत्वा त्विदं व्रतं ।  
 अरूपां प्रियां प्राप्नोति वित्तशायस्य कारणात् ।  
 सुरराज्यमपि प्राप्तः शक्रीमुष्माङ्गते त्रियं ॥  
 भ्रष्टराज्यो भवेद्भूयो वित्तशायस्येकते सति ।  
 त्रीपतित्वं हरिर्लेभे भानुर्लेभे परं शुभं ॥  
 कृत्वा व्रतं महाराजसुमाचापि पतिं शिवं ।

स्कन्द उवाच ।

शुचैतच्चतमाहात्म्यं प्रापुर्भूयाश्चरतीं त्रियं ।  
 दृष्ट्वा व्रतं महाराजं व्रतं चक्रुः सुरासुराः ॥  
 पठति य रदमित्थं यः शुचोतीक्षते वा

अयित सकल पापस्तत्क्षणाद्वा कमेति ।  
 सुरवरजनपूज्यः प्रेरको यस्य पुंसी  
 जगति कलुषह्रीनः सोपि यो लेखकश्च ॥

इति स्कन्दोपुराणोक्तं महाराज व्रतं ।

—000—

कार्तिकस्याश्रिते पक्षे चतुर्दश्यां नराधिप ।  
 सोपवासः पञ्चगव्यं पिबन्नाद्रौ जितेन्द्रियः ॥  
 कपिलापास्तु गोमूत्रं कृष्णाया गोमयं तथा ।  
 श्वेतधेनोस्तथाक्षीरं रक्तायाश्च ततो दधि ॥  
 गृहीत्वा कर्बुरायाश्च घृतमेकत्र मेलयेत् ।  
 वेदोक्तमन्त्रै राजेन्द्र कुशोदकसमन्वितं ।  
 ततः प्रभातसमये स्नात्वा सन्तर्प्य देवतां ॥  
 ब्राह्मणांस्तोषयित्वा तु भुञ्जीयात् वाग्यतः शुचिः ॥  
 शृणु ब्रह्मन् व्रतं ह्येतत् सर्व्वपाय प्रणाशनं ।  
 यच्च बाह्ये पिकीमारे वार्धके चापि यत्कृतं ॥  
 ब्रह्म कूर्चोप वासेन तत् पापं नश्यति क्षणात् ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं ब्रह्मकूर्चं व्रतं ।

—

चतुर्दश्यान्तु नन्नायी समान्ते गीयुगपदः ।  
 स शैवं पदमाप्नोति यजन्मैयम्बकं व्रतं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं चैयम्बक व्रतं ।

—



ईश्वरस्य चतुर्दश्यां सर्व्वश्रेष्ठं समन्वितः ।  
 बहुपुत्रो बहुधनस्तथास्यान्नाचसंशयः ॥  
 मूलमन्त्रसंज्ञाभिरङ्गमन्त्राश्च कीर्त्तिताः ।  
 पूर्व्ववत्पद्मपत्रस्थः कर्त्तव्यश्च तिथीश्वरः ॥  
 गन्धपुष्पोपहारैश्च यथाशक्ति विधीयते ।  
 पूजाशाब्देन शब्देन कृतापि तु फलप्रदा ॥  
 आज्यधारासमिद्धिश्च दधिक्षीराद्यमाक्षिकैः ।  
 पूर्व्वोक्तफलदो ह्येवमः कृतः शान्ते न चेतसा ।  
 एतद्भ्रतं वैश्वानर प्रतिपद्भ्रतवद्भ्रतस्येयं ॥  
 इति श्री भविष्यत्पुराणोक्तमीश्वर व्रतं ।

—०००—

चैत्रशुक्ल चतुर्दश्यां यथावत्पूजयेच्छिवं ।  
 प्रासाद शोभां कृत्वैवं सम्यक् संमार्जनादिभिः ॥  
 संस्नाप्य विधिवद्देवं क्षीराद्यैश्चरसादिभिः ।  
 श्रीखण्डागरुकपूरं रक्तुङ्गुमैसानु लेपयेत् ॥  
 ततो दमनकैर्विंशैः पत्रैर्मरुवकीरुवैः\* ।  
 †पालिङ्गपीठपर्य्यन्तं पूजयेद्भृश्यास्तथा ॥  
 नमेरुं देवदारुं वा श्रीफलान्यथसिद्धकं ।  
 अगुरुं महिषास्यं वा ध्वजं वा निर्दह्यत्ततः ॥

\* मरुवकीः शशेरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

† चाण्डिकायाम् पर्यङ्गे इति पाठान्तरं ।

न मेरुं शरलं ।

शक्तिपिष्ट भवैर्हीपैः पञ्चभिर्नवभिस्तथा ।  
 कुर्थादारारिचकं शम्भोः स्वर्णपात्रैः \* समुज्वलैः ॥  
 विचित्र वस्त्र पूजा च कर्त्तव्या महती शिवे ।  
 पुष्यमण्डलिकां चित्रां स वितामोज्ज्वलं शुभं ॥  
 महोत्सवेन विधिवद्भेद्यं त्र्यंश्वेष च ।  
 विविधैर्भक्ष्यभोग्यैश्च नेत्रेण्यश्चोपकल्पयेत् ॥  
 सम्यक् सम्पादनीया स्यात् रघयात्रा पिनाकिनः ।  
 प्रेक्षणीयैस्तथा नृत्ये वाद्यैश्चैश्च शोभनैः ॥  
 पूजयेच्छिव भक्तांश्च विप्रानन्यांश्च भक्तितः ।  
 प्रीयतांश्चिद इत्युक्त्वा नक्तं भुञ्जीत च स्वयं ॥  
 वर्षेवर्षेप्रकर्त्तव्यं एतच्चैत्रीत्सवंमहत् ।  
 शिवभक्तैस्तथा न्यैश्च कीर्त्तयेयोविष्टहये ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तं मद्योत्सव व्रतं ।

अथान्यं संप्रवक्ष्यामि पावनं धर्ममुत्तमं ।  
 मोक्षदञ्च तथाक्लेशादिहमगदमेव च ॥  
 आदायकलशान् गौरान् शतं शतार्धमेव च ।  
 तस्याप्यर्हन्तदर्शं वा भूषयं च स मानवः ॥  
 कार्त्तिके शुभ्रभूतायां हरं स्नाप्य हृतादिभिः ।

शुभ्र भूतायां शुक्ला चतुर्दश्यां ।

\* काश्मिपात्रैरिति पुस्तकालये पाठः ।

समालभ्य न्यसेद्भूयः सौवर्णं वा प्रपञ्चकं ।  
 सुरभीभिस्ततः पुष्पैरभ्यर्च्यगुग्गुलं दहेत् ॥  
 मैघेद्यञ्च पुनर्दत्त्वा वलिं वाह्ये विनिक्षिपेत् ॥  
 वितानं दीपमादर्शं\* वस्त्रयुग्मं ध्वजास्तथा ।  
 धूपोत्क्षेपञ्च घण्टाञ्च दत्त्वा देवाय सन्धवे ॥  
 प्रदक्षिणं ततः कुर्याद्दण्डवद्भैरवस्य हि ।  
 दक्षिणे चोद्गग्रे वा पश्चिमे वाथ सर्वतः ॥  
 उपलिप्य शुभे देशे सोदकैरर्चयेत्ततः ।  
 चन्दनेनाक्षतैः पुष्पैः स्थानं पाठांस्थापयेद्बुधः ।  
 भूत्वास्त्रसुमुखी रत्नान्यपि तेषु निवेदयेत् ॥  
 सुसुगन्धाक्षतैः पूर्णान् हिरण्यांश्चैव सर्वशः ।  
 दीपान् प्रज्जालयेत्तत्र विचिन्त्य हृदि गङ्करं ॥  
 ततस्तस्योपरिष्ठाञ्च जागरं परिकल्पयेत् ।  
 भूयः सूर्यादये स्नात्वा स्नपनं कुशमादिकं ॥  
 निवेद्य देवदेवाय गृहगस्तहरिं स्मरन् ।  
 गत्वा गृहं समभ्यर्च्य पञ्च गव्यं पिबेत्ततः ॥  
 व्रतिभिर्ब्राह्मणैः सार्द्धं तुष्टी भुञ्जीत वाग्यतः ।  
 ततस्तान्दक्षयित्वा तु सर्व्ववित्तानुसारतः ॥  
 प्रणम्य च पुनर्भुक्त्वाप्तमाप्य च विसर्जयेत् ।  
 विधिनानेन पद्याद्भान्दाद्दशोपवसन्नरः ॥  
 देवभोगान् सुभुक्त्वावै परन्ध्याम प्रयाति सः ।  
 कर्षीत्यानिधनं यस्त एतद्भाव पुरःसरं ।

\* इमहेसितिपुस्तकाकारे पाठः ।

प्राप्य ज्ञानं प्रयाणान्ते गमिष्यत्यक्षयं पदं ॥  
इति कालिका पुराणोक्तं चतुर्दशीजागरणव्रतं ।

— ००० —

व्यास उवाच ।

सर्पापितृसुदर्श्यां कृष्णपक्षे समाहितः ।  
यमाय धर्मराजाय सृत्तवेचान्तकाय च ॥  
वैरस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ।  
प्रत्येकं तिलसंयुक्तान् दद्यात्सप्तोदकाञ्जलीन् ॥  
स्नात्वा नद्याञ्च पूर्वाह्ने मुच्यते सर्वपातकैः ।

इति कूर्मपुराणोक्तं यमव्रतं ।

या कार्तिकस्य मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।  
तस्यां स्नात्वा यमं तर्प्य न पश्यन्ति यमं क्वचित् ॥  
प्रतिगृह्य तिलान् कृष्णान्दीपस्तैलसमन्वितं ।  
दत्त्वा दानं दक्षिणां शान्ता निरीक्ष्य च सर्वतः ॥  
अपसव्यं तिलं कृष्णैः सर्पणोयो पमो भवेत् ।  
यमाय धर्मराजाय सृत्तवेचान्तकाय च ॥  
वैरस्वताय कालाय दत्त्वाय मनवे तथा ।  
कृष्णाय कृष्णगुमाय प्रेतप्रेताधिपाय च ॥  
चित्राय चित्रगुमाय दापयेच्च जलाञ्जलिं ।  
सहिरण्यं ततः पात्रं पूरयित्वा तिलैर्द्विजः ॥  
द्विजाय दद्याद्यो व्यास न शोचिन्मरणाश्रमति ।

इति स्कन्दमहाकालखण्डोक्तं यमव्रतं ।

— ००० —

मार्कण्डेय उवाच ।

शुक्लपञ्चादधारभ्य फाल्गुनस्य नराधिप ।  
 पूजयेत्, चतुर्दश्यां सोपवासो महेश्वरं ।  
 गन्धमाल्य नमस्कार दीपधूपान्न संपदा ॥  
 व्रतान्ते गां तथा दस्वा वज्रिष्टोमफलं लभेत् ।  
 एतदेव व्रतं कृत्वा शुक्लपक्षे तु वत्सरं ।  
 पीण्डरीकमवाप्नोति कुलसुहृतरति स्वकं ॥  
 चतुर्दश्यां द्वयश्चैतत्कृत्वा संवत्सरं नरः ।  
 मासि मासि तथा भक्त्या सर्वान् कामानवप्नुते ॥  
 आसाद्य कामान्महेश्वरस्य तत्राप्यकालं सुचिरश्चराजन् ।  
 सा युज्यमायाति महेश्वरस्य सर्वेश्वरस्या प्रतिमस्यतस्य ॥

इति विष्णुधर्मोक्तं महेश्वरव्रतं ।

—000@000—

मार्कण्डेय उवाच ।

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां न्यैष्टादारभ्य यादव ।  
 वायुं संपूजयेद्देवं सोपवासो जितेन्द्रियः ॥  
 गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा ।  
 सम्बत्सरांते दातव्यं वस्त्रयुग्मं द्विजातये ॥  
 कृत्वा व्रतं वत्सरमेतद्दिष्टमासाद्य लोकां सुविरं मनुष्यः ।  
 सुखानि भुङ्क्ता सुविरं महीपो मानुष्यमासाद्यभवत्पुरोगः ॥

इति विष्णुधर्मोक्तं वायुव्रतं ।

मार्कण्डेय उवाच ।

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां विरूपाक्षन्तु पूजयेत् ।  
 पौषमासादधारभ्य यावत् सम्बत्सरं भवेत् ॥  
 गन्धं माल्यं नमस्कारं धूपं दीपान्नं सम्यदा ।  
 तत्क्ष्णं द्विजातयेदद्यात् व्रतान्ते तु परस्त्वपि ॥  
 तत्क्ष्णं तदुपकरणं महाच्छादिकं ॥  
 कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं  
 भयं न चाप्नोति स राजसेभ्यः ।  
 कामानवाप्नोति भवत्यरीगो  
 भयञ्च राजन्नच तस्य किञ्चित् ॥

इति विष्णुधम्मपित्तरोक्तं विरूपाक्ष व्रतं ।

मार्कण्डेय उवाच ।

यत्र कचन नद्याञ्च यत्र कृष्णा चतुर्दशी ।  
 अनर्काभ्युदिते काले देयं संपूजयेद्यमं ॥  
 धूम्रवर्णं चित्रगुप्तं कालपाशञ्च यादव ।  
 मृत्युं स्वर्गञ्च धर्मज्ञं गन्धमाल्यान्नसम्यदा ॥  
 यमीदधार इत्युक्त्वा तिलांश्च जुहुयात्ततः ।  
 नमो यमायेति तथा स्त्रीशुद्धस्य विधीयते ॥  
 कश्चरन्भोजयेद्दिप्रान् यथाशक्ति नरोत्तमं ।  
 दद्यात्प्रतान्ते विप्राय तथैवच पयस्विनीं ॥

( २० )

कृत्वा व्रतं वत्सर मेतदिष्टं  
 न याति राजन् नरकं मनुष्यः ।  
 पापक्षयं प्राप्य स याति नाकं  
 मानुष्यमासाद्य स धर्म्मवान् स्यात् ॥  
 इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं यमव्रतं ।

— ००० —

नारी चोपवसेद्वदं कृष्णामेकाञ्चतुर्दशी ।  
 वर्षान्ते प्रतिमां कृत्वा गालिपिष्टमयो' शुभं ॥  
 गीतानुलेपनैर्माल्यैः पीतवस्त्रैस्तु पूजयेत् ।  
 पूर्वोक्तमखिलं कृत्वा शिवाय विनिवेदयेत् ॥  
 पूर्वोक्तमित्यहिसा ब्रह्मचर्यं भूशयनादि ।  
 सप्तभूमैर्म्महायानैस्तप्तचामीकरप्रभः ॥  
 युगकोटिशतं मायं रुद्रलोके महीयते ।  
 शिवादिसर्वलोकेषु भोगान्भुक्त्वा यथेप्सितान् ।  
 क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजानं पतिमाप्नुयात् ॥  
 इति शिवधर्म्मोक्तं कृष्णचतुर्दशीव्रतं ।

— — —

यक्षाणां राक्षसानाञ्च चतुर्दश्याञ्च पूजनं ।  
 कृत्वा चेममवाप्नोति क्रियासाफल्यमेव च ॥  
 इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं चेमव्रतं ।

— ००० —

पूजयित्वा धनाध्यक्षं तदावैश्वर्यं प्रभुं ।  
 बहुवित्तमवाप्नोति फलं संवत्सरं दिनं ॥  
 गृहपद्मौ तदाभ्यर्च्य निधाने यक्षपूजिते ।  
 मणिभद्रं तथाभ्यर्च्य धनमाप्नोत्यसशयं ॥  
 इति विष्णुधर्मीत्तरोक्तं धनावाप्तिव्रतं ।

— ००० —

माघमासे चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे विशेषतः ।  
 तथा पितृगणान् राजन् क्षीणचन्द्रे च पूजयेत् ॥  
 सर्वकामसमूहस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ।  
 याज्ञं कृत्वा तथा राजन् सर्वकामानवाप्नुयात् ॥  
 इति विष्णुधर्मीत्तरोक्तं सर्वकामव्रतं ।

— ००० —

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां महाकालमथाश्नयेत् ।  
 नमस्तकाममवाप्नोति तथेष्टं नात्र संगमः ॥  
 इति विष्णुधर्मीत्तरोक्तं कामावाप्तिव्रतं ।

— ००० (१) ००० —

तथा नक्षत्रगन्धर्वपञ्चके पूजयेन्नरः ।  
 सर्वत्र जयमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥  
 इति विष्णुधर्मीत्तरोक्तं जयव्रतं ।  
 देवानां मानवानां वा तत्पत्राये तथा परे ।  
 तेषां संपूजनं कृत्वा चतुर्दश्यां सुखी भवेत् ॥  
 इति विष्णुधर्मीत्तरोक्तं सुखव्रतं ।



यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनं ।

आराधयेद्द्विजमुखे ततः स्वस्ति पुनर्भवेत् ॥

इति कूर्मपुराणोक्तं कृष्णचतुर्दशी व्रतं ।

—000—

माघमासे चतुर्दश्यां पूजयेदिन्दुशेखरं ।

भक्त्या विस्वदलैर्मौनी हरनाम अपवित्रि ॥

सर्वपापविनिष्कृत्तो याति शैवं परं पदं ।

इति सौरपुराणोक्तं कृष्णचतुर्दशीव्रतं ।

—000—

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां यच्च गुग्गुलकं दहेत् ।

स याति परमं स्थानं पञ्च देवः पिनाकधृक् ॥

इति सौरपुराणोक्तं कृष्णचतुर्दशी व्रतं ।

—00@00—

भविष्योत्तरात्

चतुर्दश्यां निराहारः समभ्यर्च्य त्रिलोचनं ।

पुष्पधूपादिनैवेद्ये रात्रौ जागरणेन च ॥

पञ्चगव्यं निशि प्राश्य स्यपेद्भूमौ विमत्सरः ।

श्रवामावानथवा मुक्तातैलचारविवर्जितः ॥

होमः कृष्णतिलैः कार्यः शतमष्टोत्तरं नृप ।

पद्मये हृदयबाह्याय यमायाङ्गिरसे नमः ॥

ततः प्रभाते विमले स्नाप्य पञ्चाष्टौतैः शिवं ।

पूजयित्वा विधानेन होमं कृत्वा तत्रैव च ॥

उद्दिश्य मन्त्रमेतच्च कृत्वा धिरसि वाञ्छलिं ।  
 नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं नमःसूर्याम्बिकृपिणे ॥  
 पुत्रान् यच्छ्वं सुखं यच्छ्वं मोक्षं यच्छ्वं नमोस्तुते ।  
 नीराजनं ततः कृत्वा भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥  
 शक्तितो दक्षिणां दत्त्वा पश्चात् भुञ्जीत वाग्यतः ।  
 एवं संवत्सरस्यान्ते कृत्वा सर्व्वं यथोदितं ॥  
 सौवर्णं कारयेद्देवं त्रिनेत्रं शूलपाणिनं ।  
 वृषस्कन्धगतं सौम्यं सितवस्त्रयुगान्वितं ॥  
 चन्द्रेनानुलिप्ताङ्गं शितपाण्योपशोभितं ।  
 स्थापयित्वा ताम्रपात्रे ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 सर्व्वकालिकमानन्ते कथितं व्रतमुत्तमं ।  
 संवत्सरे समामिर्हि व्रतस्य तु सदा भवेत् ॥  
 चोर्णे व्रतेऽस्मिन् पुष्यं यत्तत्तुवन्निन् धनाधिप ।  
 काले गते बहुतिथे तीर्थस्य मरणं भवेत् ॥  
 मृत्युादित्य देहस्थो दित्यव्यालङ्कारभूषितः ।  
 दिव्यनारीगणवृत्तो विमानवरमास्थितः ॥  
 देवदेवैः समेतोऽसौ क्रीडतेऽम्बिपुरे चिरं ।  
 इह वागत्य कालान्ते जातो नृणां कुले भवेत् ॥  
 दानयज्ञः कृती दक्षो ब्राह्मणो ब्रह्मणः प्रियः ।  
 श्रीमानम्बिकृतीघोमान् पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥  
 पत्नीगणसमायुक्तधिरं भद्राणि पश्यति ।  
 ये दुर्लभा भुवि सुरीरग मानवानां ।  
 कामाग्रनामय गुणेन युताः सदैव

तानाप्रुवन्ति शिवभूततिथौ सुरेशं ।  
संपूजयति सुमतिती विधिवन्मनुष्याः ॥

इति चतुर्दशी व्रतं ।

—000—

कृष्ण उवाच ।

शृणु नक्षीपवासस्य विधानं पाण्डुनन्दन ।  
येन विज्ञानमात्रेण नरो मोक्षमवाप्नुयात् ॥  
येषु तेषु च मासेषु शक्तपक्षे चतुर्दशी ।  
ब्राह्मणं भोजयित्वा तु प्रारभेत् श्रुततो व्रतं ॥  
मासि मासि भवन्ति द्वे अष्टमी च चतुर्दशी ।  
शिवार्चनरती भूत्वा शिवध्यानैकमानसः ॥  
वसुधां भाजनं कृत्वा भुञ्जीयात्तन्मोजनं ।  
उपवासात्परं भैक्ष्यं भैक्ष्यात्परमयाचितं ॥  
अयाचितात् परं नक्तं तस्मात्पक्तेन भोजयेत् ।  
देवैश्च भुक्तं पूर्वाह्ने मध्याह्ने मुनिभिस्तथा ॥  
अपराह्णे च पित्रभिः सन्ध्यायां गुह्यकादिभिः ।  
सर्ववैलामतिक्रम्य नक्तभोजी सदा भवेत् ॥  
हविष्यभोजनं स्नानं सत्यमाहारलाघवं ।  
अग्निकार्यमधःशय्यां नक्तभोजी सदा भवेत् ॥  
एवं संवत्सरस्यान्ते व्रतं पूर्णं  
पूर्णं कुम्भोपरिस्थाप्य दापयेषु शोभने ॥  
कपिश्या पञ्चगव्येन स्थापयेन्मृक्षमयेशिब ।

फलपुष्पययञ्चौरदधिदर्भाङ्कुरास्तिलाः ॥  
 चन्दनं तण्डुलास्तोयमर्घ्यं मष्टाङ्गमुच्यते ।  
 शिरसा धारयित्वा तु जानुगत्वा महीतले ॥  
 महादेवाय दातव्यं गन्धपुष्पं यथा क्रमं ।  
 भक्षोदनैर्बलिं कृत्वा प्रषम्य परमेश्वरौ ॥  
 धेनुं वा दक्षिणां दद्याद्दण्डं वापि घुरन्धरं ।  
 श्रोत्रियाय दरिद्राय कल्पव्रतविदाय च ॥  
 यो ददाति शिवे भक्त्या तस्य पुण्यफलं शृणु ।  
 विमानमर्कप्रतिमं हंसयुक्तमलं कृतं ॥  
 सुरुढोपरसङ्गीतैर्याति रुद्रालये सुखं ।  
 स्थित्वा रुद्रस्य भवने वर्षकोटिं गतत्रयं ॥  
 इहलोके तु यच्छ्रेष्ठयामलक्षेश्वरो भवेत् ।  
 यथाष्टमीषु च शिवासु चतुर्दशीषु ॥  
 नक्तं समाचरति शास्त्रविधानदृष्टं ।  
 स्वर्गाङ्गना कररवाकुलितं विमानं  
 मारुच्च याति मसुखेन शिवालयञ्च ॥

इति श्रीभविष्योत्तरे चतुर्दश्यष्टमीनक्तव्रतं ।

इति श्री महाराजाधिराज श्री महादेवीय समस्त करणा

धोश्वरमकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रि चिरचिते

चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे

चतुर्दशीव्रतानि ।

## अथोनविंशोऽध्यायः ।

—00@00—

अथ पौर्णमासीव्रतानि ।

विविधविविधवृन्दानन्दसन्दोहकन्दो  
यदि गणित गुणौघः सोऽद्य हेमाद्रि शूरिः ।  
अभिमतफलसम्पत्तिद्वये बुद्धिभाजां  
व्रतनिवहमिदानीं पौर्णमासीं ब्रवीमि ॥

कृष्ण उवाच ।

पौर्णमासी महाराज सोमस्य दयिता तिथिः ।  
पूर्णमासी भवेद्यस्यां पूर्णमासी ततः स्मृता ॥  
तस्यां तु श्रोतसि स्नात्वा सप्तर्ष्यपिण्डदेवताः ।  
अलिख्य मण्डले सोमं नक्षत्रैः सहितं विभुं ॥  
पूजयेत् कुसुमैर्हृद्यैर्नैवेद्यैर्घृतपाचितैः ।  
शुक्लवस्त्रैर्दक्षिणाभिः पूजयित्वा क्षमापयेत् ॥  
शाकाहारेण मुन्यन्नैर्नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः ।

मुनीनामन्नं मुन्यन्नं नीवारादि ॥

गगनार्णवमाणिक्यचन्द्रदाद्यायणीपते ।  
वसन्तबान्धवविधो शीतांशो स्वस्तिनःकृतुः ॥  
पक्षे पक्षे पञ्चदश्यां विधिरेष प्रकीर्तितः ।  
शुक्लपक्षेऽपि यः कश्चिच्छुद्धावाब्धौ व्रतौ भवेत् ॥

तत्राप्येव विधिः प्रोक्तः सर्व्वकामफलप्रदः ।  
 अमावस्या तिथिरियं पितृणामन्वया भवेत् ॥  
 अमावास्यायं पौर्णमासी तद्व्रतं ।  
 अमावास्या महाराज गयेन समुपोषिता ।  
 तेनाक्षयवटीदन्तः पितृभ्यस्तीर्थमुत्तमं ॥  
 यः कथित् कुरुते तस्मिन् पितृपिण्डोदकक्रियां ।  
 तस्मिन्नक्षयवटे ।

स तारयति राजेन्द्र पुरुषानेकविंशतिं ॥  
 भवेयुरक्षयास्तस्य लोकाः पितृनिषेविताः ।  
 यदा तु इह लोकान्ते तस्य चागमनं भवेत् ॥  
 ब्राह्मणः पितृभक्तस्य सर्व्वविद्याविशारदः ।  
 पञ्चजन्मानि राजेन्द्र भवेत्तन्मया समन्वितः ॥  
 एवं सम्बत्सरस्यान्ते हैमं कृत्वा सुशीभनं ।  
 सोमं नक्षत्रसहितं सर्वावयवसंयुतं ।  
 सप्तधान्यसमायुक्तं रीप्यपाचोपरि न्यसेत् ।  
 सर्वाभरण संयुक्तां गां च दद्यात् पयस्विनीं ॥  
 उपदेशश्च यो दद्यात्तस्मिन् व्रतवरे नरः ।  
 संपूज्य वस्त्राभरणैर्मन्त्रैर्षार्धं निवेदयेत् ॥  
 नवी नवीसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ।  
 चन्द्र सान्द्र सुधासौधं गृह्णाणार्धं नमोस्तु ते ॥  
 दद्याद्द्विजेन्द्रमुख्याय भक्त्या परमया युतः ।  
 मासे मासे विधिरयं व्रतस्यास्य नराधिप ॥  
 येन शक्नोति वा कर्तुं वर्षमेकं निरन्तरं ॥

एकापि ससुपोष्यैव दद्यादुद्यापनं सुधीः ॥

व्रतोद्यापनयोर्धृत्तिर्मुख्यः कल्पः व्रताहंसिरप्यनाहसिर्गोणः ।

यथैतत् कुरुते पार्थ पौर्णमासीव्रतं नरः ।

सर्वं पापविनिर्मुक्तयन्द्ब्रह्मि राजते ॥

पुत्रपौत्रधनोपेतो गजदाता प्रियम्बदः ।

सन्ततिं विपुलाभ्याप्य प्रयागे मरणं भवेत् ॥

ततश्चैवाक्षयान् कामानाप्नोति सुरसेवितान् ।

मेव्यमानः स गन्धर्वैस्त्वयमानः सुरासुरैः ॥

आस्ते वर्षशतं दिव्यं दिव्यभोगैरलङ्कृतः ।

अभ्यर्चयन्ति श्रितपञ्चदशेषु सोमं

रुष्णासु ये पिष्टगणान्जलपिण्डदानैः ।

तेषां गृह्णाणि धनधान्यसुतादिसम्पत्

पूर्णानि पार्थिव भवन्ति विधी विधानात् ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं जयपौर्णमासीव्रतं ।

पुलस्त्य मुवाच ।

अशोकपूर्णिमामेतां शृणुष्व गदतो मम ।

उपोष्यास्यां नरः शोकं नाप्नोति स्त्री यथापि वा ॥

फाल्गुनामलपक्षस्य पौर्णमास्यां ऋषोत्तम ।

शृज्जलेन नरः स्नात्वा दत्त्वा शिरसि वै सृदं ॥

सृत्प्राशनं ततः कृत्वा कृत्वा च स्थण्डिलं सृदा ।

पुष्यैर्भक्ष्यैः समभ्यर्च्य भूधरं नाम नामतः ॥

धरणीं च तथा देवीमयोकेति च कीर्त्तयेत् ।  
 यथा विशोका धरणिः कृतकृत्वा जनार्दन ।  
 तथा मां सर्वयोगेभ्यो मीचयाशेषधारिणि ॥  
 यथा समस्तभूतानामाधारत्वे व्यर्थास्त्रता ।  
 यथा विशोकं कुरु मां सकलेष्वाविभूतिभिः ॥  
 ध्यानमात्रे यथा विशोः स्वाम्यं प्राप्तासि मेदिनि ।  
 तथा मनःस्वच्छतां मे कुरुस्व भूतधारिणि ॥  
 एवं स्तुत्वा समभ्यर्च्य चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ।  
 उपोषितव्यं नक्तं वा भोक्तव्यं तैलवर्जितं ॥  
 अग्नेनैव प्रकारेण चत्वारः फासगुणादयः ।  
 उपोष्या नृपते मासाः प्रथमं पारवं स्मृतं ॥  
 आषाढादिषु मासेषु तद्वत् स्नात्वा नृदाम्बुना ।  
 तथैव प्राशनं पूजा तद्दिन्दीप्तधार्षणं ॥  
 चतुर्ष्वन्येषु वै वीक्ष्यं तथा वै कार्त्तिकदिषु ।  
 पारश्वत्रितयश्चैव चतुर्मासिकमुच्यते ॥  
 विशेषपूजादानश्च तथा जागरणं निधिः ।  
 विशेषेण च कर्त्तव्यं पारणे पारणे कृते ॥  
 प्रथमं धरणीनाम स्मृतं मासचतुष्टयं ।  
 द्वितीये मेदिनीनाम तृतीये च वसुधरा ॥  
 पारश्वे पारणे राजन् वस्त्रयुग्मेन पूजयेत् ।  
 तथैव धरणीं देवीं हृतस्नानेन केशवं ॥  
 वस्त्राभावे च सूत्रेण पूजयेद्धारणीं तथा ।  
 हृताभावे तथा चोरं शय्यं वा सखिखं हरेः ॥



एवं संवत्सरस्यान्ते गौः सवत्सा द्विजातये ।  
 प्रकल्पधरणी-देवी-वस्त्रालङ्कारसंयुता ॥  
 पातालसंस्थया देव्या चीर्यमेतन्महाव्रतं ।  
 धरण्या केशवप्रीती ततः प्राप्ता समा गतिः ॥  
 देवेन चीक्या धरणी वराहवपुषा पुरा ।  
 उपवासव्रतपरा समुद्धृत्य रसातलात् ॥  
 व्रतेनानेन कस्याणि प्रणतो यः करिष्यति ।  
 व्रतमेतत्समाश्रित्य पारणञ्च यथाविधि ॥  
 सर्व्वाधाविनिर्मुक्तो दशजन्मान्तरास्यसी ।  
 विशोकः सर्व्वाकल्याणभाजनं स्यान्न संशयः ॥  
 यथा त्वमेव वसुधे संप्राप्ता निर्हतं पदं ।  
 तथा स परमे लोके सुखं प्राप्स्यति मानवः ॥  
 एवमेतन्महापुष्यं सर्व्वाशान्तिप्रदानकं ।  
 विशोकाख्यं व्रतवरं तरकुरुष्व महाव्रतं ॥  
 इति विष्णु धर्मोत्तरोक्तमशोकपूर्णमाव्रतं ।

— ००० —

पुलस्त्य उवाच ।

पञ्चदश्यां शुक्लपक्षे फाल्गुनस्य नरोत्तम ।  
 पाषण्डपतितां शैव तथैवाख्यावसायिनः ॥  
 नास्तिकान् भिन्नवृत्तांश्च पापिनश्चापि नालपेत् ।  
 नारायणे गतमनाः पुरुषो नियतेन्द्रियः ।  
 तिष्ठन् ब्रुवन् प्रश्नसंज्ञं क्षुतेवापि जनार्दनं ॥

कीर्त्तये तत्क्रियाकाले समकृतः पुनः पुनः ।  
 लक्ष्म्या समन्वितं देवमर्चयेत् जनार्दनं ॥  
 सन्ध्याव्युपरमेचन्द्रस्वरूपं हरिमौल्यं ।  
 रात्रिञ्च लक्ष्मीं सञ्चित्य सस्वगर्भेण चिन्तयेत् ॥  
 श्रीनिशा चन्द्ररूपा त्वं वासुदेवजगत्पते ।  
 मनोभिलषितं देव पूरयस्व नमोनमः ॥  
 मन्त्रे षानेन दत्त्वाध्यं देवदेवस्य भक्तितः ।  
 नक्तं भुञ्जीत मीनेन तैलचारविवर्जितं ॥  
 तथैव चैत्रवैशाखे ज्येष्ठे च मुनिसप्तम ।  
 अर्चयेच्च यथाप्रोक्तं मासि मासि च तद्दिने ॥  
 निष्पादितं भवेदेकं पारणं दाल्भगभक्तितः \* ।  
 द्वितीयं तत्र वक्ष्यामि पारणन्तं निबोध मे ॥  
 आषाढे श्रावणे मासि मासि भाद्रपदे तथा ।  
 तथैवाश्वयुजेऽभ्यर्च्य श्रीधरञ्च श्रिया सह ॥  
 सम्यक्च्छन्दमसन्दत्त्वा भुञ्जीताश्च यथाविधि ।  
 द्वितीयमेतदाख्यातं तृतीयं पारणं शृणु ।  
 कार्तिकादिषु मासेषु तथैवाभ्यर्च्य केयवं ॥  
 भूत्या समन्वितं दद्याच्छशाङ्गायार्हणं निशि ।  
 भुञ्जीत च यथाख्यातं तृतीयमपि पारणं ॥  
 प्रतिपूज्य ततोदद्यात् ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां ।  
 प्रतिमासं च वक्ष्यामि प्राशनं कायशुद्धये ॥  
 चतुरः प्रथमं मासान् पञ्चगव्यमुदाहृतं ।

\* रश्मिभक्तिना इति पुस्तकाकारे पाठः ।

कुशीदकं तथैवान्यदुक्तं मासचतुष्टयं ॥  
 सूर्याद्युत्तमं तद्वच्च जलं मासचतुष्टयं ।  
 गीतवाद्यादिकं रात्रौ तथा ज्ञान्यकथाः शुभाः ॥  
 कारवेहैवदेवस्य पारश्वे पारश्वे गते ।  
 जनार्दनं सप्तश्रीकमर्षयेत् प्रथमं तथा ॥  
 सश्रीकं श्रीधरं तद्वत्तृतीयं भूतिकेशवं ।  
 एवं संपूज्य विधिवत् सपत्नीकं जनार्दनं ॥  
 नाप्रोतीष्टवियोगान्तिं पुमान्नाथ्यपिवा पुनः ।  
 यावदेतद्विधानेन पारश्वान्यर्चति प्रभुं ॥  
 तावन्ति जन्मान्यसुखं नाप्रोतीष्ट वियोगजं ॥  
 देवस्य च प्रसादेन मरणात्प्राक्सृतेः स्मृतिं ।  
 कुले सतां स्मीतधने भोगान् भुङ्क्ते पद्मसिदान् ॥  
 इति विष्णु धर्मात्तरोक्तलक्ष्मीनारायणं व्रतं ।

—on@no—

दासश्च उवाच ।

श्रोतमिच्छाम्यहं तात यममार्गं सुदुर्गमं ।  
 यथा सुखेन संयान्ति मानवां स्त्रहदस्य मे ॥

पुलस्त्य उवाच ।

प्रतिमासन्तु नामानि पञ्चदश्यां जन्त्यतेः ।  
 जतोपवासः सुखातः पूजयित्वा जगद्गुहं ॥  
 उच्चारयन्तरोवाति सुमुखेनैव गच्छति ।

ततो विप्राय वै दद्याद्दक्षुभं सदक्षिणं ॥  
 उपानहस्त्रयुग्मश्च ह्यं काननमेव च ।  
 यद्वा मासगतं नाम प्रीयतामिति कीर्त्तयेत् ॥  
 केशवं मागीशीर्षं तु पीषे नारायणं तथा ।  
 माधवं माघमासे तु गोविन्दमपि फाल्गुने ॥  
 चैत्रे विष्णुश्च वैशाखे कीर्त्तयेद्भद्रसूदनं ।  
 ज्येष्ठे त्रिविक्रमं देवं तद्यथादे च वामनं ॥  
 श्रीधरं श्रावणे मासि ह्रषीकेशं ततः परं ।  
 नाम भाद्रपदे तद्वत् श्रायते पुण्यकाङ्क्षिभिः ॥  
 तद्ददाद्भयुजे मासि पद्मनाभेति कीर्त्तयेत् ।  
 दामोदरं कान्तिके च सर्वात्तरति दुर्गतिं ॥  
 एवं मासक्रमेणैव यदि दातुं न शक्यते ।  
 तदा संवत्सरस्यान्ते दद्याच्चैव समागतं ॥

विशेषश्चात्र कथित इत्यनेन विशेषादन्यत्र पूर्वव्रतसाम्यं गम्यते ।  
 कृत्वैवं सुखमाप्नोति मरणे स्मरणं हरेः ।  
 याम्यं क्लेशं समं प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥  
 ततोमानुष्यतां प्राप्य निरातप्तोगतञ्जरः ।  
 धनधान्यवति स्फीते कुले महति जायते ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं नरकपूर्णिमाव्रतं ।

—o(oo)—

मृत उवाच ।

वैशाख्यां पीषमास्यान्तु सृष्टाः कमलयोनिना ।

तिलाः कृष्णाश्च गौराश्च द्रुमये सर्वदेहिनां ॥  
 तस्मात् कार्यं तिलैः स्नानंतत्राग्नौ जुहुयात् तिलान् ॥  
 निवेदितव्यं विधिवत् तिलपात्रं तु विष्णवे ।  
 तिलतैलेन दीपाश्च देया देवेभ्य एव च ॥  
 कूर्मपुराणेतु विशेषः ।

वैशाखपूर्णिमास्यान्तु ब्राह्मणान् पञ्च सम वा ।  
 उपोष्य विधिना शान्ताच्छुचीन् प्रयतमानसः ॥

आदित्य पुराणे ।

मोदकैश्च तिलैः श्राद्धं कर्त्तव्यं पितृतर्पणं ।  
 तिलैः समधुभिर्द्युक्तं ब्राह्मणेभ्यो जनार्दन ॥  
 दातव्या दक्षिणा चापि तिलैर्मधुयुतैरपि ।  
 मन्त्रं जपेच्च पौराणं पारंपर्याक्रमागतं ॥  
 श्रीं तिला वै सोमदैवत्याः सुरसृष्टास्तु, गोसवे ।  
 स्वर्गप्रदाश्च तन्नाश्च ते मां रक्षन्ति नित्यशः ॥  
 दद्यादनेन मन्त्रेण तिलपात्राणि तत्र च ।  
 समभ्यस्वथ पञ्चभ्यो ब्राह्मणेभ्यस्तु कीर्त्तयेत् ॥  
 प्रीयतां धर्मराजश्च देवाद्यान्थे तथापि वा ॥

‘गृहीतो’ मन्त्रः ।

एवं कृते स मुक्तः स्यात्पापैर्जन्मशतार्जितैः ।  
 इत्यादि पुराणोक्ती वैशाखी विधिः ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

—अपि याः काश्चित्पिपयः पुण्यलक्षणाः ।

इता एव यदुच्छेष्टं ज्ञाने दाने महाफलाः ॥

लक्षण उवाच ।

वैशाखी कार्तिकी माघी तिषयोऽतीव पूजिताः ।

ज्ञान दान विहीनाश्च ननेकाः पाण्डुनन्दन ॥

तीर्थज्ञानं तदा ग्रस्तं दानं विज्ञानुसारतः ।

वैशाखां पाण्डुवञ्चेष्टं चैवा चोच्चयमी मता ॥

कार्तिक्यां पुष्करं चैवं माघ्यां वाराणसी मता ।

ज्ञानेनोदकदानेन तारयेद्विद्विषान् पितॄन् ।

कुम्भान् स्वकजलैः पूर्णान् हिरण्याब्जैः समन्वितान् ।

वैशाखां ब्राह्मणे दत्त्वा न शोचति कृताकृते ॥

मधुराश्वरसैः पूर्णं भाजनं कनकोज्ज्वलं ।

बहुनि धनधान्यानि भक्त्या परमया युतः ॥

गोभूहिरण्यवासांसि विप्राय विधिवन्कृप ।

माघ्यां स्नानं तथा सम्बक् सर्प्यं पिष्टदेवताः ॥

तिलपात्राणि देयानि तिलाः सपल्लवीदनाः ।

कार्या सदानमन्त्रैश्च धेनुदानं प्रशस्यते ।

कम्बलाजिनरत्नानि मोचकी पापमोचकः ॥

उपानहानमत्रैव तुल्यमश्वरसेन तु ॥

यत्र वा तत्र वा ज्ञानं दानं विज्ञानुसारतः ।

काले कालीश्वरं सर्व्यं शस्यते पाण्डुनन्दन ॥

कार्तिक्यां तु वृषोत्सर्गं विवाहं पुष्पलक्ष्ण ।

कुर्यात् कुम्भकुञ्जश्चैव हरेर्नाराजनं तथा ॥

अत्राश्वरददानानि हृतधन्वादिकानि च ।

प्रदेशानि द्विजातिभ्यस्तास्ताः संस्मृत्य देवताः ।  
 फलानि यानि विद्यन्ते सुगन्धान्यगदानि च ॥  
 कङ्कालकफलं जात्या लवङ्गकदलीफलं ।  
 खर्जूरं नारिकेलञ्च कदलीफलमेव च ॥  
 दाडिमं मातुलिङ्गञ्च कर्कोटं चपुषन्तथा ।  
 वृन्ताकङ्कारवेत्तञ्च चिन्था कुष्माण्डमेव च ॥  
 फलानामप्रदानेन येषाम्नु तिथयो गताः ।  
 ते व्याधिता दरिद्राश्च जायन्ते भुवि मानवाः ॥  
 न केषलं ब्राह्मणानां दानमत्र प्रशस्यते ।  
 भगिनी भागिनेयानां मातुलानां पितृष्वसुः ॥  
 दरिद्राणाञ्च बन्धूनां दानं कौटिल्यगुणोत्तरं ।  
 मित्रं कुलीनघापन्नो बन्धुदारिद्र्यदुःखिताः ॥  
 आशयाभ्यागतोदूरात्कीर्तिथिः सर्गसक्रमः ।  
 वनं प्रस्थापिते रामे सशोते सहलक्ष्मणे ॥  
 मातामह कुलादेत्य विशुद्धेनान्तरात्मना ।  
 सपथैः आवितानिकैः कौशल्या भरतेन वै ॥  
 यदा न प्रत्ययं याति कदाचित् कौशलात्मजा ।  
 तदा विशुद्धभावेन शपथान् आविता पुनः ॥  
 बैशाखी कार्तिकी माघो तिथयोऽमरपूजिताः ।  
 अप्रदानवती यान्तु यस्मार्योनुमते गतः ॥  
 एतत् श्रुत्वा तु कौशल्या सहसा प्रत्ययं गता ।  
 अहमानीय भरतं सान्त्वयामास दुःखितं ॥  
 एतत्तिस्रैर्मा माहात्म्यात्समाख्यातं बहुविस्तरं ।

भूयस्तु संप्रवक्ष्यामि तव भारतसत्तम ॥  
 वैशाखे कार्तिके माघे सहिता नृपेन्द्र ।  
 या पूर्णिमा भवति पूर्णशशाङ्कचिह्ना ॥  
 तस्यां जलान्नकरकान् वरमातपत्रं ।  
 दत्त्वा प्रयाति पुरुषः पुरुहृत लोकं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तो वैशाखी कार्तिकीमाघीविधिः ।

— ००० —

पुलस्त्य उवाच ।

ततीरतान्ति भगवान् पिनाकी  
 तस्यां गुहायामनुभोद्य पुण्यं ।  
 देवैश्च सर्वैरनुगम्यमानो  
 बभूव कामेन विहारचारी ॥  
 तस्यां मनुष्यः सुचिरं प्रमत्तो  
 नभस्य मासस्य तु पूर्णमास्यां ।  
 भार्याद्वितीयः सहमा यएव  
 पुत्रेष्टिमादौ स्वगृहेपि कृत्वा ॥  
 गच्छेत्ततः सर्व्वसमृद्धियुक्तो  
 ह्योमैः सजाप्यैव् लिनाच रुद्रं ।  
 शैलेन्द्रकन्यागजयक्रान्दी ।  
 सद्भाषयन्त्वा प्यथवादीयत्वा  
 संपूज्य विप्रामश्च देव पूर्व्वान्  
 कृतोपवासोजितरोष दीपः  
 ततः सहायानपि भाजयित्वा



भार्याञ्च पश्चात् स्वयमत्र भुङ्क्ते ॥  
 तृप्ताञ्च भार्यामथ नोपयित्वा  
 प्रदक्षिणीकृत्य गुहां सगुह्यं ।  
 गृह्णास्तु गच्छेत्परिपूर्णकामः  
 वृषः प्रहृष्टः कृतभोजनस्य ।  
 कथाय दिव्यास्त्रधनन्दिनीय  
 भार्यां ततः श्रावणयोः प्रयुक्तां ।  
 क्षीरोदनं त्रिदिनं भोजये च  
 बन्धाञ्च भार्यामपि पुत्रकामां ॥  
 ततो गृहे सर्वसमृद्धिकामः  
 सन्तप्य भार्यां प्रयतो विधाय ।  
 उमां शिवं नन्दिनं चार्चयित्वा  
 ततो भवेत् पुत्रवतीच वन्ध्या ॥  
 प्रादेशमाशामथवा शिवस्य  
 हिरण्ययीं राजतीमायसीं वा ।  
 त्रिशूलखट्वाङ्गधराभ्यरेण्यां  
 त्रिलोचनां जाटलां चारु रूपां ॥  
 कृत्वा कृतीं तामभिपूज्य पश्चात्  
 प्रताप्य वक्रौ तु निधाय पात्रे ।  
 प्रस्थे न दुग्धस्य ततोभिषेकं  
 दत्त्वा च तत्पाययेत्पुत्रकामां ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तं पुत्रव्रतं ।

ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे पौर्णमास्यां यतव्रतः ।  
 स्वापयेद्ब्रह्मं कुम्भं शिततण्डुलपूरितं ॥  
 नानाफलसयुतं तद्वद्विद्युदकसमन्वितं ।  
 शितवस्त्रयुगच्छदं सितचन्दनचर्चितं ॥  
 नाना भक्ष्यसमीपे तं सद्भिरक्षय्यं शक्तिः ।  
 ताम्रपात्रं गुह्योपेतं तस्त्रोपरि निवेदयेत् ।  
 तस्त्रादुपरि ब्रह्माक्षं सोवर्षं पद्मकोदरे ॥  
 कुर्यात्प्रकारयोपेतां सावित्रीं तस्त्र वामतः ॥  
 गन्धधूपं ततो दद्याद्भीतवायस्य कारयेत् ॥  
 तदभावे कथां कुर्याद्यथा प्राञ्च पितामहः ।  
 ब्रह्मनाम्नीं च प्रतिमां कृत्वा गुह्यमयीं शुभां ॥  
 युक्तपुष्पाक्षततिलैरर्चयेत्पद्मसम्भवं ।  
 ब्रह्मणे पादौ संपूज्य जङ्घे सौभाग्यदाय च ॥  
 विरिञ्चयोरुयुष्मस्य मन्त्रायायेति वै कटिं ।  
 स्वच्छीदरायेत्युदरमनङ्गायेत्युरोहरेः ॥  
 मुखं पद्ममुखायेति वाङ्गं वै वेदपात्रये ।  
 नमः सर्वाङ्गने मौलिमर्चयेन्नापि पङ्कजं ॥  
 ततः प्रभाते तं कुम्भं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्ष्या खयं तु खवचम्बिना ॥  
 यत्न्या तु दक्षिणांश्चादिमं मत्सुदाहरेत् ।  
 प्रीयतामन्न भगवान् सर्व्वं लोकपितामहः ॥  
 हृदये सर्व्वलोकानां यस्त्वानन्दो विधीयते ।

अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत् ॥  
 उपवासो पौर्णमास्यामव्ययं ब्रह्म पूजयेत् ।  
 फलमेकम् सुंप्राश्य शर्वथ्यां भूतले स्वपेत् ॥  
 तत्र त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्वितां ।  
 शय्यां दद्याद्विरिञ्चाय सर्वोपस्करसंयुतां ॥  
 ब्रह्माणं काञ्चनं कृत्वा सावित्रीं राजतीन्मथा ।  
 धास्मासिकः सृष्टिकर्ता सावित्री तु फलस्य तु ॥  
 वस्त्रै द्विजं सपत्नीकं पूज्य शक्त्या विभूषणैः ।  
 शक्त्या गवाङ्गिकं दद्यात् प्रीयतामित्युदीरयेत् ॥  
 ह्योमं श्लैस्त्रिलैकुर्याद्ब्रह्मनामानि कीर्त्तयेत् ।  
 गव्येन सर्पिषा तद्व्यायसेनच कर्मवित् ॥  
 विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा वित्तशाठ्यविवर्जितः ।  
 इक्षुदण्डन्ततोदद्यात्पुष्पमालास्य शक्तितः ॥  
 यो ब्रह्मा स स्मृतो विष्णुरानन्दात्मा महेश्वरः ।  
 सुखार्थी कामरूपेण अरन्द्देवं पितामहं ॥  
 कुर्याच्चैव विधानेन पौर्णमासं स्त्रियोऽपि वा ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति ब्रह्मशाश्वतं ॥  
 इहलोके वरान् पुत्रान् सौभाग्यं ध्रुवमश्रुते ॥  
 इति श्रीपद्मपुराणोक्तं पुत्रकामव्रतं ।

—000—

सुमन्तुसवाच ।

सोमव्रतन्मथाप्यन्यच्छङ्करप्रीतये शृणु ।

ताम्रपात्रं पयःपूर्णं कृत्वा तत्स्यञ्च शङ्करं ॥  
 प्रच्छाद्योपरिवस्त्रेण गन्धपुष्पार्चितं महत् ।  
 शिवभक्ते हिजे दद्याद्भोजयित्वा विधानतः ॥  
 प्राच्यां समुद्रिते सोमे प्रतीच्याञ्च रवौ गते ।  
 पोर्णमास्यान्तु वैशाख्यां गृहपात्रं शिवाय तु ॥  
 प्रीयतां मे महादेवः सोममूर्त्तिर्जगत्पतिः ।  
 तस्मै विप्राय तत्पात्रमर्चयेद्भक्तिः शनैः ॥  
 एवं सोमव्रतं नाम कृत्वा सोमाम्भिकं व्रजेत्  
 रुद्रलोकात्परिभ्रष्टो भवेज्जातिस्मरौ नरः ॥  
 पूर्वाभ्यासेन तेनैव पुनः शिवपुरं व्रजेत् ।  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तं सोमव्रतं ।

भीष्म उवाच ।

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिष्टुष्टि  
 युक्तः पुमान् रूपगुणान्वितः स्यात् ।  
 मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यक्  
 व्रतं समाचक्ष तदिन्दुमौलः ॥

पुलस्त्य उवाच ।

त्वयाष्टमिदं सम्यग्पुत्राक्षयकारकं ।  
 रहस्यं तव वक्ष्यामि यत् पुराणविदोविदुः ॥  
 रोहिषोचन्द्रशयनं सोमव्रतमिहोत्तमं ।  
 तस्मिन्पारायणस्यार्चामर्चयेद्विन्दुनामभिः ॥

\* ताम्रपात्रं यस्मिन् पुस्तकाकार पात्रः ।

यदा सोमदिने युक्ता भवेत्पञ्चदशी क्षचित् !  
 अथ वा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते ॥  
 तदा ज्ञानं नरः कुर्व्यात् पञ्चगव्येन सर्षपैः ।  
 ब्रह्म नक्षत्रं रोहिणी ॥

आप्यायस्वेति च जपेद्विहानथ शतं पुनः ।  
 शूद्रोऽपि परवा भक्त्या पाषण्डालापवर्जितः ॥  
 सोमाय वरदायाश्च विष्णवे च नमोनमः ।  
 कृतजाप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनं ॥  
 पूजयेत् फलपुष्पैस्तु सोमनामानि कीर्त्तयेत् ।

सोमाय शान्ताय नमोस्तु पादा  
 वानन्ददात्रेपि च पूज्य जङ्घे ।  
 ऊरुहयं वापि जलोदराय  
 संपूजयेन्मैट्रमनङ्गराजं ॥  
 नभोनमः कामसुखप्रदाय  
 कटिः शशाङ्कस्य समर्चनीया ।  
 तथोदरश्चाप्यमृतीदराय  
 नाभिस्तु पूज्यो विधिलोचनाय ॥  
 नमोस्तु चन्द्राय सुखञ्च पूज्यं  
 दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः ।  
 आस्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यं  
 पूज्योतथीष्ठो कुमुदप्रियाय ॥  
 नासा च नादाय वनौषधीनां  
 आनन्दभूताय पुनर्भवांश्च ।

नेत्रद्वयं पद्मनिभस्तन्नेत्रे  
 रिन्द्रीवरश्मामकराय सोरे ॥  
 नमः समस्तामरवन्दिताय  
 कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय ।  
 ललाटमिन्दोरुदधि प्रियाय  
 केशाः सुपुष्पाधिपतेऽभिपूज्य ।  
 शिरः शशाङ्गाय नमोसुरारेः  
 विश्वेश्वरायेति नमः किरीटं ।  
 पद्मप्रिये रोहिषि नमः ललिप्र  
 सौभाग्यसोख्यामृतचारुकायै ॥  
 देवीञ्च संपूज्य सुगन्धपुष्पै  
 नैवेद्यधूपादिभिरिन्दुपद्मैः ।  
 सुम्ना तु भूमौ पुनरुत्थितेन  
 स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ॥  
 देवः प्रभाते स हिरण्यवारि  
 कुम्भोनमः पापविनाशनाथ ।  
 संप्राश्य गोमूत्र ममांसमद्य  
 मक्षारवर्णानघविंशतिञ्च ॥  
 यासान् पयः सर्पियुतानुपोष्य  
 भुङ्क्ते तिहासं शृणुयान्मङ्गलं ।  
 कदम्बनीलोत्पलकेतकानि  
 जाती सरोजः शतपत्रिका च ॥  
 अस्नान कुम्भान्यथ तिन्दुवार

( २१ )

पुष्यं पुनर्भारमसिकायाः ।

शुक्रश्च बिम्बोः करवीरपुष्यं

श्रीचम्पकं चन्द्रमसः प्रदेयं\* ॥

श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा ।

यस्मिन्मासे व्रतादिः स्यात्तत्पुष्यै रचयेद्दरिं ॥

एवं संवत्सरं यावदुपोष्य बिम्बिवन्नरः ।

व्रतान्ते शयनन्दद्याद्दर्पणोपस्करान्वितं ॥

रोहिणी चन्द्रमिथुनं कारयित्वा च काष्ठनं ।

चन्द्रः षडङ्गुलः कार्यो रोहिणी चतुरङ्गुला ॥

द्विचन्द्ररूपनिर्घाणं चतुर्दशीस्थित महाराजोक्तं वेदितव्यं ।

मुक्ताफलाष्टकयुतं\* शितनेत्रपटान्वितं ।

श्वीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतैर्युतं ॥

दद्यान्मन्त्रेण पूर्वार्द्धे शाकेक्षुफलसंयुतां ।

खितामथ सुवर्णास्यां खुरैरोष्णैः सुवर्णितां ॥

सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खश्च शोभनं ।

भूषणैर्हिजदम्पत्यमलंकृत्य गुणान्वितं ॥

चन्द्रोऽयं द्विजरूपेण सभार्य इति कल्पयेत्\* ।

यथा न रोहिणी कृष्णशयनं त्यज्य गच्छति ॥

सोमरूपस्य ते तद्वन्नमे भेदोऽस्तु भूपते ।

यथात्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः ॥

\* श्रीचन्द्रमसिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

\* मुक्ताफलाष्टकयुक्ता इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

\* भावयोर्द्विति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्रयि चन्द्रेऽस्तु मे दृढा ।  
 इति ससारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ॥  
 रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमं ।  
 इदमेव पितृणाञ्च सर्व्वदा वल्लभं मुने ॥  
 त्रैलोक्याधिपति भूत्वा समकल्पशतत्रयं ।  
 चन्द्रलोकमवाप्नोति विष्णुर्भूत्वा विमुच्यते ॥  
 नारी वा रोहिणीचन्द्र शयन वा समाचरेत् ।  
 सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभं ॥  
 इति पठति शृणोति वा य इत्थं  
 मधुमथनाच्च न मिन्दुकीर्त्तनेन ।  
 मतिमपि च ददाति सोऽपि शीरे  
 भवनगतः परिपूज्यतेऽमरीचैः ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तं चन्द्ररोहिणी शयनव्रतं ।

—०००(१,०००)—

अनिसाद\* उवाच ।

अथोपोथ चतुर्दश्यां पोर्णमाभ्यां गुरादिने ।  
 पूजयेद्विधिनानेन लिङ्गं सार्वं निबोध मे ॥  
 ब्रह्माणः पश्चिमे भागे वामे लिङ्गस्य वै हरिं ।  
 खखात्कं दक्षिणे रौद्रमौण्डरं प्राग्दिशि स्थितं ॥

खखात्कः सूर्यः ।

ईशानं मध्यमे देशे पूर्वाङ्गे चैव पूजयेत् ।

\* अनिसाद इति पुस्तकालये पाठः ।



विलिप्यागुरुचन्द्रे च कुसुमैश्च सुगन्धिभिः ॥

चन्द्रः कर्पूरं ।

गुग्गुलुश्चाज्यसंयुक्तमगरं वासितं शुभं ।

दत्त्वा नीराजनं कुर्याद्दद्याद्द्वै युग्मपञ्चकं ॥

युग्मं गोमिथुनं ।

नैवेद्यान्तं वलिश्चैव पूर्व्ववत् स्वष्टञ्चं व्रजेत् ।

पञ्चगव्यं ततः प्राथ्य आचार्य्यब्राह्मणांस्तथा ॥

व्रतिनोमिथुनान्येव भोजयेच्च स्वशक्तितः ।

हेमवस्त्रादिकश्चैव यद्वात् कृत्वा य कल्पयेत् ॥

ततोदेवः प्रपूज्यो वै नैवेद्याद्यं निवेद्य च ।

नत्वाग्निं पूजयित्वा तु पञ्चवक्त्रं शिवं स्मरेत् ॥

प्राप्तेऽष्टे पञ्चमे गावः पञ्च पञ्च नियोजयेत् ।

तेषामुद्दिश्यतेष्वेवं न्यूनश्चापि ततोऽधिकं ॥

पञ्चमे पञ्चपञ्चेति वचनाद्वितीये हे हे तृतीये तिस्रस्त्रिस्रः

चतुर्थे चतस्रश्चतस्रः पञ्चमे पञ्च पञ्च प्रथमादेकैकैव तेषां ब्रह्मा-

दीनां, पञ्चानां चन्द्ररूपानां पञ्चदेवतानां पञ्चवर्गानुद्दिश्य

न्यूनधिकं तेषु तेषु नियोजयेत्

निखिलं प्राग्विशेषश्च कर्त्तव्यं तत्पदे तृभिः ॥

सुखकीर्त्तित्रियोऽर्थश्च इहेवविभवाय च ।

रहस्यमेतद्यत्प्रीक्तं न देयं यस्य कस्यचित् ॥

इति कालिकापुराणोक्तमीशान व्रतं ।

कृष्ण उवाच ।

अघातः शृणु भूपाल कृत्तिकारतमुत्तमं ।  
 राज्ञी या लिङ्गभद्रास्या पुरा यस्य प्रभावतः ॥  
 अतीव महतीं लब्धा त्रियं जातिस्मरामवत् ।  
 योगिनान्ते तनुस्यक्ता परब्रह्मणि लीयते ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कीदृशं तद्व्रतं कृष्ण मन्त्रो यन्त्रोहि कीदृशः ।  
 विधानं कृत्तिकानाञ्च तच्च कालं बदर्शु मे ॥

कृष्ण उवाच ।

कार्त्तिक्यां पौर्णमास्यान्तु गृह्णीयात् कृत्तिका व्रतं ।  
 षट् मामांस्तु व्रतं यावद्विदं संचिह्न्य चेतमि ॥  
 पारणे पारणे चापि पराणञ्जे द्विजोत्तमे ।  
 उद्यापनं प्रयच्छेत् यथा विभवसारतः ।  
 कृत्तिकाम् स्वयं सोमः कृत्तिकाम् ब्रह्मस्यतिः ॥  
 यदास्यात् सोमवारिण सा महाकार्त्तिकी स्मृता ।  
 इदृशीबद्धभिर्वर्षे बहुपण्येन लभ्यते ॥  
 लब्धापि न ह्यथा नेया यदीच्छेच्छे यथात्मनः ।  
 अन्यापि कार्त्तिकी पार्थ समपाथ्या विधानतः ॥  
 तस्या विधानं राजेन्द्र शृणुष्वै कायमानसः ।  
 कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य पौर्णमास्यां दिनोदये ॥  
 नक्तेन नियमं कुर्याद्दत्तधावनपूर्वकं ।

उपवासेन वा शक्त्या ततः ज्ञात्वा जलाशये ॥  
 कुबचेने प्रयागे वा पुष्करेनिमिषेऽथ वा ।  
 शालग्रामे कुशावर्ते मूलस्थाने चरित्तके ॥  
 गोकर्णे वावटे पुष्के प्यथवा नरकण्ठके ।  
 पुरेवा नगरे वापि ग्रामेषोषेऽथ पत्तने ॥  
 यत्र वा तत्र वा ज्ञात्वा नारीवाप्यथ वा पुमान् ।  
 देवर्षिपितृपूजाञ्च कृत्वा होमं युधिष्ठिर ॥  
 ततोऽस्तसमये प्राप्ते पानं गव्यस्य सर्पिषाः ।  
 क्षीरस्य वाश्वसः पूर्णं कृत्वा गुडफलान्वितं ॥  
 चकाराहधः ।

षट् प्रमाणं यद्याव्योस्ति कृत्तिका शङ्करं न्यसेत्\* ।  
 षट् प्रमाणं षट् कृत्तिकानामाणीत्यर्थः ॥  
 षट्कृत्तिका विमानानि खर्षं रौप्यमयानि च ॥  
 रत्नगर्भाच्च कुर्याच्च स्वशक्त्या पाण्डु नन्दन ।  
 प्रथमा खर्षं निष्यन्ना द्वितीयारौप्यनिर्भिता ॥  
 तृतीया रत्नघठिता चतुर्थी नवनीतजा ।  
 पञ्चमीकणिकाग्नेन षष्ठीपिष्टमयीकृता ॥  
 कृत्वा षट्कृत्तिकां पार्थं गन्धालक्तक भूषिताः ।  
 रत्नगर्भाः कुङ्कुमाक्ताः पिष्टानस्तवकार्त्विताः ॥  
 सिन्दूर चन्दनाभ्यक्ता—जातो पुष्यैस्तु पूजिता ।

• कृत्तिका शङ्करमिति पुस्तकान्तये पाठः

मन्त्रेणानेन ताः पूज्य विप्राश्च प्रतिपादयेत् ॥

ॐ ससर्षिदारा अनसखवहभा

या ब्राह्मण्यष्टचभावेन युक्ताः ।

तुष्टा कुमारस्य च मातरो याः

ममापि सुप्रीततराः सन्तु स्वाहा ॥

एवमुच्चार्य विप्राश्च देयास्तु कृत्तिका नृप ।  
 ब्राह्मणोपि प्रतीच्छेत मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥  
 धर्षदाः कामदाः सन्तु इना नक्षत्रमातरः ।  
 कृत्तिका दुर्गसंसारान्तरयन्तु भयादपि ।  
 अनेन विधिना दत्त्वा दृष्ट्वाचैवान्तरे स्थिताः ॥  
 विसृज्य ब्राह्मणं भक्त्या अनुव्रज्य पदानि षट् ।  
 निर्वर्त्य च कृतार्थं च त्रियं सत्फलमाप्नुयात् ।  
 विमानेनार्कवर्णेन गत्वा नक्षत्रमण्डलं ॥  
 दिव्येन वपुषा तत्र स्रजन्दनविभूषितः ।  
 दिव्यनारीगणयुतः सुखमाप्तेह्यनामयः ॥  
 देभूयमानश्चमरेः कृत्तिकायाविराजितः ।  
 पारिजातकमन्दारपुष्पमालाविराजित ॥  
 कृतार्थः परिपूर्णश्च तिष्ठेद्दुर्घायतद्वयं ।  
 नारी कृत्वा व्रतं चास्ति गत्वा स्तर्गं सभर्तृका ॥  
 क्रीडते सुभगा साध्वी सर्वभोगसमन्विता ।  
 यश्चेतच्छृणुयात्पाद्यं भक्तियुक्तः समाहितः ॥  
 नारी वा पुरुषो वापि मुच्यते सर्व्यकित्त्विषैः ।

सौवर्णरौप्यमण्णिको नवनीतसिद्धा  
 षट्कृत्तिकाः कणिकपिष्ठमयीष कृत्वा ।  
 पात्रे निधाय कुसुमाक्षतधूपदीपैः  
 संपूज्य जम्बागहनं न विंशन्ति मर्त्याः ।  
 इति भविष्यत्तरोक्तं कृत्तिकाव्रतं ।

—००@००—

युधिष्ठिर उवाच ।

किमर्थं फाल्गुनस्यान्ते पौर्णमास्यां जनार्दन ।  
 उक्तं जायते लोके यामे यामे पुरे पुरे ॥  
 किमर्थं शिवस्तस्याङ्गिहे गेहे निनादिताः ।  
 होलाका दीप्यते कस्मात् फाल्गुन्यान्तु किमुच्यते ॥  
 आङ्गिहे जेतिकासंज्ञा शीतोष्णैति किमुच्यते ।  
 कोह्यस्याम्युच्यते देवः केनेयमवतारिता ॥  
 किमस्यां क्लियते कृष्ण एतद्विस्तरतो वद ॥

कृष्ण उवाच ।

मृणु राजन् प्रवक्ष्यामि विस्तरेण पुरातनं ।  
 चरितं होलिकायास्तु पारंपर्येण चागतं ॥  
 आसीत् कृतयुगे पाथं रघुर्नाम नराधिपः ।  
 शूरः सर्वगुणोपेतः प्रियवादी बहुश्रुतः ॥  
 स सर्वां प्रथिवीं जित्वा वशीकृत्य नराधिपान् ।  
 धर्मतः पालयामास प्रजाः पुत्रानिवोरसान् ॥

न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं तृष्णा ।  
 नाधर्मरुचयः पापास्तस्मिन् शासति पार्थिवे ॥  
 तस्यैवं शामतो राज्यं क्षत्रधर्मरतस्य वै ।  
 मर्षस्त्रीकाः समागम्य चाहि द्राहीति चाब्रुवन् ॥

पौरा जघुः ।

अस्माकं तु गृहे का चित् ढोण्डानामेति राक्षसी ।  
 दिवाराक्षी समागम्य वालान् पीडयते बह्वन् ॥  
 रक्षया चोदकेनापि भेषज्यैर्वा नराधिप ।  
 मन्त्रज्ञैः परमाचार्यैः सा नियन्तुं न शक्यते ॥  
 पौराणां वचनं श्रुत्वा रघुर्विष्मयमागतः ।  
 विष्मयाविष्टहृदयः पुरीहितमथाब्रवीत् ॥

रघुरुवाच ।

ढोण्डेति राक्षसी केयं किं प्रभावा द्विजोत्तम ।  
 कथमेषा नियन्तव्या मया दुष्कृतकारिणी ॥  
 रक्षणात् प्रीच्यते राजा पृथिवीपालनात्यतिः ।  
 अरक्षमाणः पृथिवी राजा भवति क्लिष्यपो ॥

वशिष्ठ उवाच ।

शृणु राजन् परं गुह्यं यन्नाथ्यातं मया क्वचित् ।  
 ढोण्डानामेति विख्याता राक्षसी मालिनः सुता ॥  
 तथा वाराधितः शम्भुरुपेण तपसा पुरा ।  
 प्रीतस्तामाह भगवान् वरं वरय सुव्रते ॥

( २४ )

यज्ञे मनीभिलषितं तद्दाम्यविचारितं ।  
 ढोख्ढा प्राह महादेवं यदि तुष्टः स्वयं मम ॥  
 तदवध्यां सुरादीनां मनुजानाञ्च शङ्कर ।  
 सां कुरुष्व त्रिलोकेश शस्त्राणाञ्च तथैव च ॥  
 श्रोतोष्णवर्षसमये दिवाराची वह्निर्गृहे ।  
 अभयं सर्वदा मे स्वात्त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥  
 एवमस्त्वित्यथोक्तास्तां पुनः प्रोवाच शूलभृत् ।  
 लम्बन्तीभ्यः शिशुभ्यश्च भयन्ते संभविष्यति ॥  
 ऋतुसन्धौ महाभागे मा व्यथा हृदये कृषाः ।  
 एवं दत्त्वा वरं तस्या भगवान् भगनेत्रहा ॥  
 स्वप्ने ह्यर्थोप्यथोलब्धस्तत्रैवान्तरधीयत ।  
 एवं लब्ध्वा वरं सा तु राक्षसी कामरूपिणी ॥  
 नित्यं पीडयते बालान् संसृत्य हरभाषितं ।  
 अडाडया तु गृह्णाति सिद्धमन्त्रं कुटुम्बिनां ॥  
 गृहेषु तेन सा लोके ह्यडाडेत्यभिधीयते ।  
 पुंशलीनाञ्च नारीणां नराणाञ्च विशेषतः ॥  
 रुधिरं नासिकाच्छेदाङ्गलितं सा पिवत्यलं ।  
 एतत्ते सर्व्वमाख्यातं ढोढायाश्चरितं महत् ।  
 साम्प्रतं ऋथयिष्यामि येनोपायेन हृन्यते ॥  
 अथ पञ्चदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप ।  
 श्रोतकालो विनिष्क्रान्तः प्रातर्यौषो भविष्यति ॥  
 अभयं सर्व्वलोकानां दीयतां पुरुषर्षभ ।  
 तथा ह्यशङ्किता लोका हसन्तु च रमन्तु च ॥

दारुणानि च खड्गानि गृहीत्वा समरोक्षकः ।  
 योधा इव विनिर्यान्तु शिशवः संप्रहर्षिताः ॥  
 सञ्चयं शङ्खकाष्ठानां पलालानाञ्च कारयेत् ।  
 तत्राम्निं विधिवद्वत्सा रक्षोघ्नै र्भ्यन्वविस्तरैः ॥  
 ततः किलिकिलाशब्दै स्तालोशब्दै र्मनोहरैः ।  
 तमन्निचिःपरिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च ॥  
 जल्पन्तु खेच्छया लोकाः निशङ्का यस्य यत्पतं ।  
 भगैर्वहुविधैः शब्दैः कौर्त्तयन् देशभाषया ॥  
 विस्तारयन् गायन् च सहस्रं नाम तस्य वै ।  
 तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता ॥  
 अष्टादहासैर्हिम्नानां राक्षसी क्षयमेप्सति ।  
 तस्यैर्ष्वर्चनं श्रुत्वा स नृपः पाण्डुनन्दन ॥  
 सर्व्वं अकार विधिवद्यदुक्तस्तेन धीमता ।  
 गता सा राक्षसी नाशन्ते न चोद्येण कर्मणा ॥  
 ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन्नडाडाख्यातिमागता ।  
 सर्व्वदुष्टदमोहोमः सर्व्वरोगोपशान्तिदः ॥  
 क्रियतेऽस्यां द्विजैः पार्थ तेन सा होषिका स्मृता ।  
 सर्व्वसारा तिष्ठिये यं पौर्णमासी युधिष्ठिर ॥  
 सारत्वात्सर्व्वलोकानां परमानन्ददायिनी ।  
 अस्यां निशागमे पार्थ संरक्ष्याः शिशवो गृहे ॥  
 गोमयेनोपलिप्ते च सचतुष्के गृहाङ्गणे ।  
 आकारवेच्छिशुप्रायान् खड्गव्यग्रकरान्नरान् ॥  
 खड्गकाष्ठे च संस्पृश्य गीतैर्होस्यकरैः शिशून्



रक्षन्ति तेषां दातव्यं गुडपक्वाद्यमेव च ॥  
 एवं ढीरुहेति राक्षस्या दोषः प्रशमनं व्रजेत् ।  
 बालानां रक्षणं कार्यं तस्मात्तस्मिन् स्वमालये ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

प्रभाते किं जनैर्देव कर्त्तव्यं सुखमीषुभिः ।  
 प्रवृत्ते माधवे मासि प्रतिपद्यदिति रवौ ॥

कृष्ण उवाच ।

कृत्वावश्यककार्याणि सन्तप्यं पितृदेवताः ।  
 बन्दयेद्बोलिकाभूतिं सर्व्वन्दुष्टोपशान्तये ॥  
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र पठामानं निवोध मे ।  
 वन्दितासि सुरेन्द्रेण ब्रह्मणा शङ्करेण च ।  
 अतस्त्वं पाहि नो देवि विभूते भूतिदा भव ॥  
 मण्डिते चर्चिते चैव उपलिप्ते गृहाजिरे ।  
 सतष्कङ्कारयेत् स्वच्छं वर्णकैद्याक्षतैः शुभैः ॥  
 तन्मध्ये स्थापयेत्पोठं शकवस्तोत्तररुदं ।  
 अग्रतः पूर्णकलशं स्थापयेत्पञ्चवैर्युतं ।  
 साक्षतं सहिरण्यञ्च सितचन्दनचर्चितं ॥  
 आसने चोपबिष्टस्य ब्रह्मद्योपेशे भारत ।  
 सञ्चयेच्चन्दने नारी अव्यङ्गाङ्गा सुलक्षणा ॥  
 पश्चरागोत्तरपटा श्रेष्ठांशुकविभूषिता ।  
 वपुराद्यं त्रिरोऽन्तश्च दधिदूर्वाक्षतान्वितं ॥  
 बर्हापयित्वा श्रीखण्डमायुरारोग्यवृद्धये ।

वपुराद्यं शिरोऽन्तमिति पादादारम्यमूर्धपर्यन्तं चन्दनेन  
चर्चयेदित्यर्थः तच्चन्दनं वर्षाययित्वा किञ्चिदवशेष्ये ।

पञ्चाश प्रशयेद्द्विद्वान् चूतपुष्पं सचन्दनं ।  
मनोभवस्य सा पूजा ऋषिभिः सम्प्रदर्शिता ॥  
यत्पिबन्ति वसन्तादी चूतपुष्पं सचन्दनम् ।  
सत्त्वं सत्यस्य कामस्य पूजेयं क्रियते जनैः ॥

प्राशनमन्त्रश्च ।

इदमग्रं वसन्तस्य माकन्दकुसुमं तव ।  
सचन्दनं पिबाम्यद्य सर्व्वं कामसमृद्धये ॥  
अनन्तरं द्विजेन्द्राणां सूतमागधवन्दिनां ।  
दद्याद्दानं वथाशक्त्या कामो मे प्रीयतामिति ॥  
ततो भोजनवेलायां सूतपाकेन तेन हि ।  
प्राशयेत् प्रथमं चात्र ततो भुञ्जीत कामतः ॥  
य एवं कुरुते पार्थ शास्त्रोक्तं फाल्गुनोत्सवं ।  
अनायासेन सिध्यन्ति तस्य सर्व्वे मनोरथाः ॥  
आधयो व्याधयश्चैव यान्ति नाशं न संशयः ।  
पुत्रपौत्रसमायुक्तः सुखं तिष्ठति मानवः ॥  
पुण्या पवित्रा सर्व्वं च सर्व्वं विघ्नविनाशिनी ।  
एवं ते कश्चिन्ता पार्थ तिथीनामुत्तमा तिथिः ॥  
वृत्ते तुषारसमये मितपञ्चदश्यां  
प्रातर्व्वसन्तसमये समर्पस्यते च ।  
सम्प्राश्य चूतकुसुमं सह चन्दनेन ।

सत्यं हि पार्ष्णि पुरुषोऽथ समां सुखी स्यात् ।

समां वर्षन्तु यावत् ।

इति भविष्योत्तरपुराणोक्तहोलिकोत्सवविधिः ।

—०००—

युधिष्ठिर उवाच ।

रक्षावन्धविधानं मे किञ्चित् कथय केशव ।

दुष्टमेतपिशाचानां येनाधृष्यो भवेत्परः ॥

सर्वं रोगीपशमनं सर्वाण्यभविनाशनं

सकृत्कृतेनाष्टमेकं येन रक्षा कृता भवेत् ।

कृष्ण उवाच ।

नृणाम् पाण्डवशार्ङ्गं इतिहासं पुरातनं ।

इन्द्रास्या यत् कृतं पूर्वं शक्रस्य जयवृद्धये ॥

देवासुरमभ्युद्युत् पुरा द्वादशवार्षिकं ।

तत्रासुरैर्जितः शक्रः सह सर्वैः सुरोत्तमैः ॥

परित्यज्यामरैः स्वर्गं सर्वालङ्कारवर्जितः ।

प्राप्यामरावतीं तस्थौ प्राणत्राणपरायणः ॥

ततो दानवराजेन चैलीक्यं स्ववशीकृतं ।

इदमुक्त्वाः समानाख्यं नृणाम् सनरामराः ॥

मां यजध्वं स्तविध्वञ्च षड् पूज्यः सुरासुरैः ।

यः शक्रः सम्यगातिष्ठे क्षणं हृदयतां मया ॥

दानवेश्वरवाक्सेन नष्टाः सर्वाः क्रियास्ततः ।

स्वाहाकारस्वधाकारवषट्कारादिकाथं याः ॥

नाधीयत तद्या वेदा नपूज्यन्तश्च देवताः ।  
उत्सवा न प्रवर्तन्ते सर्वमासीदसंभुसं ॥  
धर्मनाम्नि सुरेशस्य वल्लहानिरजायत ।  
ज्ञात्वा हीनवसं सर्वं दानवाः समभिद्रवन् ॥  
सोऽभिद्रुतोऽसुरगणै स्वप्नराज्योऽपि देवराट् ।  
हृहस्यतिमुपासन्मय इदं वचनमब्रवीत् ॥  
न स्यातुमवग्रतोमि न गन्तुं तैरभिद्रुतः ।  
सर्वथा योद्दुमिच्छामि यद्वाभ्यं तद्भविष्यति ॥  
नश्यते युद्धतो वापि तावद्भवति जीवितं ।  
तावद्वाताख्यजत् पूर्वं न यावन्नसीत्सितं ॥  
जयं मे शंसते ब्रह्मन् योक्त्रेऽहं दानवैः सह ।  
मुद्गर्तश्चलितं श्रेयो येन धूमायितं चिरं ॥  
कर्मायत्तं सुरैश्चर्यं पौरुषं कर्मचोच्यते ॥  
तदस्याहं करिष्यामि ध्रुवं श्रेयो भविष्यति ।  
श्रुत्वा सुरपतेर्वाक्यं हृहस्यतिरथाब्रवीत् ॥

हृहस्यतिरुवाच ।

न कालोविक्रमस्याद्य त्यजकोपं पुरन्दर ।  
देश काल विहीनानि कार्याणि विपरीतवद् ॥  
क्रियमाणानि दूष्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान् भवेत् ।

इन्द्र उवाच ।

ब्रह्मन् किं बहुनोक्तेन योत्स्येऽहं सह दानवैः ।  
मृचां कार्यसमारम्भे श्रेयसीत्येकचित्तता ॥  
गुणदीपावुभावेतावेकीकृत्य विचक्षते ।

कार्यमारभ्यते यत्तु तस्य दोषाः पराङ्मुखाः ॥  
 तयोः संवदतोरिवं शचीप्राह सुरेश्वरं ।  
 अद्य भूतदिनं देव प्रातः पर्व्य भविष्यति ॥  
 अहं रक्षां विधास्यामि जयो येन भविष्यति ।  
 पीलम्यास्तु वचः सर्व्वं कृतवान् बलहृत्तथा ॥  
 पौर्णमास्यां ततः प्रातः पौलीमीकृतमङ्गला ।  
 बवन्श्च दक्षिणे पाणौ रक्षापोठलिकां शुभां ॥  
 बहुरक्षस्ततः शक्रः कृतस्वस्त्ययनो द्विजैः ।  
 आरुह्यै रावतं नागं निर्ज्जगाम सुरारिहा ॥  
 संप्राप्य दानवानीकं नाम वित्र्याव्य चात्मनः ।  
 पातयामास यत्रू णां शिरांसि निशितैः शरैः ॥  
 तं दृष्ट्वा सहसायातं दानवाः संप्रहर्षिताः ।  
 अभिजग्मुः शितैर्वाणैः शक्रं बर्हिणवाजिनैः ॥  
 उवाच दानवान् सर्व्वान् प्रह्लादी दानवेश्वरः ।  
 दिष्ट्याद्य भवतां प्रामिर्ब्रह्महा दृष्टिगोचरः ॥  
 \* हृतेनमेकीकृत्याशु रथवशेन दानवाः ।

रथवशेन रथसमुदायेन ॥

यावत्स नश्यते पापस्तावद्यत्नी विधीयतां ।  
 दानवेश्वरवाक्येन ततस्ते दनुनन्दनाः ॥  
 त्यक्त्वा मीनं महात्मानः शक्रमाहुरहं हताः ।  
 ततः शचीपतिः क्रुद्धो वज्रमुद्यम्य भासुरं ॥  
 जघान दानवानीकं क्षणात् कालह्रव प्रजाः ।

वध्यमानाः सुरेशेन दानवास्ते महाबलाः ॥  
 अत्यन्तभयसन्वस्ताः कालीयमिति मोहिताः ।  
 केचित्समुद्रं विविशुर्गहनं केचिदाश्रिताः ॥  
 केचिन्नम्बितमूर्धानो नया भूत्वा वनेऽवसन् ।  
 दयाधर्मं प्रमुवाणा निर्घन्वव्रतमाश्रिताः ॥  
 हेतुवादपरा मूढा वक्ष्यन्तः प्रजागणान् ।  
 एवं निर्जितदैतेयान् शक्रः स्वस्थानमागतः ॥  
 त्रैलोक्यं पालयामास पूज्यमानः सुरासुरैः ।  
 हतहर्षा सुरेन्द्रेण शक्रं शरणमागताः ॥  
 प्रणम्य कक्षयामासुर्जितोऽहं समरेऽरिषा ।  
 ब्रह्मर्षे हीनवीर्येषु शक्रेणापि जितो यतः ॥  
 तस्माद्विक् पौरुषं लोके देवं हि बलवत्तरं ।

शक्र उवाच ।

विषादं माकृषा दैत्याः कार्य्याणां गतिरीदृशी ।  
 दैवाद्भवती भूतानां काले जयपराजयो ॥  
 सन्धानं सह शक्रेण नेदानोमुचितं भवेत् ।  
 अजेयः सर्वशत्रूणां कृतः शशा शचीपतिः ॥  
 रक्षावन्धप्रभावेण दानवेन्द्रो जितो महान् ।  
 वर्षमेकं प्रतीक्षन् ततः त्रियो भविष्यति ॥  
 भार्गवैषैव मुक्तास्ते दानवा त्रिगतञ्जराः ।  
 तस्युः कालं प्रतीक्षन्तो यद्योक्तं गुरुणा तथा ॥  
 एष प्रभावो रक्षायाः कथितस्ते युधिष्ठिर ।  
 जयदः सुखदश्चैव पुत्रा, रोग्य, धनप्रदः ॥

( २५ )

युधिष्ठिर उवाच ।\*

क्रियते कोन विधिना रक्षाबन्धः सुरोत्तम ।  
कस्यां तिथौ कदा देव एतन्मे वक्तुमर्हसि ॥  
यथा यथा हि भगवन् विचित्राणि प्रमाद्यसे ।  
तथा तन्ना न मे त्वमिच्छेत्तथाः शृणुतः कथाः ॥

कृष्ण उवाच ।

घनाहतेऽम्बरे पार्थ शाहले धरणीतले ।  
संप्राप्ते आवणे मासि पौर्णमास्यां दिनोदये ॥  
ज्ञानं कुर्वीत मतिमान् श्रुतिस्मृतिविधानतः ।  
ततो देवान् पितृंश्चैव तर्पयेत्परमाश्रया ॥  
उपाकर्मादिचैवीकामृषीणाञ्चैव तर्पणं ।  
कुर्वीत ब्राह्मणः आद्यं वेदानुद्दिश्य सप्रत ॥  
शूद्राणां मन्त्ररहितं ज्ञानं दानञ्च शस्यते ।  
ततोऽपराहसमये रक्षापीटलिकां शुभां ॥  
कारयेदक्षतैः शस्तैः सिद्धार्थैर्होमभूषितां ।  
वस्त्रैर्बिचित्रैः कार्पासेः क्षीमैर्व्यामलवर्जितैः ॥  
विचित्रतन्तुपषितां स्थापयेद्राजतोपरि ।  
कार्या गृहस्व रक्षा, गोमयीपरचितैः सहस्रकुण्डलकैः ॥  
दूर्वावर्षसहितैश्चिन्ता दुरितोपशमनाय ।  
उपलिप्ते गृहे देशे दक्षत्तुष्कन्यसेत् कुम्भं ।  
पीठं दक्षोपरि विशेत् राजामाल्यैर्युतय समुत्तैः ॥  
वेश्याजनेन सहितो मङ्गलशब्दैः समुष्कृतैश्चिक्कैः ।  
रक्षाबन्धः कार्यः शान्तिध्वनिना नरेन्द्रस्य ॥

देवदिजातिशस्त्राप्यस्त्रै रक्षाभिरर्चयेत् प्रथमं ।  
 तदनु पुरोधा नृपतेः रक्षाभ्यधीत मन्त्रेण ॥  
 येन बन्धी वली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।  
 तेन स्वामभिवभ्रामि रक्षे माचल माचल ॥  
 ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैश्चान्यैश्च मानवैः ।  
 कर्त्तव्यो रक्षिकावन्धो द्विजान् संपूज्य शक्तितः ॥  
 घनेन विधिना यस्तु रक्षाबन्धनमाचरेत् ।  
 स सर्वदोषरहितः सुखी सम्बन्धरं भवेत् ॥  
 यः श्रावणे श्रवति शीतजलं सुरेन्द्रे  
 रक्षाविधानमिदमाचरते मनुजः ।  
 आस्ती सुखेन परमेश स वर्षभेकं  
 स पुत्रपौत्रसहितः सरुहज्जनय ॥

इति भविष्योत्तरे रक्षाबन्धन पौर्णमासीव्रतं ।

—000—

कृष्ण उवाचेत्यनुव्रतौ ।

पञ्च पञ्चदशीः स्थित्वा एकभक्तेन मानवः ।  
 संपूज्य पूर्णिमां देवीं लिखितां चन्दनादिना ॥  
 पूर्णिमाप्रतिमा तु परिभाषायां द्रष्टव्या ।  
 ततः पञ्च घटान् पूर्णान् पयोदधिघृतेन च ॥  
 मधुना सितखण्डेन ब्राह्मणायोपपादयेत् ।  
 मनोरथान् पूरयन् यथा त्वं पूर्णिमाद्यसि ॥  
 पञ्चकुम्भप्रदानेन भूतानां तुष्टिरस्तु मे ।



दानमन्त्रः ।

द्विजानिवं नमस्कृत्य सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

एतत् पञ्चघट नाम व्रतं तुष्टिप्रदायकं ॥

इति भविष्योत्तरे पञ्चघटपूर्णिमाव्रतं ।

—000—

कृष्ण उवाचेत्यनुवृत्तौ ।

त्रिंशत्संपूज्य दम्पत्यान्युपवासी विभूषणैः ।

पौर्णमास्यामवाप्नोति मोक्षमिन्द्रव्रतादिह\* ॥

इति भविष्योत्तरे इन्द्रपौर्णमासीव्रतं ।

शङ्कर उवाच ।

महत्पूर्णा भवत्येषा पौर्णमासी द्विजोत्तम ।

प्रतिसंवत्सरं तस्याः सोपवासी जनार्दनं ॥

यः पूजयति धर्म्येन तेन संवत्सरं हरिः ।

पूजितः पौर्णमासीषु भवतीति विनिश्चयः ॥

तस्यां दानं स्तल्पमपि महद्भवति भार्गव ।

दानं तप्तं जपो ह्योमी यच्चान्यत्सुकृतं भवेत् ॥

भार्गव उवाच ।

संवत्सरे पौर्णमासी मह्णापूर्णा ह्यध्वज ।

कथं ज्ञेया जगन्नाथ तन्ममाचक्षु पृच्छतः ॥

शङ्कर उवाच ।

यस्यां पूर्वोन्दुना योगं याति जीवो महाबलः ।  
पौर्णमासीति सा ज्ञेया महापूर्वा हिजोत्तमैः ॥

जीवो वृद्धस्यतिः

इति भविष्यत्पुराणे महापौर्णमासीव्रतं ।

— ००० —

ऋषय उवाचः ।

श्रुतमेतस्त्वया ख्यातं पशुपाशविमोक्षणं ।  
व्रतं पाशपतं लोहं पुरा देवैरनुष्ठितं ॥  
वक्तुमर्हसि चास्माकं यथापूर्वं त्वया श्रुतं ।

सूत उवाच ।

पुरा सनत्कुमारेण शैलादि सृष्टवान् प्रभुः ।  
नन्दो प्राह च तस्मै यत् प्रब्रूदामि समासतः ॥  
देवैर्देव्यै स्थाघायक्षै र्गन्धर्वैः सिंहचारणैः ।  
ऋषिभिश्च महाभागैरनुष्ठितमनुत्तमम् ॥  
व्रतं द्वादशल्लिङ्गाख्यं पशुपाशविमोक्षणं ।  
भोगदृष्टैव भक्तानां कामदं मोक्षद शुभम् ॥  
अवियोगकरं पुण्यं भक्तानां भयनाशनं ।  
देवैरनुष्ठितं पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुना तथा ॥  
हत्वा कनीयसं लिङ्गं स्नाप्य चन्दनवारिषा ।  
त्रैत्रिमासादि विप्रेन्द्राः शिवलिङ्गव्रतं शुभम् ॥  
कृत्वा हेमं शुभं पद्मं कर्षिकाकेसरान्वितम् ।

नवरत्नैस्तु खचितमष्टपत्रं यथाविधि ॥  
 कर्णिकायां न्यसेल्लिङ्गं स्फाटिकं पीठसंयुतं ।  
 तत्र भक्त्या यथान्यायमर्चयेद्विल्वयत्रकैः ॥  
 सितैः सहस्रकमलैरक्तैर्नीलोत्पलैरपि ।  
 जातैरन्यैर्यथालाभं गायत्र्या स्नाप्य सुव्रत ॥  
 संपूज्य चैव गन्धाद्यैर्धूपदीपैश्च मङ्गलैः ।  
 नीराजनीयैश्चान्यैश्च लिङ्गमूर्त्तिं महेश्वरम् ॥  
 अग्ररुं दक्षिणे दद्यादघोरेण द्विजोत्तमः ।  
 पश्चिमे सद्यमन्त्रेण दद्याच्चैव मनःगिलां ॥  
 उत्तरे वामदेवाय चन्दनञ्चापि दापयेत् ।  
 पुरुषेण मुनिश्चेठ हरितालञ्च पूर्वतः ॥  
 सितागुरुङ्गवं विप्रा स्नाथा कृष्णागुरोर्भवम् ।  
 तथा गुग्गुलुधूपञ्च दद्यादीगाय भक्तितः ॥  
 महाचरुं निवेद्यास्मादाटकात्रमथापि वा ।  
 एतद्दः कथितं पुण्यं शिवलिङ्गं महाव्रतं ॥  
 सर्वमासेषु सामान्यं विशिषोऽपि च कीर्त्त्यते ।  
 वैशाखे वज्रलिङ्गन्तु ज्येष्ठे मरकतं शुभम् ॥  
 आषाढे मौक्तिकं लिङ्गं श्रावणे नीलनिर्मितं ।  
 मासि भाद्रपदे लिङ्गं पद्मरागमयं शुभम् ॥  
 आश्विने चैव विप्रेन्द्रा गोमेदकमयं शुभम् ।  
 प्रवालेन च कार्तिक्यां तथा वै मार्गशीर्षके ॥  
 माघे च सूर्यकान्तेन फाल्गुने स्फाटिकेन तु ।  
 सर्वमासेषु कमलं हैममेकं विधीयते ॥

अलाभे राजतस्यापि विश्वपत्नैः प्रपूजयेत् ।  
 रत्नानामप्यलाभे तु हेम्ना वा रजतेन वा ॥  
 रजतस्याप्यलाभे तु ताम्रलोहेन कारयेत् ।  
 शैलं वा दाहजं वापि सूक्ष्मं वा लवेदिकम् ॥  
 सर्वमन्त्रमन्त्रं वापि चत्तिकं परिकल्पयेत् ।  
 हेमन्तिके महादेवं त्रीपत्रेशैव पूजयेत् ॥

त्रीपत्रं कमलं ।

सर्वनाथेषु कमलं हेममेकमथापि वा ।  
 राजतं वापि कमलं हेमकर्णिकमुत्तमम् ॥  
 रजतस्याप्यलाभे तु विश्वपत्नैश्च पूजयेत् ।  
 सङ्कलमलाभे तदर्द्धेनापि पूजयेत् ॥  
 तदर्द्धेन वा हृष्टमष्टोत्तरशतेन वा ।  
 विश्वपत्ने स्त्रिया लक्ष्मीर्देवी लक्षणसंयुता ॥  
 नीलोत्पले विशालाक्षी सत्पले सप्तमखः स्वयं ।  
 पाद्यैर्गणैश्चैवादेवः सर्वदेवपतिः शिवः ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्रीपत्रं न त्यजेद्दुधः ।  
 नीलोत्पलं श्वेतपद्ममुत्पलञ्च विगणतः ॥  
 सर्ववश्यकरं वारः शिला सर्वार्थमिडिदा ।  
 कृष्णागरसमुद्भूतं सर्वपापनिकृन्तनं ॥  
 गुग्गुलुप्रभृतीनाञ्च धूपानाञ्च निवेदनं ।  
 सर्वरीगन्धकरञ्चन्दनं सर्वमिडिदं ॥  
 सौगन्धिकं तथा धूपं सर्वकामप्रसाधनं ।  
 च्छेतागुरुद्वयश्चैव तथा कृष्णागुरुद्वयं ॥

सोम्यं सितारधूपञ्च साक्षात्त्रिवर्णासिद्धिदं ।  
 श्वेताङ्ककुसुमे साक्षात्तुर्व्वक्लः प्रजापतिः ॥  
 कर्णिकारस्य कुसुमे मेधा साक्षाद्वावस्थिता ।  
 करवोरे गणाध्यक्षीबके नारायणः स्वयं ॥  
 सृष्टुगम्भिषु सर्वेषु कुसुमेषु नगात्मजा ।  
 तस्मादेतैर्यथा लाभपुष्यैर्धूपैर्दिभिस्तथा ।  
 पूजयेद्देवदेवेशं भक्त्या वित्तानुसारतः ।  
 निवेदयेत्ततो भक्त्या पायसञ्च महाचरुं ॥  
 सष्टतं सोपदंश्च सर्वद्रव्यसमन्वितं ।  
 शुद्धाक्षश्चापि मुद्गाक्षं आढक्यबन्धकन्तु वा ॥  
 उपहाराणि पुष्पाणि न्यायेनैवार्जितानि च ।  
 नानाविधानि चान्नानि प्रीक्षितान्यम्भसा ततः ॥  
 क्षीराज्यैः सर्वदेवानां स्थित्यर्थममृतं कृतं ।  
 विष्णुना जिष्णुना साक्षात्तोयेषु सुप्रतिष्ठितं ॥  
 तस्मात्संपूजयेद्देवमन्त्रे प्राणः प्रतिष्ठितः ।  
 उपहारे तथा पुष्टिर्व्यजने पवनः स्वयं ॥  
 सर्वात्मको महादेवो गन्धतोये ह्यपांपतिः ।  
 पटे वै प्रकृतिः साक्षान्महादेवो व्यवस्थिता ॥  
 तस्माद्देवं यजेद्भक्त्या प्रतिमासं यथाविधि ।  
 पौर्णमास्यां पौर्णमास्यां सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥  
 सत्यं शौचन्द्यान्नान्तिः सन्तोषो दानमेव च ।  
 पौर्णमास्यां तथा विप्रा उपवासञ्च कारयेत् ।  
 सम्बत्सरान्ते गोदानं तृपीत्सर्गं विशेषतः ॥

भोजयेद्वाङ्मणान् भक्त्या त्रीत्रियान् वेदपारगान् ।  
 तस्मिन् पूजितं तेन सर्व्वं द्रव्यसमन्वितं ॥  
 स्यापयेद्वा शिवक्षेत्रे दद्याद्वा\* ब्राह्मणाय च ।  
 एवं सर्व्वेषु मासेषु शिवलिङ्गं महाव्रतं ॥  
 कुर्याद्भक्त्या मुनिश्रेष्ठास्तदेव तपसां परं ।  
 सूर्य्यकोटिप्रतीकाशैर्व्विमानै रन्नभूषितैः ॥  
 गत्वा शिवपुरं दिव्यं नेहायाति कदाचन ।  
 अथ वा ह्येकमासे† च चरेदेवं व्रतोत्तमं ॥  
 शिवलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ।  
 अथवापि वित्तहीनस्तस्मिन् चिन्तयेन्नरः ॥  
 वर्षमेकं वरं देवं स्थानं प्राप्य शिवं व्रजेत् ।  
 देवत्वञ्च पितृत्वञ्च देवराजत्वमेव च ॥  
 गाणपत्यं पदं वापि शक्नोति लभते नरः ।  
 विद्यार्थी लभते विद्यां भोगार्थी भोगमाप्नुयात् ॥  
 द्रव्यार्थी च धनं पुण्यभ्रायुः कामांश्च नित्यजान् ।  
 यान्यांश्चिन्तयते कामांस्तान् प्राप्येह मोदते ॥  
 एकमासव्रतादेव चान्ते रुद्रमवाप्नुयात् ।

इदं पवित्रं परमं रहस्यं  
 व्रतोत्तमं विश्वसृजा च दृष्टं ।  
 ह्निताय देवासुरमर्त्यैर्मिह  
 विद्याधराणां परमं शिवेन ॥

\* दापयेदिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

† अथवासं कथासंवेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

संपूज्य देवं विधिनैव मीशं  
 प्रणम्य मूर्त्तां सह भृत्यपुत्रैः ।  
 व्यपोहनं नाम जपस्तवद्य  
 प्रदक्षिणीकृत्य शिवं प्रयत्नात् ॥  
 पुरा कृतो विष्णुस्त्वजा स्तवश्च  
 हिताद्य देवेन जगन्नयस्य ।  
 पितरमहेनैव सुरेन्द्रसार्धं  
 महागुभावात्तु महार्हमेतत् ॥

अधिहत्वा स्तवं वक्ष्ये सर्वसिद्धिप्रदं शुभं ।  
 नन्दिनश्च सुखात् श्रुत्वा कुमारैण महात्मना ॥  
 व्यासेन कथितं तस्माद्बहुमानेन वा श्रुतं ।  
 नमः शिवाय शुद्धाय निर्मलाय यशस्विने ॥  
 हृषान्तकाय सर्वाय भवाय परमात्मने ।  
 पञ्चवक्त्रो दशभुजो ह्यक्षिपञ्चदशैर्युतः ॥  
 शङ्खस्फटिकसङ्काशः सर्वाभरणभूषितः ।  
 सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वोपरि सुसंस्थितः ।  
 पद्मासनस्थः सोमोऽयं पापमाशु व्यपोहतु ॥  
 ईशानः पुरुषश्चैव अघोरः सद्य एव च ।  
 वामदेवश्च भगवान् पापमाशु व्यपोहतु ॥  
 अनन्तः सर्वविद्येशः स मे पापं व्यपोहतु ।  
 एको बद्धो ह्येकगुरुस्त्वै लोकाणामितो विधुः ॥  
 शिवध्यानैकसंपन्नः स मे पापं व्यपोहतु ।  
 त्रिमुक्तिर्भगवानीशः शिवभक्तिप्रबोधकः ।

शिवध्यानैकसम्यक्कः स मे पापं व्यपोह तु ॥  
 श्रीकण्ठः श्रीपतिः श्रीमाण्डूकवृष्णागरतः सदा ।  
 शिवास्त्रनुरतः साक्षात् स मे पापं व्यपोह तु ॥  
 शिखण्डी भगवान् शान्तः शिवभस्मानुलेपनात् ।  
 शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोह तु ॥  
 त्रैलोक्यनामिता देवी श्रीकारा च पुरातनी ।  
 दाक्षायणी महादेवो गौरी हैमवती शुभा ॥  
 एकवर्षाग्रजा माया पाटलायास्तथैव च ।  
 अपर्णा वरदा देवौ वरदानैकतत्परा ॥  
 उमासुरहरी साक्षात् काशीस्था पापमर्हिनी ।  
 खट्वाङ्गधारिणी देवी कराग्रतनुपल्लवे ।  
 नैष्कर्मकादिभिर्द्विव्यैस्तनुभिः पुष्पकैर्हता ॥  
 मेनया नन्द्या देवो कालिका वारिजेच्छया ।  
 अम्बा या वीतशोकस्य नन्दिनश्च महात्मनः ।  
 शुभावत्या सुशीर्षा वा पञ्चशूडा वरप्रदा ॥  
 सृष्ट्यर्थं सर्वभूतानां प्रकृतिश्च गताव्यया ।  
 त्रयोविंशतिभिस्तत्त्वैर्महदाद्यैर्विजृम्भिता ॥  
 सङ्ख्यादिशक्तिभिर्नित्यं नमिता नगनन्दिनी ।  
 मनोमयी महादेवो माया वा मण्डनप्रिया ।  
 मायया हि जगत्सर्वं ब्रह्माद्य सचरत्परं ॥  
 श्रीभनी मोहनो नित्यं योगिनौहृदि संस्थिता ।  
 एकादशे स्थिता लोके इन्दोवरनिभेषणा ॥  
 भक्त्या वरमया नित्यं सर्वदेवैरभिष्टुता ।



गणेश्वरभोजगर्भेन्द्रयमवित्तेशुपूर्वकैः ॥  
 सञ्ज्ञता जननी तेषां सर्वोपद्रवनाशिनी ।  
 भक्तानामार्त्तिहा भव्या भवभावविलासिनी ॥  
 भुक्तिदा मुक्तिदा देवी भक्तानामभयप्रदा ।  
 सा मे साक्षादुमा देवौ पापमाशु व्यपोहत् ॥  
 चण्डसर्वभणेशानो मुखाम्बुभ्रुविनिःसृतः ।  
 शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहत् ॥  
 सालङ्कायनपात्रश्च हलमग्नी स्थितः प्रभुः ।  
 याम्यतां मनुतान्देवः सर्वभूतगणेश्वरः ॥  
 सर्वदः सर्वगः सर्वप्रभवः प्रभुरीश्वरः ।  
 सनारायणकेशवैः सेन्द्रचन्द्रदिवाकरैः ॥  
 सर्वेश यज्ञगन्धर्वभूतेभूतिविधायकैः ।  
 उरगैर्ऋषिभिश्चैव ब्रह्मणा च महात्मना ॥  
 स्तुतस्त्रैलोक्यनाथस्तु मुनिरन्तःपुरे स्थितः ।  
 सर्वदा पूजितः सर्वैर्नन्दी पापं व्यपोहत् ॥  
 महाकालो महातेजो महादेवइवापरः ।  
 शिवार्चनरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहत् ॥  
 हृषभो मुनिशार्दूलः शिवध्यानपरायणः\* ।  
 शिवार्चनरतो नित्यं स मे पापं व्यपोहत् ॥  
 मेरुमन्दिरसङ्घाशनवकीटिप्रमाणतः ।  
 ऐरावतादिभिर्हि श्वैर्हि श्वैर्योगसमन्वितैः ॥  
 वहा हृत्पुण्डरीकाक्षस्तम्बे वृत्तिनिबन्ध च ।

\* प्रभाषत इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

गजेन्द्रवक्रो यः साक्षादा सप्तपाताल पादकः ॥

सप्तहीपोभुजङ्गकाः ।

सप्तार्णवकुप्यथैव सर्वतीर्त्तानुगः शिवः ।

आका वा देवो दिवो दिग्धातुः सोमसूर्याग्निलोचनः ॥

हतासुरा महाहृद्या महाविद्या महोत्कटाः ।

नद्योद्या धारशैर्द्विभ्ये र्योगपाशसमन्वितः ॥

हृद्यो हृत्पुण्डरीकाक्षस्तम्बे हृत्तिनिहृत्ति च ।

गजेन्द्रवक्रो यः साक्षाद्ब्रह्मकोटिशतैर्हतः ॥

शिवध्यानैकसम्पन्नः स मे पापं व्यपोहत् ।

भृगीशः पिङ्गलाक्षोऽसौ भसितासितदेहयुक् ॥

शिवाञ्च नरतः श्रीमान् स मे पापं व्यपोहत् ।

चतुर्भिस्तनुभिर्नित्यं सर्वारिविनिर्महनः ॥

स्कन्दः शक्तिधरः शान्तः सेनानीर्गजवाहनः ।

शिवासेनापतिः श्रीमान् स मेपापं व्यपोहत् ॥

मन्वागर्वस्तथेशानो रुद्रः पशुपतिस्तथा ।

उद्यो भीमो महादेवः शिवाञ्च नरतः सदा ।

ये ते पापं व्यपोहन्तु मूर्त्तयः परमेष्ठिनः ॥

महादेवः शिवो रुद्रः शतमुनीललोहितः ।

ईशानो विजयो भीमो देवदेवोभवोद्भवः ॥

कपीशश्चिदाकरः ।

एतेवै भैरवाद्यास्तु रुद्रारुद्रममा भवाः ।

शिवप्राणसमापन्ना व्यपोहन्तु मलं मम ॥

वैकर्त्तनी विवस्त्रांश्च मात्तण्डो भास्करो रविः ।

लोकाप्रकाशकश्चैव लोकसाक्षी त्रिविक्रमः ॥  
 आदित्यश्च तथा सूर्यः शंभुर्मातृ दिवाकरः ।  
 एते वै द्वादशादित्या व्यपोहन्तु मलं मम ॥  
 गगनःस्वर्गमन्वेतो रसश्च पृथिवीरुद्रा ।  
 चन्द्रः सूर्यस्तथा चाज्जा वसवः शिवभाविताः ॥  
 पापं व्यपोहन्तु मलं भयं नानाविधं मम ।  
 वसवः पावकश्चैव चयोनैर्ऋति रेवच ॥  
 वरुणो वायुः सोमश्च ईशानी भगवान् हरिः ।  
 पितामहश्च भगवान् शिवध्यानपरायणः ॥  
 एते पापं व्यपोहन्तु मनसा कर्मणा कृतं ।  
 गभस्तिस्वर्गयो वायुरनिलो मरुतस्तथा ॥  
 प्राणोपानश्च जीवेशो मरुतश्चैव भाषिताः ॥  
 शिवार्चनरतः सर्वो व्यपोहन्तु मलं मम ।  
 खेचरी वसुधारी च ब्रह्महा ब्रह्मवित्सुधोः ॥  
 सुषेणः शाश्वतः पुष्टः अपुष्टश्च महाबलः ।  
 एते वै चारणाः शम्भोः पूजयातीव शोभिनः ॥  
 व्यपोहन्तु मलं सर्वं पापश्चैव मया कृतं ।  
 मन्मथो मन्मदित्प्राज्ञो हंसराट् सिद्धपूजितः ॥  
 सिद्धिवित्परमः सिद्धिः सर्वं सिद्धिप्रदायिनः ।  
 व्यपोहन्तु मलं सर्वं सिद्धाः शिवपदार्चकाः ॥  
 यज्ञो यज्ञेशधनदो जन्मनो मन्त्रिभद्रकैः ।  
 पूर्णभद्रः स्वैरमाली शिविः पुच्छलिरेव च ॥  
 नरेन्द्रश्चैव वज्रेणा व्यपोहन्तु मलं मम ।

चनन्तः कुलिकयैव वासुकिस्तचकस्तादा ॥  
 कर्कोटकी महापद्मः शङ्खपोली महावलः ।  
 शिवप्रणाममापन्नः शिवदेवप्रभूषणः ॥  
 मलं पापं व्यपोहन्तु विघ्नं श्याबरजङ्गमं ।  
 वीणाज्ञः किन्नरत्रय शूरसेनः प्रमहर्षिनः ॥  
 अतिशयः सुप्रभोगी गीतज्ञश्चेति किन्नराः ।  
 शिवप्रणामसम्पन्ना व्यपोहन्तु मलं मम ॥  
 विद्या विनीतो विद्यासीराशिव्यर्द्धविदाम्बरः ।  
 प्रबुद्धो विबुधः श्रीमान् छतञ्जय महाययाः ॥  
 एते विद्याधराः सर्वे शिवध्यानपरायणाः ।  
 व्यपोहन्तु मलं सर्वं महादेवप्रसादतः ॥  
 हयघोषो महाजृम्भः कालनेमिर्महाययाः ।  
 सुषोषो महर्कथैव पिङ्गलो देवमार्द्दवः ॥  
 प्रह्लादशानुक्लादय शिविर्त्राण्कल एव च ।  
 ऋभुकुम्भो च मायावी कार्तवीर्यः छतञ्जयः ॥  
 एते चुरा महाज्जानो महादेवपरायणाः ।  
 व्यपोहन्तु महाघोरं पापभारं समैव च ॥  
 महर्जाय हरिचैव पश्चिराष्टीमहर्षिनः ॥  
 नागशचुर्हिरण्माभो वैजतेवः ब्रह्मज्ञानः ।  
 नागानां विघ्ननाशक विष्णुवाहन एव च ॥  
 एते हिरण्यवर्णाभा महता विष्णुवाहनाः ।  
 नानाभरणसम्पन्ना व्यपोहन्तु भवं मम ॥  
 अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च अङ्गिरा भृगुरेव च ।

कश्यपो नारदश्च दधीचिश्चावनस्तथा ।  
 उपमन्युस्तथान्ये च ऋषयः शिवभाविताः ।  
 शिवार्चनरता हन्तु मनसा कर्मणा कृतं ।  
 गभस्तिस्वर्गनो वायुरनिलो मरुतस्तथा ।  
 प्राणः प्राणेशजीवेशी जीवेशमरुत एव च ॥  
 शिवार्चनरताः सर्वे व्यपोहन्तु मलं मम ।  
 श्वेचरी वसुचारी च ब्रह्महा ब्रह्मविष्णुधीः ॥  
 पितरः पितामहाश्चैव तथैव प्रपितामहाः ।  
 अम्बिस्तप्ता वर्हिषदस्तथा मातामहादयः ॥  
 व्यपोहन्तु भयं पापं शिवध्यानपरायणः ।  
 लक्ष्मीश्च धरणी चैव मायत्री च सरस्वती ॥  
 दुर्गा उमा शची ज्येष्ठा मातरः सुरपूजिताः ।  
 देवतानां मताश्चैव गणा मातामहादयः ॥  
 व्यपोहन्तु भयं पापं शिवध्यानपरायणाः ।  
 लक्ष्मीश्च धरणी चैव गणानां मातरस्तथा ॥  
 भूतानां मातरः सर्वाः पद्मगा गणमातरः ।  
 प्रसादाद्देवदेवस्य व्यपोहन्तु भयं मम ॥  
 सर्वशो मेनका चैव रश्मा चैव तिलोत्तमा ।  
 सुमुखी दुर्मुखी चैव कामुकी कामवर्हिनी ॥  
 अघान्याः सर्वलोकेषु दिव्यायास्तरसः शुभाः ।  
 शिवाश्च ताण्डवं नित्यं कुर्वन्ति शिवभाविताः ॥  
 गेये शिवार्चनरता व्यपोहन्तु मलं मम ।  
 अर्कः श्रीमोऽङ्गारकश्च त्रुषश्चैव वृहस्पतिः ॥

शुक्रः शनैश्चरच्चैव राहुः केतुर्धहावलः ।  
 व्यपोहन्तु भयं क्षीरं शिरःपीडां शिवार्चनाः ।  
 मघी हृषीऽथ मिथुनं तथा कर्कटकाः शुभाः ॥  
 सिंहश्च कन्या विपुला तुला वै वृश्चिकस्तथा ।  
 धनुश्च मकरश्चैव कुम्भो मीनस्तथैव च ॥  
 राशयो हादशाश्चैताः शिवपूजापरायणाः ।  
 व्यपोहन्तु परं पापं प्रसादात्परमेष्ठिनः ।  
 अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी तथा ॥  
 श्रीमान्मृगशिराश्राद्धी पुनर्वसुपुण्यसर्पकाः ।  
 मघा वैपूर्वफाल्गुन्या उत्तराफाल्गुनी तथा ॥  
 हस्ता वित्रा तथा स्नाती विशाखा चानुराधका ।  
 ज्येष्ठा मूलं महाभागा पूर्वाषाढा तथैव च ॥  
 श्रवणश्च धनिष्ठा च तथा शतभिषापि च ।  
 पूर्वभाद्रपदा चैव तथा प्रौष्ठपदा शुभाः ।  
 पौष्ण्या च देव्या सततं व्यपोहन्तु मलं मम ।  
 ज्वरह्, गण्डोदकश्चैव शतकर्णोमहावलः ॥  
 महाकर्णः प्रभूतश्च प्रभुर्वा प्रीतिवर्धनाः ।  
 कोटिकोटिशतैश्चैव भूता नो परिवारिताः ॥,  
 व्यपोहन्तु भयं पापं महादेवप्रसादतः ।  
 श्रिवध्यानैकसम्पन्नाः शिगिरा इन्दुमूर्तिभाः ॥  
 कुन्देन्दु सदृशाकाराः कुन्देदुवडवामुखः ।  
 वडवामुख्यशतुर्य्यावडवामुखभेदनः ।  
 वपुष्पांश्चैव सदभक्तः क्षीरोद्भव पाण्डुरः ॥

( २७ )

रुद्रालोके स्थितो नित्यं रौद्रैः साहं स्थितो गणैः ।  
 वृषेन्द्रोविस्मृतिर्होवोविश्वस्व जगतः पिता ॥  
 वृत्तोनन्दादिभिर्नित्यं मातृभिर्मघमर्दनः ।  
 शिवाच्चनरतो नित्यं मम पापं व्यपोहत् ॥  
 गवां माता जगन्माता रुद्रलोके व्यवस्थिता ।  
 माता मवां अहाभागा समे पापं व्यपोहत् ॥  
 सुशीला शीलसम्पन्ना शिवभक्तिपरायणा ।  
 शिवलोके स्थिता नित्यं सा मे पापं व्यपोहत् ॥  
 वेदशास्त्रार्थसर्वज्ञः सर्वशास्त्रार्थचिन्तकः ॥  
 समस्तगुणसम्पन्नः सर्वदेवेश्वरोऽमरः ।  
 ज्येष्ठः सर्वेश्वरः सौम्यो महाविष्णुचतुष्टयं ॥  
 आद्यः सेनापतिः शास्त्रं मोदते मेघमर्दनः ।  
 ऐरावतगजारूढः कृष्णकुञ्चितमूर्ध्निजः ॥  
 कृष्णगौराङ्गनयनः शशिपद्मगभूषणः ।  
 एतैः प्रेतैः पिशाचैश्च कृष्णाण्डैश्चैव संवृतः ॥  
 शिवाच्चनरतः साक्षात्समे पापं व्यपोहत् ॥  
 ब्रह्माणी चैव माहेयो कौमारी वैष्णवी तथा ॥  
 वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डाम्नायिका तथा ।  
 एता वै मातरः सर्वाः सर्वलोकप्रपूजिताः ॥  
 योषिनीभिर्महापापं व्यपोहन्तु समाहिताः ।  
 वीरभद्रो महातेजा हिमकुन्देन्दुसन्निभः ॥  
 रुद्रस्य तनयो रौद्रः शूलशक्तमहाकरः ।  
 सहस्रबाहुः सर्वज्ञः सर्वविधधरः स्वयं ॥

चैतापिनयनोपेतो वै लोक्काभयदः प्रभुः ।  
 मातृषां रक्षको नित्यं महावृषभवाहनः ॥  
 चैलोक्यनिर्भितः श्रीमान् शिवपादार्चने रतः ।  
 यत्तस्य च शिरच्छेत्ता पूजदन्तविनाशनः ॥  
 बद्धे ह्यन्तरातः साक्षाद्गनेननिपातनः ।  
 गणेश्वरो यशो नारी स मे पापं व्यपोहतु ॥  
 लब्धे वा वरिष्ठा वरदा सर्वाभरणभूषिता ।  
 महालक्ष्मीर्जगन्माता सा मे पापं व्यपोहतु ।  
 महामोहा महाभागा महाभूतगणैर्वृता ।  
 शिवार्चनरता नित्यं सा मे पापं व्यपोहतु ॥  
 लक्ष्मीः सर्वगुणोपेता सर्वलक्षणलक्षिता ।  
 शर्मादा सर्वदा देवी सा मे पापं व्यपोहतु  
 सिंहाकृदा महादेवी महिषासुरमर्दिनी ॥  
 शिवार्चनरता बद्धा मम पापं व्यपोहतु ।  
 बद्धाचौ बद्धदयिता ब्रह्माण्डगणनायका ।  
 कुक्काच्छेति मे पापं व्यपोहन्तु समाहिताः ॥  
 धनेन देवीं स्तुत्वा तु चान्ते सर्वं चमापयेत् ॥  
 प्रणम्य शिरसा भूमौ प्रतिमासं हिलोत्तमान  
 व्यपोहन स्तवमिमं वः पठेत् ऋषयादपि ।  
 विधूय सर्वपापानि बद्धलोके महीयते ।  
 कन्यार्थी सभते कन्यां जयकामो जयं सभेत् ॥  
 अर्धकामो सभेद्वं पुत्रकामो बद्धन् सुतान् ।  
 विद्यार्थी सभते विद्यां भोगार्थी भोगनाप्नुवात् ॥



यान् यान् कामान् प्रार्थयते यन्नानाञ्चैव यत्फलं ।  
 दानानाञ्चैव यत्पुण्यं व्रतानाञ्च विशेषतः ॥  
 तत्पुण्यं कीटिगुणितं जप्त्वा प्राप्नोति मानवः ।  
 गोघ्नञ्चैव कृतघ्नञ्च वीरहा ब्रह्महा तथा ॥  
 शरणागतघातीञ्च मितविश्वासघातकः ।  
 कुष्ठः पापसमाचारो मातृहा पित्रहा तथा ॥  
 निहृत्य सर्वपापानि शिवस्तीक्ष्णे नहीयते ।

इति लिङ्गपुराणोक्तं मन्त्रव्यपोदनं पाशुपतव्रतं ।

— ०१० —

भगवन् श्रोतुमिच्छामि व्रतं पाशुपतं वरं ।  
 ब्रह्मादयोऽपि यत् कृत्वा सर्वे पाशुपताः ज्ञताः ॥  
 वायुरुवाच ।

रहस्यं यत् प्रवक्ष्यामि सर्वपापनिऋतनं ।  
 व्रतं पाशुपतं श्रेष्ठं मया च शिरसि श्रुतं ॥  
 कालञ्चैत्रपौर्णमासी देशः शिवपरिवहः ।  
 क्षेत्रारामादिरन्योवा प्रशस्तः शुभलक्षणः ॥  
 तत्र पूर्ववर्षोदश्यां सुस्नातस्तु कृताङ्किकः ।  
 अतुल्यार्थं समाचार्यं संपूज्य प्रणिपत्य च ॥  
 पूजां स्वशास्त्रिकीं कृत्वा शुक्लाम्बरधरः स्वयं ।  
 शुक्लयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥  
 दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च ।  
 प्राणायामतथं कृत्वा प्राङ्मुखीवाप्युदङ्मुखः ॥

ध्यात्वा देवस्य देवीस्य तद्विद्यापनवर्त्मना ।  
 व्रतमेतत् करोमीति भवेन्नङ्गल्य्य दीक्षितः ॥  
 बावत् शरीरपातस्य द्वादश्याद्मघापि वा ।  
 तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादश्यात् वा ।  
 तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकं मघापि वा ।  
 दिनद्वादश्यात् बाह्य व्रतसङ्कल्पनं विधिः ॥  
 समिद्धमग्निमाधाय विराजो होमकारणात् ।  
 हुत्वाज्येन समिद्धि चरुणा च यथा क्रमं ॥  
 पूर्णयाः पुरतो भूप तत्त्वानां शुद्धिसुहिगेत् ।  
 शुद्ध्याम्बूलमन्त्रेण तारे च समिधादिभिः ॥  
 तत्त्वान्येतानि मद्देहे शुद्धान्यन्यानि संस्कार ॥  
 पञ्चभूतानि तत्त्वानि पञ्चपञ्चेन्द्रियाणि च ।  
 ज्ञानकर्त्तृविभेदेन पञ्च पञ्च विभागयः ॥  
 त्वगादिधातवः सप्त पञ्चप्राणादिविश्वः ।  
 मनसाहं\* कृतं तद्विर्गुणैः प्रकृतिपुरुषो ॥  
 रागोविद्या कला चैव नियतिः काल एव च ।  
 चक्षुश्च शुद्धवियाश्च महेश्वरसदाशिवौ ।  
 शक्तिश्च शिवतत्त्वानि तानि च क्रमशो विदुः ॥ ,  
 मन्त्रैस्तु विराजो हुत्वा होतास्तैर्विर्गतो भवेत् ।  
 अथ गोमयमादाय पिच्छीकृत्य निमन्त्रा च ॥  
 म्यस्याधे तन्तु संरक्ष्य दिने तस्मिन् हविष्मभुक् ।  
 प्रभाते च चतुर्हस्त्रां तच्च सत्त्वं ब्रह्मोदितं ॥

\* मनसाहं कृतं इति कर्मणि पुञ्जकारे वाचः ।

दिने तस्मिन् निराहारः कालशेषं समापयेत् ।

प्रातः पर्वणि वाप्येव हुत्वा होमश्च तत्पतः ।

उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृह्णीयाद्भस्म पाततः ॥

ततस्तु जटिलो मुण्डः शिथ्यैश्च कजश्च च ।

हुत्वा म्नी तु पुनर्वीतिलञ्जस्य स्याद्दिग्म्बरः ।

अन्यः कषाययसनश्चर्म्मचोराम्बरी यथा ॥

रक्ताम्बरी वल्कली च भवेद्दण्डी च मूषली ।

प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद्दिराचम्पात्मनस्तनुं ॥

सकली कृत्य तद्भस्म विटजामलसम्भवं ।

अग्निरित्यादिभिर्म्मन्त्रैः षड्विंशत्यर्च्यैः क्रमात्

निर्म्मथ्याङ्गानि मूर्त्तौ चरणान्तश्च संस्पृशेत् ।

अग्निरिति भस्मवायुरिति भस्मजलमिति भस्मस्थलमिति

भस्मसर्वदं हुत्वा इदं भस्मणाङ्गएतानि चक्षुषि इत्याद्यर्च्यैश्च

मन्त्राः षट् ॥

ततस्तेन क्रमेणैव समुत्पुल्य च भस्मनः ।

सर्वाङ्गोदहनं कुर्यात् प्रणवेन शिवेति च ॥

तत स्त्रिपुण्ड्रं रचयेत्तिरायुषसमाह्वयं ।

शिवभाव समागम्य शिवयोगमथाचरे ॥

कुर्यात्तिसन्ध्यामिधेवमेतत्पाशुपतं व्रतं ।

भुक्तिमुक्तिप्रदञ्चैतत् पशुत्वं विनिवर्त्तयेत् ॥

तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतं ।

पूजनीयो महादेवो लिङ्गमूर्त्तिः सनातनः ॥

पद्ममष्टदलं हैमं नवरत्नैरलङ्कृतं ।

कर्णिकाकेशरोपेतमशनं परिकल्पयेत् ॥  
 श्वेतकृष्णनिभं भाजुंसित रक्तमद्यापि वा ।  
 पद्मंतस्याप्यभावे तु केवलं भावनामयं ॥  
 पद्मस्य कर्णिकामध्ये कृत्वा लिङ्गं कनीयसं ।  
 स्फाटिकं पीठकोपेतं पूजयेदश्रितः क्रमात् ॥  
 प्रतिष्ठाप्य विधानेन लिङ्गं कृतसुशीभनं ।  
 परिकल्प्यासने मूर्त्तिपञ्चवक्रं प्रभाकरं ।  
 पञ्चगव्यादिभिः पुण्यैर्यथाविभवसंभृतैः ॥  
 स्नापयेत् कलशैः पूर्णैः सहस्राणि सुसम्भवेः ।  
 गन्धद्रव्यैः सकपूर्वैश्चन्दनाद्यैश्च कुङ्कुमैः ॥  
 सवेदिकं समालिप्य लिङ्गं भूषणभूषितं ।  
 विल्वपत्रैश्च पद्मैश्च वाच रक्तैस्तथोत्पलैः ॥

उत्पलैर्नीलोत्पलैः ।

नीलोत्पलैस्तथान्यैश्च पुष्पैस्तेसुः सगन्धिभिः ।  
 पुष्पैः प्रशस्तेष्वेतेषु पुष्पैर्दूर्वाक्षतादिभिः ॥  
 समभ्यर्च्य यथालाभं महाप्रजाविधानतः ।  
 धूपं दीपं तथा चार्घ्यं नेवेद्यच्च विशेषतः ॥  
 निवेदयित्वा विधिवत् कल्याणञ्च समाचरेत् ।  
 इष्टानि च विशिष्टानि न्यायेनोपार्थितानि च ॥  
 सर्वं द्रव्याणि देयानि व्रतेत्वस्मिन्विशेषतः ।

(श्रीपञ्चोत्पलपद्मानां सङ्ग्रामाह त्रिकामता ॥)

प्रत्येकममणव्यापितमष्टोत्तरं द्विजाः ।

तत्रापि च विशेषान् यद्विल्वपत्रकं परं प्राहुः ॥

परान् पद्मसहस्रकान् नोलोत्पलादिष्टोष्यतक्षमानं विश्वपत्रकं ॥  
 पुष्यान्तरे न नियमो यथालाभं प्रपूजयेत् ।  
 अष्टाङ्गमर्घ्यं मुत्कण्टं धूपदीपौ विशेषतः ॥  
 कृष्णागरुघोराख्ये रक्ता सद्यमनःशिली ।  
 चन्दनं वामदेवाख्ये मुखे कृष्णागुरुः पुनः ॥  
 पौरपेगुग्मुसं सव्ये सौम्ये सौगन्धिके मुखे ।  
 ईशानेऽपि तु सीतादीन् दद्याद्दधूपं विशेषतः ॥  
 शर्करा मधुकूर्पूरं कपिलाष्टतसंयुतं ।  
 चन्दनागुरुकुष्ठाद्य मास्यं वै सम्यचक्ष्यते ।  
 कर्पूरवर्त्तिजोपाद्या देवी दीपावलिस्ततः ॥  
 अघोरचन्दनन्देयं प्रतिचक्रमतः परं ।  
 प्रथमावरणे पूज्य क्रमाद्विवस्वरामुखी ।  
 ब्रह्माङ्गानि ततश्चैवं प्रथमावरणे च येत् ।  
 द्वितीयावरणे पूज्या विद्येशाक्तवर्त्तिनः ॥  
 तृतीयावरणे पूज्या भवाद्याद्याष्टमूर्त्तयः ।  
 महादेवादयस्तत्र तथैकादशमूर्त्तयः ॥  
 चतुर्थावरणे पूज्याः सर्व्वे एव गणेश्वराः ।  
 षष्टिरेव तु पद्मस्य पञ्चमे ज्योतिषांगणः ॥  
 सर्व्वे देवाश्च देव्यश्च शर्वाः सर्व्वेऽपि खेचराः ।  
 धातास्तवाहिमश्चैव सर्व्वे मुनिगणा अपि ॥  
 बीजिनी सुरवः सर्व्वे पञ्चगोमातरस्तथा ।  
 चैत्रवासाश्च सप्तमाः सर्व्वे वैतस्वराधर ॥  
 अथावरण पूजान्ते संपूज्य परमेश्वरम् ।

श्यासनं स्रजं हृद्यं हृदिभङ्गा निवेदयेत् ॥  
 मुखवासादिदत्तानां ताम्बूलं सोपदंशकं ।  
 अलङ्कृत्य च मूपीपि नानाबुधविभूषणैः ॥  
 नीराजनानां चिस्तीर्थं पूजाशेषसमापयेत् ।  
 क्रमुकं सोपदंशञ्च शयनञ्च समर्पयेत् ॥  
 यद्यत् यस्य हितं हृद्यं तत्सर्वमनुरूपतः ।  
 कृत्वा च कारयित्वा च खित्वा च प्रतिपूजनं ॥  
 स्तोत्रव्ययोगेन जप्त्वा विद्यां पञ्चाक्षरीं जपेत् ।

(पञ्चाक्षरी विद्या च वायुसंहितोक्ता ।)

अस्याः परमविद्यायाः स्वरूपमधुनोच्यते ।  
 आदौ नमः प्रयोक्तव्यं शिवायेति ततःपरं ।  
 सेवा पञ्चाक्षरी विद्या सर्वस्वितिशिरीगता ।  
 शब्दजो तस्य सर्वस्य बीजभूतः समासतः ॥  
 प्रथमं तन्मुखाद्दीर्घा मम मेवात्मवाचिका ।  
 तप्तचामीकरप्रस्था पीनोत्तपयोधरा ॥  
 चतुर्भुजा त्रिनयना बालेन्दुकृतशेखरा ।  
 पद्मीत्पलधरा सौम्या वरदाभयपालिका ॥  
 सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ।  
 सितपद्मासनासीना नीलकुक्षितमूर्धजा ॥  
 अस्याः पञ्चविधावर्णा प्रस्फुरद्द्रविमण्डला ।  
 पीतकणास्तदा धूम्रवर्णाभारकणव च ॥  
 पृथक् प्रयुक्तायेवैता विन्दु नादविभूषिता ।  
 अर्धचन्द्राकृति विन्दुनाददीपशिखाकृतिः ॥

वीजं द्वितीयबीजेषु मन्त्रस्यास्य वरानने ।  
 दीर्घपूर्वतुरीयस्य पञ्चमं शक्तिमादिशत् ॥  
 वामदेवीनाम ऋषिः पङ्क्तिहृन्दश्च आदितः ।  
 देवताशिवएवाहं मन्त्रस्यास्य वरानने ॥  
 उमाच वै वरारोहा विश्वामित्र स्तथाङ्गिराः ।  
 भारद्वाजश्च वर्णानां क्रमश्च ऋषयः स्मृताः ॥  
 गायत्रानुष्टुप्त्रष्टुप च ऋन्दांसि बृहतीविराट् ।  
 इन्द्रोरुद्रीहरिर्ब्रह्मास्कन्दस्तेषां च देवताः ॥  
 मम पञ्च मुखान्याहुः स्थाने तेषां वरानने ।  
 पूर्वार्द्धिर्वाहपूर्वं तं नकारादि यथा क्रमं ॥  
 उदात्तः प्रथमोवर्णं चतुर्थं द्वितीयकः ।  
 पञ्चमः स्वरिथैव मध्यमोनिहतः स्वयं ॥  
 मूलविद्या शिवं शैवं सूक्तं पञ्चाक्षरं तथा ।  
 नामान्यस्य विजानीयादेवं मे हृदयं मतं ॥  
 नकारः शिव उच्येत मकारस्तु शिखीच्यते ।  
 शकारः कवचं तद्दहाकारोनेत्र उच्यते ॥  
 यकारोस्त्रं नमः स्वाहावषट्कुं वीषडित्यतः ।  
 फडित्यपि च वर्णानामन्ते इत्वं यदा तदा ॥  
 तत्रापि मूलमन्त्रोऽयं किञ्चिद्भेदमन्वितं ।  
 तत्रास्य पञ्चमोवर्णो हादशस्वरभूषितः ॥  
 तस्मादनेन मन्त्रेण मनोवाक्कायभेदतः ।  
 शिवगोरक्षनं कुर्व्यात् जपहोमादिकं तथा ॥  
 प्रदक्षिणं प्रक्षामञ्च कृत्वा स्नानं समर्चयेत् ।

ततः पुरस्ताद्देवस्य हृदिष्ये च प्रपूजयेत् ॥  
 दत्तार्घ्यपुष्टौ पुष्पाणि देवमुद्दिश्य लिङ्गतः ।  
 अभिवाञ्छि च संरञ्ज्य यद्वा देवस्य नामतः ॥  
 प्रत्यहं जनयत्वेवं कुर्यात् सर्वं पुरोहित ।  
 ततस्तस्याम्बुजं लिङ्गं सर्वोपकरणान्वितं ॥  
 समर्पयेत्सगुरवे स्थापयेद्वा शिवालये ।  
 संपूज्य च गुरुनन्यान् व्रतितञ्च विशिषतः ॥  
 भक्तान् द्विजानभुक्ताञ्च दीनानाद्याञ्च तोषयेत् ।  
 स्वयञ्चानशनप्रायः फलमूलाशनोऽथवा ॥  
 पयोव्रतो वा भिक्षाशो द्विबैवेकाशनोभवे ।  
 नक्तं मुक्ताशनं नित्यं भूशयीविरतः शुचिः ॥  
 भस्मशायी शशाशायी वीरासनशयोऽथ वा ।  
 ब्रह्मचर्यरतीनित्त्वं व्रतमेतत्समाचरेत् ॥  
 अर्कवारे तथेन्दौ वा पञ्चदश्याञ्च पक्षयोः ।  
 अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां शक्त्वाह्नुपवसेदपि ॥  
 पाषण्डपतितोदक्या स्तकाम्यजपूर्विकान् ।  
 वर्जयेत्सर्व्वयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा ॥  
 क्षमा, दानं दया, सत्यं महिसा शीलता भवेद् ॥  
 सन्तुष्टञ्च प्रशान्तञ्च जपध्यानरतस्तथा ॥  
 कुर्यान्नृषवणं स्नानं भस्मस्नानमथापि वा ।  
 पूजा वैशाखिकञ्चैव मनसा कर्मणा गिरा ॥  
 बहुनात्र किमुक्तेन नाचरेदशिव व्रती ।  
 प्रसादात्तु सदाचारे निरूप्य गुरुलाघवं ॥



उच्छितां निष्कृतिं कुर्यात् पूजाहोमजपादिभिः ।  
 चासनासौ व्रतस्यैवमाचरेद्यजमादतः ।  
 गोदानहोमोत्सर्गं कुर्यात् पूजाश्च संसदः ॥  
 सामान्यमेतत् कश्चितं व्रतस्यास्य विधानतः ।  
 प्रतिमासं विशेषश्च प्रवदानि वषाक्रमं ॥  
 वैशाखे वष्पसिङ्गन्तु ज्येष्ठे मारव्रतं शुभं ।  
 चाषाढे मौक्तिकं विद्यात् श्रावणे नीलनिर्मितं ॥  
 माघे भाद्रपदे देवं पुष्करागमयं शुभं ।  
 चाम्पयुज्यान्तु विधिवद्भोमिदकमयं शुभं ॥  
 कार्तिक्यान्तु पुनं लिङ्गं बैदूष्यं मार्गशीर्षके ।  
 पुष्करागमयं पुष्ये माघे तु मञ्जोरथं ॥  
 काल्गुन्याश्चन्द्रमास्तोयं चैशेमासेऽथवा तथा ।  
 सव्यं मासेषु रत्नानामज्ञाभिः श्रेयमेव वा ॥  
 हेमालाभिः राजते वा ताम्रजं सोहमेव वा ।  
 कृष्णं वा यद्यालाभं च्चिकं वात्यदेव वा ॥  
 सव्यं गन्धमयं वाष्पं सिङ्गदुर्यास्यवाचपि ।  
 व्रतावसानसमये समाचरितमेत्वकं ॥  
 कृत्वा वैशाखिकीं पूजां हुत्वा चैव यथावपि ।  
 संपूज्य यजमाचार्य्यं व्रतिनश्च विशेषतः ॥  
 देशिकेनाभ्यनुज्ञातः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ।  
 दर्भासनो दर्भपाणिः प्राचापानौ निवृत्तश्च  
 जपित्वा शक्तितो मूलं ध्यात्वालिङ्गं चिबन्धकं ।  
 अनुज्ञाप्य यथापूर्वं नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥

वसुत्स्रजानि भगवान् व्रतमेतत्सदाश्रया ।  
 इत्युक्तो दीर्घमूलान्तु दर्मानुत्तरतस्वजेत् ॥  
 ततो दर्भकुटाधारमेखला अपि चीत्स्रजेत् ।  
 पुनराचम्य विधिवत् पञ्चाक्षरसुदीरजेत् ।  
 यः कुर्यात् व्रतिकीदीक्षामादेहान्तमनाःकिल ॥  
 व्रतमेतत् प्रकुर्वीत स तु वै नैष्ठिकः स्मृतः ।  
 सत्यः शमी च विप्रैर्यो महापाशुपतस्तथा ॥  
 स एव तपसा श्रेष्ठः स एव च महाव्रतः ।  
 न तेन सदृशः कश्चित् कृतकृत्योमुसुक्षुषु ॥  
 यतिश्चनैष्ठिकीयातः समाहुर्नैष्ठिकीत्तमं ।  
 या नार्थ्ये तद्वादशाहं व्रतमेतत् समाचरेत् ॥  
 शीऽपि नैष्ठिकतुल्यः स्यात् शिवव्रतसमन्वयात् ।  
 घृताक्तोयश्चरेदेतत् व्रतं व्रतपरायणः ॥  
 द्विचैकदिवसम्बापि स च कश्चन नैष्ठिकः ।  
 कृतकृत्यश्च निष्कामीयश्चरेद्ब्रतसुत्तमं ॥  
 शिवापि तात्त्वात् सततं तेनाम्बः सदृशः कश्चित् ।  
 भवच्छिन्नोद्विजोविहान् महापातकसन्धैः ॥  
 पापैर्विमुच्यते सखी मुच्यते न च संग्रहः ८  
 ब्रह्मणे पदवीं कीर्त्ये तद्ब्रह्म परिकीर्त्तितं ॥  
 यस्मात् सर्वेषु श्लोकेषु वीर्यवान् कृतसंयतः ।  
 भस्मनिष्ठश्च दक्षत्यो दामो भस्मानि सङ्गमात् ॥  
 भस्मस्नान विशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ।  
 भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः ॥

भूतप्रतिषु सर्वेषु लोकेष्वन्येषु वा भवेत् ।  
 अरोगः सर्वसिंहार्थो भवेच्चातो वदुःसह ॥  
 मन्मनिष्ठस्य सान्निध्याविद्रवीतिन संशयः ॥  
 मासकर्मसिकं प्रीतां भक्षकल्पभक्षणात् ।  
 भूति भूति करं पुंसां रक्ष रक्ष पर परं ॥  
 किंमर्थं मिह वक्तव्यं भस्ममाहात्म्यकारणं ।  
 व्रती च भक्तानां ज्ञातः स्वयं देवी महेश्वरः ॥  
 परमात्म च शौचानां भस्मैतत्पारमेश्वरं ।  
 धीम्ययजस्व तपसि व्यापादोयं निवारितः ॥  
 यस्मात्सर्वे जयन्त्येनः कृत्वा पाशुपतं व्रतं ।  
 धनवद्भस्मसंगृह्य भस्मज्ञानरतो भवेत् ॥

इति वायुसंहितोक्तं \* पाशुपतं व्रतं ।

—000—

अथ गजपूजा ।

तत्र श्रीगजेश्वर प्रार्थनमधिकृत्याह पाशुकायः ।

एवमस्त्विति देवेशस्तसुवाच मतङ्गजं ॥  
 आषाढां पूर्णचन्द्रायां मामभ्यर्च्य नराधिपाः ।  
 तवपूजां करिष्यन्ति दत्तोद्घोषवरस्तव ॥  
 तस्माद्भवसमाराज पूजा कार्य्या नरोत्तमैः ।  
 श्रीगजाय विधानेन शुचिभिस्तूपवासितैः ॥

\* इति पुराणोक्तं पाशुपतव्रतमिति पुस्तककारेण वाक्यः ।

श्रीकामैश्च विशेषेण सदैश्वर्यकरौ शुभा ।  
 दत्त्वा तस्मै वरं देवी भगवान् भूतभावनः ।  
 गतः स्वमालयं देवी गताः सर्वाश्च देवताः ॥  
 श्रियं ददाति विपुलां यस्मात् पूजाविधानतः ।  
 प्रख्यातः श्रीगजस्तम्बाज्जबदी तृपसप्तम ॥  
 तेनैषा क्रियते पूजा हिरदानान्तु नित्यशः ।  
 इदमन्तत् प्रवक्ष्यामि कल्पमस्य नराधिप ॥  
 चतुर्णां क्षीरवृक्षाणां द्रव्यमन्त्यत् बन्धुभिः ।  
 लपोथ याहयेद्दिप्रो बलिं ह्रीमांश्च कारयेत् ।  
 एष्याहर्षापेण ततः स्वस्ति वाच्य दिजोत्तमान् ।  
 पञ्चाग्निप्रमाणं स्यादयन्तिकमकोटरं ॥  
 सन्नृचैवानुपूर्वञ्च भक्तैः साधुर्जितं ।  
 शायामातास्यच भवेत् कर्णिका हादगाद्गला ॥  
 विंगत्यङ्गुलनाहात् कार्या तु सुममाहिता ।  
 वेलागवाक्षनलिनीमग्निव्यञ्जनकं तथा ॥  
 वैदलं याज्ञिकं भाण्डस्तथैवामनकद्रुतं ।  
 सचन्दनाय कलशांशतुरः<sup>१</sup> सोदकांस्तथा ।  
 सामान्यं यज्ञवत्सर्वं शेषन्द्वयमुपाहरेत् ॥  
 ततो विप्रः शुचिर्भूत्वा नमस्कृत्य महेश्वरं ।  
 सनत्कुमारं वरदं श्रीगजश्च महाबलं ॥  
 सर्वान् देवान् नमस्कृत्य दिगयात्री ममाहितः ।  
 सर्वानुषिगणांशैव तथा नक्षत्रमण्डलं ॥

१ विष्णुमर्यादादक्षिणो पुष्करिणीति पुस्तकाकरे पाठः ।

समुद्रानापगाः सर्वाः समहोरगराक्षसाः ।  
 पर्वताः सर्वभूतानि जङ्गमाजङ्गमं जगत् ॥  
 ऐरावतांयाद्य पुनर्नमस्कृत्य दिशाङ्गजान् ।  
 उपोष्य सस्त्रिभेद्राषौ वामोभिरहृतैर्द्विज ॥  
 सेनान्यांश्च नमस्कृत्य शुचिभूत्वा कृताञ्जलिः ।  
 कुशास्तरणसंवृत्ते स्त्रिदिव्ये प्रयतः शुचिः ॥  
 स्वोभूते पुनरुत्थाय ज्ञाती भूत्वा समाहितः ।  
 तस्ये यस्तु गजेन्द्रस्य नमस्कृत्याधिरोहयेत् ॥  
 सञ्छ्रितं तालव्यजनं माण्डामोपमोभितं ।  
 नन्दितूर्य्येण महताचीद्यमानेन मीभितं ॥  
 सालङ्करणकैः पूरं हेमजालविभूषितं ।  
 नानाकारैस्तथावस्त्रैः समन्तात् परिवेष्टितं ॥  
 चन्द्रनागुरुभिश्चैव सर्वगन्धैरलङ्कितं ।  
 स्त्रीरूपवेशैः पुरुषैः परिचर्यापशोभितैः ।  
 जल्पद्भिर्निष्ठुरं वाक्त्रं प्रहसद्भिस्तथैव च ॥  
 चतुष्पथे वीथिमागे तथैव चत्वरेषु च ।  
 राजमार्गेषु च भृशं घोषवन्तस्ततस्ततः ॥  
 अर्धबिम्बानि† तन्धेवं राजानो विजयैषिणः ॥  
 सेनापतिरमात्याश्च ज्ञे चान्धे तद्विजानतः ॥  
 पूजयन्ति यथा न्धात्रं तथैव गजजीविनः ।

\* चान्विलीति पुलकान्तरे पाठः ।

† विषयेषिच इति पुलकान्तरे पाठः ।

अतीत्यथा तु कुर्वाणाः सप्तबलवाहनाः\* ।  
 ज्वराजालैर्विनश्यन्ति देवताविक्रमेण वै ॥  
 प्रयुञ्जते च वै तस्मै सम्यक् पूजां नराधिप ।  
 सपुत्रदारा वर्धन्ते सराङ्गबलवाहनाः ॥  
 आर्घ्यां माहेश्वरस्यैतां प्रतिगृह्णन्ति ये नृपाः ।  
 संघामे शत्रुसंघाते भवन्ति च विदारिणः ॥  
 काले बीजानि रोहन्ति सम्यग्वर्धति वासवः ।  
 न भवत्यत्र मरको व्याधिहानिस्तथैव च ॥  
 निरामयश्च भुञ्जीत राजा कृत्वां वसुन्धरां ।  
 रत्नाकरवतीं देवीं सशैलवनकाननां ॥  
 अरोगा बलवन्तश्च जायन्ते च मतङ्गजाः ।  
 राजीपजीविनः सर्वे कामभोगैः समन्विताः ॥  
 पुत्रैश्च पशुभिश्चैव जीवन्ति च शतं समाः ।  
 अरोगा बलवन्तश्च जायन्ते च प्रजा भृश ॥  
 पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनं ।  
 यांश्च प्रार्थयते कामान् सर्वांस्तान् प्राप्नुयात्तरः ॥  
 एवं हत्तं महाराज शम्भो भक्त्यान्वितं विभो ।  
 श्रीगजस्य भयाद्द्विद्वि त्रिषुः<sup>†</sup> लोकेषु विश्रुतं ॥  
 मया ख्यातं महाबाहो विद्वारेण यथाक्रमं ॥  
 इति पालकाप्रोक्तोगजपूजाविधिः ।

— (a) २० — —

\* सराङ्ग बलवाहना इति पुस्तकालये पाठः ।

† मयं विद्विद्विषुः लोकेषु पञ्जमिति पुस्तकालये पाठः ।

अथार्व्यगोपथब्राह्मणं ।

अथाश्वयुजे मासे पौर्णमास्या

मपराह्णे हस्तिनो नीराजनं कुर्यात् ।

प्रागुदक्प्लवने देशे यत्र दिशि वा मनोरमते गिरय

स्ते पर्वता इत्ये तथा हस्तगतमर्द्धम्बा मण्डलं

प्रगृह्य याभिर्थ्यमितिसंप्रोचयेत् तत्र श्लोकाः

दशहस्तसमुत्तेधं पञ्चहस्तं सुविस्तृतं ।

शान्तवृक्षमयं कुर्यात्तीरणं पुष्टिवर्द्धनं ॥

शुक्लैः शुक्लास्वरधरैस्तन्माल्यैरपि भूषित ।

कारयेत् स्यण्डिले शुभ्रे रसैश्च परिपूरिते ॥

रसैस्त्वामभिषिञ्चामि भूमे मह्यं शिवा भव ।

असपत्ना सपत्न्याग्नी मम यज्ञविवर्द्धनी ॥

इमौस्तम्भौ घृताभ्यक्तौ शुभौ भावसमावृतौ ॥

योमा कथाभिदामेति तमिमौ स्तम्भौ निर्द्दहतामित्पुच्छयस्व  
ब्राह्मणस्य त इत्युभाभ्यां सुवर्णमालापताकैस्तम्भौ संयोज्य तस्या  
धस्तात्पतुर्हस्तां वेदीं कृत्वा तन्वमित्युक्तदर्भैः पवित्रपाणिर्वलि  
पुष्पाणि च दत्त्वा मधुलाजाभिश्चैः स्वस्तिकं संयावदधिकृशर  
रूपसद्यतविविधान्नपानभक्ष्यलक्षफलैरग्निं परिस्तीर्य आपो  
अस्मान्मातरः शुभ्रं<sup>१</sup> न्वित्तिचतुरोडुम्बरान् कलशान् ऋदोदकेन  
पूरयित्वा प्रतिदिशमवस्थाप्य दध्वाद्द्रुद्राग्नेयं वायव्यवारुणा  
मन्वारचोन्नं कृत्या दूषणं यशस्य चर्च्चस्यानि च हुत्वीषधिंसमादाय  
दिहस्तमण्डलमित्युक्त्वा । तत्र श्लोकाः ।

• वायव्यसम्भृतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

† सद्यन्निति पुस्तकान्तरे पाठः ।

सिंही व्याघ्री च हरिणी जम्बता चापराजिता ।

इन्द्रिपर्णी च दूर्वा च पद्मसुत्वलमालिनी ॥

तामनुमन्त्रयेद्देलं कटकसवदध्याहापि बैसाप्रचनहुचर्म्भ परि-  
स्तीर्य, बैतस्वाहुभ्रमनुमन्त्रा, ततोस्वाक्कादधिदेवता तस्यै च  
बलिं दत्त्वा, पिण्डानि च दध्यात् ।

हस्तिनाम वाचयेद्यस्यां दिशि स रिपुर्भवति तां दिशं गत्वा  
हस्तिनमानवेदिरस्त्रेण रजतेन बध्ने च मणिमुक्ताग्रह्णेन चन्दनेन  
भद्रदारुषया कुष्ठेन नलदेन रोचनयास्त्रेण मणिकुशिलया  
पद्मकुलुदीत्यलैर्ममान्ने र्वर्षे इति सूक्तं दक्षिणोत्तरप्रतिमुखं प्रति-  
जपेच्छेषेण गात्रास्त्रभ्यंजयेत् जपेत् । तत्रज्ञोक्ताः । हस्तिनो-  
रक्षणे दण्डः कर्त्तव्यो बैश्वीनवः । षोडशारत्निमात्रस्तु चातुर्ष्व-  
मनोद्दृष्ट । तेन वारचात्तारयते दण्डायै तु दृष्टानि कृत्वा यसति  
जातं जानं । जातवेदसमित्वन्मिं प्रज्वालयेत् सजातं जातवेद-  
समिति नीराजयित्वा निधिं विभ्रतीति शालास्तु प्रवेशयेद्येन-  
प्रेक्षमाणाः स्वानि स्थानानि ब्रजन्ति दीर्घायुषीबलवन्तश्च भवति  
गोसहस्रं कर्त्तुं दक्षिणायामवरश्च ।

इति गजनीराजन निधिः ।

—000—

सनत्कुमार उवाच ।

अथ पर्वणि यत्कृत्यं तच्छृणुष्व महामते ।

यज्ज्ञात्वा मनसः चान्तिं<sup>०</sup> सुसम्भूतिञ्च विन्दति ॥



यत्पव्वणि कृतन्तावत् ॥ शुभम्वा यदि वाशुभं ।  
 षष्ठिवर्षसहस्राणि तत्फलं भुञ्जते नराः ॥  
 दयितं जीवितं पुंसां सर्वेषामपि सन्धतं ।  
 यतस्त्वचयसंप्राप्तपरिक्लेशयुता नराः ॥  
 अतस्तच्छान्तिजननमायुःप्रदमनाकुलं ।  
 सर्व्वं सोख्यप्रदं भद्रं तादृश्वतमिहोच्यते ॥  
 चतुर्दश्यां शुचिः स्नात्वा दन्तधावनपूर्व्वकं ।  
 चरितव्रतार्चयन् शतशक्यायमानसः ॥  
 पौर्णमास्यान्तथा कृत्वा देवपूजां समाचरेत् ।  
 मण्डलं चतुरस्रन्तु कारयेत् कुसुमाक्षतैः ॥  
 तस्मिन् त्रीशं त्रियं देवीमर्चयेत् सुसमाहितः ।  
 बृहन्तं पयमापूर्णं गन्धेन न्यापयेद्वृषदं ।  
 चतुरस्रोत्पृष्णींस्तु कलशांस्थापयेत् क्रमात् ।  
 मध्ये वावाहयेत् पञ्च शक्रादीन्यायधान्यपि ॥  
 इन्द्रियाणि तथा पञ्च बुद्धिप्राणं तथा मनः ।  
 न्यसेद्विद्यानि सर्वाणि कलशेषु चतुर्ध्वपि ॥  
 सर्वापद्भ्यस्तरेभ्यर्च्यैवाधिव्याधिभयादपि ।  
 रक्षन्तु सर्व्वदा भान्तु बुद्धिप्राणं मनसनः ॥  
 श्रवन्तु सर्व्वदापद्भ्यो मङ्गलानि दिग्गन्तु नः ।  
 इति मन्त्रेण चाभ्यर्च्यं समिद्धे जातवेदसि ॥  
 षड्भिर्गन्धैस्तु जुहुयात् संस्कृते तु यथा विधि ।  
 तिलेनाक्षतयुक्तेन त्रिमध्वक्तेन संयतः ॥

मन्त्राः ।

अनामयाय पूर्णाय विमलायाश्च, ताय च ।  
 मृत्यवे कालरूपायैत्येते मन्त्रास्तथा च पट् ॥  
 अथैवायुधमन्त्रे च प्राणेन करणैरपि ।  
 इत्वा तु करणायैतिः तच्छेषेण बलिभ्यजेत् ॥  
 अथासने स्थितं माध्यं कृत्वाचार्य्यस्तदद्यतः ।  
 अभिषेकं ततः कुर्यात् पयसा तज्जलेन च ॥  
 कुटुम्बिने दरिद्राय निष्कमावञ्च हाटकं ।  
 तिलान्नलवणादीनि दद्याद्विप्रशताय च ॥  
 पूर्णकुम्भांस्ततोवास्त्रै हरिद्राचूर्णसंयुतान् ।  
 बीजपूर्णान्स्तु कलशान् लवणेन प्रपूरितान् ॥  
 शतुरयतुरोदद्याद्योषिडाः परमायुषे ।  
 गुरवे च वरंदत्त्वा कृत्वा ब्राह्मणतर्पणं ॥  
 उपवासविधानेन दिनशेषं नयेत्सुधीः ।  
 अनन्तरे च दिवसे कुर्याद्भगवदर्चनं ॥  
 वान्धवैः सह भुञ्जीत नियमाद्य विमर्जयेत् ।  
 एवं पर्वणि यः कुर्याच्चिरञ्जीवो भवेन्न सः ॥  
 सर्व्वव्याधि समुत्थाने सर्व्वदुःखोदये मति ।  
 स्नानं पर्व्वणि यः कुर्यात्तच्छान्तिं सोऽग्र्युते परां ॥

इति गारुडपुराणोक्तमायुर्व्रतं ।

अगस्त्य उवाच ।

सर्वेषाञ्चैव पात्राणामतिपात्रन्तु शङ्करी ।  
 तान्तु पूजय विघ्नेशां दृष्टादृष्टप्रदायिकां ॥  
 पात्राणान्तुपूज्यता विघ्ने शाम्बिघ्ने चरी ।  
 ब्रह्मणा यो विधिः शक्ने कथितो विजयावहः ।  
 शक्नेण पूर्णिमा तातः\* श्रावणस्य शुभावहा ॥  
 शक्र उवाच ।

विजया या समाख्याता सर्वकामप्रसिद्धये ।  
 तामहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः सुरसत्तम ॥  
 ब्रह्मीवाच ।

पुत्रार्थं राज्यविद्यार्थायशःसौभाग्यतोऽपि वा ।  
 विजयार्थं ग्रामकामो जयां कुर्वीत पूर्णिमां ॥  
 हैमं वा राजतं वापि खड्गं वा अथपादुके ।  
 प्रतिमां वापि कुर्वीत सर्वलक्षणसंयुतां ॥  
 शाङ्कर्या इति शेषः ।

तामादाय शुभे ऋक्षे शक्रवस्त्रविभूषितां ।  
 यवशास्त्रद्वु रोपेतां पानपात्रविभूषितां ॥  
 दीवींसुशोभनां वस्त्रैः कल्पयेत्तत्र विन्यसेत् ।  
 हुत्वा हुताशनं मन्त्रैः तत्रदेवीन्तु विन्यसेत् ॥  
 तत्र सद्यवाङ्मुरादियुक्तायां वेद्यां ।  
 रोचनाचन्दनं चन्द्रेरुपलिप्याथ पूजयेत् ॥

\* अथेति पूर्णिमातामहति पुत्रकामरेपाठः ।

नानापुष्पविशेषैस्तु धूपगन्धान्भोजनेः ।  
 पूजयेद्विधिवद्देवीं तथा वीजानि चाहरेत् ॥  
 यवगोधूमसुह्रांश्च शालिषष्टिकघ्राटकीः ।  
 तिलान्भाषान् प्रसृतींश्च श्यामाकाविणरालकान् ॥  
 विल्वाम्ब्रदाडिमकपित्थमौचकापिच्छनागरान् ।  
 बदरान् वीजपूरांश्च उडुम्बर अण्डकान् ॥  
 दापयेच्चेव देव्यास्तु नैविद्यान्यपराणि च ।

आविणी आशुव्रीहिः ।

ऐरावतं नारिकेलं नारङ्गं कदलोफलं ।

नारङ्गं पानीयामलकं ।

फलार्धन्तु फलान्येव जपार्थंश्च यवाङ्गरान् ।

पुष्पं सौभाग्यकामाय ब्रह्मन्यायुर्धनानि च ॥

धनुः शत्रुविनाशाय तत्कामाय तदेव हि ।

अन्नं सर्वार्थकामाय यथालाभन्तु दापयेत् ॥

ततः क्षमापयेद्देवीं विद्यां गृह्णे च प्रार्थितां ।

विद्याञ्चस्यमाणमन्त्रं ।

पुत्रार्थं पूजयेदालान्विजयाय स्त्रियो द्विजान् ।

धर्मार्थं चैव भोज्येन मन्त्रितं विद्यया तथा ॥

मन्त्रितं भोज्येत भोजयितव्यं व्रतिना ।

दक्षिणा तद्वदाचार्ये कन्यकां ब्राह्मणेण च ।

दापयेद्यास्वशक्त्यातु तथा तं मनुगृह्णयेत् ॥

\* क्षमापयामिति पुस्तकालये पाठः ।

† प्रार्थयते इति पुस्तकालये पाठः ।

भोज्याग्रं पुत्रकामेन यासं विद्याभिमन्त्रितं ।

भोक्तव्यं पृथक् पात्रेण न च कुर्वीत सङ्करं ॥

अनया विधिपूर्वन्तु मन्त्रोप्यत्रैव लिख्यते ।

ओं यः पृथिव्यां रेततमेहादवतयोमामक्षितानि विद्याप्रयच्छ-  
त्यष्टीपुत्रान् जनयति वेदवेदाङ्गपारगान् । योऽधीत्य न प्रयच्छत्य  
पुत्रो नपुंसको भवति । अहं वीर्येणाहं बलेन तु ओं नमो  
भगवते अक्षीणरेतसे स्वाहा रतिकाले वा चिन्तयेद्देवतां  
तान्निदशेखरी ।

यस्य रेतने लीकोऽयं भूषितः पावनो भुवि ।

ओं रैताय महारैताय सर्व्ववीर्य्यमहाबले ।

कामाय कामदेवाय मम कामान् प्रयच्छतु ॥

अनयाभिमन्त्रितं शयनं भजेत् ।

प्रयच्छत्यष्टी पुत्रान् यदिमीहं न गच्छति ॥

एवं विद्यां गृह्णीत्वा तु देवीं नित्यं प्रपूजयेत् ।

भवते सर्व्व कामानां सिद्धिरिष्टापराजितां ॥

यानीह फलपुष्पाणि उत्पद्यन्ते च प्राञ्चधि ।

तानि देव्याः सकन्यायागुरवेऽपि प्रदापयेत् ॥

यथा लाभक्तुं वत्स देयं पुष्पफलानि च ।

थावणो शुभदा या च आश्वनी कार्त्तिकीति वा ॥

स्थान्येतेन विधिना अवश्यं सिद्धिमिच्छता ।

ह्रीमेन ब्रह्म चर्य्येण बहुमन्त्रोपसाधनात् ॥

अपती लभते पुत्रान् धनं मौगाय्य जीवितं ।

अथवा श्रनधाविद्या लक्षणतद्गती मित्ता ॥

वीजपूरकबीजानि वटशृङ्गाणि नावनात् ॥  
 नागकेशरपुष्पाणि कृत्वा वी लभतेफलं ।  
 वृहतीसिता श्वेतवृहती । वट शृङ्गाणि वटाङ्कुराः ।  
 नावनात् नास्मिन्  
 फलसर्पिंरपांपानात् फलं प्राप्नोति विद्यया ।  
 अजेयो भवति लोके विद्याधरधनाधिपः ॥  
 फलमर्पिरायुर्विदसिंहं ।  
 एतत्तु सर्व्वमाख्यातं विजयार्थं व्रतीत्तमं ।  
 सिद्धिदं सर्व्वलोकानां विधिनात्पूसेवनात् ॥  
 इति देवीपुराणोक्तं पुत्रप्राप्तिव्रतं ।

—000—

मार्कण्डेय उवाच ।

कार्तिक्यान्तु तद्यारभ्य संपूर्णशश्वत्सर्षपं ।  
 पूजयेदुदये राजन् सदानन्नाशनीभवेत् ॥  
 लावणं मण्डलं कृत्वा चन्दनेनानुलेपितं ।  
 दशनक्षत्रसहितं ततः सोमन्तु पूजयेत् ॥  
 ( लावणं सैन्धवलवणकृतं । )  
 कृत्तिकारोहिणीयुक्तं कार्तिके मासि पूजयेत् ।  
 सौम्यार्द्रासहितं राजन् मासि सोम्ये तथैव च ॥  
 आदित्यपुष्यसहितं मासि पौषे च यादव ।  
 मघामर्षयुतं भाद्रफाल्गुणे शृणु पार्थिव ॥

( ३० )

आर्यस्ततोद्य सावित्रैः सहितं पूजयेद्भिक्षुं ॥  
 चित्रास्वातिबुतश्चैत्रे वैशाखे मृच्छ पार्श्विव ।  
 विशाखया च मैत्रेण युतं संपूजयेत्तथा ॥  
 ज्येष्ठामूलयुतं ज्येष्ठे आषाढाख्यानमुत्तरे ।  
 आश्विने अवणोपेतं वारुणेन अविष्टया ॥  
 तन्नाभाद्रपदे पौष्णा अजाङ्घ्रिवधसंयुतं ।  
 अश्लिनीभरणीयुक्तं तथाचाश्वयुजे विभुं ॥

( कार्तिकादौकृत्तिकादिक्रमेष फाल्गुनश्चावणभाद्रपदेषु  
 द्वौषि चोषि । )

गन्धमाखनमस्कारदीपधूपान्नसंन्यदा ।  
 शुभ्रेण परमाग्नेन लवणेन घृतेन च ॥  
 इक्षुणेक्षुविकारैश्च पयसा पायसेन च ।  
 पूज्याद्याविधवानार्यस्तथा तल्लक्षणैः शुभैः ॥  
 ततोऽनन्तरमश्रीयाद्भविष्यं प्रयतीनरः ।  
 ब्राह्मणानां व्रतान्ते तु महारजतरञ्जितं ॥

महारजतं कुशुभः ।

शक्त्या तु चासनं\* दद्यात्कारी वा यदि वा नरः ।  
 रूपसौभाग्यलावण्यधनयुक्तोभवेन्नरः ।  
 व्रतेनानेन चोर्षेण स्वर्मलोकश्च गच्छति ॥  
 सोपवासश्च यः कुर्याद्भ्रतमेतद्गुणमं ।  
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥  
 सौभाग्यादि च यत् प्रोक्तं तदाप्नोति विशेषतः ।

मनसा काङ्क्षितान् कामान् सर्वानाप्नोत्वसंग्रहं ॥  
 जनाभिरामस्य यथाङ्गपरस्वा  
 जनाधिपालस्य तथैव लक्ष्मणा ।  
 यज्ञस्य तुल्यस्य तथैव ब्रह्मणा  
 मानुष्यमासाद्य भवेन्न राजा ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं ॥ मनोरथपूर्णमा व्रतं ।

—०००—

मार्कण्डेय उवाच ।

कार्तिके पौर्णमास्यान्तु पूर्णं शिशिरदीधितिं ।  
 पद्मे षोडशपत्रे तु कर्णिकायान्तु पूजयेत् ॥  
 केसरे पूजयेत्तत्र नक्षत्राण्यष्टविंशतिं ।  
 पत्रेषु तिस्रिरेवाच्यार्गततोऽन्वोत्साद्य पूजयेत् ॥  
 अग्निवृद्धाग्निशेभास्य नागस्कन्दविरीचनाः ।  
 शिवदुर्गाथमेन्द्राद्य विष्णुकामशिवेन्दुकाः ॥  
 पितरश्चेत्यमी प्रोक्ता मुनिभिस्त्रिभिर्देवताः ।  
 गन्धमास्य नमस्कार दीपधूपान्नसम्यदा ॥  
 शुश्रेण परमाद्येन दद्यात् स लवणे न च ।  
 अपूपैश्च महाभाग फलैः कालोद्भवैस्तथा ॥  
 प्रतावसाने दद्यात् ब्रह्मबुध्मं द्विजातये ।  
 ब्राह्मणाद्य महाभाग महारजतरञ्जितैः ॥  
 पञ्चाद्याविधाः सम्यक् कालविद्याद्य तावुभौ ।

• श्रीमविष्णोत्तरोक्तं इति पुस्तकान्तरे पाठः ।



सोपवासस्त्वभक्ताशी\* व्रतमेतत् समाचरेत् ।  
 नक्ताशनो वा धर्मज्ञस्तथैव च हविष्यभुक्\* ॥  
 सौभाग्यदं रूपविवर्द्धणञ्च  
 लावण्यदं स्त्रीरतिभोगदञ्च ।  
 कार्यं प्रयत्नेन नरेन्द्र पुंसा  
 कार्यन्तथास्त्रीभिरद्वीनसत्त्वं ॥  
 इति विष्णु धर्मात्तरोक्त\* सौभाग्यव्रतं ।

—000—

मार्कण्डेय उवाच ।

मार्गशीर्षादथारभ्य चन्द्रमण्डलके नरः ।  
 सोपवासः पौर्णमास्यां पूज्य यज्ञफलं लभेत् ॥  
 यज्ञफलं सर्व्ययज्ञफलं ।  
 नक्ताशनस्तु संपूज्य वङ्गिष्टोमफलं लभेत् ॥  
 सोपवासश्च नक्ताशी वाजिमेधफलं लवेत् ।  
 सोपवासः सुप्रतः ।

कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं  
 प्राप्नोति लोकांश्च निशाकरस्य ।  
 उपोष्य कालं सुचिरं सकालं  
 सायोज्यमायाति तमस्तशम्भोः ॥  
 इति विष्णु धर्मात्तरोक्तं चन्द्रव्रतं ।

\* सोपवासस्तु नक्ताशीति पुस्तकान्तरे पाठः ।

● अन्नक्ताशी एक भक्तोमज्ञं सान्ना वा कायेव च इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

\* भविष्योत्तरोक्तं सौभाग्य व्रत इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मार्कण्डेय उवाच ।

प्रोष्ठपदान्तवारभ्य संपूर्णं शशिसप्तमे ।  
 संपूज्य वरुणं देवं नम्यन्नाख्यायसंपदा ॥  
 जलाशयजले ध्यात्वा एवं संवत्सरं बुधः ।  
 दद्यात् व्रतावसाने तु जलधेनुं द्विजातये ॥  
 ह्रौषीपानहसंयुक्तां वासोयुग्मबिभूषितां ।  
 प्राप्नोति लोकं वरुणस्य राजं  
 स्तप्तोच्च कालं सुचिरं मनुष्यः ।  
 मानुषमासाद्य भवत्यरोगो  
 रूपान्वितो वित्तवृत्तस्तथैव ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं वरुणव्रतम् ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

प्राश्नयुक्त्यां\* सपूर्व्यन्तु पौर्णमास्यां नरो भुवि ।  
 सोपवासः सुरेन्द्रश्च देवं संपूजयेत्तथा ॥  
 शचीमैरावणस्य च मातुलिकं नराधिप ।  
 गन्धमाख्यनमस्कार दीपधूपान्नसम्पदा ॥  
 संवत्सरान्ते कनकच दत्त्वा  
 प्राप्नोति लोकं सपुरन्दरस्य ।  
 मानुषमासाद्य नरेन्द्रपूज्यो  
 राजा भवेद्वा द्विजपुङ्गवो वा ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं शक्रव्रतम् ॥

\* अथयुग्म स पूज्यमिति पुण्यकारणं वाच्यः ।

मार्कण्डे उवाच ।

उपोषितचतुर्दश्यां पौर्णमास्यां नरोत्तम ।  
 पञ्चगव्यं पिबेत्पञ्चाहविष्णात्री तथा भवेत् ॥  
 शक्यव्रतमिदं कृत्वा\* मासपाषात् प्रमुच्यते ।  
 तस्मान्मन्त्रप्रवक्षेन मासि मासि समाचरेत् ॥  
 संवत्सरात् प्राच्य दुरेन्द्र लोकं  
 तत्रोष राजा दुरिन्द्रं मनुष्यः ।  
 मानुष्यमासाच्च गरेन्द्रपूज्यो  
 राजा भवेदा द्विजपुङ्गवो वा ॥  
 इति विष्णु भर्त्सितरोक्तं ब्रह्मकूर्चं व्रतं ।

— ००० —

कार्तिक्यानुपवासी वः कन्यां दद्यात् स्वलङ्कृतां ।  
 स्वकीयां परकीयां वा नदीसङ्गमके शुभे ॥  
 एतत्सन्तानदं नाम व्रतं सुगतिदायकं ।  
 इति भविष्योत्तरोक्तं सन्तानद्व्रतं ।

— ००० —

कृष्ण उवाच ।

कार्तिक्यां नक्तभुक् दद्यान्मेषं हेमविनिर्मितं ।  
 मार्गशीर्षं तृपं पश्येन्मिथुनं तद्देव हि ॥  
 एवं क्रमेण यो दद्याद्दासीं वस्त्रविभूषितां ।  
 पौर्णमास्यां पौर्णमास्यां कर्त्तव्यं ।

\* भवत्युपसिद्धं कृत्वा इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

पौर्णमास्यां पौर्णमास्यां कौन्तेय बहुदक्षिणं ।  
एतद्वाग्निव्रतं नाम यज्ञोपद्रवनाशनं ।  
सर्वाशापूरकं तदस्मीमलोकप्रदायकं ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं राग्निव्रतं ।

—000—

पयोव्रतः पञ्चदश्यां व्रतान्ते गीयगप्रदः ।  
सस्त्रीलोकमवाप्नोति देवीव्रतमदाहृतं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं देवीव्रतं ।

—000—

कालोत्तरात् ।

माघशुक्ल चतुर्दश्यामुष्य नियमस्थितः ।  
शिवाय पौर्णमास्यान्तु कर्त्तव्यं छृतकम्बलं ॥  
कृष्णगोमिथुनं पश्चात् सुरूपं विनिवेदयेत् ।  
दिव्यं वर्षगतं सार्धं शिवलोके महीयते ॥

शिवधर्मं ।

आलिङ्गवेदिपर्यन्तं यो दद्याद्छृतकम्बलं ।  
तस्यानन्तं भवेत्सुख्यं माघपूर्णिमपर्वणि ॥  
जागरं गीतनृत्याद्यैः सकृत् कृत्वा तु पर्वणि ।  
मन्वन्तरगतं सार्धं रुद्रलोके महीयते ॥  
इति शिवधर्मात्तरोक्तो छृतकम्बलविधिः ।  
पौर्णमास्यान्तु यः सोमं पूजयेद्भक्तिमान्तरः ॥

सोभाग्यत्वं भवेत्तस्य इति मे निश्चिता मतिः ॥  
 मूलमन्त्राः कर्त्तव्याभि रङ्गमन्त्राद्य कीर्त्तिताः ।  
 पूर्ववत्पञ्चपत्रस्यः कर्त्तव्यस्यातिघोष्वरः ॥  
 तिघोष्वरः सोमः तद्रूपञ्च चतुर्दशीस्वितमहाराजव्रतोक्त  
 विदितव्यं ।

गन्धपुष्पोपहारैश्च यथाशक्ति विधीयते ।  
 पूजाशास्त्रेण शास्त्रेण कृतापि तु फलप्रदा ॥  
 आच्यधारासमिन्निश्च दधिचीराक्षमाक्षिकैः\* ।  
 पूर्वाक्तफलदो होमः कृतः शान्तेन चेतसा ॥  
 एतद्गतं वैश्वानरप्रतिपत्त्रतवद्गास्थेयं ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं सोमव्रतं ।

— ००० —

भोजनं घृतसंयुक्तं मधुनीपरिशोभितं ।  
 दद्यात् कृष्णतिलानान्तु प्रस्थमेकन्तु मानधं ॥  
 द्विगुणन्तगुल्लानाञ्च पृथक्प्रस्थं प्रकल्पयेत् ।  
 अणुजैर्दोणुजैर्वापि विविधं परिवेष्टितं ॥  
 अणुजानि कौशियानि वोणुजानि कार्पासानि ।  
 लिङ्गं संवेष्टा मन्त्रैश्च बलिभितं निवेदयेत् ।  
 अर्चयित्वा विधानेन पौर्णमास्यां समाहितः ॥  
 युगकोटिसहस्राणि\* शिवलोके महीयते ।

\* पायसान्नैर्नवेतथेति पुस्तकालकरे पाठः ।

\* पुराकोटि सप्तशतौति पुस्तकालकरे पाठः ।

पुण्यत्रयादिहागत्य ससृष्टे जायते कुले ॥  
 मेधावी सुभगः श्रीमान्ब्रह्मदेवाङ्गपारगः ।  
 इति श्रीशिवधर्मीक्तं घृतभाजनव्रतं ॥

—000—

पौर्णमास्यामुपवसेदद्भेकं सुयन्त्रितः ।  
 वर्षान्ते सर्वगन्धर्गीं प्रतिमाश्विनिवेदयेत् ॥  
 सुविचित्रैर्भूहायानैर्हिव्यगन्धविभूषितैः ।  
 युगकोटिग्रतं सायं शिवलोके महीयते ॥  
 यथेष्टमैश्वरे लोके भोगमासाद्य यत्नतः ।  
 क्रमादागत्य लोकेऽग्निं राजानं पतिमाप्नुयात् ॥

इति शिवधर्मीक्तं गन्धव्रतं ।

—onDuo—

सनत्कुमार उवाच ।

उपोष्य च चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां हरिं यजेत् ।  
 चैत्रे मासि निकुम्भय पिशाचैः महितो बली ॥  
 यातियोहुं पिशाचाञ्च सिकताहीपवासिनः\* ॥  
 तदन्ते गच्छतां तेषां मध्याह्ने तु गृहे गृहे ॥  
 पूजा कार्या ब्रह्मेण नित्यं यत्नया यथाक्रमं ।  
 पिशाचं मन्त्रयं कृत्वा रम्यं दृष्टमयश्च वा ॥  
 गन्धैर्भास्वैस्तथा वस्त्रै रलङ्कारैर्भूषणैः ।  
 भक्ष्यैस्तु पूरिकापूपैर्भासैर्हिव्यैश्च पानकैः ॥

\* भिन्नुदोपनिवासिन इति पुलकान्तरे पाठः ।

स्वजातिविहितैःपेयैर्नैवेद्यैश्च पृथग्विधिः ।  
 आयुधैर्बिम्बविधाकारैस्त्वत्तोपानहयष्टिभिः ॥  
 शृङ्गासूपुरिकायुक्तैस्त्रिरैर्भक्षैश्च भक्षया ।  
 शिखरहालपिष्टैर्वा ठक्कावाद्यैश्च चर्मणा ॥  
 तन्मीवाद्यैर्नोन्नैश्च तथा पार्श्वीपयोगिभिः ।  
 मध्याह्ने तन्तु संपूज्य प्राप्ते चन्द्रोदये पुनः ॥  
 पूर्ववत् पूजयेत्तन्तु वित्तसाठाविवर्जितः ।  
 ततः कृत स्वस्वयनो ब्राह्मणस्तं विसर्जयेत् ॥  
 अनुव्रजेदद्यैतन्तु द्वितीये दिवसे सति ।  
 गृहा ददूरंगीयस्य पर्वतस्तु महीरुहात् ॥  
 पुनर्गृहे प्रविश्यैव कर्त्तव्यः सुमहोत्सवः ।  
 गीतवादित्रनिर्घोषो जनकीलाहलस्तथा ॥  
 कृत्वा ढणमयं मयं दृष्टैः काष्ठैस्तु वेष्टितं ।  
 क्रीडितव्यं पुनर्ग्रामनगरेषु च सर्वदा ॥  
 तत्रासौ दुष्टसर्पाणां तदक्षणादयेन जायते ।  
 त्रिभिघतुर्भिर्द्विवसेः कर्त्तव्यं खण्डखण्डकं ॥  
 सर्वोपस्कारग्रामन नवखण्डं गृहे गृहे ।  
 पूजितव्यं सुगुप्ते तु रन्ध्रितव्यञ्च वत्सरं ॥

इत्यादि पुरानोक्ता निकुम्भपूजा ।

— ००० —

कार्त्तिक्यां यो वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत् ।  
 शैवं पद्मवाप्नोति वृषव्रत मिदं स्मृतं ॥  
 इति पद्मपुराणीकं वृषव्रतं ।

या प्रेरयति कर्माणि लोकेषु द्विजसत्तम ।  
 तस्याः संपूजनं कार्यं ह्यहमप्यदधीं सदा ॥  
 मात्मानुलेपनेः ह्यक्षौर्धूपेन च तुमन्विना ।  
 रत्नवस्त्रप्रदानेन ह्यौषदानेन वाचसा ॥  
 वैदले च तथा भक्षैरपूरैश्चतसैश्च च ।  
 पूजयित्वा च तां देवीं भोक्तव्यं निश्चि भार्यया ॥  
 यदि पञ्चदशीं वर्षां न प्रक्रीति कथञ्चन ।  
 देव्याः संपूजनं कार्यं च वक्ष्यमपि कार्तिके ॥  
 उमान्तुः पूजयेद्दयातु सातु नारी पतिव्रता ।  
 सदा धर्म्मरता नारी लोके भवति भार्गव ॥  
 नाहमे च मतिस्तस्याः कदाचिदपि जायते ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं पूर्वोक्तमात्रं ।

—ooo(a ooo)—

प्राग् पञ्चदशीं राम तथा ह्यह्नाचकार्तिकीं ।  
 चारामप्यदभितिं वै उमि यौ च समासिकेत् ॥  
 तस्यहारि गृहे वासु नामावर्षेस्तु वर्षिकं ।  
 गृहोपकारं प्रत्वा तयोवैवाभितो सिञ्चेत् ॥  
 पीतं यदासजाप्यन्तु लक्षटोमुच्यनाम्बिकं ।  
 ततस्तौ पूजयेन्नारी खात्वा भर्त्तुपरा हृदिः ॥  
 गन्धमास्यनमस्कारधूपहोपासकस्यदा ।  
 इच्छुषे च विकारैर्व्यां विशेषे च पूजयेत् ॥

• उद्यार्त्तिसिति पुस्तकान्तरे पाठः ।



तयोस्तु पूजनं कृत्वा पश्येत्तुसिक्कतामयं ।  
 शुक्लाभिर्न न्यसेत् क्षीरं तच्चदद्याद्विजातये ॥  
 ततश्च नक्तं भुञ्जीत तिलतैलविवर्जितं ।  
 अनयोः पूजनादद्यात्तु गृहभङ्गस्तु नाप्नुयात् ॥  
 पतिव्रता नृणां भागा दीर्घमाप्नोति जीवितं ।  
 पूर्णमिन्दुं ततोभ्यर्च्य सौभाग्यं महदाप्नुयात् ॥  
 इष्टयद्गृहमथाभ्यर्च्य नक्षत्रमथ वा नृप ।  
 तस्याः क्षेममवाप्नोति कामञ्च यदुनन्दन  
 मासनामसनञ्चर्चं पूर्णमायोगपञ्च वा ।  
 पूजयित्वा तदारजन् सौभाग्यं महदाप्नुयात् ॥  
 नृसिंहप्रतिपद्यन्तु पूर्णचन्द्रं समर्चयेत् ।  
 नरोमाहृगचा राजन् सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥  
 एकां वा मातरं राजन् कामानाप्नोत्यभीष्टितान् ।  
 वानस्यत्यमवाप्नोति पूजयित्वा वनस्यतीन् ॥  
 इति विष्णुधर्मीकं नानाफलपूर्णमाव्रतं ।

यावत्स्यां पीर्षमास्याञ्च सोपवासो जितेन्द्रियः ।  
 प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वं किल्बिषैः ॥  
 इति बङ्गिपुराणोक्तं पूर्णमाव्रतं ।

चन्द्रव्रतं पञ्चदश्यां शुक्लायां नक्तभोजनं ॥  
 दश पञ्च च वर्षादि व्रतमेतत् समाचरेत् ।

अश्वमेधसहस्राणि राजसूय गतानि च ॥  
 दृष्टानि तेन राजेन्द्र एतद्दत्तं समाचरेत् ।  
 इति वाराहपराणोक्तं चन्द्रव्रतं ।

ईश्वर उवाच ।

ज्यैष्ठस्य पूर्णिमास्यान्तु दम्पती यस्तु भोजयेत् ।  
 परिधाय यथा शक्त्या दीर्भाग्यैर्मुच्यते नरः ॥  
 गन्धपुष्पोपहारैश्च पूर्णिमास्यान्तु योऽर्चयेत् ।  
 ब्राह्मण्यं जायते तस्य सप्तजन्मनि सुन्दरि ॥  
 इति प्रभासखण्डोक्तं ब्राह्मण्यावाप्तिव्रतं ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य सकलकरणा-  
 धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिविर-  
 चिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे  
 पूर्णिमाव्रतानि ।

## अथ विंशोऽध्यायः ।

अध्यामावास्त्राव्रतानि ।

येनात्मन् वसिभिरनिग्रन्तर्पितो नागलीकोः  
राङ्गच्छिष्टामिव यशिकसां मन्वमानो न भुङ्क्ते ।  
सोऽयं साधुद्विजपरिहृतः शूरिहेमाद्रिरस्मि-  
न्नामावास्त्राव्रतसमुदयं स्वातन्त्र्याख्यातिकीर्त्तिः ॥

अगस्त्य उवाच ।

भगवंस्वत् प्रसादेन श्रुतोऽयं व्रतविस्तरः ।  
अर्होदयन्तु मे ब्रूहि दुर्लभं गचराचरे ॥  
जीवितं प्राणिनां पुण्यं यदिचेद्दत्ति प्रभो ।  
कथं कार्त्तव्यं क्वं स्यात् फलं कथय वरुणम्बु ॥  
श्रूयतां पुण्ययोगोऽयं दुर्लभोऽर्होदयाङ्गयः ।  
तिर्थस्नानुष्यदेवानां दुष्प्राप्यं सर्व्वकामदं ॥  
मघामायां व्यतीपात आदित्ये विष्णुदैवते ।  
अर्होदयं तदित्याहुः सहस्रार्कग्रहैः समं ॥  
पुराकृतं वमिष्ठेन जामदग्नेन सुव्रत ।  
सनकाद्यैर्मनुष्यैश्च बहुभिर्बहुभिःश्रुतैः ॥  
अथैः शतसहस्रैश्च दृष्टं भवतु कुम्भजः ।  
दानानां यत्र तीर्थानां फलं येन कृतं भवेत् ॥

ससागराधरा तेन समद्वीपसमन्विता ।  
 दत्तास्तात् सर्वभावेन येन चर्हीदयं कृतं ॥  
 मानसादिषु तीर्थेषु यत्पुण्यं ज्ञानदानतः ।  
 गङ्गामयाप्रयागे च पुष्कराक्षाचये तथा ॥  
 नक्षत्रैर्वा न वा विप्र व्रतेनानेन कुम्भज ।  
 अश्वमेधायुतं श्रेष्ठमिष्टार्णवम् वद्वेत् ॥  
 अर्धीदयकृतं यैस्तु विधिदृष्टे न कर्षया ।  
 वाजि यत्रं गृहे लक्ष्मीः सन्ततिशानपायिनी ॥  
 आयुर्व्यग्रीहि विपुलं व्रतकर्ता फलं लभेत् ।  
 इन्द्राग्निममल्लोकेषु निर्हृतीनामपायतेः ॥  
 वायोः कुबेरशेषस्य लोकेषु सुकृती प्रभुः ।  
 पशुचन्द्रार्कलोकेषु लोकपालैश्च सेवितः ॥  
 गीर्वाणोऽपि दानाद्यत् पुण्यं श्रेष्ठतीर्थनिवासिनां ।  
 अर्धीदयजपुण्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीं ॥  
 भूर्लोकधाधिपतिश्चैव भुवर्गीकाधिपस्तुतः ।  
 स्वर्लोके गी जनानाश्च तयोर्लोकस्येश्वरः ॥  
 महर्लोके वसेन्नित्यं यावदिन्द्राद्यतुर्दश ।  
 ततो हिरण्यगर्भस्य पुरुषो व्रतकारकः ॥  
 तस्य लोकाधिपः साक्षी लोकानां पुरुषोव्ययः ।  
 अर्धीदयप्रसादेन ब्रह्मलोके वसेत्तसः ॥  
 तथा वानेन विष्णुत्वं ब्रह्म रुद्रस्तथा भवेत् ।  
 शिव लोको गुणैः पूज्यो देवराजसमन्वितः ॥  
 वसेच्छाक्तेषु मानेन व्रतस्त्रास्यप्रभावतः ।

ततो विष्णुस्वरूपेण त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत् ॥  
 गङ्गचक्रगदाधारी वनमाली हरिः स्वयं ।  
 व्रतप्रभावात्कृष्णीयो देवो नारायणो भवेत् ॥

भगस्तत्र उवाच ।

स्कन्द केन विधानेन कर्त्तव्यं व्रतसुत्तमं ।  
 अर्होदय मनुष्याणां जीवितं दुर्लभं भुवि ॥

स्कन्द उवाच ।

कृते कृतं वमिष्टेन त्रैतायां रघुणा कृतं ।  
 हापरे धर्मराजेन कलौ पूर्णोदरेण च ॥  
 अन्येर्देवमनुष्यैश्च दैत्यैश्च दिजसत्तम ।  
 कृतमर्होदयं सम्यक् पूर्णकामफलप्रदं ॥  
 माघमासे कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां रवेर्दिने ।  
 वैष्णवेन च ऋक्षेण व्यतीपाते सुदुर्लभे ॥

वैष्णवर्षं श्रवणं ।

पूर्वाह्णे मङ्गले स्नात्वा शुचिर्भूत्वा समाहितः ।  
 सव्यं पापयिशुद्ध्यर्थं नियमस्यो भवेन्नरः ॥  
 त्रिदैवत्यं व्रतं देवाः करिष्ये भक्तिमुक्तिदं ।  
 भवन्तु सन्निधौ मे द्युत्रयो देवास्त्रयोऽग्नयः ॥

इति नियममन्त्रः ।

ब्रह्मविष्णुमहेशानां सौवर्णपलसंख्यया ।  
 कर्त्तव्या र्चा तदर्धेन तदर्धेन द्विजोत्तम ॥  
 शाश्वं शतत्रयं शम्भोर्द्रीशानां तिलपर्वतः ।

शशुरच ब्रह्मा ।

कर्त्तव्यो विष्णुरुद्रावह्निरः पूर्वोक्तसंख्या ।  
 गय्यात्रयं ततः कुर्यादुपस्करममन्वितं ॥  
 देवानां त्रयमुद्दिश्य कर्त्तव्यं भक्तिशक्तिः ।  
 ब्रह्मविष्णुशिवप्रौढ्यै दातव्यन्तु गवां त्रयं ॥  
 हिरण्यभूमिधान्यादिदानं विभवसारतः ।  
 दातव्यं त्रय्योपेतं ब्राह्मणेभ्यः प्रयत्नतः ॥  
 मध्याह्ने तु नरः स्नात्वा शुचिर्मूत्वा समाहितः ।  
 तिलपर्वतमध्यस्थं पूजयेत् देवतात्रयं ॥

पादौ ब्रह्मपूजा ।

नमो विश्वसृजे तुभ्यं सत्याय परमेष्ठिने ।  
 देवाय देवपतये यज्ञानां पतये नमः ॥  
 श्रीं ब्रह्मणे नमः पादौ हिरण्यगर्भाय नम ऊरुभ्यां ।  
 धात्रे नमो जानुभ्यां जङ्घाभ्यां परमेष्ठिने नमः ।  
 विभसे नमो गुह्ये पर्शाद्भवाय वै नमो अस्ती ।

हंसवाहनाय नमः कटिदेशे शतानन्दाय वक्ष्मि नमः ।  
 सावित्रीपतये नमोनमोस्तु वाङ्मयु । श्रीं ऋग्वेदाय नमः पूर्व-  
 बक्त्रे यजुर्वेदाय नमो दक्षिणवक्त्रे । सामवेदाय नमः पाश्चिम  
 वक्त्रे । अथर्ववेदाय नमः उत्तरवक्त्रे । श्रीं तत्सर्वत्राय नमः  
 शिरसि । कपोली श्रीं कपालाय नमः ।

१ अथवापतमिति पञ्चकान्तरे पाठः ।

२ पूर्वमिति पञ्चकान्तरेपाठः ।

ततः कार्या लीकपालपूजा विप्रैः स्वमन्त्रतः ।

हिरण्यगर्भं पुरुषप्रधानाव्यक्तरूपवत् ॥

प्रसीद समुत्थो भूत्वा पूजां गृह्ण नमोऽस्तु ते ।

ब्रह्मप्रार्थनमन्त्रः ।

नारायण जगन्नाथ नमस्ते गरुडध्वज ।

पौताम्बर नमस्तुभ्यं जनार्दन नमोऽस्तु ते ॥

अनन्ताय नमः पादौ विश्वरूपाय ते नमः मुकुन्दाय  
नमो जानुभ्यां जक्रुभ्यां गौविन्दाय नमो जङ्घाभ्यां । गुह्ये  
प्रदुम्नाय नमः पद्मनाभाय नमो नाभौ । भुवनीन्द्राय नम  
उदरे वक्ष्मि कोस्तुभवक्ष्मि नमः । चतुर्भुजाय नमो बाह्वु  
वदने विश्वतोमुखाय नमः । नमः सहस्रशिरसे देवायानन्ताय  
मौलौ ।

आदित्य चन्द्रनशन दिग्वाहो दैत्यसूदन ।

पूजां दत्तां मया भक्त्या गृहाण करुणाकर ॥

इति विष्णुप्रार्थनामन्त्रः ।

महेश्वर महेशान नमस्ते त्रिपुरान्तक ।

नमो जीमूतकेयाय नमस्ते वृषभध्वज ॥

ईशानाय नमः पादौ जङ्घाभ्यां चन्द्रशेखरः ।

जानुभ्यां पशुपतिर्देव जक्रुभ्यां शङ्करः स्मृतः ॥

उमाकान्ताय गुह्ये तु नाभौ वै नीललोहितः ।

उदरे कृष्णवाससे वक्षी नागोपवीतिने ॥

भोगिरूपाय वै वाह्यौ नीलकण्ठस्तु कण्ठगः ।

मुखे वै पञ्चवक्त्राय मीलो चैव कपर्दिने ॥  
 अश्वकारे प्रमियात्मन् नमो लीकान्तकाय च ।  
 पूजां दत्तां मया भक्त्या गृह्णाच्च हृषभध्वज ॥

इति महेश्वरप्रार्थनमन्त्रः ।

इति पूजाक्रमः प्रोक्त्वा मन्त्रैरेतेः प्रयत्नतः ॥  
 आचार्यं पूजयेद्भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।  
 हस्तमात्रा कर्णमात्रा पौठकृत्वं कमण्डलुः ॥  
 श्वेतवस्त्रयुगं देयं ब्रह्मणे सर्व्वमूर्त्तये ।  
 पीतवस्त्रयुगं त्रिणोऽर्द्धं शङ्करस्य च ॥  
 पञ्चामृतेन स्नपनं पूजनं कुसुमैः स्वकैः ।  
 कमलैस्तलसीपत्रैर्विष्वपत्रैरखण्डितैः ॥  
 तत्कालमश्ववेर्द्दिश्यैः पूज्या देवा यथाक्रमं ।  
 यथाशक्त्या प्रकर्त्तव्यं व्रतमेतत्सुदर्शनं ॥  
 र्जावितं प्राणिनामेतदनित्यं निश्चितं यतः ।  
 अथ व्रताद्ब्रह्मस्य विधानं शृणु तत्त्वतः ॥  
 देवतात्रयमुद्दिश्य यास्तदृष्टेन कर्मणा ।  
 प्रजापते विश्वरूपाय रुद्राय च नमो नमः ।  
 इत्यनेनैव मन्त्रेण त्रिङ्गुं संस्थाप्य भक्तितः ।  
 ततो हीमं प्रकुर्व्वीति यथाविभवमश्ववं ॥

अग्नये प्रजापतये स्वाहा । अग्नये त्रिणवे स्वाहा ।



अग्नये रुद्राय स्वाहा । इत्वं विष्णवे होमः १ । प्रजापते नृत्वदेतान्या-  
न्येत मन्त्रेण प्रजापतये । इत्वं विश्वरिति विश्ववे । चाम्बकमिति  
महादेवाय । इत्वेतैर्मन्त्रैर्षृतहोमः २ ।

व्रह्मणे विष्णवे महादेवाय स्वाहेति पूर्णाहुत्या नृत्वान् कामान्  
वाप्नोति प्राप्नोति होमोव्रताङ्गहोमः ।

अथ होमावसानेषु गाञ्च दद्यात्पयस्विनीं ।  
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यसुरां घण्टाभरणभूषितां ॥  
ताम्रशृङ्गीं कांस्यदोहां सर्वोपस्कारसंयुतां ।  
सदक्षिणां सुशीलाञ्च आचार्याय निवेदयेत् ॥  
तेन दत्तं हुतं जप्तमिष्टं यज्ञैः सहस्रधा ।  
कृतकृत्यो भवेद्दिप्र व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥  
एतत्सर्वं मयाख्यातं दुर्लभं व्रतसुत्तमं ।  
अर्होदयं यथा दृष्टं किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तमर्होदयव्रतं ।

—000—

अमावस्यां निराहारः अष्टमेकं नियन्त्रितं ।  
शूलपिष्टमयं कृत्वा वर्षान्ते विनिवेदयेत् ॥  
शिवाय राजतं पद्मं सौवर्णं कृतवर्षिकं ।  
भक्त्या च विन्यसेत् मूर्ध्नि शेषं पूर्णवदाचरेत् ॥

१ रवन्विष्वक्वदहोमरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ चरहोमरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ परिपृच्छतीति पुस्तकान्तरे पाठः ।

४ शकृमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

कामतोऽपि हतं पापं भ्रूणहत्यादिकञ्च यत् ।  
 तत्कर्मं शूलदानेन हत्वा नारीर्न संग्रयः ॥  
 महापद्मविमानेन नरो नारीसमन्वितः ।  
 युगकोटिशतं सायं शिवलोके महीयते ॥  
 पूर्ववदिति अहिंसा ब्रह्मचर्यं भूगयनं पाषण्डानास्त्रापादिक-  
 माचरेदित्यर्थः ।

ईशलोकादिलोकेषु भुक्त्वा भोगाननेकधा ।  
 इह लोके क्रमात्प्राप्य यद्येष्टं पतिमाप्नुयात् ॥  
 इति शिवधर्मीकं शूलदानव्रतम् ।

—००००००—

अगस्त्य उवाच ।

सर्गादौ ब्रह्मणा सृष्टास्तन्मूषुः पितरस्तदा ।  
 हस्तिनी भेदि भगवान् ब्रह्मावद्विब्रह्महेवम् ॥

ब्रह्मीवाच ।

अमावास्यादिना बीऽस्तु तस्मां तिसकुयोद्भवेः ।  
 तर्पिता मानुषैस्तृप्तिं परां गच्छन्तु नान्यथा ॥  
 तिस्रा देवास्तत्रैतस्मानुषोऽपि पित्रभक्तितः ।  
 चिराय तस्मै बन्तुष्टा परं बन्धन्तु मा चिरं ॥  
 तस्माद्स्वामिनी विद्वानेतत्कर्म समाचरेत् ।

इति बराह पुराणोक्तं पितृव्रतम् ।

—०००—

ब्रह्मोवाच ।

पितरः सद्दितैः पिच्छैरिष्टाः कुर्वन्ति सर्व्वं हा ।  
 प्रजाहृदि धनं रक्षामायुष्यं वलमेव च ॥  
 मूलमन्त्राः स्वसंज्ञाभिरङ्गमन्त्राश्च कीर्त्तिताः ।  
 मन्त्रपुष्पोपहारैश्च यथाशक्ति विधीयते ॥  
 पूजाशठेन शठेन कृतापि तु फलप्रदा ।  
 प्राण्यधारासमिद्धिश्च दधिष्ठीरान्नमाक्षिकैः ॥  
 पूर्व्वोक्तफलदो होमः कृतः शान्तेन चेतसा १ ।  
 एतद्ब्रतं वैश्वानरप्रतिपन्नतवद्भाग्येभ्यं ।  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तं पितृब्रतं ।

— ००१)०० —

पुलस्त्य उवाच ।

वर्षमेकं भवेद्यस्तु पञ्चदश्यां पयोव्रतः ।  
 पञ्चदश्यामित्यमावास्यायां पुराचान्तरहंवादात् ॥  
 समान्ते श्राद्धकृत्वात् २ वयश्च पञ्च पयस्विनीः ।  
 वासांसि च पिषङ्गानि जलकुम्भयुतानि च ॥  
 स याति वैष्णवं लोकं पितॄणां तारयेच्छतं ।  
 जन्मान्तरे भवेद्राजा पयोव्रतमिदं श्रुतं ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तममावस्यापयोव्रतं ।

— ० —

१ परमाह्वेन वैतथंति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ श्राद्धकृत्वादिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ भावइति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मार्कण्डेय उवाच ।

प्रभास्वरा वर्हिषद् अग्निस्वाप्तास्तथैव च ।  
 क्वव्यादाथैव भूताश्च आज्यपाश्च सुकालिनः ॥  
 पूज्याः पितृगणा राजन् सोपवासेन नित्यशः ।  
 चैत्रे कृष्णारथारभ्य पञ्चदश्यां नराधिप ॥  
 ग्राहन्तदङ्घ्रि कुर्वीत यावत् संवत्सरं भवेत् ।  
 गन्धमाख्यं नमस्कारधूपदीपाक्षसम्पदा ॥  
 संवत्सरान्ते दद्याच्च तथा धेनुं पयस्विनीं ।  
 ब्राह्मणाय महाभाग पितृभक्त्याय शक्तिः १ ॥

कृत्वा व्रतं वत्सरमेतद्विष्टं

प्राप्नोति लोकान् स तथाच तेषां ।

तत्रैव कालं सुचिरं सुखी स्यात्

प्राप्नोति मोक्षं पुरुषप्रधानः २ ॥

इति विष्णुपुराणोक्तं पितृव्रतं ।

— 006 —

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

कृष्णपक्षे पञ्चदश्यां चैत्रादारभ्य यादव ।  
 वङ्घ्रिसंपूजनं कृत्वा गन्धमाख्याक्षसम्पदा ॥  
 तिलहोमस्तथा कुर्यान्नान्ना वङ्घ्रैर्नराधिप ।  
 संवत्सरान्ते दद्याच्च भ्रवणं ब्राह्मणाय च त

१ भक्ति इति पुलकान्तो पाठः ।

२ पुरुषप्रधान इति पुलकान्तो पाठः ।

कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं  
 प्राप्नोति वित्तं सततं यशश्च ।  
 धर्मं मतीरूपमनुत्तमञ्च  
 कामान् यद्येष्टान् पुद्गलप्रधानः ॥  
 इति विष्णुपुराणोक्तं बह्निव्रतं ।

— ००० —

माकंशेव उवाचे ।

अमावास्यान्तवेलायां सोपवासो नरोत्तम ।  
 पद्मदशे पूजयन्ति चन्द्रार्कविकाराग्निगौ ॥  
 आदित्यमष्टदलके शशिनं षोडशकारे ।  
 आदित्यं सर्व्वरत्नेन चन्द्रं शुक्रेण यादव ॥  
 मात्सादिना महाभाग होमयेत्तिलतण्डुलान् ।  
 छतञ्जीरयुतान् राजन् तद्यार्चयेद्यथाविधि ।  
 व्रतान्ते ब्रह्मचेन्द्राय कनकं२ प्रतिपादयेत् ॥  
 रजतम्बा महाभाग य इच्छेद्भूतिमात्मनः ।

कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं  
 दद्याच्च दीपान् विधिवत् प्रभूतान्  
 चान्द्रं पदं प्राप्य विवर्द्धतेसदः  
 धनान्वितः स्यात्त्रिदिवे इहैव ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं चन्द्रव्रतं३ ।

१ तपोर्मात्सर्यमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ करकर्मिणि पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ चन्द्रव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

भगवानुवाच ।

अमावस्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।  
घत् किञ्चित् वेदविदुषे दद्यादुद्दिश्य शङ्करं ॥  
प्रियतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः ।  
समजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥

इति कूर्मपुराणोक्तममावस्याव्रतं ।

अमावस्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहं ।  
ब्राह्मणोस्त्रीन् समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥

इति कूर्मपुराणोक्तममावस्याव्रतं ।

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य-सकल-करणा-  
धीश्वर-सकलविद्या-विशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते  
चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे  
अमावस्याव्रतानि ॥

## अथ एकविंशोऽध्यायः ।



अथ नानातिथिव्रतानि ।  
प्रत्येकमुक्तेषु तिथिव्रतेषु  
सबद्धावकाशं पुनराददे तत् ।  
हेमाद्रिरत्यन्तफलपदायि  
नानातिथीनां व्रतवृन्दमाह ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

स्मरयामि हृषीकेश यज्ञोक्तं भवता मम ।  
तस्माविचीव्रतं ब्रूहि प्रसादसुमुखी भव ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कथयामि कुलस्त्रीणां महिम्नोवर्द्धनं परं ।  
यथा चीर्णं व्रतं पूर्वं सावित्र्या राजकन्यया ॥  
आसीन्महीन्द्रो धर्मात्मा सर्व्वभूतहिते रतः ।  
पार्थिवोऽश्वपतिर्नाम पौरजानपदप्रियः ॥  
सर्व्वश्वरोऽनपत्यश्च सत्यवाक् संयतेन्द्रियः ।  
स सभाय्यो व्रतमिदं चकारापत्यकाम्यया ॥  
सावित्रीति प्रसिद्धं यत् सर्व्वकामप्रदायकं ।  
तस्य तुष्टा तु सा देवी सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥  
भूर्भुवः सरित्तीत्यस्याः साक्षात्पत्निरिह स्थिता ।

कमण्डलुकरा देवी वरदा स्मितभाषिणी ॥  
 उवाच दुहिते ह्येका तव राजन् भविष्यति ।  
 तस्याः प्रसादादप्येतत्सर्वं तव समागतं ॥  
 मन्त्रान्ना सा च वक्तव्या महाकीर्त्तिमती तु मा ।  
 भविष्यति महाराज मा गोकं कर्त्तुमर्हसि ॥  
 एवमुक्त्वा तु सा देवी जगामादर्शनं तदा ।  
 कालेन बहुना जाता दुहिते देवरूपिणी ॥  
 सावित्रीप्रीतये वृत्त्या सावित्राऽपूजया तथा ।  
 आदिष्टा चैव सावित्र्या सावित्रीसदृशी यतः ॥  
 सावित्रीत्वैवनामास्यायकु विप्रास्तथापि सा ॥  
 सावित्री विग्रहवती १ व्यवर्द्धत पितुर्गृहे ।  
 काले वद्धतिथे याते यौवनस्या बभूव सा ॥  
 सा सुमध्या पृथुशोणी प्रतिमां काञ्चनीमिव ।  
 प्राप्तेयं देवकन्येति संभ्रमं मेनिरे जनाः ॥  
 सा तु पद्मपलाशाक्षी प्रज्वलन्तीव तेजसा ।  
 चचार सापि सावित्रीव्रतं तद्गुरुणोदितं ॥  
 भयोपोथ गिरः स्नाता सम्यक् सम्पूज्य देवताः ।  
 हुत्वाग्निं विधिवद्विप्रान् वाचयित्वेन्दुपर्वाणि ॥  
 तेभ्यः सुमनसो मूर्धा प्रतिगृह्य नृपालजा ।  
 सखीपरिवृताभ्येत्य २ देवश्रीरिव रूपिणी ॥

१ सात्रीकविग्रहवतीति पुलकान्तरे पाठः ।

२ भृत्यैरिति पुलकान्तरे पाठः ।



साभिवाद्य पितुः पादौ विनीता चारुहासिनी ।  
 कृताञ्जलिर्बराही नृपतेः पार्श्वतः स्थिता ॥  
 नां दृष्ट्वा यौवनप्राप्तां स्त्रां सुतां देवरूपिणीं  
 उवाच राजा संमन्वा स्मृत्यर्थं मह मन्त्रिभिः ॥  
 पुत्री प्रदानकालास्ते नच कश्चिदृणोति मां ।  
 विचारयन्नः पश्यामि वरंतुल्यमिहात्मनः ॥  
 तथापि देयामि मया दीषः स्यादन्यथा मम ।  
 देवादीनां तथा वाच्यो न भवेयं तथा कुरु ॥  
 पठ्यमानं मया पुत्रि धर्मगास्त्रिषु विश्रुतं ।  
 पितृर्गृहं तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता ॥  
 बद्धहत्या पितु स्तस्य सा कन्या वृषली स्मृता ।  
 अतोऽत्र प्रेषयामि त्वां कुरु पुत्रि स्वयम्बरं ॥  
 इडं रनुमतामि त्वं शीघ्रं गच्छ च मा चिर ।  
 देवादीनां यथा वाच्यो न भवेयं तथा कुरु ॥  
 एवमस्त्विति सावित्रो प्रोक्त्वा शीघ्रं विनिर्ययी ।  
 स्यन्दनेन महार्हेण मन्त्रिभिः परिवारिता ॥  
 तपोवनानि रम्याणि राजर्षीणां जगाम सा ।  
 मान्यानां तत्र प्रदानं कृत्वा पादाभिवन्दनं ॥  
 ततो वभ्राम तीर्थानि पर्वतांश्च वनानि च ।  
 देशांश्च विविधान् रम्यानाश्च मान् सुमनोहरान् ॥  
 एकस्मिन्नाश्रमपदे कृतकृत्या वभ्रुव सा ।  
 क्षरयित्वा वरंसा तु आजगाम स्वमालयं ॥

सावित्री मन्त्रिमहिता परितुष्टेन चेतसा ।  
 तत्र पश्यति देवर्षिं नारदं पुरतः पितुः ॥  
 आसीनमासने विप्रं प्रणम्य स्मितभाषिणी ।  
 कथयामास तत्सर्वं येनारण्यं गतागता ॥

सावित्र्यावाच ।

आसीकाल्वेपु धर्मात्मा क्षत्रियः पृथिवीपतिः ।  
 द्युमत्सेन इति ख्यातो देवादेश्चो ब्रह्मूष मः ॥  
 तस्याप्यभयद्वार्या वे रुक्मिणी नाम सुन्दरी ।  
 तस्य प्रतिहृतं रान्यं वैरिभेदेन योगतः ॥  
 स बालया तथा सार्धं भार्यया प्रस्थिता वनं ।  
 स तस्य वलसंज्ञकः पुत्रः परमभार्यमिकः ॥  
 सत्यवान् नामरूपाढाणे भर्त्तति मतमा व्रतः ।

नारद उवाच ।

अहो कष्टमहो कष्टं साविति किमिदं कृतं ।  
 कृतस्ते वालभावादयद्गणवान् सत्यवान् नृपः ॥  
 सत्यं वदत्यसौ राजा सत्याश्रमेन स स्मृतः ।  
 नित्यमग्नाः प्रियास्तस्य करोत्यश्वान् स मृगमयान् ।  
 चित्रे ऽपि लिखयत्यश्वान् चित्राश्रमेन कथ्यते ॥  
 किं वर्यो रन्ति देवस्य भक्त्या दानगुणैः समः ।  
 ब्राह्मणः सत्यवाग्दत्तः शिविगोशीनरो यथा ॥  
 ययातिरिव चीदारः सोमवत् प्रियदर्शनः ।  
 अश्विनाविव रूपेण द्युमत्सेनसुतो बभौ ॥

एको दीषोऽस्ति नान्योऽसावद्यप्रमृत्तिसत्यवान् ।  
संवत्सरेण चौणायुर्देहत्यागं करिष्यति ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

नारदादेतदाकर्ण्य दुहितुःप्राह पार्थिवः ।  
पुत्रि सावित्रि गच्छान्यं वरं वरय सत्यति ॥  
संवत्सरेण सोऽल्पायुर्देहत्यागं करिष्यति ।

सावित्र्युवाच ।

सकञ्जल्पन्ति राजानः सकञ्जल्पन्ति पण्डिताः ।  
सकत्कन्या प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकलकृतं ॥  
दीर्घायुरथवाल्पायुः सगुणो निर्गुणोऽपि वा ।  
सकद्दृतो मया भर्ता न द्वितीयं तृणोम्यहं ॥  
मनसा निश्चयं कृत्वा ततो वाचाभिधीयते ।  
क्रियते कर्मणा पश्चादेषधर्मः सनातनः ॥

नारद उवाच ।

यद्येतदिष्टं दुहितुस्ततः शीघ्रं विधीयतां ।  
अविघ्नमस्तु सावित्रि भद्रन्तव करिष्यति ॥  
एवमुक्त्वा खमुत्पत्य नारदस्त्रिदिवं ययौ ।  
उत्पाद्य ह्युःखमतुलं तस्य राज्ञो युधिष्ठिर ॥  
राजापि दुःखसंविम्बयिरंध्यानपरोऽभवत् ।  
अहोऽतिकष्टमुत्पन्नमपारं मादृगात्मनां ॥  
एतत् दुःखमहो दृष्ट्वा वरमेघानपत्यता ।  
सत्यमुक्तं पुराणैः कन्या दुःखैकभाजनं ॥

देवैर्यदुक्तं तत्सर्वं व्यलोकं प्रतिभाति मे ।  
 एवं संशोच्य बहुधा दधावात्मानमात्मना ॥  
 देवीं संस्मृत्य सावित्रीं यया दत्तो वरः पुरा ।  
 जगो स्वदुहितुः सर्वं वैवाहिकमथाकरोत् ॥  
 स्वयं गत्वा तु सामग्रा वनं मुनिनिषेवितं ।  
 शुभे मुञ्चते पार्श्वस्थे ब्राह्मणेर्वेदपारगैः ॥  
 समर्थयित्वा कन्यां तां दत्त्वा पूर्वांश्च पुष्कलान् ।  
 उवाचेदं महाभागां व्यधितेनान्तरात्मना ॥  
 यु मत्सेन महाभाग शृणु मे परमम्बचः ।  
 इयं मे दुहितातीववज्रभा जीवितादपि ॥  
 भर्ता समुचितो ह्यस्याः सत्यवान् सत्यवज्रभः ।  
 त्वमप्यस्याः समुचितः शशुरो धर्मवज्रभः ॥  
 अतोऽपराधाः क्षन्तव्याः वाल्येयं राज्यलाजिता ।  
 यदाभीष्टं च जामातुर्युषयोर्दभीष्णितं ॥  
 तत्तदास्थेयमस्माकं स्वस्ति तेऽसु प्रजाम्यहं ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

इत्यामन्त्र्य गतो राजा नारदीक्षं व्यथाम्बितः ।  
 सावित्रापिच तन्नव्धा भर्तारं मनसेषितं ॥  
 समुदेऽतीव तन्वज्जी देयं प्राप्येव पुष्पकृत् ।  
 एवं तत्राश्रमे तेषां तदा निवसतां सतां ॥  
 कालस्त्यग्भ्रतां कश्चिदतिचक्राम भारत ।  
 सावित्रास्तु ग्रथानायाश्चित्तयन्त्वा दिवानिशं ॥  
 नारदेन यदुक्तन्तद्दृश्यावापसर्पति ॥

ततः काले बहुतिथे व्यतिक्रान्ते कदाचन ।  
 प्राप्तःकालोहि मर्त्तव्यं यच्च सत्यवता नृप ॥  
 प्रीष्ठपदे सिते पक्षे हादश्यां रजनौमुखे ।  
 गणयन्त्यास सावित्रा नारदीक्षं वचो हृदि ॥  
 चतुर्थेऽहनि मर्त्तव्यमिति सच्चिन्म्य भामिनो ।  
 व्रतं त्रिरात्रमुद्दिश्य सावित्राख्यं महाफलं ॥  
 उपोष्य संस्थिता साध्वो सावित्री सा पतिव्रता ।  
 नतस्त्रिरात्रं निर्व्वर्त्त्य स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः ॥  
 श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ ववन्दे चारुहासिनी ।  
 अथ प्रतस्थे परशुं गृहीत्वा सत्यवान्वनं ।  
 सावित्रापि च भर्त्तारं गच्छन्तं पृष्ठतोऽन्वयात् ॥  
 वार्थ्यमाणापि सा भर्त्ता वृद्धाभ्याञ्चाभिभाषिता ।  
 ऊचतु स्तौ च मा भद्रे गच्छ क्रष्टकिनं वनं ॥  
 सुकुमारासि कल्याणि लालिता पृथिवीभृता ।  
 श्वापदाश्वापदैर्यातु कथं शक्यसि तदनं ॥  
 उपवासास्तयस्तेऽद्य तस्माद्गृहं सुमध्यमे ।

सावित्रावाच ।

नैष धर्मो वरस्त्रोणां यद्वर्त्तरि वभुजिते ॥  
 स्वयमेव च भोक्तव्यमित्याहर्षैर्भर्द्दर्शनः ॥  
 अपरं कौतुक मेऽस्ति वनस्यास्य प्रदर्शने ।  
 भर्त्ता सह प्रयास्यामि सहाया स्वामिनोऽर्चरं ॥

युष्मत्पादप्रमदितेन मा निषेधं करिष्यथ !  
 ततो ज्ञात्वा च सा बाला जगामाय पतिव्रता ॥  
 माविचानुपदं भर्तृवर्षे तस्मिन् मनोरमे ।  
 गत्वासौ दूरमध्वानं जयाहाय फलादिकं ॥  
 समित्कुम्भं कसुमं भार्यया स वदन् प्रियं ।  
 काष्ठानि शुक्लान्यादाय काष्ठभारमकल्पयत् ॥  
 काष्ठं कुठारेण तथा पाटयामास लीनया ।  
 अथ पाटयतस्तस्य जाता गिरसि वेदना ॥  
 ततः संबल्य तत्सर्वं वटच्छायामुपाश्रितः ।  
 सत्यवान् वेदनाक्रान्तः किञ्चिद्वर्णितुमानसः ॥  
 वटच्छायामवश्यं सत्यवान् प्राङ् गददत् ।  
 माविति पश्य गिरसि वेदना मां प्रवाभते ।  
 न च किञ्चित् प्रवक्ष्यामि भ्रमत्येव हि मे मनः ।  
 तवीशङ्गे सगन्तावत् स्वप्नमिच्छामि सुन्दरि ॥  
 विप्रमन्त्र महावाही मावितो प्राङ् दुर्भयतः ।  
 पश्चादपि गमिष्यावः प्ताशम समनोहरं ॥  
 यावदुत्सङ्गं कृत्वा गिरयास्ते महीतले ।  
 तावत् करालवदनाः शतशोऽपि महस्त्रयः ॥  
 आजग्मूर्धमदताय नोद्रायातिभयङ्कराः ।  
 न शेकुर्दृष्टिपतेऽप्याः मावित्वा श्यातुमन्तिके ॥  
 गत्वाच्चक्षुस्तत्सर्वं माविचास्ते तु शङ्कत ।  
 दृष्टिपातेन नाम्नाभिः शक्यतेऽस्याः प्रवाधिन् ।  
 दहतीव च नो देहं दृष्टिपातेन सा मनौ ।

तत् स्वयं याहि नोन्माऽभिः साध्यते सत्यवान् क्वचित् ॥  
 इत्याकर्ण्य यमः कीपादुत्थायाथ वरासनात् ।  
 आरुह्य महिषं रौद्रं रौद्रः प्राणहरो बली ॥  
 आजगाम त्वरायुक्तो यत्रास्ते सा पतिव्रता ।  
 सावित्रापि च सन्वस्ता वीक्ष्यमाणा इतस्ततः ॥  
 सावधाना कथं कीऽद्य भर्तारं मम नेष्यति ।  
 तावद्दर्शं सा वाला पुरुषं कृष्णपिङ्गलं ॥  
 किरोटिनं पीतवस्त्रं साक्षात् सूर्यमिवोदितं ।  
 तमुवाचाथ सावित्री प्रणम्य मधुराक्षरं ॥  
 कस्वन्देवीऽथ दैत्यो वा माभ्यर्षितुमुपागतः ।  
 न चाहं केनचिच्छक्त्या स्वधर्माद्वरोपितुं ॥  
 प्रष्टुं वा पुरुषश्रेष्ठ दीमाभ्यङ्गिशिखामिव ॥  
 यम उवाच ।

यमः संयमनयाहं सर्वभूतमयङ्करः ।  
 क्षीणायुरेष ते भर्ता सन्निधौ ते पतिव्रते ॥  
 न शक्तः किङ्करैर्जेतुं ततोऽहं स्वयमागतः ।  
 एवमुक्त्वा सत्यवतः शरीरात् पाशसंयुतं ॥  
 अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं निचकर्ष यमो वलात् ।  
 अथ प्रयातुमारिभे पन्थानं पितृसेवितं ॥  
 सावित्रापि वरारोहा कृत्वा पादेन मङ्गलं १ ।  
 रक्षाधिं भर्तृकायस्य यथावनुपदन्ततः ॥

पतिव्रतत्वादशान्ता ध्यायमाना निजं पतिं ।  
 तन्निष्ठा तद्रतप्राणा तामुवाच यमस्तदा ॥  
 निवर्त्य गच्छ सावित्रि सुदूरं त्वमिहागता ।  
 एष मार्गो विशालान्ति न केनाप्यनुगम्यते ॥  
 सावित्रावाच ।

न श्रमो न च मे ग्लानिः कदाचिदपि जायते ।  
 भर्तारमनुगच्छन्लास्तव शिष्टस्य मन्निभौ ॥  
 सतां सन्तो गतिर्नान्या स्त्रीणां भर्ता सदा गतिः ।  
 वेदा वर्णाश्रमाणाञ्च शिष्याणाञ्च गतिर्गुरु ॥  
 सर्वेषामिव जन्तूनां स्थानमस्ति महोत्तले ।  
 मुक्ता भर्तारमेकन्तु स्त्रीणां नान्यः समाश्रयः ॥  
 एभिरन्यैः समुचितैर्व्वैर्धर्मैर्धर्मार्थसंयुतैः ।  
 तीक्ष्णो धर्मराजस्तु सावित्रीमिदमब्रवीत् ॥  
 दुष्टोऽस्मि तव भद्रे ऽथ वरान् वरय सुव्रते ॥  
 सा च वव्रे वरान पञ्च विनयावनता सती !  
 चक्षुःप्राप्तिस्तथा राज्यं श्वशुरस्य महात्मनः ॥  
 जीवितञ्च तथा भर्तुर्धर्मप्राप्तिञ्च शाश्वती ।  
 पितुः पुत्रगतञ्चैव तथा च शतमात्मनः ॥  
 धर्मराजो वरं दत्त्वा प्रेषयामास तान्ततः ।  
 आजगामाथ सावित्री न्यघोर्ध्विष्टपल्लवा ॥  
 कृत्वोत्सङ्गं शिरस्तस्य पूर्व्ववन्निघमाद् सा ।  
 गात्रसंवाहनं चक्रे भर्तुः गात्रस्य भारत ॥



उत्थितश्वेतनां प्राप्य नीरुक् प्राहेदमादरात् ।  
 कथं न वोधितो भद्रे कालोऽतीव गतो मम ॥  
 किं वक्ष्यति हि मे तातः किञ्च माता च द्रुष्विःता !  
 विरुहं ह्ययं संजातं कालोऽतीव गतो वने ॥  
 बिडाय मातापितरौ कालो न क्वापि मेऽन्यगात् ।  
 इति मत्वा विरुध्येते कृतं नेह प्रबोधनं ॥

सावित्र्यावाच ।

कथं त्वां वोधयाम्यत्र पौडितन्तु शिरोरुजा ।  
 मम नात्र विलम्बोऽभूदकार्येण तवामघ ॥  
 प्रहस्योत्थाय सावित्री अग्राह शिरसेन्धनं ।  
 समित्कुशादिकं साथ जग्मतुस्ती स्वमाश्रमं ॥  
 ततः पित्रा स्वनेत्राभ्यां दृष्टो तौ परया मुटा ॥  
 अलिङ्ग्य मूर्ध्नायात्राय पुत्रमङ्गे निवेश्य सः ।  
 उवाच दिष्ट्या पश्यामि सभार्यैस्त्वां समागत ॥  
 विलम्बकारणं दृष्टः समाचष्टे यथातथा ।  
 निदिताघ्नोऽतिसंहृष्टः पूजयामास तां सत्तो ॥  
 अवाप २ पूर्वजैर्भुक्तं राज्यं निहतकण्टकं ।  
 युमत्सेनो महाभाग इयाज क्रतुभिस्तदा ॥  
 ततोऽनृपविरासाद्य पुत्रानामगुणाधिकान् ।  
 सावित्र्या चेष्टितं ज्ञात्वा आमातुर्जावित तथा ॥  
 राज्यप्राप्तिं च विपुलां परां मुदमवाप सः ।

१ अत्वानेहपरोधमिति पुलकान्तरं पाठः ।

२ आवाधौ रितं पुत्रकान्तरं पाठः ।

सावित्र्यास्थानकमिदं सर्वपापप्रणाशनं ॥  
 अवैधव्यप्रदं स्त्रीणां स्वर्गमीक्षप्रदायकं ।  
 सुखसौभाग्यदं पार्थ प्रातर्जप्यमिदं सदा ॥  
 भाद्रपदे पीर्णमास्यामाशु चीर्णं व्रतं त्विदं ।  
 माहात्म्यमस्य नृपतेः कथितं सकलं मया ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कीदृशं तद्व्रतं कृष्ण सावित्र्या यदनुष्ठितं ।  
 तस्मिन् भाद्रपदे मासि विधानं तस्य शंभ मे ॥  
 का देवता व्रते तस्मिन् को मन्त्रः किं फलं विभो ।  
 एतदाख्याहि मे नाथ न हि त्वय्यामि माधव ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

श्रूयतां पाण्डवयेष्ट सावित्रीव्रतमादरात् ।  
 कथयामि यथा चीर्णं तथा सत्या युधिष्ठिर ॥  
 त्रयोदश्यां भाद्रपदे दन्तधावनपूर्वकं ।  
 त्रिरात्रं नियमं कुर्यादुपवासस्य भक्तितः ॥  
 अगता च त्रयोदश्यां नक्तं कुर्याज्जितेन्द्रिया ।  
 अयाचितं चतुर्दश्यां पीर्णमास्यामुपोषणम् ॥  
 नित्यं स्नात्वा महानद्यां तडागे निर्भरेऽपि वा ।  
 विशेषतः पूर्णमास्यां स्नानं सर्वपम्पुञ्जलैः ॥  
 गृहीत्वा बालुकां पात्रे प्रस्थमात्रां युधिष्ठिर ।  
 अथवा धान्यमादाय यवशालितिलादिक ॥  
 ततोवंशमये पात्रे वस्तयुष्मिन् वेश्तिते ।  
 सावित्रीप्रतिमां कृत्वा ब्रह्मणश्चैव शोधनं ॥

सौवर्णीं मृत्समीं वापि स्वशक्त्या रौप्यनिर्मितां ।

ब्रह्मणोरूपनिर्माणं पूर्व्वमभिहितं वेदितव्यं ।

रक्तवस्तयुगं दद्यात्सावित्र्या ब्रह्मणः सितं ॥

सावित्रीं ब्रह्मणासाहमेवं भक्त्या प्रपूजयेत् ।

गन्धैः पुष्पैश्च नैवेद्यैर्दीपकैर्मोदकैः शुभैः ॥

पूर्णं कोशातकैः पक्षैः कृष्णाण्डैः कर्कटीफलैः ।

नारिकेलैश्च खर्जूरैः कापित्थैर्दीङ्गिमैस्तथा ॥

बीजपूरैः मनारङ्गशाखोटैः पनसैस्तथा ।

धान्यकैर्जीरकैर्हृद्यैर्युडेन लवणेन च ।

विरुद्धैः सप्तधान्यैश्च वंगपात्रप्रकल्पितैः ॥

हरिद्रया कण्ठसूत्रैः शुभैः कुङ्कुमकेशरैः ।

अवतारं करोत्येव सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥

तामर्चयेत् मन्त्रेण सावित्रीं ब्राह्मणीं स्वयं ।

इतरासां तथा स्त्रोणां पुराणां विधिः स्मृतः ॥

श्रीं कारपूर्व्वके देवि वीणापुस्तकधारिणी ।

वेदमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥

रूपं देहि यशोदेहि सौभाग्यं देहि देवि मे ।

यथा प्रसन्ना सावित्र्या स्तथा मां पाहि पाविनि ॥

एवं संपूज्य विधिवज्जागरं तत्र कारयेत् ।

गीतबादित्स्त्रिंशोपैर्द्वष्टनारीकदम्बकैः ॥

पुण्याख्यानैश्च विविधैस्तान् रात्रिमतिवाहयेत् ।

लक्षवेन नयेद्रात्रिं सावित्र्याश्च कथानकैः ॥

ततः प्रभातसमये रवावनुदिते सति ।

सावित्रीं ब्राह्मण श्रेष्ठ नैवेद्यानि निवेदयेत् ॥  
 अथ सावित्रिकस्यज्ञे सावित्र्यास्थानवाचके ।  
 वेदज्ञे तु स्वहस्तस्ये दरिद्रे वा कुटुम्बिनि ॥  
 मन्त्रेणानेन कौन्तेय प्रणम्य विधिपूर्वकं ।  
 दूर्वाक्षततिलैर्मित्रां पूर्वाशाभिसुखस्थितां ॥  
 शुचिवस्त्रधरो विप्रश्चीकारस्वस्तिपूर्वकं ।  
 सावित्रीयं मया दत्ता सहिरण्या हिरण्मयी ॥  
 ब्राह्मणः प्रीयानार्थाय ब्राह्मण प्रतिगृह्यतां ।  
 एवं दत्त्वा हिजेन्द्राय सावित्रीं तां युधिष्ठिर ॥  
 नैवेद्यादि च तत्सर्व्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ।  
 स्वयं दशपदं गच्छेत्स्वविश्वं तत प्राविशेत् ॥  
 गौरिण्यो भोजयेद्भक्त्या हविष्यान्नेन शक्तितः ।  
 पुष्यैः कुङ्कुमसिन्दूरैस्ताम्बूलैः कण्ठसूत्रकैः ॥  
 वासीभिर्भूषणैः १ शक्त्या वित्तशाठाविवर्जिता ।  
 विसर्जयेत्तस्तां च सावित्रीप्रीयतामिति ॥  
 वक्तव्यं ब्राह्मणैः सर्वैस्तुष्टैर्भक्तोत्तरे भृशं ।  
 सावित्री वरदा तुभ्यं भवतां भावसुव्रतार ॥  
 पुत्रा अष्टौ तथा भर्ता परमायुरनामयः । १  
 पुत्रैःपौत्रैश्च संवत्सं वर्षतान्तव सत्कुलं ।  
 व्रतञ्च सुव्रतं तत्तद्दिधिनानेन नियतं ॥  
 पञ्चदश्यां तद्या ज्यैष्ठ्ये वटमूले महासती ।

१ वासाभिर्भूषणैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ भवन्तु तव सुव्रतैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

त्रिरात्रोपीषिता नारी विधिनानेन पूजयेत् ॥  
 सार्धं सत्यवता सार्धौ फलनैवेद्यदीपकैः ।  
 वटावलम्बिनं कृत्वा काष्ठभारं युधिष्ठिर ॥  
 रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतनृत्यपुरःसरं ।  
 ततः प्रभाते विधिना पूर्वोक्तेन नरोत्तम ॥  
 तामपि ब्राह्मणे दद्यात् प्रणिपत्य क्षमापयेत् ।  
 एतद्गतवरं पार्थ कश्चितं विधिवन्मया ॥  
 याश्चरिष्यन्ति लोकेऽस्मिन् पुत्रपौत्रसमन्विताः ।  
 भुङ्क्ता भोगांश्चिरं भूमौ यास्यन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥  
 एतत् पुण्यं पापहरं धन्यं दुःस्वप्ननाशनं ।  
 जपतां शृण्वतां चैव सावित्री व्रतमादरात् ॥  
 स्मृत्यर्थवेदजननीं सहभर्तृकां यां  
 सम्पूजयेत् कृतदिनत्रितयोपवासा ।  
 साविविवत् पिष्टकुलञ्च तथैव भर्तुं  
 रुद्धृत्यया भुवि भुनक्ति चिरं सुखानि ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं ब्रह्मसावित्री व्रतं ।

स्कन्दपुराणात् ।

धर्मराजवरप्रदानानन्तरं सावित्र्यावाच ।  
 मदीयन्तु व्रतं देय भक्त्या नारी करिष्यति ।  
 भर्तुः सानिहिता साञ्चो समस्तफलभाजना ॥

धर्मराज उवाच ।

नारी वा विधवा वापि सपुत्रा पतिवर्जिता १ ।  
 मभर्त्तृकार सपुत्रा वा कार्यं व्रतमिदं श्रुणु ॥  
 ज्यैष्ठ्यामे तु सप्राप्ते पौर्णमास्यां पतिव्रता ।  
 स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा वटं सिच्य बह्मदकः ॥  
 सूत्रेण वेष्टयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः शुभैः ॥  
 नभो वैवस्वतायेति भ्रमयन्तोप्रदक्षिणं ।  
 रात्रौ कुर्वीत नक्तञ्च अष्टमेकं समाहृता ।  
 तथैव वटवृक्षञ्च पक्षे पक्षे च पूजयेत् ॥  
 संप्राप्ते च पुनर्ज्यैष्ठ्ये लघुभुक् द्वादशीर्देयत् ।  
 दलानां धावनं कृत्वा नियमं कारयेत्ततः ॥  
 त्रिरात्रं लङ्घयित्वा च चतुर्थे दिवसेच्छहं ।  
 चन्द्रायार्घ्यं प्रदत्त्वा च पूजयित्वा च तां मतीं ॥  
 मिष्टान्नानि यथाशक्त्या पूजयित्वा हिज्रोत्तम ।  
 भोक्तेऽहन्तु जगडात्रि निर्बिघ्नं कुरु मे मुने ॥

नियममन्त्रः ।

कृत्वा वंशमये पात्रे वान्द्राप्रस्थमेव च ।  
 सप्तधान्यभृतं पात्रं प्रस्थैकेन हिज्रोत्तम ॥  
 वस्त्रद्वयोपरि स्थाप्य सावित्रीं ब्रह्मणा मरु ।  
 हेमीं कृत्वा तयोः प्रोत्थ्यै त्रिरात्रमुपवासयेत् ॥  
 न्ययोधस्य तले तिष्ठेद्यावच्चैव दिनचर्यं ।

१ पतिवर्जिता इति पक्षकाल्पर पाठ ।

२ सपुत्रका इति पाठान्तर ।

सौवर्णाञ्चैव सावित्रीं सत्येन सह कारयेत् ॥  
 रौप्यपर्यङ्कमारोप्य रथोपरि निवेशयेत् ।  
 पलादर्द्धं यथाशक्त्या रथं रौप्यमयं शुभं ॥  
 तथा च काष्ठभारे च वटेचैव सुविस्तरं ।  
 एवञ्च मिथुनं कृत्वा पूजयेद्गतमक्षरा ॥  
 वर्जुलं मण्डलं कृत्वा गोमयेन तपोधनः ।  
 पञ्चामृतेन स्नपनं गन्धपुष्पीदकेन च ॥  
 चन्दनागुरुकर्पूरैर्माल्यवस्त्रविभूषणैः ।  
 संपूज्य तत्र सावित्रीं मण्डले स्थापयेद्बुधः ॥  
 पीतपिष्टेन पद्मञ्च अथवा चन्दनेन च ।  
 न्यसेच्चैव ततीदेवीं कमले कमलामनां १ ॥  
 क्षनेन विधिना स्थाप्य पूजयेद्गतमक्षरा ।

अथ सावित्रीपूजा मन्त्रः ।

—०००—

नमः सावित्रैः पादौ तु प्रसवित्रैः च जानुनी ।  
 कटिं कमलपत्राख्यै उदरं भूतधारिणी ॥  
 भ्रौं गायत्रै नमः कण्ठे गिरमि ब्रह्मणः प्रिया ।  
 अथ ब्रह्मसत्यवतोः पूजा ॥  
 पादोधात्रे नमः पूज्यौ ऊरुज्येष्ठाय वै नमः ।  
 परमेष्ठी च मेढ्रञ्च अग्निरूपाय वै कटिं ।  
 वेधसे चोदरं पूज्य पद्मनाभाय वै हृदि ॥

१ तपोधन इति पुस्तकालाये पाठः ।

२ कमलामना इति पुस्तकालाये पाठः ।

कण्ठन्तु विधये पूज्य हिरण्यगर्भाय वै मुखं ।  
 ब्रह्मणे वै शिरः पूज्य सर्वाङ्गे विष्णवे नमः ॥  
 अभ्यर्च्यैवं क्रमेणैव शास्त्रोक्तविधिना नृप ।  
 ततो रजतपात्रेण अर्घ्यं दद्याद्दशोरपि ॥

सावित्र्यै अर्घ्यमन्त्रः ।

ओंकारपूर्वकं देवि वीणापुस्तकधारिणि ।  
 देवमातर्नमस्तुभ्यमवैधव्यं प्रयच्छ मे ॥  
 पतिव्रते महाभागे वज्रिजाते शचिम्भिते ।  
 दृढव्रते दृढमते भर्तुषु प्रियवादिनी ॥  
 अवैधव्यन्तु सौभाग्यं देहि त्वं मम सुव्रते ।  
 पुत्रान् पौत्रांश्च सौख्यञ्च गृहाणार्घ्यं नमो नमः ॥

अथ ब्रह्मसत्यवतीरर्घ्यमन्त्रः ।

त्वया सृष्टं जगत्सर्व्वं सदेवासुरमानुष ।  
 सत्यव्रतधरो देव ब्रह्मरूप नमोऽस्तु ते ॥

अथ यमस्याज्ञानमन्त्रः ।

त्वं कर्मसाक्षी लोकानां शुभाशुभर्षिवेचकः ।  
 वैवस्वत गृहाणार्घ्यं धर्मराज नमोऽस्तु ते ॥  
 धर्मराज पितृपते शान्तिभूतेषु जन्तुषु ।  
 कालरूप गृहाणार्घ्यमवैधव्यञ्च देहि मे ॥  
 गन्धपुष्पैः सनेवेद्यैः फलैः कुङ्कुमदीपकैः ।  
 रक्तवस्त्रै रत्नहारैः पूजयेद्गतमत्सरा ॥



अथ सावित्रीप्रार्थन मन्त्रः ।

सावित्री ब्रह्मगायत्री सर्व्वदा प्रियभाषिणी ।  
 तेन सत्येन मां पाहि दुःखसंसारसागरात् ॥  
 त्वं गौरी त्वं शची लक्ष्मीस्त्वं प्रभा चन्द्रमण्डले ।  
 त्वमेव च जगन्माता त्वमुदर वरानने ।  
 सौभाग्यं कुलवृद्धिञ्च देहि त्वं मम सुव्रते ॥  
 यन्मया दुष्कृतं सर्व्वं कृतं जन्मशतैरपि ।  
 भस्मीभवतु तत्सर्व्वमवैधव्यञ्च देहि मे ॥

अथ ब्रह्मसत्यवतीः प्रार्थनामन्त्रः ।

अवियोगी यथा देव सावित्रा महितस्तव ।  
 अवियोगस्तथास्माकं भूयाज्जन्मानि जन्मानि ॥

यम प्रार्थनामन्त्रः ।

कर्म्मसाक्षी जगत्पूज्य सर्व्ववन्द्य प्रसोद मे ।  
 संवत्सरव्रतं सर्व्वं परिपूर्णं तदस्तु मे ॥  
 सावित्री त्वं यथा देवी चतुर्वर्षशतायुषं ।  
 पतिं प्राप्तासि गुणिनं मम देवि तथा कुरु ॥  
 सावित्री प्रसवित्री च सतत ब्रह्मणः प्रिया ।  
 पजितासि द्विजैः सर्व्वे स्त्रीभिर्मुनिगणैस्तथा ॥  
 त्रिसन्ध्यं देवि भूतानां वन्दनीयासि सुव्रते ।  
 मया दत्तैव पूज्यं त्वं गृह्णाण नमोऽस्तु ते ॥  
 जागरन्तव कुर्व्वीति गीतनृत्यादिमङ्गलैः ।  
 स्ववासिन्यस्ततः पूज्या दियसे दिवसे गते ॥

सिद्धूरं कुङ्कुमञ्चैव ताम्बूल सपवित्रकं ।  
 तथा दद्याच्च सर्वाणि भैक्ष्य सोभाग्यमष्टकं ॥  
 सतीष्वेव दिवारात्रौ कामक्रोधविषजिता ।  
 दिनत्रयेऽपि कर्त्तव्यमेवं मार्जारपूजनं ।  
 ततश्चतुर्थदिवसे यत् कार्यन्तच्छृणुष्व मे ।  
 मिथुनानि चतुर्विंश षोडश हादशाष्ट वा ॥  
 पूजयेदस्त्रगोदानैर्भूषणाच्छादनासनैः ।  
 अथवा गुरुमेकञ्च व्रतस्य विधिकारकं ॥  
 सर्वं लक्षणसम्पन्नं सर्वं शास्त्रार्थपारगं ।  
 विदविद्याव्रतस्नातं शान्तञ्च विजितेन्द्रियं ॥  
 सपत्नीकं समभ्यर्च्य वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।  
 शय्यां सोपस्करां दद्यात् गृहञ्चैवातिशीभनं ॥  
 अगक्तस्तु यथागत्या स्ताकं स्तीकञ्च कल्पयेत् ।  
 मौवर्णीं प्रतिमां पञ्च पतिना सह दापयेत् ॥

कल्पनामन्त्रः ।

सावित्रि त्वं यथा देवि चतुर्विंशतायुषं ।  
 संत्यवन्तं पतिं लब्ध्वा मया दत्ता तथा कुरु ॥

प्रतिमादानमन्त्रः ।

सावित्री जगती माता सावित्री जगतः पिता ।  
 मया दत्ता च सावित्री ब्राह्मण प्रतिगृह्यतां ॥

अथ प्रतिग्रहमन्त्रः ।

मया गृहीता सावित्री त्वया दत्ता सुशीभना ।

यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च सह भर्त्ता सुखी भव ।  
 गुरुश्च गुरुपत्नीश्च ततो भक्त्या क्षमापयेत् ॥  
 यन्मया कृतवैकल्यं<sup>१</sup> व्रतेऽस्मिन् दुरधिष्ठितं ।  
 तत्सर्वं पूर्णतां यातु युवयोर्वचनेन तु ॥

प्रतिमासं वटसेचनमध्वः १

धर्मराजो यमी धाता नीलः कालान्तकोऽव्ययः ॥  
 वैवस्वतश्चित्रगुप्तो दध्नाभृत्युः क्षयोवटः ।  
 मासि मासि तथाश्चेतैर्नामभिः सेचयेद्वटं ॥  
 न्यग्रोधीहं वसेत् पुत्रि तस्माद्यत्ने न सेचयेत् ।  
 ततो गुरुं सपत्नीकं पूजयेद्गतविष्मया ॥  
 भूषणैश्च सवस्त्रैश्च कुङ्कुमैश्च मनोहरैः ।  
 न्यग्रोथस्य समीपे तु गृहे वा स्थण्डिले शुभे ॥  
 सावित्राश्वेव मन्त्रेण घृतहोमन्तु कारयेत् ।  
 पायसं जुहुयाद्भक्त्या घृतेन सह भाषिनि ॥  
 व्याहृत्याचैव मन्त्रेण तिलव्रीहियवं तथा ।  
 होमान्ते दक्षिणां दद्याद्विद्वत्प्रायश्चित्तविधिर्जिता ॥  
 क्षमापयेत्ततो विप्रं वन्द्य पादौ प्रयत्नतः ।  
 भुञ्जीत वासरान्ते तु नक्तं शान्ता तपस्विनी ॥  
 अर्घ्यं दत्त्वा त्वरुन्धत्या दृष्ट्वा चैव प्रणम्य च ।  
 अरुन्धति नमस्तेऽस्तु वसिष्ठस्य प्रिये शुभे ॥  
 सर्वदेवनमस्कार्यं पतिव्रते नमोस्तु ते ।  
 सर्वं गृह्ण मया दत्तं फलं पुष्यसमन्वितं ॥

१ अतवैकल्यमिति पुलकान्तरे पाठः ।

पुत्रान् देहि सुखं देहि गृह्णाणार्थं नमीस्त ते ।  
 सखीभिर्ब्राह्मणैः सार्धं भुञ्जीत विजितेन्द्रिया ॥  
 एवं करोति या नारी व्रतमेतदनुत्तमं ।  
 भ्रातरः पितरः पुत्राः श्वशुरः स्वजनास्तथा ॥  
 चिरायुषस्तथायोगाः स्थय जन्मशतत्रयं ।  
 भर्ता च सहिता साध्वी ब्रह्मलोके महीयते ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तं बटसावित्रीव्रतं ।

—००@००—

इन्द्राख्यवाच ।

दृष्ट्वा मां नहुषो ब्रह्मण कामेनातीवपीडितः ।  
 मास्यर्षयितुमारब्ध स्तनस्त्वां शरणङ्गता ॥  
 गुरो कथिदुपायोऽस्ति व्रतं वा दानमेव वा ।  
 येन शोकादिमोक्ष्यामि तन्मे वद महामुने ॥  
 तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा गुरुर्वाक्यमथाब्रवीत् ।

वृहस्पतिरुवाच ।

अस्यशोकत्रिरात्राख्यं व्रतंशोकं हरं परं ।  
 त्रिरात्रं तच्च कर्त्तव्यं व्रतं शोकविनाशनं ॥  
 पापघ्नञ्चागदघ्नञ्च पत्रपीतविवर्धनं ।  
 आयुःपदं कौर्त्तिकं धनधान्यप्रदं परं ॥  
 भुक्तिमुक्तिपदं दिव्यं सर्व्वं मायाविनाशनं ।  
 तच्छृणु त्वमशोकाख्यं त्रिरात्रव्रतमुत्तमं ॥  
 मामि मार्गशिरे चैव ज्यैष्ठे भाद्रपदे तथा ।

शुक्लपत्रे पञ्चदश्यामेकभक्तन्तु कारयेत् ॥  
 ततः प्रातःसमृत्थाय स्नानं कुर्यात्ततो व्रती ।  
 आचम्य तु शुचिर्भूत्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥  
 अगोकं पूजयेद्भक्त्या ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणं १ ।  
 क्रमेणानेन देवेशि परां शोक्तेन २ विस्तरात् ॥  
 अगोकं शोकनाशार्थं मन्मूलीसिश् चिताविह ।  
 अर्घ्यं गृह्णाण भो वृत्त ब्रह्मविष्णुशरूढभृत् ॥

अत्र ब्रह्मविष्णुरुद्राणां मगत्तिकानां मूर्त्तिकरणं । उत्त-  
 रत्र तद्दानदर्शनात् । तत्र ब्रह्ममावित्रोरूपं पुत्रकामपूर्णिमा  
 व्रते । लक्ष्मीनारायणरूपन्तु पूर्णिमास्थलक्ष्मीनारायणव्रते । उमा  
 महेशयोस्त्वविद्योगदाद्शीव्रतेऽभिहितं । परिभाषोक्तं वा प्रति-  
 मात्रयं वेदितव्यं ।

अर्घ्यमन्त्रः ।

इदं पादं नमस्तभ्यं कल्पितं पश्यवारिणा ।  
 पुष्पाक्षतं फलैर्मिश्रमशोकं प्रतिगृह्यतां ॥

पादमन्त्रः ।

चन्दनं विविधं वृत्तमश्व देवनिर्मितं ।  
 तत्गृह्णाण द्रुमश्रेण कृपां कुरु ममोपरि ॥

१ व्रत विष्णु स्वरूपिणमिति पुस्तकाकारे पाठ ।

२ क्रमेणोक्तं इति पुस्तकाकारे पाठ ।

३ त्वं भवामि इति पुस्तकाकारे पाठ ।

४ पुष्पाक्षत इति पुस्तकाकारे पाठ ।

गन्धमन्त्रः ।

पुष्पाणीमानि वृक्षेन्द्र मालत्यादीनि यानि च ।  
गृहाणेमानि दिव्यानि मम सन्तु मनोरथाः ॥

पुष्पमन्त्रः ।

गुग्गुल्व्वाद्याद्यये धूपास्तत्रा चागुरुसन्निभाः ।  
निवेदिता मया भक्त्या गृहाणैतान्महातरो ॥

धूपमन्त्रः ।

आरात्रिकं महावृक्ष कल्पितं दीपसंयुतं ।  
उद्योतार्थं जगत्पूज्यं कुलस्य मम सोऽस्तु वै ॥

दीपमन्त्रः ।

अर्चितस्त्वं सुरैर्दिव्यैर्दानवैश्च महोरगेः ।  
अप्सरसीभिश्च गन्धर्वैस्ततस्त्वामर्चयाम्यहं ॥

अर्चनमन्त्रः ।

परमात्रं मयाशोक भक्ष्यभोज्यसमन्वितं ।  
भक्त्या निवेदितं तुभ्यं षड्भिरभीरुसैर्युतं ॥  
एवं संपूज्य तं वृक्षं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।  
अशोकं प्रार्थयेत्पश्यान्मन्त्रे णानेन भक्तिमान् ॥  
यदत्रोन्नं कृतं किञ्चिदतिरिक्तं कृतं व्रते ।  
तत्सर्व्वं पूर्णतां यातु प्रसादात्ते द्रुमोत्तम ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

अनेनैव विधानेन प्रतिमासञ्च पूजयेत् ।  
यावद्वाद्यग मामान्वै कुर्यादुद्यापनं ततः ॥

१ मम माधुवै इति पाठान्तरं ।

सम्यग्गृहीत्वा नियमं त्रिरात्रं समुपोषयेत् ।  
 अशीकं कारयेद्द्विष्यं नानाशाखं फलान्वितं ॥  
 वस्त्रयुग्मे न संख्याय १ गन्धपुष्पैः सुधूपितं ।  
 नानाफलसमायुक्तं पुष्पमाख्योपगोभितं ॥  
 गीतवाद्यविनोदैश्च नानाभावकथानकैः ।  
 पुराणश्रवणं कार्यं व्रतस्यास्य च यत् फलं ॥  
 एवं जागरणं कृत्वा कुर्याद्दानान्यनेकशः ।  
 मिथुनानि तु संपूज्य ब्राह्मणानान्तु षोडश ॥  
 तेभ्यस्तु करका देयाः शूर्पाणि वसनानि च ।  
 गुरोस्तु मिथुनं पूज्य वस्त्रैराभरणैः शुभैः ॥  
 गोदानैर्भूमिदानैश्च वेश्मदानादिभिस्तथा ।  
 प्रथमेऽङ्गि ततो दद्यात् सावित्रीं ब्रह्मणा सह ॥  
 उमामहेश्वरं देयं द्वितीयेऽङ्गि वरानने ।  
 लक्ष्मीनारायणश्चैव तृतीयेऽङ्गि सुशोभनं ॥  
 सोपस्करमशोकन्तु दद्यात् सर्वं क्षमापयेत् ।  
 ततोऽहं भोजयेदहम्बून् दीनानाथांश्च तर्पयेत् २ ॥  
 पारणन्तु ततः कुर्यात् पारणन्तु ३ पुनः पुनः ।  
 एवं कृते त्रिरात्रन्तु फलं यत् कथितं बुधैः ॥  
 तच्छुण्व्य मङ्गलभागे संक्षेपात् कथयामि ते ।  
 अश्वमेधादिभिर्द्यैश्चैरिष्टैर्यत्फलमन्युते ॥

१ सवास्यदिति पुलकान्तरे पाठः ।

२ दीनाभ्यांश्चैव पूजयेदिति पुलकान्तरे पाठः ।

३ प्राथम्येन इति पाठान्तरं ।

तत्फलं कीटिगुणितं त्रिरात्रेण न संशयः ।  
गां दत्त्वा विविधैर्दानैर्गोमहिषादिभिस्तथा ॥  
तथायज्जायते पुण्यं ३ तीर्थानुष्कारणे कृते ।  
यत्प्रीक्तं ऋषिभिः पुण्यं तत्सर्वं लभते फलं ॥  
इति श्रुत्वा वचस्तस्य गुरोरमिततेजसः ।  
चकार सा तदा देवी पौलीमो व्रतमुत्तमं ॥  
सा तद्गतप्रभावेन शक्रेण सह सङ्गता ।  
एतद्गतं कृतपूर्वं सावित्र्या राजकन्यया ॥  
व्रतस्यास्य प्रभावेण प्राप्तोभर्ता त्रिया सह ।  
अरुन्धत्या वेदवत्या दमयन्त्यानसूयया ॥  
रुक्मिण्यादिभिरन्याभिः प्राप्ताः सर्व्यैः सनोरथाः ।  
पठन्ति शृण्वन्ति च ये मनुष्याः  
कुर्वन्ति भक्त्या भुविमद्गतं ये ४ ।  
ते यान्ति नाकं सुचिरेर्विमानैः  
विमुक्त पापाः सुखिनो भवन्ति ॥  
इति भविष्योत्तरोक्तमशोकत्रिरात्रव्रतं ।

— on i) 10 —

मन्दिकेश्वर उवाच ।

अवैधव्यकरं ब्रूहि व्रतं किञ्चिन्मन्त्रेश्वर ।  
भक्तैर्दुःखमवाप्नोति पुत्रदुःखं तथैव च ॥  
अपुत्रता महद्दुःखं दुःखञ्चापि कुपुत्रता ।

३ तथायत् क्रियते पुण्याभान्, पुण्यकारे पाठः ।

४ सख्यं न ये इति पुण्यकारे पाठः ।



एतान्येव तु दुःखानि या चनारी वृषध्वज ॥  
 नाप्नोति मर्त्यलोकेऽस्मिन् वैधव्यं सुरसत्तम ।  
 नारीणाञ्च हितार्थाय ब्रूहि यद्यस्ति शङ्कर ॥  
 सौभाग्यमतुलं याति भर्त्तारं चाति पूजितं  
 सर्वावयवसंपूर्णमनङ्गमिव चापरं ॥

सदृत्तं वित्तसम्पन्नं सर्व्वयास्त्रविशारदं ।  
 ज्ञातिश्रेष्ठं पूज्यतममेतन्मे ब्रूहि शङ्कर ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणुष्वैकमना भूत्वा रभास्यं व्रतमुत्तमं ।  
 येन चीर्णेन नन्दोश्च कृतकृत्याश्च योषितः ॥  
 न भवेद्द्विधवा नन्दिवानपत्या कदाचन ।  
 विधानं शृणु नन्दीश यथातत् क्रियते नृभिः ॥  
 शुक्लपक्षे त्रयोदश्यां मासि ज्येष्ठे च सुव्रत ।  
 त्रिरात्रं व्रतमुद्दिश्य भक्त्या तां कदलीं शुभां ॥  
 स्नात्वा चैव शुचिर्भूत्वा वृती सिञ्चे हृद्दकैः ॥  
 सूत्रेण वेष्टयेद्भक्त्या गन्धपुष्पादि दापयेत् ।  
 रात्रौ कुर्व्वीत नक्तं च अष्टमेकं समाहितः ॥  
 तथैव कदलीवृक्षं नित्यमेव प्रसेचयेत् ।  
 ज्येष्ठे मासि ततः प्राप्य द्वादश्याञ्चैव सुव्रत ॥  
 नद्यां ताथ तडागे वा शिवं संपूज्य चाक्षतैः ।  
 स्नात्वा च पूजयेन्नन्दिन्नुमादेहाहंधारिणं ॥  
 एकभक्तं ततः कृत्वा नियमं कारयेत् व्रते ।  
 भोक्त्येऽहं तिदिनं लङ्घ्य सम्यगिष्ट्वा सुरेश्वरीं ॥

त्वत्प्रसादात् व्रतं मेऽस्तु निर्विघ्नं न महेश्वरि ।  
 रन्ध्रायाः स्थण्डिलं कृत्वा विचित्रञ्च सुगोभनं ॥  
 रन्ध्राया निकटे स्थित्वा गीतवाद्यसमन्वितं ।  
 मण्डपं कारयेत्तत्र पुष्पमालाविभूषितं ॥  
 वितानेन च संयुक्तं सर्व्वं गोभासमन्वितं ।  
 मध्ये कुर्व्वीत कदलीं फलपुष्पादिसंयुतां ॥  
 राजतीं शोभनाकारां जातरूपफलोचितां ।  
 वस्त्रयुग्मस्ततो दद्यात् सर्वाङ्गारभूषितां ॥  
 कदल्यै कामदायिन्यै मेधायै ते नमोनमः ।  
 रन्ध्रायै रतिसारायै सर्व्वसौख्यप्रदे नमः ॥  
 कदल्यै कामदायिन्यै मोचायै ते नमोनमः ॥

पूजामन्त्रः ।

चिन्तिता त्वं हि कदली चिन्तितं कामदायिनी ।  
 शरीरारोग्यमैश्वर्यं देदि देवि नमोस्तु ते ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

पूजयेत् कुसुमैर्मन्त्रैः कण्ठमूत्रैश्च सव्रत ।  
 हरिद्रारश्मितैः सूत्रैश्च हृष्टनारीकदम्बकैः ॥  
 समधान्यैर्भृते पात्रे प्रस्थमात्रेण पूरिते ।  
 उमामहेश्वरं शशुं कृत्वा तस्मिन्निवेदयेत् ॥  
 रूप्यपथ्यङ्कमारूढं पूजयेत्कृष्णिणीं हरिं ।  
 वस्त्रयुग्मेन सर्व्वेष्टा चन्दनेन विनिपयेत् ।  
 पूजयेच्च सगन्ध्याङ्कैः पुष्पैः कान्तीद्वैर्नती ॥

१ फलान्ध्रानामितं पुष्पकान्तरं पाठः ।

मन्त्रैरेभिस्तु नन्दीश पादादारभ्य नामभिः ।  
 त्रिपुरायै च इत्यङ्घ्रियुग्मङ्गीर्यास्तु पूजयेत् ॥  
 जानुनी चन्द्रेत्रायै१ अपर्णायै नमोनमः ।  
 कटिं मन्मथनाशाय२ स्मरायै गिरिजां ततः ॥  
 नाभिं सर्वेश्वरायेति गिरिजायै तथाम्बिकां ।  
 हृदये हृदिवासिन्यै शूलिने च महेश्वरं ॥  
 मुखं कामविनाशाय पार्ष्वत्यै परमेश्वरीं ।  
 शिरः सौभाग्यदायिन्यै शूलिने तु कपर्दिने ॥  
 एवं संपूज्य देवेशमुमया सहितं प्रभुं ।  
 नृत्यवादिन्नगौताद्यैरुपीष्य कदलीं ततः ॥  
 जागरस्तत्र कर्त्तव्यः पुराणाख्यानकैः शुभैः ।  
 एवं त्रिरात्रं नन्दीशं नयेद्भक्त्यासुभावितः ॥  
 दिनानि त्रीणि नन्दीश प्रतिष्ठाया च सुव्रती ।  
 मिथुनानि च संपूज्य यथाविभव सारतः ॥  
 गुरुष्वैव सपत्नीकम्भोजयित्वा प्रपूजयेत् ।  
 दिनसंज्ञैर्ष्विष्विष्वपत्रैर्घृतहोमस्ततो भवेत् ॥  
 घृषदाग्न्येन दध्ना वा पयसा वाद्य वाग्यतः ।  
 तत्सवितुरिति मन्त्रेण जुहुयादनले सुधीः ॥  
 त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां पञ्चदश्यां  
 षुडतय इति दिनसंख्यात्वं ॥

गुरवे पाण्डुरच्छत्रं तस्य पत्नी तथानघ ।

१ चन्द्रत्रयायै इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ मायाय इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

रक्तवस्त्रं प्रदातव्यं वाचमेतामदीरयेत् ॥

गौर्या मे सहितो देवः प्रीयतां वृषभध्वज ॥

दानमन्त्रः ।

यथैवेन्द्रसमीपे तु शची तिष्ठति शोभने ।

अहमेव सदा रश्मे पत्युः पार्श्वे स्थिता भवे ॥

रूपं देहि धनं देहि यशः शोभाय मेव च ।

पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

कपिला तत्र दातव्या सर्वोपस्तरसंयुता ।

उमामहेश्वरं चैव कदम्बा सहितं तथा ॥

गर्भिणी वालवत्सा च<sup>१</sup> यथाकुर्यात्तथा शृणु ।

द्वादश्यामेकभक्तान्तु तयोद्दृश्यां तथैव च ॥

नक्तं समाचरेन्नष्टिंश्चतुर्दश्यामयाचितं ।

पञ्चदश्याञ्चोपवासमेवञ्चैव व्रतं चरेत् ॥

एतद्गतन्तु नन्दीय पुत्रपौत्रप्रदायकं ॥

या करोति व्रतं नन्दिन् विधिनानेन सुव्रत ।

न तस्यास्ति कुले काचिदपुत्रा विधवा तथा ॥

अरुन्धतीव मोदेषु यावदाभूतसंप्लवं ।

सदाकीर्त्तियुता साध्वो यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।

व्रतमेतत्<sup>२</sup> कृतं पूषं देवपत्नीभिरादरात् ॥

ताभिर्भोगाश्च संप्राप्ता दिव्या घातिमनोरमाः ।

१ बालवर्भाश्च इति पुस्तकाकारे पाठः ।

२ एवमेतदिति पाठाकारं ।

विराजन्ते स्वर्गलोके रवेरिव च रश्मयः ॥  
 व्रतस्यैव तु माहात्म्याद्वाप्नोति न संशयः ।  
 एवं प्रभावो नन्दीय व्रतस्यास्य महामते ॥  
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि सोऽपि स्वर्गं महीयते ।

इति स्कन्दपुराणोक्त रम्भात्रिरात्रव्रतं ।

स्कन्द उवाच ।

देवदेव महादेव परब्रह्म महेश्वर ।  
 आर्यैर्गौर्यैःपुत्रैश्चोभर्षी सततुगकारक ॥  
 व्रतं ब्रूहि महेशान सर्वैर्गोकपर्णागनं ।  
 जाताः पुत्राश्च जायन्ते श्रीरोगाः सुखिनस्तथा ॥  
 तेषां पुत्राश्च नश्वश्च दृश्यन्ते च सुगोभनाः ।  
 सौभाग्यत्रातुल प्राप्य मपत्नो नैव जायते ॥  
 येन सर्वं सुखं भुक्त्वा वैकुण्ठभवनं व्रजेत् ।

ईश्वर उवाच ।

व्रतानामुत्तमं स्कन्द तव वक्ष्ये मनातनं ।  
 येनैव चीर्णमात्रेण सर्वं यज्ञफलं लभेत् ॥  
 यत् कृत्वा सर्वं दानस्य फलमाप्नोति मानवः ।  
 गोत्रिरात्रमितिख्यातं सर्वं पापप्रणाशन ॥  
 नारी वाथ नरी वाथ त्रिरात्रव्रतमाचरेत् ।  
 कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मामि चाश्वयुजे तथा ॥  
 दोषात्तवसमोपे तु व्रतमेतत् समाचरेत् ।

प्रातः स्नात्वा त्रयोदश्यां कृत्वा वै दन्तधावनं ॥  
 त्रिरात्रं नियमं कुर्याद्गोविन्दभक्तिभावितः ।  
 गोविन्द जगतां नाथ गोवर्धनधरानघ ॥  
 गोत्रिरात्रं करिष्यामि शरणं मे भवाञ्छृत ।

नियममन्त्रः ।

गोष्ठे वा गोपथे वाथ कृत्वा भूमिगृहं शुभं ।  
 अष्टहस्तं चतुर्हस्तं चतुरस्रं सुगोभनं ॥  
 वितानं पुष्पमालाभिः फलैर्नानाविधैरपि ।  
 मध्ये वेदि ततःकृत्वा मण्डलं तत्र कारयेत् ।  
 सर्व्वतोभद्रनामाथ मवनालमथापि वा ॥  
 तन्मध्ये विन्ध्यसेद्वेवं गोवर्धनधरं हरिं ।  
 रुक्मिणी भिन्नविन्दा च शैव्या जास्तवती तथा ॥  
 वामभागे तु देवस्य पूज्या वै भक्तिभावतः ।  
 सत्यभामा च राधा च वासुदेवाग्निजस्तथा ॥  
 दक्षिणे चैव पूज्यास्तु नन्दश्च पुरतो यजेत् ।  
 षलभद्रं यशोदाश्च पृष्ठतः पूजयेत् शुभं ॥  
 सुरभो च सुनन्दा च सुभद्रा नाम धेनवः ।  
 एताश्चतस्त्री देव्यश्च कृष्णस्य पुरतोऽभ्यसेत् ॥  
 सुवर्णमाषकाः कार्याः षोडश प्रतिमाः शुभाः ।  
 गोवर्धनस्य कर्णव्यो राजतः पलममितः ॥  
 कृत्वाकारैर्गोहातृणैः शोभितः पत्निभिः शुभः ।  
 गोपीगोपसमाकीर्णो महातृणैः समन्वितः ॥

१ महावर्णमिति पलकाकारे पाठः ।

एवं संस्नाप्य यत्नेन ततः पूजां समाचरेत् ।  
 श्रीं आगच्छ भगवान् कृष्ण गोपगोपीसमन्वितः ॥  
 रुक्मिण्यादिभीराञ्चोभिर्ममपूजां गृह्णाण च ।

आवाहनमन्त्रः ।

नमः कृष्णाय पादौ च हरये जामुनी नमः ।  
 उदरं वल्लदेवाय मुकुन्दाय नमः कटिं ॥  
 चक्रिणे च भुजौ पूञ्चौ कण्ठं श्रीकण्ठधारिणे ।  
 मुखं पद्ममुखायेति गोविन्दाय नमः शिरः ।  
 प्रणवादिनमोन्मैष षष्टाङ्गं पूजयेद्दरेः ।

रुक्मिण्ये नमः । मित्रविन्दायै नमः । शान्त्यै नमः । जाम्ब-  
 वत्यै नमः । सुरभ्यै नमः । सत्त्वभामायै नमः । राधायै नमः ।  
 नामजिते नमः । यशोदायै नमः । बलभद्राय नमः । नन्दाय  
 नमः । सुनन्दायै नमः । सुभद्रायै नमः । नामजिते नमः ।  
 कामधेनवे नमः ।

गोवर्धनधराधार गोकुलत्राणकारक ।  
 विष्णुबाहुकृतीदार पूजयामि नगोत्तम ॥  
 एवं संपूज्य विधिवत्पद्मादर्घ्यं प्रदापयेत् ।  
 गवामाधार गोविन्द रुक्मिणीवल्लभ प्रभो ॥  
 गोपगोपीसमीपे तमर्घ्यं गृह्ण नमोस्तु ते ।  
 एवं पूजां समाप्यैव भक्तिभावपुरःसरं ॥  
 गवामर्घ्यं १ प्रदातव्यं सायाह्ने तु दिनपर्यं ।

मन्त्रिणानेन विधिवद्दिशन्तीनां स्वशक्तिः ॥  
 रुद्राणाञ्चैव या माता वसूनां दुहिता च या ।  
 आदित्यानाञ्च भगिनी सा नः शक्तिं प्रयच्छतु ।  
 अर्घ्यमन्त्रः ।

नमो गोभ्यः त्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च ।  
 नमो धर्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमोनमः ॥  
 पूजामन्त्रः ।

सुरभी वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपटे स्थिता ।  
 प्रतिगृह्णातु मे यासं सौरभी मे प्रसौदतु ॥  
 गोयाममन्त्रः ।

गावो मे अग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।  
 गावो मे हृदये सन्तु गवां मर्ध्य वसाम्यन्नं ॥  
 सा विद्योगोऽस्तु मे पुत्रैर्भर्त्सा चर मह वाश्ववैः ।  
 त्वत्प्रसादेन मे भक्तिर्निश्चलास्तु सदा त्वयिश् ॥  
 प्रार्थनामन्त्रः ।

एवं संपूज्य गाश्वेव ४ गोविन्दश्च विशेषतः ।  
 पूज्ये गश्वेय दीपैश्च धूपैर्नानाविधैरपि ॥

१ मन्त्रिणानेन विधिवद्दिशन्तीनां स्वशक्तिः पाठः ।

२ सा वावेति पुष्पकान्तरपाठः ।

३ निश्चला मे सदा त्वयि इति पुष्पकान्तरपाठः ।

४ गाश्वेति पुष्पकान्तरपाठः ।



नैवेद्यैर्घृतपक्वैश्च फलैर्नानाविधैरपि ।  
 समधान्यैर्विर्वरुदैश्च वंशपात्रस्थितैः शुभैः ॥  
 सुवासिन्यस्तथा पूज्या नित्यं ताम्बूलकुङ्कुमैः ।  
 कण्ठमूत्रैस्तथा पुष्पैस्तथा च कनकादिभिः ॥  
 एवं संपूज्य विधिवद्भोविन्दन्तु दिनत्रयं ।  
 कृत्वोपवासत्रयञ्चैव चतुर्थे दिवसे पुनः ॥  
 ततः शुचिः समुत्थाय कृत्वा स्नानं प्रयत्नतः ।  
 प्रणम्याचार्यमुख्येन होमं तत्रैव कारयेत् ॥  
 तिलैरष्टोत्तरगतं गायत्र्या होममाचरेत् ।  
 ततो विसृज्य देवेशं गुरवे प्रतिपाद्य च ॥  
 गावः पुच्छे समालम्ब्य पुरस्कृत्य द्विजर्षभान् ।  
 हृष्टेन मनसा स्कन्द गृहमागम्य यत्नतः ॥  
 मिथुनानि द्वादशाष्टौ भूषणाच्छादनादिभिः ।  
 संपूज्य भोजनं दत्त्वा गोदानानि च दापयेत् ॥  
 गुरोर्दपत्यमर्चित्वा वासोभूषणसंयुतं ।  
 भक्त्या गोवर्द्धनं कृष्णं गोपीगोपसमन्वितं ॥  
 गृहोपकरणैर्युक्तं यथा यत्न्या च भक्तितः ।  
 गुरोः सम्पादयेद्दोमान् दक्षिणामहृतं हरिं ॥  
 क्षमाप्य च गुरुं तत्र भुञ्जीत शुचि संस्कृतं ।  
 इष्टे. १ शिश्टैः समासो नो वाग्यतो विष्णुतत्परः ॥  
 दीपोक्तवैव्रतमिदं शुचिमानसेन  
 कृत्वा नरः सकलसन्ततिवृद्धिकारि ।

मुक्तोपभोगनिचयं सुखसंप्रयुक्तो  
ह्यन्ते प्रयाति भवनं मनुजोमुरारेः ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं गोत्रिराजव्रतं १ ।

—ooo(a'ooo)—

निवृत्ते भारते युद्धे कुरुसैन्ये क्षयं गते ।  
राजा धर्मसुतः श्रोमान् भ्रातृभिः सह मोदितः ॥  
मागधैस्तूयमानश्च स्वसैन्यगणशोभितः ।  
श्रीकृष्णेन समायुक्तः प्रययौ हस्तिनापुरं ॥  
अभिषेकं ततश्चक्रे पुरीधा मुनिसंयुतः ।  
दूर्वायवाङ्गुरैर्युक्तं चक्रुर्ब्रह्मपापणं स्त्रियः ॥  
रत्नैर्दूर्कलेहैर्भक्तिमा तोषयामास तान् गणान् ।  
नृपांश्च स्वनरीपैतान् मागधांश्चावनीपकान् ॥  
ऋषींश्च मर्त्वान् प्रस्थाप्य स्वे स्वे स्थाने नृपानपि ।  
स्तुत्या मन्तोषयामास श्रीकृष्णं पाण्डुनन्दनः ॥  
देवदेव जगन्नाथ भक्तानामभयप्रद ।  
प्रसादात्तव गोविन्द कौरवा युधि निर्जिताः ॥  
राज्यं निष्कण्टकं प्राप्तं भक्तियोगात्तवानघ ।  
मन्त्रेवापरियुक्तानां प्रसादं कुरु केशव ॥  
एवमुक्त्वा स्थिते पाण्डो पुत्रभ्रातृसमन्विते ।  
पाञ्चाली परया भक्त्या प्रणम्य पुरुषोत्तमं ॥  
वहाञ्जलिपुटा साध्वो प्रोवाच परमेश्वरं ।

कस्तुराकारसंपूर्णं कंसासुरनिघ्नतन ॥  
 दुकूलहरणादयश्च दुःखं त्वद्गतिभाषिता ।  
 न ज्ञातं देवदेवेश प्रसादं कुश्च केशव ॥  
 किमपि श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो व्रतमनुत्तमं ।  
 येन शीघ्रं नारीणां लोभाय पतिभक्तितः ॥

कृष्ण उवाच ।

गौर्या स्नन्दस्य पुरतः शशुना कथितं व्रतं ।  
 गोचिरात्रमिदं स्यात् पवित्रं कथयामि ते ॥  
 सावित्रीपुरतो धात्रा बसिष्ठेन महर्षिणा ।  
 चतुर्विधा प्रागुदितं तद्भूतं शृणु व्रते ॥

द्वीपद्यावाच ।

कलिन्ध्राये प्रकर्त्तव्यं यथा दानं तथा विधिः ।  
 तत्सर्वं कथयाह त्वं यदि तुष्टोऽसि माधव ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

नभस्त्रे च सिते पक्षे चयोद्गतीति वा तिष्ठिः ।  
 कार्त्तिके वा प्रकर्त्तव्यं सोभास्यधनवाञ्छया ॥  
 सूर्योदये समुत्थाय दत्तधावनपूर्वकम् ।  
 सञ्जीवनायणस्वामे त्रिराशोपोषणं गृहे ॥  
 कुर्यात् स्नानं ततश्चैव स्नापयेत् कमलापतिं ।  
 पञ्चानृतेन श्रीखण्डैः कुसुमैरर्चयेन्नतः ॥  
 शतपत्रैश्च पद्माद्यैः पुष्पैः पूजां प्रकल्पयेत् ।

वादी नमामि वसिष्ठानवमर्दनाय  
 जानू नमामि भुवनत्रयपालनाय ।  
 स्वामी नमामि ६ । सारमन्त्राय चित्ते  
 श्रीश्रीश्रीराम करचक्रहृषाप्रियाय ॥

दूजामन्त्रः ।

श्रीराशिस्तनव्यान वाहुदेव जगत्प्रभो ।  
 यद्व्याचार्थं मया दत्तं श्रीभाष्यं देहि मे सदा ॥

चर्चामन्त्रः ।

कुञ्जान्तेर्नारिकेलेषु बीजवृक्षे च दाहिमेः ।  
 त्र्यम्बं हत्वा च संपूज्य कामधेनुं प्रसादयेत् ॥

कामधेनुपूजा ।

करसंपुटकं हत्वा कामधेनोरथ इति वाच्यं ।

रोगाणि हन्तु मम कामदुषा प्रसन्ना  
 पापानि हन्तु मम कामदुषा प्रसन्ना ।  
 मोक्ष्यं हदातु मम कामदुषा प्रसन्ना  
 पुत्रान् हदातु मम कामदुषा प्रसन्ना ॥

तृतीये दिवसे प्राप्ते वंगपात्रचयन्ततः ।

विदुःककसमापन्नं सम्भक्तं फलसमन्वितं ।

दद्यात् कामदुषायै च व्रतसंपूर्णवैतसे ।

राशौ च सर्वतोभङ्गं मण्डलत्रयं प्रकल्पयेत् ॥

माधेकस्य सुवर्षस्य लक्ष्मीनारायणं प्रभुं ।

कृत्वा तत्र न्यसेद्देवं व्रतसंपूर्णचितवे ॥  
 रात्रौ जागरणं कुर्याद्दीतवादिचकौतुकैः ।  
 ततः प्रभातसमये होमं कुर्याद्यथाविधि ॥  
 दम्पत्याः परिधानाय शुभैर्बस्त्रैः स्वशक्तितः ।  
 देया धेनुत्र त्रिप्राय निवेद्य पृष्ठतोत्रजेत् ॥  
 पटे पटेऽश्वमेधस्य फल प्राप्नोति नियतं ।  
 अथान्यदर्पिते वच्मि इतिहासं पुरातनं ॥  
 व्याघ्रधन्वोः सुसंवादं नीतिशान्त्रमयं शुभं ।  
 वसिष्ठस्याश्रमात् काचिद्दिव्यगोवंशमभवा ॥  
 स्वेच्छया प्रययौ धेनुश्चरति गह्वरे वने ।  
 सिंहव्याघ्रादिजोर्विभ्यो निर्भया तपसो बलात् ॥  
 मुनीश्वरस्य सा धेनुः प्रययौ गिरिगह्वरं ।  
 शिवगापपरिभ्रष्टव्याघ्रव्यापी महाबलः ॥  
 महादंष्ट्रा महाकायो नाम्नामो जलबर्हेनः ।  
 प्रमारितकरो वीरो ययो वृत्तिं शुभाशुभां ॥

व्याघ्रउवाच ।

दिवसा बहवो जाताः क्षुत्रया पीडितस्य मे ।  
 त्वं दृष्ट्वा दैववशत आहाराय प्रकल्पिता ॥

धेनुकवाच ।

वसिष्ठस्य पभावेन दृष्टजोर्वैर्महाबलैः ।  
 न हिंस्याहमवश्यं हि जानीयाद्दगाघ्नसत्तम ॥

वाक्यमेकं महावाही शृणुष्वैकाग्रमानसः ।  
स्वीयजीवाशया चाहं न ब्रवीमि तवागतः ॥  
अध्वेण शरीरेण मलमूत्रयुतेन च ।  
परोपकृतिहीनेन किं कार्यं क्षत्रियेण च ॥  
घाञ्जनः कर्मणा ये वै शरीरनागनेऽपि वा ।  
उपकारं न कुर्वन्ति तेषां जन्म निरर्थकं ॥  
मरणे वान्धचित्ता ये रणे दीनवर्चा भटाः ।  
ते यान्ति नरकं वीरमित्याहुः पूर्वस्मरयः ॥  
कलत्रपुत्रवन्धूनां मायारहितमानसाः ।  
पुराणपुरुषे भक्तास्ते यान्ति परमाङ्गतिं ॥  
सोमवासरसञ्छातो बालो मम गृहे स्थितः ।  
ममागमनसं दृष्टिः स्नेहदुःखञ्च मे हृदि ॥  
मन्वी दुग्धेन तस्मालं स्वेच्छया परितोष्यति ।  
सखीमकथयित्वाशु आयामि तव सन्निधौ ॥

व्याघ्र उवाच ।

वेदशास्त्रपुराणेषु पठते पूर्वस्मरिभिः ।  
स्त्री विप्रधेनुपौडासु विवाहे राजविग्रहे ॥  
प्राणालयेऽप्यमत्यं हि वाच्यमन्यत्र नैव हि ।  
आपद्रतश्च योजन्तुर्यथ वैरिवशङ्कतः ॥  
आत्मा वै रक्षितो येन तत् क्लेशात् न संशयः ।  
यस्य चायं स्थितं भक्ष्यमादिष्टं परमेष्ठिना ॥  
न गृह्णाति च यो मूर्खीश्चानन्दानकरं व्रजेत् ।  
सुरैर्न न मनुष्यैश्च न यक्षैर्न पिशाचकैः ॥

( ३८ )

सत्यं हि निश्चितं वाक्चक्रं प्राणिभिः प्राप्यचापदं ।

जलदृशसमाहारकृतसन्तोषवर्तिनां ॥

आपद्गतानाममृतं तत् पशूनाञ्च का कथा ।

पृथिवी च तथादित्याः सत्ये तिष्ठन्ति देवताः ॥

तस्मात्सत्यं त्वपाकार्यं चाप्यस्यैव वृषाङ्गणे ।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बालकश्चेहपीडिता ॥

चक्रे तत्र प्रतिज्ञाम्बे व्याघ्रस्यापि पुनः पुनः ॥

धेनुवदाच ।

द्विजोभूत्वा ततो व्याघ्र वेदभ्रष्टोऽभिजायते ।

स्वाध्यायसम्भारहितः सत्यशौचविवर्जितः ॥

अविक्रियाणां विक्रिता अयाव्यानाञ्च याजकः ।

तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥

दुष्टवृद्धौ शठे धूर्ते यत् पापं परवचके ।

दाने दत्ते प्रदत्तञ्च प्रसक्तिं कुरुते नरः ॥

तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।

वेदविक्रयणे चैव श्वसूतकभोजने ॥

तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।

श्रुतवक्त्रां ग्रहीता यो मातापितृरपोषकः ॥

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं ब्रह्मद्रव्यं हरेत्तु यः ।

तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥

स्वदत्तां परदत्ताम्बा यो हरेत्तु वसुधरां ।

अबैश्वे तु यत्पापं यत्पापं दम्भकर्तृके ॥

तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।

सुक्तेन्द्रिये च धूर्त्ते च परदोषापवादके ।  
 कृतघ्ने च कदर्ये च परद्रव्यरते घटे ॥  
 तेन पापेन लिम्बेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।  
 सदाचारविहीने च परपीडाप्रदायके ॥  
 तेन पापेन लिम्बेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।  
 परापवादसंस्तुष्टे सर्वधर्म्यं विवर्जिते ॥  
 यत्पापं ब्रह्महत्यायां पिष्टमाहवधे तथा ।  
 तेषाम्नु पातकं मद्यं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 द्विभार्यः पुरुषोयस्तु यन्मादिकां विवर्जयेत् ।  
 तेन पापेन लिम्बेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 यत् पापं सुखकानाञ्च स्वस्थानां विपदायिनां ।  
 तेन पापेन लिम्बेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 यत्पापं नास्तिकानाञ्च पौराणां त्रिपयेपिणां ।  
 तेन पापेन लिम्बेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 यस्त्रीन् हले बलीवर्दान् विषमं बाहयेत्तु यः ।  
 तेन पापेन लिम्बेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 गौरवघ्नां प्रकुर्वन्ति दृष्टेन ताडयन्ति ये ।  
 तेन पापेन लिम्बेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 सकृत् कथ्यान्तु योदत्त्वा द्वितीये दातुमिच्छति ।  
 तेन पापेन लिम्बेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 कथायां कथ्यमानायामन्तरायं करोति यः ।  
 तेन पापेन लिम्बेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 यत्तिनिन्दाकरोन्तिव वेदनिन्दापरस्तथा ।



तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।  
 यस्य संग्रहणी भार्या ब्राह्मणी च विशेषतः ॥  
 तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।  
 अकर्मनिरते क्रूरे कुलधर्मविवर्जिते ॥  
 तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।  
 मूर्खे पाषण्डके चैरे तिलविक्रयकारके ॥  
 एकोमिष्टान्नमयाति भार्यापुत्रमपोषकः ।  
 आत्मभरा दुराचारा देवद्रव्यविलोपकः ॥  
 तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।  
 ब्रह्मघ्ना गुरुनिन्दायाः स्वामिनिन्दाकरास्तथा ॥  
 तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ।  
 कुरुक्षेत्रे महापर्वे यस्ते चन्द्रे दिवाकरे ॥  
 ये गृह्णन्ति महादानं हव्यकव्यविवर्जितं ।  
 तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 कूटसाक्षी मृषावादी परद्रव्याभिलाषकः ।  
 तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 परदाराभिगामी च ये च विश्वासघातकाः ।  
 भर्तारमर्षदीनश्च महाव्याधिप्रपोडितं ॥  
 या न पूजयते नारी रूपयौवनगर्विता ।  
 तेन पापेन लिम्पेऽहं यद्यहं नागमे पुनः ॥  
 अथ किं बहूनीक्तेन मृगराज तवायतः ।  
 यदि नायामि शीघ्राहं मम सत्यं भवेन्न च ॥  
 तेन वाक्येन सन्तुष्टो व्याघ्र आहारनिस्पृहः ।

प्रसारितकरं त्यक्त्वा गच्छ धेनो स्वकं गृहं ।  
 व्याघ्रेण मुक्ता सा धेनुरागता च स्वमाश्रमं ॥  
 उत्कर्षं तर्णकं दृष्ट्वा जात प्रस्रवती भृशं ।  
 बालं पयसा सन्तर्प्य सखीषु च विनिक्षिपेत् ॥  
 ता दृष्ट्वा दुःखिता गावो मातृच्छेदसमन्विताः ।  
 दृष्ट्वा दुःखतरो बालो न जाने च तथास्तु मे ॥  
 तत्तद्दालमुपादाय पप्रच्छुस्तत्र कारणं ।  
 विश्राज्य तासु वृत्तान्तं बालकन्तमुवाच सा ॥  
 अनुयाहि व्रज त्वं हि सत्यवाक्यममन्विता ।  
 व्रजामि तदनं शीघ्रं व्याघ्रो बसति यत्र च ॥

सख्यवाच ।

कृतप्रतिघ्नेमूढामि नन्दिनीवशं सन्धवे ।  
 व्याघ्रधेन्वोः परं वैरम्विषु स्त्रीकेषु विश्रुतं ॥  
 विप्र-स्त्री-बाल-कार्येषु संप्राप्ते वैरिमद्भटे ।  
 प्राणापहारे मुनिभिरसत्यं नैव दूषितं ॥  
 देवेशेन पुरा जघ्ने ह्रवः सुररिपुर्वली ।  
 शपथान् कृत्वा तथा विष्णुः शङ्कं विश्वासवर्जितं ॥  
 तत्र त्वं स्वगृहे तिष्ठ परिवारेण सयुता ।  
 मुनिप्रवरास्तिष्ठन्ति न दुष्टा जन्तवः कदा ॥

धेनुरुवाच ।

सत्येन तपते भानुः सत्येन तपते शशी ।  
 चतुर्मुखाऽपि सत्येन सत्येन सकलं जगत् ॥

सत्यवाक्यपरिभ्रष्टो सोमो जीवेत् कदाचन ।  
 सत्येन सत्यलोकोऽस्ति सत्यं वेदे प्रतिष्ठितं ॥  
 व्रजामि सत्यवाक्येन तद्व्याघ्रं प्रति निर्भया  
 तद्वने चैव भ्रांष्ट्रो व्याघ्रो यातामुपागतां ॥

व्याघ्र उवाच ।

अहो मे भाग्यमतुलं कामधेनुः समागता ।  
 दुष्टयोनिविनिर्मुक्तो यास्यामि हरसन्निधौ ॥  
 यावत् प्राप्ता कलिमलह्वरा पावनी कामधेनु  
 स्तावद्व्याघ्रः । शशधरगणः सर्वं सम्प्रतिदेहः ।  
 वद्वा पाथी विमलमणिभिर्दीप्यमाने किरीटे  
 धेनुं भक्त्या मधुरवचनैराह संपूज्य सम्यक् ॥  
 धन्योऽस्मि कृतकृत्योऽस्मि कामधेनोः प्रसादतः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो याम्यहं हरसन्निधौ ॥  
 गावो रक्षन्तु मे पुण्यं गावो रक्षन्तु मेयशः ।  
 गावो रक्षन्तु मे वर्गं कलत्रपुत्रपौत्रकं ॥  
 संपूजितास्त ता गावो मादृशां बहुसम्पदाः ।  
 सर्वपापह्वरा गावः सर्वपुण्यफलप्रदाः ॥  
 नमोऽस्तु कामधेनुभ्यो याः पुनन्ति जगत्त्रयं ।  
 यदाधारस्थितं विष्णं नन्दादिभ्यो नमोनमः ॥

धेनु उवाच ।

महागण वरं ब्रूहि जगतां प्रीतिकारकं ।

यदिच्छसि वरं काम्यं ददामि तव भक्तितः ॥

गण उवाच ।

विश्रीपकारकरणे समर्थाः कामधेनवः ।  
भवद्दर्शसु विश्वासात् सदास्तु सुखितं जगत् ॥  
भवत्प्रजारता ये वा भवत्प्रजापरायणाः ।  
तेषाञ्च सर्वा सिद्धिः स्वाङ्गवदीयप्रसादतः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवमस्त्विति साप्युक्ता व्याघ्रः शिवपुरं ययौ ।  
कामधेनुञ्च सन्तुष्टा वशिष्ठाश्चममाययौ ॥  
एवमुक्तां गोत्रिरात् कृत्वा नारी नरोऽपिवा ।  
प्राप्नोति सकलान् कामान् सप्तजन्मानि सुव्रते ॥

इति श्रीकृष्णोक्तोक्ता गोत्रिराचरितकथा समाप्ता ॥

—०००@०००—

याम्योत्तरगता रेखा कुर्यादिकोनविंशतिं ।  
खण्डे द्विपदा कीचे शृङ्खला पञ्चकोष्टिका ॥  
एकादशपदा वाप्यी भद्रन्तु नवभिः पदं ।  
चतुर्विंशत् पदा वापी विंशत्वा परिधिः स्मृता ॥  
सितेन्दुशृङ्खला कृष्णा बन्नी नीले च पूरयेत् ।  
कृष्णं भद्रं सिता वापि परिधिः पीतकषिकं ॥  
सत्वरजस्तमोपेतं सर्वतो भद्रमण्डलं ॥

इति मण्डलविधिः

युधिष्ठिर उवाच ।

भगवन् त्वत्प्रसादेन बहूनि सुकृतानि मे ।  
 श्रुतानि बहुपुण्यानि कृतानि मधुसूदन ॥  
 सर्वपापहराणि स्यः सर्वकामप्रदानि च ।  
 साम्प्रतं श्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमं व्रतं ॥  
 किञ्चिद्योगव्रतं ब्रूहि यदि तुष्टोऽसि माधव ।  
 यत् कृत्वा सर्वपापेभ्यो नरो नारी विमुच्यते ॥

कृष्ण उवाच ।

कथयामि नृपत्रेष्ठ व्रतानामुत्तमं व्रतं ।  
 यत्र कस्यचिदाख्यातं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥  
 यान्यान् कामान्वाल्क्यति लभते तांस्तथैव च ।  
 तत्तृणदेव मुच्यन्ते नरा नार्यथ सर्वगः ॥  
 धेनो भगवति राजन् कामधेनोः प्रसादतः ।  
 सौभाग्यं सन्ततिं लक्ष्मीं प्राप्नोति सुखमुत्तमं ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

यदि तुष्टोऽसि भगवान् व्रतस्यास्य विधिं श्रुभं ।  
 ब्रूहि मे नरगार्दल करोमि त्वत्प्रसादतः ॥  
 के मन्वाः के नमस्काराः देवताः काः प्रकीर्त्तिताः ।  
 किं दानमर्घ्यमन्वञ्च कथयस्व सुरोत्तम ॥

कृष्ण उवाच ।

नारदेन पुरा राजन् यदुक्तं सगरादिषु ।

स्मारितस्तत्त्वया राजन् शृणुष्वैकमना व्रतं ॥  
 मामि भाद्रपदे शुक्ले त्रयोदश्यां समारभेत् ।  
 त्रयोदशीप्रभाते तु समुत्थाय शुचिर्भवेत् ॥  
 गृह्णीयाद्वियमं पूर्वं दत्तधावनपूर्वकं ।  
 आचम्योदकमादाय इमं मन्त्रमदीरयेत् ॥  
 गीत्रिराचव्रतस्यास्योपवासकरणे मम ।  
 शरणं भव देवि त्वं नमस्ते धेनुरूपिणि ॥  
 प्रसीदतु महादेवो लक्ष्मीनारायणः प्रभुः ।  
 लक्ष्मीनारायणं देवं सौवर्णञ्च स्वशक्तितः ॥  
 पञ्चाशृतेन गव्येन स्नापयेत् कमलापतिं ।  
 स्नापयेत्सर्वतीभद्रमण्डलेऽष्टदलेऽपिवा ॥  
 गन्धपुष्पैः सुनैवेद्यैस्तृतिगीतादिनर्त्तनैः ।  
 नारिकेलार्घ्यं दानेन प्रीणयेद्गङ्गां हरिं तथा ॥  
 लक्ष्मीकाम जगन्नाथ गीत्रिराचं व्रतं मम ।  
 परिपूर्णं कुरुष्वेदं गृह्णाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥

इत्यर्घ्यं मन्त्रः ।

आरात्रिकं ततः कुर्याद्भक्त्या कृष्णस्य तुष्टये ।  
 नवं कुम्भं जलभृतं हविष्याग्नेन प्ररितं ॥  
 कृत्वा दिनत्रयं पार्श्वं तथाच विनिवेशयेत् ।  
 धेनुं पूज्य ततः कुर्यात् जलधारां प्रदक्षिणां ॥  
 पुरा दत्त्वा कुण्डलकं कुम्भहस्तकमण्डलुं ।  
 अन्नाच्छादनगन्धादिदिव्यपुष्पैः सदीपकैः ॥

( १८ )

अहोरात्रमवक्रञ्च छतदीपं दिनत्रयं ।  
 प्रबोधयेद्भती धेनोरघे वा देवमण्डले ॥  
 अर्घ्यदानन्ततः कुर्यात् नारिकेलादिभिः फलैः ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

पञ्च गावः समुत्पन्ना मथ्यमाने महीदधौ ।  
 तासां मध्ये तु या नन्दा तस्यै धेन्वे नमोनमः ॥  
 प्रदक्षिणीकृतायेन धेनुमार्गानुसारिणी ।  
 प्रदक्षिणीकृता तेन समहोषा वसुन्धरा ॥  
 गावोममागतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।  
 गावोमे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहं ॥  
 आरात्रिकं सनैवेद्यङ्गीतवाचमहोत्सवं ।  
 कुङ्कुमं कुम्भहृत्प्रभं धेनोर्दद्याद्विचक्षणः ॥  
 एषं सपूज्य तां धेनुं सम्यक् भक्त्या दिनत्रयं ।  
 यवांश्च यवसञ्चैव चारयेत्प्राययेदपः ॥  
 गोमयादक्षतैर्द्वान्यैः१ कुर्यात्तेरेव पारणं ।  
 तारयेदथ देशकान् पतत्यनपि दुःखदम् ॥  
 धेन्वघे जागरं कुर्यात्सर्वपापप्रणाशन ।  
 त्रिविधाम्बुञ्चते पापात् प्रहराज्ञेन पाण्डव ॥  
 तस्मिन्तरं कृतात्पापात् प्रहराज्ञेन मुञ्चते ।  
 चत्वारि वेषुपात्राणि कारयित्वा प्रपूजयेत् ॥  
 नारिकेलोदकद्राक्षाखजू रदाङ्गिभैः शुभैः ।

१ गोमयादाक्षतैर्धानैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

विरुद्धैः पुष्पसिन्दूरवस्त्रकुङ्कुमकज्जलेः ॥  
 प्रथमे वीजपूरार्घ्यं द्वितीये दाहिसं शुभं ।  
 तृतीये नारिकेलेन दद्यादर्घ्यं दिनत्रय ॥  
 करकास्तु त्रयः कार्याः हविष्यान्नेन पूरिताः ।  
 लक्ष्मीनारायणं देवं ब्रह्माणं भार्यया सह ॥  
 पूजयेत् कुसुमैर्वस्त्रैर्होमसूत्रैर्युधिष्ठिर ।  
 दम्पत्योर्भोजनं देयं धेनुं भक्त्या दिनत्रयं ॥  
 पारणे गौरिणी विप्रानिष्टवन्धुं भोजयेत् ।  
 गुरवे विष्णुरूपाय तां धेनुं प्रतिपादयेत् ॥  
 सकुङ्कुमां सवस्त्रां च घण्टामुकुटभूषितां ।  
 गीतवादित्रय्यादिशान्तिपाठपुरःसरां ॥  
 पापादिप्रगृहं यावत् प्रापयेद्गतएव वा ।  
 एवं या कुरुते पार्थ गोत्रिरात्रव्रतोत्तमं ॥  
 दुर्लभं तु सदा स्त्रीणां नराणां नृपसत्तम ।  
 अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयगतानि च ॥  
 कृत्वा यत् फलमाप्नोति गोत्रिरात्रव्रते कृते ।  
 प्रभाषे च कुरुक्षेत्रे चन्द्रसूर्यग्रहे तथा ॥  
 हेमभारगतं दद्यात् तत् फलप्राप्तये नृप ।  
 धेनुदानं कृतं येन सवस्त्रं सर्वकामकं ॥  
 सागराम्बरसंयुक्ता दत्ता तेन वसुधरा ।  
 एवं या कुरुते पार्थ चिरात्त्रव्रतमुत्तमं ॥  
 भवान्तरकृतात् पापात् त्रिविधान्मुच्यते नरः ।  
 सा कदाचिन्नपश्येत् भर्तुं दुःखं नराधिप ॥



पुत्रपौत्रसुखं तस्य भविष्यति न संशयः ॥  
 जन्मान्तरे च सा नारी वैधव्यं न च पश्यति ।  
 वैधव्यं न महादुःखं भविष्यति भवान्तरे ॥  
 अपुत्रो लभते पुत्रान् धनहीनो धनं लभेत् ।  
 कायेन मनसा चैव कर्मणायदुपार्जितं ॥  
 तत्सर्वं पातकं याति गोत्रिरात्रव्रते कृते ।  
 इह भोगान् विपुलान् कृत्वा आयुः सम्यूर्णमेव च ॥  
 व्रतस्यास्य प्रभावेन गोलोके च महीयते ।  
 कीर्त्तिदम्बनदं चैव सौभाग्यकरणं नृप ॥  
 आयुरारोग्यकरणं सर्वपापप्रणाशनं ।  
 तत्र स्नात्वाद्वाद्राजन् सभार्यस्त्वं कुरु व्रतं ॥  
 यदि राज्यं कुरु कीर्त्तिं नित्यं प्राप्यमिहेच्छसि ।  
 तच्छ्रुत्वा पाण्डवश्रेष्ठी व्रतं चक्रि समाहितः ॥  
 व्रतस्यास्य प्रभावेन लब्धं राज्यमकण्टकं ।

इतिश्रीभविष्योत्तरोक्तं गोत्रिरात्रव्रतं ।

—०००—

ब्रह्मोवाच ।

शृणुष्व्वावहितो भूत्वा यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।  
 कथयामि व्रतं श्रेष्ठं सर्वकामार्थसिद्धिदं ॥  
 येन चोर्षेण नारीणां वैधव्यमप्रजायते ।  
 आयुष्यं वर्धते भक्तुः पुत्राश्च धनसंयुताः ॥  
 तदहं संप्रवक्ष्यामि व्रतानामुत्तमं व्रतं ।

यत् प्रसादादुमा बद्धं कृष्णं लक्ष्मीः शची वरिं ॥  
 सावित्री मां यथा प्राप्ता सीता रामं यथा मुने ।  
 दक्षकोपादुमा देवी देहव्यक्ता स्वकं पुरा ॥  
 जाता हिमवतो गेहे १ जटावस्त्रलधारिणी ।  
 चचारोयं तपोऽनाथा निराहारा जितेन्द्रिया ॥  
 एकाङ्गुष्ठे स्थिता वासा पञ्चाग्निपरिसंयुता २ ।  
 तपस्त्रे निश्चयं दृष्ट्वा गतः शम्भुस्ततः स्वयं ३ ॥  
 कस्मादेवं त्वया कष्टं क्रियते गौरि साम्प्रतं ।

उमीवाच ।

महादेवी भवेदेव यथा मे पतिव्रतमः ।  
 तदर्थं क्रियते घोरन्तपस्तपनदुःसहम् ॥

ब्रह्मीवाच ।

शृणु वाली सुखीपायं व्रतानामुत्तमं व्रतं ।  
 येन चीर्षेण ते शम्भुः स्वदेहाद्यं प्रदास्यति ॥  
 सा त्वं कुरु व्रतं ४ भद्रे त्रिराचं विश्वसंश्रितं ५ ।  
 तस्त्रीर्षमनया भक्त्या पतिर्लब्धो महेश्वरः ॥  
 कार्तिकेयः सुतस्तस्माद्ब्रूवे शश महामुने ।

- 
- १ जातासाधिमवदेचेति पुस्तकान्तरे पाठः ।  
 २ पञ्चाग्निपरिसमाप्यते इति पुस्तकान्तरे पाठः ।  
 ३ तस्याचं निश्चयं दृष्ट्वा ततः लब्धो गतः कथञ्चित् पुस्तकान्तरे पाठः ।  
 ४ तच्चक्रव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।  
 ५ हिराम विष्णु संश्रित मिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

इत्युक्तो ब्रह्मणा पूर्व<sup>१</sup> अगस्तिमुनिसत्तम ॥  
विष्णयाविष्टचेताश्च विधिं प्रष्टुं प्रचक्रमे ।

अगस्थ उवाच ।

कस्मिन् काले दिने कस्मिन् स्थाने चैव नरोत्तम ।  
विधिनाकेन कर्त्तव्यं कथं पूज्यो वनस्पतिः ॥

ब्रह्मोवाच ।

ज्येष्ठे मासि च संप्राप्ते पूर्णमास्यां द्विजोत्तम ।  
ज्येष्ठाष्टमदिने कुर्यात्त्रिद्वयैः स्नानमुत्तमं ॥  
श्रीवृक्षं मिश्रयेत्पश्याद्गन्धपुष्पैश्च पूजयेत् ;  
वत्सरत्वेकभक्तान्तु हविष्यान्नेन कारयेत् ॥  
श्वशूकरखरादीनां दर्शने भोजनं त्यजेत् ।  
अनेन विधिना सम्यक् मासि मासि समाचरेत् ॥  
ततः संवत्सरे पूर्णं गत्वा विष्वममोपतः २ ।  
गृहीत्वा वालुकां पात्रे प्रस्थमात्रं महासुने ॥  
अथवा धान्यमादाय यवशालितिलादिकं ३ ।  
ततो वंशमये पात्रे वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत् ॥  
समामहेश्वरं हैमं गन्ध्या कुर्यात् सुभूषितं ।  
रक्तवस्त्रयुगं दद्यान्नैवेद्यं फलसंयुतं ॥  
पुष्पैश्च हविषैश्चापि फलेर्नानाविधैस्तथा ।

१ विधिं दृष्टमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ विष्वसतोसमूर्तिं पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ यवशालि तिलोदकमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

गुह्येसुजीरकैर्धान्यैर्नवणेन विरुठकैः ।  
 समधान्यैस्तथादीपैस्त्र्यंशपात्रप्रकल्पितैः ॥  
 रजन्या कण्ठसुत्रैश्च शुभैः कुङ्कुमकेशरैः ।  
 अघतारं करोत्येषा समादेवी हरप्रिया ॥  
 अतिकेत नमस्तभ्यं शिवप्रिय नमोस्तु ते १ ।  
 अवैधव्यञ्च मे देहि श्रियं वै जन्मजन्मनि ॥  
 श्रियं धनं पतिपुत्रानारोग्यं कुलसन्ततिं ।  
 सौभाग्यं रूपसम्पत्तिं पूजितस्त्वं प्रयच्छ मे ॥  
 सहस्रं विल्वपत्राणां होमयेत्तु यथाविधि ।  
 पायसं तत्र जङ्घया द्विप्रः शान्तीऽथ मन्त्रवित् ॥  
 राजतं श्रोतकङ्कत्वा सुवर्णफलशोभितं ।  
 अष्टोत्तरशतं यावत् पीतवस्त्रेण वेष्टयेत् ॥  
 त्रयोदश्यां समारभ्य यावत्पूर्णं भवेत्तियैः ।  
 त्रिरात्रं जागरं कृत्वा उपवासैर्जितेन्द्रियः ॥  
 समापते २ पशुपते त्रैलोक्याधिपतिः प्रभो ।  
 गृहाणार्घ्यं मया देव गौर्या सह महेश्वरः ॥  
 ततः प्रभाते सञ्जाते स्नात्वा च तिलसर्षपैः ।  
 वस्त्रालङ्कारपुष्पैश्च गुरोर्दम्पत्यमर्चयेत् ॥  
 पादुकोपानहच्छत्रयथ्या गाञ्च सुभूषितां ।  
 गुरुं प्रपूज्य भक्त्या तु दद्यादेतत् प्रयत्नतः ॥  
 षोडशशती चतस्रोवाह्विजदम्पत्यो भूषिताः ।

१ वनखण्डे इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ समापते इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

वस्त्रालङ्कारगोदानैस्तस्मिन्नहनि पूजयेत् ।  
 मिष्टान्नं भोजनं दद्यादात्मनः श्रेय इच्छता ॥  
 या नारी कुरुते चैतद्धतं पापप्रणाशनं ।  
 सर्वसिद्धिकरं पुण्यं शिवलोके महीयते ॥  
 कल्पकोटिशतं यावदास्थाय शिवसन्निधौ ।  
 ततोराज्ञी भवेन्नर्त्यं पुत्रपौत्रसमन्विता ॥

इति स्कन्दपुराणीकं विष्वन्निरात्रव्रतं ।

—000—

विष्वमूलं समान्नित्यं त्रिरात्रोपोषितः शुचिः ।  
 हरनामं जपेन्नक्षत्रं भ्रूणहत्यां व्यपोहति ॥

इति सौरपुराणीकं हरन्निरात्रव्रतं २ ।

—000—

स्कन्द उवाच ।

अरुन्धतीव्रतं वक्ष्ये सदा सौभाग्यदायकं ।  
 येन चीर्णेन वै सम्यक् नारी सौभाग्यभाजना ॥  
 जायते रूपसम्पन्ना पुत्रपौत्रसमन्विता ।  
 वसन्तर्तुं समासाद्य तृतीयायां सुरर्षभ ॥  
 स्नानं कृत्वा तु विधिवन्निरात्रोपोषिता सती ।  
 मिथुनानि च चत्वारि समाह्वय यतव्रता ॥

१ हरिनामं इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ हरिव्रतमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

पूजयेत् पुष्यताम्बूलैश्चन्दनेश्च तथाक्षतैः ।  
 कुङ्कुमागुरुकर्पूरसिन्दूरैर्मृगनाभिभिः ॥  
 शिलापट्टे च संस्थाप्य गुडोज्यलवणान्वितं ।  
 लोष्टकेन समायुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितं ॥

लोष्टको नाम शिलापट्टोपरि स्थितपेषणोपलः एतदृशदुप-  
 क्षोपधानमभिहितं भवति ।

आवाहयेन्महादेवीं वमिष्ठप्राणमस्मितां ।  
 आयाहि वरदे देवि सात्रिध्यं कुरु सुव्रते ॥  
 षतिव्रतानां सर्वासां मुख्या त्वं देवि भामिनि ।  
 आवाह्यारुन्धतीं देवीं पूजयेत् कुसुमैः शुभैः ॥  
 द्विभुजाश्चारुसर्वाङ्गीं सालसूतकमण्डलुं ।  
 प्रतिमां काञ्चनीं कृत्वा नामभिः प्रतिपूजयेत् ॥  
 देववन्द्ये नमः पादौ जानुनी लोकवन्दिते ।  
 कटिं संपूजयेत्तस्या महासती च सर्वदा ॥  
 नाभिं गन्धौरनाभोति ऋषिपत्नीं ततस्तनौ ।  
 जगदार्चीं तथा कण्ठवाह्यं शास्त्रैः नमः सदा ॥  
 हस्तौ तु वरदायै तु मुखं धृत्यै नमोनमः ।  
 अरुन्धतीं तथा पूज्या शिरस्तु कमलप्रिया ॥  
 एवं संपूज्य तान्देवीं गन्धपुष्पे निवेदयेत् १ ।  
 पूजयित्वा सतीन्देवीं ततश्चार्यं निवेदयेत् ॥  
 अरुन्धति महाभागे वसिष्ठप्रियवादिनी ।  
 सोभाग्यं देहि मे देवि धनं पुत्रां च देहि मे ॥

१ गन्धपुष्पांश्चन्दनैरिति पुण्डरीकरे पाठः ।

अर्घ्यमन्त्रः ।

अर्घ्यं दत्त्वा तु भक्त्या वै गृहीतकुसुमाञ्जलिः ।  
 प्रार्थयेत्तां महाभागां लोकवन्द्यां महासतीं ॥  
 पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि सुव्रते ।  
 पौत्रांश्च सर्व्वकामांश्च देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

प्रार्थना मन्त्रः ।

सुवामिन्याऽथ संपूज्या दिवसे दिवसे तथा ।  
 शुभगन्ध्याक्षतेस्तद्वद्दद्यात् सर्व्वेषु भक्तकान् ॥  
 होमांश्चैव तथा कुर्युः समिद्धिषु तिलैः शुभैः ।  
 अष्टोत्तरशतं तद्वह्निनसंख्यामथापि वा ॥  
 मिथुनानि च संपूज्य भूषणाच्छादनादिभिः ।  
 चतुर्विंशतिसंख्याकान् यथा षोडशसख्यया ॥  
 आचार्याय सभार्याय वस्त्राण्याभरणानि च ।  
 ग्रथ्यां सोपस्करां दद्यात् कांस्यपात्रं सदीपकं ॥  
 आदर्शशामरश्चैव धेनुं दद्यात् पयस्विनीं ।  
 दद्यात् भोजयित्वा च स्त्रियः शूर्पान् समोदकान् ॥  
 सोदकान् करकांस्तद्वत्तयोर्वस्त्रं यथाविधि ।  
 पोलिकां छतपूपांश्च पूरिकाश्च विशेषतः ।  
 सोमालिकाश्च दातव्या एकैकं द्विगुणं तथा ॥  
 द्विगुणं भोजनं दायपर्याप्तं ।

दीनानाद्यांश्च संपूज्य स्वयं नक्तं समाचरेत् ।

धर्ममिति शेषः ।

१ प्रार्थयेत्ती महाभागामिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ दीनानांश्च संपूज्य रति पुस्तकान्तरे पाठः ।

अनेनैव विधानेन नाही वा कुरुते व्रतं ॥  
 अवैधव्यं समाप्नोति तथा जन्ममहस्रकं ।  
 पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमन्विता ॥  
 जीवेद्वर्षशतं सायं भर्त्सा सह महासतो ।  
 एवमभ्यर्चयित्वा तु पदं गच्छत्यनामय ॥  
 देवभार्या तथा स्वर्गं ऋषिभार्या तथैव च ।  
 राजभार्या महाभागा सर्वकामपदं व्रतं ॥  
 इति स्कन्दपुराणीकं अरुन्धतीव्रतरं ।

—002—

पुलस्त्य उवाच ।

अशान्तप्रवक्ष्यामि दूर्वात्रिरात्रमुत्तम ।  
 नारीणां सुखसम्पत्तिपुत्रपौत्रप्रदायकं ॥  
 तनुरूहेभ्यः सम्भूता दूर्वा विष्णोरिन्द्रियं पुरा ।  
 तस्यामुपरिविन्मस्त मथितासृतमुत्तम ॥  
 देवदानवगन्धर्वैर्यत्तविद्याधरोरगैः ।  
 तत्र येऽसतकुम्भस्य पेतु निम्नान्दिविन्दव ॥  
 तैरियं स्पृष्टयात्राभूत् दूर्वा तेनात्ररामरा ।  
 वन्द्या पवित्रा देवेशे वन्दितात्वर्चिता तथा ॥  
 शृणु दूर्वात्रिरात्रस्य विधिं कात्स्न्यान सुव्रत ।  
 मामि भाद्रपदे चैव शुक्लपक्षे तयोद्गो ॥  
 त्रिरात्रं समुपोयन्तु यावत् पूर्णा तिथिर्भवेत् ।  
 उभामहेश्वर देव सावित्रीं धर्ममेव च ॥



दूर्वामूले तु संस्थाप्य मण्डपं कारयेत्ततः ।

उमामहेश्वररूपन्तु प्रथमकृष्णाष्टमीव्रते, सावित्रीरूपं पुत्र-  
कामपूर्णिमायां द्रष्टव्यं, धर्मरूपन्तु विष्णुधर्म्मोत्तरात् ।

चतुर्विंशत्युत्थादथतुर्विंशुः सिताम्बरः ।

सर्वभरणवान् श्वेती धर्म्मः कार्थी विराजते ।

दक्षिणे चाक्षमाला च तस्य वामे तु पुस्तकं ॥

दूर्वासिञ्चनमन्त्रः ।

दूर्वासिञ्चामि ते मूलमुदकैरमृतीपमैः ।

अवैधव्यश्च मे देहि दूर्वायै ते नमोममः ॥

दूर्वे ह्यमृतजन्मासि वाग्दत्तासि सुरासुरैः ।

सौभाग्यं सन्ततिश्चैव सर्वकार्यकरौ भव ॥

यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले ।

तथा ममापि सन्तानन्देहि त्वमजरामरे ॥

एवमुच्चार्य सिञ्चेत् भ्रमयस्व प्रदक्षिणं ।

देवतापूजनं कृत्वा पूर्वोक्तविधिना ततः ॥

सुवासिन्यः स्त्रियः पूज्या वंशपात्रैः सवाससैः ।

अनेन विधिना तिष्ठेद्यावन्मैव दिनत्रयं ॥

जागरं तत्र कुर्वीत मृत्युवादित्रनिस्वनैः ।

शान्तिपाठं पुराणञ्च सावित्र्याख्यानमुत्तमं ॥

ततः प्रभाते विमले प्रतिपद्दिग्घ्ने शभे ।

ह्रीं तत्र प्रकुर्वीत तिलाज्यसमिधादिभिः ॥

काण्डात् काण्डान्तु मन्त्रेण सहस्रेण तु संख्यया

वसीर्षारां ततो दद्याद्दत्तक्रोधो विमत्सरः ॥

ब्राह्मणे दक्षिणां दद्याद्विज्ञातं न कारयेत् ।  
 आचार्यश्च तथा पूज्य उमामहेशरूपिणं ॥  
 गावस्तत्रैव दातव्यानीलवर्णा विशेषतः ।  
 अलाभे सर्ववर्णानां सवत्साङ्गा पयस्विनीं ॥  
 ताम्नष्टूर्णीं रौप्यसुरां शृङ्गे कनकसम्भृतां ।  
 घण्टाभरणभूषाञ्च रत्नपुच्छां पयोमुचं ॥  
 ईदृशोन्मास्तथा गाश्च दद्याद्दूर्वात्रिरात्रके ।  
 आचार्यं वेदविद्वांसं हृष्यश्चैव कुटुम्बिनं ॥  
 सर्वज्ञं शास्त्रविद्वांसं आचार्यं तत्र कारयेत् ।  
 आचार्याय सभार्याय परिधानं२ प्रदापयेत् ॥  
 हस्तमात्रा कर्णमात्रा स्त्रीणां भूषणमेव च ।  
 मिथुनानि तथा पूज्य हादशं परिसंख्यया ॥  
 भोजनान्ते प्रदातव्यं भूषणाच्छादनादिकं३ ।  
 शयनं तेषु दातव्यं वंशपात्रं दृढं तथा ॥  
 सौभाग्याष्टकसंबुद्धं स्त्रीणां प्रीतिकरं परं ।  
 दत्त्वा दानानि विप्रैश्चः फलानां पायसानि च ॥  
 भोजयित्वा सुहृत्स्वित्तं सर्वतः स्वजनं तथा ।  
 या नारी समुषोषैश्च व्रतमेतत् पुरातनं ॥  
 दूर्वात्रिरात्रं पवित्रं पुच्छं सन्तानदायकं ।  
 ऐश्वर्यं सुखसौभाग्यं पुत्रसन्तानवृद्धिदं ॥

१ प्रभाते एति पुच्छकान्तरे पाठः ।

२ पदोषानं भूषणञ्च एति पुच्छकान्तरे पाठः ।

३ भोजनं तेषु दातव्यं दातव्यं भूषणादिकमिति पुच्छकान्तरे पाठः ।

मर्त्यलोके चिरन्तिष्ठंस्ततः स्वर्गमवाप्नुयात् ।  
 देवैरानन्दितास्तत्र पित्रभिः सह गोत्रकैः ॥  
 वसन्तिरममाणास्ता यावदाभूतसंप्लवं ।  
 अर्घ्यं दद्यात्ततो रात्रावबन्धव्याः प्रयत्नतः ॥  
 शङ्खे तीर्थं समादाय सपुष्पफलचदनं ।  
 भूमौ जानुश्च विन्यस्य अर्घ्यं दद्यात् प्रयत्नतः ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

अरुन्धतो सती देवी वसिष्ठप्रियवादिनी ।  
 प्रवैधव्यञ्च सौभाग्यं देहि त्वं वरदे सदा ॥

इति पद्मपुराणोक्तं दूर्वात्रिरात्रव्रतं ।

—०१०—

नारद उवाच ।

व्रतानां यत् परं पुण्यं जन्मदुःखक्षयङ्करं ।  
 विष्णोराराधनायात् तद्ददस्व जगद्गुरो ॥

ब्रह्मीवाच ।

गर्भजन्मजरारोग्य दुःख संसारनाशनं ।  
 परितुष्टिकरं विष्णोः शृणुष्व गदतो मम ॥  
 दत्तं समुष्मिभिः शान्तैस्तपोनिष्ठैस्तवापञ्चैः ।  
 समुद्दिश्य हरिं भक्त्या मरीचिप्रमुखैः पुरा ॥  
 यत्ते राजशताख्यं तु व्रतं पुंभिः सुदुष्करं ।

विधानं तस्य देवर्षे फलञ्च सुमहोदयं ॥  
 यन्निरात्रगतं कुर्यात् समुद्दिश्य जनार्दनं ।  
 कुलानां शतमादाय स याति भवनं हरेः ॥  
 नवम्यादिसिते पक्षे नरीमार्गशिरस्य च ।  
 प्रारभेत त्रिरात्राणां सततं विधिवत् व्रती ॥  
 यद्विधानो जितक्रोधो नित्यस्त्रायी क्षमान्वितः ।  
 अभ्यर्चयेत्सदा विष्णुं कर्मणा मनसा गिरा ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रन्तु गतं वानुदिनं जपेत् ।  
 ॐ नमो वासुदेवेति समभ्यर्च्य जनार्दनं ॥  
 असत्यस्तेयपारुष्यपापैश्च सह संकथा ।  
 मधुमांसासवरसान् सदैव परिवर्जयेत् ॥  
 ब्रह्मचर्यरतः शान्तः सर्वभूतहिते रतः ।  
 वासुदेवपरी नित्यं भवेच्च विधिवद्भती ॥  
 अष्टम्यासेकभक्ताशीः दिनत्रयमुपावसेत् ।  
 एकादश्यां शुचिः स्नातो वासुदेवार्चने रतः ॥  
 द्वादश्यां पूजयेद्देवं गन्धमाल्यविलेपनैः ।  
 नैवेद्यधूपदीपाद्यैर्गीतनृत्यैश्च केशवं ॥  
 अनेन विधिना कृत्वा त्रिरात्राणां शतं नरः ।  
 निर्व्यापयेत्सतो भक्त्या विशेषविधिना व्रतं ।  
 संप्राप्ते कार्तिके मासि व्रतमेतदनुत्तमं ॥  
 प्रतिमासं त्रिरात्रहयमिति पञ्चाग्रता मासैः शतं तच्चाधि-  
 मासहययोगाद्यतुर्भिवर्षेरिति कार्तिके समाप्तिः ।

१ अष्टम्यां ब्रह्मभक्ताशीति पुस्तकान्तरं पाठः ।

एवं भोज्य द्विजातिभ्यो दद्याद्दम्नयुगानि च ॥

एवं प्रतिमासविधिना ।

तद्योपवौतकृत्वाणि शृणु तान्यामनानि च २ ।

एवं विप्रान् समभ्यर्च्य गुरुञ्चैव विशेषतः ॥

प्रणम्य शिरसा देव सर्वमुद्यापयेद्व्रतं ।

यथीक्ताद्विगुणं तस्य विप्रे भक्तिमतः फलं ॥

प्रलीयन्ते परे तत्त्वे वासुदेवेऽव्यये व्रतो ।

श्रुत्वाचैतद्व्रतं पुण्यं विमानं तद्विजोत्तमाः ।

सर्वपापैर्विनिर्मुक्ता प्रयान्ति परमाङ्गतिं ॥

इति विष्णु रहस्योक्तं त्रिविक्रमत्रिरात्रव्रतं ।

—०००—

युधिष्ठिर उवाच ।

अनुसूया शरीरे तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।

उत्पन्नाः केन तपसा कीतुं कं मम केशव ॥

अनुसूया सतीनान्तु त्रैलोक्ये विहिता किल ।

दानेन तपसा चैव तीर्थस्नानेन वा ऋवं ॥

श्रेष्ठजाती समुत्पन्ना सर्वलोकनमस्कृता ।

एतन्मे कथयस्वैह अत्रुत्पत्त्या महामते ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

तथा कृतेऽपार्थं महाव्रतं वै

धरा चिरात्सकृज्जाति भद्रं ।

१ कृष्णान्वासनामिषेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ तद्योपवर्तितं पुस्तकान्तरे पाठः ।

तस्य प्रभावात् सुतजातिरूपं  
सतीत्यभावं विविदे त्रिलोकां ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

कस्मिन् काले दिने कस्मिन् स्थाने कस्मिन् सुरीक्ष्म ।  
विधिना केन कर्त्तव्यं जातिः स्थाप्या कथं वद ॥

नारायण उवाच ।

ज्येष्ठे मासि च कर्त्तव्यं त्रयोदश्यान्तु पाण्डव ।  
नियमञ्च यद्दोतव्यमाचार्यानुज्ञया ततः ॥  
कुलैकभक्तं द्वादश्यामुपवासत्रयश्चरेत् ।  
मण्डपं कारयेत्तत्र सपताकं मनोहरं ॥  
तत्र जातिः प्रकर्त्तव्या स्वर्षाद्द्विभवसारतः ।  
रौप्यपुष्पाणि कार्याणि वंशपात्रे निधापयेत् ॥  
तत्र देवास्त्रयः पूज्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।  
सपत्नीकाः शुभैः पुष्पैः फलैश्च विविधैस्तथा ॥  
अत्र विष्णुशिवमूर्त्तिकरणं अगोकत्रिरात्रवहेदित्यं ।  
यवशालितिलाद्यैश्च वंशपात्रं प्रपूरयेत् ।  
देवतात्रितयं पूज्यवंशपात्रे त्रिवस्तकैः १ ॥  
पीतरक्तसितैश्चैव नानापुष्पैः फलैस्तथा ।  
वस्त्रालङ्कारपुष्पैश्च गुरोर्दम्पत्यमर्चयेत् ॥  
पादुकीपानहं शय्याच्छत्रं गौधसु भूषिता ।

१ त्रिवस्तकैरिति पुस्तकान्तरं पाठः ।

तिलतण्डुलमिश्रैश्च यवहोमं प्रकल्पयेत् ॥  
 गुडेषुक्षीरकैर्धान्यैर्लवणेन विरुढकैः ।  
 सप्तधान्यैस्तथा दीपैर्व्यंशपात्रप्रकल्पितैः ॥  
 रत्नान्या कण्ठसूत्रैश्च सुभैः किंशुककेसरैः ।  
 कृतेनानेन भूपालव्रतेन शृणु यत् फलं ।  
 जातिं१ धनपतिं पुत्रानारोग्यं कुलसंस्ततिं ॥  
 सौभाग्यं२ रूपसम्पत्तिं पूजिता सा प्रयच्छति ।  
 इति भविष्योत्तरोक्तं जातित्रिरात्रव्रतं ।

—००@००—

त्रिरात्रोपोषितो३ दद्यात् फाल्गुन्यां भवनं शुभं ।  
 आदित्यलोकमाप्नोति धामव्रतमिदं स्मृतं ॥  
 सूर्योऽत्र देवता ।

इति पद्मपुराणोक्तं धामत्रिरात्रव्रतं ।

—०००—

मार्कण्डेय उवाच ।

अष्टसृक् दिवसं प्राप्य त्रिरात्रोपोषितो नरः ।  
 मार्गशीर्षान्तधारभ्य पूजयेत्तु त्रिविक्रमं ॥  
 त्रिवर्णैः कुसुमैर्द्वैवं त्रिभिः प्रयतमानसः ।  
 त्रिवर्णैः श्वेतपीतरत्नैः ॥

त्रये कुलेपना देया स्त्रिमारं धूपमेव च ।

१ पुत्रानारोग्यं सुखलतः इति पुलकान्तरे पाठः ।

२ चागोम्यमिति पुलकान्तरे पाठः ।

३ त्रिरात्रोपोषितादद्यादिति पाठान्तरं ।

त्रिसारं गुग्गुलु कुटुकश्रीवेष्टिकाः ।  
 वलिं त्रिमधुरं दद्यात् त्रींश्च दोषान्नरीक्षतम् ।  
 यवैस्त्रिलैस्तथा हीमः कर्त्तव्यः सर्षपाश्वितैः ॥  
 दद्यात्त्रिलोहञ्च तथा द्विजेभ्यः  
 ताम्नं सुवर्णं रजतञ्च राजन् ।  
 न केवलं स कुलदं व्रतम्  
 यथेष्टकामाप्तिकरं प्रदिष्टं ॥  
 इति विष्णु धर्मीक्षरीक्तं सुकुलत्रिरात्रव्रतं ।

— ००० —

श्रीकृष्ण उवाच ।

चैत्रे तु क्रमदैर्द्वं त्रिभिः प्रयतमानसः ।  
 त्रिंशत् तत्र नक्तागौ नद्यां स्नात्वाहिजातये ।  
 अजाः पञ्च पयस्विन्यः प्रदद्यात् स सुवर्णकाः ॥  
 न जायते पुनरसौ जीवलोके कदाचन ।  
 एतद्व्रतं प्रीक्तं सर्व्वव्याधिविनाशनं ॥

सूर्य्योऽत्र देवता ।

इति भविष्यीक्षरीक्तं वस्तत्रिरात्रव्रतं ।

— ००० —

श्रीकृष्ण उवाच ।

पार्थ भाद्रपदे मामि शुक्लपक्षे दिनीदये ।  
 तृतीयायां चतुर्थ्याञ्च षड्दया परिवत्सरं ॥



लपवासेन गृह्णीयाद्दत्तं नात्वा तु गोपदं ।  
 स्नात्वा नरोऽथ नारी वा पुण्यपविलेपनैः ॥  
 दध्ना च घृतमिश्रेण मिष्टकैर्घ्नं नमालया ।  
 अभ्यञ्जयेद्गवां ऋक् सपुच्छे चैव भारत ॥  
 दद्याद्गवाङ्गिकं भक्त्या वासः पूर्वापराहयोः ।  
 अनग्निपक्वां मुञ्चोयात् तैलाक्षारविवर्जितं ॥

पूर्वापराहयोः द्वितीया पञ्चम्योः गवां पदेषु माता रुद्राणां  
 दुहित्वा वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः प्रनुवोचं चिकितुषे  
 जनायमागामनागामदितिर्विदष्ट यमावायुयेति ।

अर्घ्यं मन्त्रः ।

गावो ममागतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः ।  
 गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहं ॥

इति गोपार्थनामन्त्रः ।

ब्रजन्तीनां गवां नित्यमायास्तीनां कुरुइह ।  
 पुरेद्वारेऽथ वा गोष्ठे मन्त्रेणानेन भक्तिमान् ॥  
 अर्घ्यं दद्यात्तथाग्रासं तुष्टये पुष्टये गवां ।  
 हृत्थं संपूज्य दत्त्वाऽर्घ्यं ततो गच्छेद्गृहं प्रति ॥  
 पञ्चम्यां क्रीधरहितो भुञ्जोयाद्गोरसन्दधि ।  
 शालिपिष्टं फलं ग्राकं तिलपिष्टं विरूढकं ॥  
 दिनावसाने राजेन्द्र संयतस्तां निशां स्वपेत् ।  
 प्रभाते गोपदं दत्त्वा ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥  
 विप्राय वेदविदुषे यथा शक्त्या हिरस्मयीं ।

क्षमापयेन्नवां नाथ गोविन्दं गङ्गध्वजं ॥  
 तथा गोवर्धनं शैलं कृत्वा गुह्यमयं श्रुतं ।  
 यथाशक्त्या समभ्यर्च्य पुण्यधूपादिभिः पृथक् ।  
 यद्यैवं गोपदं पार्श्वं तथा गोवर्धनं गिरिं ॥  
 दद्याद्भक्त्या द्विजेन्द्राय गोविन्दं प्रीयतामिति ।  
 गोभक्तौ गोव्रतं शीर्षा भक्त्या दत्त्वा च गोप्यदं ॥  
 सौभाग्यं रूपसावर्ण्यं प्राप्नोति विपुलां श्रियं १ ।  
 गोवत्सलाकुलस्यहं गोभक्तिं समवाहूयात् ॥  
 भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान् २ घृतः स्वर्गपुरं व्रजेत् ।  
 दिव्यान् भोगांस्ततो भुक्त्वा पुण्यशेषेण पार्श्विण ॥  
 धनधान्यजनोपेतयासौचुरसकृच्चिमान् ।  
 कुलञ्च निर्धनं लब्ध्वा पुनर्गोभक्तिमान् भवेत् ॥  
 एवं जन्मत्रयं पार्श्वं व्रतस्यास्य प्रभावतः ।  
 ततो गोलोकमासाद्य पुनरावृत्तिवर्जितं ॥  
 तिष्ठते देववद्भूत्वा ३ यावदाचन्द्रतारकं ।  
 दिव्यरूपधरः सन्धी दिव्यालङ्कारभूषितः ॥  
 गन्धर्वगीतवाद्येन सेव्यमानोऽप्यरोगधैः ।  
 दिव्यं युगघृतं स्निग्धा ततोविष्णुपुरं व्रजेत् ॥  
 योगोप्यद्वैतमिदं कुरुते त्रिरात्रं  
 गावश्च पूजयति गौरसभोजनञ्च ।

१ प्राप्नोतिपार्श्वविश्रामिति पुस्तकालये पाठः ।

२ पुण्यं चर्चयाम् इति पुस्तकालये पाठः ।

३ देववद्भूत्वा इति पाठालये ।

गोविन्दमादिपुरुषं प्रणिधाय चित्ते  
लोकं स पुण्यमुपयाति गवां पवित्रं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं गोपदत्रिरात्रव्रतं ।

— ००० —

साधु भक्तोऽसि धर्मज्ञ कालरातिव्रतं मम ।  
शृणु वक्ष्याम्यहस्तेऽद्य कर्त्तव्यं विधिवद्यथा ॥  
मासि चाश्वयुजेऽष्टम्यां शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः ।  
सत्यवाक् स्थिरचित्तात्मा नियमस्थो भवेत्सुधीः ॥  
कृत्वादौ मण्डपं श्रीमान् भूमिभागे १ समे शुभे ।  
चतुरस्रं समं अन्नपताकाध्वजशीभितं ॥  
सूत्रेणसूत्रितं कृत्वा कुण्डं हस्तप्रमाणतः ।  
धेन्वाकृतिममं तत्र कारयेद्द्विधिवच्छुभं ॥  
ततो हरेत्सम्भारान् दर्भाथैव तिलांस्तथा ।  
पालाशैःपिप्पलीशैश्च समिधः सप्तविंशतिं ॥  
गर्गरीः कलशाथैव नवांश्चैवाहरेत् शुभान् ।

गर्गरी मन्यनी ।

सुवर्णपूर्णपात्राणि वैदलानि शुभानि च ।  
नैवेद्यपुष्पतीगार्घ्यं हव्यानि च नवानि तु ॥  
आहरेत् सर्वमेतच्च व्यञ्जनञ्च सुशोभनं ।  
सुरभीणि च पुष्पाणि जातीर्नीलोत्पलानि च ॥  
अन्यानपि पवित्रांश्च फलादीनाहरेद्द्वन्द्वम् १ ।

१ नवभाज इति पुस्तकाकार पाठः ।

१ कृत्वादीनारेद्वयमिति पुस्तकाकार पाठः ।

गन्धानिचैव चित्राणि धूपं गुग्गुलुपूर्वकं ॥  
 प्रणीतान् विष्टरांशेव स्रुवच्च स्रुचमेव च ।  
 एवं सन्भृत्य सन्भारांश्चतुरःसुकुलोद्भवान् ॥  
 अधिवासार्थमाचार्यान् समुद्दिश्य प्रकल्पयेत् ।  
 ये शुद्धा विगतकीधा देवब्राह्मणपूजकाः ।  
 आहासित् सत्कुले जाताः सत्यधीनक्षमान्विताः ।  
 चतुर्भिरोद्दृष्टैर्व्यस्त आचार्यैर्विद्यमस्थितैः ॥  
 समराचोषितैः पूज्य षष्टाहं नक्तभोजनैः ।

एवं पक्षसाध्यव्रतं ।

ततो निगममादाय तत्कृण्डे धनुषाक्ततौ ।  
 होमन्तु कारयेदस्य विप्रैः शाङ्करवंगजैः ॥  
 शाङ्करवंगजाः शैवदीक्षावन्तः १ ।  
 तदभावेन चैवह होमन्तुद्वूमिमिच्छताः २ ॥  
 कारयेत् कुशलान् ज्ञात्वा ३ अव्यङ्गकुलजांस्तथा ।  
 होमाभावे प्राप्तिशैवतस्थानां विधानं ॥  
 गणानामधिपं मातृभूपालं वृषभध्वजं ।  
 आदाविव च संपूज्य ततोहोमं समाचरेत् ॥

मातृभूपालः स्कन्दः ।

जातरूपेण देवेगं सर्वकर्मसुसिद्धये ।

१ शाङ्करेतिविशेषसम्बन्धोपनिमित्तं पुस्तकालये पाठः ।

२ शीघ्रं कुश्यादितिशुद्ध इति पुस्तकालये पाठः ।

३ सत्कुलान्ज्ञात्वा इति पुस्तकालये पाठः ।

आम्नेयं मातृभिः सार्धं स्वरूपेण हरं यजेत् ॥

भूपालः क्षेत्रपालः आम्नेयः कार्तिकः । जातरूपः सुवर्णं  
विनायकरूपं कृष्णचतुर्विंशते । स्कन्दरूपम् कार्तिकेयवष्टौ  
व्रते वेदितव्यं । भातरूपम् विष्णुधर्मोत्तरे ।

जातस्य प्रादुर्भूतस्य रूपङ्गजमुखादि तेन देवेशादीन् पूजयेत् ।

हरस्वरूपेण लिङ्गरूपेण देवेशो गणेशः ।

सुहोति सप्तपालाशानुदिते जुहुयात्तदा ।

पुनश्चास्ते गते भानावाद्यत्समिधोहुनेत् ॥

अर्धरात्रे तिलैः कृष्णै राज्येनाक्तैस्तु भक्तितः ।

अष्टोत्तर शतं यावत् कारयेद्दोममुत्तमं ॥

मन्त्रेणानेन तत्रैव सर्व्वाशुभविनाशनात् ।

वरदेन सुसिद्धेन पुष्टिशीतविधायिना ॥

शौं ह्रीं नमः । कृष्णवाससा सप्तसहस्रकोटिसिंहवाहने  
सहस्रवदने महाबलैऽपराजिते प्रसङ्गिरे सर्व्वसैन्यपरकर्म्मनिर्व्वी-  
सिनि परमन्त्रच्छेदनि सर्व्वसत्त्वोन्नादनि सर्व्वभूतदमनि ।  
सर्व्वदोषास्त्रधयवधय विद्याउच्छेदय निरुक्तय सर्व्वदुष्टान् भक्षय  
भक्षय ज्वालाजिह्विकरालवक्त्रे सर्व्वजन्तून् मयस्फोटय शृङ्खलान्  
क्रोडय क्रोडय प्रत्यङ्गिरे नमोऽस्तु ते स्वाहा ।

होमं कृत्वा बलिन्दग्धाचरुं सर्व्वदिशासु च ।

कृशराज्येन रक्तोत्पयसा योजितेन च ॥

कृशराज्येः सुराचौरैः कृतञ्च सुबलिं दद्यात् ।

जुयात् सप्तदिनञ्चैव सप्तमेऽङ्ग शृणुष्व वै ॥

आहुतौः पञ्च पञ्चवा बलिदशकं हुनेत् ।

समाह बलिहोमे तत्रसप्तमेऽहनि पञ्चपञ्चाशता निवहाव्यस्तमहा-  
व्याहृतौः कृत्वा दशकं जुहुयात् दशपूर्णाहुत्यर्थः पृथक् सङ्ग्राहः ।

चतुर्भिः स कुलीत्पत्रैस्त्रिरेकसप्तशर्वरी ।

उषित्वात्राय नक्तने स्वातथ्यं ह्यर्चनाय वै ॥

सप्तरात्रं त्रिरात्रान्तमेकरात्रं यथा शक्त्युपवासिन बलिहोमी  
कृत्वा पूजां कुर्वीत नक्तने पत्नीधारणीयः ।

पञ्चमे पूजनं वत्स कर्त्तव्यं विधिवत्सदा ।

धर्म्यज्ञोद्भवैः १ विप्रैस्तृतीयान्तत्वतः शृणु ॥

धर्म्यज्ञोद्भवैः श्रवैः ।

दिनानि सप्तममेकं चन्द्रनागरुणा तथा ।

देव्याः परमया भक्त्या जालयेन्मुखमगहलं ॥

नेत्रलेख्यस्य कर्त्तव्या जालनेयं मुखस्य तु ।

इयं चन्द्रनागरुवर्णा पूर्वकृता ॥

प्रतिमा सृष्मथी या तु स्याद्य तां पूजयेत्सदा ।

प्रक्ष्यान्य मन्त्रपूतेन प्रसृज्यामलवाममार ॥

मधुना मधुपर्कन्तु कारयेत् पूजयेत्ततः ॥

ततोऽमृतं पुनर्योज्यं मुखं गात्रञ्च कारयेत् ।

प्रदक्षिणं ततोऽभूयोद्गच्छवत्परिणपत्य च ॥

धर्म्यपालोद्भवेतान्मन्त्रतव्या सुप्तवेन वै ।

१ सर्वयज्ञोद्भवैति पुलकान्तरे पाठः ।

२ असृष्मथीमथालेख्यालेखाभ्यां मन्त्रपूतकं वारि मधुनेति क्वचित् पाठः ।

३ मुखमावभिति पाठान्तः ।

धर्मपालीभक्तस्यनामस्तीर्षं ।

स्तुत्वा च तत्रैव भक्त्या ब्राह्मणान् विधिवत्ततः ।

काञ्चनैरर्चयेद्वत्स समासैर्द्वैर्भ्योजितैः ॥

पुनर्गीतं तथा नृत्यं वाद्यञ्चैव विशेषतः ।

देव्याय पुरतीत्यन्तयद्वादेवन्तु कारयेत् ॥

स्वाल्पमेव कृतं वत्स गृह्णाति भक्तितः सदा ।

सर्व्वस्वञ्चैव मे युक्तं मद्भक्त्या ददाम्यहं ॥

प्रीत्यर्थं मममन्त्रेण शुचिः ज्ञात्वा जितेन्द्रियः ।

दान्याक्षन्त्या समायुक्तां तथाभक्तिं समाचरेत् ॥

न धारयेन्नलङ्कारे यतस्तस्यायमीरितं ।

न चैतं वैनयेत्स्वर्गं नतपोमोक्षमेव च ॥

एवं निष्पादयित्वा तु गृहं गच्छेच्छनैस्ततः ।

गत्वा प्राश्य शुचिर्भूत्वा पञ्चगव्यं मुदान्वितः ॥

अष्टौ चैव कुमारीय अष्टौ च द्विजसत्तमान् ।

होमयेद्विधिवद्द्वैमामुद्दिश्य च मातरं ॥

मातरं मातृ गणानादिवाष्टौ ।

अष्टौचैव द्विजान् भोज्य व्रतस्थान् शिवधार्मिकान् ।

उद्दिश्य शङ्करं देवं तत्पत्नीं च विनायकं ॥

प्रत्येकमष्टौ सप्ताथ होतारश्च विशेषतः ।

ततः क्षमापयेत्पश्चात् प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ॥

एतत्सर्व्वं ससृष्टिं भक्त्या विस्तरतो भवेत् ।

दोनाभ्यक्तपणांश्चैव कारुण्यात्तत्र भोजयेत् ॥

यद्दत्तं वेद विप्रेभ्यो यद्दत्तं ब्रह्मचारिणे ॥

ततोऽतिथिषु१ यद्दत्तं कारुण्याच्चैव तत्तथा ।

तत्सर्व्वमक्षयं दानं वैमूर्त्त्येन विधानतः ॥

नूनञ्चैवेश्वरे दत्तं सत्यमेतत्समंश्रयः ।

अर्हानर्हान् सश्वोज्याः सर्व्वे चैवोत्सवे मम ॥

आगया परया प्राप्ताः२ स्त्रीवालषिकलास्त्रिलं ।

वन्धुभिश्च तत' सार्द्धमुदया परया युतः ।

हुतमुग्यज्ञशेषन्तु भुञ्जीत प्रयतात्मवान् ॥

अकाले कीमुदीं कुर्यात् कृष्णपक्षे च यः सदा ॥

अकालकीमुदी दीपालिकोत्सवं ।

मामि चाश्वयुजेऽष्टम्यामारभेत्पर्व्वणाचरेत् ।

उषित्वा वाथ नक्तेन एकभक्तेन वा पुनः ॥

विहाय पापमङ्घातं स गच्छेत्परमां गतिं ।

पर्वणा पञ्चदश्या, अश्वयुजस्यैव व्रतस्योत्तराङ्गं, अतएव देवकीकार्यः ।

ब्राह्मणाः क्षत्रियाः पार्थ वैश्या वा शूद्रजातयः ।

चरिष्यन्ति व्रतस्येदस्तेऽपि यास्यन्त्यनामयं ॥

एवन्तु विधिवत् कुर्यात् पुत्रवान् सधनी भवेत्३ ॥

नालिङ्गस्यापदोघोराः शत्रुभिर्न च बाध्यते ।४

कालीव्रतमिदं ख्यातं कर्त्तव्यं सत्कुलीह्वयेः ।

१ निश्चयं दत्तं इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

२ आश्वयुजस्यैव इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

३ धर्मतो भवेदिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

४ शत्रुभिश्च वाच्ये इति पुस्तकान्तरे पाठः ।



शान्तिपुष्टिरमाकामैः स्विद्याकामैश्च यत्नतः ।  
रमाकामैर्लक्ष्मीकामैः ।

सिंहायुतमहस्त्रेण उद्यमानेन सञ्चरेत् ।  
त्रिमानेनार्कवर्णेन दिवं गच्छेद्यथाचरेत् ॥  
एतद्धतं तदा त्वं हि मयोक्तं पापनाशनं ।  
भक्त्या च परया वत्स कर्तुमर्हस्यतन्द्रितः ॥  
प्रतिजातिषु मस्वस्थं यः करिष्यति शङ्करं ।  
हीनवर्णेन कुर्वीथ स्यादनेनापकारकः ॥

इति कालिकापुराणीक्तं कालरात्रिव्रतं ।

—o o o o o—

ब्रह्मीवाच ।

शश्विने वाथ माघे वा चैत्रे वा यावणेऽपि च ।  
शुष्णाद्वारभ्य कर्त्तव्यं व्रतं शुक्लावधिं हरिम् ॥  
शुक्लावधिर्भवति शुकपन्नावधिः ।  
एतच्चोक्तमामेष्वेव वक्ष्यमाणं प्रकारेण शुष्णाष्टम्यामारभ्य  
शुक्लाष्टमीं शिवत् कर्त्तव्यं ।

अष्टमीमाश्विनीं शुष्णा मेकभक्तेन कारयेत् ।  
मङ्गलारूपिणीं देवीमथवा रुद्रव्रतिनीम् ॥  
पूजयेन्नवभेदेन गन्धमाल्यनिवेदनैः ॥  
नवभेदेन नवकृत्वो गन्धधर्षणेन ।  
कन्यका भोजयेद्वत्स देवीभक्तांश्च मानवान् ॥

नक्तने नवमी कार्या यावन्न दशमीं क्षिपेत् ।

एकादश्यामुपवसेत् पुनरेष विधिर्भवेत् ॥

पुनरेषविधिरिति यथा कृष्णाष्टम्यां दिनचतुष्कमेकं भक्तनक्ता  
याचितोपवामात्परमपि दिनचतुष्कत्रयं नैशमित्यर्थः ।

याचच्छुक्ताष्टमीं शक्र उपोष्य तु विधानतः ।

दानं हीमो जपः पूजा कन्याभोज्यन्तु प्रत्यहं ॥

कर्त्तव्यं जितरोषेण देव्या भक्तिरतेन च ।

नवधा पशुघातेन महिषाजाविकादिषु ॥

कर्त्तव्यं भूतवैतालै नक्षेवात्मचिकीर्षया ॥

कन्याञ्चलङ्कृतास्तत्र द्विजा देवीपरायणाः ।

नवधापशुघातेन नखगडकरणे न च ॥

भूतवैतालै भूतवैतालार्थं आत्मचिकीर्षया आत्मभोगेच्छया ।

अलङ्कृताः कार्या इति विशेषः ।

नट नर्तन प्रक्षाद्यश्च यथावा मजागरं ।

दानं देयं यथाशक्त्या सर्व्वेषामपि शक्तितः ॥

महाभैरवरूपेण अस्थिमालाधराय च ।

पूजनीया विशेषेण वस्त्रशोभाः पुरादिषु ।

कर्त्तव्याः सर्व्वकामार्थप्रापणाय सुरीक्षितम् ॥

अनेन विधिना शक्र यथेष्ट लभते फलं ॥

१ सप्तदशति पुनकाकारे पाठः ।

२ नखगडकरणेन च इति पुनकाकारे पाठः ।

३ नट नर्तन मुखाद्य इति पुनकाकारे पाठः ।

मङ्गला भैरवी दुर्गा वाराही त्रिदशेश्वरी ।  
 उमा हैमवती कन्या कपाली कैटभेश्वरी ॥  
 काली ब्राह्मी महेशी च कौमारो मधुसूदनी ।  
 वाराही वामवो चर्चा नामान्येतानि वै जपेत् ।  
 पूजयेद्भोजयेत् कन्याः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥  
 वस्तालङ्कारकांस्यादिकरकाः कटिसूत्रकाः ।  
 दातव्या चात्मनः शक्त्या देव्या भक्तेः सुखार्थिभिः ॥  
 अथवा नवरात्रञ्च मग्नपञ्चत्रिकं हि वा ।

एकभक्तेन नक्तेनायाचितोपीपितैः क्रमात् ॥

नवरात्रिकभक्तेन मग्न नक्तेन पञ्चायाचितेन तिस्र उप-  
 वासेनेति क्रमः । अष्टमोमन्ते कृत्वा नवादिगणना । पूर्व-  
 चासमर्थस्यैते पचाः ।

क्षपयेतांश्विने शक्र यावच्छुक्ता तु अष्टमी ।  
 पूजयेन्मङ्गलां तत्र मण्डलं विधिवत्कृते ॥  
 सर्वं सभारसम्यन्ने सर्वं सिद्धिविधायके ।  
 सर्वं कामपदे शक्र सर्वं कामानवाप्नुयात् ॥  
 अर्थकामस्य अर्थन्तु राज्यकामस्य राज्यदं ।  
 आरोग्यं पुत्रद वत्स महापातकनाशनं ॥  
 सर्व्ववर्षेय कर्त्तव्यं पुंस्त्रीवालनपुंसकैः ।  
 सर्व्वदा सर्व्वगा देवी यस्माच्छक्र महाफला ॥  
 अनेन विधिना वत्स स ददाति विचारणा ।  
 सर्व्विषां व्रतयान्तीनां सर्व्व व्रतमहाफलं ॥  
 नवम्याख्यं महापुण्यं तव सम्यक् प्रकाशितं ।

नाख्येयं भक्तिहीनस्य मूर्खस्य हेतुवादिनः ॥  
देयं भक्ताय शान्ताय शिष्यविष्णुरताय च ।  
देवीभक्तः मदाचारः कन्यापूजारतो नरः ॥  
इहैव सर्व्वं कामानि साधयेदविचारणात् ।  
विप्रा यथा च पूज्यानां दानानां काञ्चनं यथा ॥  
भूर्लीकः सर्व्वलीकानां तीर्थानां जाह्नवी तथा ।  
यथाश्वमेधीयज्ञानां मथुरा मुक्तिकाङ्गिणां ॥  
वीणां यथाहिभुक् योऽप्यो देवानामच्युतो यथा ।  
तथा सर्व्वव्रतानान्तु वरोक्तं भोष्पचक्रं ॥  
वसिष्ठभृगुगर्गाद्यैश्चीर्णं कृतयुगादिषु ।  
नभोगरम्बुरीषाद्यैश्चीर्णं त्रेतायुगादिषु ॥  
वीरभद्रादिभिर्विप्रेः शूद्रैरन्यैः कर्त्तव्यं युगे ॥  
दिनानि पञ्च पूज्यानि चोर्णमेतन्महाव्रतं ।  
ब्राह्मणैर्वैद्यैश्चर्य्येण जपहोमक्रियादिभिः ॥  
क्षत्रियैश्च तथा मत्स्यगौचव्रतपरायणैः ।  
नाभयो व्याधयस्तस्य न च शत्रुभयं भवेत् ॥  
संसारपृजिता नित्यं<sup>१</sup> महानेकोपिजायते ।  
यवणात् सर्व्वकार्याणि मिध्यन्ति नात्र संग्रहः ॥<sup>१</sup>

इति देवीपुराणोक्तं मङ्गलाव्रतं ।

—m 0700—

अथ भीष्मपञ्चकव्रतं ।

नारदीयपुराणात् ।

नारद उवाच ।

यदेतदचनं पुण्यं व्रतानां परमं व्रतं ।  
कर्त्तव्यं कार्तिके मासि प्रयत्नाद्भीष्मपञ्चकं ॥  
विधानं तस्य विस्मयं फलञ्च सुरमत्तम ।  
कथयस्व प्रसादान्ने मुनीनां हितकाम्यया ॥

ब्रह्मीवाच ।

प्रवक्ष्यामि महापुण्यं व्रतं व्रतयताम्बर ॥  
भीष्मणैतद्यतः प्रामं व्रत पञ्चदिनात्मकं ।  
सकाशादासुदेवस्य तेनोक्तं भीष्मपञ्चकं ॥  
व्रतस्यास्य गुणान्वक्तुं कः शक्तः केवावाहते ।  
व्रतञ्चैतन्महापुण्यं महापातकनाशनं ॥  
अतो नरैः प्रयत्नेन कर्त्तव्यं भीष्मपञ्चकं ।  
कार्तिकस्यामने पक्षे स्नात्वा सम्यग्व्रतव्रतः ॥  
एकादश्यान्तु गृह्णीयाद्द्वतं पञ्चदिनात्मकं ॥  
प्रातस्नात्वा विधानेन मध्याह्ने च तथाव्रती ।  
नद्यां निर्भरगर्त्ते वा समालभ्यञ्च गोमय ॥  
यवत्रोहितिलैः सम्यक् पितृन् मन्त्रपेयेत् क्रमात् ।  
स्नात्वा मौनं ततः कृत्वा धौतवासो दृढव्रतः ॥

ततः संपूजयेद्देवं सर्वपापहरं हरिं ।  
 ज्ञापयेद्युतं भक्त्या मधुचौरघृतादिभिः ॥  
 तथैवं पञ्चगव्येन मन्त्रचन्दनतारिणा ।  
 चन्दनेन सुगन्धेन कुङ्कुमेनाथ केशवं ॥  
 कर्पूरीशीरमिश्रेण लेपयेद्गण्डध्वजं ।  
 अर्घ्येदुचितैः पुष्पैर्गन्धधूपसमन्वितैः ॥  
 गुग्गुलुं घृतसंयुक्तं दह्नेदक्षयभक्तिमान् १ ।  
 दीपकान्तु दिवारात्रो दद्यात् पञ्चदिनानि तु ॥  
 नैवेद्यं देवदेवस्य परमाद्यं निवेदयेत् ।  
 एवमभ्यर्च्य देवेशं स्तुत्वाच्चैव प्रणम्य च ॥  
 श्रीं नमोभगवते वासुदेवेति जपेदष्टोत्तरं शतं ।  
 जुहुयाच्च घृताभ्यक्तं तिलव्रीहियवं व्रती ॥  
 धडक्षरेण मन्त्रेण स्वाहाकारान्वितेन च ॥  
 श्रीं नमोविष्णवेति धडक्षरोमन्त्रः ।

उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां प्रणम्य गरुडध्वजं ।  
 जपित्वा पूर्ववन्मन्त्रं क्षितिशायी भवेत्तरः ॥  
 सर्वमेतद्विधानन्तु कार्यं पञ्चदिनेष्वपि ।  
 विशोषोक्तं व्रते चास्मिन् यदभ्यूनरं शृणुष्व तत् ॥  
 प्रथमेऽङ्के हरेः पादौ पूजयेत् कमलैर्नरः ।  
 द्वितीये विस्वपत्रेण जानुदेशं समर्चयेत् ॥  
 पूजयेच्च तृतीयेऽङ्के नाभिं भृङ्गारकेण तु ।

१ दह्नेदक्षयभक्तिमानिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

१ धडपुत्रमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

वाण-विल्ब-जयाभिश्च तत स्नात्सौ समर्चयेत् ।  
 ततोऽनुपूजयेच्छीर्षं मालत्या चक्रपाणिनं ॥  
 कार्त्तिक्यां देवदेवस्य भक्त्या तद्गतमानसः ।  
 पूजयेज्जपमन्त्रेण गन्धधूपं निवेदयेत् ॥  
 अर्चयित्वा हृषीकेशमीकादश्यां समाहितः ।  
 त्रिःप्राश्य गोमयं सम्यक् एकादश्यामुपावसेत् ॥  
 गोमूत्रं मन्त्रवद्भयो द्वादश्यां पूजयेद्भृती ।  
 क्षीरक्षैव त्रयोदश्यां चतुर्दश्यां तथा दधि ।  
 संप्राश्य कायशुद्धार्थं लङ्घनीयश्चतुर्द्दिनं १ ॥

प्राशनं, हीममन्त्रेण ।

पञ्चमे तु दिने स्नात्वा विधिवत्पूज्य केशवं ।  
 भोजयेद्वाह्मणान् भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणां ॥  
 तद्योपदेशारमपि पूजयेद्वस्त्रभूषणैः ।  
 ततो नक्तं समशीयात्पञ्चगव्यपरःसरं ॥  
 एवं सम्यक् समाप्यं स्यात् यद्योक्तं व्रतमुत्तमं ।  
 सर्वपापहरं पुण्यं प्रख्यातं भीष्मपञ्चकं ॥  
 जन्मप्रभृति जन्मान्त्यङ्गा पुण्यमवाप्नुयात् ।  
 तत्फलं समवाप्नोति सन्त्यङ्गा भीष्मपञ्चके ॥  
 मद्यपोयः पिवेन्मद्यं जन्मनोभरणान्तिकं ।  
 तङ्गीष्मपञ्चके त्यक्तसम्प्राप्त्यधिकं फलं ॥  
 भविष्योत्तरात् ।

कृष्ण उवाच ।

कार्तिके शुक्लपक्षस्य शृणु धर्मं पुरातनं ।  
 एकादश्यां समारभ्य विज्ञेयं भीष्मपञ्चकं ॥  
 दुष्करं सत्वहीनानामशक्यं बालचेतसां ।  
 पापधीः परिहृत्तव्या ब्रह्मचर्येण निश्चया ॥  
 मद्यं मांसमसत्यञ्च वर्ज्यं येत् पापभाषणं ।  
 शाकाहारेण मुन्यन्वैः कृष्णार्चनपरैर्नरैः ॥  
 स्त्रीभिर्व्याक्रीन कर्त्तव्यं<sup>१</sup> स्वसत्यः पुण्यवर्धनं ।  
 विधवाभिस्तु कर्त्तव्यं पुत्राणां शुभद्वये<sup>२</sup> ॥  
 सर्वकामसमृद्ध्यर्थं मोक्षार्थञ्चैव पाण्डव ।  
 नित्यं स्नानेन दानेन कार्तिकीं यावदेव तु ॥  
 वैश्वदेवस्तु कर्त्तव्यो विष्णुध्यानपरायणैः ।

वैश्वदेवः सर्वदेवताहीमः ताय विष्णुतिभूतित्वेन भावनीयाः ।

या यस्य प्रतिमा कार्या रौद्रवक्रातिभीषणा<sup>३</sup> ।  
 खड्गहस्तातिविक्रता तौ हि दंष्ट्राकरान्निनी ॥  
 तिलप्रस्थोपरि स्थाप्या कृष्णवस्त्रेण वेष्टिता ।  
 रक्तपुष्पाकृतापीडां ज्वलत्काञ्चनकुण्डलां ॥  
 संपूज्य परया भक्त्या धर्मराजस्य नामभिः ।

१ स्त्रीभिर्व्याक्रीन कर्त्तव्यमिति पञ्चकान्तरे पाठः ।

२ विधवाभिस्तु कर्त्तव्यः पुराण शुभद्वये इति पञ्चकान्तरे पाठः ।

३ रौद्रवक्रातिभीषणा इति पञ्चकान्तरे पाठः ।



द्रुमसुधारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः ॥  
 यदन्यजन्मनि कृतमिह जन्मनि वा पुन ।  
 पापं प्रथममायातु तत्रपादप्रसादतः ।  
 एवं संपूज्य विधिवत् प्रतिमाञ्च सकाञ्चनां ॥

सकाञ्चना सुवर्णदक्षिणायुक्ता ।

वाचकाय प्रदातव्या धर्मीमे प्रीयतामिति ॥  
 तद्वच्च देवदेवस्य कृष्णस्याङ्गिष्ठकारिणः ॥

तद्ददित्ति हरिप्रतिमा देया ।

कृत्वा पूजां यथा शक्या विप्राणां वेदवेदिनां ।  
 दद्याद्द्विरस्यं गाञ्चैव कृष्णो मे प्रीयतामिति ॥  
 अन्धेषामपि दातव्यं सत्कृत्य वसुवाञ्छितं ।  
 कृतकृत्यः स्थितोभूत्वा विरक्तः संयतोभवेत् ॥  
 शान्तचेता निराबाधः परम्यदमवाप्नुयात् ।  
 नीलोत्पलदलश्यामसतुर्दंष्ट्रसतुर्भुजः ॥  
 अष्टपादेकनयनः शङ्खकर्णो महास्वनः ।  
 जटो द्विजिह्वस्ताम्रास्यो मृगराजतनुच्छदः ॥  
 चिन्तनीयो महादेवो यस्य रूपं न विद्यते ।

व्रतदेवताया महाविष्णोरिदं रूपं चिन्त्यं पूजा देया च मृ ग-  
 राजतनुच्छदः सिंहत्वक् ।

इदं भीष्मिण कथितं शरतस्यगतेन मे ।  
 तदेतत्ते मया ख्यातं दुष्करं भीष्मपञ्चकं ॥  
 व्रतं तद्भ्राज्यादूर्ध्वं प्रवरं भीष्मपञ्चकं ।

यस्तस्मिंस्तोषयेन्नृणां तस्मै मुक्तिप्रदोऽप्युतः ॥  
 ब्रह्मचारी गृहस्थोवा वानप्रस्थोऽथवा यतिः ।  
 प्राप्नोति वैष्णवं स्थानं तत् कृत्वा भीष्मपञ्चकं ।  
 ब्रह्महा मद्यपस्तेषु गुरुगामी सदावृती ।  
 मुच्यते पातकात् सम्यक् कृतैकं भीष्मपञ्चकं ॥  
 अथास्मिंस्तोषितोविष्णुर्नृणां मुक्तिप्रदोभवेत् ।  
 श्रुत्वैतत् पठामानस्तु पवित्रं भीष्मपञ्चकम् ॥  
 मुच्यते पातकान्मर्त्यैः पाठकोविष्णुलोकभाक् ।  
 धन्यं पुण्यं पापहरं युधिष्ठिर महाव्रतं ॥  
 यस्त्रीर्त्वा ब्रह्महा गोघ्नः सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

गङ्गीष्मपञ्चकमिति प्रथितं पृथिव्या  
 मेकादगीप्रभृति पञ्चदशीनिरुद्धं ।  
 मन्थनभोजनपरस्य नरस्य तस्मि  
 त्रिष्टं फलं दिपति पाण्डवगार्ङ्गधन्वा ॥

इति भीष्मपञ्चकव्रतं ।

— ००० —

ध्यास उवाच ।

यदजर्माहानवा पूर्वं चार्चयित्वा जनार्दनं ।  
 तां योगनिद्रामसृजद्देवीं रत्नार्चमात्मनः ॥  
 एकांशतोभगवती सिद्धिमिकां तदेव तु ।  
 एतन्पक्षे तु संपञ्चा कार्तिके केशवाज्ञया ॥

चतुर्थ्यामथवाष्टम्यां नवम्यां वा सुसिद्धिदा ।  
 चतुर्दश्यामथो स्त्रीभिः सुस्नाताभिर्यथाक्रमं ॥  
 गृहाहाद्ये तु यत्र स्यादेकान्ते तु फलद्रुमः ।  
 तत्तथा पुण्यधूपान्नसम्पदा पूजयेच्च तां ॥  
 एका पुत्रवती नारी मनोवाक्कायसंयुता ।  
 सर्वोपकरणैयुक्तं गृहीत्वा ग्राममुत्तमं ॥  
 ततोददाति श्वेनाय सुप्रीता प्रीतिकामिनी ॥  
 इममासनवस्त्राद्यं भगवत्यै निविदय ।  
 इत्युक्त्वा स्वगृहं याति ततः पूर्णामनोरथाः ॥  
 कृते युगे प्रसिद्धीःयं दामवकृतको यथा ।  
 दामइव भृतक इव प्रेष्यत्वेन कृते युगे प्रसिद्धइत्यर्थः ।  
 अथोपरिवरो राजा ऋतुपर्णः पुरेस्वके ।  
 निधाय प्रददौ नेतुं श्वेनाय स्नां प्रियां प्रति ॥  
 युगेष्वन्येषु मन्त्रान्तु जपेत्वनलइत्यपि ।  
 जहाति भूमौ संप्राप्ताः प्राङ्मुखी याति वैश्व च ॥  
 आमन्त्रणन्तु यस्यास्ति पक्षिणा निर्मितं पुरा ।  
 स एव पक्षी गृह्णाति मग्नसमिति निश्वयः ॥  
 आदौ गृहे ततो भुङ्क्ते सा नारी सुसमाहिता ।  
 पश्चात् गृहपतिर्भुङ्क्ते समृत्यज्जातिवान्श्वयः ॥  
 गृहदेवो तु तेनैव विधिना पूजयेत् पतिं ॥  
 श्वेनपासो न देयश्च न च वृक्षं समाश्रये ।

किन्तु गुप्तं गृहेत्वार्था पूजयीत पतिव्रता ॥

युगेष्वन्येषु सद्भावो दम्पत्योर्नी भवेद्यादा ।

तदा स्वकुलधर्मन्तु तावन्मात्रं करोति सः ॥

याश्चेनयापत्युरनुज्ञां विना तु श्येनया गृह एव देवी पूज-  
यितव्येत्यर्थः ।

इत्यादित्य पुराणोक्तं श्येनग्रामनविधिः ।

—000—

ईश्वर उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि व्रतानान्तु यथाक्रमं ।

अष्टम्यान्तु चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोस्तथा ॥

उपोष्य संयतो मूर्त्वा त्रिविधेनान्तरात्मना ।

ततोपरारक्षे शुचिना विशेषात् पूजयेच्छिवं ॥

पूर्वोक्ते न विधानेन जपहोमादिमाचरेत् ।

पूजयेत्परया भक्त्या गुरुं वा साधनादिकैः ॥

ततस्तु पञ्चगव्यैश्च प्राशयेच्छुक्लकचयं ।

समानद्योपसंस्पृश्य हविष्याग्नेन वर्त्तनं ॥

अनेन विधिना यत्राद्यावज्जीवं व्रतं चरेत् ।

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥

वसन्ति शिवलोकेषु शिवव्रतप्रभावतः ।

एतच्छिवव्रतं नाम व्रतानामुत्तमोत्तमं ॥

इति कालोत्तरोक्तं शिवव्रतं ।

—000—

मैत्रेय उवाच ।

कार्तिकः खलु मासो वै सर्वदेवमयोमहान् ।  
 कृष्णपक्षे विशेषेण तत्र पञ्चदिनानि तु ॥  
 पुण्यानि तेषु यद्दत्तमक्षयं सर्वकामिकं ।  
 एकादश्यां परैर्दत्तं दीपं प्रज्वाल्य मृषिकां ॥  
 मानुष्यं दुर्लभं पाप्य पराङ्गतिमवाप सा ।  
 सुखकोऽपि चतुर्दश्यां पूजयित्वा जनार्दनं ॥  
 निर्भक्तिः परसंगत्या विष्णुलोकं जगाम सः ।  
 अथाकादश्यां दश्यां दीपान् दत्त्वा परैः कृतान् ।  
 वेश्या लीलावती भूत्वा जगाम स्वर्गमक्षयं ।  
 कोपः कथिदमावास्यां पूजां दृष्ट्वा च शार्ङ्गिणः ॥  
 सुहृद्यस्वजापालो राजराजेश्वरोभवेत् ।  
 तस्याद्दीपाः प्रदातव्या राजावस्तमितेरवी ॥  
 यज्ञेषु सर्वगोष्ठेषु चैत्येभ्यायतनेषु च ।  
 देवानाञ्चैव रथ्यासु श्मशानेषु सरःसु च ।  
 ब्रह्माग्निना शुभार्थाय यदा पञ्चदिनानि तु ॥  
 वापिनः पितरो ये च क्षुप्तपिण्डोदकक्रियाः ।  
 चतुर्दश्याममावश्यां पिण्डदस्याप्नुवन्ति ते ॥  
 कर्मतिमितिशेषः ।  
 तत्र त्रीः पूजनीया तु मनुष्याणां प्रशस्ततः ॥  
 श्रीकामैस्तत्रशर्वथ्यां क्रीडितव्यं प्रशस्ततः ।  
 बन्धुभिः सहितैः पद्मना नृत्यगौतमजागरैः ॥

यदि हर्षं प्रयातीह तस्य संवत्सरं जयं ।  
 द्युते तु क्रीडिते हानी हानिः स्याद्विजये भूवं ॥  
 सुखप्रोतिसुलाभः स्याद्वत्सरं मनुजस्य तु ।  
 गौर्यां त्रिता पुरा शम्भुर्नम्नोद्युतैर्विसर्जितः ॥  
 तेनाभी शङ्करो दुःखी मर्षदोमा सुखान्विता ।  
 त्रियया साङ्गं जगद्यानिः श्रुते विष्णुः सुखान्वितः ।  
 तस्यां रात्रौ जनानाम्नु पत्नीः सुखसुमिका(१) ॥  
 नन्दा सुनन्दा सुरभी सुश्रीका सुमना तथा ।  
 निर्गता मथ्यमानाभ्यौ उषः ज्ञानं शुभप्रदं ॥  
 कामधेनीरात्रिर्भावभावितस्वदेहात् उषः प्रगस्त इत्यर्थः ।  
 तत्र स्नात्वा समभ्यर्च्य धेनुं पूज्य प्रयत्नतः(२) ।  
 गोदानफलमाप्नोति नरो विगतकल्मषः ॥  
 एकादश्यामुपोष्याथ नरो दिनचतुष्टयं ।  
 घृतेन स्नापयेद्विष्णुं गन्धेन पयसापि वा ॥  
 नक्ताशी गोरसैर्हव्यैः पूजयेन्मधुसूदनं ।  
 गन्धपुष्पैः सुनैवेद्यैर्वस्त्रालङ्कारकुण्डलैः ॥  
 शङ्खानि चक्रोद्भृतवाहुविशोः  
 गदाश्वस्तस्य तु शार्ङ्गपाणेः ।  
 चार्घ्यं प्रयच्छामि जनार्दनस्य  
 त्रियया युतस्यापि धराधरस्य ॥

( १ ) सुख सुमिका इति क्वचित् पाठः ।

( २ ) धेनुः पक्ष प्रयत्नत इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

त्रियःपतिं श्रीधरमेव कामान्  
 त्रियः सखायं हि त्रियोनुमूलं ।  
 नामान्यहं श्रीधरश्रीनिवासं  
 समर्चितो मे प्रददातु कामान् ॥

एवं पूज्य विधानेन त्रियायुक्तन्तु नामभिः ।  
 पृथक् जागरणं कुर्यात् त्रिया सार्धं जगत्पतेः ॥  
 या देवी भार्गवं तेजः कुलं सर्वत्र पूजिता ।  
 आयातु सा गृहे नन्दा सुप्रीता वरदा मम ॥  
 याङ्गरसं सदा देवी सुनन्दा प्रत्युपस्थिता ।  
 आयातु मे गृहे सा तु सुप्रीता वरदा सती ॥  
 सुरभी या भरद्वाजं कामधेनुः सुकामदा ।  
 सदा भजेत् गृहं सात्र ममायातु सुरार्चिता ॥  
 सुशौला कश्यपं या तु भजे सर्वत्र कामदा ।  
 सा मे भवतु सुप्रीता कामधेनुर्गृहे सदा ॥  
 सुमना या वसिष्ठन्तु संप्राप्य सुमुदे शुभा ।  
 सा मे गृहं सदायातु कामदा सुरपूजिता ॥  
 एवं पूज्य विधानेन प्रभाते विमले शुभे(१) ।  
 शुकाम्बरधरःस्नातः शुकामाख्यानलेपनः ॥  
 कृतनित्यक्रियो ह्यष्टः कुण्डलाङ्गदभूषितः ।  
 प्रातःप्रतिपदि प्रीतः कामधेनुप्रदो भवेत् ॥

कामधेनुस्तु वङ्गपुराणीता विज्ञेया सा च दामखण्डे एव  
 द्रष्टव्या ॥

(१) शुभमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

वर्यं हरेः सर्वमिदं पवित्रं  
 तत्रापि वर्यां शरदेव तासां(१) ।  
 तस्मिञ्कुभः कार्तिकानाममास  
 स्तत्रापि पुण्यो हि वभूव दर्शः ॥  
 यस्यां हरोदैत्यभयाहिसुक्तो  
 उरखलं प्राप्य सुखेन शिते ।  
 लक्ष्म्यां पुराद्यापि विनिर्मिता वै  
 कामप्रदा धेनव एव यत्र ॥  
 वह्निर्भस्त्रे यत्र दिने समस्ताः  
 सुधेनवा भूमितले भ्रमन्ति ।  
 गृहेन यस्मिन् कथयन्ति लोला  
 हानिद्यस्तत्र च सत्यमेतत् ॥  
 तस्मात्वमत्रैव च कामधेनुं  
 दद्याः समुद्दिश्य तु केभवंतु ।  
 विप्राय वै सर्वगुणाय यत्र  
 कृत्वा व्रतं कृत्स्नमतो हरेस्तु ॥  
 सप्तापरान् सप्तावरानात्मानञ्चैव मानवः ।  
 सप्तजन्मकृतात्पापात् मोक्षयत्यवनीपते ॥  
 पदे पदेऽष्टमेधेनव फलं प्राप्नोति मानवः ।  
 दानानामेव षष्ठीं चामुत्तमं परिकीर्तितम् ॥  
 सर्वकामप्रदं धन्यं पापघ्नं सर्वदं शुभम् ।

(१) वर्यां हरेः सर्वमिदं पवित्रं तत्रापि वर्यां शरदेव तासांमिति पाठान्तरम् ।



सर्वेषामेव पापानां पापानां(१) महतामपि ॥  
 प्रायश्चित्तमिदं शस्तं कथितं ब्रह्मणा नृप ।  
 ब्रह्मविद्वत्त्रयशूद्राणां कर्त्तव्यञ्च व्रतं नृप ॥  
 सर्वकाम फलार्थाय कामधेनुव्रतं सतां ।  
 व्रतान्ते(२) तिलहोमश्च कामधेनीः प्रयत्नतः ॥

इति बङ्गपुराणोक्तं कामधेनुव्रतं ।

— ०००(१०००) —

सनत्कुमार उवाच ।

अमावास्यान्तु देवाय कार्तिके मासि केशवं ।  
 अभयं प्राप्य सुप्तास्तु सुखाक्षीरोद(३) सानुषु ॥  
 लक्ष्मीर्देव्यभयान्मक्ता सुखं सुप्ता भुजोदरे ।  
 चतुर्भुजस्य हस्तान्ते ब्रह्मा सुप्तस्त पङ्कजे ॥  
 अतोऽर्थं विधिवत् कार्या मनुष्यैः सुखसुप्तिका ।  
 दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते वासातुरान् जनान् ॥  
 प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा ततः क्रमात् ।  
 दौपहन्नाश्च दातव्याः शक्त्या देवगृहेषु च ॥  
 चतुष्यधे श्मशानेषु नदोपर्वतवेश्मसु ।  
 हृत्तमूलेषु गोष्ठेषु चत्वरेषु गुहासु च ॥

( १ ) आतापामिति पाठान्तरं ।

( २ ) ब्रह्मणो न कथितं पाठः ।

( ३ ) शौचेति पाठान्तरं ।

वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्याः क्रयविक्रयभूमयः ।  
 दीपमालापरिचिन्ते प्रदेशे तदनन्तरं ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वादौ विभज्य च वुभुक्षितान् ।  
 अलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रीपशोभिना ॥  
 स्त्रिंशद्भिर्गणैः विदग्धैश्च वान्धवैर्बिभृतैः (१) सह ।  
 शङ्करस्तु पुरा द्यूतं ससर्जं सुमनोहरं ॥  
 कार्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि सत्यवत् ।  
 जितश्च शङ्करस्तत्र जयं लेभे च पार्ष्वतौ ॥  
 अतोऽर्थं शङ्करो दुःखी उमा नित्यं सुखीयता ।  
 तस्माद्द्यूतं प्रवर्त्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः ॥  
 तस्मिन् भवेज्जयोयस्य (२) तस्य संवत्सरं शुभं ।  
 पराजये विरुद्धस्तु लब्धनाशस्ततो भवेत् ॥  
 श्योतव्यं गीतवाद्यादि स्वमुल्लसैः स्वलङ्कृतैः ।  
 विशेषवच्च भोक्तव्यं प्रशस्तैर्वाग्धवैः सह ॥  
 तस्यां निशायां कर्त्तव्यं शय्यास्थानं (३) सुशोभनं ॥  
 गन्धपुष्पैस्तथा वस्त्रै रत्नैश्चात्थैरलङ्कृतं ।  
 दीपमालापरिचिन्तं तथा धूपेन धूपितं ॥  
 दयिताभिश्च सहितैर्नया सा च भवेत्त्रिणा । ,  
 नवैर्वस्त्रैश्च संपूज्य द्विजसम्बन्धिवान्श्वान् ॥  
 इत्यादित्यपुराणोक्तं सुखसुप्तिव्रतं ।

( १ ) लिखितै रिति पुलकान्तरे पाठः ।

( २ ) तस्मिन् द्यूते जयो पश्यति पाठान्तरं ।

( ३ ) शय्यास्थानमिति पाठान्तरं ।

अथ कौमुदीमहोत्सवः ।

पद्मपुराणे ।

कार्तिके मास्यमावास्या तस्यां दीपपदीपनं ।  
 गान्वायां ब्रह्मणः कुर्यात् स गच्छेत्परमं पदं ॥  
 प्रतिपदि ब्राह्मण्यस्य गुडमिश्रैः सदीपकैः ।  
 वामोभिरहृतैः पूज्या गच्छेद्द्वै ब्रह्मणः पुरं ॥  
 गन्धैः पुष्पैर्नवैर्वस्त्रैः सम्मानं भूषयेत्तु यः ।  
 तस्यां प्रतिपदा या तु स गच्छेद्ब्रह्मणः पदं ॥  
 मन्त्रापुण्या तिश्रिरियं बलिराम्यप्रवर्त्तिनी ।  
 ब्रह्मणस्तु प्रिया नित्यं बलेर्या परिकौर्त्तिता ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेत् योऽस्यामात्मानञ्च विशेषतः ।  
 स याति परमं स्थानं विष्णोरमिततेजसः ॥  
 चैत्रे मासि महावाहो पुण्या प्रतिपदा वरा ।  
 तत्र यश्च तिलांसृष्ट्वा स्नानं कुर्यान्नरोत्तमः ॥  
 न तस्य दुरितं किञ्चिन्नाधयो व्याधयोनृप ।  
 भवन्ति कुरुशादूर्ल तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥  
 दिव्यनीराजनं तदहत् सर्व्वरोग प्रणाशनं ।  
 योमहृथादि यत्किञ्चित्कृत्स्नार्द्धं भूषयेन्नृप ॥  
 तैलवस्त्रादिभिः सर्व्वान्तीरणाधस्ततो नयेत् ।  
 ब्राह्मणानां ततोर्भोज्यं कुर्यात् कुरुकुलोद्दह ॥  
 तिस्र एताः पुरा प्रोक्ताः तिथयः कुरुनन्दन ।  
 कार्तिकाश्वयुजे मासि चैत्रे वापि तथा नृप ॥

स्नानं दानं शतशुणं कार्तिकायां तथा नृप ।  
वलिराज्येषु शुभदा पांशुनाशुभनाशनी ॥

वामनपुराणे ।

वलिनं प्रति त्रिविक्रम उवाच ।

तथा यदुद्भवं पुण्यं हृत्ते शक्र महीश्वरे ।  
वीरप्रतिपदा नाम तव भावो महोत्सवः ।  
तत्र त्वां नरशार्दूल हृष्टाः पुष्टाः स्वलङ्घिताः ॥  
पुष्पधूपप्रदानेन अर्चयिष्यन्ति गत्नतः ।  
ततोत्सवो मुख्यतमो भविष्यति दिवानिशं ॥

यथैव राज्ये भवतस्तु माम्प्रतं  
तथैव भाविष्यति कौमुदी च ।

भविष्योत्तरात् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

पुरा वामनरूपेण प्रार्थयित्वा धरामिमां ।  
वलिराज्ये हरिः पूर्वं क्रीतवान् विक्रमैस्त्रिभिः ॥  
इन्द्राय दत्तवान् राज्यं वलिनं पातालवासिनं ।  
कृत्वा दैत्यपतेर्दत्तमहोरात्रतयं नृप ॥  
एकमेवार्थभोगार्थं वलिराज्यति चिञ्जितं ।  
मरुहस्यं तद्वेत्तन्ने कथयामि नरोत्तम ॥  
कार्तिके कृष्णपक्षस्य पञ्चदश्यां निगागमे ।  
यथेष्टचेष्ट दैत्यानां राज्यस्तेषां महातले ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

विशेषेण हृषीकेश कौमुदीं ब्रूहि मे प्रभो ।  
 किमर्थं दीयते दानं तस्यां का देवता भवेत् ॥  
 किञ्च तत्र भवेद्देयं केभ्यो देयं जनार्दन ।  
 प्रहर्षः कौशल निर्दिष्टः क्रोडा कात्र प्रकीर्त्तिता ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

कार्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्दश्यां दिनीदये ।  
 अथश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ॥  
 अपामार्गान् पल्लवान् वा भ्रामयेच्छिरसोपरि ।  
 शीतलोष्णसमायुक्त सकण्ठकदलान्वित ॥  
 ह्यर पापमपामार्गं भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ।

ब्राह्मण मन्त्रः ।

पल्लवान् क्षीरद्रुमाणां ।

ततश्च तर्पणं कार्यं धर्मेराजस्य नामभिः ।  
 यमाय धर्मेराजाय सत्यवे चान्तकाय च ॥  
 वेवस्वताय कालाय सर्व्व भूतत्रयाय च ।  
 औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ॥  
 वृकांद्राय चित्राय चित्रगुमाय वै नमः ।  
 नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य देवता ॥  
 ततः प्रदीपममये दीपान् दद्यान्मनोरमान् ।  
 ब्रह्मविष्णुशिववादीनां भवनेषु मठेषु च ॥

कूटागारेषु चैत्येषु सभासु च नदीषु च ।  
 प्राकारोद्यानवापीषु प्रतीलीनिस्कुटेषु च ॥  
 सिद्धार्हवृद्ध चामुण्डाभैरवायतनेषु च ।  
 मन्दरेषु विविक्तेषु हस्तिशालासु चैव हि ॥  
 एवं प्रभातसमये ह्यमावास्यां नराधिप ।  
 स्नात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या संपूज्याथ प्रणम्य च ॥  
 कृत्वा तु पार्वणश्रावणद्वितीयादिभिः ।  
 भोज्यैर्नानाविधैर्विप्रान् भोजयित्वा क्षमापयेत् ॥  
 ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृपः ।  
 स्वस्वराज्यं बल्लिणीं यथेष्टं चिष्टतामिति ॥  
 लोकथापि पुरा हृष्टः सुधाधवलितार्जरे ।  
 वृक्षचन्दनमालाभिस्वार्चिते च गृहे गृहे ॥  
 द्यूतपानरतोद्विक्तनरनारीमनीहरे ।  
 नृत्यवादितमन्त्रमंगलमालितदीपके ॥  
 अन्योन्यप्रीतिसंहृष्टदन्ततालनके जने ।  
 ताम्बूलहृष्टवदने कङ्कमत्तीदचर्चिते ॥  
 दुकूलपट्टनेपथ्यस्वर्णमाणिक्यभूषणे ।  
 अद्भुतोद्भूतशृङ्गारप्रदर्शितकृतहृले ॥  
 युवतीजनसङ्कीर्णं वस्त्रोज्वलविहारिणि ।  
 दीपमालाकुले रम्ये विध्वस्तध्वास्तवभने ॥  
 प्रदीपरहिते शस्ते दीपादिरहिते शुभे ।  
 यात्राविहारमञ्जारजयजीविति वादिभिः ॥

क्षुद्रोपसर्गं रहिते चौरजायाभयोद्धृते ।  
 मित्रस्वजनसम्बन्धिसुहृत्प्रेमाभिरञ्जिते (१) ॥  
 ततोऽर्धरात्रसमये स्वयं राजा व्रजेत्पुरं ।  
 अवलोकयितूरम्यं पद्मानमेव शनैः शनैः ॥  
 महता तूर्यघोषेण ज्वलद्भिर्हस्तदीपकैः ।  
 हर्म्यशीभान्तु संपश्यन् चतुरक्षैः स्वकेनरैः ॥  
 संदृष्ट्वा महदाश्चर्यं चिन्तयित्वात्मनः शुभं ।  
 वलिराज्यपमोदञ्च ततः स्वगृहमाव्रजेत् ॥  
 एवं गते निशीथे तु जने निद्रान्बलोचने ।  
 तावन्न नरमारोभिः सूर्य्यडिण्डिमचन्दनैः ॥  
 निष्क्राम्यते प्रहृष्टाभिरलक्ष्मीः स्वगृहाङ्गणात् ।  
 ततः प्रवुञ्जे (२) सकले जने जातमहोत्सवे ॥  
 मान्यदीपकहस्ते च स्नेहनिर्भरवत्सले ।  
 वेश्या विलासिनी स्वार्थं स्वस्तिमङ्गलचारिणी ॥  
 गृह्णात् गृहं व्रजन्ती च पादाभ्यङ्गप्रदायिनि ।  
 पिष्टकोद्वर्तनपरे गुरुशुश्रूषणा कुले ॥  
 द्विजाभिवादनपरे सुखरात्रादिवादिनि ।  
 सुवासिनीभ्यो दाने च दीयमाने यदृच्छया ॥  
 राजा प्रभातसमये यथार्हं पूजयेज्जनं ।  
 सद्भावेनैव सन्तोष्या देवाः सत्पुरुषा द्विजाः ॥  
 हृत्तरेवाक्षपानेन वाक्प्रदानेन पण्डिताः ॥

(१) प्रथमि रञ्जिते इति पाठान्तरं ।

(२) मसुन्न इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

वस्त्रैस्ताम्बूलदानैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः ।  
 भक्ष्यैरुच्चावचैर्भीज्यैरन्तःपुरविलासिनी ॥  
 ग्रामैर्विषय(१) दानैश्च पुष्पकर्पूरकुङ्कुमैः ।  
 भक्ष्यैरुच्चावचैर्भीज्यै रन्तःपुरविलासिनी ॥  
 ग्रामैर्विषमदानैश्च सामन्तनृपतीन् धनैः ।  
 पदातिजनसंलम्बान् ग्रैवेयैः काण्ठकैः शुभैः ॥  
 सनामाङ्गैः स्वयं राजा तोषयेत् स्वजनान् पृथक् ।  
 यथाहं तोषयित्वा तु ततो मज्जान् भटान् नटान् ॥  
 वृषभान् महिषांचैव बुध्यमानान् परैः सह ।  
 गजानश्वांस्य घोषांश्च पदातीन् समलंकितान् ॥  
 मञ्चारूढः स्वयं पश्येन्नटनर्तनचारणान्(२) ।  
 क्रुधापथेष्वासयेच्च गोमहिष्यादिकं ततः ॥  
 वृषान् वृषांपयेद्गोभिरुक्तिप्रत्युक्तिवादितान् ।  
 ततोऽपराहसमये पूर्वस्यां दिशि भारत ॥  
 मार्गपालीं प्रवप्नोयाद्दुर्गं स्तम्भे च पादपे ।  
 कुशकाशमयीं दिव्यां लम्बकैर्बहुभिर्नृप ॥  
 दर्शयित्वा(३) गजानश्चान् सायमस्वस्तले नयेत् ।  
 गावो वृषाः समहिषा मण्डिता(४) घण्टिकीत्कटाः ॥

(१) वृषभ इति पुलकान्तरे पाठः ।

(२) वारङ्गानिति पुलकान्तर पाठः ।

(३) दीक्षयित्वा इति पुलकान्तरे पाठः ।

(४) मन्तरीघण्टिकीत्कटा इति पुलकान्तरे पाठः ।



कृते होमे द्विजेन्द्रैश्च वक्षीयाभ्यर्गपालिकान् ।  
दुर्गामन्त्रेण होमस्तु सर्व्वं लोकसुखप्रदः ॥  
घृतेनाष्टोत्तरशतं ।

नमस्कारं ततः कुर्यात् मन्त्रेषामेन सुव्रत ।  
भार्गपालि नमस्तेऽस्तु सर्व्वं लोकसुखप्रदे ॥  
विषयेः पुत्रदाराद्यैः पुनरेहि व्रतस्य मे ।  
राष्ट्रभोग्येन वै राजा सहस्रेण शतेन वा ॥  
स्वशक्त्यापेक्षया वापि गृह्णीयात् भ्याम्यभोजनैः ।  
मातुःकुलं पित्रकुलं वालांश्च सह वन्धुभिः ॥  
सन्तारयेत् ससकलं भार्गपालीं ददाति यः ॥

यद्योत्तरे दानफलाधिक्यार्थं शतसहस्रायुतलक्षभोजनान्ये-  
तानि प्रतिज्ञया भार्गपालीं स्वीकृत्य सर्व्वभ्यश्च तुष्टार्थं यो ददाति  
तस्येदं फलं ।

ग्रामराष्ट्रशब्दावयुतलक्षोपलक्षणी ।

नीराजनश्च तत्रैव कार्य्यं राष्ट्रजयप्रदं ।  
भार्गपालीतले नेत्यं यान्ति गावो गजा हृषाः ॥  
राजानो राजपुत्राश्च ब्राह्मणाः शूद्रजातयः ।  
भार्गपालीं समुलङ्घ्य नीरुजः स्युः(१) सुखान्विताः ॥  
कृत्वैतत्सर्व्वमेवेह रात्री दैत्यपतेर्बलीः ।  
पूजां कृत्वा नृपः साक्षाद्भूमौ मण्डलके व्रते ॥  
बलिमाप्तिस्थ्य दैत्येन्द्रं वर्षकैः पञ्चरङ्गकैः ।

(१) निरुजः स्नात् पृथ्वीं पदा इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

सर्वाभरणसंपूर्णं विख्यावत्या सहासिनं ॥  
 कृष्णाण्डश्च जयोद्गीम उरुदानवसंभृतं ।  
 संपूर्णं हृष्टवदनं किरीटोत्कटकण्डलं ॥  
 द्विभुजं दैत्यराजानं कारयित्वा नृपः स्वयं ।  
 गृह्णमध्ये च शालायां विशालायान्त गोऽर्चयेत् ॥  
 आढमाढजनैः सार्धं सन्तुष्टो वन्धुभिस्ततः ।  
 कमलैः कुसुमैः पुष्पैः काञ्चारे रत्नकोत्पलैः ॥  
 गन्धपुष्पाक्षने वैद्यै रक्षतेर्गुण्डपूजकैः ।  
 मद्यमांससुरालेद्भ्रदीपवर्ष्यपहारकैः ॥  
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र समन्वी सपरोहितः ।  
 बलिराज नमस्तुभ्यं विरोचनसुत प्रभो ॥  
 भविष्येन्द्र सुराराते पूजयेयं प्रतिगृह्यतां ।  
 एवं पूजां नृपः कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः ॥  
 कारयेत् प्रेक्षणीयादिनटमृत्यकथानकैः ।  
 लोकशापि गृह्णस्यान्तः शय्यायां शुक्लतण्डुलैः ॥  
 संख्याप्य बलिराजानं फलेः पुष्पैश्च पूजयेत् ।  
 बलिमुद्दिश्य दीयन्ते दानानि कुरुनन्दन ॥  
 यानि तान्यक्षयान्याहुर्भयैव संप्रदर्शितं ।  
 यदस्यां दीयते दानं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥  
 तदक्षयं भवेत्सर्वं विष्णोः प्रीतिकरं परं ।  
 विष्णुना वसुधा लब्धा तुष्टेन बलये पुनः ॥  
 उपकारकरं दत्तमसुराणां महीश्वरं ।  
 ततः प्रभृति राजेन्द्र प्रवृत्ता कौमुदी शुभा ॥

सर्वोपद्रवविद्रावा सर्वविघ्नविनाशनी ।  
 लोकशोकहरी काम्या धनपुष्टिसुखावहा ॥  
 कुशलेन मही ज्ञेया मुदहर्षे ततोहयं ।  
 धातुत्रैर्निर्गमत्रैश्च तेनैषा कौमुदी स्मृता ॥  
 कौ मुदन्ति जना यस्मान्नानाभावैः परस्परं ।  
 द्वष्टास्तुष्टाः सुखाया स्तास्तेनैषा कौमुदी स्मृता ॥  
 कुमुदानि वलेर्यस्माद्दीयतेऽस्मै युधिष्ठिर ।  
 अघार्घ्यः पार्थिवैः पार्थ तेनैषा कौमुदी स्मृता ॥  
 एवमेकमहोरात्रं वर्षं वर्षे विशाम्यते ।  
 दत्तं दानवराजस्य आदर्शमिव भूतले ॥  
 यः करोति नरो(१)राष्ट्रे तस्य व्याधिभयङ्कृतः ।  
 कुत इति तत्र भयं नास्ति मृत्युक्तं भयं ॥  
 सुभिन्नं क्षेममारोग्यं सस्यसम्पदमुत्तमं ।  
 नीरुजय जनः सर्वः सर्वोपद्रववर्जितः ॥  
 कौमुदीकरणाद्राजन् भवतीह महीतले ।  
 यो यादृशेन भावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर ॥  
 हर्षदैन्यादिरूपेण तस्य वर्षं प्रयाति हि ।  
 रुदितो रीदिति(२) वर्षं हृष्टो वर्षं प्रहृष्यति ॥  
 भुक्तो भोक्ता भवेहर्षं स्वस्थः स्वस्थो भविष्यति ।  
 तस्मात् प्रहृष्टैस्तुष्टैश्च कर्त्तव्या कौमुदी नरैः ॥

(१) नृप इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) रुदितमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

वैष्णवी दानवी चैयं तिथिः(१) पैत्री युधिष्ठिरः ।

दीपोत्सवेन जनित सर्वजनप्रमोदे

कुर्वन्ति ये सुमनसो बलिराजपूजां ।

दानोपभोगसुखद्विगताकुलानां

राजन् प्रयान्ति सकलं प्रमुदैव हर्षं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तः कौमुदीमहोत्सवः ।

अथ भूतमहोत्सवः ।

स्कन्दपुराणात् ।

रतावसानं संप्राप्य निष्क्रान्ते पार्व्वतीपती ।

उत्थाय शयनाद्देशी शौचं चक्रेति शौचदा ॥

ततः सृगन्ध्यां पार्व्वत्यां वारिभारासरःप्रभा ।

अभवदिति शेषः । सरो निर्भरः ।

चिन्ता समभयत्तस्त्रा न पुत्रो दुष्टितापि वा ।

तस्याश्चिन्तयमानाया हृदयाम्बुसमुद्रवा ॥

जम्बे कमलपत्राक्षी कन्या मृगमयपङ्किता ।

नीलवस्त्राभिवसना रक्तवस्त्रावगुण्ठिता ॥

गिरिकन्यान्तु तां कन्यां हृदयाम्बुसमुद्रवां ।

उवास संपरित्यज्य मूर्ध्नि चात्राय पार्व्वती ॥

भूमिपङ्काङ्गलिमाङ्गी सम्भूतामि यदङ्गने ।

(१) निधिदिति पुस्तकान्तरे पाठ ।

तस्माद्दुकसेवेति(१) भविष्यति महीक्ष्वः ॥  
 यस्मिन्नन्दमहीलोके दिनेपातसुपैष्यति ।  
 तस्मिन् दिने तव जना आराध्यन्ते महीक्ष्वं ॥  
 यः कामो भैरवस्यासीत् भगवत्या भवस्य च ।  
 स महाभैरवी भूत्वा कन्यां गृह्य करे स्थितः ॥  
 ततोऽम्बिका भगवती पत्नी भगवतः प्रिया ।  
 पुमांसमव्रवीत् कस्त्वं किञ्च गृह्णासि मे सुतां ॥  
 ततो दंष्ट्राकरालास्यो भैरवी भैरवाकृतिः ।  
 उमां नीचेस्ततः प्राह विद्युन्मत्तइवाम्बुदः ॥  
 योभवद्भैरवः कामो भगवत्या भवस्य च ।  
 तस्मभूताविमौ चैषा भार्या मम भविष्यति ॥  
 दम्पती विकृताङ्गी तौ जुषेशाच्छादनौ स्थितौ ।  
 वीक्षां चक्रे सोमभूषः काविमाविति शङ्कितः ॥

तावुभावपि भवो भवपाल  
 चन्द्रचिह्नितजटस्त्रिपुरारिः ।  
 प्राह पादपतितः स्वसमीपे  
 कौ युवां भवथ किञ्च करोमि ॥  
 अम्बिकाय च वदतिष्म गिरौशं  
 सूर्य्यकोटितडिदग्नि सवर्षा ।  
 हासपूर्णवदना वदमाना  
 लीलयात्र भवती चलमाना ॥

( १ ) उम्बुदसेवेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

योऽभवत्तव ममैह च कामो  
 भैरवो भयकरस्त्रिदशाना ।  
 एष ते किल पुमान् भवजातः  
 स्वीयमेव मम यो मदनाग्निः ॥

सोमलक्ष्मस्ततः प्रीतः उभया सोमभावनः ।  
 गोपवेषधरो देवो दम्पतीत्यब्रवीद्वचः ॥  
 यदैव हि त्वया ध्याने ध्यातेयं स्त्री वराङ्गणा ।  
 तदैव मत्प्रभावेन भैरवो ह्येष तेऽभवत् ॥  
 नाहं त्वया विना देवि त्वं वापि न मया विना ।  
 अत एष मया तेऽद्य दत्तो लम्बीदरेण च ॥  
 उत्सवस्तेषु भविता त्वया प्रीतो मम पिये ।  
 पूर्वागमोऽस्य भविता दत्तकामं महात्मजं ॥  
 अतस्तदात्मको लोकः सर्व्यः सुरवराङ्गिते ।  
 सज्जन्ते तेन चान्योन्यं नरा नार्थ्यय पार्श्विति ॥  
 लिङ्गेषु हृदयं स्त्रीणां भगेषु हृदयं नृणां ।  
 भगलिङ्गाङ्कितं सर्व्यं तदिदं जगदङ्गने ॥  
 भगलिङ्गसमुत्कीर्णं कुर्वाणाः सामरा नराः ।  
 अन्योन्यं पातयिष्यन्ति प्रकीर्णतः परस्परं ॥  
 आरम्भेवावसाने च भविता भैरवोत्सवः ।  
 उदसेविकया (१) शेषं कालञ्च भवितोत्सवः ॥  
 यत्पुरं नगरं ग्रामं भैरवीयं प्रवेक्ष्यति ।  
 उन्मत्तमिव तत् सर्व्यं सस्त्रीवृद्धो भविष्यति ॥

( १ ) उज्ज्वले विषयान्विति पाठान्तर ।

उन्मत्तवदनुन्मत्तं चातुवर्णं गिरेः सुते ।  
 भविष्यति पुरं मत्तं भैरवागमहर्षितम् ॥  
 यथा नियुक्ताः पित्रर्थं विगन्ते देवता द्विजान् ।  
 एवं भैरवि माहात्म्याद्भैरवो विगते नरान् ॥  
 ततो राससमारूढाः शक्तृकर्दमलेपनाः ।  
 कदुका ताम्बूवल्लीभिः कृतवेष्टनभूषणाः ॥  
 तत् फलावडकुचकाः प्रकटोत्कटमिस्त्रनाः ।  
 भस्मभूषितसर्वाङ्गा विण्मूत्रमलपङ्कलाः ॥  
 तालतालैर्कायमानैः क्रूरावडवचोन्वितैः ।  
 अत्रदमसंबद्धं पूर्वापरानन्वितं यद्वच इत्यर्थः ।  
 सूच्यमाने(१) वरारोहे भैरवो भार्यया सह ॥  
 प्रवेक्ष्यति पुरं ह्येष उत्सवं जनयन्त्रणां ।  
 प्रविष्टे भैरवे भीरु पुरुहृताच्चितं पुरं ॥  
 जनस्य रोचको घोरो भविष्यति तदोत्सवः ।  
 रोचकः प्रियः । घोरः उत्कटः ।  
 येषां वर्षगतभौरु जरयाचैव जर्जराः ।  
 तेऽपि वत्सकवत्सर्वे करिष्यन्तुत्सवं नराः ॥  
 नानाभूषणसृष्टाङ्गाः कुङ्कुमागुरुभूषिताः ।  
 पीतैरनेकैर्वस्त्रैश्च वासोभिः परिवेष्टिताः ॥  
 कर्णपूरैः समाल्यैश्च सदामालाः सचूड़िनः ।  
 सदामालाः सश्रजः सचूड़िनः सवाहुभूषणाः ।  
 तद्वत्पुष्पैश्चम्पकाद्यैः रुक्षेपितु गिरीरुहाः ।

आस्फोटयन्ती गात्राणि आवयन्ति प्रियाणि च ॥  
 रथ्यासु राजमार्गेषु आवयन्तो यतस्ततः ।  
 कुलपुत्राः कुलस्त्रीणामनङ्गप्रकृतानि च ॥  
 व्यङ्गानि यानि गुह्यानि कुलाङ्गनाकृतानि च ॥  
 तेषां च सर्वसन्देहं दर्शयन्तः पदे पदे ॥  
 गायन्त्यथ प्रनृत्यन्तः कुर्वन्त्यन्तितानि च ।  
 पूर्वं सलज्जा भूत्वा च निर्लज्जत्वमुपागताः ।  
 लज्जनीयेष्वपि गुरुनाक्रोशन्तः परानपि(१) ॥  
 उदासकचयो मर्त्याः करिष्यन्ति यथा मनः ।  
 न मातुर्लज्जते पुत्री न पुत्रस्य तथारणी ॥  
 पितुर्न पुत्रः पुत्रस्य न पिता न पितामहः ।  
 न मातुलस्य स्वस्त्रीयः स्वस्त्रीयस्य न मातुलः ॥  
 मुद्धर्त्तनैव स्वजने निर्लज्जत्वमुपागते ।  
 अन्योन्यरूक्षवचनैस्तर्जयिष्यन्ति मूढवत् ॥  
 ब्रह्मरूक्षा(२) वचो रूक्षा श्वेताङ्गा मृदयापि च ।  
 भक्तिक्वेदविलिप्ताङ्गायाव्यङ्गायारूचेष्टिताः ॥  
 सारमेयानुदहन्त आरूढा गर्हभीषु च ।  
 दाडिम्बवेषा गोपवेषा बहुवेषाविशः परे ॥  
 राजवेषात्मवेषाय तरुणा वृद्धरूपिणः ।  
 नापितानाश्च वेषेण नयतामपि चापरे ॥  
 पलाण्डुः सीधुवर्षश्च स्वशत्रुभिश्च्युतं भृगं ।

(१) नाक्रोशन्तपरम्यरमिति क्वचित्पाठः ।

(२) भस्मरूक्षति पुण्यकारे पाठः ।



धूपं सञ्चारयिष्यन्ति घ्राणवैराग्यकारकं ॥  
 जलेचरमलञ्चान्ये नरा नृणामजानतां ।  
 नासिकायां प्रदास्यन्ति दुर्गन्धमशुभैः समं ॥  
 अन्येषु पुरुषा देवि देववेशविभूषिताः ।  
 काव्यानि आवयन्तो हि ते हृथ्यन्ति यथा नराः ।  
 अश्वानां क्रोशते तत्र यथा नाक्रोशते परं ।  
 विभ्यति तस्य पितरो ब्रह्मणे तु यथा तथा ॥  
 राजानो हि यथाश्वानां कुञ्जराणां यथा नराः ।  
 हिताय जायते तद्वत् नराणां उदसेविका ॥  
 न तस्य देव अग्राति हविः पितर एव च ।  
 मध्यस्य भावं कुरुते उदसेविकया हि यः ॥  
 नत्वन्तुथति नैवाहन्तस्य तुथामि पार्ष्वति ।  
 विरमेच्च महाशोका पुचालाभे स्वया कृते ॥  
 उदसेविकमात्वेवं भवती भैरवागमे ।  
 अतुला हर्षमम्पत्तिः पयादेति यथा तव ॥  
 न भ्राजते यथाचेदं तच्छोकाद्भवनं तव ।  
 उदसेविकया हीनं यथा तद्भविता पुरं ॥  
 नरानार्थय गिरिजे भस्मना कर्हमेन च ।  
 निःष्प्रभाणि करिष्यन्ति गृहाण्यायतनानि च ॥  
 चौरैरुद्हासितमिव पुरं देवि भविष्यति ।  
 मृत्पिण्डभस्मविण्मूत्रैर्नरैः प्रेतैरिवाहृतं ।  
 भैरवीयं मृतइति घोषयन्तस्ततो नराः ॥  
 तृणैश्चक्षतरस्तत्र संवेश्यान्वरसंहृतं ।

इति वाचा प्रकुर्वाणा भैरवीयं जहाति नः ॥  
निर्हरिष्यन्ति तं मर्त्या मृतं गुणमृतं प्रियं ।  
तडागकूले तं न्यस्य सरित्कूले तथापि वा ॥  
स्नानान्निर्मुक्तकलुषा प्रयास्यन्ति ततो गृहं ।  
संसाध्यं भैरवस्नाता लसवोत्कूलवेदिताः ॥  
मुनिव्रता इव नरा भविष्यन्ति प्रियायुताः ।

यद्यैव ते पार्ष्वति भैरवागमे  
नराः सलज्जा मुहुरेव लज्जिताः ।  
तद्यैव सम्भावितभैरवाः पुनः  
वभ्रुषुरेकान्ततपोधनावृताः ॥  
इमन्तु यः सुन्दरि भैरवीस्त्वं  
पठेहि विप्रो हिजदेवसंसदि ।  
पुत्रप्रपौत्रः समये च वर्धते  
महागणेशत्वमवाप्नुयात् शुभं ॥

इति भविष्योत्तरात् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भूतमातेति संहृष्टो ग्रामे ग्रामे पुरे पुरे ।  
गायन् नृत्यन् हसन् लोकाः सर्वतः परिधावति ॥  
उन्मत्तवत् प्रस्रपति क्षिती पतति मत्तवत् ।  
क्रुद्धवद्भावतितरां मृतवत् क्रन्दते(१)बहिः ॥  
सुखाङ्गभङ्गं कुरुते लीकीवायुगृहीतवत् ।

(१) क्रन्दते इति पुस्तकालये पाठः ।

भूतवद्भ्रममूत्रन्तु कर्हमानवगाहते ॥  
 किमेपशास्त्रनिर्दिष्टो मार्गः किमुत लौकिकः ।  
 मुह्यति मे मनः कृष्ण त्वमेव वक्तुमर्हसि ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि यत्ते किञ्चिन्नोगतं ।  
 आम्निकः अद्धानथ भवानीति मतिर्मम ॥  
 पार्वत्या सहितः पूर्वं मन्दरे चारुकन्दरे ।  
 क्रोडनास्ते मुद्रायुक्ता दिव्यक्रीडनकैर्हरः ॥  
 पीनीव्रतनितम्बेन कुम्भभाजत्कुचद्वयां ।  
 गीतांशुवदनां हृष्टां दृष्ट्वा गौरीं जगद्गुरुः ॥  
 दग्धकामतरोः कन्दकदर्लीमिव विस्तृतां ॥  
 कामयामास मुदितो महार्हशयने शिवः ।  
 रममाणा महाकान्तं दिव्यवर्षशतं यदा ॥  
 तदा देवी समुत्थाय निरोधान्निर्गता वह्निः ।  
 मूत्रोत्सर्गात्समुत्तस्थी नारी निर्दारितोद्रात् ॥  
 कृष्णा करालवदना पिङ्गाक्षी रक्तमूर्धजा ।  
 कपालमालाभरणा वज्रमुण्डावपीडका ॥  
 खट्वाङ्गकङ्कालधरा मुद्राङ्कितकरा शिवा ।  
 द्वीपिचर्माम्बरधरा रणत्किङ्किणीमेखला ॥  
 डमरुमरुकाराच फेत्कारापूरिताम्बरा ।  
 तस्यास्तु पार्श्वं गाथान्या (१) गीतवाद्यलयानुगाः ॥

(१) पार्श्वं या चान्येति पुस्तकाकारे पाठः ।

उत्तालतालमतुलं नृत्यन्ति च हमन्ति च ।  
 कपालखट्टाङ्गधरा गजचर्मावगुण्डिता ॥  
 तथैव गङ्गराज्जातस्तद्रूपाभरणः पुमान् ।  
 अनुगम्यमानो बहुभिर्भूतैरतिभयङ्करैः ॥  
 सिंहयार्द्रूलवदनै रदनोन्निष्ठिताम्बरैः ।  
 एकीभूतो क्षणेनैव ती भवानीभवोद्भवती ॥  
 दृष्टा हृष्टमनादेवः प्राह देवीं मविभितां ।  
 कल्याणि पश्य पश्येती मत्त्वदङ्गसमुद्भवा ॥  
 वीभत्साद्भुतशृङ्गारभयानकविदारिणी ।  
 भ्रातृभाग्दौ यथा देवि तद्वदेती मती मम ॥  
 नानयोरन्तरं किञ्चित् सादृश्यात् प्रतिभासते ।  
 भ्रातृभाग्दौ भूतमाता तथैवीदकसर्विका ॥  
 संज्जात्रयं तयोः कृत्वा ततः प्रादाहरं हरः ।  
 भग्नार्थावागताञ्चैनां जगत्तरुतले स्थितां ॥  
 सेवयिष्यन्ति ये भक्त्या जलमम्पूर्णगण्डकैः ।  
 चन्दनेन समालभ्य पुष्पधूपैरशार्चयेत् ॥  
 भोजयेत् क्षिप्रं संघाव कृगरापूपपायसैः ।  
 य एवं कुरुते देवि पुरुषो भक्तिभाविनः ॥  
 स पुत्रपशुवृद्धिञ्च गरीरारोग्यमाप्नुयात् ।  
 न शाकिन्यां शृहे तस्य न पिशाचा न राक्षसाः ॥  
 क्रीडां कुर्वन्ति शिवो यान्ति वृद्धिं निरामयाः ।  
 युधिष्ठिर उवाच ॥  
 कदा पूजा प्रकर्त्तव्या भूतमातुः सुखार्थिभिः ।

पुरुषैः पुरुषव्याघ्र एतन्मे वक्तुमर्हसि ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

सर्वदैषा भगवतो बालानां हितकारिणी ॥

नामभेदैः क्रियाभेदैः कालभेदेषु पूज्यते ।

प्रतिपत्प्रभृति ज्येष्ठे यावत्पञ्चदशी तिथिः ॥

पौर्णमास्यान्तमासाभिप्रायेण ज्यैष्ठ्यव्युक्तिः ।

तावत् पूजा प्रकर्त्तव्या प्रेरणैः प्रेक्षणीयकैः ॥

विकर्मफलनिर्द्देशः पाषण्डानां विडम्बनं ।

प्रदर्श्यते हास्यपरैर्नरैरङ्गुलचेटितैः ॥

विश्वस्य धनलोभेन स्वाध्यायी नियतः पतिः ।

आरौप्यमाणं शूलान्ने ते न पश्यन्ति पश्यतः ॥

दृष्टो भवद्भिः संहृष्टः परदारारवमर्षकः ।

क्वित्वास्य हस्ती क्षिप्तोऽयं विभुना पुष्करीदके ॥

शीर्णः सूर्यातपत्रेण बालातालानुमादितः ।

शुक्लसिंहासनारूढः सुकृती यात्यसौ सुखं ॥ ५ ॥

हे जनाः किन्न पश्यध्वं स्वमिन्द्रत्वं करे परं ।

करपत्रैर्हीर्यमानमुच्छलच्छोणितच्छटं ॥

क्षीरः किलासौ संप्राप्तः सर्वोद्देशाकरः परं ।

दण्डप्रहाराभिहतो नीयते दण्डपाशकैः ॥

प्रेतकैर्वीष्टतस्तेनो रटद्भिर्मडिगिडमैः ।

संयम्य नीयते हन्तुं सुखमभ्यबलेक्षणम् ।

शितकेशं शितश्मश्रुं सिताम्बरधरं द्विजं ॥

विटवेश्याचपेटाभिर्हन्यमानञ्च पश्यतः ।

गृहान्निष्क्रम्यतां रण्णा वृद्धिं नीत्वा यथोदरं ॥  
 कस्मादसौ च कुर्वते सूको भरुषपोषणं ।  
 भैरवाभैरवानेतान् बालान् बालोपजीविनः ॥  
 प्रहृन्तताण्डवपदा न्यस्त्रध्वं घृतदीपकान् ।  
 निर्वेदः कोऽस्य हृदये क्षेत्रस्त्रीधनकारितः ॥  
 गृहीतं यद्नेनापि बालेनापि महाव्रतं ।  
 रत्नोदककाकलाणाङ्गं स चरन् किञ्चपश्यति ॥  
 तरुकोटरान्तर्गतां विचित्रां शुकसारिकां ।  
 बहुभिः कोष्ठकीकृत्य शरोर्वैः सवलीकृतां ॥  
 विमुक्तहिक्काङ्गुहार सुप्रहारनिरीक्षितां ।  
 इमां कृष्णार्धवदनां गृहीतामि दुहितृका ॥  
 विमुक्तकेयां नृत्यस्त्रीं पश्यध्वं योगिनोमिव ।  
 गम्भीर्यतूर्यध्वनिना प्रहृष्टोद्धतताण्डवा ॥  
 लम्बतवेषाभरणा भाष्येषा त्रिण्डिमण्डली ।  
 कटीतटस्थपिटका कासकम्बलधारिणी ॥  
 चारटस्थटतेडोस्वी तन्त्री सूर्यपहान् गृहं ।  
 इत्येवमेभिर्बहुभिः प्रेक्ष्यैः प्रेक्षणीयकैः ॥  
 प्रेरयेत्तान् जहातीष्वं पुत्रभ्रातृसुहृदतं ।  
 एकादश्यां नवम्यां वा द्वीपमन्वाण्य कुण्डके ॥  
 रश्मिभिर्बहुभिर्गुप्तं तूर्यध्वनिपुरःसरं ।  
 नयेत् प्रदोषसमये यत्र देवी जनैर्वृता ॥  
 वीरचर्यासु कथिता द्वीपः सर्वार्थसाधकः ।  
 एवं निष्क्रामयेद्द्वीपं यावत्पञ्चदशौ तिथिः ॥

पञ्चदश्यां प्रकुर्वीत भूतमातुर्गृहीत्स्वम् ।  
 स्नापयेत् पूजयेद्दद्यान्नैवेद्यं पललोदनम् ॥  
 प्रणम्य स्वजनैः सार्धं क्षमयित्वा गृहं व्रजेत् ।  
 य एवं कुरुते पार्थ वर्षे वर्षे महीत्स्वम् ॥  
 तस्य संवत्सरं यावत् गृहे विघ्नं न जायते ।  
 ये मानयन्ति जनह्यसकरैर्व्विलासै  
 राशेचयेद्भयदां भूविभूतधारिणीं ।  
 ते भ्रातृभृत्यसुतबन्धुजनैः सहाष्टं  
 सर्व्वीपसर्गारहिताः सुखिनो भवन्ति ॥

इति भूतमातृत्सवः ।

—००७००—

पृथिव्युवाच ।

पित्रमातृपतिभ्रातृपुत्रशोकविवर्जिता ।  
 व्रतेन येन भवति नारी तद्दद केशव ॥

वराह उवाच ।

दक्षः प्रजापतिः पूर्व्वं तस्य कन्याभवत्सती ।  
 महादेवाय सा दत्ता धर्मपत्नी शुभव्रता ॥  
 दक्षेण यज्ञः प्रारब्धो देवाः सर्व्वे निमन्त्रिताः ।  
 अर्क्षिताश्च यद्यान्यायं शङ्करो न निमन्त्रितः ॥  
 तेनापमानिता देवो देहन्त्यज्ञाभवत् पुनः ।  
 द्विमवत्पर्व्वतसुता जाता जाति स्मृता धरे ॥  
 स्रग् नमेरुधरा तत्र वर्त्तमानाष्टवाषिंकी ।

वार्यमाणा पित्र-भाद्र-माहभिस्तपसे यता ॥  
 उग्रं तपः समाख्याय सखीभिः सहिताचले ।  
 याते वर्षं सहस्रन्तु शुष्कपर्णमभुङ्क्त सा ॥  
 अन्यवर्षसहस्रन्तु जलपानेन सा स्थिता ।  
 तृतीयञ्च पुनस्तद्द्वहाराभायतो महत् ॥  
 एवं वर्षसहस्राणि दश तप्तं तथा तपः ।  
 तथापि च न तुष्टोऽसौ देवेशो वृषगूलष्टक् ॥  
 तथा खिन्नापरा दीना कृपासावनिशन्ततः ।  
 पुनरग्निप्रवेशाय मतिं चक्रे रुषान्विता ॥  
 ततः काली समुत्थाय कृत्वा पूर्वार्द्धिकीं क्रियां ।  
 कथा ह्यनेकाश्च ततः सहसा चावदत् क्षिते ॥  
 सखीभिर्भक्तियुक्ताभिर्वेष्टिता स्थानकाङ्क्षिणी ।  
 देवर्षिनोरदः प्राप्तो लोकालोकविचारणः ॥  
 हिमवद्दुहिता गौरी शिवाराधनतत्परा ।  
 भर्तारं देवमिच्छन्ती तथा वर्षगणान् वदन् ॥  
 देवो न तुष्यति यदा निर्विन्नेयं तदामुने ।  
 अग्निं प्रवेष्टुमुद्युक्त्याह गौर्याः सखी मुनिं ॥  
 तस्या वाक्यमिदं श्रुत्वा नारदः कदवान्वितः ।  
 तत्प्रमीपे ततो गम्य वाक्यमाह बसुन्धरे ॥

नारद उवाच ।

हिमवद्दुहिता कामं नाग्निं प्राविश ग्रीभने ।  
 हरस्तुष्यति येनेह कर्मणा तत् शुच्यमि ।  
 व्रतं सङ्घाटनं नाम तत् कुर्वन्वाचसात्मजे ॥



व्रतं सङ्घाटकं कृत्वा ततः प्राञ्चसि तं पतिं ।

देव्युवाच ।

तद्धतं मे कृपां कृत्वा कथयस्व मुने मम ।

प्राप्त्येऽह तेन चीर्त्वा वै भर्तारं तं महेष्वरं ॥

नारद उवाच ।

शृणुष्वैकमना भद्रे सङ्घाटकमिदं व्रतं ।

कथयामि महापूर्वं ब्रह्मणा कथितं मम ॥

मासस्य कार्तिकस्यापि शुक्लप्रतिपदि व्रतं ।

गृह्णीयादेकभक्तन्तु कृत्वा दत्तादिशीघ्रनं ।

मायं सङ्कल्प मादाय द्वितीयायामुपावसेत् ॥

तृतीयायामपि तथा चतुर्थ्यां पारणं भवेत् ।

शिव संपूजयेद्भक्त्या उपवासद्वयेऽपि च ॥

यत्र विनोपचारेण (१) रात्रौ दद्यात्ततो भुवि ।

स्वपेत् प्रातः समुत्थाय स्मृत्वा देवं समर्चयेत् ॥

दध्नेन विना वरं पत्रं दध्यान्नं ददते न रक्तं ।

भोजयेद्ब्राह्मणान् सप्त गन्तितो वापि भोजयेत् ॥

तेभ्योपि दक्षिणां दत्त्वा नमस्कृत्य विसर्जयेत् ।

पद्याञ्च पारणं कार्यं सप्तसंघाटके विधिः ॥

उपोष्य तु ततः सप्तमासैः साहस्रं त्रिभिः शुभैः ।

उद्यापनं ततः कार्यं सङ्घाटे सप्तमे ततः ॥

(१) भक्तविनोपचारेणेति पुलहान्तरे पाठः ।

एतच्च व्रतं शुक्लपक्षेऽपि कर्त्तव्यं(१) । एवं पक्षद्वये कुर्वन्  
ततः सार्धैस्त्रिभिर्मासैः सप्तसङ्घाटका भवन्ति ।

विधिवद्ब्रह्ममुख्यस्य(२) तदिहैकमनाः शृणु ।

स्त्रीपुंसौ काश्चनो कार्थ्यौ शक्तितो भक्तिपूर्वकं ॥

सर्व्वीभरणशीमाद्यौ मशुकस्योपरि स्थितौ ।

पञ्चामृतेन संस्त्राप्य ततो गन्धोदकेन तु ॥

सर्व्वीषधिजलेनापि कुङ्कुमेन समालभेत् ।

कौसुम्भवस्त्रसंस्कृत्तैर्नानापुष्पस्त्रगन्धितैः ॥

मशुकोपरि विन्ध्यस्य रात्रौ जागरमारभेत् ।

गीतवाद्यादिनृत्यैस्तु जागरं कारयेन्निश ॥

महामाङ्गल्यनिर्घोषैर्मृदङ्गपटहादिकैः ।

निर्व्वर्त्य जागरं रात्रौ प्रभाते समुपस्थिते ।

विप्रादिमन्त्रा भक्त्या तु शक्तितो भोजनं ततः ॥

तेभ्योऽपि दक्षिणां दद्यात् स्त्रीपुंसौ मशुके स्त्रितौ ।

सर्व्वीपस्तरणैः सर्व्वमुपदेष्ट्रे निवेदयेत् ॥

भार्य्याया सहितायैव वस्त्राद्यैः पूजिताय च ।

निवेदयेत् स्वयं सर्व्वं ततो विप्रं क्षमापयेत् ॥

पूजामन्त्रैः प्रकर्त्तव्या त्रिभिर्भक्तिमन्त्रितैः ।

त्रिभिर्हीमस्तद्या कार्थ्यौ व्रतमेवं समाप्यते ॥

ॐ शम्भवाय नमः । उमया भवाय नमः(३) । उं शङ्कराय नमः ।

( १ ) एतच्च व्रतं शुक्लपक्षे समारभ्य कृष्णपक्षेऽपि कर्त्तव्यमिति पुलकानकरं पाठः ।

( १ ) त्रिचिचकृतस्त्रमन्त्रमिति पुलकानकरं पाठः ।

( ३ ) वाचाभवाम्भनम इ त पुलकानकरं पाठः ।

इति पूजामन्त्रः ।

ॐ मयस्कराय नमः स्वाहा । ॐ शिवाय नमः स्वाहा  
ॐ शिवतराय स्वाहा ।

इति होममन्त्राः ।

भार्यया सहितं विप्रं भोजयित्वा क्षमापयेत् ।  
समर्पयित्वा तत्सर्वं नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥  
समाप्त्वं व्रतं नारी समं प्राप्नोति यत्फलं ।  
तत् शृणुष्व महाभागे कथयामि सुनिश्चितं ॥  
यावत् कल्पशतं नारी भवेज्जन्मनि जन्मनि ।  
पतिपुत्रवियोगीत्यथोगदुःखविवर्जितं ॥  
तस्मिन् कुले स जायेत जन्मान्तरशतेष्वपि ।  
धनधान्यसमापूर्णं तत्कुलं जायते ब्रुवं ॥  
रूपसौभाग्यसंयुक्तं सुखं सम्पत्समायुतं (१) ।  
माहात्म्येन व्रतस्यास्य भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥  
पठामानं व्रतं नारी नरो वा शृणुयाद्यदि ।  
सर्वदुःखविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥

बराह उवाच ।

नारदः कथयित्वा तु व्रतं सम्पत्विधानतः ।  
जती जविष्ठया गत्वा देवी व्रतपराभवत् ॥  
सङ्घाटव्रतमाहात्म्याच्छ्रींश्च क्षमा पतिं शिवं ।  
सन्नाता सुखिनी जीरी स्त्री तथान्यापि जायते ॥

(१) सर्वदुःखविनिर्मुक्तं इति वाक्यकार ।

एतत् श्रुत्वा धरिणि त्वं व्रतमेतत् कुरु प्रिये ।  
यथाभिलषितं सर्वं प्राप्स्यसे नात्र संशयः ॥

इति बराहपुराणोक्तं सङ्घाटव्रतं ।

—000—

पौर्णमास्याममावास्यामेकभक्तं समाचरेत् ।  
तत्रैक भक्तं कुर्वाणो नरकं नोपसर्पति ॥  
तत्र पुण्याहवाच्येन जयशब्दादिमङ्गलैः ।  
हरिश्चैवार्चयेद्यज्ञात् क्षाप्य सौवर्णपङ्कजैः ॥  
ततस्तु पात्रमादाय गीतवेदादिनिस्स्रैः(१) ।  
कुर्वात् प्रदक्षिणं तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥  
ततश्चा मन्त्रा विधिवत् पूजयेत्तं विशेषतः ।  
एकं प्रियन्तु(२) सन्धीष्य प्रथम्य च क्षमापयेत् ॥  
एकं विप्राय संमन्त्रा संपूज्य तत् प्रदक्षिणं ।  
हृत्तदुक्तमक्षपात्रं सन्धीष्य च क्षमापयेत् ॥  
ब्राह्मणान् परमान् भीष्य दक्षिणाभिष दक्षयेत् ।  
व्रतिनश्चाक्षदानेन ब्रह्माद्येन च तर्पयेत् ॥  
ये तु दीनान्ब्रह्मपथा क्षनिवाय्यो दिनं व्रजेत्(३) ।  
इति नरसिंहपुराणोक्तं हरिव्रतं ।

—0—

- (१) वाच नक्षत्रैः क्षत्रमिति पुस्तकालये पाठः ।  
(२) एवं विप्रमिति पुस्तकालये पाठः ।  
(३) क्षनिवाय्यो इति व्रजदिति पुस्तकालये पाठः ।

अनिलाद् उवाच ।

नरसिंहमघो रौक्मं कृत्वा देवं चतुर्भुजं ।  
 ताम्रपात्रे प्रतिष्ठाप्य वज्रदंष्ट्रं प्रकल्पयेत् ॥  
 वाहुभ्यां पद्मरागौ तु नखानां विद्रुमास्तथा ।  
 पुष्परागौ स्तनोद्देशे कर्णयोर्नीलकावुभौ ॥  
 राजावर्त्तञ्चणं कृत्वा(१) नीलवैदुर्यमस्तकं ।  
 कृत्वा रूपमिदं रम्यं तत्पात्रे मधुना युते ।  
 पूरयेद्धारिमिश्रेण पूरितन्तु पुनर्हृदेत् ॥

इदं रूपं तत्पात्रे मधुयुक्तेन कृत्वा संस्थाप्य वारिमिश्रेण  
 मधुना पात्र पूरयेत् । पुनरन्यत्पात्रं मधुवारिपूर्णं तदुपरि-  
 दद्यात् ।

वस्त्रयुग्मे नवाष्टकमासने विनिवेशयेत् ।  
 गन्धपुष्पैस्तथाधूपैः पूजनञ्चास्य कल्पयेत् ॥  
 नैवेद्यं कल्पयेद्द्रव्यं भक्तैर्नानाविधैर्बुधः ।  
 वितानीपरि संयुक्तं पुष्पदामभिरर्चयेत् ॥  
 कार्तिक्यां वाच वैशाख्यामाश्रित्य द्वादशीमग्र ।  
 कृत्वा निवेदयेत् सम्यक् यतस्तत्पदमश्रुते ॥

द्वादशीमाश्रित्य तदादिदिनचतुष्टयं वृत्तिक्रीडा यतस्तसुत्सवं  
 कृत्वा कार्तिक्यां वैशाख्यां वा दानं कर्त्तव्यं ।

अरस्त्रे वाच संपात्रे दस्युसंज्ञसमाकृते ।  
 नभयं जायते तस्य सन्नद्यस्त्रिदमाचरेत् ॥  
 नविशन्वापदो घोरा धनमायुः प्रयच्छति ;

(१) मन्दिनाञ्चको कले रति पुस्तकान्तरे पाठः ।

सन्ततिश्चैव रूपस्य सौभाग्यं च मनोरमं ॥  
 यतस्तै कश्चितं सम्यक् हरेः क्रीडायनं मसृत् ।  
 तत्स्नानप्रापकश्चैव धर्म्याः संचेपतः क्रियाः ॥  
 श्रुत्वा यातिपदं पुण्यं सर्वपापैः प्रसुष्यते ।  
 धनमायुर्विष्वे त आवष्यस्य विशेषतः ॥  
 आवष्ये दक्षिणां दद्याच्छ्रद्धायुग्मं विभूषयेत् ।  
 श्रोतव्यन्तेन वर्षाद्यु पुराणेष्वपरेऽहनि ॥  
 इति नरसिंहपुराणोक्तं चरिक्रीडायनं ।

—०१०—

यजिष्णुः पञ्चमीं षष्ठीं यमान् यो भोजयेद्द्विजान् ।  
 अष्टमौ मश्रु कौन्तेय शक्यपञ्चे चतुर्दशीं ॥  
 उपोष्य व्याधिरहितो रूपवानिति जायते ।

इति महाभारतोक्तं यमव्रतं ।

—०००—

अनिलाद् उवाच ।

महाव्रतमहोवष्ये येनारोहति तत्पदं ।  
 सुरासुर सुमीनाश्च दुर्लभं विधिना शृणु ॥  
 पर्वण्येष्वयुज्यमाने पायसश्च हृतश्रुतं ।  
 नक्तं भुञ्जीत ह्यहाम्ना चन्दनश्चैव चान्वितं ॥  
 आश्वयुज्यस्थाने कर्त्तव्ये । पर्वणि अमावस्यायां कार्त्तिक-  
 कान्त इत्यर्धः । ऐश्वर्यसुरसः ।  
 आचम्याच्च शशिर्भूत्वा विस्वजं इन्तधावनं ।

( ४८ )

भुक्त्वा चैतन्महादेवं नत्वा भक्तियुतो व्रती ॥  
 अहं देव व्रतमिदं कर्तुमिच्छामि श्राव्यतं ।  
 तवाश्रया महादेव तन्ननिर्व्वहणं कुरु ॥  
 उक्त्वा मन्त्रियमं गृह्णन् वर्षास्थे व तु षोडश ।  
 तिथेः प्रतिपदायास्तु पारयिष्याम्यनुत्तमं ॥  
 ततो मार्गशिरे मासि प्रतिपद्यपरेऽहनि ।  
 उपवासेन गुरुं पृष्ट्वा महादेवं स्मरन् मुहुः ॥  
 महादेवरतान्त्रिपान् भस्मसंस्कारविग्रहान् ।  
 षोडाशष्टौ तदर्द्धं वा दम्पत्यश्च निमन्त्रयेत् ॥  
 देवश्च भक्तमासाद्य दीपान् प्राण्वल्य षोडश ।  
 पशुनाथं महादेवं भक्त्या नत्वा निवेदयेत् ॥  
 आमन्त्र्या च गृहं नत्वा महादेवं स्मरन् क्षिती ।  
 शुचिवस्त्रास्तृतायान्तु निराहारी निशि स्वपेत् ॥  
 अथोदये सहस्रांशोः स्नात्वाषादाय दीपकान् ।  
 नैवेद्यं स्नपनाद्यं वा सगच्छेत् शङ्करालयं ॥  
 गत्वा वितानकं तत्र वस्त्रयुग्मश्च घण्टिकां ।  
 धूपोत्क्षेपं पताकांश्च दत्त्वा स्नानन्तु कारयेत् ॥  
 एवमभ्यर्च्यदेवेशं कशासैरुजभयेद्वृतं ।  
 स्नापयेत् पञ्चगव्येन घृतेन तदनन्तरं ॥  
 मधुना च तथा दध्ना भूयश्च पयसा तथा ।  
 रसेन वाद्य खण्डेन फलेषु स्नापयेत् पुनः(१) ॥  
 तिलाम्बुना ततः स्नाप्य पश्चादुष्णेन वारिणा ।

१ उपोषितपुनरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

लेपयेत् सुषुप्तं पश्चात् कर्पूरागुडचन्दनैः ॥  
 एवं संपूज्य तं भक्त्या हेम न्यस्य ब्रजेदृष्टं ।  
 हेम न्यस्य भुजोपरि सुवर्णपुष्पं निधाय ॥  
 नानावस्त्रफलैश्चैव दद्यान्नैवेद्यमिव हि ।  
 गृहं गत्वा यथाग्यायं हिरण्यरेतसम्बभुं ॥  
 जातवेदसमाधाय तर्पयेत्तिससर्पिषा ।  
 प्रतिनद्य तत्राचार्यं मिथुनानि च भोजयेत् ॥  
 हेमवस्त्रादिदानेन यथाशक्त्या तु दक्षयेत् ।  
 एवं विच्छन्य तान् सर्वान् सार्धं वन्धुजनैः स्वयं ॥  
 शीत्वाद्दो पञ्चगव्यञ्च ऋष्टीभुञ्जीत वाग्यतः ।  
 बत्किञ्चिदेतदुच्छिष्टं महादेवमुदीरयेत् ॥  
 तमुद्दिश्य च तद्वर्षं कर्त्तव्यं श्रेय इच्छता ।  
 प्रारभ्ये तु विधिं कुर्युर्हरिद्रोऽप्यथवेष्मरः ॥  
 वित्तसामर्थ्यतश्चैव प्रतिमासञ्च कृत्स्नशः ।  
 क्लृप्तवित्तोऽथ वा कश्चित् पुण्यादौ कार्त्तिकमासधी ॥  
 कृत्वा नक्तन्वमावास्यां प्रागुक्तविधिना ततः ।  
 प्रतिपदामुपोष्यैवं पञ्चगव्यं पिवेच्छुचिः ॥  
 महादेवं स्मरन् सार्धं भक्त्या भुञ्जीत सिद्धिभिः ।  
 मासस्य कार्त्तिकस्यान्ते कृत्स्नं प्राग्विधिमाचरेत् ॥  
 प्रतिपदा द्वितीया च उभेतिथौ उपोषयेत् ।  
 एवं पौषे तु संप्राप्ते प्रतिपक्षमाचरेत् ॥  
 द्वितीयेऽन्ते द्वितीयायामुपवसेत् कार्त्तिकमासधी ।  
 चाद्ददौ ततिष्यैकां मार्गमासे तत्रापरं ॥



पूर्ववत्सन्धजेत्यौषे प्रत्यन्दशैवमाचरेत् ।

अस्य श्लोकस्य फलितार्थः ।

अमावस्यायां नक्षत्रं प्रतिपद्युपवास इति प्रथमवर्षे प्रथमस्या-  
ममावास्यायां नक्षत्रं प्रतिपदि द्वितीयायामुपवासः शेषेषु प्रतिपदिन  
क्षत्रं द्वितीयायामुपवास इति द्वितीयं प्रथमे मासि प्रतिदि नक्षत्रं  
द्वितीयाष्टतृतीययोरुपवासः शेषेषु द्वितीयायां नक्षत्रं तृतीयायामुप-  
वास इति तृतीयं । एवं शेषेषु वर्षेषु कृत्वैवं षोडशवर्षं पीर्य-  
मास्याः कार्त्तिक्याः समुहमे उदयकाले ।

पूर्ववद्देवमभ्यर्च्य कथानुं ध्वितर्प्ययेत् ।

ध्यस्ति अर्चिषः ।

महादेवाय गान्ध्याहीक्षिताय द्विजाय च ॥  
हेमशृङ्गां सवत्साञ्च सघण्टां कांस्यदोहनां ।  
शिवव्रत धरान् विप्रान् सहाचार्याञ्च षोडश ॥  
सन्धोन्ध हेमवस्त्रायैर्यथाशक्ति तु दद्यायेत् ।  
कृत्रोपानहकुम्भाञ्च दद्यात्तैभ्यः पृथक् पृथक् ॥  
भोजयेत्तान्विसृष्टैव मिथुनानि तु षोडश ।

विसृष्ट्वा विसृज्य ।

ब्राह्मणाञ्च यथा शक्त्या भोजयेत् वेदपारगान् ।  
अन्येषां च सुधार्त्तानां दद्यादन्नस्रतद्दिने ॥  
एवं महाव्रतश्चैतद्ब्रह्मज्ञोप्यथमर्षणं ।  
भूर्भुवादिषु शेषेषु लोकेषु बहुभोगदं ॥  
चतुर्षामपि वर्षानां यत्तु सोपानवत्स्वितं -

तत् कुर्याद्योवनं प्राप्य समुद्दिष्टमिहैव हि ॥  
 धन्यमायुःप्रदं नित्यं रूपसौभाग्यदं परं ,  
 स्त्रीपुंसयोश्च निर्दिष्टं व्रतमेतत् पुरातनं ।  
 विधवयापि कर्त्तव्यं भवेद्विधवा च या ॥  
 सुन्धयापि च कर्त्तव्यमवियोगाय तद्गतं ।  
 उपोष्य प्रतिमासन्तु भुञ्जीत व्रतिभिः सह ॥  
 एतद्विचिचतुर्भिर्व्या(१) सर्वेष्वप्येव शक्तितः ।  
 अन्ते च भिन्नवर्षाणां प्रारम्भे विधिमाचरेत् ॥  
 पुष्यसम्भारमन्विच्छ्वनामघपदञ्च तत् ।  
 अथारभ्यव्रते कश्चिदसमाप्ते सृतो भवेत् ॥  
 सोऽपि तत् फलमाप्नोति सत्प्रारम्भप्रभावतः ।  
 वाचकः श्रावकश्चैव श्रोतारश्च व्रतस्य ये ॥  
 भवन्ति पुष्यसंज्ञिष्टास्तत्पदाभिसुखाद्ये ।

इति कालिकापुराणोक्तं मन्वाव्रतं ।

—000—

उपोष्यैवादर्शी शक्ता माघमासेऽथ पूर्णिमां ।  
 कुर्याद्विधिमिमं सम्यक् सदा तस्य व्रजेत्पदं ॥  
 तद्विरूपप्रदञ्चैतद्गतं(२) सौभाग्य दायकं ।  
 पुत्रदं सुखदञ्चैव विधिना चरितं त्विदं ।  
 व्रतस्यास्य प्रवक्तारं समयुक्तं गुणान्वितं ॥

(१) चर्कचार्क च रवांशामिति पुष्यकाले पाठः ।

(२) तद्विरूपार्द्रञ्चैतद्गतमिति पुष्यकाले पाठः ।

पूजयेद्भूमिकामोक्ष पादुकाद्यैः सुभावितः(१) ।  
 रुक्ममाज्ययुतश्चाथ पात्रं नीलाञ्च गामपि ॥  
 अभावे च तथा हेन्वः कर्षाहं न तु राजतं ।  
 वस्त्रयुग्मं नवं सूक्ष्मं पुष्पप्रकरचित्रितं ॥  
 आश्रित्य तत्र तत्पात्रं शुचौ देशे निवेशयेत्(२) ।  
 ततो जागरणं कुर्यात् गीतवाद्यादिमङ्गलैः ॥  
 प्रभाते तु नयेत्पात्रं हरेरायतनं महत् ।  
 स्नाप्य क्षीरादिभिर्होवं विष्णुं संपूज्य वै स्वयं ॥  
 निवेदयेत्तु तत्पात्रं प्रीयतामित्युदीरयेत् ।  
 ततो नानाविधैर्भक्ष्यैः सुगन्धेनोदकेन च ॥  
 दधिखण्डाज्य दुग्धाज्यं नैवेद्यञ्च वलिं हरेत् ।  
 ततो नत्वा गृहं गच्छेदाचार्य्यं प्रीणयेत् पुनः ॥  
 प्रणम्य भोजयेद्भक्त्या व्रतिनश्च हिजेः सह ।  
 कल्पयेद्भोजनं श्रेष्ठं सर्व्वेष्वैवतपस्त्रिषु ॥  
 दीनान्भक्तपणानाञ्च सर्व्वेषामनिवारितं ।  
 अनेनापि व्रतेनैव सम्यक् प्राप्य पदं शुभं ॥  
 मोदते सुचिरं कालमायुष्मान् धनवानिह ।  
 इति नरसिंहपुराणोक्तं पात्रव्रतं ।

— 000 —

( १ ) पूजयेद्भूमिकामोक्ष, तथा भक्त्या सुभावित इति पाठान्तरं ।

( २ ) निवेदयेदिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

युधिष्ठिर उवाच ।

जातिस्मरत्वं देवेश दुष्प्राप्यमिति मे मतिः ।  
तदहं श्रोतुमिच्छामि प्राप्यते केन कर्मणा ॥

कृष्ण उवाच ।

ब्राह्मणश्चैव शूद्रोऽपि कुले महति जन्मवान् ।  
दाता चमी धनी वारमी रूपवान् भद्रकैर्भवेत् ॥  
चत्वारि राजन् भद्राणि चतुष्पादानि तानि वै ।  
तान्येव बहुविधानि दुःप्राप्याण्य कृतात्मभिः ॥  
मार्गशीर्षे तु प्रथमं द्वितीयं फाल्गुने तथा ।  
ज्येष्ठे तृतीयं राजेन्द्र ख्यातं भाद्रपदे परं ॥  
फाल्गुनामलपक्षादौ चोन् मासांस्त नरोत्तम ।  
त्रिपुष्करं समाख्यातमौदार्यकरणं परं ॥  
ज्येष्ठस्य शुक्लपक्षादौ चोन्मासांश्च युधिष्ठिर ।  
तन्त्रिपुष्ककमाख्यातं सत्वशीर्ष्यप्रदायकं(१) ॥  
तथा भाद्रपदस्यादौ चोन्मासान् पाण्डु नन्दन ।  
वरदानेन देवानामृषीणां सेवनेन वा ।  
तीर्थस्नानेन वा देव तपोहीमन्नतेन वा ॥

कृष्ण उवाच ।

चत्वारि राजन् भद्राणि समुपोष्याणि यत्नतः ।  
तत् प्रभावाद्भवेन्नूनं राजन् जातिस्मरो नरः ॥  
शुभीदयः पुरा वैश्यो बभूव यमुना तटे ।

( १ ) रूपीदार्यगुणान्वित मिति पुष्ककान्तरे पाठः ।

तेन व्रतपदस्त्रीर्षः सतः कासकमादसौ ।  
 सञ्जयस्य सुतो जातः स्वर्णहीवीति विन्धुतः ।  
 व्रतप्रभावाज्जातिघ्नः स च चौरैर्निपातितः ॥  
 नारदस्य प्रभावेन पुनरुज्जीवितोऽप्यसौ ।  
 सस्मार पूर्व्ववृत्तान्तं सकलं व्रतधर्मतः ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

सञ्जयस्य कथं पुनः स्वर्णहीवीति वा कथं ।  
 दस्युभिश्च कथं नौतो सत्ववी जीवितः कथं ॥

ज्ञान्य उवाच ।

सञ्जयो नामराजासीत् क्रुमावत्वा नराधिप ।  
 तस्य मित्रे च देवर्षी सदा नारदपुत्र्यतौ ॥  
 एकदा सञ्जयगृहं संप्राप्तौ तौ यदृच्छया ।  
 स्वागतावसदानाद्यैरुपचारैरपूजयत् ।  
 तेषामथोपविष्टानां पूर्व्ववृत्तान्तभाषिणां ।  
 सञ्जयस्य सुता प्राप्ता वरुची पितुरन्तिकं ॥  
 पर्व्वतः प्राह राजानं कन्येयं वरुचिर्षिनी ।  
 गुप्तगुल्का संहतोरुःपौनत्रोष्णिपयोधरा ॥  
 पद्मपत्रेक्षणनखा पद्मकिञ्चल्कसन्निभा ।  
 पाकुञ्चितमृदुस्निग्धैः केशैरतिततैर्धनैः ॥  
 सविलासागजगता सुनाया कौशलस्वरा ।  
 अहो रूपमहो धैर्यमहो लावस्य सुत्तमं ॥  
 तिलपुष्पस्फुटा नासा रूपं सं परिलक्ष्यते ।

कस्येयं भद्रका भद्रा ममातिहृदयङ्गमा ॥  
 एवं ब्रुवाणं तं विप्रं विभ्रयोत्फुल्ललोचनं ।  
 राजा प्राह ततो ब्रह्मन् दुहित्वा मम पर्वत ॥  
 अथोवाच वचो धीमान्नारदः क्षुभितेन्द्रियः ।  
 राजन्निर्वेष्टुकामोऽहं कन्येयं दीयतां मम ॥  
 ईप्सितस्ते प्रदास्यामि वरमत्यन्तदुर्लभं ।  
 एवमुक्त्वा नारदेन प्रीतात्मा सञ्जयस्तदा ॥  
 कृताञ्जलिश्वाचेदं प्रहृष्टोत्फुल्ललोचनः ।  
 पुत्रो मे दीयतां क्षिप्रमक्षीणकनकाकरः ॥  
 यस्य मूत्रं पुरीषं वा श्लेष्माणं क्षिपति क्षिती ।  
 जातरूपं हि तत्सर्वं सुवर्णं भवतु स्थिरं ॥  
 एवमस्त्विति तं राजा नारदं प्रत्यभाषत ।  
 सुवर्णश्रीविनं पुत्रं ददामि तव सुव्रत ॥  
 एवमुक्त्वा सतीं कन्यां सालङ्कारां समध्यमां ।  
 विवाहयामास तदा नारदी हृष्टमानसः ॥  
 तत्तस्य चेष्टितं दृष्ट्वा पर्वतः क्रोधमूर्च्छितः ।  
 उवाच नारदं रोषाहीनाद्यस्फुरिताधरः ॥  
 मयेयं प्रार्थिता पूर्वं त्वया या स्याद्विवाहिता ।  
 तस्मान्मया समं स्वर्गात्प्रगन्तासि कदाचन ॥  
 दत्तस्त्वयास्य यः पुत्रो वरदानेन नारद ।  
 सोऽपि धीरैरुपहतः पञ्चत्वमुपयास्यति ॥  
 एवमुक्तः पर्वतेन नारदः प्राह दुर्भनाः ।  
 न त्वं धर्मं विजानासि किञ्चिन्मूढासि दुर्भते ॥

सामान्या सर्वभूतानां कन्या भवति सुव्रत ।  
न तस्या वरणे दीनं पश्यन्तीह बहुश्रुताः ॥  
न सेविता त्वया ह्येव तेन मां शपसे रुषा ।  
पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात् प्रथमे पदे(१) ॥  
यस्मादेतद्विज्ञाय शपसे मामनागसं ।  
तस्मात्त्वमप्यहो स्वर्गं न गन्तासि मया विना ॥  
सञ्जयस्य सुतःशपाद्यदि पञ्चत्वमेवति ।  
आनयिष्ये तथाप्येनं यमलोकान्न संशयः ॥  
एवं शप्त्वा तदान्योऽन्यं देवर्षी तावभी पुनः ।  
पूजितौ सञ्जये नाथ जग्मतुः स्वाश्रमं प्रति ॥  
अथास्य सप्तमे मासि जातः पुत्रो नृपस्य सः ।  
स्वर्णं ष्ठीवीति(२) नामास्य यन्मार्धमकरोत्पिता ॥  
जातिस्मरः स्मरवपुः सुवर्णोत्पत्तिकारणं ।  
सर्वभूतस्य तज्ज्ज्ञोऽभूद्भ्रततफलादिह ॥  
तत्र श्लेषपुरीषादि यत् किञ्चित् क्षिपते क्षिती ।  
जायते कनकं सर्वं शप्त्वादाकारदस्य च ॥  
तेमासौ यजते राजा क्षिप्रवद्भूरिदक्षिणैः ।  
राजस्त्रिधादिभिर्यज्ञैर्विधैरधिपूजितः ॥  
वभार भृत्यानितरान् सुपोष स्वजनातिथीन् ।  
अकार देवतागारान् सरारामादिवापिकाः ।  
जातस्त्रेहस्र तं पुत्रं ररक्ष रक्षिभिर्हृतं ॥

(१) सप्तमे पदे इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) षष्ठीवीति इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

राशयः कनकानाञ्च बभूवुर्भूपतेः सुतात् ।  
 अथास्य दस्यवः केचित् श्रुत्वा तं कनकाकरं ॥  
 धनलीभेन तं जघ्नुर्दाक्षिणात्या महोदताः ।  
 तस्मिन् विनष्टे तत्रष्टं वरदानसमुद्भवं ॥  
 कनकं मश्यते राज्ञी जगामान्योऽन्यतः क्षयं ।  
 घातितं दस्युभिः पुत्रं ज्ञात्वा राजा सुदुःखितः ॥  
 विललापाकुलमतिः सम्मोहेन पपात च ।  
 विलपन्तं तु तं दृष्ट्वा नारदः प्राह सत्वरं ॥  
 राजन् विपादं माकार्षीः शृण्विमाभारतीं कथां ।  
 इत्युक्त्वा स समाचख्यौ चरितानि महौजसां ॥  
 विनष्टानां नरेन्द्राणां यतीनां दक्षिणावतां ।  
 श्रुत्वा राजा नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनां ॥  
 विनष्टशोकः सहसा प्रकृतिस्थो बभूव सः ।  
 नारदोऽपि नरेन्द्रस्य मृतं पुत्रं यमालयात् ॥  
 आनयामास तरसा यथारूपं यथाहृतं ।  
 दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा स पुत्रन्तं परितृष्टेन चेतसा ॥  
 ब्रीडितो विस्मितश्चैव कृताञ्जलिरथाप्रवीत् ।  
 किमाश्चर्यं प्रसन्नेन भवता मम नारद ॥  
 दत्तः पुत्रस्तथा भूतो दस्युभिर्निर्हृतो यथा ।  
 षण्मासान्ते पुनरसौ जीवितं सर्व्वमेव तत् ॥  
 सञ्चार पूर्व्वहृत्तान्तं जातिस्मरणकारणं ।  
 व्रतं व्रतथेष्ठमिदं किमन्यत कथयामि ते ॥  
 तथा भाद्रपदस्यादौ त्रीन्मामान् पाण्डुनन्दन ।



तस्मिन्पुष्करमाख्यातं बहुविद्याप्रदायकं ॥  
 तथा मार्गशिरस्यादौ ब्रौन् मासांश्च नराधिप ।  
 तद्विष्णुपदमित्युक्तं सर्व्वधर्मप्रदायकं ॥  
 मुनिभिः कथितान्येवं भद्राख्येतानि भारत ।  
 कर्त्तव्यानि नरैः स्त्रीभिर्वाङ्गणानुमतेन वै ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

विस्तरेणैव मे ब्रूहि देवदेव जनार्दन ।  
 भद्राणां नियमाधानं प्रधानं मधुसूदन(१) ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु राजन्वदितो भद्राणां विस्तरं परं ।  
 कथयिष्ये न क्वचित् यन्मया कस्यचित् पुरा ॥  
 शुक्ला मार्गशिरस्यादौ चतस्रस्तिथयो वराः ।  
 द्वितीया च तृतीया च चतुर्थी पञ्चमी तथा ॥  
 एकभक्ताग्रनस्तिष्ठेत् प्रतिपदि जितेन्द्रियः ।  
 प्रभाते तु द्वितीयायां कृत्वा यत् करणीयकं ॥  
 प्रहरे वै समधिके गते स्नानं समाचरेत् ।  
 मृद्धोमयं तु संगृह्य मन्त्रैरेभिर्विचक्षणः ॥  
 अहन्ते प्रवदिष्यामि विप्राणां विधिसुत्तमं ।  
 एतन्न देयं देयान् वा कथयिष्यामि तानपि ॥  
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ये सुधियोऽमलाः ।  
 तेषां मन्वाः प्रदेया वै न तु सङ्कीर्णधर्मिणां ॥

(१) मृद्धोमयमुद्रम इति पुस्तकाकारे पाठः ।

या स्त्री भर्त्सा विमुक्तापि स्वाचारविरताः सदा ।  
 सापि व्रतं प्रगृह्णीयात्सभर्त्सा शीलसंयुता(१) ॥  
 ज्ञानं नद्यां तद्भागेषु वापीकूपगृहेषु च ।  
 दशवारं फलं ज्ञेयमधिकं हिं समन्त्रकं ॥  
 मृदं मन्त्रेण संगृह्य सर्व्वगात्रेषु दापयेत् ।  
 त्वं हि मृद्वन्दिता देवैः समला यिमलाः कृताः ॥  
 मयापि वन्दिता भक्त्या मामद्यैवामलं कुरु ।  
 एवं जपन् मृदं दत्त्वा स्वहस्त्राये समन्त्रकं ॥  
 जलावगाहनं कुर्यात् कुण्डमालिप्यधर्मवित् ।  
 सिद्धार्थकैः कृष्णतिलैर्बचासर्व्वोषधैः क्रमात् ॥  
 त्वमादिः सर्व्वदेवानां जगताश्च जगन्मय ।  
 भूतानान्त्सु विशुद्धानां रसानां पतये नमः ॥  
 गङ्गासागरजन्तोयं पीष्करं नार्क्ष्यदत्सथा ।  
 यामुनं सन्निभातव्यं(२) सन्निधौ तदिहास्तु मे ॥  
 शरीरालम्बनं कृत्वा पूर्व्वं मृद्धोमयाम्बुभिः ।  
 एवं स्नात्वा समाप्तुत्य त्रिरात्रम्य तटस्थितः ॥  
 निवस्य वाससी शुभ्रे शुचिः प्रयतमानसः ।  
 देवान् पितॄन् मनुष्यांश्च तर्पयेत् सुसमाहितः ॥  
 एवं गृहीतनियमो गृहं गच्छेत् शुचिप्रतः ।  
 न ह्यसेन च संजल्पेत् यावच्चन्द्रस्य दर्शनं ॥  
 स्नात्वा चैव ततो नाम द्वितीयादौ चतुर्दिने ॥

( १ ) सभर्त्सा इत्यत्रा रति पुस्तकान्ते पाठः ।

( २ ) यामुनं चात्रिचत्वारि रति पुस्तकान्ते पाठः ।

नमः कृष्णाच्युतानन्तद्वशीकेशेति च क्रमात् ।  
 चतुर्दिने द्वितीयादिदेवमभ्यर्चयेद्गतं ॥  
 प्रथमेऽङ्गं स्मृता पूजा पादयोश्चक्रपाणिनः ।  
 नाभिपूजा द्वितीयेऽङ्गि कर्त्तव्या विधिवन्नरैः ॥  
 पुरद्विपस्तृतीयेऽङ्गि पूजां वक्षसि विन्यसेत् ।  
 चतुर्थेऽङ्गि जगद्धातुः पूजां गिरसि विन्यसेत् ॥  
 पुष्यैर्विलेपनेर्धूपैरर्घ्यं दद्याद्दिभूषणैः ।  
 प्रवरैर्भूरिनैवेद्यैर्हीपदानैश्च भक्तितः ॥  
 प्रजयित्वा विधानेन विष्णुं विश्वेश्वरं व्रती ।  
 ततो दिनावसाने तु गुह्यं विमले सती ॥  
 अर्घ्यं प्रदद्यात्सोमाय भक्त्या तद्भावभावितः ।  
 स चार्घ्यं यादृशी देय ऋग्भिर्भृङ्गिस्तथेतरैः ॥  
 तत्ते सम्यक् प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर निबोध मे ।  
 चन्द्रनागुरुकर्पूरदधिदूर्वाञ्जतादिभिः ॥  
 रत्नैः समुद्रजैश्चान्यैर्वज्रवेदूर्ध्वमौक्तिकैः ।  
 पुष्यैः फलैश्च कङ्गोलैः खर्जूरैर्मारिकेरुकैः ॥  
 वस्ताच्छादनगोवाजि भूमिष्टेमसमन्वितैः ।  
 सत्त्व युक्तस्य कृत्स्नस्य विधिरेष प्रकीर्त्तिता ॥  
 इतरस्य यथा शक्त्या फलपुष्पाद्यतीदृकैः ।  
 लवणाज्यगुडैस्ते लपयःकुम्भतिलैः सह ॥  
 शशिनं चन्द्रशशाङ्गिन्दो नामानि क्रमशो नरः ।  
 द्वितीयादिषु चन्द्रस्य सङ्कीर्त्यार्घ्यं निवेदयेत् ॥  
 अर्चयित्वा निगयान्तु शशिशुद्ध्या यिवर्षयेत् ।

प्रत्यहं वर्षत्रयोर्घ्यं शशिवृक्षया नृपोत्तम ॥  
 एवमर्घ्यः प्रदातव्यः नृणु मन्त्रविधिक्रमं ।  
 नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ॥  
 विरग्निसमवेतान् वै देवानाप्यायसे इविः ।  
 गगनाङ्गणसन्दीप दुग्धाश्विमघनोद्भव ॥  
 भाभासितदिगाभोग रामानुज नमोऽस्तु ते ।  
 दत्त्वार्घ्यं द्विजराजाय तद्विप्राय निवेदयेत् ॥  
 निर्वत्यार्घ्यं क्रमेणैव ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।  
 भूमिन्तु भाजनं कृत्वा पद्मपत्रसमाश्रितं ॥  
 पाल्शाशैर्मधुपत्रैर्वा(१) सुधीते वा शिलातले(२) ।  
 समालभ्य धरां देवीं मन्त्रेषानेन मन्त्रवित् ॥  
 त्वत्तले भोक्तुकामोऽहं देवि सर्व्वरसोद्भव ।  
 मदनुग्रहाय सुखाद् कुर्व्वन्तीममृतोपमं ॥  
 एवं जघ्ना च भुक्त्वा च शाकपाकगुणोत्तरं ।  
 आचम्य खान्यथालभ्य स्मृत्वा सीमं स्वपेऽूवि ॥  
 भोक्तव्यन्तु द्वितीयायां चतुर्थ्यां गौरसोत्तरं(३) ।  
 घृताक्ताः सगुडा राजन् पञ्चम्यां कशरा भुवि ॥  
 भोक्तव्याः सर्व्वेषु भद्रेषु सदा श्यामाकतण्डुलाः ।  
 प्रसाधितघृतं गव्यं फलं शाकमयान्वितं ॥  
 प्रातः ज्ञानं ततः कृत्वा सन्तप्यं पितृदेवताः ।

(१) चर्मपत्रैर्वा इति पुलकानकरे पाठः ।

(२) शिवातले इति पाठान्तरं ।

(३) चचारखण्डं भुवि इति पुलकानकरे पाठः ।

भोजयेद्वाङ्मयान् भक्त्या दत्त्वा दानं विसर्जयेत् ॥  
 भृत्यवन्धुजनैः सार्धं पश्चाद्भुञ्जीत काम्यया ।  
 एवं भद्रेषु सर्वेषु त्रिमासेषु यतव्रतः(१) ॥  
 करोत्येवं नरो भक्त्या वर्षमेकममत्सरी ।  
 तस्य श्रीर्व्विजयस्यैव नित्यं सोमः प्रसीदति ॥  
 एतत्करोति या कन्या भव्यं प्राप्नोति सा पतिं ।  
 दुर्भगा सुभगा साध्वी भवत्यविधवा सदा ॥  
 राज्यार्थी लभतेराज्यं धनार्थी धनमाप्नुयात् ।  
 पुत्रार्थी प्राप्नुयात् पुत्रानित्याह भगवान् रविः ॥  
 योषित्कुलाकुलविवाहमनोरमाणि  
 शय्यास्रपान(२) शयनाशनशोभितानि ।  
 भद्राख्यवाप्य धनपुत्रकलत्रजातोः  
 जातिस्मरौ भवति भारतभद्रकर्त्ता ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्तं भद्रचतुष्टयव्रतं ।

—(०००)—

समन्तुरुवाच ।

शृणु कौरव कर्माणि तिथिगुह्याश्रितानि तु ।  
 श्रुत्वैव पापहानिः स्यात् कृत्वानन्तं फलं लभेत् ॥  
 श्रीराशनः प्रतिपदि । पुष्याहारो द्वितीयायां(३) ।

- ( १ ) एव भाद्रचिमासेषु निघतात्मा यतव्रत इति पुलकाकरे पाठः ।  
 ( २ ) सस्यास्रपान इति पुलकाकरे पाठः ।  
 ( ३ ) पुष्यप्राशनो द्वितीयायामिति पाठाकरं ।

लवणवर्जितं तृतीयायां । तिलान्नाशी(१) चतुर्थ्यां । क्षीरासनः  
पञ्चम्यां । फलाशनः षष्ठ्यां । शाकाशनः सप्तम्यां । विल्वाहारोऽ-  
ष्टम्यां । पिठाशनो नवम्यां । अग्निपक्वाहारो दशम्यां । एका-  
दश्यामुपवासः । घृताशने द्वादश्यां । पायसाहारस्त्रयोदश्यां ।  
यवान्नाहारश्चतुर्दश्यां । गीमूत्राहारः कुशीदकप्राशनः पौर्ण-  
मास्यां । एवं प्राशनविधिः ॥

उक्तानि प्राशनाद्येवं विधिपूर्वमुदाहृतं ।

क्षीरप्रतिपदागन्तुं स सर्वासु विधीयते ॥

स क्षीरप्रतिपदात्की विधिः कथ्यते ॥ तत्र त्रतदिनात् पूर्व-  
दिने त्रिकालस्नानमुपवासश्च पवित्रः सूक्तजपः गिरसा सह  
गायत्रीजपश्च तत्पूर्वदिने एकभक्तं विधायोपवाससङ्कल्पः  
त्रतदिवसे द्विजैभ्यो दक्षिणादानमिति एष पूर्वः प्राशनविधि  
स्तिथीनां । एवमनेन विधिना पक्षमेकं यो वर्त्तयति अथ  
मेधफलं दशगुणं प्राप्नोति स्वर्गं सन्वन्तरं यावत् प्रतिवसति  
उपगोयमानाप्सरोगन्धर्वैः सह वासः । सामचतुष्टये तु सोऽश्वमेध  
राजसूयानां शतगुणं फलमाप्नोति । स्वर्गे उपगोयमाना-  
प्सरोभिर्गन्धर्वैश्चतुर्गुणानां सप्ततिं यावत् प्रवर्त्तति । सर्मेकः  
संयत्सरः । य एवं नियमाद्राजत्राश्वयुजनवम्यां वैशाखवृती  
यायां कार्त्तिके पौर्णमास्यां वा तिथिव्रतानि गृह्णाति ।

( १ ) तिलस्नाद्येति पुस्तकान्तरे पाठः ।

ब्रह्मचारी गृहस्थो नारी नरो वा शुचिः प्रयतमानसः पुष्य-  
दन्तविभुसालोक्यं व्रजति ॥

पुष्यदन्तविभुः सूर्यः ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं महाफलव्रतं ।

—on(1)uo—

ज्यैष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदो दिवं ।

यात्यष्टमी चतुर्दश्या रूद्रव्रतमिदं स्मृतं ॥

अष्टमीचतुर्दश्याविति च । चत्वारि दिनानि पञ्चाम्नि-  
साधनं तच्चतुर्थे दिने सायं सुवर्णधेनुं दद्यात् ।

इति पद्मपुराणोक्तं रूद्रव्रतं ।

—000—

द्वे पञ्चम्यौ हि मासस्य द्वे च प्रतिपदौ नरः ।

सोपवासः सुगन्धाब्जः शयीत प्रियया सह ॥

खगनिशलचिक्नस्तु रतिप्रीतिविवर्जितः ।

सुगनिशलचित्तः सूर्यध्यानपरः ॥

ममस्य स्मृतिशीलस्य तस्य पुण्यफलं शृणु ।

दिव्यं वर्षमहस्रं तु दिव्यं वर्षशतं तथा ॥

ततस्तु भावयत्येनं (१) महादेवं न संगमः ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तं सम्भोगव्रतं ।

(१) तत्रैतन्न वक्ष्येन इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

पौर्णमास्याममावास्यां चतुर्दश्याष्टमीषु च ।  
 नक्तमष्टन्तु कुर्वीत हविष्यैर्ब्रह्मचारिणी ॥  
 उमामहेशप्रतिमां हेन्ना कृत्वा सुशोभनां ।  
 राजतीं वापि कर्षार्हे स्नापयित्वा घृतादिभिः ॥  
 गन्धपुष्पै रलङ्कृत्य वस्त्रयुग्मैश्च शोभनैः ।  
 भक्ष्यभोज्यैरशेषैश्च वितानध्वजचामरैः ॥  
 भोजयेच्छिवभक्तांश्च दीनानाथान् प्रतर्पयेत् ।  
 शक्त्या च दक्षिणां दद्याच्छिवमन्त्रैः समापयेत् ॥  
 ताम्रकांस्यादिपात्रं वा सितवस्त्रावगुण्ठितं ।  
 कृत्वा वायतनं मध्ये प्रतिमान्मूपकल्पयेत् ॥  
 पात्रमेवायतनं उपकल्पयेत् स्थापयेत् ।  
 गिरस्थाधाय तत्पात्रं शोभितं पुष्पमालया ॥  
 ध्वजगंस्यादिविभवेः शिवस्यायतनं नयेत् ।  
 लिङ्गमूर्त्तौ हेगस्य व्रतस्यान्ते निवेदयेत् ॥  
 तद्दद्यात् स्थापयेत्पात्रमुपशोभाममन्वितं ।  
 शिवं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य समापयेत् ॥  
 समाप्येतद्गतं पुण्यं शृणु यच्च फलं लभेत् ।  
 द्वादशादित्यसंकाशैर्महायानैर्मनीहरैः ॥  
 यद्येष्टमैश्वरे लोके रुद्रैः सार्धं प्रमोदयेत् ।  
 कल्पकोटिमहस्त्राणि कल्पकोटिगतानि च ॥  
 तदन्ते स महाभागो विष्णुलोके मर्हीवने ।  
 इति शिवधर्मीक्तमुमामहेश्वरव्रतं ।



अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नियतव्रतचारिणी ॥

वर्षमेकं न भुञ्जीत महीभोगजिगीषया ।

वर्षान्ते प्रतिमां कृत्वा पूर्ववद्विधिमाचरेत् ॥

स्नानार्थीस्तद्व्रतं प्राप्य पूर्वोक्तांस्तु गुणान् लभेत् ।

अत्राप्युमामहेश्वर प्रतिमा कर्त्तव्या । पूर्ववदिति पूर्वव्रतोक्त  
वदित्यर्थः ।

जाम्बूनदमयैर्यानेष्वतुर्द्वारैरलङ्कृतैः ॥

गत्वा शिक्पुत्रन्दिव्यं अशेषं भोगमाप्नुयात् ।

उमामहेश्वरं नाम व्रतमीश्वरभाषितं ॥

कारुण्यात् सर्वानारीणां नरानाञ्च विशेषतः ।

तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन उमामहेश्वरव्रतं ॥

कर्त्तव्यं नरनारीभिः सखमक्षयमाप्नुयात् ।

उमादेवीप्रियार्थन्तु नष्टेन परमार्थतः ॥

इति शिवधर्म्मोत्तरोक्तमपरमुमामहेश्वरव्रतं ।

—000—

निस्वस्रं समश्रुत्य द्वादशाहमभोजनं ।

यः कुर्याद भ्रूणहात् पापान्मुक्ते भवति नारद ॥

शिवोत्र देवता ।

इति सौरपुराणोक्तं पापमोचनव्रतं ।

—000—

सूतउवाच ।

पौर्णमास्याममात्रास्यां वर्षमेकमतन्द्रिता ।  
 उपवासरता नारी नरो वा द्विजमत्तमाः ॥  
 वर्षान्ते सर्वगन्धाख्यां प्रतिमाञ्च निवेदेयेत् ।  
 साभवान्यास्तु सायोक्ष्यं सारूप्यं वायुसुव्रता ॥  
 लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं सुनीश्वराः ।  
 इति लिङ्गपुराणोक्तं भवानीश्वरं ।

— ००० —

द्विधाष्टम्यौ तु मासस्य चतुर्दश्यां तु हे तथा ।  
 अमावस्यापौर्णमास्यौ सममीद्वाद्दशोदयं ॥  
 संवत्सरमभुञ्जानः सततञ्च जितेन्द्रियः ।  
 ब्रह्मचर्यं फलं यच्च यत्फलं सत्रयाजिनं<sup>(१)</sup> ॥  
 ऋतुगामिफलं<sup>(२)</sup> यच्च तद्वाप्रोत्यभोजनात् ।  
 एषु तिथिस्वामिनी देवताः ।  
 इति यमस्मृत्युक्तं तिथियुगलव्रतपञ्चकं ।

— ०००(१,०००) —

चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयो शुक्लकृष्णयोः ।  
 योऽष्टमेकं न भुञ्जीत शिवार्धनरतः शुचिः ॥<sup>१</sup>  
 यत्पुण्यमक्षयं प्रोक्तं सततं सत्रयाजिनं ।  
 तत् पुण्यं सकलं तस्यां गिवलीकञ्च गच्छति ॥  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तं शैवोपशामन्नं ।

(१) सत्रयाजिनमिति पुलकान्तर पाठः ।

(२) ऋतुगामिफलमिति पुलकान्तर पाठः ।

कृष्णाष्टम्यां तु नक्तनेन कृत्वा कृष्णचतुर्दशीं ।  
 इह भोगानवाप्नोति ( १ ) परत्र शिवमृच्छति ॥  
 इति श्रीभविष्यपुराणोक्तं शिवनक्तव्रतं ।

— ००० —

सुत उवाच ।

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ।  
 वर्षमेकं ततो भुक्त्वा नक्तं यः पूजयेच्छिवं ॥  
 सर्व्वयज्ञफलं प्राप्य स याति परमाङ्गतिं ।  
 इति लिङ्गपुराणोक्तं महाव्रतं (२) ।

— ००० —

पौषमासे तु संप्राप्ते पक्षयोरुभयोः सुत ।  
 चतुर्दश्यामथाष्टम्यां पीर्णमास्यामथापि वा ॥  
 नित्यं निर्व्वर्त्य विधिवत् ततः काम्यं समाचरेत् ।  
 विशिषपूजा तत्रैव कर्त्तव्या शुद्धचेतसा ॥  
 नैवेद्यं यावकपस्यं खण्डं चोराज्यसंस्कृतं ।  
 रुद्रसंख्यांस्तु वै विप्रान् भोजयेत्तैव दत्तयेत् ॥  
 वितस्तिमात्रां प्रकृतिं यावपिष्टेन निर्मातां (३) ।  
 समृद्धस्वरलाङ्गुलीकृतभूषान्तु कारयेत् ॥  
 शिवाय तु प्रदातव्या कपिला गुरवे ततः ।  
 स्ववाहनसमायुक्ता व्रतपुण्यमतः शृणु ॥

( १ ) इह भोगानवाप्नोति पुस्तकाकारे पाठः ।

( २ ) मन्वखण्डे व्रतामिति पुस्तकाकारे पाठः ।

( ३ ) यथापिष्टं न निर्मातामिति पुस्तकाकारे पाठः ।

सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्बिमानैः सर्वकामिकैः ।  
 रुद्रहृन्दसमाकीर्णं रुद्रकन्यासमाहृतैः ॥  
 हृषभस्यन्दनैर्युक्ती नानागीतरवाञ्चितः ।  
 त्रिःसप्तकुलसंयुक्तो यात्यसौ यत्र शङ्करः ।  
 यावत्तद्ग्रीमसंस्थानं तत् प्रसूते कुलेषु च ॥  
 तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ।  
 सामीप्यं तु समासाद्य सायोज्ज्वं याति वा ततः ॥  
 अनेन विधिमाग्रेण खड्गं पिष्टमयं शिवे ।  
 समर्थं च विधानेन चक्रवर्तिपदं लभेत् ॥  
 फाल्गुने तु तथा चक्रं निवेद्य तत्पदं लभेत् ।  
 चैत्रे शिवं पिष्टमयं निवेद्य च शिवायतः ॥  
 स मुञ्चति ब्रह्महत्यां शिवलोकमवाप्नुयात् ।  
 वैशाखे मासि दण्डायं शिवस्याग्रे निवेदयेत् ॥  
 हस्तार्धं (१) पिष्टजं कार्यं पूजान्ते तु निवेदयेत् ।  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोके महीयते ॥  
 ज्येष्ठे पिष्टमयं खड्गं शिवाय विनिवेदयेत् ।  
 मुच्यते तु कृतघ्नत्वादरुद्रलोके तु गच्छति ॥  
 आषाढे पिष्टजं पात्रं शिवाय विनिवेदयेत् ।  
 मुच्यते दुष्कृतेः सर्वैरिह जन्मनि सञ्चितैः ॥  
 ध्वजं पिष्टमयं यस्तु शिवस्याग्रे निवेदयेत् ।  
 यावणे तु विधानेन सोऽजय मोक्षमाप्नुयात् (२) ॥

(१) वक्रापमिति पुलकान्तर पाठ ।

(२) मुच्यते मोक्षमाप्नुयादिति पुलकान्तर पाठ ।

मासे भाद्रपदे यस्तु गदां पिष्टमयीं ददेत् ।  
 निधीशत्वं तु सम्प्राप्य शिवलोके महीयते ॥  
 मासि चाश्व युजे शूलं दत्त्वाऽपिष्टसम्भवं ॥  
 शिवाय पुरतो देयं भ्रूणहत्यां व्यपीडति ।  
 कार्तिके तु गदाञ्चक्रं शिवस्याग्रे निवेदयेत् ॥  
 सप्तजन्मकृतं पापं दहत्यग््निरिवेन्धनं ।  
 मासे वै मार्गशीर्षे तु कमलं पिष्टसम्भवं ॥  
 शिवाय विधिना देयं(१) सर्वैश्वर्यमवाप्नुयात् ।  
 सर्वेषाञ्चैव नक्तन्तु व्रतानां कीर्तितं मया ॥  
 नित्यपूजान्तु निर्व्वर्त्य काम्यपूजान्तु कारयेत् ।  
 मासि मासि गुरोः पूजा कर्त्तव्यन्तु व्रतार्पणं ॥  
 महापूजा(२) वत्सरान्ते कर्त्तव्या तु विधानतः ।  
 गुरवो दक्षितव्यास्तु हेमवस्त्रान्नवाहनैः ॥  
 ततः फलमिवात्तूर्णं यथोक्तं कृत्तिकासु च ।  
 विक्तशाठ्यान्महासेन दृष्टापूतेर्वियुज्यते ॥

इति कालोत्तरोक्तं शिवव्रतं ।

( १ ) पुरतोदधमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

( २ ) महौपूजा इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

अथ शक्रध्वजोच्छ्रायविधिः ।

देवीपुराणे ।

शक्र उवाच ।

केन सा विधिना लब्धा मम वंशक्रमागतैः ।

ध्वजयष्टिर्विशेषेण तद्विधिं कथय प्रभो ॥

ब्रह्मोवाच ।

गङ्गायाः सिकतासंख्या क्रियते सुरसत्तम ।

न भवेद्दैत्यवंशस्य देवराज जिगीषतः ॥

विष्णुना घातिताः केचित् केचिद्देवेन शम्भुना ।

गुह्येन निहताः केचित् मया केचिज्जिवांसिताः ॥

देवोभिर्व्विह्वलान्ये न तथापि क्षयकृताः ।

सुवलीनाम दैत्येन्द्रो हंसकेतुर्भ्रूहावलः ॥

मम वंशसमुत्पन्नीदण्डघातश्च वामव ।

तेन पूर्व्वं क्षिता देवाः भानोर्भन्वन्तरे(१) विभी(२) ॥

समागताः समस्तास्तु सह शक्रेण वासव ।

यथा न शक्ताः समरेदैत्यान् योषुं पितामह ॥

शत्रुणा परिभूताश्च शरशं त्वाङ्गता वयं ।

तदाहं चिन्तयन्(३) शक्त विष्णुरक्षां दिवोकसां ॥

( १ ) भौत्येभन्वन्तरे विभीरति पुलकान्तरे पाठः ।

( १ ) मान्ये भन्वन्तरे विभी इति पाठान्तरं ।

( १ ) तदाहं चिन्तयन् तेषां वक्षोपायं पराक्षयत्रिति पुलकान्तरे पाठः

केतुना शम्भुदत्तेन उच्छ्रितेन न संशयः ।  
 उक्त्वा मया सुराः सेन्द्रा विष्णुराराध्यतां प्रभुः ॥  
 च हास्यति महाकेतुं सर्व्वं दैत्वविमोहनं ।  
 त्वे मता भम चादेशात् क्षीरोदे यत्र केशवः ॥  
 परापरस्वरूपस्थमज-मव्यय-शाश्वतं ।  
 श्रीवक्त्राङ्गं महाबाहुं कौस्तुभोरस्कभूषितं ॥  
 स्तुवन्त्येते तदा सेन्द्रा देवाः शत्रुभयार्हिताः ।  
 ततोष केशवस्तेषां वरं ब्रूहि पुरन्दर ॥  
 तदा तैर्याचितो देवः केतुन्देहि सुरारिहं ।  
 तेना सौ भूषयित्वा तु दत्तो देवभयापहः ॥  
 श्वेतकृष्णं महातेजः सुमालाकटकान्वितं ।  
 सूर्यायुतसमप्रख्यं किङ्किणीरवकान्वितं ॥  
 चामरव्यजनोपेतं शत्रुलक्षणलक्षितं (१) ।  
 तं दृष्ट्वासी वलं सैन्यं भग्नं स च निपातितः ॥  
 तदा प्रभृति हे शक्र केतुस्तव कुलागतः ।  
 अन्येषाञ्चैव राज्ञां तदुच्छ्रायो विजयावहः ॥  
 मया हरेण देवेन विष्णुना वासवेन च ।  
 दत्तं यः कश्चिदेवेमं नृपतिस्तं त्रयिष्यति (२) ॥  
 स समस्ताधिपीभूमौ षज्जेषथ भविष्यति ।  
 एवं शक्रस्य ब्रह्मणा कषितं केतुकारणं ॥  
 मयापि तव विद्येय सर्व्वं न्तश्च प्रकाशितं ।

(१) शत्रुलक्षणं कषितमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) दत्तं यः कश्चिदेवेमं नृपतिस्तं त्रयिष्यतीति पाठान्तरं ।

नृपवाहन उवाच ।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि तस्यचोच्छ्रायणं यथा ।  
क्रियते दिनऋते तु द्रव्यं मन्त्रविधिम्बद्धम् ॥

अगस्त्य उवाच ।

ब्रह्मणा कथितं शक्रे बृहस्पतिसमीपतः ।  
यथा प्रवक्ष्यामि तथा विधिङ्कितोः समुच्छ्रये ॥  
शुभाहे ऋत्तकरणे मुहूर्त्ते शुभमङ्गले ।  
दैवज्ञः सूत्रधारश्च वनं गच्छेत् सहायवान् ॥  
देवीप्रतिष्ठा विधिना याचा या च प्रचीदिता ।  
पात्राविधिना च यनं गच्छेत् ।

गत्वा हृत्तं शुभं वीक्ष्य ध्वजार्जुनप्रियङ्गकं ।  
उडुस्वराश्वकर्णोच्च पश्चैति शोभना नृप ॥  
प्रियङ्गुकी वीजकः अश्वकर्णः सर्जः ।  
ध्वजार्थं वर्जयेत् वत्स देवतोद्यानजान्द्रुमान् ।  
कन्यमथ्योत्तमा यष्टीः करमामेन कल्पयेत् ॥  
एकादशकरा वत्स नवपञ्चकरापरा ।  
अवनष्टां क्षमिचितां यथापत्तिनिकेतनां ॥  
वल्मीकपिटवमजां सुशुष्कां कोटरान्तथा ।  
कुन्दाश्वण्डसिल्लाश्च तथा स्त्रीनामगर्भितां ॥  
विद्युहृत्पहताश्चैव दग्धां च परिवर्जयेत् ।  
अलाभे चन्दनं चाम्बं शासं शाकमयं तथा ॥  
कर्त्तव्यं शक्रचिह्नार्थं नान्यत्तद्योद्धवं क्षचित् ।



शुभभूमिभवं याह्यं शुभतीयं शुभावहं ॥  
 ततः संपूजयेद्दृक्षं प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ॥  
 नमो वृक्षपते वृक्ष त्वामाचरति पार्थिवः ।  
 ध्वजार्थं तत्त्वतीनाथ(१) नान्यथा उपगम्यतां ॥

पूजा मन्त्रः ।

रात्रौ देवो वलिस्तत्र युगवृक्षे तथैव च ।  
 वासवार्थं महावृक्षं कृत्वान्यत्र च गम्यतां ॥  
 ध्वजार्थं देवराजस्य न क्लान्तिस्तत्र तत्र च ।

वलिमन्त्राः ।

वराह संहितोक्ताद्यात्र मन्त्राः ।

यानीह वृक्षे भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोस्तु ते ।  
 उपहारं गृहीत्वैमं त्रियतां वासमर्पय ॥  
 पार्थिवस्त्वां वरयते श्वस्ति तेस्तु नगोत्तम ।  
 ध्वजार्थं देवराजस्य पूज्यं प्रतिगृह्यतामिति ॥  
 पूजयित्वा ततोवृक्षं वलिं भूतेषु दापयेत् ।  
 प्रभाते ऋदयेहृक्षं सुभस्त्रप्रादिदर्शनैः ॥  
 शक्ताम्बरं नरश्चैव समुद्रतरणं नदी ।  
 वृक्षान् यामान् शुभान् कौरानारोहेहेवतालयं ॥  
 देवहिजास्तथा साधुलिङ्गं ब्रह्महरेरपि ।  
 प्रतिमा पूजिता स्वप्ने क्षिप्रं सिद्धिप्रदायका ॥  
 मत्स्यमांसं दधिलाभं वधिरं सृतरोदनं ।  
 अगम्यागमनं कृत्वा चाशुसिद्धिफलप्रदा ॥

(१) ध्वजार्थं देवराजस्तीति पाठान्तरः ।

द्रुमाद्रिलङ्घनं धन्यं शत्रुनाशं तथाशुभं ।  
 फलं पुष्पं सितं दूर्वा स्वप्ने लब्धा जयेन्मही ॥  
 शङ्खा गावस्तथादन्तिलाभो राज्यप्रदायकः ।  
 गौः सवल्सा नवसूता दृष्ट्वा पुत्रफलप्रदा ॥  
 पङ्के उत्तरणं कूपे व्याधिमोक्षकरश्चिरात् ।  
 एवं स्वप्नान् शुभान् दृष्ट्वा ततश्छन्देत पादपं ॥  
 उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मधुवत् प्राक् पशुं ददेत्(१) ।  
 पूर्वोत्तरे पतन् शस्तो भगव्दो भ्रमणः शुभः ॥  
 अनज्जपादपेनाग्रे भग्नया तु परित्यजेत् ।  
 अष्टाङ्गुलं त्यजेन्मूलमघाईन्तु जले क्षिपेत् ॥  
 षडं चतुरङ्गुलं शेषद्वयं जले क्षिपेत् ।  
 तथा तमानयेवञ्च शकटेन हवैरपि ॥  
 तं जलक्षितं दृष्ट्वा ।  
 प्रधानैर्लक्षसम्पन्नैर्नयेत पुरतः पुरं ।  
 नीयमाना वदा यष्टिः समा वा चतुरस्रका ॥  
 वृत्ता वा भङ्गमाधत्ते राज्ञः पुत्रपुरीहितान् ।  
 पारभङ्गे बलिं भिष्याद्वैम्यनाशे क्षयन्तथा ॥  
 [भिष्यात् नाशयेत्] राजादीन् नैम्येषिसम्बन्धि ऋतं ।  
 रत्नस्यपक्षभङ्गेन शान्तिस्तत्र तु कारयेत् ।  
 इन्द्रक्षत्रेतिमन्त्रेषु जातवेदसयापि वा ॥  
 तथा नीत्वा शुभे लम्बे(२) पुरस्तादुपवेशयेत् ।

(१) मधुवत्प्राङ्मुखः शुभः इति पुस्तकाकारे पाठः ।

(२) यथा लम्बेति पुस्तकाकारे पाठः ।

द्वारशीभां पथिरप्यागृहे च देव कारयेत् ॥  
 पदुपट्टहनिनदांश्च वेद्याः शङ्कहिजातयः ।  
 मङ्गलैर्वेदघोषैश्च नयेयुर्थ्यत्र चोच्छ्रयः ॥  
 वस्त्रैरण्डजसोमोद्वैः(१) शुभैः स्रष्ट्वैर्यथाक्रमं ।  
 गन्दीपनन्दसंज्ञाश्च कुमार्यैः प्रथमांशकाः ॥  
 देव्यो जयविजयाख्या षोडशांशव्यवस्थिताः ।  
 अधिके शक्रजननी जयन्तश्चैव देवताः ॥

षोडशेषु अधिके सति अयमर्थः । अथोत्तरं षोडशा-  
 धिकाः । ध्वजभागात्ध्वज(२) स्तम्भस्तस्य भाव्याः । तत्र प्रथमे  
 द्वितीये च भागे प्रतिदिशं हे कुमार्थ्यौ कार्यं तृतीयेत्वेका ।  
 तासामायामविस्तारो भागाविमौ तत्र प्रथमांशगाः कुमार्थ्यैः  
 प्रतियुग्मं नन्दोपनन्दावेति द्वितीयांशगा जया विजया चेति ।  
 तृतीयांशगाः प्रत्येकं शक्रजननी देव्यो ज्ञेयाः । ध्वजमस्तके  
 दक्षोपदक्षान्नेयादेवताः ध्वजप्रमाणत्रयं शीघ्रं परिधिः प्रथमः  
 (षोडशांशविहीनानि कुर्याच्छेषाणि बुद्धिमान् ।) वक्ष्यमाण  
 भूषणानामिदं मानं । ध्वजं त्रिभागं कृत्वा एकस्य भागस्य  
 दैर्घ्येण प्रथमभूषणपरिधिं निर्द्धार्य शेषाणि यथोत्तरं षोड-  
 शांशहीनपरिधीनि कुर्यात् । अतएव भूषणप्रवेशयोग्यं ध्वजस्य-  
 स्त्रीस्य कार्यमित्युक्तं भवति । भूषणानि विषिन्नवर्णानि  
 स्वयम्भूवे प्रथमे दद्यात्(३) ।

(१) वीचीग्वैरिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) सप्तोभागादिति पाठान्तरं ।

(३) रसनां विषिन्नवर्णां स्वयम्भूवे प्रथमोदद्यादिति पाठान्तरं ।

सुरक्तां चतुरस्राञ्च विष्णुकर्णाद्वितीयकां ।  
 अष्टम्यान्तु स्वयं शक्ती नौसरक्तां प्रदापयेत् ॥  
 कृष्णां यमस्य हृत्ताञ्च वरुणस्य षड्स्त्रिकाः ।  
 मस्त्रिष्ठाजलदाकारा वायुर्देवो मयूरकां ॥  
 नीलवर्णां च तां दद्यात् स्कन्दो बहुविचित्रितां ।  
 हृत्तान्तु दहनेदद्यात् स्वर्णाभां विष्णुमष्टमीं ।  
 वैदूर्यसदृशमिन्दो धैर्येयन्दापयेत् स्वयं ॥  
 अर्धचन्द्राकृतिः सूर्यो विष्णुदेवास्तु पद्मवत् ।  
 ऋषयोनिवसन्दद्यात् नीलनीलोपलोपमं ॥  
 गुरुणा शुक्रेण ततो नक्षत्रैश्च समन्ततः ।  
 न्यस्तं गृहे विचित्रञ्च तथैव बहुमाह्वयिभिः ॥  
 यद्यद्येनैव दत्तन्तु केतो यस्तस्य भूषणं ।  
 तद्देवतं-विजानीयाद्यन्नाहनि समुच्छ्रयेत् ॥  
 उच्छ्रयदिने तां तान्देवतां पूजयेदित्यर्थः ।

प्रथमं प्रविशतिभूमौयष्टिः साहस्य राहस्य प्रथमं पुरुष प्रयत्नान्  
 पूर्वः उच्छ्रितमात्रैव । बालानां तालशब्दैर्देशविघातं समा-  
 चष्टे । नृपवन्मन्त्रैर्विशीर्षा शुभावहा सर्वशान्ता च शम्भुसूर्य-  
 यमशक्रसीमधनदवारुणाः ।

वज्रीय ऋषिमन्त्रैश्च होतव्यादधिवाचताः ।

शम्भुत्रयार्श्वरः दध्यक्षतैश्चमित्रा होतव्याः ॥

शुक्रस्कन्दगुरुशुक्रपञ्चरादीन् प्रपूजयेत् ।

बुद्ध्या तु विधिवद्भक्तिज्वालां लभेत बुद्धिमान् ॥

सुतेजाः सुप्रभोदीतः संहृतो रविसप्रभः ।

रक्तांशुकसमाकारोरधभेरी स्वनशुभः ॥  
 शङ्खदुन्दुभिमेघानां नादाः शस्तास्तु पावके ।  
 ततः कदलीक्षुदण्डान् पताकांश्च समुच्छेयेत् ॥  
 अन्याश्च विविधाः शोभाः शक्रकेतुसमुच्छेये ।  
 ग्रीष्ठपदेतु अष्टम्यां शुक्यायां शोभनर्चके ॥  
 आश्विने वाद्य शुक्यायां श्रावणे वा समुच्छेयेत् ।  
 पौरजननग्नवन्द्यैः पटुभेरीविनोदितं ॥  
 वितानध्वज शोभाक्यं पलाकाभिः समुत्थलं ।  
 विश्वोद्युशक्रमन्त्रेण सिद्धरक्षाकृतेन च ॥  
 सिद्धं जनितानिग्रयं रक्षा कृते न भस्याना प्रयुक्तेन ।  
 दृढं मातृकदण्डस्य शुभतोरणमङ्गलं ॥  
 मातृकदण्डी तोरणस्तम्भी ।  
 अविलम्बितमुत्थानमभग्नपीटकं समं ।  
 पीटकं भूषणं ।  
 नष्टृतं वा समुत्थाप्य केतुवासवयोर्विभी ।  
 वराहसंहितायां ।  
 कृतं ध्वजादर्शहलार्धचन्द्र  
 विचित्रमालाकदलीक्षुदण्डकैः ।  
 सव्यालिसिंहेः पिटकैर्गवाक्षै  
 रलङ्कृतो दिक्षु च लोकपालैः ॥  
 अच्छिन्नरज्जुं दृढकाष्ठमाटकं  
 सुस्निष्टयन्त्रायलयदतोरणं ।  
 उत्थापयेन्नक्षत्रसहस्रचक्षुषः

सारदुमा मन्मकुमारिकात्विति ॥

उच्छिन्नं सक्षयेत् प्राज्ञः काकीसूक्तकपोतकैः ।

नक्षोपवेशनं दद्यादन्येषामपि पक्षिणां ॥

पयोद्देशं ततः कुर्यान्नखण्डितैर्यथाविधि ।

उद्देश्यो भूभागः ।

तथास्तु संस्थितं पूष्य सुखयन्मसुयन्नितां ॥

रात्रौ जागरणं कुर्यादिन्द्रमन्वानुकीर्त्तनैः ।

पुरोहितः सदैवज्ञः शुभशान्तिरतः सदा ॥

यन्वपाति नृपं हन्यात्यातकान्महिषी बधं ।

पिठके युवराजस्य सवितानानुकम्पने ॥

राष्ट्रे तोरण पातिन ध्वजे अन्नक्षयो भवेत् ।

ध्वजे ध्वजोत्सवे क्रियमाणे ।

पतने शक्रदण्डस्य नृप मन्युं समादिशेत् ।

कामिजालकउत्थानशसभातस्कराद्वयं ॥

ससमे संस्थिते शान्तिर्नृपस्य नगरस्य च ।

यावन्नोच्छ्रित आस्तेतावत्पौराः सदा हृष्टाः ॥

केतोर्निरतायजने भुष्मीरन् विप्रकन्याच ।

भुष्मीरन् भोजयेत् ।

विहृतम्बिकेतुस्तिष्ठति दिवसाष्टकं यावत् ।

घाते पाते कुर्यादुच्छ्रायणे यादृशी पृजा ॥

रात्रौ शुभकल्पतनत्रोदष्टं काककपोतिकाद्यैः ।

नृपं याति सहराट्टं यस्त्वेवं कारयेत् केतुम् ॥

नगरे वा पुरे वा खेटे वा यद्येवं कुर्वन्ति पौराः ।

पुरनगरस्य द्वारे वृषसिंहखगसृशेत् पुनःकेतुं ॥  
 समस्तु दीक्षायां नाशनं जयदं परं ।  
 एवं पूर्वं हरिः केतुं प्राप्तवान् वृषवाहनात् ।  
 तथा ब्रह्माप्यनेनैव ब्राह्मणः शक्रमागतः ॥  
 तेन सोमाय दत्तोऽसौ ततो दक्षं समागतः ।  
 तदा प्रवृत्तिं कुर्वन्ति नृपा अद्यापि वीक्ष्वं ॥  
 एवं यः कारयेद्राजा केतुर्विजयकारकः(१) ।  
 तस्य वृष्टी वनोपेता सहीपा वशगा भवेत्(२) ॥

विष्णुधर्मोत्तरात् ।

पुष्कर उवाच ।

शिविरात् पूर्वदिग्भागे भूमिभागे तथा शुभे ।  
 प्रागुदक् भ्रवणे कुर्याच्छकार्यं भवनं शुभं ॥  
 वासीभिः शयनैः शुभैर्नानारागैस्तथैव च ।  
 ततः शक्रध्वजस्थानं मध्ये संस्थाप्य यज्ञतः ॥  
 मघवन्तं पटेकुर्यात्(३) तस्य भागे तु दक्षिणे ।  
 वामभागे पटेकुर्याच्छचीं देवीं तथैव च ॥  
 प्रीष्टपदे सितेपथे प्रतिपत्प्रभृतिक्लमात् ।  
 तयोस्तु पूजा कर्त्तव्या सततं वसुधाधिपैः ॥

( १ ) केतुं विजयकारकमिति पुष्पकान्तरे पाठः ।

( २ ) वनोपेतापारसामवेदिति पुष्पकान्तरे पाठः ।

( ३ ) मघवन्तं पदे कुर्यादिति पुष्पकान्तरे पाठः ।

वनप्रवेशविधिना शक्रयष्टिं ततो वृषः ।  
नानयेत्तीरघेनाद्य नानयेत्(१) पुष्यैरथ ॥  
पर्जनस्याजकार्षस्य प्रियकस्य वचस्य च ।

प्रियको वीजकः ।

सुरदासकस्य तथा(२) तथैवोद्गुम्बरस्य च ।  
चन्दनस्याथ वा राम प्रपन्नकस्याथ वापदि ॥  
अलाभे सर्व्वहृत्क्षणां यष्टिं कुर्वीत वैषवीं(३) ।  
सुवर्णवद्वा धर्मज्ञस्ताच्च सम्यक् प्रवेशयेत् ॥  
प्रौष्ठपदे सितेपक्षे षष्ट्यां रिपुसूदन ।  
द्वमप्रमाणा विज्ञेया शक्रयष्टिर्द्विजोत्तम ॥  
चतुर्भिरङ्गुलैर्हीना साद्यैर्भवति शर्मदा ।  
अष्टाभिश्च तथा मूले ष्ण्डित्वा तीये च संक्षिपेत् ॥  
तीयादुद्गत्य नगरं सम्यगेव प्रवेशयेत् ।  
तीयादुद्गत्य(४) नगरं पताकाङ्गजमालि च ॥  
सिक्तराजपथं कुर्यात्तद्यालङ्कृत वासक ।  
नटनर्तक सङ्घीर्षं तथा पूजितदैवतं ॥  
संपूजितगृहं राम तथा पूजितवाङ्मयं ।  
पौरैरनुगतो राजा सुवेशैः फलपात्रिभिः ॥

(१) नवनैः पुष्ये रथ इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) दास्यथ तथाभिनेति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(३) वैश्वीमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(४) बलाः प्रवेश इति पुस्तकान्तरे पाठः ।



अष्टम्यां वायवीयेण तान्तु यष्टिं प्रवेशयेत् ।  
 ततस्तु पटयोर्मध्ये यन्मन्थस्तां तु कारयेत् ॥  
 तस्मिन्नेवाङ्घ्रि धर्मज्ञ वस्त्रहस्तां निधापयेत् ।  
 प्राक्च्छन्तां तां ततः कुर्याद्दक्षैः संष्ठादितां शुभैः ॥  
 पूजितां पूजयेत्तान्तु यावत्सा द्वादशी भवेत् ।  
 एकादश्यां सोपवासी नृपः कुर्यात् प्रजागरं ।  
 सम्बत्सरेण सहितो मन्त्रिणां सपुरोधसा ॥  
 राजीजागरणं कार्यं नागरेण जनेन तु ।  
 स्थाने स्थाने महाभागैर्देयाः प्रेङ्गास्तथा मधु ॥

प्रेङ्गा हिन्दोलिका । मधु मद्यं ।

पूजयेत्तृत्वगीतेन रात्री यज्ञं नराधिपः ।  
 द्वादश्यान्तु शिरसातो नृपतिः प्रयतस्ततः ॥  
 मन्त्रे चोद्यापनं कुर्याच्छक्रकेतोः समाहितः ।

देवीपुराचेत्वष्टम्यामुद्यापनमुक्तं तेनानयोर्विकल्पः ॥

सुयन्त्रितं तु कुर्यात्तद्गृहस्तम्भचतुष्टयं ।  
 पूजयेत्तं महाभाग गन्धमास्तात्सम्पदा ॥  
 नित्यञ्च पटयोः पूजां यष्टिपूजान्तु कारयेत् ।  
 वलिभिस्तु विचित्राभिस्तथा ब्राह्मणपूजनैः ॥  
 नित्यञ्च सुदुयान् मन्त्रान् स पुरोधसं वैश्यावान् ।  
 नित्यं गीतेन नृत्विने तद्या यज्ञञ्च पूजयेत् ॥  
 द्वादश्यां पूजयेद्राजा ब्राह्मणान् धनसञ्चयैः ।  
 विशिषेच च धर्मज्ञ साम्बत्सरपुरोहितौ ॥

उत्थाने च प्रवेशे च शक्रं श्यामराधिपः ।  
 वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण कालविक्रपुरोहितः ॥  
 प्रथमः पूजयेद्भ्राजा तदा दिनचतुष्टयं ।  
 पञ्चमे दिवसे प्राप्ते शक्रकैतुं विसर्जयेत् ॥  
 पूजयित्वा महाभाग वस्त्रेण च तुरङ्गिणा ।  
 नीत्वा करीन्द्रैस्त्रितयन्ततोनद्यां प्रवाहयेत् ॥  
 पटद्वयं ध्वजश्चेति चितयं ।

वाद्यघोषेण महता सङ्गीतिस्तत्र कीर्तिता ॥  
 पीरजानपदास्तत्र क्रीडां कुर्युस्तथाश्रमि ।  
 उत्सवश्च तथा कार्थीं जलतीरगतैर्भक्षान् ॥

एतद्विधानं नृपतिस्तु कृत्वा  
 प्राप्नोति हृदि धनवाहनानां ।

नाशन्तथा शत्रुगणस्य राम

महत् प्रसादमिदंशाधिनाथात् ॥

इन्द्रध्वजशिरोभज्येत् पतेदिन्द्रध्वजो यदि ॥  
 भक्ष्यते शक्रयष्टिर्वा नृपतेर्नियतम्बधः ।  
 यन्मभङ्गे तथाज्ञेयं रज्जुच्छेदे तथैव च ॥  
 मातृकायास्तथा भङ्गे परचक्रभयं हिज ।

मातृका तीरणस्तम्भः ।

दिव्यान्तरिक्षभौमाश्च उत्थातास्तत्र वै सदा ।  
 तेषां तीव्रभयान्मेयं फलमत्यन्तदाह्वणं ॥  
 निलीयते च क्रव्यादाः शक्रयष्टी तथा हिज ।  
 राजा वा म्रियते तत्र सर्वदेशो विनश्यति ॥

इन्द्रध्वजापकारं यत्किञ्चिद्विजसत्तम ।

विनाशेऽन्वेष्य विज्ञेया पीडा नगरवासिनां ॥

अन्वेष्य एकतमस्य ।

इन्द्रध्वजनिमित्ते तु प्रायश्चित्तमिदं कृतं ।

इन्द्रयागं पुनः कुर्यात् शीवर्षे नन्दके वने(१) ॥

राज्यं दत्त्वा च गुरवे वन्दनानि प्रमोचयेत् ।

सप्ताहं पूजयित्वा च ध्वजं दद्याद्विजातिसु ॥

शान्तिरैन्द्रीभवेत्(२) कार्त्वीयां ब्राह्मणानां दिने दिने ।

गावश्च देया द्विजपुङ्गवेभ्यो

द्विरण्णवासीरजतैः समेताः ।

एवं कृते शान्तिमुपैति पापं

हृद्विस्तथास्यान्ननुजाधिपस्य ॥

श्रीराम उवाच ।

शक्रोच्छ्रयेति ये मन्त्राः सोपवासो नृपः पठेत् ।

तानहं श्रोतुमिच्छामि सर्व्वधर्मभृताम्बर ॥

पुष्कर उवाच ।

शृणु मन्त्रानिमान् सम्यक् सर्व्वकल्पघनाशनान् ।

प्राप्ते शक्रध्वजोच्छ्राये यान् पठेत् प्रयतो नृपः ॥

परस्मैन्द्रजितामि च हृषहत्याकनाशन(३) ।

(१) शीवर्षे नन्दके तुना इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) शान्तिरैन्द्री इति पाठान्तरं ।

(३) परस्मैन्द्रजितामिने हृषहत्याकनाशन इति पाठान्तरं ।

देव देव महाभाग त्वं हि भूयिष्ठताङ्गतः ॥  
 त्वं प्रभुः ग्राह्यतश्चैव सर्वभूतहिते रतः ।  
 अनन्ततेजा विरजा यशोविजयवर्धनः ॥  
 प्रयतस्त्वं प्रभुर्नित्यमुत्तिष्ठ सुरपूजितः ।  
 ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सर्व्वलोकपितामहः (१) ॥  
 रुद्रः पिनाकभृद्भृत्तः शतरुद्रियसंयुतः ।  
 यज्ञस्य नेता कर्त्ता च तथाविष्णुरुत्क्रमः ॥  
 तेजसा हर्षयत्यर्को नित्यमेव महाबलः ।  
 तेजो धारय देवेभ्य जय यज्ञ स्रष्टृष्टिद् ॥  
 विष्णुर्गदाधरः श्रीमान् गङ्गाचक्रासिगार्ङ्गवान् ।  
 स ते तेजोदधात्वथ जय यज्ञ महाबल ॥  
 अनादिनिधनो देवो ब्रह्मकायः सनातनः ।  
 अग्नितेजा महाभागी रुद्रात्मा पार्व्वतीसुतः ॥  
 कार्तिकेयः शक्तिधरः षष्ठ्यज्ञोऽसि गदाधरः ।  
 स ते वरेष्णो वरदः तेजोवर्धयतां प्रभो ॥  
 देवसेनापतिस्कन्दः सुरप्रवरपूजितः ।  
 आदित्या वसवो रुद्राः साध्या देवास्तथाश्विनौ ।  
 भार्गवोऽङ्गिरसश्चैव दिशे देवा मरुद्भवाः ॥  
 लोकपालास्त्रयश्चैव चन्द्रः सूर्य्योऽनिलोऽनसः ।  
 देवाश्च ऋषयश्चैव यत्तगन्धर्व्वराक्षसाः ॥  
 समुद्रा गिरसश्चैव नद्योभूतानि धानि च ।

(१) ब्रह्मलोक पितामह इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

तेजस्तु प्राप्तिः सत्यञ्च सङ्घीः श्रीः कीर्त्तिरेव च ॥  
 प्रवर्त्तयन्तु ते तेजो जय शक्र शचीपते ।  
 तवचापि जयं नित्यमिहसंपद्यते शुभं ॥  
 प्रसीद् राज्ञां विप्राणां पूजनादपि सर्व्वशः ।  
 तव प्रसादात् पृथिवी नित्यं सख्यवती भवेत्(१) ॥  
 शिवं भवतु निर्व्विघ्नं शाम्यन्तां मुनयोभृशं ।  
 नमस्ते देवदेवेश नमस्ते बलसूदन ॥  
 नमो विघ्ननमस्तेस्तु सहस्राक्ष शचीपते ।  
 सर्व्वेषामेवलोकानां त्वमेकः परमा गतिः ॥  
 त्वमेव परमः प्राणः सर्व्वस्यास्य जगत्पते ।  
 ईशो ह्यसि च संहृष्टः त्वमनन्तः पुरन्दरः ॥  
 त्वमेव मेघस्वम्बायुस्वमन्निर्वद्युतो रविः ।  
 त्वमत्र घनविघ्नता मेघवाहुः पुनर्घनः ॥  
 त्वञ्च तेजः परङ्गीरं घीषवांस्त्वम्बलाहक ।  
 स्रष्टा त्वमेव लोकानां संहर्त्ता चापराजितः ॥  
 त्वं ज्योतिः सर्व्वलोकानां त्वमादित्यो विभावसुः ।  
 त्वं महाभूतमाद्यर्थ्यं त्वं राजा त्वं सुरोत्तम ॥  
 त्वं विष्णुस्त्वं सहस्राक्षस्त्वं देवस्त्वं परायणः ।  
 त्वमेधममृतन्देव त्वं भोक्षः परमार्चि तः ॥  
 सुहृत्तस्त्वं स्थितिः सर्व्वः नरस्त्वं वै पुनः क्षणः ।  
 शुकस्त्वं बह्वलक्षैव कलाः काष्ठास्त्रुटिस्तथा ॥  
 संबल्लसर्त्तवो मासा रजन्यथ दिनानि च ।

(१) सत्यवती भावेदिति पुलकानरे प३३ः ।

त्व सुहृत्सगिरिवरा वसुधरा  
 स भास्करं वितिमिरमस्वरं तथा ।  
 महोदधिः सतिमिङ्गिलस्तथा  
 उन्मिमान् बहुकरमाकराकुलः ॥  
 महद्यशस्वमिह सदाभिपूज्यः  
 महर्षिभिर्मुदितमनीमहात्मभिः ।  
 अभिष्टुतः पिवसि च सोममध्वरे  
 वषट् कृतान्यपि च हविषि भूतये ॥  
 त्वं विपैः सततमिहेष्य सफलार्थं  
 वेदार्थेष्वतुल वलीद्यगीयसे च ।  
 त्वं वेदैर्यजन परायणा हिजेन्द्राः  
 वेदाङ्गान्यभियन्ति सर्व्वेवदेः ॥  
 यज्ञस्यहृत्ता भुवनस्य गोता  
 वृत्तस्य हस्ता नमुचेन्निहन्ता ।  
 कृष्णेषमाने च सदा महात्मा  
 सत्यानृते यो विविताक्त लोके ॥  
 यं वाजिनं गर्भमेवासुराणां  
 वैश्वानरे वाहनमभ्युपैति ।  
 नमः सदास्यै त्रिदशेश्वराय  
 लोकत्रयेणाय पुरन्दराय ॥  
 अत्रोऽव्ययः शाश्वत एकरूपो  
 विष्णुर्वराहः पुरुषः पुराणः ।

( ५३ )

त्वमध्वरः सर्व्वहरः कृशानुः

सहस्रशोर्षः तमशन्धुरिन्द्रः ॥

कविं सप्त जिह्वं चातारमिन्द्रं सवितारमिन्द्रं सुरेशं शशाङ्कं  
शङ्करं शङ्कशत्रुं वृषहृद्यं सुसेन मन्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु ।

दातारमिन्द्रेन्द्रियकारणात्मा

जगत् प्रधानञ्च हिरण्य गर्भं ।

लोकेश्वरं देववरं वरेण्य

मानन्दनित्यं प्रणतोस्मि नित्यं ॥

एवं देववरस्य कीर्त्तनै

र्महात्मन स्त्रिदशपतेः सुसंयतः ।

अवाप्य कामान् मनसोभिरामान्

स्वर्गात्तोक्तानायाति च देह भेदैः ॥

वराह संज्ञितायां ॥

संपूरणे वीच्छ्रयणे प्रवेशे

ज्ञानं यथा मात्स्यविधौ विसर्जं ।

पठेदिमान्नृपतिः सोपचासो

मन्माः शुभाः पुरुहृतस्यकेतोः ॥

संपूरणं पताकारोपणं तत्र विशेषमन्त्रय ।

हरार्कं वैवस्वतशक्र सोमै

र्धनेश वैश्वानर पारसुद्धिः ॥

महर्षिसङ्घैः सदिगसुरोभिः

शुक्राङ्गिरस्कन्द मन्त्रैश्चैव ।

यथार्जपूज्य स्करतैक रूपैः  
समर्पितया भरणैरुदारैः ॥

तद्येहतान्याभरणानि देव  
शुभानि संप्रीतमना गृह्याण ।

इति शक्रध्वजो ह्यायविधिः ।

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि पञ्चमूर्त्तिव्रतं तव ।  
संवत्सरः स्मृती वज्रिस्तथाकपरिवत्सरः ॥  
इष्टापूर्त्तस्तथा सोमो अगुपूर्व्यः प्रजापतिः ।  
उत्पूर्व्यथ तथा प्रोक्तो देवदेवो महेश्वरः ॥  
तेषां मण्डलविन्यासः प्राग्वदेवविधीयते ।  
प्राग्वदिति नीलश्वेतरक्तश्वे त पीत कृष्णकैः ॥  
मण्डल विन्यासाः कर्त्तव्याः ।

प्राग्वत् प्रपूजनं कार्यं होमः कार्यस्तथा विधिः ।  
तिलैर्वीरिहियवैश्वैव घृतेन सितसर्षपैः ॥  
तङ्गिङ्गै रथकामग्नौ र्त्नाभिः प्रत्यहं क्रमात् ।  
नक्ताशनस्तथा तिष्ठेत् प्राग्वद्विवसपञ्चकं ॥  
चैत्रशुक्लं समारभ्य पञ्चमीप्रभृतिक्रमात् ।  
संवत्सराख्ये वर्षे तु व्रतमेतत् समाचरेत् ॥  
पूजावसाने दातव्याः सुवर्णाः वस्त्र यादव ।  
चतुर्विंशतिर्देयं शास्त्राभिदेव यादव ॥  
एकैकं पञ्चमं देयं तथा काल विदो भवेत् ।



यथेष्टं लोकमाप्नोति कामचारी विहङ्गमः ॥

प्रतेनानेन धर्मज्ञः पूज्यमानः सुरासुरैः ।

मानुस्य माषाद्य भवत्यरोगो

वरेण रूपेण बलेन युक्तः ।

नृपप्रतापान्वितशत्रु सङ्घो

द्विजोत्तमो वा यद्वयज्ञयाजी ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं संवत्सरव्रतं ।

— ००० —

ब्रह्मोवाच ।

भूयस्ते सम्प्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमं ।

यत् कृत्वा सर्वकामानां प्राप्तिस्तृप्तिर्भविष्यति ॥

दन्तिदन्तमयैर्दण्डैर्हर्मवन्धैः सुशोभनैः ।

विचित्र पद्मरागाद्यैर्मणिभिस्तु सुशोभितं ॥

तथातैः कारयेद्देव्याः सार्वभौमं मनोरमं ।

दुकूलवस्त्रसञ्चक्रं शर्वैश्चन्द्रोपशोभितं ॥

घण्टाकिङ्किणिशोभाद्यं दर्पणैरुपशोभितं ।

तं रथं पूजयेच्छक जातीकुसुमसङ्घैः ॥

पारिजातकपुष्पैश्च यत्तर्कदर्पणचन्दनैः ।

सुगन्धिधूपितं कृत्वा देवीं तत्र निवेशयेत् ॥

प्रतिमां शोभनां वत्स मञ्जादैस्त्यक्त्यं करीं ।

पूजयेद्द्रव्य विन्यस्तां विन्यस्तां सर्वमङ्गलां ॥

दुर्गा कात्यायनी देवी वरदा विन्ध्यवामिनी ।

निशुभशुभमथनी महिषासुरविमर्दिनी ॥  
 उमा क्षमावती माता शङ्करस्याईकायिनी ।  
 प्रसीदतु मदामेऽस्तु यच्च नो वाञ्छितं हृदि ।  
 अनेन बलिपूर्वेण नमस्कृत्तारयुतेन च ।  
 पूजयित्वा ततो राजासमन्ताद्वाप्य गीतकैः ॥  
 पञ्चमीसप्तमीपर्णानवम्येकादशीषु च ।  
 तृतीयाशिवविघ्नेशदिवसेषूत्सवेषु च ॥  
 महानदीवनीत्सङ्गपर्वतश्रवणेषु च ।  
 तत्र मण्डपविन्यासं महद्दिष्टकनिर्मितं ॥  
 शैलं वा मृगमयं वापि कृत्वा वास्तुविभागवित् ।  
 सर्वैलक्षणसम्पूर्णां सर्वशीभासमन्वितां ।  
 पूर्वं च कारयेच्छक्रं पश्चाद्यात्रां समारभेत् ॥  
 महाजनपदीपेतां महास्त्रीसङ्घसङ्कुलां ।  
 सर्वात्रपाननैवेद्यैः समस्तैरपि पूजयेत् ॥  
 दद्याच्चदिग्वलिं शक्रं पूर्वदिक्षु समं ततः(१) ।  
 भूतवेतालसङ्घस्य मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥  
 जयत्वं कालिका भूते सर्वभूतसमावृता ।  
 रक्ष मां निज भूतेभ्यो बलिं गृह्ण सदा प्रियं ॥  
 मातर्भातर्बरे दुर्गे सर्वकामप्रसाधनि ।  
 अनेन बलिदानेन सर्वात् कामान् प्रयच्छ मे(२) ॥  
 एवं दत्त्वा बलिं शक्रं तथा देव्यावतारयेत् ।

(१) सर्वदिक्षु समन्त इति पाठान्तरं ।

(२) दिवान् लोकान् प्रयच्छते इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

विन्यसेद्द्रुपीठे तु मण्डलैरुपशोभितां ॥  
 तत्रस्थां प्रापयेद्देवीं हेमरूप्यैश्चताम्रजैः ।  
 कलशैरष्टसहस्रेण गन्धोदकसुपूरितैः ॥  
 समस्तफलसम्पूर्णैर्व्याघ्रियैरथ पद्मवैः ।  
 स्नापयेदेकभक्तान् रत्नगर्भानवैहृद्वैः ॥  
 वेदमङ्गलगन्धेन शङ्खवादित्रनिस्त्रनैः ।  
 वेणुवीणासुदङ्गैश्च घण्टाकिङ्किणिरावितैः ॥  
 स्नापयित्वा ततो देवीं निर्भ्रञ्छेद्वर्णकैः शुभैः ।  
 निर्भ्रञ्छेत्प्ररोयजेत् ।

गोमयादि कृतैः पद्मैः दीपवर्त्यादिवोधितैः ।  
 स्वस्तिकैर्ब्रह्मिकावर्तैः शङ्खैर्नीलोत्पलोदजैः ॥  
 यवगाल्यङ्गुरद्भिन्नैर्यवचारैर्निर्मन्ययेत् ।

उदजैः कमलैः ।

पवचारैर्यववृणैः ।

प्रत्येकं तु दहेद्दूर्पं प्रत्येकं कलशं स्रपेत् ।  
 तथा कर्पूरक्षौदेन चन्दनं कुङ्कुमेन च ॥  
 गोरोचना समे तेन देवीं मालिष्य पूजयेत् ।  
 हेमजैर्जातिमाल्यैश्च रत्नन्यासैरनेकधा ।  
 वासोभिः सुमनोभिश्च पादहयं समुत्क्षिपेत् ।  
 वस्त्रपुष्पोपरि चक्रमणं कारयेदित्यर्थः ॥  
 दक्षयेच्च तथा कन्याहिजान् दीनाम्बदुःखिताम् ।  
 भक्ष्यभोज्यान्नपानेन तच्च सर्वाश्च प्रीणयेत् ॥  
 भोजयित्वा च्छमापयेद्देवीं मे प्रीयतामिति ।

तथा देवीं रथे कृत्वा पुनरेव गृहं नयेत् ॥  
 महता जनसंघेन समस्तविभवान्वितैः ।  
 सान्तरेण रथं सर्वं पुष्पदूर्वाक्षतैर्जलैः ।  
 प्रक्षिप्यमाणैः कन्याभिस्त्रीभिर्भङ्गलवादिभिः ॥  
 सलिलेन पथे पांशुं कृत्वा पञ्च ततः क्रमात् ।  
 पुरग्रोभां पथः शोभां हारशोभां गृहे गृहे ॥  
 कारयेत् तथाशक्र सर्व्ववाधां निवारयेत् ।  
 अच्छेद्यास्त रवस्तस्मिन् प्राणिषिंसां विवर्जयेत् ॥  
 बन्धनस्थास्य मीकृत्वा वध्याः क्लोधादिशत्रवः ।  
 अकाले कौमुदीं शक्र रथयात्रास्तु कारयेत् ॥  
 अकालेकौमुदीं दीपोत्सवः । तस्मिन्नकाले कुर्यादित्यर्थः  
 सर्व्वदा सर्व्वदेवैस्तु शङ्कराद्यैः प्रतिष्ठिता ।  
 रथयात्रा तथाशक्र सुरैः स्वर्गं सदा कृता ॥  
 तथा किन्नरगन्धर्वभूपातालनिवासिभिः ।  
 रथयात्रा प्रभावेन मोदते दिवि देवता ॥  
 आदित्ये रथराजेन्द्र रथेन नभसः क्रमेत् ।  
 देवादित्याविमानस्था रथयात्राप्रभावतः ॥  
 क्रीडन्ते विविधैर्भोगैः सर्वातद्भुवि वर्जिताः ।  
 तथात्वमपि देवेन्द्र रथमात्राकरो भव ॥  
 शिवाया शिवदायास्तु परमेष समाधिना ।

अगस्त्य उवाच ।

रथपात्रा समं पुण्यं ब्रह्मणा वासवस्य तु ।

पूर्व्ववत् कथितं तात तत्ते सर्व्वमयाखिलं ॥  
 स्थापित नात्र सन्देहो देवीमाहात्म्यमुत्तमं ।  
 यः पठेच्छृणुयाद्वापि भक्तिमाश्रुप सत्तम ॥  
 स सुखं यगः सीभाग्यं पुत्रप्राप्तिसमीप्सिताम् ।  
 लभते नात्र सन्देह इत्येव ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥  
 सुवलेन द्विते राज्ञे पुराशक्रस्य कौर्त्तिता ।  
 धनदस्य पुरीप्राप्तिर्वरुणस्य च वायुना ॥  
 हते स्थाने कृता तेन तथा श्रुत्वा च नैर्ऋते ।  
 भुञ्जते परया तुष्ट्या पुरीं नागवतीं शुभां ॥

इति देवीपुराणोक्ता रथयात्रा ।

—(००)—

रुद्र उवाच ।

रथयात्रा कथं कार्या भास्करस्येह मानवेः ।  
 फलञ्च किं भवेत्तेषां यात्रां कुर्वन्ति यत्र वै ॥  
 विधिना केन कर्त्तव्या कस्मिन् काले सुरीत्तम ।  
 कथञ्च भ्रामथेद्देवं रथारूढं दिवाकरं ॥  
 देवस्येमं रथं भक्त्या भ्रामयन्ति ददन्ति च ।  
 तेषां किञ्च फलं प्रोक्तं येच कृत्यकरा नराः ॥  
 भ्रमन्तमर्षयन्त्येनं नृत्यगीतपरा नराः ।  
 प्रज्ञागरश्च कुर्वन्ति भक्त्या अद्वासमन्विताः ॥

तेषाञ्च किं फलं प्रोक्तं रथं यच्छक्ति ये रवेः ।  
वर्षभक्तञ्च यो भक्त्या दंशकानिच भोजनं ॥  
वर्षभक्तं धान्योदनं दंशकानि खाद्यानि ।  
एतन्मे ब्रूहि निखिलं सुरश्रेष्ठ सुविस्तरं ॥  
लोकानां श्रेयसे देव परं कौतूहलन्तु मे ।

ब्रह्मवाच ।

साधु पृष्टोमि भूतेषु गणेशेण त्रिलोचने ।  
शृणुष्येकमना वच्मि यथा पृष्ट सुविस्तरं ।  
देवस्य रथयात्रेया भास्करस्य महात्मनः ॥  
इन्द्रोत्सवस्तथा रुद्र मतीच्छेती समो यतः ।  
मर्त्यलोके शास्त्रिहेतोर्लोकालोक प्रपूजितो ॥  
प्रवर्त्तते इमौ तस्मिन् देशे देशे महोत्सवो (१) ।  
इमा इन्द्रध्वजरविरथौ ।

न तत्रोपद्रवाः सन्ति राजतस्करसम्भवाः ।  
तस्मात् कार्याविभो भक्त्या दुर्भिक्षस्थापयास्तथे ॥  
शक्रपत्ने तु सप्तम्यां मामि मार्गशिरे हर ।  
पृतेनाभ्यञ्जयेद्देवं पञ्च भूतान यजेत वै ॥  
अभ्यञ्जयेत् ग्रहेणं यः सर्पिषा अदयान्वितः ।  
दिने दिने जगन्नाथपविष्टं वर्णके रविं ॥

वर्णके उहर्त्तन गृहे ।

स गच्छेद्यानमारुहो गैरिकं किद्रिणोव्रतं ।

( १ ) दशोदकमन्त्रोत्सवो इति पाठान्तरं ।

वैश्वानरपुरन्दिव्यं गन्धर्वाप्सरशीभितं ॥

शास्वीदनं खण्डमित्रं बहुवज्रसमन्वितम् ।

वज्रसमन्वितं प्राण्यसमन्वितमित्थर्षः(१) ।

वर्षभक्तं प्रयच्छेत्तो भास्कराय दिने दिने ॥

आरूढः सहिमानं तु ध्वजमासालुलं शुभं ।

गच्छेन्नम पुरन्देव स्तूयमानो महर्षिभिः ॥

तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन भास्कराय नरैः सह ॥

वर्षं भक्तं प्रदातव्यं प्रतिष्ठायैश्च वर्षकं ।

घृतपूर्णां खण्डवेष्टां कासारं मोदकाद्य यः ॥

दध्योदनं पायसञ्च संयाचं गुह्यपूपकान् ।

ये प्रयच्छन्ति देवस्य भास्करस्यैश्च वर्षकं ॥

ते गच्छन्ति न सन्देहो नरा वै मन्दिरं मम ।

अहन्यहनि यो भक्त्या भास्कराय प्रयच्छति ॥

अभ्यङ्गाय घृतं देव स याति परमां गतिं ।

तथा यो वर्षभक्तश्च अहन्यहनि भक्तितः ॥

सम्प्राप्यैश्च शुभान् कामान् गच्छेत्कीपि ममालयं ।

चूर्णमुहूर्त्तनं नित्यं यः प्रयच्छेच्छुभं रवेः ॥

स याति परमं स्थानं यत्र देवोद्दिवाकरः ।

ततस्तं तर्पयेद्देवं(२) वीषे मासि विधानतः ॥

सप्तम्यां शुक्लपक्षस्य शृणुष्वैकमना यथा ।

तीर्थोदकं समानीय अन्यहाथ जलं शुभं ॥

( १ ) वज्रं हतमिति पाठान्तरं ।

( २ ) ततस्तं स्थापयेद्देवमिति पाठान्तरं ।

वेदीक्षेत्रे विधानेन प्रतिमां स्थापयेद्बुधः ।  
 जपेच्च तीर्थनामानि मनसा संस्मरन् बुधः ॥  
 प्रयागं पुष्करं चैव कुरुक्षेत्रं सनैमिषं ।  
 पृथूदकं भद्रवटं सोमं गोकर्णमेव च ॥  
 ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं विश्वकं नीलपर्वतं ।  
 गङ्गाद्वारं तथा पुष्यं गङ्गासागरमेव च ॥  
 काससूर्यं भिन्नवनं सुष्ठीरस्वामिनं तथा ।  
 चक्रतीर्थं महापुष्यं रामतीर्थं तथा शिवं ॥  
 गङ्गासरस्वतीसिन्धुचन्द्रभागाः सनर्मादाः ।  
 विपाशा यमुना तापो शिवा वेन्नवती तथा(१) ॥  
 गोदावरी पयोष्णी च कृष्णवेणी तथा नदी ।  
 शतरुद्रा पुष्करिणी कौशिकी सरयूस्तथा ॥  
 तथाप्ये सागराश्चैव सान्निध्यं कल्पयन्त्विति ।  
 तथाश्रमाः पृष्यतमा दिव्यान्यायतनानि च ॥  
 एवं स्नानविधिं कृत्वा अर्चयित्वा प्रणम्य च ।  
 धूपमर्घ्यं प्रदत्त्वा तु प्रतिमामधिवासयेत् ॥  
 त्रिरात्रं समरात्रं वा मासार्धं मासमेव च ।  
 स्थितस्थानं गृहे देवं भोजयेद्भक्तितो नरः ॥  
 ततस्त्वारीपयेद्देदिं चतुरस्रां सुवेष्टितां ।  
 कृष्णपत्रे तु माघस्य समस्यां त्रिपुरात्मक ॥  
 कृत्वाग्निकार्यं विधिवत् कृत्वा ब्राह्मणभोजनं ।  
 शङ्खभेरीनिनादैश्च ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः १

( १ ) नेत्रवतीति पाठान्तर ।



पुण्याहघोषैर्विविधैर्ब्राह्मणस्वस्तिवाचनैः ।  
 ततोऽस्य कारयेद्यात्रां शान्तिहेतीर्जनस्य च ॥  
 रथेन दर्शनीयेन किङ्कीणीजालमालिना ।  
 शुक्लपक्षे तु माघस्य रथमारोहयेद्रविं ॥  
 कृत्वाग्निकार्यं विधिवत्तथा ब्राह्मणभोजनं ।  
 प्रीणयित्वा जनं सर्वं दक्षिणाभोजनादिना ॥  
 प्रपूज्य ब्राह्मणान् दिव्यान् ह्योमांश्चापि सवाचकान् (१) ।  
 इतिहासपुराणाभ्यां वाचका ब्राह्मणोत्तमाः ॥  
 मतो देवस्य दृष्टश्च संपूज्योयं ततः सदा (२) ।  
 माघस्य शुक्लपक्षस्य चतुर्थ्यामेकभोजनं ॥  
 अथाचितं तु पञ्चम्यां षष्ठ्यां नक्तं प्रकीर्तितं ।  
 सप्तम्यामुपवासस्तु षष्ठ्यां रोहयेद्रविं ॥  
 अग्निकार्यं ततः कृत्वा रथस्य पुरतः शिव ।  
 षष्ठ्यां तु रात्रौ भूतिश रथस्येहाधिवासनं ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु दिव्यान् भीमांश्च वाचकान् ।  
 रथमारोपयेद्देवं सप्तम्यां भूतभावनं ।  
 सितायां माघमासस्य तस्य देवालयघटतः ॥  
 तत्रस्थस्यैव देवस्य कुर्याद्रात्रौ प्रजागरं ।  
 नानाविधैः प्रेक्षणकैर्दीपहस्तोपशोभितैः ॥  
 शङ्खतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मद्योषैश्च पुष्कलैः ।  
 कुर्यात् प्रजागरं तस्य देवस्य पुरतो निशि ॥

( १ ) भोगाद्यापि सकृच्चान्मिति पाठान्तरं ।

( २ ) पितृभ्युज्जनस्य चेति पुस्तकान्तरे पाठः ॥

ततोऽष्टम्यामागतं देवं रथगतं नयेत् ॥  
 नगरस्योत्तरं द्वारं शङ्खभेरोनिनादितं ।  
 ततः पूर्वं दक्षिणञ्च द्वारं वापि तथापरं ॥  
 एव हि क्रियमाणायां यात्रायां वक्त्रावधिः ।  
 मानवाः सुखमेधन्ते राजा जयति वाहिनीं ॥  
 नीरुजश्च जनाः सर्वे गवां शान्तिर्भवेत्तया ।  
 कर्त्तारथापि यात्रायाः स्वर्गभाजो भवन्ति हि ॥  
 वाटारश्च तथा रुद्र सूर्यलोके व्रजन्ति वै ।

रुद्र उवाच ।

कथञ्च चान्यते ब्रह्मन् स्थापिता प्रथमासकृत् ।  
 एवं नो वद देवेभ्य सुमहान् संग्रहोऽत्र मे ॥  
 ब्रह्मोवाच ।

पूर्वमेव महस्त्रांगीर्थानं तस्य महात्मनः ।  
 संवत्सरस्यावयवेः कल्पितस्य रथा मया ॥  
 सर्वेपान्तु रथानां वै स रथः प्रथमः स्मृतः ।  
 तं दृष्ट्वा तु ततस्त्वन्ये स्यन्दना विश्वकर्मणा ॥  
 कल्पिताः सर्वदेवानां सोमादीनामनेकशः ।  
 विश्वकर्मकृतं प्राप्य रथं देवेन शङ्कर ॥  
 पृजाथमात्मनोदत्तो मानवे क्रोधसम्भवः ।  
 मभुनेत्साकवे दत्तो मर्त्यैः सपृज्यते रविः ॥  
 अतस्तु रथशानेन चालनं विहितं रवैः ।  
 तस्मान्न चालने दीपः सवितुः शूलधारण ॥

तस्माद्रथेन पर्येति भास्करः पृथिवीभिर्मा ।  
 गच्छन्तिष्ठते चैतन्मण्डलं सवितुः सदा ॥  
 प्रदिष्टं चक्षते यस्मात्तस्माद्द्वैचालनं स्मृतं ।  
 तदेवं रथयात्रासु दृढं भानोर्धनीषिभिः ॥  
 अश्वेषां चालनश्रेष्ठं देवानां पार्वतीप्रिय ।  
 ब्रह्मविष्णुशिवादीनां(१) स्थापितानां विधानतः ॥  
 तस्माद्रथेन देवस्य यात्रा कार्या विधानतः ।  
 प्रजानामिहशान्कर्यं प्रतिसंवत्सरं सदा ॥  
 काञ्चनोवाथ रौप्यो वा दृढदारुमयाथ वा ।  
 दृढाक्षयुगचक्रश्च तथा कार्यः युयन्त्रितः ॥  
 यद्विन् रथवरश्रेष्ठे कल्पिते सुमनोरमे ।  
 आरोप्य प्रतिमां यत्नाद्योजयेद्वाजिनः शुभान् ॥  
 हरीन् लक्षणासपन्नान् सुमुखान् वशवर्त्तिनः ।  
 कुङ्कुमेन समालभ्य चामरस्त्रम्बिभूषितान् ॥  
 सदश्वान् योजयित्वा तु रथस्यार्घ्यं प्रदापयेत् ।  
 विबुधान् पूजयित्वा तु ध्वजमाख्यानुलेपनैः ॥  
 आहारैर्विविधैश्चापि भोजयित्वा हिजोत्तमान् ॥  
 दीनाम्बरुपणादींश्च सर्वान् सन्तर्प्यं शक्तितः ।  
 न कञ्चिद्दिमुखं कुर्यादुत्तमाधममध्यमं ॥  
 सूर्यकृतौ सवितत एवमाहुर्धनीषिणः ।  
 यः प्रयाति हि भग्नाशः क्षुधात्तो व्याधिपीडितः ॥  
 सदासृष्टिं पिष्टस्तीन स्वर्गस्थानपि पातयेत् ।

( १ ) मत्स्यविष्णु शिवादीनां इति पुरुषात्मकत्वे पाठः ।

यज्ञस्य दक्षिणाहीनः सवितुर्न प्रशस्यते ॥  
 तस्मान्नानाविधैः कामैर्भक्षलेह्यसमन्वितैः ।  
 प्रीणयित्वा फलं सर्व्वं भिममुच्चारयेद्द्रवम् ॥  
 वलिं गृह्णन्तु मे देवाः आदित्या वसवस्तथा ।  
 मरुतीषाम्निनौ रुद्राः सुपर्णाः पद्मगा ग्रहाः ॥  
 असुरा यातुधानाश्च रथस्था याश्च देवताः (१) ।  
 आकृष्णेन रजसा ऋच मीतामुदाहरेत् ॥  
 ततः पुष्याश्चन्द्रेण कृतवादित्रनिस्त्रनैः ।  
 रथप्रभ्रमणं कुर्याद्दर्शना स समेन तु ॥  
 पुरुषैषापि वीढव्यः सूर्य्यभक्तिसमन्वितैः ।  
 सुकृतप्रयत्नैर्दानैर्वलीवद्देवैरथा पिवा ।  
 यथा प्रशमनं दद्याद्विषमे पथि गच्छतः ॥  
 उपवासस्थितैर्विप्रैर्दिव्यैर्भोगैश्च सुव्रतैः ।  
 विंशद्भिः षोडशैर्व्यापि प्रतिमां भास्करस्य तु ॥  
 स्थानात् प्रचान्यते रुद्र रथमारोपयेच्छनैः ।  
 राज्ञी च निम्बुभा रुद्र भार्या तस्य महात्मनः ॥  
 शनैरारोपयेत्तत्र उभयोः पार्श्वयोरथै ।  
 निम्बुभा दक्षिणे पार्श्वे राज्ञी वायुत्तरे तथा ॥  
 हारे च ब्राह्मणौ तस्मिन् दिव्यौ भीमश्च पार्श्वयोः ।  
 ब्रह्माचास्य तथा सोमः कूपेरस्थोपरिस्थितः ॥  
 गरुडं पृष्ठतश्चास्य कल्पमानं प्रकल्पयेत् ।  
 आतपत्रं तथाश्चेतं स्वर्गदृष्टमनूपमं ॥

सुवर्णविन्दुभिश्चित्रं मणिसुक्ताफलोत्खलं ।  
 ततस्त्रिभुवनप्रस्थं स्वर्णदण्डमथापरं ॥  
 ध्वजं प्रकल्पयेत्तस्य पताकाभिरलङ्कितं ।  
 नानावर्णं विचित्राभिः सप्तभिः कामनाशनं ॥  
 ध्वजोपरि वरध्वीम सुकाराधिष्ठितं महत् ।  
 रथ्यासु सङ्गतो विपो नयेद्भयवरं रथे ॥  
 रथ्यारूढं तु कुर्याद्द्वैत्रे योर्ध्वं चात्मनः सदा ।  
 नारोहे तद्द्रव्यं शूद्रो यदीच्छेत्तत्रे यात्मनः ॥  
 रथमारोहतस्तस्य अयं गच्छति सन्ततिः ।  
 सरथो देवदेवस्य वीठस्थो ब्राह्मणैः सदा ॥  
 क्षत्रियैश्चैव वैश्यैश्च (१) न च शूद्रैः कदाचन ।  
 येत्वन्यदेवता भक्ता ये च मद्यप्रवर्तकाः ॥  
 न तैः शूद्रैश्च वीठस्थः तैर्नरैश्च मदीक्षतैः ।  
 उपवाससमापितैर्वीठस्थः पार्ष्वतोप्रिय ।  
 स्वस्थानाञ्चालितो रुद्र पूष्यं हारं व्रजेत वै ॥  
 दिनमेकं वसेत्तत्र पूष्यमानो नृपेण तु ।  
 नानाविधैः प्रेक्षणकैः पुराणश्रवणेन च ॥  
 नानाविधैर्ब्रह्मवीधैर्ब्राह्मणानाञ्च तर्पणैः ।  
 स्थित्वा च अष्टमीं तत्र नवम्याञ्चालयेत्ततः ॥  
 व्रजेत्तु दक्षिणं हारं नगरस्य त्रिलोचन ।  
 तत्रापि दिनमेकं तु तिष्ठते त्रिपुरान्तक ॥  
 क्षत्रियैः पूज्यमानस्तु तत्रा राजा तथैव तैः ।

(१) क्षत्रिये नैव वैश्ये च इति पाठान्तरं ।

ततः परं व्रजे तस्य पश्चिमं द्वारमाशु वै ॥  
 तत्रापि दिनमेकान्तु तिष्ठते(२) भधुसूदन ॥  
 ज्वेतरेः पूज्यमानो यथा राजा तथा नृपैः ।  
 तस्मादपि चरेद्द्रुद्रद्वारं यायात्तयोत्तरं ॥  
 तथापि पूज्यः शूद्रैस्तु विधिवत् क्रियद्दर्शनैः ।  
 तस्मात्तु चालयेद्द्रुद्र व्रजेऽन्धं पुरस्य तु ॥  
 तत्रस्थं पूजयन्त्येनं ब्राह्मणाः श्रद्धयान्विताः ।  
 शङ्खादित्रनिर्घोषैस्तथ प्रेक्षणकैर्वरेः ॥  
 ब्रह्मघोषैश्च विविधैः समन्ताहीपवृत्तकैः ।  
 नानाविधैर्विन्दानैर्ब्राह्मणानाञ्च तर्पणैः ॥  
 दीनाम्बरुपणानाथतर्पणैस्त्रिपुरान्तक ।  
 पुरमध्यात्तु चलितस्तिष्ठेत् प्राप्य स्वमन्दिरं ॥  
 इत्थं प्राप्य स्थितं देवं पुरतो मन्दिरस्य तु ।  
 ततः स्थितः पूजनौयो भवेत्पौरेण कृत्स्नशः ॥  
 पूज्यमानस्त्वहोरात्रं रथारूढस्तु तिष्ठति ।  
 परे दिने व्रजेत् स्नानं तं निरन्तरमादरात् ॥  
 तयोद्दश्यामतीतायां चतुर्दश्यां त्रिलोचन ।  
 सदैव भ्रामयेद्देवं ग्रहेशं दुरितापहं ॥  
 परिवारकृतं रुद्रं सानुगं परमेश्वरं ।

रुद्र उवाच ।

कथं प्रचालयेद्ब्रह्मन् रथस्थं तमनाशनं ।

( २ ) स्नापयेदिति पुलकान्तरे पाठः ।

अनुगांश्च कथं चास्य केशवं अनुग क्रमात् ॥  
 भूयोभूयः सुरश्चैष्ठ विस्तरान्मम श्रेयसे ।  
 वेद सर्वजगन्नाथ परं कौतूहलं हि मे ॥

ब्रह्मोवाच ।

शनैः प्रचालयेद्गुद्र वर्त्मना शोभनेन तु ।  
 तथा न तस्य भङ्गः स्याद्विपमे पथि गच्छतः ॥  
 प्रतिहारं रथं पूर्वं नयेन्मार्गं विशुद्धये ।  
 तस्मादनन्तरं रुद्र दण्डनायकमाद्रात् ।  
 पिङ्गलञ्च ततस्तस्य पृष्ठगं चाद्राञ्चयेत् ॥  
 पुरतो द्वारतस्तस्मात् रथारूढस्तु पृष्ठतः ।  
 रथारूढस्तथा दण्डिदेवस्य पुरतः स्थितः ॥  
 तस्मादपि तथा रुद्र लेखको भास्करप्रियः ।  
 शनैःशनैर्नयेद्गुद्र रथं देवस्य हेलिनः ॥  
 रथस्य चक्रभङ्गीवा यथा नस्यात्तिलोचन ।  
 ईषा(१) भङ्गे द्विजभयमक्षे तु नृपतिक्षयः ॥  
 तुलालाभे तु वैश्यानां शर्म्यां शूद्रभयं व्रजेत् ।  
 युगभङ्गे त्वनावृष्टिः पीठभङ्गे प्रजाभयं ॥  
 परचक्रागमं विद्याञ्चक्रभङ्गे रथस्य तु ।  
 क्ष्वजस्य पतनेचापि पिष्टमन्युं विनिर्दिशेत्(२) ॥  
 प्रतिमाद्यङ्गिकायान्तु राज्ञो मरणमादिशेत् ।  
 उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेषु शुभेषु च ॥

(१) क्षेपे इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) नृपमन्युं विनिर्दिशेदिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

बलिकर्म बुधः कुर्याच्छान्तिहोमन्तथैव च ।  
 गोभ्यः शान्तिः प्रजाम्यश्च जगतः शान्तिरस्तु वै ॥  
 स्वे स्वे चास्तु तथा शान्तिः सर्वत्रास्तु तथा रविः ।  
 त्वं देव जगतः स्रष्टा षोष्ठा चैव त्वमेव हि ॥  
 प्रजापालिन् ग्रहेणान् शान्तिं कुरु दिवस्यते ।  
 इदमन्यच्च वक्ष्यामि शान्त्याः परमकारणं ॥  
 यत्तुकारणभूतस्य पुरुषस्य स्वजन्मनः ।  
 दुष्टान् ग्रहांश्च विघ्नाय त्रह्यशान्तिं (१) समाचरेत् ॥  
 एवं कृत्वा प्रजाशान्तिं कृत्वा च स्वस्तिवाचनं ।  
 पुनः सज्जं रथं कृत्वा कुर्यात् प्रक्रमणं हरि ।  
 मार्गशेषं नयित्वा तु नयेद्देवालयं रविं ।  
 पूजयित्वा ततः सर्वाः शास्त्रोक्ता अथ देवताः ॥  
 यथा पूज्याः ग्रहाः सर्वे उक्तास्ते च तिलोचन ।  
 रथदेवास्तथा पूज्या यास्थिता रथमाश्रिताः ॥  
 क्षीरं यवागूं मम वै परमात्मन्तवेश्वर ।  
 फलानि कार्तिके यस्य दद्याद्भूतेः प्रीतये ॥  
 विवस्वते पशुमांसं तथा मद्यं सुरेश्वर ।  
 पुरुहताय भक्ष्याणि सानुगाय निवेदयेत् ॥  
 हविष्यमनये दद्याद्दद्यात्तं विष्णवे तथा ।  
 राक्षसेभ्यः समं देयं दद्यान्मांसोदनं हरि ॥  
 संस्कृतं पिश्रितामन्तु रेवन्ताय निवेदयेत् ।  
 तिलात्तं पितृराजाय दद्यात्पितृभ्यश्चुदन ॥

( १ ) 'प्रह्यशान्तिं' समाचरेदिति पाठान्तर ।



अश्विनाभ्यामपूपांस्तु वसुभ्यो मांसमोदनं ।  
 पितृभ्यः पायसं दद्यात् घृताक्तं मधुना सह ॥  
 कात्यायन्यै यवागुं च त्रियै दद्यात्तथा दधि ।  
 सरस्वत्यै त्रिमधुरं वरुणायै च्छुरसोदनं ॥  
 खाण्डवानां धनपती तय मित्रे त्रिलोचन ।  
 सस्त्रेण तु तक्षणे मरुद्गणस्तर्पणं स्मृतं ॥  
 माषानपूपान् मातृभ्यो भक्त्या तु विनिवेदयेत् ।  
 उल्लोपिकाश्च भूतेभ्यो जलं स्वर्गाय वै हर ॥  
 दद्याद्गणपती विहान् मोदकांस्त्रिपुरान्तक ।  
 शष्कलीनैर्ऋतेन्द्राय देया स्याद्गणनायक ।  
 सर्वभक्ष्याणि विश्वेभ्यो(१) दातव्यानि समस्ततः ॥  
 क्षीरोदनं ऋषिभ्यस्तु क्षीरं नागेभ्य एव च ।  
 सूर्यरथाय च बलिं कुर्याद्दे सार्वभौतिकं ॥  
 मांसोदनं सुरामाज्यं तद्वहेभ्यश्च शङ्कर ।  
 पूषानाज्ययुतान् दद्यात्तुभ्यं रुद्र तिलांस्तथा ॥  
 स्वाहासुनाय लाजाय दातव्यास्त्रिपुरान्तक ।  
 भास्कराय सदा दद्यात् सुरदारु त्रिलोचन ॥  
 राजहृत्क्षं सुरेन्द्राय हविष्यं पावकाय च ।  
 चक्रिणे समधान्यन्तु मांसमाज्यं सुभूषण(२) ॥  
 यज्ञेभ्यो विविधान् गन्धान् निर्यासो वैतसोऽण्डजैः ।  
 वैश्वं कती सदारुद्र यमाय परिकीर्त्तिता ॥

(१) वैश्वेभ्यो इति पाठान्तरं ।

(२) मन्वेदेमात्स्वभूषण इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

देयं स्यात् कर्षिकारन्तु अग्निभ्यां वृषभध्वज ।  
 त्रियै देयानि पद्मानि(१) चन्द्रिकायै तु चन्दनं ॥  
 नवनीतं सरस्वत्यै विनतायै तथामिषं ।  
 पुष्याख्यम्बरसां रुद्र मालत्याः परिकीर्त्तयेत् ॥  
 वरुणायाम्निमित्तयन्तु फलमूलन्तु नैऋते ।  
 विस्वं दद्यात् कुबेराय कपित्थं मरुता तथा ॥  
 गन्धर्वभ्यश्चारुगन्धं दद्यात्त्रिपुरसूदन ।  
 वसुभ्यश्चारु कर्पूरं दद्याच्चानुगणाधिपे ॥  
 पितृभ्यः पिण्डमूलानि भूतेभ्यश्च विभीतकं ।  
 गोभ्यो यवान् प्रदद्याद्द्वै मातृभ्यस्त्वक्षतान् हर ॥  
 गुग्गुलं विघ्नपतये विश्वेभ्यो देयमीदृशं ।  
 ऋषिभ्यो ब्रह्महृत्तन्तु नागेभ्यो विषमुत्तमं ॥  
 भास्करस्येह देयानि सङ्कल्पानि नराधिप ।  
 मधुसर्पिभ्यां तथाज्ञानि गैरिकस्य त्रिकोचन ॥  
 न्यषीधस्तस्य वाहुभ्यो भक्त्या रुद्रे निवेदयेत् ।  
 सायं प्रातश्च मध्याह्ने सदैकाग्रमना हर ॥  
 सर्वेषां भक्तितः शक्त्या देहे रूपं विशक्षणः ।  
 मन्त्रतो देवशार्दूल यो यस्येह प्रकीर्त्तितः ॥  
 शान्त्यर्थं ब्राह्मणेभ्यस्तु तिलान् दद्याद्दिवक्षथः ।  
 वैश्वानरे यवान् जुह्वयात् हृतेन सहितान् नरः ॥  
 देवानामसृतं हृतं पितृणां हि स्वभासृतं ।  
 शरत्तं ब्राह्मणानाञ्च सदा ज्ञेयान्निदुर्गथाः ।  
 कश्यपस्याङ्गजा ज्ञेते पवित्राश्च तथा हर ॥

( १ ) धानजोति पुष्यशान्तरे वाः ।

ज्ञाने दाने तथा होमे तर्पणे ह्यग्ने दराः ।  
 इत्थं देवान् यद्वाञ्छैव पूजयेदेव प्रयत्नतः ॥  
 अवतार्य रथाञ्चैनं स्थापयेन्मण्डले पुनः ।  
 कृत्वा त्रिरत्रिकं यद्वाहीप-तोय-फलाक्षतैः ॥  
 कार्पास-बीज-लवणभ्रसं दृष्टन्तु शान्तये ।  
 वेदीमारोपयेत् पथात्पत्नीभ्यां सह सुव्रत ॥  
 तत्रस्थं पूजयेद्देवं दिनानि दश सुव्रत ।  
 दागाहिकेति विख्याता या भूता भूतले हर ॥  
 तथा संपूजयेद्देवं चतुर्थेन कृती भव ।  
 चतुर्थेऽहनि कर्त्तव्यं यद्वादित्र्यमणं रवेः ॥  
 अभ्यङ्ग-भोजनाद्यैश्च पूजासत्कारमण्डलैः ।  
 अनेन विधिना पूज्य दशाहानि दिवाकरं ।  
 ततो नयेहरं स्थानं यत्र पूर्वं सदाचलं ॥  
 अनेन विधिना यस्तु कुर्याद्वा कारयेत् वा ।  
 यात्राम्भगवतो भक्त्या भास्करस्यामितौजसः ॥  
 स परार्हन्तु वर्षाणां सूर्यलोके महीयते ।  
 कुले न जायते तस्य दरिद्रो व्याधितोऽपि वा ॥  
 अम्यङ्गाय घृतं यस्तु भास्कराय प्रयच्छति ।  
 कृत्वा सुवर्णतिलकं स गच्छेत् सुरभीपुरं ॥  
 तीर्थोदकस्तु यो दद्यात् गङ्गायाश्च तथोदकं ।  
 ज्ञानार्थमानयेद्यस्तु भास्कराय(१) त्रिलोचन ॥  
 संप्राप्येहाखिलान् कामान् प्राप्नुयाद्दरुणालयं ।  
 भक्तवर्षन्तु यो दद्यात् हविष्यान्नं शुद्धोदनं ॥

(१) वाक् भास्कराय रतिं ह्यचित् पुंसकान्तरे पाठः ।

गच्छेत् सुरपुरं भद्रं यत्र देवः प्रजापतिः ।  
 स्नापयेद्यस्तु वै भक्त्या भास्करं पूजयेत्तथा ॥  
 स गच्छेद्दीप्तिमान् रुद्र सूर्यलीकं न संग्रयः ।  
 रथमारोपयेद्यस्तु रथमार्गं प्रमार्जति ॥  
 स याति सूर्यसालीक्यं वायुतुष्यपराक्रमः ।  
 रथस्य गच्छतो यस्तु मार्गं कुर्याच्च मङ्गलं(१) ॥  
 सलीकं प्राप्नुयात् पुष्यं मरुतां नात्र संग्रयः ।  
 सूर्यस्य गच्छतो भक्त्या यः कुर्यान्मार्गमाद्रात् ॥  
 पुष्यप्रकरशोभाद्यं शुभतोरणमण्डितं ।  
 शङ्खतूर्यनिनादाद्यन्तथा प्रेषणकान्वितं ॥  
 सयाति परमं स्थानं यत्र देवो विभावसुः ।  
 देवेन सहितो यस्तु तृत्यन् गाथन् तथा स्वयं ॥  
 सर्व्वं महीक्ष्वं भक्त्या भास्करं भक्तवत्सलं ।  
 अथ संवत्सरं प्राप्ते भानोर्यत्र दिनोदये ॥  
 रथप्रक्रमणं तत्र न कथञ्चित् कृतं भवेत् ।  
 ततो द्वादशमे वर्षं कर्त्तव्यं भूतिमिच्छता ॥  
 इन्द्रवज्रस्य चाप्येवं यद्दिने यजनहृतं ।  
 ततो द्वादशमे वर्षं कर्त्तव्या नान्तरा पुनः ॥  
 यात्रायाश्चापि ते भङ्गं कुर्व्वते ह्यपभञ्ज ।  
 मन्देहा नामतो ज्ञेया रात्रसा नात्र संग्रयः ॥  
 ये कुर्व्वन्ति तथायात्रां नरा धर्मध्वजस्य तु ।  
 इन्द्रादिदेवता ज्ञेया गताश्च परमं पदं ॥

(१) मन्वन्वपिनि वा पाठः ।

इत्येषा कथिता भद्र रथयान्ना दिवस्यते ।  
 यः श्रुत्वा वाचयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥  
 श्रुत्वा च विधिवद्भक्त्या यान्ति सूर्यसदीनराः ।  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तो रथयानोत्सवः ।

—on. 1110—

श्रीकृष्ण उवाच ।

एकादश्यां माघमासे चतुर्दश्यादिषु च ।  
 एकभक्त्येन यो दद्यात् चेलकान्यर्जुनानि च ॥  
 उपानदी कम्बलञ्च च्छत्रं चित्रं तद्योदकं ।  
 करपात्रादिकं वस्त्रं यथाशक्त्यर्थिने नृप ॥  
 आर्त्तत्राणपरो नित्यमश्वमेधफलं लभेत् ।  
 एतस्मीष्यव्रतं नाम आर्त्तत्राणकरं परं ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं सौख्यव्रतं ।

—000—

नारद उवाच ।

श्रुता मया विधानोक्ता विश्वीराराधनक्रिया !  
 त्वत्प्रसादात् सुरश्रेष्ठ जन्मदुःखजयप्रदा ॥  
 भूयोच्च श्रोतुमिच्छामि सम्यक् पूजाफलप्रदा ।  
 आस्यत्वेन देवेश महापुण्यफलप्रदं ॥  
 पवित्रारोहणं कृत्वा विश्वभक्तिसमन्वितैः ।  
 किं फलं प्राप्यते देव नरैस्तद्गतमानसैः ॥

यस्मिन्काले च कर्त्तव्यं विधानञ्च तथा भवेत् ।  
 तिशौ यस्यां यथासूत्रं प्रमाणञ्च तथाविधि ॥  
 यावन्तस्तवस्तस्मिन् तत्र यच्चानुमन्त्रणं ।  
 तत्त्वन्यासविधानन्तु तथा वै वाधिवासनं ॥  
 पारोहणविधानञ्च उपवीतस्य चक्षिणः ।  
 विसर्जनविधानन्तु पवित्रारोहणदिकं ॥  
 किं कृत्वा फलमाप्नोति ह्यीयते किमकुर्वतः ।  
 एतत् सर्वं समाचक्ष्व विधानन्दिद्ग्रेम्बर ॥

ब्रह्मोवाच ।

मृणु वक्ष परं गुह्यं विधानं देवनिर्मितं ।  
 मया श्रुतं पुरा सम्यक् सकाशाच्चक्रपाणिनः ॥  
 पवित्रारोहणं विष्णीर्भूक्तिमुक्तिप्रदायकं ।  
 आयुः कीर्त्तियोगी नृणां सुश्रुसम्यङ्गनाबहं ॥  
 पुष्ट्यानान्तु यथा पुष्पं सर्व्व पापहरं शुभं ।  
 पवित्रारोहणं तस्मात्पवित् परमं श्रुतं ॥  
 संवत्सरं नरो भक्त्या समभ्यर्च्य जनार्दनं ।  
 यत्फलं समवाप्नोति पवित्रारोहणेन तु ॥  
 न करोति विधानेन पवित्रारोहणन्तु यः ।  
 तस्य सावधरी पूजा निष्कला मुनिसत्तम ॥  
 तस्माद्भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः ।  
 वर्षे वर्षे प्रकर्त्तव्यं पवित्रारोहणं हरिः ॥  
 यावच्चक्ष्व हिते पक्षे कर्कटस्ये दिवाहरे ।

( ५६ )

द्वादश्यां वासुदेवस्य पथित्पारोहणं स्मृतं ॥  
 सिंहस्थे वा रवौ कार्यं कन्यायान्तु गतेऽथवा ।  
 तस्यामेव तिथौ सम्यक् तुलास्थे न कथञ्चन ॥  
 विष्णो रुद्रस्य सूर्यस्य विरिञ्चेः षष्मु खस्य च ।  
 देव्या गणाधिनाथस्य मातृणां धनदस्य च ॥  
 पथित्पारोहणं कार्यं अन्ये षाञ्च यथाविधि ।  
 अकृत्वा फलहानिः स्यात् संवत्सरकृतार्चनात् ॥  
 सर्वेषाम्तु महत् पुण्यं पवित्रारोहणे कृते ।  
 तिथयस्वत्त्वविन्यासाः पृथगुक्तास्तपोधन ॥  
 प्रतिपन्नदस्योक्ता पवित्रारोहणे स्थितिः ।  
 त्रयो देवा द्वितीयास्तु तिथीनामुत्तमातिथिः ॥  
 तृतीया तु भवान्यास्तु चतुर्थी तक्षुतस्य तु ।  
 पयमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुह्यस्य च ॥  
 सप्तमी भास्करे प्रोक्ता दुर्गायाद्याष्टमी स्मृता ।  
 मातृणां नवमी प्रोक्ता दशमी वासुकेः स्मृता ॥  
 एकादशी ऋषीणाम्तु द्वादशी चक्रपाणिनः ।  
 त्रयोदशी ह्यनङ्गस्य शिवस्योक्ता चतुर्दशी ॥  
 मम देव मुनिश्रेष्ठ पौर्णमासी तिथिः स्मृता ।  
 यथोक्ताः शुक्लपक्षे तु तिथयः श्रावणस्य च ।  
 सर्वेषामेव देवानां कार्यं तासु यथा विधि ॥

नारद उवाच ।

कस्मिन् सुप्ते तु कर्त्तव्यं पवित्रं चक्रपाणिनः ।

प्रमाणं चैव तन्तनां पुष्पं चैवेह कीदृशं ।  
कनिष्ठे मध्यमे चैव उत्तमे च पवित्रके ।  
ऊते यथा फलं कर्तस्वाहदस्व पितामह ॥

सङ्घोषाच ।

शृणु वक्ष यथाकार्यं यत् सूत्रं यत् प्रमाणकं ।  
विधानं च यथा तस्य फलं चैव यथा भवेत् ॥  
प्रथमं दर्भसुत्रन्तु पद्यसूत्रं ततः परं ।  
ततः शीमं (१) सुपुण्यं स्यात्पट्ट सूत्रं ततः परं ॥  
शुचिकार्पाससूत्रेण तिर्न्मितं वा शुभाशुभं ।  
शुचिर्भूत्वा शुची देशे कारयीत प्रयत्नतः ॥  
तद्विधानीपयुक्तन्तु यथोक्तपलदायकं ।  
कन्या कर्त्तयते सूत्रं नारी वाच पतिव्रता ॥  
विधवा साधुशीला वा सूत्रमेतत्तु कर्त्तयेत् ।  
केशयुक्तं क्षतं दग्धं मद्यरक्तादिद्रूपितम् ॥  
मलिनं नीलरक्तं वा प्रयत्नेन विवर्जयेत् ।  
यथोक्तं सूत्रमादाय त्रिगुणं त्रिः प्रयोजयेत् ॥  
पवित्रं तेन कुर्वीत कनिष्ठोत्तममध्यमं ॥  
कनिष्ठन्तुभिर्ज्ञेयं सप्तविंशतिभिः शुभं ।  
मर्त्यं लोके तु तत् कीर्त्तिं सुखायुर्वनपुत्रदं ॥  
चतुः पञ्चशता ज्ञेयं तन्तूनां मध्यमं परं ।  
द्विष्वभोगावहं पुष्पं अर्गावाससुसुष्ट प्रदं ॥

(१) शीतमिति वा पाठः ।



उत्तमं चैव तन्तूनां शतमष्टोत्तरं शतं ।  
 दत्त्वा तद्वासुदेवाय विष्णुलोकं ब्रजेत्तरः ॥  
 अष्टोत्तरसहस्रं तु तन्तूनां परिसंख्यया ।  
 वनमाला स्मृता विष्णोर्दत्त्वा भक्तिपदा हि सा ॥  
 कनिष्ठं नाभिमात्रं स्यादूर्ध्वमात्रं तु मध्यमं ।  
 श्वित्तं चोत्तमं प्रोक्तं जानुमात्रं प्रमाणतः ॥  
 वनमालाप्रमाणेन प्रतिमायाः प्रचक्षते ।  
 नराणां जन्मसंसारदुःखमृत्युप्रणाशिनी ॥  
 कनिष्ठे द्वादशैवोक्ता मध्यमे द्विगुणाः स्मृताः ।  
 त्रिगुणास्तूत्तमे प्रोक्ता ग्रन्थस्तु पवित्रके ॥  
 शतमष्टोत्तरं कार्यं ग्रन्थीनां तु विधानतः ।  
 मुनीन्द्रवनमालायां विष्णुपूजनतत्परः ॥  
 अधिवासनसूत्रे तु ग्रन्थयो द्वादश स्मृताः ।  
 तत्स्वन्यासविधानं तु शूयतां गुह्यकोत्तम ॥  
 इदं विष्णुरिति ख्यातं मन्त्रमेतद्विजन्मना ।  
 शूद्राणां तत्स्वविन्यासः मन्त्रो वै द्वादशाक्षरः ॥  
 तावदावक्तं येन्मन्त्रं यावन्ती ग्रन्थयः स्मृताः ।  
 एकधा च द्विधाचैव त्रिधाचैव पवित्रके ॥  
 ऋषे प्रतिपत्वि सक्तन्मन्त्रजपः मध्ये द्विःशेषेभिः ।  
 कुङ्कुमोशीरकर्पूरेष्वदनादिविलेपनैः ।  
 पवित्राणि विलिप्याच्च तत्स्वव्यासस्तु योजयेत् ।  
 अधिवासपवित्राणि एवाद्भ्यामुपोषितः ॥  
 पुष्पादिभिः शूय्याच्च मन्त्रेद्विष्णोः पुरेणियि ।

तत्त्वन्वासं परं कार्यं पविचारीहणं हरेः ॥  
 एकादश्यां च तद्रात्री मूलमन्त्रेण भक्तिमान् ।  
 एकादश्यां शुभैर्गन्धैः पुष्पधूपविलेपनैः ॥  
 नैवेद्यं दीपवस्त्राद्यैः पूजयेत्तदुध्वजं ।  
 नृत्यगीतशुभाख्यानैर्मलयुद्धैः प्रचालितैः ॥  
 वाद्यैर्मारुतशङ्खाद्यैर्जागरं कारयेन्निशि ।  
 क्षीरकशरसयाववटकापपमादकैः ।  
 फलैः सुगन्धैर्मधुरैर्नैवेद्यं कारयेद्दरेः ॥  
 एकादश्यां नरो भक्त्या संपूज्य मधुसूदनं ।  
 पविचारीहणं कुर्याद्देवदेवस्य चक्रिणः ।  
 सोपवासः शुचिस्नातः कृतजप्यो जितेन्द्रियः ॥  
 दत्त्वा दानं द्विजाद्येभ्यः पूजयित्वा जनार्दनं ।  
 पूर्वार्धाधवासितं सभ्यक् समादाय पवित्रकं ॥  
 अतो देविति मन्त्रेण विष्णोर्मूर्ध्नि निवेदयेत् ।  
 अयं मन्त्रो द्विजातीनां पविचारीहणे स्मृतः ॥  
 शूद्रस्य मूलमन्त्रो वा येन वै पूजयेद्हरिं ।  
 वा शब्दाद्वाद्वाचरो वा, येन वै पूजयेद्हरिमिति मूलमन्त्रव्याख्या ।  
 स्तुतिमङ्गलनिर्घोषैर्गीतवादिनस्वनेः ।  
 पविचारीहणं कृत्वा देवतायास्त्विमं वरं ॥  
 मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः ।  
 एषा सांवत्सरी पूजा तत्रास्तु गरुडध्वज ।  
 मन्त्रहीनं क्रोयाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ॥

यत् पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥  
 वनमाला यथादेव कौस्तुभः सततं हृदि ।  
 पवित्रमस्तु ते तद्वत् पूजा च हृदयावहा ॥  
 कृत्वा पवित्रकं विष्णोर्वर्षहादशवार्षिकं ।  
 फलं प्राप्नोत्यकृत्वा तु पूजाहानिमथाप्रुयात् ॥  
 एवं संपार्थ्यं देवशं प्रणिपत्य पुनः पुनः ।  
 भूयोऽपि दद्याद्विप्रेभ्यो हरिमुद्दिश दक्षिणां ॥  
 ततोभोजये(१)न्नक्त्या गुरुं ज्ञानप्रदायिनं ।  
 वस्त्रगन्धानुलेपाद्यैः पुष्पैस्तु वरभूषणैः ॥  
 प्राप्यानुष्णां गुरोः शिष्यो भक्त्या नार्चयते गुरुं ।  
 स गच्छति विमूढात्मा नरकं हि नराधमः ॥  
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यथा विष्णुं तथा गुरुं ।  
 ज्ञानन्देनार्चयेद्यस्तु स मुक्तिफलमाप्नुयात् ॥  
 यथा विष्णुस्तथा विद्या यथाविद्यास्तथा गुरुः ।  
 वितथं पूजयेद्यस्तु स मुक्तिफलमर्हति ॥  
 तास्त्रूलं पुष्पगन्धाद्यैः पूजयित्वा विसर्जयेत् ।  
 ततो बभून् विगिष्टांश्च ज्ञातिमित्रसमाश्रितान् ॥  
 भोजयेदागतांश्चान्यान् भिक्षुकांश्च स्वशक्तितः ।  
 एवं विधिं विनिर्वर्त्य पवित्रारोहणे हरि ॥  
 विष्णोः मायुज्यमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभं ।  
 स्थण्डिले देवदेवस्य एष एव विधिः स्मृतः ॥

(१) पूजयेदिति वा पाठः ।

पवित्रारोहणे विष्णोर्विशेषः श्रूयतामिह ।  
 यावत्तन्तुसमायुक्तं भावयेत जनाह्ननं ॥  
 तावदङ्गुलकं तस्य एष एव विधिः स्मृतः (१) ।  
 यावन्तो अन्ययः प्रोक्ताः स्वतत्त्वे चानुमन्तव्यं ॥  
 तत्रैव मूलमन्त्रेण दद्याद्विष्णोः पवित्रकं ।  
 प्रतिमां स्थण्डिले वाथ कृत्वा विष्णोः पवित्रकं ॥  
 कुलनाथं समुदृत्य (२) विष्णुलीकं व्रजेत्वरः ॥  
 एवं संपाद्य विधिना पवित्रारोहणं हरेः ।  
 अर्चयित्वा विधानेन हरिञ्च सपवित्रकं ॥  
 विसर्जयेत् मन्त्रेण अनेनैव पवित्रकं ।  
 सांवत्सरीं शुभां पूजां संपाद्य विधिवन्मम ॥  
 व्रजेदानीन्तु गोविन्द विष्णुलीकं विसर्जित ।  
 मन्त्रेणानेन तस्मै च अवतार्य यथा विधि ॥  
 उत्तार्य ब्राह्मणे दद्यात्तोये वाथ विसर्जयेत् ।  
 यावत् पुण्यं स्मृतं सम्यक् पवित्रारोहणे कृते ॥  
 उपवीते कृते भक्त्या तत् फलं चाप्रयात्वरः ।  
 अनेनैव विधानेन सर्वेषां त्रिदिवीकसां ॥  
 पवित्रारोहणं कुर्यात् स्थण्डिले प्रयतो नरः ।  
 अनेनैव विधानेन तस्य पूजाविसर्जनं ॥  
 प्रार्थनावाहनं दानं समस्तविधिमाचरेत् ।

( १ ) पवित्र मानव स्मृतमिति पाठान्तरं ।

( २ ) कुलानां व्रतमहत्तेति पाठान्तरं ।

तत्त्वमन्त्रैः समावेश्य विसर्जनविधिक्रियां ॥  
 अचने तु सुरेन्द्राणां सर्वकामानावाप्नुयात् ।  
 आयुर्वलं धनं विद्यामारोग्यं कौर्त्तिमभ्युषां ॥  
 प्रयच्छन्ति यथा शक्त्या प्रसन्नास्तु दिवोकसः ।  
 अर्चिते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधरे ॥  
 अर्चिताः सर्वदेवाः स्मुर्यतः सर्वगतो हरिः ।  
 अर्चिते सर्वलोकेशे सुरासुरनमस्कृते ॥  
 केगवे कंसकेशिघ्रे न याति नरकं नरः ।  
 प्रातर्मध्येऽपराह्णे च सुरासुरगुरुं हरिं ॥  
 ये नमन्ति नरा नित्यं न ते नरकगामिनः ।  
 तपस्तप्त्वा नरो घोरमरण्ये विजितेन्द्रियः ॥  
 यत्फलं समवाप्नोति स्मृत्वा तु गरुडध्वजं ।  
 इति गुह्यामं विष्णोः पूजाकल्पं मयोदितं ॥  
 समाचरति यो मर्त्यैः स याति परमाङ्गतिं ।

श्रिवागमे शिवपवित्रलक्षणं ।

एकादशथवा सूत्रै स्त्रिंशता वाष्टयुक्तया ।  
 पञ्चशता वा कर्त्तव्यं तुल्ययन्त्रान्तरालकं ॥  
 हादशाङ्गुलमानानि व्यासादष्टाङ्गुलानि च ।  
 लिङ्गविस्तारमाणानि चतुरङ्गुष्ठिकानि वा ॥  
 तथैव पिण्डकास्पर्शे चातुर्थं सावेदैवतं ।  
 गाङ्गावतारकं कार्यं पवित्रमतिसुन्दरं ।

नारद उवाच ।

भगवन् देवदेवेश परं कौतूहलं हि मे ।  
 पत्रित्पारोहणं पुण्यं प्रसादात्प्रसूयते ॥  
 पवित्रं त्वि कथं संज्ञा कुत्रोत्पन्नं किमुच्यते ।  
 कृते च किं प्रकृतं प्रीतिं विधानं तस्य कीदृशं ॥  
 द्रव्येन केन वा कुर्यात् किं प्रमाणं हि तत् स्मृतं ।  
 किं दैवव्यञ्जं किं कन्दः को वा तस्य ऋषिः स्मृतः ॥  
 अध्यात्मं वाधिभूतं वा अधिदैवं कथं भवेत् ।  
 केन मन्त्रेण तत्कुर्याद्विधानं तस्य कीदृशं ॥  
 कस्मिन् काले तु कर्त्तव्यं नक्षत्रे वा तिथौ कथं ।  
 कियते वा कियत्कालमेतद्ब्रूहि सुरेश्वर ॥

श्रीभगवानुवाच (१) ।

साधु नारद धर्मज्ञ तीर्षतीऽहं त्वयानव ।  
 शृणुष्व तव वक्ष्यामि पविचारीहणं क्रमात् ॥  
 पवित्रं तेन विख्यातं ब्रह्मतेजो हि गीयते ।  
 विष्णुाख्यया तु विख्यातं तदा लोके निगद्यते ॥  
 तदेव सूत्ररूपेण यज्ञेशः कर्मणः प्रभुः ।  
 तदेव त्रिगुणीभूतं मतं नारायणाख्यया ।  
 त्रिदेवात्मा त्रिदेवात्मा अक्षरः प्रणवः स्मृतः ॥  
 ते पर्वतात् समुद्भूता वराहार्वाङ्गमाश्रिताः ।  
 कुत एष समुत्पन्न इति प्रश्नस्य इदमुत्तरं ॥  
 सङ्घातेन च तन्तूनां नवात्मा परिकीर्तितः ।

( १ ) वक्ष्यामिति पाठान्तरं ।

तन्मूणां प्रथमोदेवो वासुदेवो जगद्गुरुः ॥  
 हलायुधो द्वितीयस्तु प्रद्युम्नश्च तृतीयकः ।  
 अपरेत्वनिरुद्धस्तु ततो नारायणः प्रभुः ॥  
 ब्रह्माविष्णुस्तथानृणां बरारोहे समाश्रिताः ॥  
 अधिदैवेन रूपेण अध्यात्थे च निधोध मे ।  
 मनो बृहिरहङ्कारस्तन्मात्राणि तथैव च ॥  
 जीवद्येति नवैतच्च अध्यात्मे सुव्यवस्थिता ।  
 द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी भूर्भुवस्वस्तथैव च ॥  
 आकारश्चाप्युकारश्च मकारश्चाधिभूतकम् ।  
 अग्नित्रयं तथा कर्म त्रयश्च सदनत्रयं ॥  
 ज्ञेयं पवित्रे तद्विद्वानधिदैवमुदाहरेत् ।  
 छन्दश्चेवात्र गायत्री प्रद्युम्नो ऋषि रच्यते ॥  
 वासुदेवः परा तस्य देवता परिकीर्त्तिता ।  
 योगोऽस्य ब्रह्म करणे ब्राह्मणानां विशेषतः ॥  
 अलङ्कारो द्विजातीनां कर्त्तव्यः प्रतिवत्सरं ।  
 सरिद्वर्षासु कुर्वीत पञ्चिन्द्रो ह्येवम् ॥  
 यावच्च धारयेत्तन्मूस्तावत् कुर्वीत वै व्रतं ।  
 तथा पवित्रकं कृत्वा त्रीन्मासाभ्यासमेव वा ॥  
 पञ्चद्विमासं सदो वा त्रिरात्रं पञ्चएव वा ।  
 अत्रिंशत्कालं कृत्वा सितपञ्चाद्यनुक्रमात् ॥  
 यथा शक्त्वा यजन्त्येवं कालसङ्कल्पना तथा ।  
 पवित्रे त्रिंशदशेषे न त्याज्यं देवतान्तिकं ॥  
 सपत्नीतीकृते पद्यात् पथेषु विचरेद्दुषः ।

मङ्गलं शोभनं रुद्रं विजयं च चतुर्थकं ॥  
 आषाढादिक्रमाद्दिवनामानीमानि धारयेत् ।  
 द्वादश्यां श्रावणे चापि पञ्चम्यामथवा द्विजे ॥  
 अनुकूले तु(१) कर्त्तव्यं पञ्चदश्यामथापि वा ।  
 सूत्रं तु याज्ञिकं कृत्वा तृणवल्कलमश्वदं ।  
 कार्पासिकं तथा कार्यं दार्भिकं चापि कारयेत् ॥  
 ब्राह्मणोक्तितं सूत्रमन्यद्वीतमथापि वा ।  
 त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य क्षालयेन्निर्मलाश्रमा ॥  
 यत्नेन शोधयेद्दीषान् केगाद्यांश्च स्वयं बुधः ।  
 अष्टोत्तरगतं कुर्यात् चतुःपञ्चाशदेव वा ॥  
 समविंशतिरेषायं ज्येष्ठमध्यकनीयसः ।  
 अङ्गुष्ठपर्वमात्राणि तथा स्त्रीशूद्र एव तु(२) ॥  
 सर्वधर्माश्रिताः सर्वे भक्ताश्च मधुसूदने ।  
 पूर्वीक्तं गुरुमासाद्य भक्त्या सस्तीषयेच्च तं ॥  
 यज्ञार्थं प्रार्थयेत्पद्यादुङ्गारं कुरु मे प्रभो ।  
 अङ्गुष्ठ पर्वमात्रास्तु यन्ययश्चीत्तमाः स्मृताः ॥  
 तद्वर्षं मध्यमे चैव तद्वर्षमधमः स्मृतः ।  
 अधमं नाभिमात्रं स्यादुत्तमाङ्गं द्वितीयकं ॥  
 लम्बितो जानुमात्रे च प्रतिमायां निगद्यते ।  
 एवं हि रूपतः कुर्यादधमाधम-मध्यमं ॥  
 यथाशोभं प्रकुर्वीत यन्ययो विषमाः स्मृताः ।

(१) आनुकूल्यक, इति वा पाठ ।

(२) पवित्रं क्लृप्ति पाठान्तरं ।



सैवप्रोक्ता भवेदेव प्रोक्ता यत्र क्वचित् क्वचित् ॥  
 आरोम्बदं द्विजश्रेष्ठ एवं विद्याविचक्षण ।  
 स्थण्डिले वाथ वक्ष्यामि प्रथमं कर्णिकान्तरं ॥  
 दिव्याग्रञ्च द्वितीयञ्च दिव्यापालान्तगं पर ।  
 यथा शक्त्या तु कर्त्तव्यं प्रत्यवायोह्यतिक्रमात् ॥  
 पितृतोमाढतः शुद्धः आत्मशुद्धस्तथैव च ।  
 सदाचारस्थितो मन्त्री वेदवेदाङ्गपारगः ॥  
 अलुब्धोऽपिशुनः सौम्यः सर्वभूतहिते रतः ।  
 आचार्यः स तु विज्ञेयः सर्वकर्मरतो हि सः ॥  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यो यज्ञेयो मधुसूदनः ।  
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्तथा स्त्रीशूद्र एव वा ॥  
 स्वधर्मावस्थिताः सर्वे भक्ताश्च मधुसूदने ।  
 पूर्वीक्तं गुरुमासाद्य भक्त्या सन्तोषयेच्चतं ॥  
 यज्याद्यं प्रार्थयेत् पश्चात् उहारं कुरु मे प्रभो ।  
 पवित्रेनैव यज्ञेयो यज्ञेयमधुसूदनः ॥  
 एवं करिष्यामीत्युक्ते सम्भारांश्च समाहरेत् ॥  
 हरेः सूत्रादि यत्सर्वं गुरवे तन्निवेदयेत् ।  
 यथाशक्त्या पवित्रञ्च शुचिः कुर्यादतन्द्रितः ॥  
 अष्टाक्षरेण मन्त्रेण यन्प्राप्ते यन्व्ययस्तथा ।  
 कुङ्कुमं रोचनाञ्चैव कर्पूरेण समन्वितं ॥  
 प्रादावुक्तेन मन्त्रेण व्यस्तेन च विनिःक्षिपेत् ।  
 समस्तेन ततो मन्त्री मन्त्रयेत् विचक्षणः ॥  
 उक्तेनैव तु मन्त्रेण वर्जयेत् पवित्रकं ।

श्रीमिति कुङ्कुमं निक्षिप्य नम इति तदुपरि रोचनां नारा-  
यणायैति तदुपरि कर्पूरमिति व्यस्तेन मन्त्रेण मेलयित्वा । श्रीं  
नमोनारायणायैति समस्तेन मन्त्रेण निमन्त्र्या समस्ते नैव पवित्र-  
मलं कुर्यात् ।

इति विष्णुरक्षस्योक्तः पवित्रारोक्षणविधिः ।

—000—

ब्रह्मोवाच ।

चत्वादी कारयेत् पूजां मम वत्स यथाविधि ।  
गन्धपुष्पा रचनादानैर्गन्धैश्चैर्दमनोद्भवैः ॥  
सदा संपूजयेद्देवं सर्व्वकामानवाप्नुयात् ।  
सर्व्वतीर्थाभिषेकस्य फलमाप्नोति दानव ॥  
उमां शिवं हुताशुचं पूजयेत् प्रतिपत्तिश्री ।  
पितामहं दमनकैर्द्वितीयायान्तु पूजयेत् ॥  
हविष्यमन्नं नैवेद्यं देयं गन्धार्चनं पुरा ।  
फलमाप्नोति विप्रेन्द्र उमया यत्प्रभाषितं ॥  
तृतीयायां यजेद्देवीं शङ्करेण समन्वितां ।  
कुङ्कुमागरुकर्पूरमणिवस्तस्त्रगर्चितां ॥  
सुगन्धपुष्पधूपैश्च दमनेन सुमान्वितां ।  
आन्दोले दोलयेद्वत्स शिवां मे तुष्यते सदा ॥  
रात्रौ जागरणं कार्यं प्रातर्देया तु दक्षिणा ।  
हेम वस्त्रा अपात्राणि ताम्बूलानि स्रजस्तथा ॥

सौभाग्याय सदा स्त्रीभिः कार्या पुत्रसुखार्थिभिः ।  
 गणेशे कारयेत् पूजां लण्डुकादिभिराहतां ॥  
 चतुर्थ्यां विघ्ननाशाय सर्वकामसमृद्धये ।  
 पञ्चम्यां पूजयेन्नागान् तथादद्यात्सहोरगान् ॥  
 स्त्रीरसर्पिस्तु नैवेद्यं देव सर्पविषापहं ॥  
 षष्ठ्यां स्कन्दस्य कर्त्तव्या पूजा सर्वोपहारिकी ।  
 इहैव सुखसौभाग्यमन्ते स्कन्दपदं व्रजेत् ॥  
 भास्करस्य तु सप्तम्यां पूजा दमनकादिभिः ।  
 कृत्वा प्राप्नोति भोगादि विगतारिमहातपाः ॥  
 मातृणामपि चाष्टम्यां पूजां सर्वान्नगन्धिकाम् ।  
 कृतवाहभते वत्स सिद्धिमिष्टान्तु दमनकैः ॥  
 नवम्यां पूजयेद्देवीं महामहिषमर्द्दिनीं ।  
 कुङ्कुमागरुकर्पूरैर्धूपान्ध्वजतर्पणैः ॥  
 दमनैर्मरुपत्रैश्च विजयाख्य पदं लभेत् ॥  
 धर्मराजं दशम्यान्तु पूजा कार्यानुगन्धिकी ।  
 धनवान् पुत्रवान् कान्तो ऋषिलोके महीयते ॥  
 द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं कर्पूरागरुचन्दनैः ॥  
 हविष्यान्नैर्महावाहो कर्त्ता विष्णुपदं लभेत् ।  
 कामदेवस्त्रयोदश्यां पूजनीयो यथाविधि ॥  
 रतिप्रौतिमायुक्तो अशोकमणिभूषितः ।  
 वामे ऋहीतधन्वा च पञ्चवाणकरः स्मृतः ॥  
 कुम्भे वा सितवस्त्रे वा लेख्यं पञ्चफलादिभिः ।

खलुशर्करनैवेद्यैः सौभाग्यमस्तुलं लभेत् ॥  
 चतुर्दश्यान्तु देवेशं शशाङ्काङ्कितशेखरं ।  
 क्षीरादिस्नानैः स्नाप्य धूपपुष्पैः सुगन्धिभिः ॥  
 पूजनीयो यथान्यायं मदनैर्होममन्त्रितैः ।  
 वस्त्राक्षमणिपूजा च कर्त्तव्या महती शिवे ॥  
 शिवान-ध्वज कवच देवं कार्यं च जागरं ।  
 महापुण्यमवाप्नोति अश्वमेधफलादिकं ॥  
 पौर्णमास्यां तथा कार्या सर्वकामसम्बन्धये ।  
 इन्द्राय सह शय्या च कामिकं लभते फलं ॥  
 एवं पञ्चदशाहन्तु ये च पूजां प्रकुर्वते ।  
 सर्वयज्ञतपोदान फलानीह लभन्ति ते ॥  
 विचित्रदेवभोगेषु क्रीडन्ते दिवि स्त्रेच्छया ।  
 पुण्यक्षयादिहायाताः पृथिव्यां खलु ते नृपाः ॥  
 गतारथो न सन्देह इत्याह भगवान् शिवः ।  
 इति देवीपुराणोक्तदमनकपूजाविधिः ।

— ००० —

सूर्य उवाच ।

शिवं ये पूजयिष्यन्ति दानं दास्यन्ति सुव्रताः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्ता दिवसेष्यन्ति ते क्षिजाः ॥  
 यथा पशुपत्तिर्नित्यं दत्त्वा सर्वमिदं जगत् ।  
 न लिप्यते पुनः सोऽपि यो नित्यं व्रतमाचरेत् ॥  
 इह जन्मकृतं पापं पूर्वजन्म कृतञ्च यत् ।

व्रतं पाशुपतं नाम कृत्वा हन्ति द्विजोत्तम ॥

त्रयोदश्यामेकभक्ताशी त्रयोदश्यामयाचितं ।

चतुर्विंश्यां तथा नक्तं उपवासं परेहनि ॥

परेहनि अमावास्यायां ।

गोवृषश्चैव हिरण्यं रीप्यं ताम्रमयं तथा ।

सौवर्णं कारयेत् पत्रं गुञ्जागोल्या पृथक् पृथक् ।

तत्रैवास्त्रेख्येभूर्नि शिवायाय शिवस्य च ॥

तत् प्रमाणं वृषं कर्गाद्रीप्यं हेमश्चतुर्गुणं ।

रीप्याष्टगुणताम्रन्तु तद्वहं वापि कारयेत् ॥

तत्प्रमाणन्तुं गुञ्जाशीतिप्रमाणं ।

तद्वहमेति हेमरूप्यताम्रेषु योज्यं वृषत्रयं कार्यं वृषान्  
दद्यादिति वचनात् ।

कुम्भे पत्रं समारीप्य वस्त्रोत्तमयुतं तथा ।

त्रयोदश्यामेकभक्तं रिक्तायां नक्तमाचरेत् ॥

अगुकल्पोऽर्थः ।

गन्धपुष्पैः सनेवेद्यैः वस्त्राभरणदीपकैः ।

गङ्गाधरं समभ्यर्च्यं प्रार्थयेत् प्रवरम्बर ॥

गङ्गाधर महादेव सवलोकपरावर ।

जहि मे सर्वपापानि पूजितस्त्रिहृद्यङ्कर ॥

गङ्गाधर धराधौश परात्परवरप्रद ।

श्रीकण्ठ नौलकण्ठस्वसुमाकान्त नमोस्तुते ॥

एवं पूज्य विधानेन प्रतिपदि दिति रवौ

हिरण्यादीन् गीहृषञ्च ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ॥  
यथा त्वं सर्वगः सर्व्वं सर्वावासस्तु सर्व्वकृत् ।  
न लिप्यसे विकुर्वाणस्तथा माङ्कुरु शङ्कर ॥  
एवं श्रुत्वा नमस्कृत्य वृषान् दद्याद्यदीप्सितान् ।  
गुर्वादिभ्यो द्विजेस्यस्तांश्छङ्कर प्रीयतामिति ।  
एवं व्रतमिदं कृत्वा वृषं दद्याद्विजातये ॥

वृषोत्त, प्रतिमा ।

यममार्गं महाघोरं न पश्यति कदाचन ।  
ततः श्रुत्वा स विप्रर्षिः पुनरायात् स्वर्कं पुरं ॥  
यमलोकन्तु संदृश्य सूर्य्येण सहितस्तादा ।  
तैः समेत्य यथावृत्तं सर्व्वमाख्यातवानृपः ॥  
ततः श्रुत्वा चकारासी वृषदानं यतव्रतः ।  
सर्व्वपाप विनाशाय सहस्राचौद्विणीपतिः ॥  
सर्व्वं सन्तस्य ये प्रेतास्तथा वै चापरे शतं ।  
तैस्तैः मार्षं स राजर्षिः परलोकमवाप्नुयात् ॥  
यः करोति व्रतञ्चैव सर्व्वपापप्रणाशनं ।  
न लिप्यति स पापेन पद्मपत्रमिवाश्रमा ॥  
व्रह्महत्यादिभिः पापैरगम्यागमनादिभिः ।  
मुच्यते पातकेभ्यो ह्यभक्ष्यापेयैः पुमान् शकृत् ॥  
यः करोति मज्जामाग दानं मर्षसुखावहं ।  
हृत्वा पापान्प्रशेषाणि स्वर्गलोकं स गच्छति ॥  
इति बह्मपुराणोक्तं पाशुपतव्रतं ।

—000—

मेत्रेय उवाच ।

पापप्रथमनायालं यश्च पुण्यीपहं ह्ययं ।

मनोरथप्रदं यश्च तद्व्रतं कथ्यतां मम ॥

याज्ञवल्कर उवाच ।

प्राप्यते विविधैर्यज्ञैर्यत् फलं मासिकैः नृभिः (१) ।

उपवासैस्तदाप्नोति समाराध्य जनार्दनं ॥

मनोरथानां संप्राप्तिकारकं पापनाशनं ।

श्रूयतां मम धर्मज्ञ व्रतानामुत्तमं व्रतं ॥

यत् कृत्वा नजडोनाम्नो वधिरो भवदुःखितः ।

नचैवेष्टविधोगाप्तिं कश्चित् प्राप्नोति मानवः ॥

नचामियोस्य लोकस्य कदाचिदपि जायते (२) ।

सप्तजन्मानि कल्याणं सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥

विष्णुव्रतमितिख्यातं दर्शितं विष्णुना स्वयं ।

पौषशुक्ल द्वितीयादि कृत्वादिनचतुष्टयं ॥

षण्मासपारणप्रायं गृह्णीयात्परमं व्रतं ।

पूर्वं सिद्धार्थकैः ज्ञानं ततः कृष्णतिलैः स्मृतं ॥

वचयाद्य ढतीयेऽङ्गि सर्व्वैषध्या ततः परं ।

नाम्ना कृष्णाण्युताख्येन तथा तं तेन पूजयेत् (३) ॥

तथैव च चतुर्थेऽङ्गि ऋषीकेगं च केशवं (४) ।

( १ ) साधिसाधुभिः रिति वा पाठः ।

( २ ) नचामियो मातृभाषां न रीगोपुनि जायते इति वा पाठः ।

( ३ ) ज्ञानं कृष्णाण्युताख्येन इति पुस्तकाकरे पाठः ।

( ४ ) ध्यानादेवं प्रपूजयेदिति पाठान्तरं -

देवमभ्यर्च्य पुष्पैश्च पत्रैर्धूपानुलेपनैः ॥  
 उद्गच्छतश्च बालेन्दोर्दद्यादध्वं समाहितः ।  
 पुष्पैः पत्रैः फलैश्चैव सर्वधान्यैश्च भक्तितः ॥  
 दिनक्रमेण चैतानि चन्द्रनामानि कीर्त्तयेत् ।  
 शशी चन्द्रः शशाङ्कश्च निशापतिरिति क्रमात् ॥  
 नक्षत्रं भुञ्जीत सततं यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः ।  
 अस्तङ्गते न भुञ्जीत व्रतमङ्गभयाच्छुभे ॥  
 एवं सर्वेषु मासेषु ज्यैष्ठ्यान्तेषु यशस्विनि ।  
 कर्त्तव्यं वै व्रतत्रये षष्ठं द्वितीयादिचतुर्दिनं ॥  
 विप्राय दक्षिणां दद्यात्पञ्चम्यां च यशस्विनि ।  
 एवं समापयेन्नासैः षड्भिः प्रथमपारणं ॥  
 पारणान्ते च देवस्य प्रीणनं भक्तितः शुभैः ।  
 यथाशक्त्या तु कर्त्तव्यं विस्रशाठं विवर्जयेत् ॥  
 आषाढादिद्वितीयाश्च षण्मासेन तपोधन ।  
 पारणं वै समाख्यातं व्रतस्यास्य शुभप्रदं ॥  
 व्रतमेतद्विलीपेन दुष्मन्तेन ययातिना ।  
 तथान्यैः पृथिवीपालैरुपवासविधानतः ॥

उपवासो नक्षत्रं ।

चरितं मुनिमुख्यैश्च मरीचिच्यरनादिभिः ।  
 सुमित्रयाच(१) कौक्या शाण्डिल्या धूमपिङ्गया(२) ॥

(१) सुरभयाच इति वा पाठान्तरं ।

(२) शाण्डिल्या च समीतया इति पुस्तकान्तरे पाठः ।



सुदेण्या च देवक्या मतिमत्या कृतं तथा ।  
 सावित्रा पूर्णमास्या च(१) वीरिण्याथ सुभद्रया ॥  
 ब्राह्मणचतुर्विद्या शूद्रैस्त्रीभिरनुष्ठितं ।  
 उर्वण्या रश्मया चैव सौरभेय्या तथा व्रतं ॥  
 धराः सरोभिः(२) धर्मैश्चैः सेवितं पुण्यवाञ्छया ।  
 प्रथमे पाद पूज्योस्य द्वितीयेनाभि पूजनं ॥  
 तृतीये चक्षुषः पूजा चतुर्थे गिरसो हरेः ।  
 एतच्चीर्त्वा समस्तेभ्यः पापेभ्यः श्रद्धयान्वितः ॥  
 मुच्यते कलुषैश्चैव स प्राप्नोति मनोरथान् ।  
 ब्रतानामुत्तमं ह्येतत् स्वयं देवेन भाषितं ॥  
 पापप्रशमनं शस्तं मनोरथफलप्रदं ।  
 यच्च काममभिव्याय क्रियते नियतव्रतैः ॥  
 व्रतमेतन्महाभागे तं संपूरयते नृणां ।  
 मनोरथान् पूरयति सर्वपापं व्यपोहति ॥  
 अव्याहतेन्द्रियत्वञ्च सप्तजन्मानि यच्छति ॥  
 माघे स्नानस्य यत्पुण्यं प्रयागे पापनाशनं ।  
 सकलं तदवाप्नोति श्रुत्वा विष्णुं व्रतस्त्रिदशं ॥  
 इति विष्णुधर्मात्तरोक्तं विष्णुव्रतं ।

( १ ) वेदवत्या तथा चौर्यमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

( २ ) धराधीरेष इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

योगभूतं हरिं देवं चातुर्मास्यमुपोषितं ।  
अर्चयेत्पीर्णमास्यान्तु सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥

योगभूतं सकलं ।

ब्रह्मभूतममावास्यां पूजयेत्तामुपोषितः ।  
राजसूयमवाप्नोति कुलमुद्धरति स्वकं ॥

ब्रह्मभूतं निष्कलं ।

ब्रह्मभूतममावास्यां पीर्णमास्यां तथैव च ।  
योगभूतं परिचरन् केगवमं महदाप्रुयात् ॥  
अत्यर्थं प्रीतिमाप्नोति मासपक्षांस्तयोः सदा ।  
पूजितः सोपवासेन भक्त्या देववरी हरिः ॥  
महाव्रतमिदं ख्यातं सर्वकल्पनाशनं ॥  
संवत्सरमिदं कृत्वा नाकपृष्ठे महीयते ॥  
सर्वपापीपशमनं व्रतमेतत् प्रकीर्तितं ।  
स्वचित्तशक्तिरेवात्र सर्वकर्म्मसु कारणं ॥

कृत्वा व्रतं द्वादशवत्सराणि  
प्राप्नोति लोकं पुरुषोत्तमस्य ।  
तत्रोप्य कालं सुचिरं महात्मा  
प्राप्नोति लोकं पुरुषस्ततोऽसौ ॥  
इति विष्णुधर्मात्तरोक्तं मद्वाव्रतं ।

मार्कण्डेय उवाच ।

चैत्रशुक्लादद्यारभ्य प्रत्यहं दिनसप्तकं ॥  
 ऋदिनं क्लादिनीचैव पाषणीं चैव पूजयेत् ।  
 सीतां चैत्रं तथा सिन्धुं तथा भागीरथीं क्रमात् ।  
 वह्निस्नानं(१) तथा कुर्व्यान्नित्यं नक्ताशनो भवेत् ।  
 जले च जुहुयात् क्षीरं शान्तात्मा च दिने दिने ॥  
 क्षीरपूर्णां च दातव्या वारिधान्यो द्विजातिषु ।  
 क्षीराशनश्च तिष्ठेत् तत्तथा दिनसप्तकं ॥  
 एवं संवत्सरं कृत्वा पूर्णं संवत्सरे नरः ।  
 द्विजातिषु ततो दद्याद्रजतस्य पलं शुभं ॥  
 फाल्गुनस्यासिते पक्षे (२) सप्तम्यां दिवसे (३) क्रमात् ।  
 तं लोकमाप्नोति नरो यत्र पायसकर्दमाः ॥  
 नद्यः क्षीरवहा दिव्याः सर्व्वकामफलप्रदाः ।  
 तत्रोप्य कालं शुचिरं महात्मा  
 मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगः ॥  
 गुणेषु शीलेन धनेन युक्तो  
 राजाय वा ब्राह्मणपुङ्गवश्च ॥  
 इति श्रीविष्णुधर्मोत्तरोक्तं नदीव्रतं ।

—000—

(१) वह्निस्नानमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) फाल्गुनस्य सिते पक्षे इति पाठान्तरं ।

(३) त्रिदशमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मार्कण्डेय उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि तव लोकव्रतं शुभं ।  
यास्तु व्याहृतयस्तत्र समलोकाः प्रकीर्त्तिताः ॥  
आचरेत् प्रत्यहं स्नानं बहिर्नित्यमत्न्द्रितः ।  
चैत्रशुक्लात्तथारभ्य क्रमेण दिनसप्तकं ॥  
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकं ।  
एकराशोपवासश्च क्रमेणैवं समाचरेत् ॥  
महाव्याहृतिभिर्हीमस्तिलैः कार्थ्यीं दिने दिने ।  
संवत्सरास्ते दद्याच्च तथा विप्रेषु दक्षिणां ॥  
सुवर्णसुमहद्वासः कांस्यधेनूस्तथैव च ।  
संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतं पुरुषसत्तम ॥  
सर्वलोकवरः श्रोमान् स्वेच्छया स्यान्नराधिपः ।  
यावत् कल्पावमानन्तु कल्पादौ पार्थिवीत्तमः ॥

स चक्रवर्त्ती नृपवर्यपूज्यः

सुरासुराणामधिकप्रभवः ।

संवत्सराणामयुतं शतानि

स याति पृथ्वीसकलाभिरामः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं लोकव्रतं ।

—000—

मार्कण्डेय उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि तव शैलव्रतं शुभं ।

महेन्द्रे मलयः सङ्घं शून्निमानृत्तवानपि ॥

विन्यस्य पारिपात्रस्य समैते कुलपर्वताः ।  
 चैत्रशुक्लसमारम्भात् प्रत्यहं दिनसप्तकं ॥  
 तेषां संपूजनं कृत्वा वह्निःस्नानं समाचरेत् ।  
 गन्धमाख्यनमस्कारधूपदीपान्नसम्पदा ॥  
 यवैर्हीमं तथा कुर्याद्दद्याद्विप्रे यवानपि ।  
 नित्यं यवान्नमग्नौयात् कुर्यात् संवत्सरं व्रतं ॥  
 तस्यावसाने दद्यात्तु यवप्रस्थांश्च विंशतिः ।  
 वाचकाय द्विजेन्द्राय सुवर्णं काञ्चनस्य तु ॥  
 व्रतेनानेन चीर्णेन चतुःपागरमेखलां ।  
 भुनक्ति वसुधां राजा वशेकृत्वा रिपून्नुपः ॥  
 भोगांस्तु भुञ्जता त्रिदिवेश्वरस्य  
 मानुमासाद्य यथोक्तमेतत् ।  
 प्राप्नोति सर्वं हि मयेरितं यत्  
 जन्मास्तराण्येवनरेन्द्रसत्तमः ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं शैलव्रतं ।

कार्कण्डेय उवाच ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि समुद्रव्रतमेव ते ।  
 चैत्रशुक्लादपारभ्य प्रत्यहं दिनसप्तकं ॥  
 लवणक्षीरं सष्टतं दधिमण्डं सुरोदकं (१) ।  
 तथैवेर्चुरसोदश्च स्वादुदधैव पूजयेत् ॥

(१) सुरोदकमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

आचरेत् प्रत्यहं स्नानं सुचिर्भूत्वा तथावह्निः ।  
 छतेन ह्योमं कुर्वीत सप्तम्याश्च प्रदापयेत् ॥  
 हविष्याशी भवेन्नक्तं कुर्यात् संवत्सरं व्रतं ।  
 संवत्सरान्ते दद्याच्च तथा धेनुं पयस्विनीं ॥  
 व्रतेनानेन चीर्णेन सप्तसागरमेखलां ।  
 भुनक्ति वसुधां राजा सप्तजम्भान्तराणि तु ॥  
 आरोग्यकामः कुर्वीत व्रतमेतत्तथैव च(२) ।  
 धर्मकामोऽर्थकामश्च स्वर्गकामस्तथैव च ॥

मङ्गल्यमेतत्परमं पवित्रं  
 श्रीवर्षेण धर्मविद्विङ्कारि ।  
 कर्त्तव्यमेतत् प्रयतैर्मनुष्यै  
 -रान्याभिकामैरविरिणै तैश्च ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं समुद्रव्रतं ।

—000—

मार्कण्डेय उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि द्वीपव्रतमनुत्तमं ।  
 चैवशुक्लाक्षधारभ्य प्रत्यहं दिन सप्तकं ॥  
 जम्बूशककुशक्रीच शाल्मलिद्वीपसंज्ञितं ।  
 गोमेदं पुष्करक्षैव प्रत्यहं पूजयेत् क्रमात् ॥  
 नित्यमेव तदास्नानं वह्निरिवं समाचरेत् ।  
 अथःशायी भवेन्नित्यं तदेव दिनसप्तकं ॥

( १ ) व्रतकाम इति पाठान्तरं ।

पूर्णं संवत्सरं दद्याद्रजतञ्च विनिर्मितं ।  
फलानि तु विशेषेण संस्थानन्दीपवत् कृतं ॥  
व्रतमेतन्नरः कृत्वा पूर्णसंवत्सरं शुचिः ।  
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंज्ञवं ॥

मानुषसासाद्य स सप्तद्वीपां  
भुनक्ति भूमिं विजितारिपत्तः ।  
संपूज्यमानस्त्रिदशैः सदैव  
महर्षिभिर्नाह्मणपुङ्गवैश्च ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं द्वीपव्रतं ।

—०००@०००—

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि श्रीव्रतं नाम ते व्रतं ।  
चैत्रशुक्लतृतीयायां स्नानमभ्यङ्गपूर्वकं ॥  
कृत्वा शुक्लाम्बरो राजश्चक्रमाल्यानुलेपनः ।  
तिष्ठेदष्टतोदनाहारो भूमौस्त्रिपदान्निशां च तां ॥  
चतुर्थ्याञ्च तथा स्नानं वह्निरिव समाचरेत् ।  
पञ्चम्याञ्च विशेषेण शुक्लाम्बरधरः शुचिः ॥  
सप्तमीं संपूजयेत् पद्मेः कृतं केकृतकेपि वा ।  
शुक्लेन गन्धमास्येन घृतदीपेण वाप्यथ ॥  
सप्तमीरूपन्तु नारदीयपुराणात् ।  
पद्मा पद्मकरा कार्य्या पद्मपुष्पासनस्थिता ।  
चतुर्भुजा सुरूपाम्बा सा सप्तवक्रकमण्डलुः ॥

हरिद्रया च धान्येन आर्द्रकेन गुडैश्च ।  
 द्रक्षुलसुविकारैश्च लवणेन च भूरिणा ॥  
 स्वशक्त्या च महाराज भूरिणा वलिकर्षणं(१) ।  
 श्रीसूक्तेन ततोवक्रौ पद्मानि जुहुयाच्छुचिः ॥  
 तद्दलानि च विल्वानि तदलाभे तथा घृतं ।  
 ब्राह्मणान् गोरसप्रायं घृतभूयिष्ठमाशयेत् ॥  
 सुवर्णमापकं दद्याद्ब्राह्मणस्य च दक्षिणां ।  
 अनाहारस्ततः स्वप्यात् शुची देशे यथाविधि ॥  
 ततस्तु पञ्चमीं प्राप्य पूर्वेक्ये पद्मिनीजले ।  
 स्नात्वा संपूजनं कुर्यात् प्राग्वदेव तथाश्रितः ॥  
 भूय एतद्विजे दद्यात् पूर्णं कनकमापकं(२) ।  
 पद्माक्षमथवा विल्वं प्राश्रीयात्तदनन्तरं ॥  
 ततो हविष्यमश्रीयाद्वाग्यतो मानवोत्तमः ।  
 संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतं पार्थिवमत्तम ॥  
 फलमाप्नोति विपुलं राजसूयाश्वमेधयोः ।  
 विना कनकदानेन व्रतमेतत् समाचरेत् ॥  
 व्रतात्से मापकं सर्व्वमग्निष्टोमफलं लभेत् ।  
 संपूज्य सोपवासस्तु शुक्लपक्षस्य पञ्चमीं ॥  
 नित्यमेव श्रियं देवीं श्रियमाप्नोत्यनुत्तमां ।  
 वलमुत्तममाप्नोति रूपमारोग्यमेव च ॥

( १ ) भूमिनावलिकर्षणमिति पाठान्तरं ।

( २ ) कनकमापकमिति पाठान्तरं ।



जगत् प्रधानां वरदाञ्च पुण्यां  
 विभावरीं सर्वगतानरेन्द्रः ।  
 अद्यान्वितः पूजयतीह यस्तु  
 कामानवाप्नोति स सर्वकालम् ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं श्रीव्रतं ।

— ००० —

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

अथापरं प्रवक्ष्यामि पञ्चमूर्तिव्रतं तव ।  
 शङ्खचक्रगदापद्मं पृथिवीञ्च महाभुज ॥  
 गन्धैर्मण्डलिकां कृत्वा पञ्च पञ्च सुपूजयेत् ।  
 चैत्रशुक्लां तथारभ्य पञ्चमीप्रभृतिर्नरः ॥  
 सोपवासी वह्निस्नातस्तथा शुक्लाम्बरः शुचिः ।  
 गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा ॥  
 रुक्मिणीं पूजनं कृत्वा जुहुयाज्जातवेदसि ।  
 सर्वेषामेव देवानां नामभिस्तु तथा गृहं ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेच्चात्र तदा च सुरभोजनं ।  
 संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतास्ते वस्रपञ्चकं ॥  
 पञ्च वेदविदां दद्यात् पञ्चवर्षं नराधिप ।  
 व्रतेनानेन चीर्णं राजसूयफलं लभेत् ॥

मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगी

वलान्वितीर्धर्मं परोविनीतः ।

श्रुतेन रूपेण धनेन युक्ती  
राजाधिराधोप्यथ वा द्विजेन्द्रः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं पञ्चमूर्त्तिव्रतं ।

कृष्ण उवाच ।

अन्नदानस्य माहात्म्यं कथयामि तवानघ ।  
यत्प्रोक्तमृषिभिः पूर्वं तदिहैकमनाः श्रुणु ॥  
ददस्वान्नं ददस्वान्नं ददस्वान्नं युधिष्ठिर ।  
सद्यस्सृष्टिकरं लोके किञ्चिद्दत्तेपरेण तु ॥  
रामेण दाशरथिना व्रतस्त्रेण निजानुजे ।  
निर्वेदान्तु पुराप्युक्तं तच्चापि कथयामि ते ॥  
पृथिव्यामन्नपूर्णाया षयमन्नस्य काङ्क्षिताः ।  
सौमितेनान्नमन्नाभिर्ब्राह्मणस्य मुखे हृतं ॥  
यदुप्यते कर्मबीजं वक्ष्यावश्यं फलं नरैः ।  
प्राप्यते लक्ष्मणास्त्राभिर्नात्रं विप्रमुखे हृतं ॥  
यन्नप्राप्यं न तत् प्राप्यं विद्यया पोरुषेण वा ।  
प्राप्यते लोकवाहोऽयमः दत्तमुपतिष्ठते ।  
भक्ष्योपयोगादन्यस्तदानं त्रेयस्करं परं ।  
प्रकारान्तरभोज्यानि दानान्यायान्ति भारत ॥  
अत्र मे परमं दानं सत्यवाक्यं परं पद ।  
सुत्पिपसात्ययोलाभः सन्तोषः परमं सुखं ॥  
स्नातानामनुलिप्तानां भूषितानां विभूषणैः ।

न सुखं न च सन्तोषो भवेदन्नादृते नृणां ॥  
 खेतीनाम महीपालः सार्वभौमोऽभवत् पुरा ॥  
 तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैः संग्रामा बहवो जिताः ।  
 दानानि च प्रदत्तानि धर्मतः पालिता मही ॥  
 भुक्त्वा भोगान् सुविपुलान् शत्रूणां मूर्धनि स्थितः ।  
 वानप्रस्थेन विधिना त्यक्त्वा राज्यत्रियं नृप ॥  
 स्वर्गं जगाम तां भुक्त्वा पूज्यमानो मरुद्गणैः ।  
 तत्रास्ती रममाणोऽसौ साकं विद्याधरोरगैः ॥  
 प्रसिद्धस्तयते सिद्धैः सेव्यतेऽप्सरसाङ्गणैः ।  
 गन्धर्वैर्गीयते हृष्टैः शक्रेनाप्यनुगम्यते ॥  
 दिव्यमालाम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः ।  
 सच नित्यं विमानाग्रादवतीर्य महीतलं ॥  
 स्वयमायाति कौन्तेय पूर्व्वन्यक्त्वा कलेवरं ।  
 तच्छरीरं तथैवास्ती रक्षितं पूर्व्वकर्मभिः ॥  
 स कदाचित् सुरे स्थाने ब्रह्माणं समुपास्थितः ।  
 प्रणम्य प्राञ्जलिभूत्वा निर्व्वेदादिदमव्रतीत् ॥  
 भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्रप्तं स्वर्गसुखं मया ।  
 सर्व्वं पामप्ययं पूज्यः सुराणां सुरपुङ्गव ॥  
 किन्तु क्षुदाधतेऽत्यर्थं स्वर्गस्थऽस्यापि मे प्रभो ।  
 ययामांसान्यहं स्वानि भक्षयाम्यशनं विना ॥

ब्रह्मोवाच ।

खेताभिजनसम्पन्नश्चेत शृणु वचो मम ।  
 त्वया धीतं श्रुतं दत्तं गुरवः परितोषिताः ॥

नाशनं भवता दत्तं क्षुधिताय द्विजोत्तम ।  
ततः स्वाध्यायसम्पन्नं शास्त्रज्ञं संयतेन्द्रियं ॥  
येन संपद्यते तृप्तिरक्षया जायते तव ।  
विरिञ्चेस्तद्वचः श्रुत्वा त्वरायुक्तो महीपतिः ॥  
अगस्त्यं भोजयामास भक्त्या भरतसत्तम ।  
श्वेतस्तृप्तीगतः स्वर्गं दत्तान्नदक्षिणाव्रतं ॥  
पौलस्त्ये निहते पद्याद्देवदानवसङ्घटे ।  
रामायैकावलीं प्रादादगस्त्यः परया मुदा ॥  
एतद्गतस्य महात्म्यं कथयाम्यपरञ्च ते ।  
तवान्नादपरं किञ्चिद्दानं सत्यं मयोदितं ॥  
अन्नं वै प्राणिनः प्राणाः अन्नमोजी वलं मुखं ।  
एतस्मात् कारणात् सद्भिरन्नदः सर्वदः स्मृतः ।  
सुहृदो ह्यात्मवर्ग्यं गृहं सप्ताः बुभूक्षिताः ।  
तृप्ताः प्रतिनिवर्त्तन्ते नकोन्यः सदृशः पुमान् ॥  
दीक्षितः कपिला माता राजभिक्षुर्महीदधिः ।  
दृष्टमात्राः पुनस्थे ते तस्माद्दद्यात् नित्यशः ॥  
एकस्याप्यतिथेरन्नं यः प्रदातुमशक्तिमान् ।  
तस्यारम्भपरिक्षेपैः सर्वतः किं फलं गृहे ।  
शक्यते पुष्करे चार्थे चिररात्राय जीवितुं ॥  
अन्नाहारविहीनेन शक्यं वर्त्तयितुं चिरं ।  
भुक्त्वा गृहे गृहस्थस्य मैथुनं यस्तु सेवते ।  
यस्यान्नं तस्य ते पुत्रा इतिप्राङ्मनषिणः ॥

दुष्कृतं हि मनुष्याणामन्नमाश्रित्य तिष्ठति ।  
 कन्मात्र दीयते नित्यं तस्मादन्नन्तु दीयते ॥  
 यस्येदृशी फलावाप्तिः कथिता सर्व्वसूरिभिः ।  
 भिक्षां वा पुष्कलां वापि हन्तकारं दिजायते ॥  
 भोजनञ्च यथा लाभमदत्त्वा श्राति किस्त्रिषं ।  
 येन शतं सहस्रं वा भोजितं स्याद्द्विजस्र्मनां ॥  
 तेन ब्रह्मगृह्णान्नन्तदनयन्तु च कुटोरकं ।  
 वाराणस्यां पुरा पार्थ वणिजो वणिजोविनः ॥  
 धनेश्वर इतिख्यातो देवव्राह्मणपूजकः ।  
 तस्य पाण्येकदेशे तु मुक्ताण्डं पाण्डुरश्रुविः ॥  
 ससर्पं सर्पस्तद्देशाद्विद्वृष्टा विगच्छितः ।  
 तदण्डं वणिजाहृत तेन दृष्टञ्चवृद्धिना ॥  
 ततः प्रभृति रुदितं ररत्तच पुपोष च ।  
 निर्जगाम दिनैः कैश्चिद्वित्वाण्डं सर्पपोतकः ॥  
 वणिजा रक्षमाणस्य स्त्रिहासाहरहृन्निशं ।  
 चनकक्षीरपानार्थं सर्पभोगैरवर्षयेत् ॥  
 लिलेह चृत भाण्डानि जगृहे गन्धसञ्चयात् ।  
 भूयोपांसुप्रकारेव चकारवारिमध्यगं ॥  
 जगाम सुमहान् कालोवल्लोला च वकैः शुभैः ।  
 अथैकस्मिन्दिने गङ्गां गतः स्नातुं त्रिलोचन ।  
 वाणिः मार्गाच्छणविन्द्यापशित्वास्थितं मतं ॥  
 व्यवहार समग्ररम्भं वणिक्पुत्रेणधीमता ।

ददाति प्रतिगृह्णाति यवतैलं घृतैश्चयं ॥  
 व्यवहारा कुल तया यादयेरन्तरेण सः ।  
 सर्प्यत्वया रजायव्याद्वणित्कित्तोव सकृतः ॥  
 जानन्नपि सप्तत्तान्तं निदानं नियते वशा ।  
 चासात्सन्तर्ज्यामास पलेनपलष्ठभोजिनं ।  
 सम हतः समुत्पाय मूर्धानमधिगच्छति ॥  
 उवाच दारुणातमं स्वामिनं पन्नगाधमः ।  
 शरणागतपीडितश्च तव पित्रा प्रियङ्करं ॥  
 कस्मान्माहंसि दुष्टात्सा नमे जीवं विमोक्षसि ।  
 तदन्ते कलकलाःशब्दः सञ्जातो रोहणो नृणां ॥  
 धनेश्वर सुदेतोवृष्टः सर्प्यं णाभि भृगाङ्गुलः ।  
 अच्युतानन्त गोविन्दं कृष्णैवेत्यदीरयेत् ॥  
 धनेश्वरोप्यनुप्राप्तः स्तुत मांकलयागिरा ।  
 किं किं कृत समेनेभि तव पन्नग विप्रियं ॥  
 यदत्वं भवता मूर्च्छिं स्वाभोगेनाभि चेष्ठितं ।  
 मूर्खं मित्रं कुसम्बन्धं हीनजातिषु नोदयां ॥  
 यः करोत्यवधोङ्गारान् स्वहस्तेनापि कर्षति ।  
 तत्वं मूर्खस्त्वं स्वसन् सर्प्यो वाष्यै राह दयागिर ॥  
 निरापराधी भवतः पुत्रे णाहं समाहितः ।  
 सदाहं पश्यतस्तेद्य दशाम्ये नं नराधिप ॥  
 यथा न भूयो भूतानां भवेदस्मात् कचिद्भयं ।

धनेश्वर उवाच ।

उपकारं स्मृति वृत्तिं स्नेहपाशानपाशय च ।  
 धर्ममार्गमनक्रम्य प्रयातः केन वार्यसे ॥  
 क्षणमात्रं प्रतिच्छत्वं यावदेव शिशुर्मम ।  
 और्वेदैहिक कर्मैह करोति स्वयमात्मनः ॥  
 एवमुक्त्वा गृहं दत्त्वा यतीनां ब्रह्मचारिणां ।  
 सहस्रं भोजयामास घृतपायसभोजनैः ॥  
 समुप्याय ततः सर्व्वं ब्राह्मणा हृष्टमानसाः ।  
 वणिकपुत्रो थोत्तमाङ्गे पि चिच्छिपुकुसुमाक्षतान् ॥  
 वणिकपुत्र चौरश्चोव नश्यन्तु तव शत्रवः ।  
 अभिष्टफल संशुद्धिरस्तु ते ब्राह्मणाज्जयाः ॥  
 ततः स दुष्टप्रकृतिर्व्वक्ति वणिग्जन प्रतारितः ।  
 पन्नगीनगसत्कारः पपात च ममार च ॥  
 विपन्नं पन्नगं दृष्ट्वास्तञ्चक्षुर्धनेश्वरः ।  
 आः किमेतदिति पीक्ता विषादमगमत्परं ॥  
 पोषितोर्यं मयावालो पालितोलिलास्तथा ।  
 ममोपकारात्पञ्चत्व प्रपन्नः पयनाशनः ॥  
 उपकारिषुयः साधुः साधुत्वे तस्य की गुणः ।  
 अपकारिषुयः साधुः साधुत्वामिति मे मतिः ॥  
 हृत्स्वैवं सं प्रधार्य्यासौ दुःख सन्तप्तमानसः ।  
 वुसुजे नाकुलतया तच्च मुक्तगणोऽनिशं ॥  
 ततः प्रभाति गङ्गायां स्नात्वा सन्तर्प्य देवताः ॥

सहस्रं भोजयामास पुनरेव द्विजन्मनां ।  
समास्तैरिष्टसंसिद्धा ब्राह्मणानुगीदिताः ॥  
विणिगाह समाभिष्टं गञ्जीवतिः हृपन्नगः ।  
ततो द्विजवरो मुक्तैरंबुभिः परिपिच्यते ॥  
उदतिष्ठ दहीनाङ्ग सहसाहि महाकुला ।  
प्रहर्षं मतुलं लेभे तं दृष्ट्वा पुरतस्थितं ॥  
प्रत्यग्रावयवं हृष्टं सृक्किणीं परिनेलिह ।

दानाय प्राज्ञैः प्रशशंसुर्धनेस्वरं ।

पुरीनिवासिनः सर्वे विष्णयोत्फुल्लोचनः ॥  
सहस्रभोज्य माहात्म्यं कथितं ते युधिष्ठिर ॥  
सम्यक् अदौ प्रयुक्तस्य किमन्यसेत् कथयामिते ।

इच्छन्ति यस्त्वमुदिनं द्विजपुङ्गवाना

मन्नं विशुद्धमनसेदृशमागतानां ।

मर्त्यं विद्वत्य सुचिरं सुसुद्धत् जनास्ते

प्रेत्येह यान्ति भवनं मुदिता सुरारि ॥

इति श्रीभविष्योत्तरे सदाव्रतं नामान्न दानमाहात्म्यं ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भगववन् केन तपसा व्रतेन नियमे न वा ।  
दानेन केन वा लोके स्त्रोच्यलन्त प्रजापते ॥  
अतितेजो महादीप्तं दीप्तं शुक्तिरणीज्जालं  
शरीरं जायतेयेन तन्मे वक्तुमर्थाहमि ।



कृष्ण उवाच ।

मधुरायां पुरापार्थं पिङ्गलोनाम तापसः ।  
 आगतः समेपत्नया जाम्बवत्या च पूजितः ॥  
 पृष्टश्च प्रश्न मे वैतं स चरेद्यो यथातथं ।  
 नयासि मे समाख्यातं तत्सर्व्वं ते वदाम्यहं ॥  
 यदायदा नृपयेष्ठ पुण्यकालः प्रपद्यते ।  
 संक्रान्ति सूर्य्यग्रहणे चन्द्रपर्व वेष्टतौ ॥  
 पुत्ररेत्वयनेप्राप्ते दक्षिणे विषुवे तथा ।  
 एकादश्यां शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां दिनक्षये ॥  
 सप्तम्यामथवाष्टम्यां स्नात्वा व्रतपरी नरः ।  
 नारी वा भूमिदेवेभ्यः प्रयच्छन् प्रयताङ्गणे ॥  
 छतकुम्भेन दीपं वास्त्रण प्रहालन्तं प्रदीपकं ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भूमिदेव इति प्रोक्तं यत्वया मधुसूदन ।  
 किमेतत् कौतुकं भेस्ति संगयञ्छेतु मर्हसि ॥

कृष्ण उवाच ।

पुराकृतयुगस्यादौ त्रिशङ्कुर्नाम पार्थिव ।  
 स स्वर्गं गन्तु कामोऽभूत् स शरीरी नृपोत्तमं ॥  
 ततश्चण्डालता नीतो वसिष्ठेद् महात्मना ।  
 त्रिशङ्कुः सर्वमाचख्यौ विश्वामित्राय धीमते ॥  
 सोऽपि मन्युवशाद्यज्ञं चकार हयदेवतं ।  
 नते इचिः प्रतिगृहं ततः क्रुद्धः कुशाम्बजः ॥

विश्वामित्रस्तु, कोपिन चकारान्यान् सुरोत्तमान् ।  
 भृङ्गाटकानारिके रान्यवचान्न जेडकान् ॥  
 मीधार पट्टहस्ता वा गौड़ कुष्माण्डकान् द्रुमा ।  
 उद्रान् मनुदिमुख्याश्च क्रोधान्मनिरवासृजन् ॥  
 चकारान्यान् समुपितान् प्रतिमासु सुरोत्तमान् ।  
 ततः शक्रं समागम्य विश्वामित्रं प्रसाद्य वै ॥  
 सृष्टिं निवारयामास ये सृष्टास्ते तथापि च ।  
 मेघलीकेषु ते सर्वे देवा देवकुलेश्वथ ॥  
 मन्त्रै निवहा पिण्डीषु स्थिता मूर्ध्निमतो यथा ॥  
 ब्रह्मा विष्णु स्तथा रुद्रीयेचान्येदेवतागणाः ।  
 लोकाना सुपकाराय मर्त्यलोक मुपागताः ॥  
 प्रतिमा सुस्थितां शश्वत् भोगान् भुञ्जन्ति शायतान् ।  
 वरान् प्रयच्छति भक्तानामिति ते गुह्यमीरितं ॥  
 तैभ्यः पुस्तादातव्यं प्रच्छान्तं तं प्रदीपकं ।  
 सूर्याय रक्तवस्त्रेण पूर्णावर्त्तिं घृतेन तं ॥  
 चतुः प्रस्थेः प्रहलन्ती मन्त्रेणानेन दापयेत् ।  
 तद्विष्णोः परमं पदं सदापश्यन्ति सरयः ॥  
 दिवीश् चक्षुरातनं नमः ।  
 पीतवस्त्रेणकृष्णाय श्वेतवस्त्रेण शूलिने ।  
 कौसुम्भ वस्त्रेणाद्येन गौरीमुदीश्वदापयेत् ॥  
 लाघारक्तेन दुर्गायै पूर्णावर्त्तिं प्रबोधयेत् ।  
 नीलवस्त्रेण कामाय वाणनाथायथादिरं ॥

नागेभ्यः कृष्णवस्त्रे ण ग्रहेभ्य इषिकायुधां ।  
 देवाग्नेन पिष्टवर्त्तिका । नागेभ्यो नागवर्त्तीति प्रवीधयेत् ।  
 विशेषं शृणु सूर्याय पूर्णवर्त्तिर्निगद्यते ।  
 शिवायेतिश्वरवर्त्ती भौगवर्त्ती जनार्दने ॥  
 पद्मवर्त्ती विरिञ्चेस्तु गौर्याः सौभाग्यवर्त्तिका ।  
 नागेभ्यो नागवर्त्तीति ग्रहवर्त्ती युधिष्ठिर ॥  
 नक्षत्रद्येन मधुना घृतेन मधुवण्डके ।  
 अर्धिते चर्चिते चै वलं लितायै प्रवीधयेत् ॥  
 मन्त्रे णानेन राजेन्द्र तन्निशामय वैदिकं ।

ऋग्भिरेषां कामपाङ्गिरातुचं नाङ्गिरथ सर्विश्वाः सुचितयः  
 पृथक् ।

अग्रेकामाय जेगिरे अप्रियेषु धामसु ।  
 कामोभूतस्य भोव्यस्य सम्नातिकी विराजाभ्यांनमः स्वाहा ।  
 एवमेतेन विधिना यः प्रयच्छति दीपकं ।  
 विस्तीर्णं विपुले पात्रे घृतकुम्भे नियोजितं ॥  
 यान्तिते ब्रह्मसदनं विमानेनार्कं वर्त्तसा ।  
 तिष्ठन्ति पावमानास्ते यावदाभूतसंप्लवं ॥  
 सदीपितु तथैवोर्द्ध्वतिथ्यथा देशैवक्षसि वलवन्ति हि ।  
 तथादीपस्य दातारी भवन्ति स फलेक्षणाः ॥  
 यथैवोर्द्ध्वगतिर्नित्यं राजन् दीपशिखः शुभाः ।  
 दीपदातु स्तथैवोर्द्ध्वं गतिर्भवति शोभना ॥  
 घृतेन दीपो दातव्यो राघन् तैलेन वा पुनः ।

वसामज्जादिभिर्दीपो न तु देयः कथञ्चन ॥  
 दीपतैलेन कर्त्तव्यं न तु कर्मविज्ञानता ।  
 निर्वाणायान्तु दीपस्य हिंसनञ्च निगर्हितं ॥  
 यः कुर्यात्तेन कर्मणि स्याद्दसौ पुष्पितेक्षणः ।  
 दीपहर्ता भवत्यस्यः काणोभिर्वापको भवेत् ॥  
 पद्मपत्रोद्भवः वृत्तिः गन्धतैलेन दीपकम् ।  
 विरोगश्चैवा सुभगः नवीभवति मानवः ॥  
 प्रहेभ्यो देवदेवस्य कर्पूरेण तु दीपकं ।  
 अश्वमेधमवाप्नोति कुलचैव समुद्धरेत् ॥

एतन्मयोक्तं तव दीपदान

फलं समग्रं कुरुवंशचन्द्र ।

श्रुत्वा यथोक्तं ततं प्रदेयो

दीपस्त्वयाविप्र सुरालयेषु ॥

अत्राप्युदाहरत्तीममितिहासं पुरातनं ।  
 दीपदानात्तिलदानात् पद्माप पुरानघ ॥  
 आसीच्चित्रशोनाम विदर्भेषु महोपतिः ।  
 तस्य पुत्र गतं राज्ञो जज्ञे पञ्चदशोत्तरं ।  
 एकैककन्या तस्यामीदृशानामन मतः ॥  
 सर्वलक्षणमम्यत्रा रूपिणाप्रतिमा भुवि ।  
 तां ददौ काशिराजाय चार्वङ्गीचारुधर्मिणीं ॥  
 शतान्यन्यानि भार्याणां त्रीण्यसंयाद्बुधर्मणः ।  
 तासां मध्येग्रमहिषी ललिता वाम्यथा भवेत् ॥

विष्णो रायतने सातु सहस्रं परिदीपकान् ।  
 प्रजालयत्यनुदिनं दिवारात्र मनिर्घृतं ॥  
 तामिश्रमाश्व यक्षपक्षं शुक्ल पक्षश्च कार्त्तिकं ।  
 तस्याः प्रहलभोदीप उच्चस्थान कृतः शुभः ॥  
 तस्मिन् काले तथा नित्यं ब्राह्मणावसथे तु सा ।  
 व्यग्राभवति सायाङ्गे दीपप्रेषणतत्परा ॥  
 चतुष्पथेषु रथ्यासु देवतायतनेषु च ।  
 वैत्यवृक्षेषु वृक्षेषु गोष्ठेषु पर्वतेषु च ॥  
 पुलिनेषु नदीनाञ्चकूपमूलेषु पाण्डव ॥  
 तां सपत्न्योऽथ सङ्गम्य प्रच्छरिदमादृताः ।  
 ललिते वद भद्रन्ते ललिते वदनं तथा ॥  
 न तथा वलिपुष्पेषु न तथा द्विज पूजने ।  
 भवत्याः सुमहान् यज्ञोदीपप्रहासने यथा ॥  
 तदेतत् कथयाम्नाकं ललिते कौतुकं परं ।  
 मन्यामहेन्व यावश्यं दीपदान फलं श्रुतं ॥

ललितोत्वाच ।

नाहं मत्सरिणी भद्रानवनागादिभाषिता ।  
 एक पत्न्याः त्रिताः साध्वो भवत्योमममा नदाः ॥  
 अपृथग्धर्मैश्च चरणा शृणुन्तु गदितं मम ।  
 मयैतद्दीपदानस्य यथेष्टं भुञ्जते फलं ॥  
 हिरण्यदयिताभार्या शैलराज सुतावरा ।

उमादेवीति भद्रेषु देविकामा सरिहरा ।  
 नारायणानुकम्पार्थं ब्राह्मणाद्यवतारिता ॥  
 शुषिता तुषिता तृष्या देविका पापनाशनी ।  
 तस्यां स्नात्वा सकृन्नद्यां गान्गपत्न्यमवाप्रयात् ॥  
 तस्यामथ तृसिंहाख्यं तीर्थं कल्पपनाशनं ।  
 हरिणा तृसिंहवपुषा यस्यां स्नानं कृतं पुरा ॥  
 सौवैरराजस्य पुरा मैत्रेयोऽभूत् पुरोहितः ।  
 तेन चायतनं विश्वोः कारितं देविकातटे ।  
 अहन्यहनि शश्रूषा पुष्पधूपानूत्पन्नैः ॥  
 दीपदानादिभिश्चैव सक्रीतश्च स वै द्विजः ।  
 कार्तिक्या दीपकस्तत्र प्रदक्षतेन चैकदा ॥  
 आसीन्निर्वाणभूमिषु देवावासरतो निधिं ।  
 देवतायने वासी तत्राहमपि मूपिका ॥  
 प्रदीपवर्त्तिहरणे कृतवृद्धिर्व्वरानने ।  
 गृहीतेयं मया वर्त्तिर्द्विपदंशो कुरीधर मां ॥  
 नष्टा चाहं ततस्त्वस्य मार्जारस्य भयातुरा ।  
 वक्रपान्तेन पश्यत्या म दीपः प्रेरितो मया ॥  
 जज्वाल पूर्व्ववदास्या तस्मिन्नायतने पुनः ।  
 मृताहं तु पुनर्जाता वैरभे राजकन्यका ॥  
 जातिस्मरा महीपस्य महिषी चारुधर्मिणः ॥  
 एष प्रवादी दीपस्य कार्तिके मासि शोभनः ।  
 दत्तस्यायतने विश्वोर्धस्येयं व्युष्टिरुत्तमा ॥

१ रोदधि वा रति पुलकाकरे पाठः ।

असङ्ख्यितमप्यस्य प्रेरणं यन्मया कृतं ।  
 केशवः शालयदीपस्य तस्येदं भुञ्जते फलं ॥  
 एतस्मात् कारणाद्दीपानहमेतानहर्निशं ।  
 प्रयच्छामि हरेर्गृहे जातमस्य महाफलं ॥  
 एवमुक्तं सपत्न्यास्ता दीपदानपरायणाः ।  
 यभूषद्वैवदेवस्य केशवस्य महागृहे ॥  
 ततः कालेन महता सह राज्ञा महात्मना ।  
 विष्णुलोकमनुप्राप्ता पञ्चत्वं प्राप्य मानदा ॥  
 तं लोकमासाद्य तृपेण सार्धं  
 सराजपत्नी कमलाभनेषा ।  
 रेमे महीपाल मुदा समेता  
 दीपप्रदानात् सकला न हीनाः ॥  
 दीपप्रदानमपि पुण्यतरं वदन्ति  
 विप्रान्निगोष्ठहसुरैकगृहज्ञेषु ।  
 तद्दानदीपवपुषास्य यथाश्वकारे  
 गच्छन्नरः पतति नो सविले कदाचित् ॥  
 इति श्रीभविष्योत्तरे दीपदानविधिः ।

—000—

अथ स्कन्दपुराणोक्तं मौनव्रत ।  
 कैलासशिखरासीनी देवदेवी जगद्गुरुः ।  
 बिलोचनो दशभुजो जटाखण्डेन्दुमण्डितः ॥  
 भस्मार्चितशरीरस्तु पञ्चवक्त्रसमन्वितः ।  
 शूलपाणिर्महातेजा द्वादशादित्यसन्निभः ॥

शेषवद्भजटाजूटः सुखासीनः सद्दीमया ।  
 तत्र देवासुरा यच्चगणगन्धर्व्वकिन्नराः ॥  
 अन्येऽपि हृदयतपसोः मृत्युकालसमप्रभाः ।  
 एभिः संशेव्यमानोऽसौ पार्वतीप्राणवल्लभः ॥  
 कस्मिंश्चिदपिहृलेसौ पार्वतीप्राणवल्लभः ।  
 विसृज्य देवानेकान्ते पार्वत्या सह तिष्ठति ॥  
 प्रणम्यातीव सस्नेहं रोमाञ्चिततनूरुहं ।  
 तत्त्वं पृच्छति सा देवी शृणु सर्व्वसुरेश्वर ॥  
 लोकाभाषे प्रसुप्ते तु लोकामात्यजने रताः ॥  
 सूर्यादीनाञ्च देवानां विश्वेशे भक्तितत्पराः ।  
 किमर्थं तद्गतं नास्ति ब्रूहि मे सुरसत्तम ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना ॥  
 व्रतमेतत् पुरा शीर्षं सीतया राघवेण च ॥  
 अन्यैरपि जनैः सर्व्वैः सश्वीर्षं व्रतमुत्तमं ।  
 नभस्यच व्यतिक्रान्ते नभस्ये च प्रवर्त्तिते ।

नभाः, आवणः, नभस्योभाद्रपदाः तो चात्र पूर्णिमान्ते पाण्ड्यौ ।

एवं कालक्रमेणैव आवणो पूर्णिमा गता ।

तद्दिनं प्राप्य विप्रेषेत्त्वथ नैवाभिधानात् ।

व्रतमेतत् कर्त्तव्यं षोडशैव दिनानि तु ।

एतच्छ्रुत्वा ततो देवी प्रहृष्टा वाक्यमब्रवीत् ॥

पार्वत्युवाच ।

किं-विधानं पुरा प्रोक्तं व्रतं मौनव्रतात्मकं ।



तत्समस्तं समाचक्ष्व प्रसादं कुरु मे-प्रभो ॥

ईश्वर उवाच ।

तद्दिनञ्चैव संप्राप्य सभार्यः सह वान्धवैः ।  
 गत्वा प्रभातसमये स्नानार्थं जलसन्निधौ ।  
 तडागे वा नदीदेशे गत्वा प्रश्रवणेऽथ वा ॥  
 स्नानं कार्यं तदा सर्वैः शिवध्यानपरायणैः ।  
 दूर्वाकाण्डं सुसंगृह्य षोडशपत्रियसंयुतम् ॥  
 तत्सूत्रञ्च करे न्यस्य स्त्रिया वामे नृदक्षिणे ॥  
 एवं विधानं कर्त्तव्यं यावत् स्यात् प्रतिपद्दिनम् ।  
 तद्दिने चैव संप्राप्ते समाप्त्यर्थं व्रतस्य तु ॥  
 मीनेनैवानयेत्तियं मीने गोधूम पेषणम् ।  
 मीनेनैव च कर्त्तव्यं नैवेद्यं भोजनादिकम् ॥  
 सर्व्वीपस्करमादाय गत्वा च जलसन्निधौ ।  
 स्नानं कार्यं तदा तत्र नित्यकर्म ततः परम् ॥  
 देवर्षिमनुजानाञ्च पितृणाञ्चैव तर्पणम् ।  
 पथाद्देवाधिदेवेशं मन्त्रैः संपूजयेत्ततः ॥  
 शूलपाणे वृषारूढे अर्धचन्द्रविभूषणे ।  
 तोयेन स्नापितो देव पवित्रं कुरु मां सदा ॥  
 देवैस्तु वन्दिता धेनुः सर्व्वपापप्रणाशनी ॥  
 तत्क्षीरस्नापितो देव नित्यं मे वरदो भव ।  
 कामतोऽकामतोवापि यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥  
 तत्सर्व्वं विलयं यातु दध्ना स्नानेन भोः शिव ।  
 रसालमुत्तमं साज्यं देवानाञ्च सदा प्रियम् ॥

तेन त्वं स्नापितो देव निधिकान्तिप्रदो भव ।  
 यस्थोच्चारणमात्रेण त्वसिं यान्ति पितामहाः ॥  
 मधुना स्नापितो देव नित्यं श्रीकहरो भव ।  
 यमखीकभयत्रस्तः शरणं त्वां गतः शिव ॥  
 खण्डज्ञानेन देवेषु मां कुरुष्व सुमानुषम् ।  
 यस्य दर्शनमात्रेण शुभः पापाश्च लीवितम् ॥  
 तेनैवोत्तमतोयेन स्नातो देहि प्रियं ध्रुवं ।  
 सुगन्धं चन्दनं देव कुङ्कुमेन समन्वितम् ॥  
 अर्चितीऽसि मया भक्त्या शिवलीकप्रदो भव ।  
 अक्षयान्बन्धुपुत्रादीन् कायश्चैवाक्षिवाङ्गनः ॥  
 भक्ते चैवाक्षयं शीकमक्षतैरर्चितः कुरु ।  
 सन्तानः पारिजातश्च ये चान्ये सुरपादपाः ॥  
 तेषां पुष्यैर्मया देव पूजितः सुखदो भव ।  
 धूपोऽयं गृह्णातां देव सुन्दरो गन्धवान् शुचिः ॥  
 ईप्सितं मे वरं देहि परञ्च च शुभाङ्गतिम् ।  
 शुद्धा शुक्ला चारुवर्तिराण्येन च समन्विता ॥  
 दीपवर्तिप्रदानेन प्रीतः स्यादोश्वरो मम ।  
 सर्वमन्नप्रदानञ्च देवानाञ्च सदा प्रियम् ॥  
 तेनैवान्नप्रदानेन सुप्रीतो वरदो मम ।

शाखाप्रशाखा न सिता च दर्वा  
 विस्तारभूता धरन्तीतले यथा ।  
 ममापि सन्तानवरं तच्चाक्षयं  
 कुरुष्व दर्शं शिव पूजने रता ॥

नामाविधं फलं मुख्यं सुपुष्याक्षतचन्दनम् ।  
 भक्त्या च परया दत्तं गृह्णाण त्वं सुरेश्वर ॥  
 जन्मजन्मान्तरेष्वेव भावाभावेन यत् कृतम् ।  
 क्षम्यं देव तत्सर्वं १ शुद्धो भूत्वा समाहितः ॥  
 शिवपूजां प्रकुर्वीणः कृतकृत्यो भवेन्नरः ।

इति पूजा ।

एवं संपूज्य विधिना सङ्कल्पः क्रियते ततः ।  
 सदा सम्पन्नपूजायां प्रीयतां मम शङ्करः ॥  
 संप्रीतो भव देवेश भक्त्या पाहि सदाशिव ।  
 एवं पञ्चामृतैः स्नानं यः कारयति मानवः ॥  
 आजन्मोपार्जितात् पापात् शुध्यते नात्र संशयः ।  
 विभागश्च प्रदातव्यो ब्राह्मणाय शिवाय च ॥  
 आत्मना चैव भोक्तव्यं पक्वान्नं विधिवत् शुभं ।  
 एवं क्रमेण कर्त्तव्यं सद्ग्रेष्टजनबान्धवैः ।  
 व्रतिना हितकामार्थं द्विजो भोज्यः सदक्षिणः ॥  
 दातव्यं प्रीतिपूर्व्वेण याचेताच्छिद्रकं द्विजम् ।  
 ततश्च शिवपूजादि भावाभावेन यत् कृतम् ॥  
 तत्सर्वं मम पूर्णं स्याद्दत्तकामार्थसाधनं ।  
 पुत्रपौत्रप्रदं ह्येतत् सर्वकामप्रदं व्रतं ॥  
 एतत्सर्वं मया ख्यातं त्वदग्रे प्रीतिपूर्वकं ।  
 श्रुतमात्रेण देवेशि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

देव्युवाच ।

यदेतदतुलं पुण्यं व्रतादस्मादुदाहृतं ।  
प्रत्ययार्धं तु मे किञ्चित् कथयस्व सुरेश्वर ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवी यथा वृत्तं प्रत्ययार्धं सुरेश्वरि ।  
हरिश्चन्द्रस्य राज्ये तु यद्वृत्तं परमाहुतं ॥  
राज्यं यास्ति महीपालः चाक्षधर्म्येण धर्मवित् ।  
नाधर्मो विद्यते देवि तस्मिन् राज्ञि प्रयासति ॥  
न ह्योनवदनः कश्चिन्न दुःखी न दरिद्रवान् ।  
न च व्याधिभयं किञ्चिदल्पायुर्जातुरो भवेत् ॥  
एवं पालयतो राज्यं हरिश्चन्द्रस्य धीमतः ।  
षट्कर्मनिरता नित्यं विप्रो यजनतत्पराः ॥  
स्वधर्मं निरताः सर्वे नित्योक्ताहसमन्विताः ।  
तस्मिन् पुरवरे विप्रो ऋषियर्मेऽति तापसः ॥  
तत्कामीपे वणिकपुत्रः श्रीकरो नाम विश्रुतः ।  
वणिकपुत्रो महापापी धर्ममार्गपराङ्मुखः ॥  
निन्दको देवतानां च ब्राह्मणानां च निन्दकः ।  
सदा पापरतात्मासौ वणिकपुत्रः सुरेश्वरि ॥  
ऋषियर्मा हिजो नित्यं पूजयेद्दिष्टदेवताः ।  
षट्कर्मनिरतो विप्रो व्रताचारी सदैव हि ॥  
एवं काशकर्मिण्येव त्रावण्यो पूर्णिमा गता ।  
तस्मिन् प्राप्य विप्रेण ज्ञानं कृत्वा नदीजले ॥

तदिदं यावन्पुत्ररदिनं ।

देवर्षिमनुजानाम् पितृणां तर्पणं कृतं ।  
 शङ्करं पूजयित्वा तु द्विजान् भोज्य तथातिथीन् ॥  
 सपुत्रः स्वजनैः सार्द्धं भोजनं कृतवान् द्विजः १ ।  
 इष्टधर्मवशाद्देवि वणिग्विश्रमगतो द्विजः ॥  
 दूर्वाक्षतं च सूत्रं च वणिग्वस्त्रे न्यवेदयत् ।  
 सशस्त्रो च तदा सूत्रद्वन्द्वं वाक्यमुवाच ह ॥

ऋषिशर्मोवाच ।

भोभो मित्र वणिक्पुत्र शिवमीनव्रतं कुरु ।  
 पुत्रपौत्रप्रदं लोके शिवस्थानप्रदं तथा ।  
 तस्य तद्वचनं श्रुत्वा श्रवणध्यानमास्थितः ॥  
 स्वचित्ते चिन्तयत्येवं व्यवसायस्य भङ्गतः ।  
 पर्वजन्मान्तरे त्वं मे मित्रत्वं समुपागतः ॥  
 न करोमि यदा वाक्यं तदा श्रापं प्रदास्यसि ।  
 अद्य यावन्मया पूर्वं न श्रुतं न कृतं व्रतं ॥  
 संप्रत्यहं करिष्यामि त्वद्वाक्यभयशङ्कितः ।  
 व्रतसंख्या विधानं च ब्रूहि मे द्विजसत्तम ॥

ऋषिशर्मोवाच ।

शृणु मित्र व्रतं पुण्यं धनपुत्रकलत्रदं ।  
 तावद्भ्रतमिदं कार्यं यावत् स्यात् प्रतिपद्दिनं ॥  
 दिनानि षोडशैवात्र व्रतमेतदुदाहृतं ।  
 नित्यं जलाशयं गत्वा ईश्वरं पूजयेत्ततः ॥

दूर्वापोद्गशकाण्डैश्च समीनं पूजयेच्छिवं ।  
 एकभक्तं ब्रह्मचर्यं यावद्गतं समाप्यते ॥  
 पूर्वोक्तं सविधानं च द्विजेन कथितं तदा ।  
 एतच्छ्रुत्वा वणिक्पुत्रो विस्मिती वाक्यमब्रवीत् ॥  
 एतन्मै मानुषाः सर्व्वे व्यवसायेन मे विना ।  
 वर्त्तिष्यन्ते कथं विप्र यावद्गतसमापनं ॥  
 भद्रेशमनि दिनैकस्य व्ययशुचिर्न विद्यते ।

ऋषिशर्मावाच ।

ईश्वरे नियता भक्तिर्दृढभावेन चेतव ।  
 एवं हि गृहचिन्तान्ते करिष्यति न संग्रयः ॥  
 एवं सम्बोधितस्तत्र ब्रह्मणेन महात्मना ।  
 वणिक्पुत्रो दरिद्रीऽपि व्रतार्थं निश्चितोऽभवत् ॥  
 चकार चैवं यत् प्रोक्तं व्रतस्यास्य विधानकं ।  
 ऋषिशर्मा द्विजश्रेष्ठः श्रीकरश्च वणिक्पुत्रः ॥  
 व्रतमेतत् कृतं भयं लोकानुग्रहकाम्यया ।  
 पूर्व्वसञ्चितमेवामीदृष्टमद्यं गृहे तयोः ॥  
 व्रतप्रभावात्तत्सर्व्वं मलयत्वं जगाम वै ।  
 तयोस्तु प्रत्ययं दृष्ट्वा अवासीन्महती तदा ॥  
 व्रतं समाप्य विधिवत्तदादानान्बन्धकधा ।  
 गो-भू-वस्त्रहिरण्यानि फलं ताम्बूलवासवौ ॥  
 विप्रेभ्यः अहया दत्त्वा जातो तो ऋषंसंयुतौ ।  
 व्रतस्यास्य प्रभावेन गृहे लक्ष्मीः पराभवत् ॥

पुत्रपौत्रादिसंयुक्ती धनधान्यसमन्वितः ।  
 वभूव स वणिक् पुत्रः स्वव्रतस्य प्रभावतः ॥  
 स तु वर्षशतं सायं भोगान् भुक्त्वा महीतले ।  
 ततश्चकार कायान्तं वणिक् पञ्चत्वमागतः ॥  
 यमेन प्रेषिता दूताः पाशमुद्गरपाणयः ।  
 रक्ताद्या रक्तवक्त्राश्च रक्तकेशा भयानकाः ॥  
 शुष्कीदरा महाकाया रक्तपुष्पैरलङ्कृताः ।  
 तेर्गृहीतो वणिक्पुत्रो बह्वः पाशैरनेकशः ॥  
 बद्धाःपाशैस्तदा दूताः प्रीक्षुश्च श्रीकरन्तदा ।

दूताञ्जनुः ।

यदि कालकमाहापि प्राप्ता ते मानुषी तनुः ।  
 कस्मात् पापप्रभावेन यमलोकस्त्वयार्जितः ॥  
 मनुष्यः कुर्वते यत्तु यन्नशक्यं सुरासुरैः ।  
 एवं भुवाणास्तेदूता मुद्गरोद्यतपाणयः ॥  
 प्रहर्तुकामास्तं नेतुं निजालस्यो वणिक्सुतः ।  
 तद्व्रतस्य प्रभावेन त्रासहीनो वभूव सः ।  
 देहात्तस्य तु निष्क्रान्तः शक्तिस्तेजोमयी शुभा ॥  
 मयापि प्रेषिता दूतास्तमानेन निजालयात् ।  
 यमदूतैः समं युद्धं कृतमैस्त्वं सुदारुणं ॥  
 ते स्वशक्त्या ममगर्भैर्यभदूता निवारिताः ।  
 तस्मिन् काले च संप्राप्तं महिमानं प्रिये शुभं ॥  
 सिद्धिगन्धर्व्यद्याणां गणैश्चाप्सरसंघतं ।

समारुढीवणिक्पुत्रो विमानं सर्वकामिकं ॥  
ममालयं समायातो मत्प्रसादात् सुरेश्वरि ।  
मया चागमनादेव दत्तं स्थानं तदात्मना ॥  
तावच्छिवपुरे नन्द्यावदाभूतसंप्लवं ।  
पसाङ्गूपालपदवीं भुक्त्वा तेनाव्धिमेखलां ॥  
एवं लब्धवरो भूत्वा चिक्रीडे शिवशासने ।  
एवं प्रकाशमायातं व्रतमेतत् सुरेश्वरि ॥  
व्रतप्रभावाद्दिप्रोपि सर्वधर्मसमन्वितः ।  
प्राप्य धन्यतमं स्थानं शिवलोके च मोदते ॥  
दुर्लभं स्वल्पबुद्धीनामाधिव्याधिविजितं ।  
मीनव्रतस्य माहात्म्यं सृष्ट्युपापनिपृद्वनं ॥  
सर्वसिद्धिप्रदं देवि योगक्षेमकरं परं ।  
शिवलोकप्रदं पुण्यं गुह्याङ्गव्रतरं शुभं ॥  
व्रतं प्रीतिप्रसादेन कश्चितश्च तवाधुना ॥  
रीद्रे कलियुगे देवी व्रतं कर्तुं न शक्यते ।  
चमामूलं व्रतं ज्ञेयत् साक्षाद्यदुर्लभं कली ॥  
एतस्मात् कारणात् पूर्वं मयैतन्न प्रकाशितं ।  
दुःसाध्यं व्रतमेतद्वै मीनं सर्वार्थमाधनं ॥  
तेषाम्नु दिवसं प्राप्य सकलाघं विनश्यति ।  
न च शोकी भवेत्तस्य सततं सुखकारणं ॥  
कुर्वन्ति मनुजा भक्त्या व्रतं किम्विषयतारणं ।  
मीनप्रभावाद्दि शुभे शिवालये  
वसन्ति भर्त्याः शुचिशुद्धदेहाः ।



संसेव्यमानाप्सरसाङ्गणन  
 चरन्ति लोकान् विविधान् मनोरमान् ॥  
 संसारपाशाच्च विमुच्यते दिवं  
 परं पदं यान्ति सुरार्चितास्तत इति ।

इदञ्चव्रतं पूर्वविद्यायामिष कर्त्तव्यं रुद्रव्रतत्वात् न तु देव-  
 कार्यत्वेन पौर्वाङ्गिक्यामुत्तरस्यां । रुद्रव्रतेषु सर्वेषु कर्त्तव्या  
 सांमुखी तिथिरिति ब्रह्मवैवर्त्तवचनात् ।

इति विष्णुधर्मोत्तरीक्तं दीपव्रतं ।

अथ स्कन्दपुराणोक्तं मौनव्रतोद्यापनं ।

— ०००५,००० —

पार्वत्याश्च ।

मौनव्रतस्य माहात्म्यं कथा चैव सविस्तरां ।  
 उक्ता यथावद्देवेश श्रुता च त्वन्मुखान्मया ॥

व्रतस्योत्सर्जनमनन्तरं ।

वस्त्रै राभरणैश्चैव कृत्वापानत्स्रगादिभिः ।  
 आचार्यद्विगुणं प्रोक्तं तदर्द्धं ब्रह्मणे तथा ।  
 कुण्डं समेखलं यत्तुकुण्डपार्श्वसमन्वितं ॥  
 कृत्वा शिवस्य वै मूर्त्तिं पार्वत्याश्चैव कारयेत् ।  
 सौवर्णीं राजतीं तान्नीं कुर्यात् शठप्रविषर्जितः

यथा विभवमानेन कुर्याद्देवं चतुर्भुजं ।  
माघमासा सुवर्णस्य दरिद्रस्यापि कीर्त्तिता ॥  
त्रिशूलमक्षमालाञ्च वरदाभयशोभितं ।

अक्षमालाञ्च विभ्राणमिति शेषः ।

देवीञ्च द्विभुजान्तद्वराभयकरां शुभाम् ।  
संस्त्राप्य पञ्चगव्येन कपायैः पञ्चभिः शुभैः ॥  
फलैश्च मृत्तिकाभिश्च ततः पञ्चामृतेन तु ।  
नमोऽघोराय मन्त्रेण ततो गङ्गादकेन तु ॥  
षोडशारे तथा चक्रेऽथवा त्रिङ्गीद्विविधि वा ।  
अत्रणं कलशं स्थाप्य ताम्बपात्रा युतं दृढं ॥  
तत्र संस्थापयेद्देवं सदेवीकञ्च दीक्षितः ।  
प्रागमीक्षविधानेन न्यामान्देवस्य कारयेत् ॥  
दीर्घभाजा प्रसादेन अङ्गानां न्यास ईरितः ।

प्रसादेन, प्रसादेन वीजेन ।

आदावात्मनि कुर्वीत पद्याद्देवे समाचरेत् ।  
देव्यास्तदनु कुर्वीत मायावीजेन तत्त्वतः ॥  
ततस्तु वाससी दद्यादुपवीतमतः परं ।  
चन्दनं पुष्पधूपञ्च दीपं नैवेद्यमातरान् ॥  
ताम्बूलञ्च सकपूर्ं फलानि विविधानि च ।  
एवं संपूज्य देवेशं ग्रहयज्ञमथारभेत् ॥  
हान्त्रिंशद्देवताः पूज्याः पुष्पधूपादिभिः क्रमात् ।  
ग्रहयज्ञविधानेन ततोऽग्निस्थापनं मतं ॥

ह्रीमं तत्र प्रकुर्वीत बहुपात्मभिधैः शुभैः ।  
 बहुपात्मभिधैः, वटसमिद्धिः ।  
 घृतैश्च चरुभिश्चैव तिलैश्च सघृतैस्तथा ॥  
 अष्टोत्तरशतं यावच्चाम्बकेन हुनेत च ॥  
 समाप्य शिवयज्ञश्च ग्रहहोममथारभेत् ।  
 ग्रहपूजां पुनः कृत्वा बलिदानमथारभेत् ॥  
 ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा आचार्यं पूजयेत्ततः ।  
 धेनुं दत्त्वा हिरण्यश्च तथात्रं वसनानि च ॥  
 अन्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यश्च दद्याच्च वसनादिकं ।  
 षोडशान् कलशान् दद्यान्मालावस्त्रैरलङ्कृतान् ॥  
 देवश्च देव्यासहितमाचार्याय निवेदयेत् ।  
 तथा चैव प्रकर्त्तव्यमाचार्यं स्तुष्यते यथा ॥  
 तेन तुष्टेन देवेभ्यस्तुष्टो भवति नान्यथा ।  
 अतुष्टे विफलो यागो भवतीह न संग्रहः ॥  
 दीनानाद्यविशिष्टेभ्यो दद्याद्भोज्यं सदक्षिणं ।  
 भस्माङ्गेभ्योऽपि देयं स्यात् भोजनञ्च सर्वस्तकं ॥  
 यथा विभवतो वापि वित्तसाध्यविवर्जितः ।  
 ततः समाप्य सर्वान्तु भुञ्जोयाद्वाग्यतः शुचिः ॥  
 शिशैरिष्टैश्च सहितः पकानैर्घृतपाचितैः ।  
 प्रभातायान्तु शर्व्वथ्यामारम्भोऽस्य विधीयते ॥  
 स्नानं समाप्तिकृद्दिष्टा भोजनन्तु ततः परं ।  
 आचार्यन्तु सपत्नीकं परिधाप्य विधानतः ॥

पार्वतीसहितो रुद्रः प्रीयतामितिवाग्यतः ।  
 एवं यः कुरुते देवि मौनस्योद्यापनं शुभं ॥  
 बहुपत्नी बहुधनो भवेत् जन्मनि जन्मनि ।  
 पद्माच्छिवपुर गत्वा वसेच्च शिवसन्निधौ ॥  
**इति मौनव्रतोद्यापन ।**

—000—

सुत उवाच ।

कैलासशिखरासीनं देवदेवं जगद्गुरुं ।  
 प्रणम्य पार्वती प्राह शङ्करं लोकगङ्करं ॥  
 व्रतं कथय किञ्चिन्मे रूपसौभाग्यदायक ।

ईश्वर उवाच ।

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि व्रतं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।  
 महालक्ष्मीरिति ख्यातं सर्वसंपत्करं शुभम् ॥  
 पुरा विराजनगरे शिवगाद नृपोऽभवत् ।  
 तस्मिन्नेव पुरे राज्ञो ब्राह्मणो बालपुत्रिका ॥  
 अथापश्यद्वरेर्दूरात्तरः पूर्णोदकं त्रहत् ।  
 तत्र पीत्वा पयः शीतं नीरस्थंस ददर्श ह ॥  
 लवयानं रसस्तीरे लक्ष्मीमण्डरसाङ्गणम् ।  
 गत्वा पार्श्वं स पप्रच्छ किमेतत् पूजते शुभाः ॥  
 ता ऊचुर्द्विजदेवी च महालक्ष्मीरिति श्रुता ।  
 अस्माकं वचनात् मर्त्ये प्रकाशय महाद्युते ॥  
 तवापि सर्वकल्याणं भविष्यति न संशयः ।

इत्युक्तान्तर्द्धे तत्र सर्वेप्यप्सरमाङ्गणाः ।  
 अथ राजापि मृगयासंरुतीवनमभ्यगात् ।  
 वटुं विलोक्य नृपतिः क्षुधितोऽन्नमयाचत ॥  
 सोऽन्नन्ददौ तदा राज्ञे तेन पृष्ठो नु कारणं ।  
 प्रतमाहात्म्यमित्युक्त्वा व्रतं चास्मै न्यवेदयेत् ॥  
 महाराज निवोधिदं महालक्ष्मीवतं शुभं ।  
 भद्र भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यां नरोत्तम ॥  
 स्तुत्वाभ्यर्च्य महालक्ष्मीमेकभक्तं प्रकल्पाच ।  
 कुङ्कुमाक्षुप्तं सूत्रं षोडशयन्त्रियमंयुतम् ॥  
 तन्तुभिस्तत्प्रमाणैश्च यन्नीयात्तु करे गुणम् ।  
 दूर्वाक्षतप्रवालानां षोडशैव तु षोडश ॥  
 पुनरेराश्विने मासि कृष्णाष्टम्यां दिने शुभे ।  
 उषसं कारयेद्देव्यास्तूरीपगतनादितं ॥  
 कृत्वा च स्वगृहं दिव्यं वितानत्ररमण्डितम् ।  
 मोक्तिकालम्वितप्रान्तं पुष्पमाल्यभिभूषितम् ॥  
 स्वस्तिकैर्वर्द्धमानैश्च पूर्णकुम्भैः समन्वितम् ।  
 काष्ठमृच्चन्दनाकारामथचित्रगतां पुनः ॥  
 चतुर्भुजां महालक्ष्मीं वाजिपृष्ठगतान्तथा ।  
 दण्डाक्षसूत्रवरदां तथैवाभयपाणिकां ॥  
 पद्मासनां पद्महस्तां पद्मां पद्मदलेक्षणां ।  
 दिग्गजैः स्नाप्यमानाश्च काञ्चनैः कलशोत्तमैः ॥  
 ततोयात्रापयेद्याने निमग्नायां गृहे तथा ।

स्नानं कुर्यादसम्भ्रान्ती मन्त्रवञ्चोपचारतः ॥  
 देवान् पितॄंश्च सन्तर्ष्य ततो देवगृहं व्रजेत् ।  
 श्रीसूक्तेन च संस्त्राप्य कुर्यात् पूजाविधित्ततः ॥  
 आलिपिष्टं यवान्श्च बोधूमानाश्च चूर्णकं ।  
 पायसं घृतसंमिश्रं पञ्चपसृतिखण्डश्रा(१) ॥  
 शुद्धनिफलया वापि पाचयेन्मोदकान् शुभान् ।  
 ब्राह्मणेभ्यः प्रदीयेत आत्मानं प्राशयेत्ततः ॥  
 फलानि च समाहृत्य प्रदीपानष्टसंख्यया ।  
 एवं समृतसम्भारस्ततः पूजां समारभेत् ।  
 सितचन्दनलिप्ताङ्गां सितपुष्पाबलम्बितां ॥  
 सितवस्त्रयुगळ्वां श्वेतपुष्पैः(२) प्रपूजयेत् ।  
 चपलायै नमः पादौ चञ्चलायै च जाननी ॥  
 कटिं कमलवासिन्यै नाभिं चान्त्यै नमोनमः ।  
 स्तनौ मन्मथवासिन्यै लक्षितायै भुजह्वयं ॥  
 उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठं मायायै सुखमण्डलम् ।  
 नमः त्रियै शिरः पथाह्वयासंवेद्यामादरात् ॥  
 दद्यादङ्घ्रिं विघानेन नारिकेरादिभिः फलैः ।  
 कृष्णाङ्गैः कर्कटीवृन्दैरन्यैस्तत्कालसम्भवेः ॥  
 षोडशश्लो प्रदेवानि यथा शक्त्याथ वा पुनः ।  
 चन्द्रोदये ततो दद्यात् अर्घ्यचन्द्रस्य भक्तितः ॥  
 प्रवासफलसन्दोषैः पुष्पैः षोडशभिस्तथा ।

( १ ) पञ्चपसृतिखण्डश्रा इति पुलकान्तरे पाठः ।

( २ ) श्वेतवस्त्रैरिति कश्चित् पाठः ।

नवो नवोऽसि मामान्ते जायमानः पुनः पुनः ॥  
 क्षीराब्धिं समवेतस्त्वं देवानांप्यायसे हरिः ।  
 क्षीरोदार्णवमद्भुत अतिनेत्रमद्भुत ॥  
 भाभासितदिगाभोग रमानुज नमोस्तुते ।  
 कुर्यादेवं नृपश्रेष्ठ वर्षाणां द्वांष्ट्रं संख्यया ।  
 वर्षं वर्षं सपत्नीकं ब्राह्मणं पूजयेत् सुधीः ॥  
 हिरण्यवस्त्र-गोदानैर्हृत्क्षिणाभिश्च भूरिशः ।  
 एवं यः कुरुते भक्त्या तस्य श्रीर्गृहमाविसेत् ॥  
 इति श्रुत्वा नृपश्रेष्ठे यथोक्तं व्रतमादरात् ।  
 कालिन गच्छमानेन विस्मृतः स च डोरकः ॥  
 तस्य राज्ञी समादाय ज्वलितेग्नावथासृजत् ।  
 अन्यत् क्षीरगतं कृत्वा स्वहस्तस्यञ्चकार ह ॥  
 तस्याः कर्मविपाकेन दीर्भाग्यं पतितं तथा ।  
 अन्यथा भर्तृसम्मानं राज्ञा लक्ष्मीसमुद्भवं ॥  
 य इदं कुरुते देव्या वर्षं वर्षं महोत्सवम् ॥  
 तस्य श्रीर्जन्मत्रितयं न कदाचिदिमुञ्चति ।  
 आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं पूजाञ्च विन्दति ॥  
 अथेश्वरो विशेषेण कुर्यात्क्षत्रीव्रतं शुभं ।  
 व्रतात् समाप्नुयात् लक्ष्मीं वासुदेवप्रमादजां ॥  
 नारी वा कुरुते यातु प्राप्यानुज्ञां स्वभर्तृतः ।  
 सुभगा दर्शनीया च बहुपुत्रा च जायते ॥

यः शोभनं व्रतमिदं दयितं सुरारे-  
 भक्त्या समाचरति पूज्य भृगीस्तनूजाम् ।

राज्यं श्रियं स भुवि भव्यजनोपभोग्यां  
भुक्त्वा प्रयाति भवनं मधुसूदनस्य ॥  
इति स्कन्दपुराणोक्तं महालक्ष्मी व्रतं ।

— ००० —

मार्कण्डेय उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्भूर्त्तिव्रतं तव ।  
द्विधा तु देवदेवस्य सूर्त्तिर्भवति यादव ॥  
घोरा सौम्या शिवा चान्याऽघोरा भवति पावका ।  
शिवा चाग्निपति(१)र्यस्मादग्नीषोमात्मकं जगत् ॥  
द्विधा घोरा त्रिनिर्दिष्टा द्विधा सौम्या ततः पुन ।  
घोरा वज्रिथ सूर्यथ सौम्या सोमजनाधिपो ॥  
तेषां तु पूजनं कार्यं प्रतिपत् प्रभृति क्रमात् ।  
शुक्रपक्षात्तथारभ्य फाल्गुनस्य द्विजोत्तम ॥  
आदित्यं पूजयेद्वाज्रन् प्रथमेऽङ्गि परः शुचिः ।  
द्वितीयेऽङ्गि तथा वज्रं तृतीयेऽङ्गि जलाधिपम् ॥  
चतुर्थेऽङ्गि शशाङ्कश्च यथावन्मानवात्तमः ।  
तेषां तु रूपनिर्माणं कृत्वा तानमर्चयेद्दुधः ॥  
गन्धमाल्यनमस्कारधूपदीपाद्यमम्यदा ।  
वचा हरिद्रया स्नानं प्रथमेऽङ्गि समाचरेत् ॥  
द्वितीये यदुगार्दूल स्नानमामलकैः शभैः ।  
प्रियङ्गुना तृतीयेऽङ्गि चतुर्थे गौरमर्षपैः ॥

( १ ) सोरुपतिरिति क्वचित् पाठः ।



गोधूम-तिल-धान्यैश्च यवैश्च दिवसक्रमात् ।  
 होमः कार्यैश्च धर्मैश्चो दक्षिणां शृणु चाप्यथ ॥  
 कुङ्कुमारक्तवस्त्रैश्च चन्दनं ह्यत्रमेव च ।  
 क्षीरेण चैव कर्त्तव्यं प्रत्यहं प्राणधारणम् ॥  
 एतत्संवत्सरं कृत्वा व्रतं पूर्णं नरोत्तम ।  
 सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ॥  
 विमानेनार्कवर्णेन स्वर्गलोकं स गच्छति ।  
 तत्रोष्य सुचिरं कालं कुले महति जायते ॥

मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगो  
 वसुन्धरेणो विजितारिपक्षः ।  
 धर्मे स्थितः सत्यपरो विनीतो  
 जितेन्द्रियः सर्वजनाभिरामः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं गुणावाप्तिव्रतम् ।

—००—

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्तिव्रतं तव ।  
 शक्रकीनाशवरुणधनाध्यक्षा यदूतम ।  
 चतुरात्मा विनिर्द्दिष्टो वासुदेवो जगत्पतिः ।  
 तेषान्तु रूपनिर्भाणं कृत्वा तानर्षयेद्बुधः ॥  
 गन्धमात्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा ।  
 चाद्येन्द्रि(१) चैत्रशुक्लस्य यजेत चिदशेष्वरं ॥

(१) चापोऽतीति पुस्तकान्तरे पाठः ।

द्वितीयेऽङ्गि यमं देवं तृतीये सलिलाधिपम् ।  
 चतुर्थेऽङ्गि धनाध्यक्षं प्रत्यहं ज्ञानमाचरेत् ॥  
 नदीप्रदेशमासाद्य देवदिकप्रवहकमात् ।  
 यवैस्त्रिलैस्तथाज्येन होमःस्यात्तिलतण्डुलैः ॥  
 रत्नं पीतं तथा कृष्णं श्वेतं बस्मं दिनक्रमात् ।  
 शुभमेतद्गतं कृत्वा पूर्णसंस्कारं नरः ॥  
 नाकलीकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्रवम् ।

मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगो  
 वसुधरेणो विजितारिपचः ।  
 जनाभिरामः सुभगः प्रकृत्या  
 ततोऽपि विप्रत्वमुपैति भूयः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं ब्रह्माण्यप्राप्तिव्रतम् ।

— ०००@००० —

मार्कण्डेय उवाच ।

इदं मन्यन् प्रवक्ष्यामि चतुर्भूतिव्रतं तव ।  
 विष्णुर्भूमिर्नभो ब्रह्मा तस्य रूपचतुष्टयम् (१) ।  
 तेषान्तरूपनिर्माणं कृत्वा तानर्चयेद्बुधः ॥  
 गन्धमात्यनमस्कारदीपघुपात्रसम्बदा ।  
 आद्येऽङ्गि चैत्रशुक्लस्य विष्णुदेवं समर्चयेत् ॥  
 द्वितीयादिषु धर्मैश्च भुवं देवं (२) पितामहं ।  
 पूर्वव्रतोक्तं सकलं विधानमपरं भवेत् ॥

(१) भूतिं चतुष्टयं इति पाठान्तरम् ।

(२) भूमि इति कश्चिन् पाठः ।

व्रतमेतन्नरः कृत्वा कल्पं स्वर्गमवाप्नुयात् ।  
 मानुष्यमासाद्य भवत्यरोगी  
 धर्माभिरामो द्रविणीपपन्नः ।  
 धनेन रूपेण सुखेन युक्ती  
 जनाभिरामो विजितारिपन्नः ॥  
 इति विष्णुधर्मोक्तं धनावाप्तिव्रतं ।

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्तिव्रतं तव ।  
 बलं ज्ञानं तथैश्वर्यं शक्तिश्च यदुनन्दन ॥  
 विख्यातं देवदेवस्य तस्य मूर्त्तिचतुष्टयम् ।  
 यदेवरूपं कूर्मस्य (१) बलस्योक्तं तथैव तु ॥  
 रूपं ज्ञानस्य ते प्रोक्तं नरसिंहं तथा नृप ।  
 रुद्ररूपं तथैश्वर्यं कथितन्तु मया तव ॥  
 पूर्वं बलमुखं तस्य वासुदेवमुखं भवेत् ।  
 दक्षिणं वदनं ज्ञानं देवं सङ्कर्षणं विदुः ॥  
 ऐश्वर्यं पश्चिमे वक्त्रं रौद्रं पापाहरं तथा ।  
 वाराहश्च तथावक्त्रमनिरुद्धं प्रकीर्तितं ॥  
 त्विरात्रोपोषितश्चैत्रे पूर्वं संपूजयेन्मुखम् ।  
 शुक्लपद्मप्रतिपदि वैशाखे मासि दक्षिणम् ॥  
 ज्येष्ठे च पश्चिमे वक्त्रमापाठे च तथोत्तरं ।

( १ ) कूर्मस्य इति वा पाठः ।

गृहीपयोगि दातव्यं चैत्रे मासे द्विजातये ॥  
 रण्योपयोगिदातव्यं वैशाखे यादवीत्तम ।  
 योगोपयोगि दातव्यं ज्यैष्ठे मासि द्विजातये ॥  
 यज्ञोपयोगि दातव्यमास्याषाढे तथैव च ।  
 व्रतमेतन्नरः कृत्वा पूर्णमासचतुष्टयम् ॥  
 पारणं प्रथमं कृत्वा स्वर्गलोके महीयते ।  
 श्रावणादिषु मासेषु द्वितीयं पारणं भवेत् ॥  
 दशवर्षसहस्राणि स्वर्गं भुङ्क्ता यथोदितम् ।  
 सौभाग्यादिषु भोगेषु तृतीयं पारणं भवेत् ॥  
 तृतीयं पारणं कृत्वा भोजयेद्वाङ्मणाञ्छुचिः ॥  
 भोजनं गोरसप्रायं गृहीकाशर्करायुतम् ।

प्राप्ते द्वितीये व्रतपारणे तु  
 प्राप्नोति देवस्य सलोकतां सः ।  
 स्वर्गेन्द्रलोके च यथोक्तकालं  
 भुङ्क्ते सुखं सर्व्वममृत्तिकामः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सर्व्वाम्प्रिव्रतम् ।

— ००(१)०० —

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्युगव्रतं तव ।  
 कृतादिषु चतुर्युगं पूजयेत् सुसमाहितः ॥  
 प्रथमे चैव शुकस्य दिने पूज्यं कृतं युगं ।  
 श्वेतेन वस्त्रयुग्मे न गन्धमाब्धादिना तथा ॥

चैत्रशुक्लसमारम्भे प्रथमेऽहनि पूजयेत् ॥  
 कृतं शुक्लेन सर्व्वेण गन्धमाख्यादिना द्विज ।  
 द्वितीयेऽहनि रक्तेन तथा त्रैतान्तु पूजयेत् ॥  
 तृतीयेऽहनि पीतेन चापरं पूजयेद्दुधः ।  
 चतुर्थेऽहनि कृष्णेन तिष्यं संपूजयेद्युगं ॥  
 सिद्धार्थकैः कुङ्कुमेन तथैव च हरिद्रया ।  
 तथैवामलकैः स्नानममलैर्द्वैवसकृमात् ॥  
 क्षीरेण प्राणवातान्तु कुर्यात् प्रत्यहमेव च ।

कृत्वा व्रतं वस्तरमेतदेकं  
 चतुर्युगं भोदति नाकष्टे ।  
 संपूज्य देवं युगमूर्त्तिसंघं  
 चतुर्युगं शास्ति महीं समयां ।

इति विष्णुधर्मीत्तरोक्तं चतुर्युगव्रतम् ।

—000—

श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्त्तिव्रतं तव ।  
 ईमानञ्च तथा वक्रिं विरूपाक्षं समीरणं ॥  
 जानीहि यदुशादूर्ल देवमूर्त्तिचतुष्टयम् ।  
 तेषान्तु रूपनिर्भाणं कृत्वा तानर्षयेद्दुधः ॥  
 गन्धमाख्यनमस्कारदोषधूपान्नसम्पदा ।  
 चैत्रशुक्ला महाभाग प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ॥  
 क्षीप-नादेय-ताडाग-कासारैः स्नानमाचरेत् ।

दध्ना तिलैर्यवेर्होमी घृतेन च तथा भवेत् ।  
 कर्पूरं कुङ्कुमञ्चैव तथैवागुरुचन्दनम् ॥  
 ब्राह्मणेषु प्रदातव्यं तथा राजन् दिनक्रमात् ।  
 दिनत्रयं तथाश्रीयात् सायं प्रातरर्घाचितम् ॥  
 दिनमेकान्तु वाश्रीयात् व्रतचारो नरोत्तमः ।  
 एतत् सवत्सरं कृत्वा व्रतं पुरुषमत्तम् ॥  
 सर्वकामसम्पन्नस्य यज्ञस्य फलमग्रते ।

मानुष्यमामाय भवत्यरोगो  
 वसुधेशो विजितारिपक्षः ।  
 जन्मान्तरेऽप्याहिजवर्यमुष्या  
 वेदप्रसक्तः बहुयज्ञयाजो ।

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं देवमूर्त्तिव्रतम् ।

—०००—

मार्कण्डेय उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि सप्तमूर्त्तिव्रतं तव ।  
 चैत्रमासादथारभ्य प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ॥  
 सुभास्वरा वर्षिषदीर्घ्यग्नश्वात्तास्तथैव च ।  
 क्रथ्यादापहताथैव आज्यपात्र सुकालिनः ॥  
 पूजयेत् प्रत्यङ्गं राजन् गन्धमास्य नृनेपनेः ।  
 नैवेद्यं कथरं कुर्यात् तिलानग्नौ च होमयेत् ॥  
 कथरं भाजयेद्विप्रान् तिलान् दद्याच्च दक्षिणाम् ।  
 नक्ताग्नस्तथा तिष्ठेद्विष्याशी नराधिपः ।  
 संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतं पुरुषमत्तम् ।

व्रतावसाने दद्यात्तु रजतस्य फलं(१) द्विजे ॥

व्रतेनानेन चीर्येन समलोकगतिर्भवेत् ।

त्रिदशैः पूज्यमानस्तु कामचारो विहङ्गमः ॥

जन्मावसानं पुरुषस्तु कृत्वा

संसारभीक्ष्णं लभते नरेन्द्रः ।

कृत्वा तथा हादशवत्सराणि

मानुष्यमासाद्य महीपतिः स्यात् ॥

इति विष्णुधर्म्मोक्तोक्तं पितृव्रतम् ।

— न —

मार्कण्डेय उवाच ।

त्रैत्रमासादथारभ्य कृष्णपक्षे दिने दिने ।

पातालपूजनं कुर्यात् पतिपत्प्रभृतिक्लमात् ॥

रौक्षं भीमं स्रिग्धभीमं पातालं नीलमृत्तिकम् ।

रक्तभीमं पीतभीमं श्वेतकृष्णमृदावपि ॥

सुवर्णैर्गन्धमास्यैश्च नैवेद्येन च भूरिणा ।

घृतदीपप्रदानेन वङ्गिसम्पर्पणेन च ॥

एवं नक्ताशनः कृत्वा व्रतं संवत्सरं सदा ।

व्रतावसाने दद्यात्तु दीपकान् द्विजवेश्मसु ॥

शुक्लवस्त्राणि राजेन्द्र यथा वर्णानि वाप्यथ ।

व्रतमेतन्नरः कृत्वा नृपरार्धपतिर्भवेत् ॥

पातालगतन्तु नरं दैत्यकन्यासहस्रशः ।

( १ ) पक्षमिति कश्चित्पाठः ।

रमयन्ति महाराज यावदिन्द्राद्यतुर्द्दृश ॥  
 कालेन वासाद्य मनुष्यलोकं  
 राजा भवेच्छत्रुगणप्रमाथी ।  
 वलेन रूपेण धनेन युक्तो  
 महागतिः सर्व्वजगत्प्रधानः ॥  
 इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं पातालव्रतम् ।

—000—

मार्कण्डेय उवाच ।

चैत्रशुक्लादष्टारभ्य प्रत्यहं दिनसप्तकम् ।  
 सुपर्भा काष्ठनाक्षीश्च विशालां मानसं इवाम् ॥  
 मेघनादां सुवेणुश्च तथैव विमलीदकां ।  
 नित्यं संपूजयेद्भक्त्या वह्निःस्नानं समाचरेत् ॥  
 तासाञ्च प्रत्यहं नाम्ना दध्ना हीमं समाचरेत् ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेच्चैत्र दध्ना युक्तं सुभोजनम् ॥  
 छतीदनं तथाश्रीयात्ककदेव तथा निगि ।  
 एवं संवत्सरं कृत्वा व्रतं सारस्वतं नरः ॥  
 तत्रोष्य सुचिरं कालं मानुष्ये जायते यदा ।  
 तथा नरेन्द्री जितगत्वुपचां  
 द्विजोत्तमो वा बहुयज्ञयाजी ।  
 रूपेण धान्येन धनेन पुरुः  
 सुतान्वितः स्याच्च जनाभिरामः ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं सप्तसागरव्रतम्(१) ।



श्रीमार्कण्डेय उवाच ।

चैत्र शुक्लादथारभ्य प्रत्यहं दिनसप्तकम् ।  
 मरीचिवमत्राङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥  
 वशिष्ठश्च महाभागं पूजयेत् दिवसक्रमात् ।  
 कालोद्भवैः फलेः पुष्पैः गोरसैश्च फलान्विनैः(१) ।  
 आचरेत् प्रत्यहं स्नानं वह्निर्नक्ताशनी भवेत् ॥  
 महाव्याहृतिभिर्हीमं तिलैर्द्वित्यं समाचरेत् ।  
 तर्पयेद्वाङ्मणांश्चात्र फलमूलैश्च गोरसैः ॥  
 वारिधान्यस्य दातव्याः क्षीरपूर्णा द्विजातिषु ।  
 एवं सम्वत्सरं कृत्वा व्रतान्ते वाहिताग्नेये ॥  
 दद्यात् कृष्णाजिनं राजन् यथापूर्वं मयेरितम् ।  
 व्रतमेतन्नरः कृत्वा मोक्षोपायश्च विन्दति ॥  
 मोक्षोपायं समासाद्य मोक्षं प्राप्नोत्वसंग्रहम् ।  
 प्राप्नोति लोकं यदि वा सुराणां  
 देवस्य विष्णोर्यदि वैश्वरस्य ।  
 पितामहस्य प्रपितामहस्य वा  
 व्रतेन तेनाशु(२)महानुभावः ॥

इति विष्णुधर्म्मोक्तोक्तं सप्तर्षिव्रतम् ।

( १ ) पृथग्विधैरिति वा पाठः ।

( २ ) अथव्रतेनाश्रिते वा पाठः ।

ईश्वर उवाच ।

नवमी चाष्टमी चैव पौर्णमासी चतुर्दशी ।  
 यो भूङ्क्ते देवि नैतेषु सुपर्वसु नरः समं ॥  
 गाणपत्यं स लभते निःसपत्न्यामनिन्दितं ।  
 इति मत्स्यपुराणोक्तं नवम्याद्युपवासव्रतम् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

कृष्णाष्टमीं तु नक्तो न यस्तु कृष्णां च सप्तमीं ।  
 उपवसेदिति शेषः ।  
 इहैव सुखमाप्नोति परत्र च शुभां(१) गतिम् ।  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तं सुखव्रतम् ।

—000—

आदित्य उवाच ।

सप्तम्यां च तथा षष्ठां(२) पक्षयोरुभयोरपि ।  
 योऽद्भमेकं नक्तभोजी नियतात्मा जितेन्द्रियः ॥  
 यत्पुण्यं परमं प्रोक्तं सततं सत्रयाजिनां ।  
 सत्यवादिषु यत् पुण्यं यत् पुण्यमृतुगामिनां ॥  
 तत्फलं सकलं प्राप्य मम लोकमुपैति सः ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तमर्कव्रतम् ।

( १ ) सुसुखमिति वा पाठः ।

( २ ) आदित्यमथवा षष्ठांमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

अष्टम्याश्च नवम्याश्च पक्षयोरुभयोरपि ।  
 योऽब्देमेकं न भुञ्जीत चण्डिकाराधने रतः ॥  
 स याति परमं स्थानं यत्र सा चण्डिका स्थिता ।  
 इति भविष्योत्तरोक्तं चण्डिकाव्रतं ।

—०४०—

अत्रिरुवाच ।

पूजयन्त्याथ ललितां सर्वसौख्यप्रदायिनीं ।  
 स्त्रियी व्रतपरा यास्तु न वैधव्यं भवेत् क्वचित् ॥  
 याः काश्चिद्देवताः सर्वा मनुजोरगराक्षसाः ।  
 ताः सर्वा वशमायान्ति ललितापूजने कृते ॥  
 दशाश्वेन पुरा चीर्णं वृद्धि-सन्तानकारणात् ।  
 ययातिर्मुञ्चुकुन्दय जनकश्च पुरुरवाः ॥  
 एते चान्ये च वहवो राज्यं प्राप्तमेकगण्टकम् ।  
 तस्मात्सर्व्वप्रयत्नेन पूजयेत्तलितां शुभाम् ॥

अनुसूया उवाच ।

एतद्भ्रतवरं ब्रह्मन् कस्मिन्नासि(१) च का तिथिः ।  
 के मन्ताः कस्य पूजेयं दानं कस्य विधीयते ॥

अत्रिरुवाच ।

शृणु त्वमनवद्याङ्गि ललिताराधनक्रियाम् ।  
 आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्यां नक्तभोजनम् ॥  
 प्रतिमां हेममयीं दिव्यां सर्व्वीलङ्कारभूषितां ।

( १ ) कस्मिन्काले इति वा पाठः ।

वापी कार्य्या शुभे देशे तन्मध्ये वेदिका शुभा ॥  
हस्तमात्रा वितस्यर्हा दग्धान्यसमन्विता ।  
वेदीकोणेषु संस्थाप्या सृण्मयेः पञ्चदेवताः ॥  
सिक्ता जलेन तन्मध्ये देवी स्थाप्या प्रयत्नतः ।  
अत्रणं सजलं कुम्भन्तान्त्रपात्रसमन्विम् ॥  
तत्र स्वर्णमयी देवी स्थाप्या च ललिला शुभा ।  
चन्द्रस्तु रोहिणीयुक्तं राजतं कारयेत् पुरः ॥  
दक्षिणे ह्यैश्वरं स्थाप्य वामतो विघ्ननाशनं ।  
मूलमन्त्रेण गायत्र्या सर्वं तत्र प्रपूजयेत् ॥  
अभयं वरदं सव्यं वामे च वीजपूरकं ।  
कुम्भोपरि सवस्त्रांतु प्रतीमामर्चयेद्दधः ॥  
समीपे करकं स्थाप्य सपुष्पफलचन्दनं ।  
प्रथमे घृतपूरांश्च करकोपरि संस्थितान् ॥  
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैः पूजयेत् प्रतिमां शुभां ।  
प्रथमे शतपत्रैस्तु द्वितीये जातिपुष्पकैः ।  
तृतीये चम्यकैश्चैव चतुर्थे पाटनैस्तथा ॥  
पञ्चमे कुमुदैश्चैव षष्ठे नीलीत्पलैस्तथा ।  
सप्तमे विश्वपत्रैश्च अष्टमे यूथिकांश्चैव ॥  
नवमे कृष्णाण्डिकापुष्पैः दशमे स्वर्णपुष्पकैः ।  
अथ त्वं देवी देवदेवानां त्वं माता त्वं जगत्पिता ।  
त्वत्प्रसादेन मे देवि न वैधव्य भवदिदम् ॥  
प्रार्थनामन्त्रः ।  
सदा त्वं ललिता देवी पूजनीया सुगसुरैः ॥

रूपसौभाग्यमायुश्च त्वत् प्रसादात् सदास्तु मे ।

अर्चनामन्त्रः ।

नीलोत्पलदलश्यामे पुण्डरीकशुभानने ।

पुष्पं गन्धं फलं तीर्थं गृह्णाणार्घ्यं नमो नमः ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

सलितेति गिरःपूज्य उमा पादौ प्रपूजयेत् ।

गिरिजा जानुनी पूज्य आस्यदेशे रतिः स्मृता ॥

नाभौ तु पूजयेद्देवीं चन्द्रिकां(१) कुक्षिदेययोः ।

सङ्घ्नीं स्तनप्रदेशे तु भुजयोर्मनकात्मजाम् ॥

मुखे च सुभगा नाम सलाटे शङ्करप्रिये ।

एवं पूज्या तु सा देवी नैवेद्यं प्रतिपादयेत् ॥

इष्टगौ प्रतिमा पूज्या प्रत्यहं दशवासरान् ।

घृतपूरा दश देश नैवेद्यार्थं तु भक्षयेत् ॥

द्वितीया लङ्बुकैः पूज्या सोमालिस्फुटकारिणैः ।

सुधाफलैः खण्डमण्डैः पूरिकाखण्डवेष्टकैः ॥

उदुम्बरं कांकरसं प्रत्यहं परिपूजयेत् ।

करके चैव नैवेद्यं दशैकेकं प्रदापयेत् ॥

कालोद्भवै फलैः पुष्पैः पूजयेद्दशभिर्द्द्विनैः ।

नारङ्ग नारिकेराणि मातुलिङ्गानि दापयेत् ॥

रश्मिस्तैश्चैव वस्त्रैश्च सर्वालङ्कारभूषणैः ।

पत्रैः पुष्पैः फलैः पूज्या दिनानि दशसंख्यया ॥

दशमे दिवसे प्राप्ते रात्रौ चन्द्रोदये तथा ।

( १ ) चण्डिकां प्रति क्वचित् साठः ।

देवीं संपूज्य विधिवत् चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥  
 शङ्के तीर्थं समादाय सपुष्पफलचन्दनं ।  
 नवो नवोऽसि मासान्ते जायमानः पुनः पुनः ॥  
 षट्हाषार्घ्यं श्रयङ्केमं रोहिण्या सहितो मम ।

चन्द्रार्घ्यमन्त्रः ।

करकान् जलसंपूर्णान् फलभीज्यैः समन्वितान् ।  
 एवं करोति नियतः कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥  
 अनेन विधिना योषित् न वैधव्यं लभेत् क्वचित् ॥  
 एतद्गतं मया पूर्वं कृतं यद्भुनिसत्तम(१) ।  
 करकं भक्षसंयुक्तं सुवासिन्यै प्रदापयेत् ॥  
 दशाहे प्रतिमां दिव्यामाचार्याय निवेदयेत् ।  
 आचार्यं वस्त्ररत्नैश्च सभार्यं परिपूजयेत् ॥  
 वर्षे वर्षे प्रदातव्या प्रतिमा चारुलोचने ।  
 अनेन विधिना यस्तु प्रकुर्याद्दशवासरान्(२) ॥  
 वर्षाणियावहेवस्य पूजनियाः सुरासुरैः ।  
 वर्षकैकेन येनैवं फलं प्राप्तं त्वया शुभे ॥  
 एतत्ते सर्वमाख्यातं अन्यजन्मकृतं शुभे ।  
 न स्पृशन्ति च पापानि ब्रह्महत्यासमानि वै(३) ॥  
 धनं धान्यञ्च सौभाग्यं पुत्रः पौत्रश्च वर्धते ।

( १ ) कृतक कृत्तिसङ्घातिविति वा क्वचित् ।

( २ ) वस्त्ररानिति क्वचित् पाठः ।

( ३ ) न स्पृशन्ति विविधानिवेति क्वचित् पाठः ।

यः पठेत् प्रातरुत्थाय शृणोति तु तथा नरः ॥  
 सर्व्व पापविनिर्मुक्तः परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तं दशरथ ललिताव्रतं ।

—०—

युधिष्ठिर उवाच ।

पुनर्मै देवदेवेग त्वद्भक्त्या भावितं मनः ।  
 कथ्यमानमिहेवामि योतुम्यर्म्भपदं महत् ॥  
 यत्राणुत्रापि दत्तं हि दृष्टं वा सुमहद्भवेत् ।  
 श्रुतं वा कथितं वापि पुण्याख्यानं जनार्दन ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु पाण्डव ते वच्मि रहस्यं देवनिर्मितं ।  
 यन्मया कस्यचिन्नोक्तं सुप्रियस्यापि भारत ॥  
 वैशाखमासस्य तु या तृतीया  
 नवम्यसौ कार्तिकशुक्लपक्षे ।  
 नभस्यमासस्य तु कृष्णपक्षे  
 त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥  
 वैशाखस्य तृतीया तु समा कृतयुगेण सा ।  
 नवमी कार्तिके यातु चैतायुगसमा हि सा ॥  
 त्रयोदशी नभस्ये तु हापरेण समा मता ।  
 माघे पञ्चदशी राजन् कलेरादिरिहोष्यते ॥  
 एताद्यतस्त्रीः राजेन्द्र युगानां प्रभवाः स्मृता ।  
 पुगादयश्च कथ्यन्ते तेनैताः पूर्व्वसूरिभिरिति ॥

उपवासस्तपोदानं जपहीमक्रियास्तथा ।  
 यदासु क्रियते किञ्चित् सर्वं कीटिगुणं भवेत् ॥  
 वैशाखस्य तृतीयायां श्रीमसेतं जगद्गुरुं ।  
 नारायणं पूजयेथाः पुण्यधूपविलेपनेः ॥  
 वस्त्रालङ्कारसम्भारैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ।  
 ततस्तस्याग्रतो धेनुर्लवणस्यादकेन तु ॥  
 कार्या कुरुकुलयेष्ठ चतुर्भागेन वत्सक ।  
 अविचर्मोपरि स्थाप्य कल्पयित्वा विधानतः ॥  
 शास्तीकक्रमयोगेन ब्राह्मणाद्योपपादयेत् ।  
 शोधरः शोपतिः शोमान् शोमःसप्रीयतामिति ॥  
 अनेन विधिना दत्त्वा धेनुं विप्राय भारत ।  
 गोमहस्त्रप्रदानस्य फलं प्राप्नोत्यसंग्रहं ॥  
 तथैव कार्तिके मासि नवम्यां नक्तभुग््नरः ।  
 स्नात्वा नद्यां तडागे वा देवत्वातिथ्या पुनः ॥  
 उमामहायं वरदं नीलकण्ठमथाचरयेत् ।  
 पुण्यधूपादिनैवेद्यैर्द्विपिगम्यादिभिस्तथा ॥  
 धेनुं तिलमयीदद्यात् पुराणीकविधानतः ।  
 अष्टभूर्त्तिनीलकण्ठः प्रियतामिति कार्त्तयेत् ॥  
 तदनु प्राप्यते पुण्यं पार्थ नक्तेन चर्ण्यते ।  
 दत्त्वा तिलमयीं धेनुं गिवलोकमवाप्नुयात् ॥  
 त्रयोदशो नभस्येया पितृन् तत्र समर्चयेत् ।  
 पितृन् पायसदानेन सुमनोभिर्हृतेन च ।



भोजयेद्वा(१) ह्यणान् भक्त्या वेदवेदाङ्ग पारगान् ।  
 पितृनुदिश्य दातव्या सवक्त्रा कांस्य दीहना ॥  
 प्रत्यक्षा गोर्महाभाग तरुणी सुपयस्विनी ।  
 पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥  
 मातामहप्रभृतयस्तथैवात्र त्रयो मम ।  
 प्रियताङ्गोप्रदानेन इति दस्त्वा विसर्जयेत् ॥  
 कृतेनानेन राजेन्द्र यत्पुण्यं प्राप्यते पुनः ।  
 तदन्धेन न शक्यन्तु वक्त्रं(२) वर्षगतैरपि ॥  
 पुत्रांश्च पीत्रांश्च धनं सर्व्वं सुमहदीप्सितं ।  
 इहैवाप्नोति पुरुषः परत्र च पराङ्गतिं ॥  
 पञ्चदश्यान्तु माघस्य पूजयित्वा पितामहं ।  
 गायत्रया सहितं देवं वेदवेदाङ्गभूषितं ॥  
 नवनीतमयीं धेनुं फलैर्नानाविधैर्युतां ।  
 सहिरण्यां सवक्त्रान्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 कीर्त्तयेत् प्रीयतां मेऽथ पद्मयोनिः पितामहः(३) ।  
 यत्स्वर्गोयज्ञपाताले यन्मर्त्यं किञ्चिद्दुर्लभं(४) ।  
 तद्वाप्नोत्यसन्दिग्धं पद्मयोनिः प्रसादतः ॥  
 यानि चान्यानि दानानि दीयन्ते सुवहुन्यपि ।

(१) पूजयेदिति पाठान्तरं ।

(२) प्राप्नोति इति चित् पुस्तके पाठः ।

(३) समाप्तमहति वा पाठः ।

(४) ध्यानं सर्व्वेषु पाताले यन्मर्त्यं किञ्चिद्दुर्लभमिति वा पाठः ।

युगादिषु महाराज प्रक्षयाणि भवन्ति हि ॥  
 वित्तहीनः स्वशक्त्या यो ददाति स्वल्पकं वसु ।  
 तदप्यक्षयतां याति नाशकार्या विचारणा ॥  
 वित्तानुसारं स्वन्दद्यान्नो वा निर्धनोपि वा ।  
 अन्यमल्पं हि यः कश्चित् प्रदद्यान्निर्धनोपि सन् ॥  
 तदक्षयं भवेत्सर्वं युगादिषु न संशयः ।  
 अनुसारेण वित्तस्य ऋक्साधेन समाधिना ॥  
 भू-हिरण्यं गृहं वासः शयनान्यासनानि तु ।  
 कृत्रो-पानह-यानानि देयानि शुभमिच्छता ॥  
 एवं दत्त्वा यथा शक्त्या भोजयित्वा द्विजानपि ।  
 पद्याङ्गुलीत सुमनाः वाग्यतो बहुभिः सह ॥  
 यत्कश्चिद्वाचिकं पापं मानसं कायिकं तथा ।  
 तत्सर्वं नाशमायाति युगादितिथिपूजनात् ॥  
 गीयमानोथ गन्धर्वैः पूज्यमानः सुरासुरैः ।  
 कल्पमेकं वसेत्पार्थ वद्रलोके न संशयः ॥  
 यद्दीयते किमपिकोटिगुणं तदाहुः  
 ज्ञानं जपो नियतमक्षयमेव सर्व्वं ।  
 स्यादक्षयासु युगपर्व्वतिष्ठीषु राजन्  
 व्यासादयो मुनिवरा इह नान्यथैतत् ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्तं युगादिब्रह्म(१) ।

—on.0110—

(१) युगादिब्रह्मसिद्धि वा पाठः ।

सनत्कुमार उवाच ।

वैशाखमासि शुक्लायां तृतीयायां जनार्दन ॥  
 यरानुत्पादयामास युगञ्चारव्यवान् कृतं ।  
 प्रह्लांल्लोकात्रिपथगां पृथिवीतल्लमानयेत्(१) ॥  
 भगीरथश्च नृपतिः सागराणां सुस्त्रावहः ।  
 तस्यां कार्थो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् ॥  
 यवान् दद्याद्द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद्यवान् ।  
 स्नानं दानं जपः आङ्गं तथा होमत्रपादिकं(२) ॥  
 अद्वया क्रियते तत्र तदानन्त्याय कल्पते ।  
 सिन्धुस्रिदिशिषेण सर्व्वमन्नयमुच्यते ॥

इत्यादिपुराणोक्तो युगादिविधिः ।

ब्रह्मीवाच ।

मासि प्रौष्ठपदे यत्तु कृष्णपक्षे त्रयोदशी ।  
 अवतीर्णं युगं तस्यां चैतायान्तु समाहितः(३) ॥  
 चैतायां विनिवृत्तायां एतस्यां तिथौ युगमवतीर्णमिति-  
 सम्बन्धः अर्थाद्वापरमितिलभ्यते ।  
 गोमूत्रं गोमयं दूर्वां समालभ्य च सृत्तिकां ।  
 स्नायाद्भृदे तडागे वा तिथौ तस्यां समाहितः ॥

(१) पृथिव्यामवतारयेदिति क्वचित् पाठः ।

(२) जपहोमादिकस्ययदिति वा पाठः ।

(३) तपोधन इति वा पाठः ।

कृतन्तेन भवेच्छास्त्रं गयायास्तु न संशयः ।  
 युगादौ यस्मिन्लोकेशं स्नापयेद्गुरुध्वजं ॥  
 घृतक्षीरजलैः पुण्यैः स गच्छेद्दैष्णवीं पुरीं ।  
 स्नापितोथ विलिप्तोथ पूजितोथ नमस्कृतः ॥  
 युगादौ युगकर्त्ता तु नृणां मुक्तिप्रदो हरिः ।  
 व्रते वै सर्वयत्नेन युगादौ जगतीपतिः ॥  
 पूजनीयो जनैर्भक्त्या सर्वदुःखहरो हरिः ॥  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तं युगावतारव्रतं ।

— ००० —

इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर  
 सकलविद्याविगारद श्रीहेमाद्रिविरचिते  
 चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे  
 नानातिथीव्रतानि ॥

## अथ द्वाविंशोऽध्यायः ।

—००७००—

अथ वारव्रतानि ।

आदित्यादिक्रममनुसरन् सप्तवारव्रतानि  
ब्रूते संप्रत्यवहितमतिष्ठसोद्य हेमाद्रि सूरिः ।  
आनन्दाय प्रभवति सतां यस्य वाचा विलासी  
नित्यं लक्ष्मीर्द्ध्यितचरितस्तोत्रमैत्रीपवित्रः ॥

तत्र तावदादित्यव्रतानि ।

डिही उवाच ।

ये त्वादित्यव्रते ब्रह्मन् पूजयन्ति दिवाकरं ।  
आनदानादिना तेषां किं फलं यद्वशीहि मे ॥

ब्रह्मा उवाच ।

ये त्वादित्यदिने प्राप्ते आह्वं कुर्वन्ति मानवाः ।  
सप्तजन्मानि ते प्राप्ताः सम्भवन्ति विरोगतां ॥  
वैराग्यमिह वै प्राप्य सूर्यलोकं व्रजन्ति ते ॥  
उपवासन्तु कुर्वन्ति ये त्वादित्यव्रते सदा ।  
जपन्ति तु महाश्वेतामीषितं लभन्ते फलं ॥  
विशेषादादित्य दिने जपमानो गणाधिपान् ।  
षड्चरं महाश्वेतं जपन् वैरीचनं पदं ॥

आदित्य हृदयं, यन्म ।

महाद्येतां ह्रीं ह्रीं स इतिमन्त्रः षडक्षरः ।  
ह्रीं ह्रीं स सृष्टीयेति नमः ।  
यो यः सूर्यदिने भानुं संपूज्य यज्ञयान्वितः ।  
नक्तं करोति पुरुषः स यात्यमरलोकतां ॥

इति भविष्योत्तरोक्तमादित्यव्रतं ।

— ००० —

आदित्य उवाच ।

योऽद्भ्यमेकं प्रकुर्वीत नक्तं हि मद्दिने नरः ।  
ब्रह्मचारी जितक्रीधो ममार्चनपरः खग ॥  
संवत्सरास्तमासाद्य मङ्गलाय हिजोत्तमान् ।  
भोजयित्वा प्रीतो ब्रूयात् प्रीयतां मे दिवाकरः ॥  
यद्य भक्तिममायुक्ता मम लोकं स गच्छति ।  
स च भानुल्लतं लोकं ध्रुवं संप्राप्नुयान्नरः ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तमादित्यव्रतं ।

— ०००१००० —

इत्सुयुक्ता वार्कदिने सौरनक्तव्रतं चरेत् ।  
आत्वाभ्यर्च्य तु विपान् वै विरीगो जायते नरः ॥

इति नृसिंहपुराणोक्तं सौरनक्तव्रतं ।

— ००० —

अथादित्यवारे नन्दादिविधिः ।

ब्रह्मोवाच ।

द्वादश्यां हस्तभं वारो आदित्यस्य महात्मनः ।  
 नन्दो भद्रस्तथा सौम्यः कामदः पुत्रदस्तथा ।  
 जयो जयन्तो विजय आदित्यादिमुपास्थितः ॥  
 हृदयो रोगहा चैव महारोगविनाशनम् ।  
 मालतीकुसुमानीह श्वेतचन्दनमुत्तमम् ॥  
 धूपं गुग्गुलुश्रेष्ठेन नैवेद्यं पूषमेव तु ।  
 दत्त्वापूर्णांस्तु विप्राय ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥  
 प्रस्थमात्रं भवेत्पूषं गोधूमीत्यमनुत्तमम् ।  
 यवीद्भवं वा कुर्वीत सुगन्धसर्षपान्वितम् ॥  
 सहिरण्यन्तु दातव्यं ब्राह्मणेभ्यो हितेषुना ।  
 भीमे दिव्येऽथवा देयं न्यसेदापूरणं रवेः ॥  
 दैवा, ब्राह्मणाः, भीमाः, तदितरे ब्राह्मणाः ।  
 दातव्यो मन्त्रवत् पूषो मण्डको गृह्य एव तु ।  
 पूषादित्यनकैर्भक्त्या आदित्यपरमश्च तु ।

दानमन्त्रः ।

आदित्यतेजसोत्पन्नं राज्ञीकरविनिर्मितम् ।  
 त्र्यसे मम विप्र त्वं प्रतीच्छापूपमुत्तमम् ॥

ग्रहणमन्त्रः ।

कामदं सुखदं धन्यं पुत्रदं धनदं तथा ।  
 सदा ते तु प्रयच्छामि मण्डकं भास्करप्रियं ॥

एतावेव महामन्त्री दानादाने रविप्रियो ।  
 अपूपस्य गणश्रेष्ठ अद्य मे नात्र संगयः ॥  
 एष मन्त्रविधिः प्रीतो नराणां श्रेयसे विभी ।  
 अनेन विधिना यस्तु देवं पूजयते रधिं ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ।  
 न दारिद्र्यं न रोगास्तु कुले तस्य महात्मनः ॥  
 यश्चैनं पूजयेद्भानुं अक्षयन्तनुते सदा ।  
 सूर्यलोकायय कृत्वा राजा भवति भूतले ॥  
 बहुज्ञातिममायुक्तः स नरो रत्रिमन्त्रिभः ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तो नन्दाविधिः ।

—(०००)—

मासि भाद्रपदे वीर शुक्लपक्षे तु या भवेत् ॥  
 पक्षी कुरुकुलश्रेष्ठ सा भद्रा परिकीर्त्तिता ।  
 तत्र नक्तञ्च यः कुर्यादुपवासमन्त्रापि वा ॥  
 हसयानं समारूढो याति हंससलोकतां ।  
 मालतीकुसुमानीह तथा श्वेतानुचन्दनं ॥  
 विजयञ्च तथा धूपं नैवेद्यं पायसं पर ।  
 विजयो, धूपः भविष्यत्पुराणोक्तोयथा ॥  
 अन्नणं सिद्धकं विप्र श्रीखण्डमगरुत्तथा ।  
 कर्पूरश्च तथा मूलं शकरी मत्स्यं दिज ॥  
 इत्यं संपूज्य देवेशं मध्याह्ने भवनाधिपं ।  
 दत्त्वा तु दक्षिणां शक्या ततो भुञ्जीत वाय्यतः ॥



पायसं सगुडं देयं गुडञ्च सर्पिषा सह ।  
सर्वान् कामानवाप्नोति पुत्रकामधनादिकान् ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तभद्राविधिः ।

— ००० —

नक्षत्रं रोहिणी वीर यदा वारी रवेर्भवेत् ॥  
जात्या स सौम्यता वीरः स सौम्यः परिकीर्तितः ।  
स्नानं दानं जपो ह्योमस्तथा देवादिपूजनं ॥  
अक्षयं स्यान्नसन्देहस्तस्य वारे महात्मनः ।  
नक्तं समाहितो यत्र पूजयेद्भास्करं नरः ॥  
याति लोकं स देवस्य भास्करस्य महात्मनः ।  
रक्तोत्पलानि वै तत्र तथा रक्तञ्च चन्दनं ॥  
सुगन्ध्यापि धूपोऽत्र नैवेद्यं पायसं परं ।  
ब्रह्मेति, मे भावितं मनः ॥

इति संपूजितः पुत्र भास्करः पुत्रदो भवेत् ।  
अतोऽयं पुत्रदो वारी देवस्य परिकीर्तितः ॥  
इति भविष्यत्पुराणोक्तः पुरापुत्रदो विधिः ।

-----

दक्षिणे त्वयने यः स्यात् स जयः परिकीर्तितः ॥  
अत्रोपवासो नक्तन्तु स्नान दानं जपस्तथा ।  
भवेच्छतगुणं देव भास्करस्य दिने कृतं ॥  
तस्मान्नक्तादि कर्त्तव्यमस्माच्छतगुणो विधिः ॥  
इति भविष्यत्पुराणोक्तो जयविधिः ।

जयन्त उत्तरर्क्षे आदित्यगणनायक ।  
वारी देवस्य चैवात्र पूज्यो देवो गणाधिपः ॥  
पूजितस्तत्र देवेशः सहस्रगुणितं फलं ।  
फलं ददाति देवेशः स्नानदानादिकर्मणि ॥  
ष्टतेन पयसा ह्यत्र स्नानमित्थुरसेन नु ।  
विलिपनं कुङ्कुमस्य प्रशस्तं भास्करप्रियं ॥  
धूपक्रिया गुग्गुलुना नैवेद्यं मापकं प्रिये ।  
इत्थं संपूज्य देवेशं कुर्यादा मन्त्रवत् किल ॥  
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् मीदकांस्तिलगङ्गुली ।  
इत्थं यः पूजयेद्भानुं प्राजापत्यर्क्षसंयुतः ॥  
स शोकविजयो नाम सर्वपापभयापहः ।  
तत्र कोटिगुणं सर्वं फलं पुण्यस्य कर्मणः ॥  
ददाति भगवान् देवः पूजितः मगणाधिपः ।  
स्नानं दानं जपो हीमः पिढदेवादिपूजनं ॥  
नक्तं वा सोपयासो वा संपूज्योऽत्र दिवाकरः ।  
सर्वलोकाधिपो भूत्वा प्राप्यते ममसप्तिकः ॥  
इति भविष्योत्तरोक्तं सूर्यस्य वारं त्रिपुरमृदनव्रतं ।

—600—

प्रातः कृत्वा ततः स्नानं पूजयित्वा दिवाकरं ।  
आदित्याभिमुखस्तिष्ठेद्यावदस्तमनं रवेः ॥  
जपमानो महाश्वे तां स्तम्भमायित्य भक्ततः ।  
महादेवस्य भक्त्या तु देवदेवं दिवाकरं ।  
पश्यन् जपन् महाश्वे तां तिष्ठेदस्तमयं रवेः ।

गन्धपुष्पोपहारैश्च पूजयित्वा दिवाकरं ॥  
 विप्राय दक्षिणां दद्यात्ततो भुञ्जीत वास्यतः ।  
 इत्थमेव व्रतं कुर्याद्वास्करप्रीतये नरः ॥  
 भानुमांस्तस्य तु प्रीतो दद्यात् सर्वमनोरथान् ।

इति भविष्यत्पुराणोक्तो आदित्याभिमुखविधिः ।

— ००० —

रविसंक्रमणे यस्मात् रवेर्वारोगणाधिप ।  
 आदित्यहृदयो नाम आदित्यहृदयप्रियः ॥  
 मां तत्र नक्तमाश्रित्य देवं संपूज्य यत्नतः ।  
 गत्वा मम पुरं पश्चात् पृथिव्यां स्यान्नराधिपः ।  
 गच्छेदायतनं भानोरादित्याभिमुखस्थितः ।  
 जपेदादित्यहृदयं संख्यगाष्टशतं बुधः ॥  
 यो नरः पूजयेद्भानुं भक्त्या अद्वासमन्वितः ।  
 स कामान् लभते सर्वान् आदित्यहृदये स्थितः ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं आदित्यहृदयविधिः ।

— ००० —

रुष्णे वारे यदाभौमं भवेद्भै भगदैवतं ॥  
 स यरो हि महाप्रोक्तः सर्वरोगभयापहः ।  
 भगदैवतं, पूर्वाफलगुनि ।  
 योऽत्र पूजयते भानुं शुभगन्धविलेपनैः ॥  
 सर्वरोगविनिर्मुक्तः स याति भास्यतेर्गृहं ।  
 अर्कपत्रं पुटे कृत्वा पुथार्के चैव सुव्रत ॥

देवस्य पुरतीरात्रौ भक्त्या संपूजयेद्बुधः ।  
 पूजयेद्बुधं वै भक्त्या एतेन विधिना द्विजं ॥  
 सर्वरोगैर्बिभृशस्तु गच्छेदादित्यकालयं ।  
 तस्मादपि व्रजेस्त्रोकं हुङ्काररहितस्ततः ॥  
 द्विजं, सूर्यं हुङ्काररहितो, ब्राह्मणः ।  
 इति भविष्योत्तरोक्तो रोगहविधिः ।

—०—

यस्त्वादित्यग्रहेणस्य वारो देवस्य सुव्रत ।  
 पूजयेत् स मिथोनित्यं ख्यातो गीश्रुतिभूषणः ॥  
 गीश्रुतिः, चक्षुः श्रवाः  
 स भूषणं यस्य स सर्पभूषणइत्यर्थः ।  
 यस्तु सपूजयेन्नित्यं पतङ्गं पन्नगाधिपं ।  
 गन्धपुष्पादिधूपैस्तु स्तोत्रैर्वा विविधैस्तथा ॥  
 सोपवासो गणश्रेष्ठ आदित्यग्रहणे शुचिः ।  
 जपमानी महाश्रुतां स्वशास्त्रोक्तग्रहाधिपम् ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु ततो भुञ्जीत वाग्यतः ।  
 आदित्यग्रहयुक्तोऽस्मिन् वारे त्रिपुरसदनः ॥  
 एतत् कर्मकृतं पुण्यं तस्मै शुभदं भवेत् ।  
 स्नानदानजपादीनां कर्मणां वृषभध्वज ॥  
 अनन्तं हि फलन्तेषां भवत्यस्मिन् संग्रहः ।  
 कृतानां तु गुणश्रेष्ठ भास्करस्य वचो यथा ।  
 तस्मात् सूर्यदिने कार्यं पुण्यं कर्म विचक्षणैः ॥  
 एवं भुक्त्वा च नक्तं च उपवासमथापि वा ।

ये त्वादित्यदिने कुर्युस्ते यान्ति परमां गतिं ॥  
 धन्यं पुण्यं यशस्यञ्च आयुष्यं कामदं तथा ।  
 तस्मिन् यद्दानमपरं तन्नोदानसमं मतं ॥  
 हादशैते महावाही वाचा भानोर्ऋहात्मनः ।  
 अनुष्ठितास्तु कथिताः सर्वपापभयापहाः ॥  
 कृत्वैतदेषां विधिवहारं वृषभवाहनम् ।  
 ततो यायाहरं लोकं वृषकेतोर्महात्मनः ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्तं नन्दादिव्रतविधिः ।

—०—

श्रीनारायण उवाच ।

कृत्वा भूमौ लिखित्पद्मं शोभनं कर्णिकाचितम् ।  
 पत्रेर्हादशभिर्युक्तं शोभमानं मनोरमं ॥  
 तेषान्तु मध्ये चत्वारि तन्मध्ये भास्करं न्यसेत् ।  
 तेषां हादशपत्राणांसम्बन्धीनि चत्वारि पत्राणि पद्ममध्ये  
 कर्णिकासंलग्नानि कार्याणि अष्टौ तु तद्वाह्ये, पत्रं हादश-  
 दले इत्यर्थः

पूर्वपत्रे न्यसेत् सूर्यमग्नेयान्तु दिशाकरं ।  
 याम्यायान्तु विवस्वन्तं नैऋत्यान्तु भगं न्यसेत् ॥  
 वरुणं पश्चिमे पत्रे वायव्ये इन्द्रमेव तु ।  
 आदित्यमुत्तरे चैव सवितारं ततःपरं ॥  
 कर्णिका पूर्वपत्रेषु न्यसेदेकस्य वाजिनः ।  
 दक्षिणेन सहस्रांशं मार्त्तण्डं पश्चिमे दले ॥

उत्तरे तु रविं देवं मध्ये भास्करमेव च ।  
 एवं विन्यस्य सर्वासु दिक्षु सूर्यार्चनं भवेत् ॥  
 करवीरार्कपुष्पैर्वा चन्द्रनागुरुचम्पकैः ।  
 कालोद्भवैश्च पुष्पैश्च पूजयेत् सर्व तीमुखं ॥  
 जन्ममृत्युजराशोकसंसारभयनाशनं ।  
 दारिद्र्यव्यसनध्वंसं श्रीमान् कुरु दिवाकर ॥  
 नमस्कारेण मन्त्रेण व्याहृत्या प्रणवादिभिः ।  
 अग्निमीले नमस्तुभ्यं जातवेद नमोस्ते ॥  
 ईषेत्वाय नमस्तुभ्य ईषेत्वेर्जं नमोनमः ।  
 अग्न आयाहि वीतये अग्निगर्भं नमोस्ते ॥  
 शश्वी देवी नमस्तुभ्यं जगच्चक्षुर्णमीनमः ।  
 आदित्यवारं हृक्षेन पूर्वं गृह्णीत पाण्डव ।  
 ततः प्रत्यादित्यदिनं सप्तवारान् प्रपूजयेत् ।  
 एकभक्तेन नक्ताशी ब्राह्मणान् पूजयेत् दिवा ।  
 दक्षिणां तु यथा यत्त्रया दद्यात् विप्राय भक्तितः ॥  
 स्थित्वायत इदं ब्रूयाद्भास्करः प्रीयतामिति ।  
 ततस्तवीति तिरग्मांशुं स्तीवैणानेन भक्तितः ॥  
 त्वं भानोजगतयक्षुस्वमममन्वयेद्रेजिनां ।  
 त्वं गतिः सच्चं सांख्यानां योगिनां त्वं परायणं ॥  
 अनाञ्जत्तागीलदारं त्वगतस्त्वं मुमुक्षुणां ।  
 त्वया सन्धार्यते लोकस्त्वया लोकः प्रकाशते ॥  
 त्वया पवित्रो क्रियते निर्वीजं पान्यते त्वया ।  
 त्वामुपस्थाय काले तु ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥

( ६० )

स्रग्राखाविहितैर्मन्त्रैरर्थं ऋषिगणार्चितः ।  
 तव दिव्यं रथं यातुः पातु पाता वरार्थिनः ॥  
 सिद्धचारणगन्धर्वा यक्ष-गुह्यक पद्मगाः ।  
 त्रयस्त्रिंशच्च वै देवा देवा वैमानिका-गणाः ॥  
 सोपेन्द्रश्च महेन्द्रश्च त्वामिष्टां सिद्धिमागताः ।  
 उपयाम्यर्चयित्वा वै प्राप्ताश्चैव मनोरथाः ॥  
 दिव्यमन्दारमालाभिः स्वर्गविद्याधरोपमाः ।  
 दिव्याः पितृगणाश्चैव ससूर्या ये च मानुषाः ॥  
 ते पूजयित्वा त्वामेव गच्छन्त्याश्च प्रधानतां ।  
 वसवो मरुतो रुद्रा ये च साध्या मनौषिणः ॥  
 वालखिल्यादयः सिद्धा श्रेष्ठत्वं प्राणिनाङ्गताः ।  
 सन्नह्यघोषलोकेषु समस्त्वं ह्यखिलेषु च ॥  
 नतद्भूतमहं मन्ये यदर्कादतिरिच्यते ।  
 सन्ति चान्यानि सत्वानि वोर्यथन्ति महान्ति च ॥  
 न तु तेषां तथा दीप्तिः प्रभावो वा यथा तथा ।  
 ज्योतीषिं त्वं हि सर्वाणि त्वं सर्वज्योतिषाम्पतिः ।  
 त्वयि सत्यममत्यञ्च सर्वभावाश्च सात्विकाः ॥  
 त्वं वज्रसात् कृतं चक्रं सुनाभं विश्वकर्म्मणा ।  
 त्वं बलिश्च च मदीपितो नाशितः शार्ङ्गधन्वना ॥  
 त्वामादायांशुभिस्तेजो निदाघे सर्वदेहिनां ।  
 सघोषविरसानाञ्च पुनर्वर्षासु मुञ्चसि ॥  
 तपन्त्यन्ये दहन्त्यन्ये गर्जन्त्यन्ये महाघनाः ।  
 विद्योतन्ते प्रवर्षन्ति तव प्राहृषि रश्मयः ॥

न तथा सुखयत्यग्निर्न प्रावारा न कम्बलाः ।  
 शीतवाताद्द्वितं लोकं यथा तव मरीचयः ॥  
 अयोदशद्वीपपतिर्नोमि भासयते मही ।  
 तयाणामपि लोकानां हितार्थैकः प्रवर्त्तमे ॥  
 तव यद्युदयो न स्याद्दृक् जगदिदं भवेत् ।  
 न च धर्मार्थकामेषु प्रवर्त्तेरन् मनीषिणः ।  
 प्रधानं पशुपत्प्रोष्टिमन्त्रयज्ञतपःक्रियाः ।  
 त्वत्प्रसादादवाप्यन्ते ब्रह्मचरविद्याङ्गणैः ॥  
 यदहर्ब्रह्मणः प्रोक्तं तदहर्द्युगमस्मितं ।  
 तस्य त्वमादिरन्तश्च कालज्ञैः परिकीर्त्तितः ॥  
 संवर्त्तकाम्निस्त्वै लोकां भस्मीकृत्यावतिष्ठते ।  
 त्वद्दीधितिसमुत्पन्ना नानावर्णा महाघनाः ॥  
 सैरावताः साशनयः कुर्वन्तिभूत(१) संस्कृतं ।  
 कृत्वा हादशधात्मानं हादशादित्यताङ्गतः ॥  
 संष्टृत्यैकार्णवं सर्व्वन्त्वं गोपयसि रश्मिभिः ।  
 त्वमिन्द्रमाहुस्त्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ॥  
 त्वामग्निन्त्वां मनःसुत्तमं पशुस्त्वं ब्रह्मशास्यतः ।  
 त्वं हंसः सविता भानुरंशुमालो वृषाकपिः ॥  
 विष्वान्निहिरः पूषा मित्रो धर्मस्तथैव च ।  
 सहस्ररश्मिरादित्यस्तपस्त्वं त्वं गथांपतिः ॥  
 मार्त्तण्डोऽर्की रविः सूर्यः शरण्यो दिनकृत्तथा ।  
 दिवाकरः सप्तसप्तिव्योमकेगी विरोचनः ॥

(१) कुर्वन्त्याङ्गुलमिति क्वचित् पाठः ।



आशुगामी तपोन्नय हरिताश्वय कीर्त्यसे ।  
 सप्तम्यामथवाष्टम्यां भक्त्या पूजां करोति यः ॥  
 अनिर्विषान्दकारी लक्ष्मीस्तं भजते नरं ।  
 न तेषामापदः सन्ति नाधयो व्याधयस्तथा ॥  
 एतावानन्यमनसा कुर्वन् पथेन वन्दनम् ।  
 सर्वरोगैर्वि रहिताः सर्वपापविवर्जिताः ॥  
 त्वद्भावभक्ताः सुखिनी भवन्ति चिरजीविनः ।  
 त्वं ममाप्यत्र कामस्य सर्वाप्तिं विचिकीर्षतः ॥  
 अन्नमन्नपतेर्द्दातुममितं अहयार्हसि ।  
 ये चान्येनुचराः सर्वाः पादोपान्तं समाश्रिताः ॥  
 माठरारुणदण्डाद्या स्तां स्तां चैव सनिक्षुभानू ।  
 क्षुभया सहिता मैत्री पार्श्वभूतसमादराः ॥  
 तासु सर्वा नमस्यामि पातु मां शरणागतं ।  
 इमं स्तवं पूतमनाः समाधिना  
 पठेद्दिहान्धोऽपि वरं समर्थयन् ।  
 नतस्य दद्याच्च रधिर्मनीषितं  
 तदाप्नुयाद्यद्यपि तत्सदुर्लभं ॥  
 उभे सन्ध्या पठेन्नित्यं नारी वा पुरुषो यदि ।  
 आपदं प्राप्य जुञ्जेत वस्यरा सुतधनं लभेत् ॥  
 कामजं क्रोधजं वापि मदजं दर्पजं तथा ।  
 अपि जन्मसहस्रोत्थं पापं नश्येत् तत्क्षणात् ॥  
 धनधान्यसमायुक्तो नरः सौभाग्यमश्नुते ।  
 कल्पकीटिसहस्राणि कल्पकीटिशतानि च ॥

विमानवरमारूढः सूर्यलोके महीयते ।  
 अपुत्रा या भवेन्नारी धनसौभाग्यवर्जिता ॥  
 सुरूपा लभते पुत्रान् धनं सौभाग्यमेव च ।  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तं दिवाकरव्रतं ।

—०—  
 स्कन्द उवाच ।

गृण दिव्यं परं पुण्यमादित्याराधनं परं ।  
 यत्कृत्वा सर्व्व कामानां सकलं फलमाप्नुयात् ॥  
 समुद्रतीरे प्रावारा पुरी दारवती शुभा ।  
 वासुदेवे यदुवरे युवराज्यं प्रशासति ॥  
 दुर्वासा शङ्करस्यांगः आजगामावर्त्माककः ।  
 कृष्णेन पूजितस्तत्र अर्घ्यपाद्यासनादिभिः ॥  
 भोजनं तस्य यद्दत्तं यथाभिलषितं मुनेः ।  
 सम्पूजितः स कृष्णेन यावद्दृच्छत्यमौ मुनिः ॥  
 शास्त्रेण कथितं तस्य सुतेन रहसा किल ।  
 क्रुद्धोपि मुनिशार्दूलः कोपं स कृतवान् स्वयं ॥  
 पूजितेन मयेदानीं मन्यं कर्त्तुं कथं क्षमः ।  
 स गत्वा नारदं प्राञ्ज शास्त्रेण हमितोऽस्मि भोः ।  
 प्रकारान्तरतः कार्य्यं तस्य शिञ्जापनं त्वया ।  
 इत्युक्त्वा नारदः प्रायात् दारकां कृष्णसन्निधौ ॥  
 स्वकं सैन्यं दर्शयन् मम देवकिनन्दन ।  
 देव जानाम्यहं कृत्वा हृष्यन्मरुतसङ्घं ॥  
 नारदेनैव मुक्तस्त तथैव कृतवान्निभुः ।

दर्शिते तु वले प्राह नात्र शास्त्रः प्रदृश्यते ॥  
 मयैवानीयते शीघ्रं हारवत्यास्तवान्तिकं ।  
 गत्वैवमुक्तो मुनिना शृणु जाम्बवतीसुत ॥  
 स शृङ्गारस्तथानीतो मकरध्वजदर्शनात् ।  
 गत्वान्निष्प्रचुत्स्वस्तं गोप्यः क्लृप्तापरिग्रहाः ।  
 नारदः प्राह भगवान् दुश्चरित्रं तथानघ ॥  
 क्रुद्धेन सौरिणा शप्तः कुष्ठो भव नराधिपः ।  
 एवमुक्ते तथा पुत्रः कुष्ठरीगातुरोऽभवत् ॥  
 शास्त्रः प्रणम्याह पितः किमर्थं शपितस्त्वया ।  
 स्वशक्तिज्ञानदृष्ट्या तु विचारय मुनिश्रयं ॥  
 ध्यानादुर्व्वीससो ज्ञाता विक्रिया ह्यस्य कारणं ।  
 अनुग्रहो मया पुत्र कार्यस्तेह्ययने शुची ॥  
 षादित्यस्य व्रतञ्चैव कुरु कुष्ठविनाशनं ।

शाम्ब उवाच ।

कथस्वेतत् मया कार्यं व्रतं सर्वफलप्रदं ।  
 किं विधानन्तु के मन्त्राः किं दानं किञ्च पूजनं ॥  
 श्रीकृष्ण उवाच ॥

मासमाश्वयुजं प्राप्य यदादित्यदिनं भवेत् ।  
 तदा व्रतमिदं याह्यं नरैस्त्रीभिर्विशेषतः ॥  
 यावत्संवत्सरं तावद्धिदिनानेन पुत्रक ।  
 गोमयेन क्षिती कुर्व्यात् मण्डलं वर्त्तुलं पुनः ।  
 रक्तपुष्पै रचताभिरर्घ्यं तत्र प्रदापयेत् ॥  
 मन्त्रेणानेन भास्वत्तमाचार्यं प्रतिवासरं ।

यथाशा विमलाः सर्वाः सूर्यभास्करभानुभिः ॥

तथाशा सकला मष्टं कुरु नित्यं मयाश्चितः ।

अर्घ्यमन्त्रः ।

एवं तमश्चयेत्तावद्यावद्वर्षं समाप्यते ।

समाप्ते तु व्रते वत्स कुर्याद्दद्यापने विधिं ॥

गोमथेनानुलिप्तायां भूमौ मण्डलमालिखेत् ।

रक्तचन्दनरेखाभिः कुङ्कुमेन विशेषतः ॥

तन्मध्ये द्वादशदलं पद्ममाकारयेद्दशः ।

सिन्दूरपूरितदलं जवाकुसुमपूरितं ॥

तन्मध्ये स्थापयेत् कुम्भं प्रवालाङ्कुरसन्निभं ।

शालितण्डुलसंपूर्णं शर्कराचन्दनान्वितं ॥

तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं शक्त्या विनिर्म्मितं ।

सौवर्णं भास्करं कृत्वा पद्महस्तं स्वशक्तितः ॥

आदित्यरूपन्तु निक्षुभाभास्करसप्तमीव्रतोक्तं वेदितव्यं ।

रक्तवस्त्रयुगीपेतं पात्रोपरि निवेशयेत् ॥

स्नाप्य पञ्चामृतेनादौ जवाकुसुमलेपितं ।

रक्तपुष्पैस्तु नैवेद्यैः फलैः कालोद्धवेस्तथा ॥

पूजयेज्जगतामीशं दीपधूपैस्तद्योक्तमैः ।

सूर्याय नमः । वरुणाय नमः । माधवाय नमः । धात्रे

नमः । हरये नमः । भगाय नमः । सुवर्णरेतसे नमः । अर्षस्त्रे

नमः । दिवाकराय नमः । तपनाय नमः । भानवे नमः ।

हंसाय नमः । इति द्वादशभिः पूजा कार्या ।

नमोनमः पापविनाशनाथ  
 विश्वात्मने सप्ततुरङ्गमाय ।  
 सामर्ग्यजुर्धमनिधे विधात-  
 र्भवाश्विपोताय नमः सत्रिणे ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

अनेन मन्त्रेणार्घ्यं ।

एवं संपूज्य मानुन्तु नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः !  
 आचार्यं पूजयित्वा तु वस्तैराभरणैः शमेः ॥  
 तस्मै तां प्रतिमां कृष्णं महिरण्यं प्रदापयेत् ।  
 प्रीयतां भगवान् देवी मम संसारतारक ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाद्वाद्गान्नादिविस्तरैः ।  
 तेभ्यस्तु कलशान् दद्याद्यथा शक्या तु दक्षिणां ॥  
 एवं यः कुरुते सम्यक् व्रतमेतदनुत्तमं ।  
 आशादित्येति विख्यातं तस्य पुण्यफलं महत् ॥  
 निर्व्याधिर्निपुनो(२) जप्त्वा पुत्रपौत्रसमन्वितः ।  
 भुङ्क्ता च भोगानमलानसरैरपि दुर्लभान् ॥  
 देहास्ते रविमायुज्यं प्राप्नुयादुत्तमात्तमं(१) ।  
 प्राप्स्यसे परमासक्तिं विमुक्तः कुष्टरोगतः ॥  
 आशाभङ्गी न तस्यास्ति कदाचिज्जन्मजन्मनि ।  
 एतस्मात् कारणादस्य कुरुष्व व्रतमुत्तमं ॥  
 एतच्छ्रुत्वा वचः शास्त्रः पित्रा कृष्णेन भाषितं ।

(१) प्राप्नुयाद्वाव सप्तय इति पाठान्तरं ।

(२) विरोधोऽस्तीति प.ठान्तरं ।

व्रतं चरित्वा संप्राप्तः सर्वसिद्धिं सुदुर्लभां ॥  
इदं यः शृणुयाद्भक्त्या श्रावयेद्वापि मानवः ।  
तावुभौ पुण्यकर्माणौ रविलोकमवाप्नुतः ॥

इति स्कन्धपुराणोक्तं आशादित्यव्रतं ।

— ००० —

अथातः संप्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमं ।  
येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिर्पुष्टिःकान्तिश्च जायते ॥  
सर्वप्रदाः सदा सौम्या जायन्ते यत् प्रसादतः(१) ।  
आदित्यवारहस्तेन पूर्वं संगृह्य भक्तितः ॥  
मन्त्रोक्तविधिना सर्वं कुर्यात्पूजादिकं रवेः ।  
प्रत्येकं समनक्तानि कृत्वा भक्तिपरो नरः ॥  
ततस्तु ममर्षं प्राप्ते कुर्याद्वाङ्मणवाचनं ।  
भास्करं शुद्धसौवर्णं कृत्वा यत्नेन मानवः ॥  
आदित्यरूपं, आशादित्यव्रतवद्देदित्यं ।  
ताम्रप्रात्रे स्थापयित्वा रक्तपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥  
रक्तवस्त्रयुगच्छत्रं कृत्रोपानद्युगान्वितं ।  
घृतेन स्थापयित्वा तु लड्डुकान्विनिवेद्य च ॥  
ह्रीं घृततिलैः कुर्याद्रविनाम्ना तु मन्त्रवित् ।  
समिधोष्टोत्तरगतमष्टाविंशतिरेव वा ॥  
ह्रीतव्या मधुसार्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन वा ।  
समिधोत्त, अर्कममिधः ।

( १ ) येन पाठ्य इति पाठान्तरं ।

मन्त्रेणानेन विदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ।  
 आदिदेव नमस्तुभ्यं सप्तसप्ते दिवाकर ॥  
 त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात् ।  
 व्रतेनानेन राजेन्द्र भवेदारोग्यमुत्तमं ॥  
 द्रव्य-संपत्कृतप्राप्तिरिति पौराणिका विदुः ।  
 अविस्मवादिनौ चेयं शान्तिः पुष्टिः सदा नृणां(१) ॥  
 इति भविष्यपुराणोक्तमादित्यशान्तिव्रतम् ।

—००—

नारद उवाच ।

यदारोग्यकरं नृणां यदनन्तफलप्रदं ।  
 व्रतं तत् ब्रूहि मे नन्दिन् सर्वपापप्रणाशनं ॥

नन्दिकेश्वर उवाच ।

यत्तद्विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनं ।  
 सूर्याग्नि चन्द्ररूपेण त्रिधा जगति संस्थितं ॥  
 तदाराध्य शुभं विप्र प्राप्नोति कुशलं सदा ।  
 तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत् ॥  
 यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरं ।  
 उत्पद्यते यदा भक्तिर्भानोरुपरि शाश्वती ।  
 तदा दित्यदिने कुर्यादेकभक्तं विमत्सरः ॥  
 तदारभ्य सदा कार्यं नक्तमादित्य वासरे ।  
 नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा हिजोत्तमान् ॥  
 ततोऽस्तसमये भानो रक्तचन्दनपङ्कजं ।

(१) सूर्यधीरा सुषोरासु कता शान्तिः इयमप्रदा इति पुलकान्तरे पाठः ।

विलिख्य हादशदलं पूज्य सूर्येति पूर्वतः ॥  
 दिवाकरं तथाग्नेये विवस्वन्तमतः परं ।  
 भगन्तु नैऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले ॥  
 महेन्द्रं मातृदले प्रादित्यन्तु तथोत्तरे ।  
 शान्तमीशानभागे तु नमस्कारेण विन्यसेत् ।  
 कर्णिका पूर्वभागे तु सूर्यस्य तुरगाग्रसेत् ॥  
 दक्षिणे यमनामानं मार्त्तण्डं पश्चिमे दले ।  
 उत्तरेण रविं देवं कर्णिकायान्तु भास्करं ॥  
 अर्घ्यं दत्त्वा ततो विप्र सतिलारुणचन्दनं ।  
 यवाक्षतसमायुक्तमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
 कालात्मा सर्वभूतात्मा सविता सर्वतोमुखः (१) ।  
 यत्कादग्नीन्द्ररूपस्वमतः पाहि प्रभाकरः ॥  
 अग्निमीले नमस्तभ्यमिषेत्वार्जिति भास्करः ।  
 अग्न आयाहि वरदं नमस्ते ज्योतिषाम्पते ॥  
 अर्घ्यं दत्त्वा विसृज्याथ निगि तैलषिवर्जितं ।  
 भुञ्जीत भावितमना भास्करं संस्मरन् मुहुः ॥  
 प्राक्तनेऽङ्गं ग्रनी चैव तैलाभ्यङ्गं विवर्जयेत् ।  
 वत्सरान्ते फारयित्वा काञ्चनं कमलात्तमं ॥  
 पुरुषन्तु यथा गन्ध्या कारयेद्द्विभुजन्तथा (२) ।  
 सुवर्णशृङ्गीं कपिलां मङ्गार्घ्यां  
 रौप्यैः खुरैः कांस्यदीर्घां सबन्दां ।

(१) वेदात्मा सर्वतो मुख इति पाठाकारः ।

(२) कारयेच्च द्विभुजमिति वा पाठः ।



पूर्णं गुडस्योपरि ताम्रपात्रे  
 निधाय पद्मे पुरुषञ्च दद्यात् ॥  
 संपूज्य रक्ताम्बरमाल्यधूपैः  
 द्विजञ्च रक्तैरथवा पिण्डैः ।  
 प्रक्षालयित्वा पुरुषं सपद्मं  
 दद्यादनेकव्रतदानकाय ॥  
 अव्यङ्गरूपाय जितेन्द्रियाय  
 कुटुम्बिने शुद्धमनुव्रताय ।  
 नमोनमः पापविनाशनाय  
 विश्वात्मने सप्तत्रिंशदाय ॥  
 मामर्घ्यजुर्धामनिधे विधात्रे  
 भवाब्धिपीताय जगत् सवित्रे ।  
 त्रयोमगाय त्रिगुणात्मने नमः  
 त्रिलोकनाथाय नमो नमस्ते ॥  
 इत्यनेन विधानेन वर्षमेकन्तु यो नरः ॥  
 नक्तमादित्यवारिण कुर्यात्स निरुजो भवेत् ।  
 धनधान्यसमायुक्तः पुत्र-पौत्रसमन्वितः ॥  
 मर्त्ये स्थित्वा चिरं कालं सूर्यलोकमवाप्नुयात् ।  
 कर्मसंचयमवाप्य भूपति-  
 दुःख-शोक-भय-रोगवर्जितः ।  
 होपसकपतिः पुनः पुन-  
 र्भूमूर्त्तिरमितौजसा युतः ॥

या च देवगुरुभर्तृत्परा  
 वेदमूर्त्तिदिननक्तमाचरेत् ।  
 सापि लोकममरेण पूजिता  
 याति नारद रवेर्न संग्रहः ॥  
 वेदमूर्त्तिः सूर्यस्तद्दिने नक्तमित्यर्थः ।  
 यः पठेदथ शृणोति वा नरः  
 पश्यतीदमथवानुमीदयेत् ।  
 सोपि शक्रमवने द्विबौकसैः  
 कल्पकोटिशतमेव मीदते ॥  
 इति मत्स्यपुराणोक्तं सूर्यनक्तव्रतं ।

अथ वेश्याव्रतं ।

— ००० —

युधिष्ठिर उवाच ।

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः ।  
 पण्यस्त्रीणां समाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥  
 का ह्यासां देवता कृष्ण किं व्रतं किमुपापितं ॥  
 केन धर्मेण चैवेताः स्वर्गमाप्सान्यनुत्तमं ।

कृष्ण उवाच ।

मम पत्नीसहस्राणि गतं पाण्डव षोडश ।  
 रूपौदार्यगुणोपेता मन्मथायतनाः शभाः ॥  
 ताभिर्व्वसन्तसमये कीकिलालिकुलाकुले ।  
 पुष्यितीपवनात्फल्गुकल्हारसरमस्तटे ॥

निहरापानगोष्ठीभिरुद्यदानैरलङ्कृतः ।  
 कुसुमानयनः शोभान् मालतीकृतशेखरः ॥  
 गच्छेत् समीपमेतासां शाश्वः पुरपुरञ्जयः ।  
 साक्षात् कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥  
 अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः ।  
 प्रहृष्टो मन्मथस्तासां सर्वाङ्गक्षीभदायकः ॥  
 तदीक्षितं मया सर्वं विकारं ध्यानचक्षुषा ।  
 अग्रपं कृषितः सर्वा हरिष्यन्तीह दस्यवः ॥  
 मयि स्वर्गमनुप्राप्ते भवतीः काममोहिताः ।  
 एतद्वाक्यमुपाश्रुत्य वाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥  
 मामूर्चुर्वद गोविन्द कथमेतद्भविष्यति ।  
 भर्त्तारं जगतामोशं त्यक्त्वा यामो परान्तिकं(१) ॥  
 दिव्यानुभावञ्च पुरीं रत्नवन्ति गृहाणि च ।  
 द्वारकावासिनः सर्वं देवरूपाः कुमारकाः ।  
 भगवन् सर्वलोकस्य कथं भोगं भजाम्यहं ॥  
 दासभावमनुप्राप्ता भविष्यामः कथं पुनः ।  
 की धर्मः कः समाचारः कथं वृत्तिर्मविष्यति ॥  
 तथा लालप्यमानास्ता वाष्पपर्याकुलेक्षणाः ।  
 मया प्रीक्ता युवतयः सन्तापं त्यजतामिमं ॥  
 पद्मपुराणे दाल्भ्य गोपी सम्वादे ।

दाल्भ्य उवाच ।

जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे ।

( १ ) तं वाक्ममापराधि तन्निति कश्चित्पाठः ।

भवतीनाञ्च सर्वासां नारदीभ्यासमागतः ॥  
 हुताशनसुताः सर्वा भवत्योष्णरसः पुरा ।  
 अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित् ॥  
 कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश ।  
 तस्माद्हरप्रदानञ्च शापशायमभूत्पुरा ॥  
 यस्माद्रेषा प्रधानैव मधुमाधव मासगोः ।  
 सुवर्णापस्करीत्सर्गं हादशी शुक्लपक्षतः ।  
 भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यत्रन्मनि ॥  
 यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात् ।  
 परिपृष्टोऽस्मि ते नाथवियोगो वो भवियति ॥  
 चौरैरपहृताः सर्वा वेश्या त्वं समवाप्स्यथ ।  
 एवं नारदशापिन केगवस्य च धीमतः ॥  
 वेश्यात्वमागता सर्वा भवत्यः शापमोहिताः ।  
 इदानीमपि यदृच्छे तच्छृणुष्वं वराङ्गनाः ।  
 पुरा देवासुरे युवे हतेषु गतगः सुरैः ॥  
 देवतासुरसैन्येषु राक्षसेषु ततस्ततः ।  
 तेषां नारी महस्त्रेषु गतर्माऽथ महस्त्रगः(१) ॥  
 परिनीतानि यानि स्युः बलादुक्तानि यानि च ।  
 तानि सर्वाणि देवग प्रीवाच वदतास्वर ॥  
 वेश्याधर्मेण वर्त्तध्वमधुना नृपमन्दिरैः ।  
 भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च ॥  
 राजानः स्वामिनस्तुल्यं ब्राह्मणाय बह्वश्रुताः ।

( १ ) तेषां व्रतसङ्घर्षाच्च शतान्यपि च द्योपितामिति वा पाठः ।

तेषां गृहेषु तिष्ठन्त्वात्कृतं वापि तत्समं ॥  
 भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासां मधि भक्तितः ।  
 न कदाचिद्भतिः कार्य्या पुंसि धनविवर्जिते ॥  
 अनुमानाः प्रसाद्यश्च शुल्कदो देववत्सदा ।  
 स्वरूपो वा विरूपो वा द्रव्यं तत्र प्रयोजनं ॥  
 द्रव्योपहार्यमेवात्र सर्वदम्भविवर्जितं ।  
 यः कथित् मुनिकृष्टोपि गृहमेथति वः सदा ॥  
 निष्कृद्भवेन सेव्यो वः स एवान्यत्र दाम्भिकान् ।  
 द्वेषाचारोऽन कर्त्तव्यः स्वामिना सह कर्हिचित् ॥  
 रूपयौवनदर्पण धनलोभेन वा सदा ।  
 कामश्च कान्ते या काचित् व्यभिचारं करोति च ॥  
 स्वामिना सह पापिष्ठा पापिष्ठो यात्वधीर्गतिं ।  
 देवतानां पितृणाञ्च पुर्येङ्ग समुपस्थिते ॥  
 गो भू हिरण्यदानानि(१) प्रदेयानि च शक्तिः ।  
 ब्राह्मणेभ्यो वरारोहा कार्य्याणि सुव्रतानि च ॥  
 यथाप्यन्यत् व्रतं सम्यक् उपदेष्ट्यामि तत्त्वतः ।  
 अविचारेण सर्वाभिरनुष्ठेयञ्च तत्पुनः ॥  
 संमारोत्तरणायालमेतद्देवविदो विदुः ।  
 यदा सूर्यदिने हस्तः पृथ्वावाथ पुनर्वसुः ॥  
 भवेत्सर्व्वोपधीस्नानं सम्यङ्गारी समाचरेत् ।  
 तदा पञ्चग्रव्यापिसन्निधानत्वमिष्यते ॥

(१) धान्यं नोति क्वचित् पाठः ।

अर्चयेत् पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यभिकीर्त्तनं ।  
 कामाय पादौ संपूज्य जरूवै मन्मथाय च(१) ॥  
 मेढ्रे कन्दर्पनिधये कटिं प्रीतिपतयेनमः ।  
 नाभिं सौख्यसमुद्राय वामनाय तद्योदरं ॥  
 हृदयं हृदयेयाय स्तनावाह्वाद्कारिणे ।  
 उत्कण्ठायै वै कण्ठमास्यमानन्दजाय च ॥  
 वामांशं पुष्पचापाय पुष्पवानाय दक्षिणं ॥  
 ललाटं पुष्पवाणेति शिरः पञ्चशराय वै ।  
 नमोऽनङ्गाय वै मौलिं विलोमायेति जङ्घयोः(२) ॥  
 सर्वात्मने शिरःपूज्यं देवदेवस्य पूजयेत् ।  
 नमः श्रोतये तार्क्ष्वाङ्गाङ्गशधराय च ॥  
 गद्दिने पद्महस्ताय(३) शङ्खिने चक्रपाणये ।  
 नमोनारायणायैति कामदेवात्मने नमः ॥  
 नमः शान्धे नमस्तुष्टै, नमो रत्नै नमः श्रियै(४) ।  
 नमः स्तुष्टै, नमपुष्टै, नमः सर्वप्रदेति च ॥  
 एवं संपूज्य गोविन्दमनङ्गात्मकमीश्वरं ।  
 गन्धैर्वाग्न्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्यैर्नवभामिनि(५) ॥  
 तत आह्वयः धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेद पारगं ।

(२) जङ्घे नामोचकारिणे इति क्वचित् पाठः ।

( २ ) ध्वजमिति वा पाठः ।

( ३ ) पीतवस्त्राय इति वा पाठः ।

( ४ ) नमः ब्रह्मो नमः शान्धे इति क्वचित् पाठः ।

( ५ ) शोभने इति वा पाठः ।

( ६८ )

अयं गावयवं पूज्य गन्धापुष्पादिभिस्तथा(१) ॥  
 शालीयतच्छुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतं ।  
 तस्माद्दिप्राय दातव्यं ह्यच्छयः प्रीयतामिति ।  
 यथेच्छाहारभुग्मत्तं तमेव द्विजसत्तमं ॥  
 रत्यर्थं कामदेवीयमिति चित्तेन धार्यतां(२) ।  
 यद्यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत् कुर्यात् विलासिनी ॥  
 सर्वाभावेन चात्मानमर्पयेत् स्मृतभाषिणी ।  
 एवमादित्यवारेण सदा तद्गतमाचरेत्(३) ॥  
 तच्छुलप्रस्थदानादियावन्मासास्त्रयोदश ।  
 ततस्त्रयोदशे मासि संप्राप्ते तस्य कामिनी ॥  
 विप्रस्योपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलम्बितां(४) ।  
 सोपधानकविश्रामं स्वास्तरावरणां शुभां ॥  
 दीपकोपानहृत्कृत्पादुकासनसंयुतां ।  
 सपत्नीकमलंकृत्य हेमसुत्रांगुलीयकैः ॥  
 सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकः धूपमाख्यानुलेपनैः(५) ।  
 कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरिस्थितं ॥  
 कामदेवरूपम्तु मदनत्रयोदशीव्रतोक्तं विज्ञेयं ।  
 ताम्ब्रपात्रासनगतं हेमनेत्रपटावृतं ।

- 
- ( १ ) पुष्पतच्छुलप्रस्थं चन्द्रैरिति वा पाठः ।  
 ( २ ) यद्याच्चिनेवधारयेदिति क्वचित्पाठः ।  
 ( ३ ) सर्वं मेतत् समाचरेदिति वा पाठः ।  
 ( ४ ) विप्रेभ्योऽपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्याद्विलम्बिता इति वा पाठः ।  
 ( ५ ) तन्मात्मानुलेपनैरिति क्वचित् पाठः ।

सुकांस्यभाजनोपेतमिच्छुदण्डसमन्वितं ॥  
 दद्याद्यथोक्तविधिना (१) तत्रैकां गां पयस्विनीं ।  
 यथान्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा ॥  
 तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णोः सदा मम ।  
 यथा न कमला देहात् प्रयाति मम केशवे ॥  
 तथा ममापि देवेश शरीरस्यं पतिं कुरु (२) ॥  
 तथैव काञ्चनं देवं प्रतिगृह्णहि द्विजोत्तमः ।  
 कौदादिति पठेन्नन्दं ध्यायंसेतसि माधवं ॥  
 कौदादिति, यजुर्वेदशाखाप्रसिद्धोमन्त्रः ।  
 ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसृज्य द्विजपुङ्गवं ।  
 शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत् ।  
 ततः प्रभृति योन्यापि (३) रत्यर्थां गृहमागतः ॥  
 स सम्यक् सूर्यवारेण स सुपूज्यो यथेच्छया (४) ।  
 एवं त्रयोदशं यावत् मासमेकं द्विजोत्तम ॥  
 तर्पयेत् यथा कामं प्रीषितो रविमन्दिरे ।  
 तदनुष्ठां निषेवेत यावदस्यागमो भवेत् ।  
 एवमेकं द्विजं शान्तमाचारघ्नं विचक्षणं ॥  
 संपूजयेच्चतुःप्राज्ञमपरं वरदाज्ञया ।  
 धाम्नोपि यदा विघ्नं गर्भसूतकजम्भजं (५) ॥

( १ ) यथोक्तमन्त्रे इति क्वचित् पाठः ।

( २ ) वरुणं कं पतिं कुर्विति क्वचित् पाठः ।

( ३ ) सो विभे इति वा पाठः ।

( ४ ) समान्यः पूर्ववारे च स्नानशय्याद्विभोजनैरिति वा पाठः ।

( ५ ) गर्भसूतकराजकमिति वा पाठः ।



देवं वा मानुषं वास्यादुपरागेष वा पुनः ।  
 लक्ष्मीर्वियुज्यते देव न कदाचिद्यथा तव ॥  
 शय्या ममापि शून्यास्तु तद्यैव मधुसूदन ।  
 गीतवादित्रनिर्वीधं देवदेवस्य कारयेत् ॥  
 एतद्धि कथितं सम्यग्भवतीनां विशेषतः ।  
 सुधर्मोयं परी भावो वेश्यानामिह सर्व्वं धा ॥  
 पुरुहतेन यत् प्रोक्तं दानवेषु पुरा मया ।  
 तद्दिदं साम्प्रतं सर्व्वं भवतीष्वपि युज्यते ॥  
 सर्व्वं पापप्रशमनमनन्तफलदायकं ।  
 साचारानष्टदश वा(१) यथा शक्त्वा प्रपूजयेत् ॥  
 एषप्रोक्तं मया राजन् दानवेषु ततो मया ।  
 तद्दिदञ्च व्रतं सर्व्वं वेश्यानाञ्च प्रख्यायितं ॥  
 पुराणं धर्मसर्व्वस्वं वेश्याजनसुखप्रद ।  
 करोति वाशेषमखण्डमेतत्  
 कल्याणिनी माधवस्यैव संस्था ।  
 सा पूजिता देवगणैरशेषै-  
 रानन्दकृतस्थान सुपैति विष्णोः ॥

इति श्रीभविष्योत्तरे कामदाने वेश्याव्रतं नाम(२) ।

—000@000—

( १ ) अष्टपञ्चाशदिति वा पाठः ।

( २ ) इति पद्मपुराणोक्तं वेश्याव्रतमिति वा पाठः ।

सूत उवाच ।

मेरुपार्श्वे भद्रपीठे सुखाशीनं जगद्गुरुं ।  
कश्यपं सृष्टिकर्तारं तापसं शुद्धमानसं ॥  
नारदो वैष्णवश्चेष्टस्त्रैलोक्यभ्रमणप्रियः ।  
कदाचिद्दुर्हयां प्राप्य कश्यपं शरणं ययौ ॥

नारद उवाच ।

देव-दानव-गन्धर्व-ऋषि-पन्नग-मानवाः ।  
स्रष्टा त्वं सर्वभूतानां धर्माधर्मौ हि वेत्सि च ॥  
दुष्टग्रहाभिभूतानां दुर्हयाहतचेतसां ।  
उपायं वद तेषां त्वं शरणागतवत्सल ॥

कश्यप उवाच ।

तां क्लृप्तुं ब्रूहि विप्रेन्द्र केन मुक्ता भवन्ति ते ।  
साधु पृष्टं महाभाग जगदानन्दकारकः ॥  
वक्ष्ये सौरव्रतं पुण्यं दुर्हयान्तकरं परं ।  
दशाकरं हि भूतानां मनोरथकरं परं ॥  
भानुवारे सिते पक्षे दशम्यां चैव नारद ।  
प्रातः कालेऽथ मध्याह्ने ज्ञानं कुर्वाद्यथाविधि ॥  
भानुम्यायेचिर्मूर्तिं हि सर्वदेव्यविनाशनं ।  
सूर्यपूजा प्रकर्त्तव्या तत्रा गन्धानुलेपनैः ॥  
उपचारैः षोडशभिर्नैवेद्यैस्तु फलान्वितैः ।  
पूजयेद्दुर्हयां तत्र लिखित्वा दशपुत्रिकाः ॥  
दुर्मुखा होमवदना मन्त्रिणाऽसत्यवादिनी ।

सुबुद्धिनाशिनो हिंसा बहुचिन्ताप्रदायिनो ॥  
 उच्चाटकारिणो नाम दुश्चरित्रविरोधिनी ।  
 एताः पूज्याः कृष्णवर्णा भक्ति बुद्धेन चेतसा ॥  
 आदौ पूज्या प्रयत्नेन गोमयेनोपलेपयेत् ।  
 नित्यं पापकरा पापा देवद्विजविरोधिनी ॥  
 गच्छ त्वं दुर्हृशे देवि नित्यं शत्रुविवर्द्धनि ।  
 अनेन प्रार्थये स्त्रीहि प्रयत्नेन विसर्जयेत् ॥  
 ततः पूजा प्रकर्त्तव्या डोररूपे च भास्करे ।  
 दशग्रन्थिसमायुक्तं दशसूत्रोपशोभितं ॥  
 डोरकं तु प्रतिष्ठाप्य पूजां कृत्वा करे न्यसेत् ।  
 आवाहनादिदानान्तं पूजनं कारयेत्ततः ॥  
 तत्र देवं क्षमाप्याद्य दशापूजां समारभेत् ।  
 भूमिभागे च पीठे वा लिखित्वा दशपुत्रिकाः ।  
 सुबुद्धिदा सुखकरौ सर्वसम्पत्तिदायिनी ।  
 इत्यष्टभोगप्रदा लक्ष्मीः कीर्त्तिदा दुःखनाशिनो ॥  
 बुद्धिदा चो सुखकरा सर्वसम्पत्तिदायिनो ।  
 पुत्रक्षेम्या च विजया दशमी धर्मदायिनो ॥  
 एभिस्तु नामभिर्मन्त्रैः पूजनीयाः पृथक् पृथक् ।  
 प्रतिष्ठापूजनं कार्यञ्चैवेद्यच्च यथा विधि ॥  
 विशुद्धवसनां देवीं सर्वाभरणभूषितां ।  
 ध्यायेद्दशदशादेवीं वरदाभयदायिनीं ॥  
 इति ध्यानं प्रकुर्वीत दशाद्याः प्राप्तये रतः ।

फलस्तु दशसंख्याकैर्भुञ्जीयात्तैर्भोजितं ॥  
एवं व्रतं प्रकर्त्तव्यं दशाप्राप्तिकरं परं ।

नारद उवाच ।

कश्यप त्वत्प्रसादेन श्रुतं हि व्रतमुत्तमं ।  
दशाव्रतं कृतं केन कस्य तुष्टो हि भास्करः ॥

कश्यप उवाच ।

पुरा तु नलभूपालयकवर्त्तिषु धार्मिकः ।  
राज्यभ्रष्टो दशाहीनो द्यूतेनैव हि नारद ॥  
तेनापि पूजितः सूर्यो व्रतं कृत्वा प्रयत्नतः ।  
दुर्हंशां नाशयित्वा तु राज्यं प्राप्तं स्त्रिया सह ।  
ततश्च हापरे विप्राः पीडयन् दुर्हंशान्विताः ।  
भ्रममाणा वने घोरे प्राप्ताः सत्यवतीसुतं ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

राज्यभ्रष्टो दशाहीनो राजाहं केन कर्मणा ।  
इदानीं मे हितं ब्रूहि राज्यप्राप्तिकरं परं ॥  
घृणिं ध्यात्वा मुनिश्रेष्ठो दृष्ट्वापि च दशाकरं ।  
व्रतोपदेशनं चास्य चकार मुनिपुङ्गवः ॥  
अस्य व्रतस्य सामर्थ्यात् प्राप्तं राज्यमकण्टकं ।  
व्रतं कृत्वा च विधिना चतुर्भिर्भ्रातृभिः सह ॥  
श्रुत्वेदं नारदो वाक्यं पुनः पप्रच्छ कश्यपं ।

नारद उवाच ।

केन कर्मविपाकेन दुर्हंशाभिहतो नरः ।  
जायते मुनिशार्दूल तत्त्वं मे वक्तुमर्हसि ॥

कश्यप उवाच ।

शृणु नारद तत्त्वन्न दुर्दशा प्राप्यते नरैः ।  
 तुष-भस्मा-स्थि-मुसलं कदाचिन्नृपयेन्न तु ॥  
 कुमारी रजकी वृद्धा पशुयोनिरताश्च ये ।  
 अयोनिगुदगामी च ब्राह्मणी गमनेन च ॥  
 मन्थ्यासु पर्वसमये रमते च रजस्वलां ।  
 पितृमातृपरित्यागी स्वामिनं रणसङ्घटे ॥  
 त्यजेत् स्वधर्मपत्नीं यो दुर्दशा प्राप्यते नरैः ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन नान्यमार्गेण वर्त्तयेत् ॥  
 तस्मात्तु तद्व्रतं कार्यं सर्वकामार्थसिद्धये ।

इति श्रीब्रह्माण्डपुराणे कश्यपनारदसम्वादे दशादित्यव्रतं ।

—००(१००)—

सौरधर्मे मान्यात्त्वगिष्ठ संयादे मान्यातीवाच ।

भगवन् ज्ञानिनां श्रेष्ठ कथयस्व प्रसादतः ।  
 त्वदक्लाञ्छीतुमिच्छामि व्रतं पापप्रणाशनम् ॥  
 सर्वकामप्रदञ्चैव सर्वामयविनाशनं ।  
 पूजार्घ्यदानसहितं नैवेशं प्रागनाचितं ॥  
 एतत् कथय सर्व्वं त्वं प्रसन्नी यदि मे प्रभो ।

वसिष्ठ उवाच ।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यद्गृह्यं व्रतमुत्तमं ।  
 सर्व्वकामप्रदं पुसां कुष्ठादिव्याधिनाशनं ।  
 भानोस्तृष्टिकरं राजन् मुक्तिमुक्तिप्रदायकं ॥  
 यस्योदये सुरगणा मुनिसंज्ञाः सचारणाः ।

देव दानव-यक्षाद्य कुर्वन्ति सततार्चनम् ॥  
यस्योदये तु सर्वेषां प्रबोधो नृपसक्तम ।  
तस्य देवस्य वक्ष्यामि व्रतं राजन् सविस्तरं ॥  
पूजार्घ्यप्राशनं दानं नैवेद्यं शृणु तत्त्वतः ।  
सर्व्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्व्वयज्ञेषु यत्फलं ॥  
सर्व्वदानेन तपसा यत्पुण्यं समवाप्यते ।  
प्रातःस्नानेन यत्पुण्यं यत्पुण्यं रविवासरे ॥  
मार्गशीर्षादिमासेषु द्वादशस्वपि भूपते ।  
सूर्य्यव्रतं करिष्यामि यावद्दशैर् दिवाकर ॥  
व्रतं संपूर्णतां वातु त्वत्प्रसादात् प्रभाकर ।

नियममन्त्रः ।

ततः प्रातः समुत्थाय नद्यादौ विमले जले ।  
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवान् पितॄंश्च वसुधाधिप ॥  
उपलिप्य शुची देशे सूर्य्यं तत्र समर्षयेत् ।  
संलिखेत्तत्र पद्मन्तु द्वादशारं सकर्णिकं ॥  
ताम्रपात्रे तथा नद्या रक्तचन्दनवारिणा ।  
तत्र संपूजयेद्देवं दिननाथं सुरेश्वरं ॥  
मासे मासे च ये राजन् विशेषस्तान् शृणुष्व वै ।  
मार्गशीर्षे यजेन्निचं नालिकेरार्घ्यं मुत्तमं ॥  
नैवेद्यं तण्डुला देयाः सत्राण्याः सगुडाः स्मृताः ।  
पत्रत्रयं तुलस्यास्तु प्राश्य तिष्ठेज्जितेन्द्रियः ॥  
दद्याद्विप्राय भीज्यन्तु दक्षिणामहितं नृप ।  
पौषे विष्णुं समम्यर्षं नैवेद्यं कृशरं तथा ॥

वीजपूरेण चैवार्घ्यं प्राश्यं घृतपलत्रयं ।  
 दद्यात् घृतन्तु विप्राय भोजनेन समन्वितं ॥  
 माघे वरुणनामानं संपूज्य सतिलं गुडं ।  
 भोजनं दक्षिणां दद्यान्नैवेद्यं कदलीफलं ॥  
 अर्घ्यं तेनैव दत्त्वा तु प्राश्या मुष्टित्रयन्तिलाः ।  
 फाल्गुने सूर्यमभ्यर्च्य जम्बीरार्घ्यं निर्वदयेत् ॥  
 पलत्रयं दधि प्राश्यं नैवेद्यं सष्टतं दधि ।  
 दधितण्डुलदानञ्च भोजने समुदाहृतं ॥  
 चैत्रे भानुन्तु संपूज्य नैवेद्यं घृतपूरिका ।  
 फलं तु दाडिमं प्रीक्तं प्राश्यं दुग्धपलत्रयं ॥  
 विप्राय भोजनं दद्यात् मिष्टान्तन्तु सदक्षिणां ।  
 वैशाखे तपनः प्रीक्तो माषान्न सष्टतं स्मृतं ॥  
 अर्घ्यं दद्यात्तु द्राक्षाभिः प्राशनं गोमयस्य तु ।  
 कुर्यान्मासानुमासन्तु सष्टतं वै सदक्षिणां ॥  
 इन्द्रं ज्यैष्ठे यजेद्राजन् नैवेद्यन्तु करभकम् ।  
 अर्घ्यं सहकारिण प्राश्यं जलाञ्जलित्रयं ॥  
 दध्योदनसमायुक्तं भोजनं ब्राह्मणाय तु ।  
 आषाढे रविमय्यर्च्यं पूजा विभीतकन्तथा ॥  
 विप्राय भोजनं दद्यात् प्राशयेत् सरिचत्रयं ।  
 गभस्तिमांश्छावणेऽर्घ्यं स्त्रपुषाफलमेव च ॥  
 मुष्टित्रयञ्च शक्नूनां प्राशने समुदाहृतं ।  
 विप्राय भोजनं दद्याद्दक्षिणा सहितं नृप ॥  
 यदा भाद्रपदे पूज्यः कुशाण्डं तण्डुलात्मकं ।

गोमूत्रं प्राशने युक्तं प्राङ्गणे भोजनं तथा ॥  
 हिरण्यरेता आश्विने च नैवेद्यं शर्करा स्मृतं ।  
 दाडिमे नार्घ्यं दानन्तु प्राश्यं खण्डपलत्रयं ॥  
 षिप्राय परया भक्त्या भोजने शालिशर्करा ।  
 कार्तिके चैवरथायाः प्राश्यने फलमेव च ॥  
 पायसञ्चैव नैवेद्यं पायसं प्राशने स्मृतं ।  
 एवं व्रतं समाप्यैतत्तत उद्यापनं चरेत् ॥  
 ततो गुरुगृहं गत्वा गृह्णीयाच्चरणवुभौ ।  
 उद्यापनं करिष्येह मागच्छ मम वैशमनि ॥  
 माषकेन सुवर्णस्य प्रतिमाङ्कारयेद्भवेः ।  
 रथो रूढ्यमयः कार्यः सर्वोपस्करसंयुतः ॥  
 कृत्वा हादशपत्रन्तु कमलं रक्ततण्डुलैः ।  
 स्थापयेदन्नं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितं ॥  
 तस्योपरि न्यसेत्पात्रं ताम्रं तण्डुलपूरितं ।  
 रक्तवस्त्रसमाच्छन्नं पुष्पमालाभिवेष्टितं ॥  
 पञ्चासृतेन स्थापयेत् मत्पञ्चारणपूर्वकं ।  
 प्रतिष्ठाप्य ततः कृत्वा पूजां देवस्य कारयेत् ॥  
 चन्दनेः कुसुमैरन्यैर्विधिभिः कालमभवेः ।  
 अखण्डपट्टवस्त्रैश्च कर्मण्डलमुपानहौ ॥  
 वर्धनीत्रितयं तत्र स्थापयेद्देवमात्रधौ ।  
 संप्रया वस्त्रयुग्मन्तु कौसुभन्तु महौपते ।  
 प्रतिपदेषु संपूज्यः सूर्यहादशनामभिः ॥  
 मित्रो विष्णुः स्वर्णः सूर्यो भानुस्तथैव च ।



तपनेन्द्रो रविः पूज्यो गभस्तिः शमनः स्तथा ॥  
 हिरण्यरेता दिनकृत् पूज्य एते प्रयत्नतः ।  
 मध्ये सप्तस्रकिरणः संपूज्य संप्रया सप्त ॥  
 पूगीफलैर्धूपदीपैर्वस्त्र-नैवेद्यासंयुतैः ।  
 नारिकेलिन चैवार्घ्यं दद्याद्देवस्य भक्तितः ॥  
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र व्रतस्य परिपूर्त्तये ।  
 नमः सप्तस्रकिरण सर्व्वव्याधिविनाशन ॥  
 गृह्णाणार्घ्यं मया दत्तं संप्रया सच्चितो रवे ।  
 अर्घ्यमन्त्रः ।

आरात्रिकं ततः कृत्वा पूजा-सङ्कल्पमिव च ।  
 संकल्पश्च ततः आहं कार्य्यं वै सूर्य्यदेवतं ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेद्ब्रह्म मिष्टान्नैर्हृदिश प्रभो ।  
 दम्पत्योर्भोजनं देयं परमाद्यसमन्वितं ॥  
 ततस्तु दक्षिणां दद्यात् समभ्यर्थ्य स्त्रगादिभिः ।  
 उपहारादितत्सर्व्वं गुरुवे प्रतिपादयेत् ॥  
 गुरुं तत्रैव सन्तीष्य ब्राह्मणांश्च विसर्ज्जयेत् ।  
 मन्त्रहीनं क्रियाहीनं विधिहीनन्तु यत्कृतं ॥  
 तत्सर्व्वं पूर्णतां यातु भूमिदेवप्रसादतः ।  
 अनुव्रज्य गुरुं विपान् भोजनन्तु समाचरेत् ॥  
 वृक्षांश्च वन्सुभिः सार्धं नत्वा देवं दिवाकरं ।  
 एवं यः कुरुते मर्त्वीं वित्तमाढाविवर्जितः ॥  
 सूर्य्यव्रतं महाराज तस्य पुण्यफलं शृणु ।  
 ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियो राज्यमाप्नुयात् ॥

बैश्या धनसम्पत्तिश्च शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।  
 अपुत्रो लभते पुत्रं कुमारी लभते पतिं ॥  
 रोगार्तो मुच्यते रोगात् वधो मुच्यते वन्धनात् ।  
 यं यश्चिन्तयते कामं स तस्य भवति ध्रुवं ॥  
 य इदं शृणुयाद्भक्त्या ह्येकचित्तो नृपोत्तमः ।  
 सर्वान् कामानवाप्नोति प्रसादाद्भास्वतो नृप ॥  
 इति सौरधर्मीकं सूर्यव्रतं समाप्तं ।

—000—

अथ सोमवारव्रतानि ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रजस्यं तदनुत्तमं (१) ।  
 येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिः कान्तिश्च जायते ॥  
 तद्वसिष्ठसु संगृह्य सोमवारं विचक्षणः ।  
 नक्तोक्तविधिना सर्वं कुर्यात् पूजादिकं विधोः ॥  
 सप्तमे तु ततः प्राप्तिं दत्त्वा ब्राह्मणभोजनं ।  
 कांस्यपात्रे तु संस्थाप्य सोमं रजतसम्भवं ॥  
 सोमरूपन्तु चतुर्दशोत्समहाराजव्रतोक्तं वेदितव्यं ।  
 पात्रे कृत्वा सोमराजं (२) श्वेतवस्त्रैः प्रपूजितं ॥  
 पादुकी-पानह-हृत्-भाजना-सनसंयुतं ।  
 होमं हृततिलैः कुर्यात्सोमनाम्ना तु मन्थवित् ॥  
 समिधोष्टीत्तरगतमष्टाविंशतिरेव च ।  
 होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव हृतेन तु ॥

( १ ) होतदुत्तममिति क्वचित् पाठः ।

( २ ) श्वेतवस्त्रेण क्वचित् मिति क्वचित् पाठः ।

पलाशसमिधो ज्ञातव्याः ।

दध्यन्नशिखरे कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

मन्त्रेणानेन राजेन्द्र सम्यग्भक्त्या समन्वितः ।

महादेव जटावल्ली पुष्पगोक्षीरपाण्डुर ॥

सोम सोम्यो भवास्माकं सर्व्वदा ते नमोनमः ।

एवं कृते महासोम्य सोमतृष्टिकरो भवेत् ॥

सन्तुष्टेऽत्रिसुते तस्य सर्व्वं सन्तु ग्रहा ग्रहाः ।

इति भविष्योत्तरोक्त चन्द्रनक्षत्रशान्तिः ।

—000—

ईश्वर उवाच ।

अथ व्रतविधानं हि कथयामि समासतः ।

यथा चरन्ति मनुजाः सिद्धसर्व्वार्थं कामदं ।

व्युक्तास्ते(१) कार्तिके मासि शुक्लमार्गदिने भवेत् ॥

प्रथमः सोमवारस्तु तं नक्षत्रेण प्रपूजयेत् ।

यदा श्रद्धा भवेत्कर्तुः सोमवारव्रतं प्रति ॥

तदा सर्व्वं कारयित्वा ब्राह्मणाद्यैः समारभेत् ।

मार्गमासे(२) तथा चैत्रे गृह्णीयात् सोमवारकं ॥

यस्मिन्मासे प्रारभेत तस्मिन्मासे प्रपारयेत्(३) ।

सुस्नातस्तु शुचिर्भूत्वा शुक्लाम्बरधरो नरः(४) ॥

काम-क्रोधाद्य-हृद्भार-देष-शून्यविवर्जितः ।

(१) प्रकृतास् इति कश्चित् पाठः ।

(२) सर्व्वं शुक्लदिने भावदिनि कश्चित् पाठः ।

(३) माघे मासोति कश्चित् पाठः ।

(४) तस्मिन् तत्प्रारभेद्भक्तमिति कश्चित् पाठः ।

आहरेत् श्वेतपुष्पाणि मल्लिकामालतीस्तथा ।  
 श्वेतपद्मानि दिव्यानि चम्पकं विष्वपाटलाः ॥  
 कुन्दमन्दारजैः पुष्पैः पुष्पागशतपत्रकैः ।  
 चर्चयेन्मलयजेनाथ दिव्यधूपेन धूपयेत् ॥  
 अन्नानि यान्यभीष्टानि तानि सर्वाणि दापयेत् ।  
 पूजयेद्भक्तिभावेन सोमनाथं जगत्पतिं ॥  
 कामिकेन तु मन्त्रेण (१) प्रायकेन मन्त्रेण च ।  
 निवेदयेत् सर्वमेव शृणु मन्त्रवरं हितं ॥  
 श्रीं नमो दशभुजाय त्रिनेत्राय पञ्चवदनाय शूलिने ।  
 श्वेतवृषभरूढाय सर्वाभरण भूषिते (२) ॥  
 उमादेहाईसंस्थाय नमस्ते सर्वभूर्त्तये ।  
 धनेनैव तु मन्त्रेण पूजाहोमन्तु कारयेत् ॥  
 मिथ्यन्ति सर्वकार्यार्थिणि मनसा चिन्तितानि च ।  
 पूजयेन्नक्तवेलायासृष्टाणां दर्शनेन तु ॥  
 प्रदाय भोजनं पूर्वं ब्राह्मणाय सुभक्तितः ।  
 संयुक्तशकताम्बूल-दक्षिणाभिस्तथैव च ॥  
 एतद्विधिसमायुक्तो रागद्वेषविवर्जितः (३) ॥  
 एकभक्तस्य यत्पुण्यं कथयामि समासतः ।  
 शतजन्मार्जितं पापमसङ्गं (४) देवदानवैः ॥

- ( १ ) कामिकेन सुमन्त्रेणैति वा पाठ ।  
 ( २ ) श्वेताभरणभूषिते इति कश्चित् पुलकं पाठ ।  
 ( ३ ) मङ्गलोद्भववर्जित इति कश्चित् पाठ ।  
 ( ४ ) दानममद्यमिति कश्चित् पाठ ।

नश्यते श्लोकभक्तेन नात्रकार्या विचारणा ।  
 मासस्यैकस्य यत्पुण्यं शृणु तत्त्वेन(१) सुन्दरि ॥  
 अभाग्यं जायते भाग्यं दुर्भगं सुभगं भवेत् ।  
 पुत्रार्थी लभते पुत्रान् दरिद्री धनवान् भवेत् ॥  
 गृहे तस्य(२) वरारोहे सौख्याणि विविधानि च ।  
 बद्धांशो धनभागो स्या(३) द्विघ्नहीनः धितिसचरेत् ॥  
 अश्वमेधसहस्रास्य फलं प्राप्नोति मानवः ।  
 स्वर्गं भुक्त्वाखिलान् भोगान् जायते मानवोत्तमः ॥  
 नक्तानि सोमवारस्य पौषमासे महेश्वरि ।  
 तेषां पुण्यफलं वक्ष्ये संक्षेपेण तवाद्यतः ॥  
 अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं शतगुणं भवेत् ।  
 तत्फलं लभते देवि पूर्वदेषसमन्वितः ॥  
 माघस्यैव तु मासस्य सोमवारेण पूजयेत् ।  
 स्नापयेन्मधुदुग्धाभ्यां तथैवेक्षुरसेन तु ॥  
 द्विजहत्यादिपापानि तानि सर्वानि नाशयेत् ।  
 विशुद्धस्तेजसा युक्तो जायतेत्यन्तनिर्मलः ॥  
 बहुस्वर्गस्य यत्पुण्यं दुर्लभं त्रिदशैरिह ।  
 लभते नात्र सन्देहो ममभक्तिप्रचोदितः ॥  
 फाल्गुने कथयिष्यामि सोमवारफलं शुभं ।  
 कृते नक्तं तु कथाणि गुणस्तै विस्तरेण तु ॥  
 चतुर्विंशसहस्राणि शतानि ह्यगपञ्च च ।

( १ ) माघमासं शृणुचक्षेत्रेति वा पाठः ।

( २ ) गृहस्थमिति कश्चित् पाठः ।

( ३ ) बद्धांशोऽस्तीति कश्चित् पाठः ।

यज्ञानां सर्वशास्त्रज्ञैर्नागाशास्त्रिकसप्तमैः ॥  
 गवां लक्षस्य दत्तस्य चन्द्रसूर्यपक्षे प्रिये ।  
 फलमप्यधिकं तस्य लभते नात्र संशयः ॥  
 चैत्रेऽपि शृणु कल्पाणि ममैव ब्रूवती वचः ।  
 सोमवारेण नक्षत्रेण ज्ञातेन सुरसुन्दरि ॥  
 यत्फलं लभते नारी लक्षैकेन तु पार्वति ।  
 गङ्गोदकस्य नीतस्य सोमनाद्यादिसङ्गमे ॥  
 घृतस्य मधुना वापि शतधा हि ज्ञातं फलं ।  
 सुगुल्मश्च तथा पञ्चसङ्ख्यं परमेष्ठरि ॥  
 एवं पुण्यं भवेदस्य मानवस्य न संशयः ।  
 वैशाखे कारयेत्कृतं सोमवारे न संशयः ॥  
 पूजयेत्पुण्ड्रं तपुष्यैश्च यथा लब्धैः सुरेश्वरि ।  
 ऋपूणां हि प्रदातव्याः कदलीफलसम्भवाः (१) ॥  
 एकचित्तेन भावेन निर्मलेन यशस्विनि ।  
 कल्पानां सुरयोग्यानां सहस्रेण वरानने ॥  
 दानेन विधिवद्देवि नराणां रूपशालिनी ।  
 एतद्दानेन यत्पुण्यं लभते मानवी भुवि (२) ॥  
 तत्फलं लभते सद्यं सोमवारव्रतेन तु ।  
 ज्येष्ठमासे महादेवि सोमवारव्रतस्य तु ॥  
 चीर्णम्य यद्भवेत् पुण्यं तत्सर्व्वं कथयामि ते ।  
 गवां सुवर्णशृङ्गीणां पञ्चरे विधिवत् प्रिये ॥

( १ ) नक्षत्राणि प्रदातव्याः कदलीफलसम्भवाः इति वा पाठः ।

( २ ) पुण्यं भुवौति वा पाठः ।

दत्तानां दशसाहस्रं फलं प्राप्नोति मानवः ।  
 पदञ्च लभते पुण्यं दुर्लभं देवदानवैः ॥  
 ईशस्य कल्पमयुतं क्रीडते तत्र सुन्दरि ॥  
 आषाढे सोमवारस्य भावितात्मा चरेद्भतं ।  
 विधिपूर्वन्तु कल्याणि श्रेयः शृणु वदामि ते ॥  
 नरमेधशतैकेन(१) विधियुक्ते न यत्फलं ।  
 तद्भवेन्मानवे देवि पुण्यं सर्वशुभान्वितं ॥  
 साधितुं नैव शक्यन्ते देवि नक्तमिदं यतः ।  
 तस्माद्भतमिदं सारं यतः कष्टेन मिद्वरति ॥  
 श्रावणे तु महादेवं सोमवारेण पूजयेत् ।  
 रात्रौ तु मीजनं कुर्याद्भद्रकौटिल्यवर्जितः ॥  
 भवेद्दणवरः प्राणो जीवमानो महेश्वरि ।  
 इह त्वेतादृशी चेष्टा परत्र कथयामि ते ॥  
 अश्वमेधशतं सायं पुण्यं प्राप्नोति मानवः ।  
 मम लोके स वसति यावच्चन्द्रार्कतारकाः ॥  
 भाद्रे च भावसंयुक्तः पूजयेत्परमेश्वरिणं ।  
 पुण्यं वानुत्तमं तस्य शृणु देवि विशेषतः ॥  
 गवां कीटिप्रदानस्य सवत्सस्य सुशीलिनः ।  
 यस्तत् फलमवाप्नोति मानवो नात्र संशयः ॥  
 आश्विने कथयिष्यामि त्वग्निष्टोमफलं शतं ।  
 रसधेनुसहस्रस्य गुडधेनुशतस्य च ॥  
 सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणे वेदपारगे ।

१) एवमेधशतैकेनेति क्वचित् पाठः ।

दत्तस्य फलमाप्नोति मानवो नात्र संशयः ॥  
 कार्तिके वरदं देवि कामिकं मोक्षदायकं ।  
 स्मरणात्पापसंघानां भेदकं परमेष्ठिनि ॥  
 सीमवारव्रतपरो विधिवत् पूजयेच्छिवं ।  
 नक्तागो यज्ञयायुक्तो दद्यात्सर्वसमन्वितः ॥  
 दत्तस्य वेदपारङ्गे (१) रथानाञ्च गतस्य च ।  
 वाजिभिः शुभनिर्द्धेय युक्तानां वेदवादिभिः ॥  
 चतुर्विदेषु विप्रेषु प्रदत्तस्य च यत्फलं ।  
 तत्फलं लभते देवि मानवो भक्तिमंयुतः ॥  
 व्रतान्ते प्रतिमां कुर्याद्दीप्यं सोमं चतुर्भुजं ।  
 त्रयोदशघटान् श्वेतावस्त्रयुग्मसमन्वितान् (२) ॥  
 संपूर्णानि सुभक्ष्येषु वंगपात्राणि पार्वति ।  
 तेषामुपरि यत्नेन दद्यात्सर्वार्थमिदये ॥  
 सुशुभेन सुगन्धेन सुस्निग्धेनोष्णलेन च ।  
 मङ्गेन घृतपक्वैश्च (३) मङ्गगालिघृतैस्तथा ॥  
 ब्राह्मणानथ संपूज्य भक्तियुक्तैः चेतसा ।  
 त्रयोदशघटान् दद्याद्वाथ श्वेता मनोरमाः ॥  
 तथानेन विधानेन विप्रा वक्ष्यन्ति त्विमा (४) ।

- 
- ( १ ) वेदशास्त्र इति वा पाठः ।  
 ( २ ) पयोऽन्वितानिति वा पाठः ।  
 ( ३ ) पूर्णपादाणीति वा पाठः ।  
 ( ४ ) इति वाच्यं पवित्रक इति वा पाठः ।



उपानहयुताः कार्याश्चिन्तितानुसारतः ॥  
 दद्यात् स्वाचारसंपन्नब्राह्मणेषु मनीषिषु ।  
 दक्षयेत् गृहसारेण पुनरेव क्षमापयेत् ॥  
 ततो गुरुं भक्तिपूर्वमासने चोपवेगयेत् ।  
 अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्धूपदीपविलेपनैः ॥  
 न गुरोः सदृशी माता न गुरोः सदृशः पिता ॥  
 संसारादुद्धरेद्योहि व्रतदानोपदेशतः ।  
 गोस्वामी पूजितो यस्मात्पार्ष्ण्यं संहितः प्रभुः ॥  
 तस्मात् संपूजयेद्भक्त्या गुरुं भार्यासमन्वितं ।  
 अर्चयेत् प्रथमं तत्र पूजया पादसंख्यया ॥  
 दद्याद्दस्त्राणि दिव्यानि सुवर्णाभरणानि च ।  
 असूल्यानि तु रत्नानि(१) ग्रामस्त्रपुराणि च ॥  
 नगराणि गृहं दिव्यं यच्चान्यत् सुरसुन्दरि ।  
 वाहनानि विचित्राणि गजवाजिरथादिकं ॥  
 अन्यानि यान्यभीष्टानि तानि सर्वाणि दापयेत् ।  
 गौर्गुरोः संप्रदातव्या सुवस्त्राश्च सुरूपिणी ॥  
 श्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरा कांस्यदीहा पयस्विनी ।  
 ताम्रपृष्ठा सुशीला च वस्त्रावृतदेहि का ॥  
 अभ्यर्च्य विधिना दद्याद्भक्तसंपूर्णहेतवे ।  
 समधान्यं यथाशक्त्या दापयेत् प्रयतो व्रती ॥  
 दीपदानं प्रकर्त्तव्यं गुरवे ज्ञानदायिने ।  
 एवं गुरुं प्रणम्याथ शक्त्या दक्षिणया यजेत् ॥

दीपदानं प्रकर्त्तव्यं गुरवे ज्ञानदायिने ।  
 क्षमापयेच्च तत् सर्व्वं देवादिप्रतिमां ददेत् ॥  
 ततस्तपस्विनां देवि मम दर्शनहेतुना ॥  
 सुगन्धघृतसंमिश्रपूपैः कृशरपाद्यसैः ।  
 धारिकागोकवल्गोभिः पूरिका मण्डकैस्तथा ॥  
 दधिदुग्धसमोपेतं भोजनं दापयेत् सुधीः ।  
 तपस्विनी ब्राह्मणांश्च लिङ्गमूर्त्तियत्पूर्विधा ॥  
 मम रूपमिदं यस्मात् तस्मात् पूज्यं चतुष्टयं ।  
 शिवाङ्कितैश्च शास्त्रज्ञैर्दशकैर्दशैश्चिन्तकैः ॥  
 जटासुद्रादिसंयुक्तैर्भस्मोच्छलितविषण्णैः ।  
 ब्रह्मचर्य्यरतैः शास्त्रैर्लोममत्सरवर्जितैः ॥  
 ईदृशैः शिवपात्रे च भुक्तैः फलमनुत्तमम् ।  
 भोजनान्ते प्रदातव्यं ताम्बूलं मुखवासकम् ॥  
 श्वेतचन्दनकौपीनं दत्त्वा तांश्च विसर्जयेत् ।  
 शक्तितो भोजनं देयं यथा विभवविस्तारैः ॥  
 कृपणानाथदीनानां सुहृदां याचतामपि ।  
 एवं विधिसमायुक्तो गच्छते परमं पदं ॥  
 भोगान् भुङ्क्ते सर्व्वलोके शतकोटियुगन्तरेत् ।  
 कन्याभिवेष्टितो देवि रमते स्वेच्छया प्रिये ॥  
 मम लोके वसेत्तावद्यावदाभूतसंश्रवं ।  
 मम वीर्य्यवलोपेतस्त्रिनेत्रः शूलपाणिकः ॥  
 माहात्म्यात् सोमवारश्च यन्ते मुक्तिमवाप्नुयात् ।  
 पूर्वं कृच्छ्रेण सखीर्षं तथा वै पद्मवीनिना ॥  
 देवदानवमन्थर्वैः पिशाचोरगराक्षसैः ।

ऋषिभिः क्षितिपेस्तद्वत् श्वायम्भुवमुखैः प्रिये ॥  
 अन्ये य मानवैः शुद्धैराप्ति कौर्द्धर्मतत्परैः ।  
 न देयं दुष्टचित्ताय शुद्धिहीनाय न क्वचित् ॥  
 शास्त्रधर्मादिषु नैव विडम्बकजनाय च ।  
 आचार्यदेवविप्राणां व्रतिनां व्रतशीलिनां ॥  
 वक्रवेदसुतीर्थानां निन्दकाय न वै क्वचित् ।  
 आर्त्तौ नैव परित्याज्यं व्रतमेतत् सुदुर्लभं ॥  
 व्रतत्यागात्प्रहादोष इति ज्ञात्वा समारभेत् ॥  
 गुरोः समीपे कुर्वीत व्रतमेतन्न मंशयः ।  
 अन्यथा गुरुहीनस्य निष्फलं जायते व्रतं ॥  
 सन्देहः सर्वकार्येषु गुरुहीनस्य वै भवेत् ।  
 तस्मात्सर्व्वं प्रयत्नेन गुरुमेव समाश्रयेत् ॥  
 अथ संचेपतो वक्ष्ये व्रतमाहात्म्यमत्तमम् ।  
 ये चरन्ति नरा देवि स्त्रियश्चापि सुभाविताः ॥  
 तेषां जन्ममहस्त्रेऽपि न शोको जायते क्वचित् ॥  
 न दारिद्र्यं न रोगश्च सन्ततिच्छेद् एव च ।  
 कुलकाटिं समुदृत्य स्थापयेद्विन्दुसद्गनि ॥  
 इत्थं शृणोति माहात्म्यं पद्यमानं व्रतस्य च ।  
 श्रावयेद्भक्तिसंयुक्तो रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥  
 क्रियमाणं तत्रा पश्येद्द्वतमेतत् प्रियं मम ।  
 भक्तियुक्तो नरः श्रुत्वा यथैवानुपमोदते ॥  
 मतिं ददाति वक्ष्यापि स याति शिवमन्दिरं ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तसोमव्रतं ।

अथ भीमव्रतं ।

—०००—

स्वात्यामङ्गारकं गृह्य क्षपयेन्नक्तभोजनः ।  
 मममे त्वथसंप्राप्ते स्थापितं ताम्बभाजने ॥  
 हैमं रक्ताम्बरच्छत्रं कुङ्कुमिनामुलेपनं ।  
 नैवेद्यं शुभ्रकं मारं पूज्य पुष्पाक्षतादिभिः ॥  
 मन्त्रेणानेन तं दद्यात् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ।  
 कुजम्बप्रभवोपि त्वं मङ्गलः पठते बुधैः ॥  
 अमङ्गलं निहिम्याशु सर्वदा यच्छ मङ्गलम् ।

इति भविष्योत्तरोक्तं भीमव्रतं ।

—०००—

भीमोयमेश्वरः पुत्रः पृथिव्यां जनितो महान् ।  
 रूपेणैव सदा रम्यो वरदानाहिवीकसां ॥  
 अस्यैव दिवसे प्राप्ते ताम्बपात्रं सुगोभनं ।  
 परिपूर्णं गुडैर्नैव वर्षमेकं प्रदापयेत् ॥  
 व्रतान्ते दापयेत्तेनं यथोक्तफलसंयुतां ।  
 ब्राह्मणाय मरुपाय अव्यङ्गितशरीरिणे ॥  
 एवं व्रतविधिं दिव्यं यः कथितं कुरुते नरः ।  
 रूपवान् धनवांशेव जायते नात्र संशयः ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं भीमवारव्रतं ।

—०००—

युधिष्ठिर उवाच ।

देवदेव जगन्नाथ पुराणपुरुषोत्तमः ।

सर्वार्थसाधनं पुण्यं व्रतं कथय मे प्रभो ॥

भौमीयमर्चनं ब्रूहि माहात्म्यं तस्य मे प्रभो ।

व्रतेन येन चीर्षेण नरो दुःखात् प्रमुच्यते ॥

श्रीभगवानुवाच ।

यदुक्तं कथयिष्यामि सर्वकामार्थसाधनं ।

ग्रहाणामधिपोभोमः पूजयेद्भौमवासरे ॥

मङ्गलो भूमिपुत्रश्च ऋणहर्ता धनप्रदः ।

स्थिरासनो महाकायः सर्वकामार्थसाधकः ॥

लोहितो लोहिताङ्गश्च सामगानां कृपाकरः ।

धरात्मजो कुत्रो भौमो भूतिदो भूमिनन्दनः ॥

अङ्गारको यमयैव सर्वरागापहारकः ।

सृष्टिकर्ता प्रहर्ता च सर्वकामफलप्रदः ॥

एतानि कुजनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।

ऋणं न जायते तस्य धनं प्राप्नोत्यसंग्रहं ॥

त्रिकोणश्च सदाकार्यं मध्ये छिद्रं प्रकल्पयेत् ।

कुङ्कुमेन सदा लेख्यं रत्नचन्दनमेव च ।

कोणे कोशे प्रकल्प्यानि त्रीणि नामानि भूमिज ॥

पार्वकं भूमिजश्च रत्नगन्धैश्च पूजयेत् ।

स्नापयेद्द्वये कुम्भे जलपूर्णं सवस्त्रके ॥

रत्नधान्यैश्च नैवेद्यैरर्घ्यं रत्नफलैस्तथा ।

रत्नगन्धैश्च धूपैश्च पुष्पदोषादिभिस्तथा ॥

मङ्गलं पूजयेन्नृत्वा मङ्गलेऽहनि सर्वदा ।  
 ऋणरेखा प्रकर्त्तव्या ऋणारेण तदग्रतः ॥  
 तान्तु प्रमार्जयेत्पञ्चाहामपादेन संस्पृशन् ।  
 एकविंशतिनामानि पठित्वा तु दिनान्तके ॥  
 रूपवान् धनवाञ्छैव जायते नात्र संशयः ।  
 एककालं द्विकालं वा यः पठेत् सुसमाहितः ॥  
 एवं कृते न सन्देहो ऋणं हत्वा सुखी भवेत् ।  
 पूजितो देवदेवेशो मङ्गलो मङ्गलप्रदः ॥  
 उज्जयिन्यां समुत्पन्नो भौमो भौमश्चतुर्भुजः ।  
 भरद्वाजकुले जातः शक्तिशूलगदाधरः ॥  
 वरदो मेघमाहूढः स्कन्दप्रागुत्पन्नित् प्रभः ।  
 स्थीनापृथिवी मन्त्रेषु दले यास्ये प्रतिष्ठितः ।

प्रतिष्ठामन्त्रः ।

भूमिपुत्री महातेजाः कुमारो रत्नवस्त्रकः ।  
 ज्वलदङ्गारसदृशो भौमः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

पूजामन्त्रः ।

प्रसोद देवदेवेश विघ्नहर्त्ता धनप्रद ।  
 गृहाचार्यं मया दत्तं मम शान्तिं प्रयच्छ वै (१) ॥  
 भूमिपुत्रीमहातेजाः स्वेदीहवः पिशाकिनः ।  
 धनार्थं त्वां प्रपन्नोऽस्मि गृहाचार्यं नमोऽस्तुते ॥

षष्ठीमन्त्रः ।

शौतमेन पूरा पृष्टो सांहिताहो महाप्रदः ।

( १ ) प्रहोमवदति वा पाठः ।

कथय त्वं महाभाग गुह्यं पूजार्चने विधिम्(१) ॥

गीतम उवाच ।

मन्त्रमाराधनं ब्रूहि सर्व्वं प्राणिभयापहं ।  
 सर्व्वपाप प्रशमनं सर्व्वीपद्रवनाशनं ॥  
 सर्व्वयज्ञफलं येन सर्व्वदानफलं लभेत् ।  
 तपोजप्यान्धनेकानां फलं येनैव लभ्यते ॥  
 रूपञ्च सकलं येन वाहनायुधसंयुतं ।  
 येन पूजितभाषिण जायते सुखमुत्तमं(२) ॥  
 धर्मार्थकाममोक्षाणां कालेनवफलप्रदं(३) ।  
 सर्व्वपापप्रशमनं सर्व्वव्याधिविनाशनं(४) ॥  
 सर्व्वसौख्य प्रदानानां फलं येन च लभ्यते ।  
 तद्व्रतं ब्रूहि मे देव लोहितारुहो महायज्ञः ॥

भीम उवाच ॥

शृणु साधो महाभाग धर्मशारद गीतम ।  
 व्रतं पूजा परं दानं यज्ञोप्यं भुवनत्रये ॥  
 आसीत् पूर्वं सुनन्दीको ब्राह्मणो वेदपारगः ।  
 तस्य भार्या सुनन्दीका वन्ध्या तु बहुलोभिनी ॥

( १ ) इष्टमिति पाठान्तरं ।

( १ ) प्राप्यते परमं सुखमिति वा पाठः ।

( १ ) कालेनेवाभयप्रदमिति वा पाठः ।

( ४ ) सर्व्वीपद्रवनाशनमिति वा पाठः ।

तस्यापत्यं न सञ्जातं ब्रह्मत्ववन्धभावतः ।  
 तेनान्यस्य सुता जातु सुशीला रूपसंयुता ॥  
 ब्राह्मणस्य कुले जाता गृहीत्वा पोषिता स्वयं ।  
 सर्वलक्षणसंपूर्णा मङ्गलेन तु गीतमा ॥  
 पूर्वजन्मनि तेनाहं पूजितयैव भावितः ।  
 तां पुत्रीञ्च गृहे तस्य ब्राह्मणी साह्यपालयेत् ॥  
 नित्यं प्रसूयते(१) स्वर्णं अष्टाङ्गात् कनकवृत्तिः ।  
 तेन स्वर्णेनासौ विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥  
 कोटि कोटीश्वरो विप्रो राजते भूमिमण्डले ।  
 वर्षेः कतिपर्यैर्विप्र सा कन्या यौवनीत्तमा ॥  
 दृष्ट्वा नन्दीकविप्रेण दशवर्षीं मनःस्विनीं ।  
 विवाहार्थन्तु विप्रस्य दत्त्वा सीमेघरस्य च ॥  
 वेदीक्तविधिना तत्र विवाहमकरोत्तदा(२) ।  
 वर्षेः कतिपर्यैर्विप्रप्तां कन्यां प्रोढुयौवनां ॥  
 आदाय श्वशुरगृहान्निर्गता शुभवासरे ।  
 स्वदेगोपरिमार्गेण गच्छमानस्यहर्निशम् ॥  
 वनान्ते गङ्गरे घोरेऽरण्ये पञ्चतमध्यगे ।  
 सुनन्दी च वने तस्मिन् मन्दस्त्रीभ्रमभावतः ॥  
 सर्वसुन्द्ये वने तस्मिन् महालोभेन भावितः ।  
 मार्गं चलति विप्रोऽसौ घाति तु विवृतिं स्वकं ॥  
 तेनासौ घातिनी विप्रघोररूपेण सादरात् ।

( १ ) पृथ्वीयते इति वा पाठः ।

( २ ) श्वशुरासरे इति वा पाठः ।



पतिं मृतञ्च तं द्वा सा नारी भयपीडिता(१) ॥  
 यावत् प्रक्षिप्य काष्ठानां मध्ये चैव द्युताशनं ।  
 पतिदेहमुपादाय चिक्षेप चितिमध्वतः ॥  
 पतिना सह विप्रेभ्य मरणे कृतनिश्चया ।  
 पतिर्ब्रह्मत्स्यं देवं ध्यायन्मौ च पदेपदे ॥  
 पतिं प्रदक्षिणौ काल्य चितायाश्च समीपतः ।  
 चित्यां यावत् प्रविशति तदाहमवदक्ष तां ॥  
 तस्मिन् काले च तुष्टोहं याचयस्व मनोरथं ।

ब्राह्मणो उवाच ।

यदि तुष्टोसि मे देव तदा जीवतु मे पतिः ।

भौम उवाच ।

अजरोप्यमरो बले त्वद्गर्तायं भविष्यति ।  
 अन्यथा च महासाधि चिरां त्रिभुवनक्षमं ॥

ब्राह्मणो उवाच ।

यदि तुष्टोसि देवेश यद्वाचामधिप प्रभो ।  
 ये त्वां घटे समासिष्य रक्तचन्दनचर्चितं ।  
 रक्तपुष्पैश्च संपूज्य प्रत्यूषे भौमवासरे ॥  
 वैधव्यन्तु क्षणं तेषां व्याधिराजमयं तथा ।  
 सर्पान्निशचसम्बादं वियोगं स्वजनस्य च ॥  
 माकुर्वन्व महीपुत्र यदि तुष्टोसि मे प्रभो ॥

श्रीभौम उवाच ।

एक विंशति भौमाश्च मङ्गलाश्च जितेन्द्रियाः ।

( १ ) मोक्षपीडितेति वा पाठः ।

एकाहारेः सीतानैश्च चतुर्हीपालिकैर्गृहे ॥  
 अर्घ्यं स्तु रुक्मलैश्चैव्येदंपौराणिकोद्भवैः ।  
 स्वयत्तवा भोजनं विप्रे दातव्यं सहिरण्यकं ॥  
 युवानं रत्नमगङ्गाहं सर्वोपस्कारसंयुतं ।  
 तेषां पीड्या कदा कस्य पश्यस्य न भविष्यति ॥  
 भूतवेतासशक्तिव्यः प्रभवन्ति न द्विसकाः ।  
 एवमस्तु तदा तस्य इत्युक्त्वात्तरधीयते ॥  
 व्रतमात्रे तु ये लोकाः पीडिता विपदं गताः ।  
 यः पठति इमं व्रतं स प्राप्नोति विष्णुपुरं ॥  
 तत्प्राप्नोति नरः सम्यक् गतिः स्याच्च प्रभावतः ।  
 उद्यापनं प्रकर्त्तव्यं महत्तस्य समाप्तये ॥  
 उद्यापनं विना विप्र फलं पूर्वं न जायते ।  
 एकविंशतिभौमाद्य कर्त्तव्या एकभावतः ॥  
 आपदो विस्रयं यान्ति सुखश्चैव प्रवर्द्धते ।  
 यः शृणोति व्रतं विप्र मानवः संयतेन्द्रियः ॥  
 तस्य मासकृतं पापं विस्रयं यान्ति वर्द्धते(१) ।  
 सदा नियमसंयुक्तः प्रत्युषेसु समास्थितः(२) ।  
 यावज्जीवं व्रतं पुण्यं करोति भुवनत्रये ॥  
 सुसमृद्धो भवेच्चिप्रः पुत्रपौत्रैस्तु वर्द्धते ।  
 अस्ते चापि परं स्थानं यत्र सूर्यादयो प्रजाः ॥

( १ ) तत्पञ्चादिति पाठाकारं ।

( २ ) सुसमाहित इति पाठाकारं ।

एवमुक्त्वा तदा तत्र मङ्गलोऽपि दिवङ्गतः ॥  
 इदं व्रतं त्वया ख्यातं सर्व्वसौख्यप्रदायकं ।  
 इदं व्रतं करिष्यन्ति तेषां पीडा न जायते ॥  
 स्त्रीभिर्व्रतं प्रकर्त्तव्यं पुरुषैश्च विशेषतः ।  
 तेषां सुक्तिर्नसन्देहः स्वर्गवासी न संग्रयः ॥

इति पद्मपुराणे भौमव्रतं ।

कनकमयशरौरस्तेजसादुर्निरीक्ष्यो  
 हुतवहसमकान्तिर्मालवे लब्धजन्मा ।  
 अवनितनय एष स्तूयते भारतेयो  
 ददतु मम विभूतिं मङ्गलः सुप्रसन्नः ॥

गौतम उवाच(१) ।

उद्यापनविधिं तस्य सम्यग्ब्रूहि प्रसादतः ।  
 येन ज्ञातेन जगत उपकारो महान् भवेत् ॥

मङ्गल उवाच ।

विघ्ने(२)योमण्डप स्वस्तिंस्त्वष्टहस्त प्रमाणतः ।  
 स्थण्डिलं मध्यतः कार्य्यं हस्तैकस्य प्रमाणतः ॥  
 मण्डलन्तु प्रकर्त्तव्यं मामकं रक्तघासिनं ।  
 पूर्वोक्तानि च नामानि मण्डले पूजयेत्ततः ॥

( १ ) मङ्गलउवाचति पाठान्तरं ।

( २ ) विधि इति पाठान्तरं ।

मण्डलान्तु प्रकर्त्तव्यं पञ्चैविंशतिभिर्युतं(१) ॥  
 हारोपहारसहितं वीजिकाकरकैर्युतं ।  
 पूजा तत्र प्रकर्त्तव्या रत्नचन्दनपूर्विका ॥  
 जवापुष्पे स्तु पूष्यानि मम नामानि पूर्वतः ।  
 सप्तकषा धूपदानञ्च नैवेद्यं पीलिकः स्मृतां ॥  
 पूजाफलैर्नैवेद्याद्यं दातव्या नारिकेलयुक् ।  
 जवापुष्पेण दातव्यो(२) व्रतोद्यापनसिद्धये ।  
 कुम्भे मे प्रतिमां स्वाप्य सौवर्णीञ्च स्वयत्कितः ॥  
 रत्नवस्त्रेण संस्त्राय पूजां पूर्वाक्तमन्त्रतः ।  
 षष्टीत्तरगतं ह्रीमं पूजान्ते कारयेद्बुधः ॥  
 जवायाः कुसुमानान्तु घृतस्य तु यथाविधि ।  
 तिलाद्यतानामाचार्यैश्च त्विन्मिर्वेदपारगैः ॥  
 अग्निर्मूर्द्धातमन्त्रे ष रत्नशालेयद्वयथा ।  
 शान्तिकान्तु प्रकर्त्तव्यं यद्योक्तेन(३) विधानतः ॥  
 पद्ममध्ये कर्णिकायां मम सूक्तमन्त्रितः ।  
 पूजयेद्ययमानस्तु शेषनामानि पूर्वतः ॥  
 मङ्गलाय नमः पादौ भूमिपुत्राय जानुनी ॥  
 ऋणहर्त्तं नमस्तूरु कटिं धनप्रदाय च ।  
 स्थिरासनाय गुह्ये तु महाकायय चौरसि ।  
 सर्वकामप्रदायै तु वामबाहुं प्रपूजयेत् ॥

( १ ) पादकैरिति पाठान्तर ।

( १ ) पूर्वमन्त्रे च दातव्य इति पाठान्तरं ।

( २ ) स्वशास्त्रे इति वा पाठ ।

लोहिताय दक्षवाहो लोहिताशाय कण्ठतः ।  
 आस्ये संपूजयेन्नाञ्च सामगानां कृपाकरं ॥  
 धरात्मजं नासिकायां कृञ्च नयनद्वये ।  
 भीमं जलाटपटे च भूमिजाय नमो भुवौ ॥  
 मूर्द्ध्नि संपूजयेन्नाञ्च भूमिनन्दननामतः ।  
 अङ्गारकं शिखायान्तु यमकृवचदेशतः ॥  
 सर्वरोगापहारञ्च अस्त्रे संपूजयेत्कदा ।  
 आकाशे छष्टिकर्तारं प्रहृत्तीरमधस्तथा ॥  
 सर्वाङ्गेषु प्रपूज्योऽस्मि सर्वकामफलप्रदः ।  
 एवं पञ्चोपचारेण पूजान्ते व्रतकारिणा ॥  
 अच्छिद्रं याचनीयन्तु भक्तियुक्तेन चेतसा ।  
 आचार्यं ऋत्विजो ब्रूयुः संपूर्णं व्रतमस्त्विति ॥  
 व्रतान्ते पूजयेद्दिग्रं गुरुं पद्मीसमन्वितं ।  
 रक्तवस्त्रं परोधाप्य पदं दद्याद्दद्यादितं ॥  
 शय्यां सोपस्कराश्चैव भोजनं विविधं तथा ।  
 भक्त्या दद्यादनङ्गाहं (१) व्रतान्ते मम तुष्टये ॥  
 ऋत्विजोऽपि तदा पूज्या मत्प्रीत्यर्थं स्वशक्तितः ।  
 भोजनाच्छादनाद्यैश्च संस्कारैर्विधैर्गिरा ॥  
 इत्थमुद्यापनं ये तु कुर्वन्ति व्रतकारकाः ।  
 तेषां पीडा कदा कस्य ग्रहस्य न भविष्यति ॥  
 भूतवेतालशाकिन्यः प्रभवन्ति न हिंसकाः ।  
 न ऋणञ्च भवेत्तेषां धनं तेषां भवेद्भवं ॥

( १ ) दद्याद्भक्तिं पाठान्तर ।

येषां सन्तानवाञ्छा स्यात् ते लभन्ते बहून् सुतान् ।  
 इत्युक्त्वा गीतमस्याग्रे दिवं प्राप्तो महाग्रहः ॥  
 व्रतमात्रे तु ये लोकाः पीडिता विपदाङ्गणेः (१) ।  
 आपदो विलयं यान्ति सुखञ्चैव प्रवदन्ते (२) ॥  
 य स्तवीति व्रतं भक्त्या मानवस्तु जितेन्द्रियः ।  
 तस्य मासकृतं पापं विलयं याति तत्क्षणात् ॥  
 सदा तु नियमारूढः प्रत्यूषे सुसमाहितः ।  
 यावज्जीवं व्रतं पुण्यं करोति भुवनत्रये ॥  
 सुसमृद्धो भवेद्द्विप्रः पुत्रपौत्रैः स वदन्ते ।  
 अस्ते याति परं स्थानं यत्र सूर्यादयो गहाः ॥  
 अवाप्नोति नरः सम्यग् (३) व्रतस्यास्य प्रभावतः ।  
 यावज्जीवं न शक्नोति व्रतं कर्तुं नरो यदि ॥  
 उद्यापनं विधायैव मोक्षव्यं व्रतमुत्तमं ।  
 उद्यापनन्तु शास्त्राक्तं कर्त्तव्यं सुसमाहितैः ॥  
 अशक्तो ब्राह्मणानुज्ञां गृहीत्वा तु विसर्जयेत् ।  
 अन्यथा कुरुते यस्तु कुठ्ठीचान्य (४) प्रजायते ॥  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणानुज्ञया व्रतं ।  
 कर्त्तव्यन्तु सुसंपूर्णमद्यापनममन्वितं ॥

( १ ) विपदागमे इति पाठात्कर ।

( २ ) सम्भ्रान्तपाकान्तुक्षणादिति पाठात्कर ।

( ३ ) क्षमस्य सतत सम्यगिति पल्लकात्करं पाठः ।

( ४ ) कुठ्ठी वन्धश्च जायते इति पाठात्कर ।

धरामराणां वचनेरवस्थिता(१)  
 दिवीकसस्तीर्षमखैःसमेताः(२) ।  
 न लङ्घयेत्तपि वचांसि तेषां  
 श्रेयोऽभिकामी पुरुषो विजानन् ॥

इति पद्मपुराणोक्तं मङ्गलव्रतोदयापनं ।

अथ बृधव्रतं ।

— " —

कृष्ण उवाच ।

विशाखासु बृधं प्राप्य सप्त नक्तानि चाचरेत् ।  
 बृधं हेममयं कृत्वा स्यापिगं कांस्यभाजने ॥  
 शुकुमान्याम्वरधरं शुकुगन्धानुलेपनं(३) ।  
 गुडोदनोपहारक्यु त्राक्षणाय निवेदयेत् ॥  
 बुधस्त्वं बुद्धिजननी बोधदः सर्वदा नृणां ।  
 तस्वावबोधं कुरुते राजपुत्राय ते नमः ॥

इति भविष्योत्तरे बृधव्रतं ।

( १ ) वचनेर्लक्ष्म्यता इति पुलकाकारे पाठः ।

( २ ) वसैः समेता इति पाठाकारः ।

( ३ ) शुक्रवस्त्रयुगम्भ्रम शुक्रमान्यानुलेपमिति पाठाकारः ।

अथ गुरुव्रतं ।

—०—

अनुराधास्वयाचार्यं देवानां पूज्य भक्तिः ।  
 पूर्वोक्तक्रमयोगेन सम नक्तान्यथाचरेत् ॥  
 हेमं हेममये पात्रे स्थापयेन्न ब्रह्मस्यति ।  
 पीताम्बरयुगच्छत्रं पीतयज्ञोपवीतकं ॥  
 पादुकाच्छवसहितं सदण्डं सकमण्डलुं ।  
 संपूज्य पृष्यनिकरैर्धूपदीपाक्षतादिभिः ।  
 खण्डस्वाद्योपहारञ्च द्विजाय प्रतिपादयेत् ॥  
 धर्मशास्त्रार्थशास्त्रज्ञ ज्ञानविज्ञानपारगं ।  
 प्रलभ्य बुद्धिगाम्भीर्यं देवाचार्यं नमाऽस्तु ते ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्तं गुरुव्रतं ।

अथ गुरुव्रतं ।

—०—

शुक्रं ज्येष्ठामुसं प्राप्य (१) पूजयेन्नक्तभोजनः ।  
 पूर्वोक्तक्रमयोगेन द्विजमन्त्रपणेन तु ॥  
 सप्तमेऽत्वथ संप्राप्ते सौवर्णीं कारयेत्सितं (२) ।  
 रौप्ये वा कांस्यपात्रे वा म्यापयित्वा भृगोः सुतं ॥  
 संपूज्य परया भक्त्या व्रतवस्तानुत्तरेणः ।  
 अथे तेषु प्रदातव्यं पायसं दृढमयुतं ॥

( १ ) शुक्रं ज्येष्ठामुसं प्राप्य चपयव्रतं भोजनं इति पुस्तकात्कार पाठः ।

( २ ) कारयेत्सितं भस्मितं पाठोत्तर



दद्यादनेन मन्त्रेण ब्राह्मणाय विचक्षणः ।  
 भार्गवी भृगुशिश्यो वा शुक्रः क्रमविशारदः ॥  
 हत्वा षड्कृतान् दीषान् आयुरारोग्यदी भव ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्तं शुक्रव्रतं ।

—०००—

विषमस्थे ऋगसुते महाशान्तिकरं व्रतं ।  
 कर्त्तव्यं मन्त्रैश्चैत्रान्महापातकनाशनं ॥  
 ह्योतव्यं मधुमर्षिभ्यां दध्ना क्षीरैर्घृतेन च ।  
 इति भविष्योत्तरोक्ता महाशान्तिः ।

—

अथ शनिव्रतं ।

—००—

भविष्य पुराणात् ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

कदाचिदाश्रमपदं पिप्पलादस्य नारदः ।  
 जगाम कामचारेण पर्यटन्नवनीतलं ॥  
 तमातिथेयः श्रेयोऽर्थी पिप्पलादीऽथ नारदं ।  
 विह्वितायां सपर्यायां योगज्ञन्तमथाब्रवीत्(१) ॥  
 मुने वने चिरंकालमालम्ब्य स्थितवानहं ।  
 अश्वत्थवृक्षमक्षीणच्छायमायतसत्फलं ॥

(१) पर्यायागतमब्रवीदिति पाठान्तर ।

क्व गती मां निधायैह मदीयौ पितरौ मुने ।  
 तं प्राह नारदः पूर्वं सर्वलोकाग्निः शनिः(१) ॥  
 पीडयामास वसुधां सर्वेषामसुधारिणां(२) ।  
 रोगांशकार देहेषु गेहेषु धनसंक्षयं ॥  
 तदा पुण्यान्यरण्यानि परिभ्रम्य फलादिकं ।  
 आदाय कायपीषाय सायमायाति ते पिता ॥  
 क्रीवभावं पुरस्कृत्य शनेर्दुर्भिक्षागित्तं ।  
 स्त्वां विहाय सचापक्वगतयेतस्ततः क्विवत् ॥  
 एवमुक्तः शिशुक्रीधात् प्रज्वलन्निव पावकः ।  
 आलीक्य गगनाद्भूमौ पातयामास वै शनिं ॥  
 यतमानी गिरेः शृङ्गे लग्नः खञ्जो बभूव ह ।  
 धरण्यां पतितं दृष्ट्वा भास्करात्मजमातुरं ॥  
 ननर्त्त भंजमृत्क्षिप्य नारदो हृष्टमानसः ।  
 हर्षाद्देवानशाह्वय दर्शयामास तं शनिं ॥  
 अथ देवास्तदा प्राप्ता ब्रह्मरुद्रेन्द्रपावकाः ।  
 गनिले मान्वयामासुः क्रोधमुग्धं मुनिञ्च तं ॥  
 स्वस्ति तेऽस्त, महाभाग पिप्पलाद महासुने ।  
 भद्रन्तेऽत कृतं नाम नारदेन महर्षिणा ॥  
 अन्वर्थयुक्तं निप्रेन्द्र जीवितं पिप्पलादनात् ।

( १ ) सर्वलोकानल शनिरिति पाठान्तरं ।

( २ ) क्रीडया पीडयामास वसुधासुधारिणामिति पाठान्तरं ।

अतस्त्वं पिप्पलादेति लोके ख्यातिं गमिष्यसि ॥  
 ये च त्वां पूजयिष्यन्ति स्नात्वा पुष्याक्षतादिभिः ।  
 गृहायमपदे रस्ये क्षिपेयुर्भक्तिभाविताः ॥  
 समजन्मान्तरं यावत् पुत्रपौत्रानुगामिनी ।  
 तेषां लक्ष्मीर्न दूरस्था भविष्यति कदाचन ॥  
 स्मरिष्यन्ति च येऽपि त्वां पिप्पलादेति नामतः ।  
 तेषां शनैश्चरुता न पीडापि भविष्यति ॥  
 क्षमस्वास्य महाभाग निर्दोषाऽग्रं ग्रहाग्रणीः ।  
 चरन् ब्रह्मर) शनैरेष शुभाशुभफलप्रदः ॥  
 हठमाध्या ग्रहाद्यैते न भवन्ति कदाचन ।  
 बलिहोमनमस्कारैः शान्ति यच्छन्ति पृजिताः ॥  
 अतोऽश्वमेध दिवसे स्नानमभ्यङ्गपूर्वकं ।  
 कार्यं देशे च विप्राय तैलमभ्यङ्गहेतवे ॥  
 यस्तु संवत्सरं यावत् प्राप्ते शनिदिने नरः(२) ।  
 तैलं ददाति विप्राणां स्वशक्त्यान्यजनस्य तु ॥  
 ततः संवत्सरस्यान्ते प्राप्ते तस्य दिने पुनः ।  
 लोहघटापि तं सौरि तैलकुम्भे विनिक्षिपेत् ॥  
 लौहे वा मृगमये वाथ कृण्वस्तयुगान्वितं ॥

( १ ) चरनं मतमिति पाठान्तरं ।

( २ ) प्रतिदिनं नर इति पुस्तकान्तरं पाठः ।

शनिरूपन्तु मत्स्यपुराणात् ।

इन्द्रनीलद्युतिः शूलो वरदो वृषवाहन (१) ।  
 वाणवाणामनधरः किरीटार्कसुतः सदा ॥  
 कृष्णगोदक्षिणायुक्तं कृष्णकम्बलगायिनं ।  
 अभ्यङ्गेन स्वयं स्नात्वा कृष्णपुष्पैश्च पूजयेत् ॥  
 धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः (२) कृगरात्रेस्तिलोदनेः (३) ।  
 पूजयित्वा सूर्य्यपुत्रं क्षमस्वेति पुनः पुनः ॥  
 कृष्णाय द्विजमुख्याय तद्भावितराय च (४) ।  
 देयः शनैश्चरी भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विज ॥  
 शत्रीद्वेषीति विषाणामितरेषां शृणुष्व यः (५) ।  
 क्रूरावलीकनवशाद्भुवनं नागयति यो यत्नो रुष्टः ।  
 तृष्टो धनकनकसुखं ददाति सोऽस्मान् शनैश्चरः पातु ॥  
 यः पुरां नष्टराज्याय नलाय परितोषितः (६) ।  
 स्वप्ने ददौ निजं (७) राज्यं स मे भौरिः प्रसोदतु ॥  
 कीर्णं नीलाञ्जनप्रख्यं मन्त्रचेष्टाप्रसारिणं ।  
 छायामार्तगडमभूतं नमस्यामि शनैश्चरं ॥

- 
- ( १ ) गृध्रवाहन इति पुस्तकालये पाठः ।  
 ( २ ) सुगन्धगन्धपुष्पैश्च इति पाठान्तरः ।  
 ( ३ ) सरकैस्तिलमोदकैश्चित् पाठान्तरः ।  
 ( ४ ) तां गः दद्याच्च कम्बलमिति पाठान्तरः ।  
 ( ५ ) इतरेषाञ्च वणानां शृणु मन्त्रे दिओक्तम इति पुस्तकालये पाठः ।  
 ( ६ ) नलाय पददौ किल इति पुस्तकालये पाठः ।  
 ( ७ ) स्वप्ने तन्मौलिजमिति पुस्तकालये पाठः ।

नमोऽर्कपुत्राय शनैश्च राय  
नीहारवर्णाञ्जनमेचकाय ।  
स्रत्वा रहस्यं तव कामदस्त्रं  
फलप्रदी मे भव सूर्यपुत्र ॥

नमोऽस्तु, प्रेतराजाय कृष्णदेहाय वै नमः(१) ।  
शनैश्चराय क्रूराय शुशुबुद्धिप्रदायिने ॥  
य एभिर्नामभिस्तौति तस्य तुष्टो ददात्यसौ ।  
तदोयन्तु भयं तस्य स्वप्नेऽपि न भविष्यति ॥  
इत्यनेन विधानेन शक्तिं दत्त्वा विसर्जयेत् ।  
एतद्व्रतन्तु ये विप्र चरिष्यन्तीह मानवाः ॥  
शनैस्तु वामरं प्राप्ते वत्सरं यावदेव तु ।  
तेषां शनैश्चरो पीडा देगेऽपि न भविष्यति ॥

भवित्याक्षरात् । कृष्ण उवाच ।

परा चैतायगे पार्श्वे नावर्षत्पाकशासनः ।  
कथञ्चिद्दुर्णयाद्राजस्तस्य राष्ट्रि समन्ततः ॥  
ततोराष्ट्रं क्षुधाविष्टं बभूवातीव दारुणं ।  
पतङ्गसृपकाकीर्णं चौरव्यालभयाकुल ॥  
तस्मिन् घाराकुले काले सपत्न्यैः सञ्जालकः ।  
कोशिकः सार्वभौमः परराष्ट्रमगाच्छनैः ॥  
मार्गं च गच्छता तेन येन केन महर्षिणा ।  
त्यक्तः स बालकखलेको दुर्भरं हि कुटुम्बिकं ॥  
तस्मिन् काले विशिषेण क्षीणे ह्यैषधिमन्त्रये ।

(१) कृष्णदेहाय नै नम इति पुस्तकालये पाठ ।

कृत्वा तन्निर्घृणं कर्म ततोऽसौ कौमिनी गतः ॥  
 सोऽपि बालः क्षुधादीनो दिग्वा वोच्च दृगा अपि ।  
 उत्थाय पिप्पलस्याधीमूलान्यत्तुं प्रचक्रमे ॥  
 कूपे जलं पपौ नित्यं तत्रैवाश्रममण्डले ।  
 कृत्वा समाश्रितो रोद्रं तेषु च शिपुनं तपः ॥  
 अथाजगाम भगवान्नारदी वेदपारगः ।  
 तं दृष्ट्वा दीनवदनं क्षुधाक्तं द्विजपोतकं ॥  
 तदासौ तस्य संस्कारं चक्री भीष्मादिव्यमनं ।  
 वेदानध्यापयामास सरहस्यपदक्रमात् ।  
 ददा च वैष्णवं मन्त्रं द्वादशाक्षरमाच्युतं ॥  
 वेदाभ्यासरतस्यास्य विष्णुध्यानपरस्य च ।  
 प्रत्यहं पिप्पलादस्य विष्णुः प्रव्यक्ततां ययौ ॥  
 वेनतेयममारुहः नानीत्यतदलच्छविः ।  
 चतुर्भुजः पीतवामाः शङ्खचक्रगदाधरः ॥  
 स उवाच तदा तृती वरं ब्रूहि यमिच्छसि ॥  
 तच्छ्रुत्वा नारदमुखं समान्नीक्य गिशस्तदा ।  
 नारदेनाप्यनुज्ञातो योगविद्यामयाप च ॥  
 दत्त्वा ज्ञानं सोपदेश योगाभ्यासञ्च निर्मलं ।  
 नागारिगमनो विष्णुस्तत्रैवान्तरधोयत ॥  
 ततोऽभवन्महाज्ञानी महर्षिः स गिशस्तदा ।  
 नारद परिप्रच्छ केनाहं पीडितो मुने ॥  
 ग्रहेण ग्रहरूपेण बालरूपोऽतिदुःखितः ॥  
 न मे पिता न मे भ्राता जीवितोऽस्म्यस्य पीडया ॥

ब्राह्मण्यं भवता इत्तं मम देवाहिजीप्तम ।  
 एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं कथयामास नारदः ॥  
 शनैश्चरेण क्रूरेण यज्ञेण त्वं हि पौडितः ।  
 पीडितश्च समप्तोऽपि देशोऽयं मन्दचारिणा ।  
 तथैव च फलं प्राप्त एष सौरिः शनैश्चरः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

एवमुक्त्वा सुराः सर्वे प्रतिजग्मुर्नथागतं ।  
 शनैश्चरोऽपि स्त्रि स्थाने यज्ञत्वेण प्रतिष्ठितः ॥  
 पिप्पलादोऽपि ब्रह्मर्षिं ब्रह्माज्ञां प्रतिपालयन् ।  
 शनैश्चरन्तु संपूज्य तुष्टाव रचिताञ्जलिः ॥  
 कोणस्थः पिङ्गलो वक्रः कृष्णो रीद्रोऽन्तकोपमः ।  
 सौरिः शनैश्चरो मन्दः प्रीयतां भे यज्ञोत्तमः ॥  
 शनैश्चरमिति स्तत्वा पिप्पलादो महामुनिः ।  
 रवेर्ज्वलन् विमानस्थो दृश्यतेऽद्यापि मानवैः ॥  
 इदं शनैश्चराख्यानं ये पठिष्यन्ति मानवाः(१) ।  
 तेषां कुरुकुलश्रेष्ठ पुनः पीडा न बाधते ॥

कृष्णायमेन घटितां यहराजमूर्त्तिं  
 लीहे निधाय कलशे तिलतैलपर्णे ।  
 यो ब्राह्मणाय रविजं प्रददाति भक्त्या  
 पीडा शनैश्चरकृता न हि बाधते तं ॥

( १ ) ये शौचान्निवृत्तः इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

इति भविष्योत्तरे शनैश्वरव्रतं ।

—००००००—

श्रीकृष्ण उवाच ।

अघातः संप्रवृत्तमि रक्षस्यं ह्येतदुत्तमं ।  
 येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिः कान्तिश्च जायते ॥  
 मूलेन सूर्यतमयं गृहीत्वा भरतर्षभ ।  
 तस्मिन्दिने पूजनीयं प्रकृत्वितयमादरात् ॥  
 शनैश्वरश्च राहुश्च केतुश्चेति क्रमानुप ।  
 होमं घृततिलैः कुर्याद्ब्रह्मनाम्ना च मन्त्रवित् ॥  
 पृथगष्टोत्तरशतमष्टात्रिंशतिरेव वा ।  
 हातव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव घृतेन तु ।  
 यथाक्रमं शमीदूर्वाकुशाश्च समिधस्तु ताः ।  
 सप्तमे चैव संप्राप्ते नक्षत्रं सूर्यसुतस्य च ।  
 यद्वास्तथाऽपि कर्त्तव्या राजन् लौहमयाः शुभाः ॥  
 लौहपात्रे स्थिताः सर्वे सोवर्णे वा कुरुदह ।  
 कृष्णवस्त्रयुगं दद्यादिलोकस्य क्रमानुप ॥  
 अत्र शनिरूपं निरन्तरव्रतोक्तं वेदितव्यं ।

राहुकेतोश्च, मत्स्यपुराणात् ।

करालवदनः खड्गचर्म्मशूलो वरप्रदः ।  
 नीलसिंहासनयुतो राहुश्च प्रशस्यते ॥  
 धूम्रा द्विबाहुवः सर्वे गदिनो विक्रानतनाः ।  
 गृध्रासनगता नित्यं केतवस्युर्ध्वरप्रदाः ॥  
 मृगनाभ्या समालेप्य धूपं कृष्णागुरुक्लशा ।



दत्त्वा नैवेद्यकं सारं ब्राह्मणाधीपपादयेत् ॥  
 शनैश्चर नमस्तुभ्यं नमस्ते राहुवे तथा ।  
 केतवेऽथ नमस्तुभ्यं सर्वं शान्तिप्रदो भव ॥  
 एवं कृते भवेद्यत्तु तन्निबोध द्विजोत्तम ॥  
 यदि भीमी रवियुतो भास्करो राहुणा सह ।  
 केतवो मूर्ध्नि तिष्ठन्ति सर्वे पीडाकारा ग्रहाः ॥  
 अनेन कृतमात्रेण सर्वे ग्राम्यन्त्युपद्रवाः ॥  
 य एवं कुरुते राजन् सदा भक्तिसमन्वितः ।  
 तस्य सानुग्रहाः सर्वे यच्छन्ति विजयं सुखं ॥  
 य एतां शृणुयाच्छ्रान्तिं ग्रहाणां पठतेऽपि वा ।  
 तस्य सानुग्रहाः सर्वे शान्तिं यच्छन्ति भूपते ॥  
 सूर्यं विभुं कुजवुधो गुरुशुक्रसीरीन्  
 हस्तादिऋक्षसहितानुदितक्रमेण ।  
 संपूज्य हेमघटितान् द्विजपुङ्गवाय  
 दत्त्वा पुमान् ग्रहगणेन न पीडयतेऽत्र ॥  
 शनैश्चरं राहुकेतून् लौहपात्रे व्यवस्थितान् ।  
 कृष्णागुरुः स्मृतो धूपो दक्षिणा चात्मशक्तितः ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्ता शनैश्चरादिशान्तिः (२) ।

— ०००(०००) —

नक्षत्रतिथियोगेन तिथीनां ग्रहयोगतः ।  
 पुनरेव प्रवक्ष्यामि व्रतानि तु यथा स्थितं ॥  
 रोहिण्याश्चाष्टमीयोगी यदा भवति मौम्यके ।

विशेषपूजा कक्षव्या पुष्पकामेन यत्नतः ॥  
 पुष्ये शुक्लचतुर्दश्यां गुरुयोगो यदा भवेत् ।  
 अथवा सोमसंयोगो विशेषात् पूज्य शङ्करम् ॥  
 पायसं घृतसंयुक्तं शिवाय विनिवेदयेत् ।  
 धूपदीपोपहारार्चैः पूर्व्ववत् पूजयेच्छिवं ॥  
 प्राशनन्तु घृतं कार्यं सर्व्वकामप्रदं व्रतम् ॥  
 आदित्यरेवतीयोगश्चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।  
 अष्टम्यां वा मघायोगो शिवं संपूज्य पूर्व्ववत् ॥  
 तिलास्तु प्राशने शस्ता आदित्यव्रतमीरितं ।  
 आरोग्यं जायते तस्य पुत्रस्युगणैः सह ॥  
 रोहिणीचन्द्रयोगश्च चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।  
 अष्टम्यां सोमसंयोगात्तदा चन्द्रव्रतं चरेत् ॥  
 प्रागुक्तेन विधानेन शिवं संपूज्य यत्नतः ।  
 दधि क्षीरन्तु नैवेद्यं प्राशनं क्षीरमेव च ।  
 कीर्त्तिमारोग्यमैश्वर्य्यं प्राप्नुयात्प्रानृतं वचः ॥  
 अश्विनीभौमसंयोगश्चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।  
 अष्टम्यां भरणीयोगस्तदा भौमव्रतं चरेत् ॥  
 संपूज्य परया भक्त्या शिवं पञ्चापचारतः ।  
 रक्तोत्पलप्राशनन्तु साम्राज्यं प्राप्नुयाच्छुभं ॥  
 रोहिणीबुधसंयोगश्चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।  
 अष्टम्यां वा समामेन बुधव्रतं समाचरेत् ॥  
 शिवः पूज्यो विधानेन महास्नानपुरःसरं ।  
 महावत्तिसमोपेत प्राशनं पायसकृतम् ॥

पुनार्थदाराश्च यशो वर्धते तस्य नान्यथा ॥  
 रेवतौगुरुसंयोगश्चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।  
 अष्टम्यां तिष्यसंयोगाद्गुरुव्रतं तदा चरेत् ॥  
 प्राशनं कपिलाज्यन्तु ब्राह्मीरससमन्वितं ।  
 वागौशत्वमवाप्नोति व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥  
 अरण्यं भार्गवयुतं चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।  
 शुक्रव्रतं तदा विद्धि पुनर्व्वस्वष्टमी यदा ॥  
 संपूज्य परमेशानं यथाविभवविस्तारैः ।  
 प्राशनं मधु, चैवान्न कर्त्तव्यं संयतात्मना ।  
 महाफलमवाप्नोति व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥  
 भरणीशनियोगस्तु चतुर्दश्यां यदा भवेत् ।  
 आर्द्रायोगस्तथाष्टम्यां तदा शनिव्रतं चरेत् ॥  
 शिवं संपूज्य विधिवत् प्राशनं मस्यमेव च ।  
 शनिरेकादशस्थो हि फलं यच्छति शोभनं ॥  
 विरुद्धं शोभते वक्ष्ये तदर्थं व्रतमाचरेत् ।  
 हेमकुप्यप्रवालश्च कम्बलन्तु क्रमेण च ॥  
 शङ्खश्च तीक्ष्णलीहश्च क्रमाद्दयत्नेन दापयेत् ।  
 यथा सम्भवते वक्ष्ये आचार्याय प्रयत्नतः ॥  
 इति कालीन्नरोक्ताणि तिथिनक्षत्रवारव्रतानि ।

—000—

इन्द्र उवाच ।

स्वल्पेनैव तु द्रव्येण महापुण्यं यथा भवेत् ।  
 तदहं श्रोतुमिच्छामि प्रहयागं सुरेश्वर ॥

ब्रह्मीवाच ।

शृणु वक्ष्ये प्रब्रूयामि यथा त्वं परिपृच्छसि ।  
 अल्पक्लेशाश्महापुण्यं यद्दर्शनं तिथियौगिकं ॥  
 भृगुपौष्पाष्टमीयोगं शिवयोगेषु चोत्तमं ।  
 मृदुवर्गवसो भाग्यं भद्रया भृगुवासरे ॥  
 दैवयोगाद्यदा षष्ठी पुण्यर्क्षरविवासरे ।  
 स्कन्दयागस्तदा कार्यः सर्वकामप्रसाधकः ॥  
 वारे चैव यदा सूर्यो सप्तमी विजया मता ।  
 तदा तु श्रीभनो योगो भवेत् सर्वगुणावहः ॥  
 शशिरिक्तासु संयोग आर्द्रं च स्य सुरेश्वरः ।  
 नवम्यां मङ्गली योगो भानुभूतदिनं यदा ।  
 अष्टम्यां चाथ चन्द्रो हि अश्वनेन सुखावहः ॥  
 अहिब्रह्मि कुजाहे तु गणनाथस्य चाहनि ॥  
 पुनर्वसो गुरोर्वीरो द्वादश्यां अश्वनेन च ।  
 सोमशुभं तदा यागं विष्णोः सर्वार्थमाधकं ॥  
 द्वितीयायां यदा सौम्ये कृत्तिकर्चं भवेत् क्वचित् ।  
 यज्ञयागस्तदा कार्यः सर्वशान्तिप्रदायकः ॥  
 स्वात्यां शनिचतुर्थी च उमायागे वरा स्मृता ॥  
 उत्तरासु च पूर्व्यासु भानुपर्णाष्टमीषु च ।  
 यज्ञशान्त्यादिकं कृत्वा सर्वान कामानवाप्नुयात् ।  
 गुरोरेकादशीपुष्ये रोहिण्यां वा शनैश्चरे ।  
 सप्तमीभाग्यकामाय यागो रौद्रविनायकः ॥  
 पूर्णिमासु च सर्व्यासु अष्टमीद्वादशीषु च ।

चतुर्दश्यां तृतीयासु ग्रहर्षेषु शुभेषु च ।  
 सर्वेषां सम्भवेद्यागो भक्तिपूर्वी महासुने ॥  
 मन्त्रसाधननिष्ठायू रुद्रयागादवाप्यते ॥  
 श्रीमेषाज्ञानमायुष्यममायागान्महासुने ।  
 योगज्ञानं यशः सिद्धिं महादेवादवाप्नुयात् ॥  
 आरोग्यं सुव्रतीयत्वं भास्करात् प्राप्यते भुवं ।  
 गतिमिष्टां यथाकामं प्रयच्छति त्रिविक्रमः ॥  
 विज्ञानं सम्भवेत्तस्य यस्तु पश्येद्दिनायकं ॥  
 विगतारिर्भवेत् षड्रां दृष्ट्वा स्कन्दन्तु तत्क्षणात् ।  
 मातृयागान्महामिद्धिः सर्वेषामपि जायते ।  
 भवेत्स धनवान् पुंसां प्रथमाहे हुताशनात् ॥  
 स्वर्गापवर्गममिद्धिर्दुर्गायागात् प्रजायते ।  
 मायाद्यैर्मङ्गलाद्यैश्च ज्येष्ठायां ब्रह्मवित्तमैः ॥  
 ईशाद्यैः कालिकाद्यास्तु यष्टव्या विधिना सुनेः ॥  
 इत्याद्यै देवीपुराणे ग्रहतिथ्यर्चयागमाहात्म्यकीर्त्तनम् ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-  
 सकलविद्याविगारदयोहेमाद्रिविरचिते-  
 चतुर्वेगचिन्तामणौ व्रतखण्डे  
 वारव्रतानि ।

## अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथ नक्षत्रतानि ।

मनीषी हेमाद्रिर्नयविनयसम्पत्तिभवनं  
द्विजम्ना सन्मार्गं प्रथितपदसञ्चारचतुरः ।  
त्रिलोकोलीकानामविकलफलत्रैणिरचना  
विचित्रं नक्षत्रव्रतगणमिदानीं वितनुते ॥

पुष्कर उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि काम्यं कर्म तवानघ ।  
उपोषितौ मदा पुणि यजमानपुरोहितौ ।  
अश्विन्यृक्षे शुभे खानं कुर्यातां तन्निबोधत ॥  
अकीलभूमौ हो कुम्भौ मधूककुसुमान्वितौ ।  
अश्वगन्धयुतौ कृत्वा स्याध्यावद्य सदा समौ ॥  
ततः संपूजयेद्दिहात्नामन्यौ शशिनन्तथा ।  
अग्निनीं वरुणश्चैव शक्तिवासास्तथा हरिं(१) ।  
गन्धमाल्यनमस्कारैर्दीपधूपान्नसम्पदा ॥  
ततोऽश्वमिथुनं कार्यं सर्व्वेषुधियुतं मृदा ।  
प्रणतेन ततो मृक्षं नासत्याभ्यां निवेदयेत् ॥  
धूपमष्टाङ्गकं दद्याद्देवानाम्नु द्विजोत्तम ॥  
अश्वलोम तथाश्वत्थफलमूले च वा मदा ।

( १ ) शुक्रवामाक्षरार्थमिति पाठान्तरं ।

एकत्र निश्चृतं कृत्वा मणिर्हार्थ्यस्तु शोभनः ॥  
 फलं दधत्वाश्विनमेतदेव  
 स्नानं प्रकुर्वन् प्रयतो मनुष्यः ।  
 अश्वानवाप्नोति निरस्तसङ्घान्  
 कुलीङ्गवान् वीर्यबलोपपन्नान् ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं (१) अश्विनीस्नानं ।

— ००० —

ब्रह्मोवाच ।

इत्येते कथिताः कृष्ण तिथियोगा मया तव ।  
 नक्षत्रदेवताः सर्वाः नक्षत्रेषु व्यवस्थिताः ॥  
 इष्टान् कामान् प्रयच्छन्ति यथास्थानं सुरेश्वर ।  
 चन्द्रमा यत्र नक्षत्रे यदा समधितिष्ठति ।  
 उक्तस्तु देवयज्ञस्तु तदा स सफलो भवेत् ॥  
 देवताश्च प्रवक्ष्यामि नक्षत्राणां यथातथं ।  
 नक्षत्राणि च सर्वाणि यज्ञश्चैव पृथक् पृथक् ॥  
 अश्विन्यामाश्विनाविष्ट्वा दीर्घायुर्जायते नरः ।  
 व्याधिभिर्मुच्यते क्षिप्रं योऽत्यर्थं व्याधिपौडितः ॥  
 भरण्यां यमराडिष्टः कुसुमैरसितैः शुभैः ।  
 तथा गन्धादिभिः शुभैरपमृत्युं विमोचयेत् ॥  
 अनलः क्षत्तिकाद्यान्तु ऋद्धिं संपूजितः परां ।  
 रक्तमाख्यादिभिर्हृद्यादष्टतद्दीपैश्च च ध्रुवं ॥  
 प्रजाः प्रजापतिः प्रीत इष्टो (२) दद्यात्पशूंस्तथा ।

(१) भविष्योत्तरोक्तमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।

(२) पशुः प्रजापतिः प्रीत इष्टमिति पाठान्तरं ।

रोहिण्यां देवशार्दूल गोजन्माह जगत्पते ॥  
 मृगशीर्षे तथा सोमं जातिमारोग्यमेव च ॥  
 आर्द्रायान्तु शिवं पूज्य पशून् विजयमेव च ।  
 सितैः पद्मादिभिर्हिव्यैर्हैवत्वं पयसा च वै ।  
 पुत्रान् पुनर्वसौ दद्याच्चरुणा तर्पिता दितिः ॥  
 तिथे हृहस्पतिर्बुध्निं विपुलं सुखमेव तु ।  
 भोगान् गन्धादिभिर्नागा अस्त्रेषायां प्रपूजिताः ॥  
 तर्पिताश्च प्रयच्छन्ति भक्ष्याद्यैर्मधुरैः शुभैः ।  
 मघासु पितरः पुष्टिं वृत्तपायसतपिताः ॥  
 पूर्व्यायां विजयं दद्याद्भगो देवः सुतर्पितः ॥  
 भक्त्या प्रपूजितो दद्यादुत्तरायां तथार्थ्यमा ।  
 भर्तारमोषितं नार्याः पुंसस्य वरयोषितं ॥  
 नीरोगत्वं तथायुष्यं सम्पदं चारुपतां ।  
 पुष्यवस्त्रार्चितो हस्ते दद्यात्तेजोनिधिस्तथा ॥  
 चित्रासु पूजितस्त्वष्टा दद्यादारोग्यमेव च(१) ।  
 स्वात्यां संपूजितो वायुः पुत्रानिष्टान् प्रजच्छति(२) ॥  
 इन्द्रास्नी तु विशाखायां पीतरक्षैः प्रपूज्य च ।  
 धनं राज्यञ्च सन्धेह तेजस्वी निवमेत्सदा ॥  
 रक्षैर्मित्रमनूराधास्त्वेवं संपूज्य भक्तितः ।  
 प्रियो जनानां सर्वेषां चिरञ्जीवति सर्वदा ॥  
 ज्येष्ठायां पूर्व्ववस्त्रिभिरुपुष्टिमवाप्नुयान् ।

( १ ) राष्यं मिवश्च चित्रायां मि मयमं प्रयच्छतीति पाठान्तरं ।

( २ ) इष्टस्त्वष्टार्चित पीतः स्वात्या वायुर्ब्रह्म परमिति पुस्तकान्तरे पाठः ।



गुणेः सर्वेस्तु संपूर्णः कर्मणा वचनेन च ।  
 मूले निर्द्वैतिमिद्धा च भक्षेस्तु पल्लादिभिः ।  
 पूर्व्वयत् फलमाप्नोति स्वस्थाने च भुवो भवेत् ॥  
 अप इद्धा जलैरेतेर्दुत्वा तत्रैव पूर्व्ववत् ।  
 सन्तापान्मुच्यते क्षिप्रं शारीरात्मानसात्तथा ॥  
 प्राषाढासु तथाविश्वविरिञ्चुरतुरयोगतः ।  
 संपूज्य त्रियमाप्नोति परं विजयमेव तु(१) ॥  
 अत्रणे पूजितो विष्णुः सर्व्वान् कामान् प्रयच्छति(२) ।  
 धनिष्ठासु वसूनिद्धा न भयं प्राप्नुयात् क्वचित् ॥  
 महतोऽपि भयात्तीर्णो गन्धपुष्पादिभिः शुभैः(३) ।  
 वरुणं शतभिषास्त्र्यं व्याधिभिर्मुच्यते नरः ॥  
 अजम्भाद्रपदायान्तु शङ्खस्फटिकसन्निभं ।  
 संपूज्य मुक्तिमाप्नोति नात्र कार्य्या विचारणा ॥  
 उत्तरायामह्विरध्वं परां शान्तिमवाप्नुयात् ॥  
 रेतव्यां पूजितः पूषा ददाति विविधान् पशून् ॥  
 सितैः पुष्यैस्तथा दीपैर्धूपैर्विजयवर्द्धनैः ॥  
 य एते वै समाख्याता यज्ञाः संचेपतो मया ।  
 नक्षत्रदेवतानां हि साधकानां हिताय वै ।  
 तस्माद्विज्ञानुसारेण भवन्ति फलदायकाः ॥  
 गन्तुमिच्छेद्दुयदान्यत्र क्रियापारम्भ एव च ।

(१) विश्वासं परमं कृत्वा, सर्व्वमाप्नोति मानव इति पाठान्तरं ।

(२) दीपैर्धूपैश्च भक्तित इति पाठान्तरं ।

(३) रत्नैश्च कुटुम्बैः श्रुतैरिति पाठान्तरं ।

नक्षत्रदेवतायज्ञं कृत्वा तं सर्वमाचरेत् ॥  
 एवं कृते हि तत्सर्वं याचाफलमवाप्नुयात् ।  
 क्रियाफलान्तु संपूर्णमित्युक्तं भागुना स्वयं ॥  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तो नक्षत्रपूजाविधिः ।

—000—

श्रीराम उवाच ।

अम्ब्यं देवमवाप्नोति शत्रुनाशमथापि वा ।  
 स्वेच्छया कर्मणा केन सदा मनुजपुङ्गव ॥  
 पूजयेद्वासुदेवन्तु कुङ्कुमेन सुगन्धिना ।  
 श्वेतैश्च कुसुमैश्चैर्घृणं दद्याच्च गुग्गुलं ॥  
 घृतेन दीपं दद्याच्च रत्नवस्त्रं तथैव च ।  
 निवेदनीयं देवाय तथा सर्वं निवेदयेत् ॥  
 हीतव्यञ्च समृद्धेऽग्नौ तथैव च सुरर्षभ ।  
 आयुधानि च देयानि ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणा ॥  
 क्लृप्तदम्ब्यं रिपुनाशकः रि  
 कार्ख्यं सदा शत्रुगणप्रमाधि ।  
 क्लृप्तदम्ब्यं रिपुनाशमाद्य  
 प्राप्नोति मर्त्या न हि संशयोऽत्र ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं शत्रुनाशनव्रतम् ।

—000—

श्रीराम उवाच ।

कर्माणि श्रोतुमिच्छामि काम्यानि गृह्णामहं ।  
 स्वराः सर्वत्र धर्मत्रयादीमचतुष्पात्मज ।

सुप्कर उवाच ।

कृतोपवासो याम्यर्चं सोपवासस्य भागव ।  
 पुरोधः स्वपनं कुर्यात् कृत्तिकासु यथाविधि ॥  
 प्रकीर्णमूलैः कलशैर्मृन्मयैरथ काञ्चनैः ।  
 पूर्णैः सर्व्वैषधिगणैस्तथा तीर्थोदकैः शुभैः ॥  
 अग्न्यश्वत्थशिरीषाणां न्यषोधानां फलैस्तथा ।  
 पात्रपूर्णैस्तथा युक्तैस्त्रिलैः कृत्तैर्द्विजोत्तम ॥  
 रक्तमाल्येन सूत्रेण बद्धकण्ठैस्तथैव च ।  
 आग्नेय्याग्रामुखः स्नाप्यो नीलवासा द्विजोत्तमः ॥  
 बद्धिं कुमारं शशिनं खड्गं बद्धमिव च ।  
 पूजयेत् कृत्तिकास्त्रेण गन्धमाळावसम्पदा ।  
 पीतरक्तैस्तथा वस्त्रैर्घृतदीपैस्तथैव च ।  
 दध्ना गव्येन लाजाभिरम्बिमन्त्रेण वाप्यथ ॥  
 कथरापूपिकाभिश्च अपूपैश्च पृथग्विधैः ।  
 देवतानां यद्योक्तानां प्रियङ्गुं जुह्यात्ततः ॥  
 गर्हभाश्वमयूराणां स्त्रीमानि मनुजोत्तम ।  
 धारयेद्दक्षिणे सम्यक् शक्या कनकमिव च ।  
 श्वेतवासास्ततः पश्चात्पूजयेत्तदधुसूदनं ।  
 कर्मतत्सततं कृत्वा गच्छेद्ब्रह्मेः पुरं सदा ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं कृत्तिकास्नानं ।

—000—

गन्दिहवाच ।

रोहिणी जपनक्षत्रं साक्षाद्देवस्य चक्षिणः

ताम्ररुक्ममयीं कृत्वा पञ्चरत्नेन संयुतां ॥  
 स्यापयेदस्त्रयुग्मेन पुष्पधूपैः (१) प्रपूजयेत् ।  
 कालोद्भवफलैर्ह्रियैर्नैवेद्यैर्ह्रितपाचितैः ॥  
 द्वितीयेऽङ्गि समाप्यैतद्वाङ्गणायोपपादयेत् ।  
 त्रीत्रियाय सुरुपाय भिक्षुकाय कुटुम्बिने ॥  
 स्वयं नक्तो न भुञ्जीत रोहिण्या दर्शने कृते ।  
 एवं विधं व्रतं दिव्यं दिवि देवाश्च चक्रिरे ॥  
 वर्षे वर्षे समायाते देवाद्याद्यापि कुर्वते ।  
 यं यद्दाममभिधायन् तं तमाप्नोत्यसंशयम् ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं रोहिणीव्रतं ।

—000—

पुष्कर उवाच ।

उपोषितो कृत्स्निकासु यजमानपुरोहितौ ।  
 रोहिण्यां जपनं कुर्याद्यजमानस्य भार्गव ॥  
 क्षीरत्रयप्ररोहाज्यसितमाख्यविभूषितान् ।  
 प्रियङ्गुचन्दनोपेतान् पञ्च कुम्भान् प्रकल्पयेत् ॥  
 प्राङ्मुखो त्रीहिराशिस्यं कुम्भे स्तैरभिषेचयेत् ।  
 विष्णुं शशाङ्कं वरुणं रोहिणींश्च प्रजापतिं ॥  
 पूजयेत्संयतः स्यान्वी गन्धमाब्जानुलेपनैः ।  
 धूपः प्रजापतेर्ह्रियस्तथा विष्णुशशाङ्कयोः ॥

(१) त्र्यम्बूपैरिति पाठान्तरं ।

पञ्च पिष्टवृषान् दिव्यान् धूपञ्च विनिवेदयेत् ।  
 पूजाभिधाय होमन्तु देवतानाञ्च कारयेत् ।  
 घृतेन सर्व्वं वीजैश्च शुक्लवासा जितेन्द्रियः ।  
 दक्षिणां सुरवे देया कांस्यं गौर्वाससौ शुभे ॥  
 सुवर्णञ्च महाभाग विप्राणामथ भक्तितः ।  
 पांशुकर्हं मसंयुक्तमध्वलीम शर्फं तथा ॥  
 शृङ्गञ्च त्रिवृतं कृत्वा मणिधार्थ्यः शुभप्रदः ।  
 अलं क्रियार्थं तद्दिदं सदैव  
 ज्ञानन्तु कुर्व्वन् परुषोऽथवा स्त्री ।  
 पुत्रानवाप्नोति तथेप्सिताञ्च  
 पुष्टिं तथायां विपुलाञ्च कीर्त्तिं ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं रोहिणीस्नानं ।

— ००० —

मनुस्मृत्या च ।

गृहदोषोपशृष्टस्य राज्ञो राजसुतस्य च ।  
 महिष्यो वा सृतापत्या द्विजादिष्वथ वा जने ।  
 विपद्यते फलं यत्र सुप्रयत्नकृतोद्यमे ।  
 गजाश्वगोवृषाणाञ्च यत्र हानिः प्रजायते ॥  
 यत्र भीमान्तरीक्षे च उपसर्गः प्रदृश्यते ।  
 तत्र कुर्यात्सहाभागं यागं पुष्याभिषेचनं ॥  
 मूलं राजा समाख्यातस्तस्य शाखा प्रजादिकं ।  
 उपसंहारसंस्तारे शुभे वाप्यशुभेऽपि वा ॥

यत्नः कार्यः सदा वक्त मूले शाखादिकं भवेत् ।  
 मूले विमष्टे नश्यन्ति शाखाद्याः फलसञ्चयाः ॥  
 तदर्थं मूलरक्षायां यतितव्यं महासुने ।  
 धर्मार्थकाममोक्षाणां स हि हेतुः प्रपद्यते ॥  
 ब्रह्मणा या पुरा शान्तिर्महेन्द्रार्थं ब्रह्मस्यते ।  
 व्याख्याता कीर्त्तयिष्यामि तान्ते शौनक शृणुथ ॥  
 पुण्यस्नानं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।  
 सत्यातशनं दिव्यं यच्च कुत्राप्यधारय ॥  
 वस्त्रीकतुषकेशास्यिकटुकण्टकिवर्जिते ।  
 शिशुङ्गेष्मातदीर्गन्धिविगतं च महीतले ।  
 कङ्कापोतश्लोत्रलूककाकपरिवर्जिते ॥  
 सुभ्रुते चम्पकाशोकवकुलास्त्रातशाहले ।  
 तरुणवज्जिवितते निरुपहतदसान्विते ।  
 समधुरवृक्षप्रये(१) फलपल्लवगोभिते ।  
 पक्षिगावगणाकीर्णं लकवाकूपगोभिते ।  
 जीवजीवकहारीतशनपत्रशुक्लाकुले ॥  
 चकोरपाससंयुक्ते चक्रवाकोपगोभिते ।  
 शिखिपारावताश्रीककोककोकिलनादिते ॥  
 मधुपुष्पासवसुरामधूककुसुमाकुले ।  
 यागं कुर्याद्वनोद्देशे चनेऽरस्येऽथवा शुभे ॥  
 हिमाद्रावुज्जगन्ते वा सङ्घे विन्ध्याचलेऽपि वा ।  
 नदीनां पुत्रिणे वापि सङ्गमे वा मनोरमे ॥

(१) समधुरवृक्षप्रये इति पाठाकरं ।

गीरीचनलक्तककशङ्खकुङ्कुमशोभिते ।  
 समुद्रतीरे कुर्याच्च आश्रमे वा गृहेऽपि वा ॥  
 पूर्वीदक्षिणभूभागे प्रदक्षिणपथे जले ।  
 श्वाविमूषिकविरते कर्कटावासवर्जिते ॥  
 वर्षागन्धरभोपिता घना स्निग्धा समा मही ।  
 या कृष्टवीजरोहाद्यैर्वृक्षैः सुपरीक्षिता ॥  
 गत्वा तां समुद्गर्तेऽथ कौर्वीर्यामधिवासयेत् ।  
 बलिपुष्पापहारश्च मन्त्रयुक्तं निवेदयेत् ॥  
 आगच्छन्तु सुराः सर्व्वे येऽत्र पूजाभिलासिनः ।  
 दिगो नगा हिजायैव ये चान्ये अंशभागिनः ॥  
 आवाह्ये वन्ततः सर्व्वानेवं ब्रूयात्पुरोहितः ।  
 स्वः पूजां प्राप्य यातारो दत्त्वा शान्तिं महोभूजे ॥  
 कृत्वा पूजां ततस्तेषां रात्रौ तस्यां व्रतौ वसेत् ।  
 स्नात्वा शुभाश्वगोवत्सदधिगर्भपदर्शनं ॥  
 पुष्पदूर्वाक्षतफललाजदर्शनमेव च ।  
 छत्रचामरशङ्खाजशितवस्त्रादिदर्शनं ।  
 लाभो वा सर्व्वकामानां पूरणाय प्रकौर्त्तितः ॥  
 फलपुष्पयुता वृक्षाः क्षीरिणः शुभदा मताः ।  
 तेषामारीहणं श्रेष्ठं प्रामादेभद्रपादिषु ॥  
 चन्द्राकशङ्खणं शस्तं पर्व्वतागोहणं शुभं ।  
 निगडं बन्धनं स्वप्नं विहिषय जयावहः ।  
 परिवर्त्सं गिरेः कुर्याच्छकं वाचावगूहति(१) ॥

(१) अथ वाचावगूहति इति पाठान्तरः ।

वेष्टयेद्यस्तु प्रासादं स्वप्ने तस्य जयो भवेत् ।  
 लभते चेप्सितं सर्वं लाभो तस्य तु वै भवेत् ॥  
 सतरोदनहीनस्त्रीगमनश्च शुभावहं(१) ।  
 स्वप्ने तु कूपपङ्केषु गर्त्तेषु तरणं शुभं ।  
 नदीषु तरणं शस्तं समुद्रतरणं तथा ।  
 निर्जित्य शत्रुसैन्यश्च जयं प्राप्नोति मानवः ॥  
 कटकाद्या अलङ्काराः पुत्रराज्यसुखप्रदाः ।  
 सुहृदश्चनवैपक्षीलाभाः स्त्रीधनदायकाः ॥  
 रुधिरारम्भः पिवेद्यस्तु तरते वा यदि क्वचित् ।  
 मांसास्थिभक्षणे लाभो लभते वा हितं फलं ॥  
 हास्यनृत्यचरोक्ताहपतनाः कलिकारकाः ॥  
 याम्ये यातानताकृष्टानयनं भयमृत्युदं ।  
 पश्चिमे यानगामित्वं तथाकूपप्रवेशनं ।  
 उत्तरे भयदः स्वप्ने रक्तमान्वाम्बरागमः ॥  
 खरोष्ट्रकपिकापोतवराहाहिनिशाचरान् ।  
 दृष्ट्वाशुभान् जयः कार्यो घातपातफलप्रदान् ॥  
 वातपित्तकफोत्थेषु यानाग्नितरणादिषु ।  
 यीक्ष्यशरहसन्तेषु प्रपादानफलप्रदाः ॥  
 श्रुतानुकोत्सर्णं दृष्टमनुभूतं विगर्हितं ।  
 न चेष्टा यदि वा दृष्टाः प्रदीपप्रथमे तथा ॥  
 मध्ये मध्यफलाः सर्वे चान्ते ग्रीष्मफलप्रदाः ।  
 गोबिसर्गश्च ये दृष्टास्ते तथा परिकीर्तिताः ॥

(१) चन्द्रमामन इति मिति पुस्तकालये पाठः ।



दृष्ट्वा स्वप्नान् शुभान् यागं कुर्यात्स्विष्टन्तु कारयेत् ।  
 स्नानं देवार्चनं ह्रीमं जयं शान्तिं समारभेत् ॥  
 कृत्वा सर्वान् लभेत् वत्स ततो मण्डलमालिखेत् ।  
 चतुर्हस्तं समारभ्य यावत्तस्तशतं भवेत् ॥  
 मण्डलं तत्र कर्त्तव्यमत ऊर्ध्वं न कारयेत् ।  
 विमलं विजयं भद्रं विमानं शुभदं शिवं ॥  
 वर्षमानञ्च देवञ्च लताख्यं कामदायकं ।  
 सचक्रं स्वस्तिकाख्यञ्च इति द्वादश मण्डलाः ॥  
 सितादिहरितानाञ्च रजःकार्श्यैः सुशीमनः ॥  
 शालिघृष्टककौस्तुभरजनीहरिपत्रजाः ।  
 मणिविद्रुमरागाश्च भक्षणा अभिमन्त्रिताः ।  
 सितसर्षपधूपार्था रजः कृत्वा तु पातयेत् ॥  
 अस्तराजं न्यसेन्मन्त्री सश्वन्ति पदानि वा ।  
 सौम्यं स्थानं शुभङ्गुत्वा गोमयेनोपलेपितं ॥  
 चन्दनागुरुकूर्परचोदधूणदिवासितं ।  
 भूभागं सुमितं सिद्धं पूर्व्वं पश्चिममुत्तरं ।  
 याम्यं स्वस्तिकशक्त्यायैः सूत्रैः काण्डकमण्डितैः ।  
 पद्मपत्राष्टकं मध्ये त्रिगुण त्रिगुणीकृतं ॥  
 हाराणि समसूत्राणि कल्पाकेशरोज्जलं ।  
 पद्मं तथा च शेषाणि स्वस्तिकान्युत्पलानि च ॥  
 सव्येऽवलम्ब्य हस्ते तु रजःपतं समारभेत् ।  
 मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरुपरिष्ठादयथेच्छया ॥  
 अधोमुखाङ्गुली कृत्वा पातयेत्तु विचक्षणः ।

समा रेखा तु कर्त्तव्याविच्छिन्ना पुञ्जवर्जिता ॥  
अङ्गुष्ठपर्ववत्स्थूला समा कार्या विजानता ॥  
ससक्तं विषमं स्थूलं विच्छिन्नं कृशलाहृतं ।  
पर्यन्तमर्पितं ऋष्वमालिखेन्न कदाचन ॥  
ससक्ते कलहं विद्यादकरेखे च विग्रहं ।  
अतिस्यूले भवेद्ग्राधिर्नित्यं पीडा विमिश्रिते ॥  
विन्दुभिर्भयमाप्नोति शत्रुपक्षान्न संग्रयः ।  
कृशायाश्चार्थहानिः स्याद्विच्छिन्ने मरणं भ्रुवं ।  
वियोगो वा भवेत्तस्य इष्टद्रव्यसुतस्य च ॥  
अविन्दित्वा लिखेद्यस्तु मण्डलन्तु यथेच्छया ।  
सर्वदोषानवाप्नोति ये दोषाः पूर्वभाषिताः ॥  
चतुरस्रं चतुर्द्वारं लिखेन्मण्डलमुत्तमं ।  
मण्डलस्य प्रमाणेन पद्मं द्वारे समालिखेत् ॥  
हस्तीनं न च कर्त्तव्यं पद्मं विप्र कदाचन ।  
नाधिकं चतुरङ्गन्तु लिखितव्यं विजानता ॥  
प्रतापायुः त्रियो धर्म्मा राज्यस्तोरुपसम्पदः ।  
अवाप्यन्तेऽर्थलाभय पूर्वद्वारं च मण्डले ॥  
बुद्धिर्भेदा यमः सौख्यमारोग्यं जनयद्गम ।  
सर्वकामार्थसिद्धिश्च उत्तरद्वारं मण्डले ॥  
पुत्र आयुर्वलञ्चेव सोभाग्यं रिपुमर्द्दिनं ।  
यज्ञकर्माभिष्टुद्धिश्च पश्चिमद्वारं मण्डले ॥  
तस्य मध्ये पुनः पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकं ।  
चतुर्विंशतिस्तक विप्र राजन्त्ये त्रियतिर्माकं ।

षड्द्वयन्तु वैश्यस्य स्त्रीशूद्रैर्ह वितस्तिकं ॥  
 पद्मस्यैवानुपूर्वणं नालान्तदनुपूर्वशः ।  
 वारुणीन्दिशमाश्रित्य नालन्तु परिकल्पयेत् ॥  
 सप्तपातालगतं नालं भुवनान्तं प्रकीर्तितं ॥  
 कर्णिका तु भवेन्मे र्वर्जैर्यद्दृगणैस्थिता ।  
 केशरस्तु भवेन्नद्यः कर्णिकैः पर्वतास्थिताः  
 षष्टौ दक्षा दिशः प्रोक्ता ऋषयः पद्मसंस्थिताः ॥  
 सप्तपातालभ्रूलोको नालन्तु परिकीर्तितं ।  
 ईदृशं कल्पितं पद्मं देवदेवेन शम्भुना ॥  
 ध्वजतीरणसंयुक्तं पताकाभिरलङ्कृतं ।  
 भूर्लोकस्तु दक्षा ज्ञेया दिगात्मा शून्यगोचरः ॥  
 स्वर्लोकः कर्णिका ख्यातस्त्रैलोक्यं पद्मसंज्ञितं ।  
 कर्णिकायां न्यसेद्देवं पूजाकाले महेश्वरं ॥  
 मातरो षड्दनागाय यत्नरक्षादिवाकराः ।  
 वसवो सुनिलोकेशाः सरुद्रा भुवनाधिपाः ॥  
 कलाः काष्ठाः(१) क्षणा यामा रात्राहः ससितासिताः ।  
 पक्षा मासा ऋतुर्भागाः समा युगयुगान्तराः ।  
 कल्पान्ताश्च महाकल्पाः पद्मे चैवं समान्निखेत् ॥  
 प्रथमे मण्डले देवं शिवं विघ्नेशसंयुतं ।  
 गणनायकसंयुक्तं द्वितीये वरणे यजेत् ॥  
 सप्रहं भास्करं प्राच्यां ऐशान्यान्तु पिनाकिनं ॥  
 सौम्यास्यं केशवं रक्षेत् पयिमास्यं पितामहं ।

(१) लला क्लाठा इति पाठान्तर ।

तृतीये वरणे चैवं मेदिन्यामुपकल्पयेत् ॥  
 नानारत्नाकराकीर्णे भूयो देवान् समालिखेत् ।  
 पुरीहितो यथास्थानं नागान् यक्षान् पितॄन् सुरान् ॥  
 गन्धर्व्वाप्सरसश्चैव मुनीन् सिद्धान्निधापयेत् ।  
 ग्रहांश्च सह नक्षत्रैः सरुद्राश्चैव मातरः ॥  
 स्कन्दं विष्णुं विगाखाञ्च लीकपालान् सुरस्त्रियः ।  
 सुवर्णविविधैः कृत्वा हृद्यैर्गन्धगुणान्वितैः ॥  
 यथा संपूजयेदुविद्वान् गन्धमाल्यानुलेपनैः ।  
 भक्ष्यैरन्यैश्च विविधैः फलमूलादिभिस्तथा ॥  
 पानेश्च विविधैर्हृद्यैः सुराक्षीरासवादिभिः ।  
 त्रिगोषादिहिहिता पूजा ग्रहयज्ञे मया पुरा ॥  
 मातृणाञ्च सुराणाञ्च साप्यत्रैवोपकल्प्यते ।  
 पिशाचान् दानवान् रक्षान् मांसमद्यैः प्रपूजयेत् ॥  
 अभ्यञ्जनाञ्जनतिलैर्मींसेन पितरस्तथा ।  
 मनयः सामर्गजभिर्माल्यैस्त्रिमधुरैश्च च ॥  
 नागान्गोषेरत्नैश्च वर्णकैश्चैव पूजयेत् ।  
 धूपाद्याहुतिदानैश्च देवान् रत्नैः प्रदक्षिणैः ॥  
 गन्धर्व्वाप्सरसो गन्धैर्माल्यैः सुमनसा तथा ।  
 शेषांस्तु सर्वान् बलिभिः पुष्पगन्धैश्च पूजयेत् ॥  
 प्रतिनाम्ना पताकाय वस्त्राण्याभरणानि च ।  
 सर्वेषाञ्च प्रदेशानि सुयज्ञोपहितानि च ॥  
 दक्षिणे पश्चिमे वापि वायव्या मण्डलस्य च ।  
 ग्रहयज्ञविधानेन होमं मातृमुखोदितं ॥

कृत्वा द्रव्यैरिमेर्वक्ष्यथोल्लेखलक्षणान्वितैः ।  
 लाजाक्षतघृतं क्षौद्रं दधि क्षीरं तु सर्षपाः ॥  
 सिद्धार्थाः सुमनोगन्धा धूपश्च ससितोत्कटाः ।  
 गौरीचना तिला दर्भा मुद्गजातिफलानि च ॥  
 घृतपायससम्पूर्णान् सरावान् विनिवेदयेत् ।  
 पश्चिमायान्तु वै वेद्यां पूजायां स्नातको भवेत् ॥  
 कलशान् सुदृढान् कुर्यात् लक्षणेन वदामि ते ।  
 उत्पत्तिलक्षणं ज्ञानं कथयामि महामुने ।  
 वाचकाः कलशाद्यैव येन लोके प्रकीर्त्तिताः ॥  
 अमृते मथामाने तु सर्व्वैर्देवैः सदानवैः ।  
 मन्यानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिं ॥  
 उत्पन्नममृतं तत्र महावीर्य्यपराक्रमं ।  
 तस्य सन्धारणार्थाय कलशः परिकीर्त्तितः ॥  
 कलां कलां गृहीत्वा च देवानां विश्वकर्म्मणा ।  
 निश्चितोऽयं सुरैर्यस्मात् कलशस्तेन उच्यते ॥  
 कलशस्य मुखे ब्रह्मा श्रीवायान्तु महेश्वरः ।  
 मूले तु संस्थितो विष्णुर्मध्ये मातृगणाः स्थिताः ॥  
 शेषास्तु देवताः सर्वा वेष्टयन्ति चतुर्द्दिशं ॥  
 कुक्षौ तु सागराः सप्त सप्त ह्रीपास्तु मध्यतः ।  
 नक्षत्राणि ग्रहाःसर्व्वे तथैव कुलपर्व्विताः ॥  
 ह्रिमवान् हेमकूटश्च निषधो मेरुरेव च ।  
 रोहितो भास्ववाद्यैव सूर्य्यकान्तिश्च पर्व्वताः ॥  
 गङ्गा सरस्वती सिन्धुसुभगा यमुना नदी ।

ऐरावती शतद्रुथ तथा वैतरणी नदी ।  
 गोदावरी नर्मदा च महौ नाम महानदी ॥  
 कुरुक्षेत्रं प्रयागश्च एकहस्तं पृथूदकं ।  
 अमरेशं पुण्डरीकं गङ्गा सागर एव च ॥  
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि कलशे निवसन्ति वै ।  
 स्वाहा शान्तिश्च पुष्टिय प्रीतिर्गायन्निरेव च ॥  
 ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदस्तथैव च ।  
 अथर्ववेदसंहिताः सर्व्वे कलशसंस्थिताः ॥  
 नवैव कलशाः पुण्याः शम्भुमूर्त्तिसमुद्भवाः ।  
 गोभ्योपगोभ्यो मरुतः सुमन्दश्च तथापरः ॥  
 मनोहरः खलुभद्रः पञ्चमः परिकीर्त्तितः ।  
 विरुजस्तनदूषश्च षष्ठसप्तमकावुभौ ।  
 अष्टमस्त्विन्द्रियातीतो नवमो विजयः स्मृतः ॥  
 नवैव कलशाः ख्याता अधिदैवं निबोध मे ।  
 शृणु वत्स यथा तेषान्दिगोन्यासे व्यवस्थिताः ॥  
 नवमो यः समाख्यातो विजयो नाम नामतः ।  
 गिवस्तश्च स्थितः साक्षात्सर्व्वपापहरः शुभः ॥  
 स तु पञ्चमुखः ख्यातो लोके सर्वार्थमाधकः ।  
 पञ्चनद्यात्मको यस्मात्तेन पञ्चमुखः स्मृतः ॥  
 पश्चिमे तु मुखे सद्यो वामदेवस्तथोत्तरे ।  
 पूर्व्वे तत्पुरुषं विद्यादधोरश्चापि दक्षिणे ॥  
 ईशानः पञ्चमो मध्ये सर्व्वेषामुपरिस्थितः ।  
 एते पञ्च मुखे वत्स पापघ्ना ग्रहनायनाः ॥

सद्योजातो भवेच्छक्ती वामदेवस्तु पीतकः ।  
 रक्तस्तत्पुरुषो ज्ञेयो अघोरः कृष्ण एव च ॥  
 ईशानः पश्चिमे तेषां सर्वैर्षणैः समन्वितः ।  
 कामदः कामरूपे स्यात् ज्ञानाधारः शिवात्मकः ॥  
 क्षितीन्द्रो श्रेष्ठकलशो द्वितीयो जलसम्भवः ।  
 तृतीयः पवनस्यैव चतुर्थस्तु बुताशनः ।  
 पञ्चमी यजमानस्तु षष्ठ्याकाशसम्भवः ॥  
 सोमस्तु सप्तमः प्रोक्त षाडित्यश्च तथाष्टमः ।  
 एते चोत्पादिता दिव्याः शिवेनाधिष्ठिताः पुरा ॥  
 इन्द्रस्य मूर्त्तयश्चाष्टौ सूर्यस्य तु नव स्थिताः ।  
 क्षितीन्द्रः पूर्वतो न्यस्यः पश्चिमे जलसम्भवः ॥  
 वायव्ये वायवो न्यस्य आग्नेये अग्निःसम्भवः ।  
 नैर्ऋते यजमानस्तु ऐशान्यां कामसम्भवः ॥  
 सोम्य उत्तरतो योग्यः सौरं दक्षिणतो न्यसेत् ।  
 न्यस्यैवं कलशानान्तु पूर्व्वरूपं विचिन्तयेत् ॥  
 कलशानां मुखे ब्रह्मा घीषायां विष्णुरेव हि ।  
 मध्ये मातृगणाः सर्वे सेन्द्रा देवाश्च पद्मगाः(१) ॥  
 कुक्षौ तु सागरास्तेषां सप्तद्वीपा च मेदिनी ।  
 त्रियया चैव तथोमा च गन्धर्वा ऋषयस्तथा ।  
 पञ्चभूतास्तथा घोरान्तेषामधरतः स्थिताः ॥  
 पूर्णाः पूतेन तीयेन सितास्त्रेकान्ततोऽज्वलाः ।  
 सरित्सरः स्वातजेन ताङ्गागेन जलेन वा ।

(१) राधा देवाश्च इति पाठान्तरं ।

वापीकूपादितोयेन सामुद्रेण सुखावहाः ॥  
सर्वमङ्गलमाङ्गल्याः सर्वकिल्बिषनाशकाः ।  
अभिषेके सदा प्राच्याः कलशा ईदृशाः शुभाः ॥  
यात्राविवाहकाले वा प्रतिष्ठाशक्तकर्मणि ।  
योजनीया विशेषेण सर्वकामप्रसाधकाः ॥  
मृतापत्या तु या नारी या च वन्ध्या प्रकीर्तिता ।  
मूढगर्भा त्वगर्भा च दुर्भगा व्याधिपीडिता ।  
एताषाञ्च सदा कार्यं स्नापनं पुष्यमण्डले ॥  
सर्वरत्नौषधीगन्धफलपुष्पसमन्विताः ।  
ग्रहदोषे प्रकर्त्तव्याः कल्याणे मङ्गले तथा ॥  
ग्रहान् चारयते यस्मान्मातरो विविधास्तथा ।  
दुरितांश्च महाघोरां स्तेन ते चारकाः स्मृताः ॥  
एकैकान्तु कलां मूर्त्तैः क्षित्याद्यैश्च यथाक्रमं ।  
संहृत्य संस्थिता यस्मान्नेन ते कलशाः स्मृताः ॥  
हैमराजतताम्रा वा मृन्मया लक्षणान्विताः ।  
पञ्चाङ्गलाश्च त्रिस्तोर्णा उल्लेधाः पौड्याङ्गलाः ॥  
कलशानां प्रमाणन्तु मुखमष्टाङ्गुलम्भवेत् ।  
अष्टमूर्त्तिस्थितो योऽसौ स शिवः पद्ममन्भवः ॥  
मूर्त्तयोऽष्टौ गणास्तस्य कर्णिकायां शिवःस्थितः ।  
ये गणास्ते दत्ता नागा ये नागाः कलशाश्च ते ॥  
कलशाश्च ग्रहाः प्रोक्ता लोकपाला दिग्भ्य ते ।  
एतैः सर्वमिदं व्याप्तमात्रमभुवनं जगत् ॥  
दुराधर्ममहासत्त्वैः सर्वपापविशोधकैः ;



रत्नानि वीजपुष्पाणि फलानि कलशे क्षिपेत् ।  
 पुष्पमालाय वस्त्राकं सितचन्दनचर्चिताः ॥  
 वज्रभौतिकवैदूर्यमहापद्मेषु स्फाटिकैः ।  
 सर्वैः शुभैः फलैर्विल्वनारङ्गोडुम्बरेस्तथा ॥  
 वीजपूरकजम्बीरभ्राम्नाम्नातकदाडिमैः ।  
 धवशालिनिवारैश्च गोधूमसितशर्षपैः ॥  
 कुङ्कुमागुरुकपूरमदरीचनचन्दनैः ।  
 मांसीलाकुष्ठकपूरपत्रचण्डासुराजलं ॥  
 निर्यासाम्बुदशैलेयसर्षपदेवदलं फलं ।  
 जातीपत्रकनागाङ्गाः पृक्ता गौरी सपरिणका ॥  
 वचा रात्रिः समञ्जिष्ठा तुरष्कं मङ्गलाष्टकं ।  
 दूर्वा मोहनशृङ्गारं शतमूली शतावरी ॥  
 बाला नागबला देवी सहदेवीजयाक्षुमाः ।  
 पुष्पागोमासितापाठा गुञ्जा सुरसिकालता ॥  
 बालकं गजदन्तानु शतपुष्पा(१) पुनर्नवा ।  
 ब्राह्मी देवी शिवा रुद्रा सर्वं यन्मानि काञ्चनं ।  
 समाहृत्य शुभान्येवं कलशेषु निधापयेत् ॥  
 कल्याणं विजयं धूपं चन्द्रं दद्यात् समङ्गलं ।  
 सर्व्वरत्नमलङ्कारं रोचनाख्यन्तु पट्टकं ॥  
 ह्यङ्गुलं ह्यङ्गुलं ह्यङ्गुला षट्त्रिंशद्दङ्गुलावधि ।  
 हस्तं वा चतुरस्रं वा पद्मकं त्रिकर्गाभिकं ॥  
 वासवं पद्ममध्ये तु भगवत्स्तिविनायकैः ।

(१) शतपत्रमिति पाठान्तरं ।

श्रीश्रीहस्तसमारोहैः सर्वदेवैः शुभान्वितं ।  
 सर्वरत्नसमोपेतं पद्मं कुर्याद्द्विहस्तकं ॥  
 हस्तविस्तारमुच्छ्राये दशाङ्गुलसुशोभनं ।  
 स्नानाख्यं साष्टहस्तन्तु पञ्चं हस्तसमन्वितं ॥  
 शय्याख्यं द्विगुणं दध्याहनुष्मन्निं सपीठकं ।  
 गजसिंहपदाकीर्णं हेमरत्नविभूषितं ॥  
 सिंहाख्यं साष्टविस्तारं दण्डासनमथापि वा ।  
 समपादं ग्रहाख्यं वा हेमपत्रविभूषितं ॥  
 वज्रेन्द्रनीलवर्णाख्यं महार्घमणिचर्चितं ।  
 चतुष्पादोऽथवा कार्यस्त्रिमण्डलसमोऽपि वा ॥  
 व्याघ्रचित्रकपड्यैर्वा उपधानानि कारयेत् ।  
 अन्यैर्वा रक्षितैर्वस्त्रै र्मुदुतूलकपूरिता ॥  
 शय्या देर्घ्याथ विस्तीर्णा चतुर्हस्ता सुलक्षणा ।  
 पद्मपादाश्रपादा वा गजसिंहपदाथ वा ॥  
 दन्तिदन्तविचित्रा वा हेमरत्नदिभूषिता ।  
 शुभपत्रोर्णया कार्य्याः करिष्यो हस्तमुच्छ्रिताः ॥  
 किचराद्याथ कर्त्तव्याः सर्वशोभासमन्विताः ।  
 शुभवस्त्रसमोपेताः सकुन्ता अथ संयुक्ताः ॥  
 शिवोपलसमं स्थानं कार्य्यं वै शिरधारणं ।  
 पद्मस्वस्तिकसन्धानसुत्पलं विहगान्वितं ॥  
 पत्रवल्लीकृतापीडं हेमदन्तसुसन्धितं ।  
 वज्रपद्ममहापद्मरागवैदूर्यभूषितं ।  
 गजकुम्भसमाकारमर्षचन्द्रात्ममेव वा ।

सहस्रकिन्नरीमानं समपञ्चशतैरपि ॥  
 नृपेशं सर्वलोकानां त्रिशतम्बिशतम्बरं ।  
 तूला शय्यासया कार्या मृदुकोष्ठकपूरकैः ।  
 उपधानं विचित्रन्तु कर्त्तव्यं मृदु वर्तुलं ॥  
 वृत्तं मृत्पाटकाकारं श्रवणाख्यानसुत्तमं ।  
 यानं शय्यासनं कार्यं वृत्तपादं सुग्रीभनं ।  
 वितस्ति उच्छ्रितं कार्यं पादस्थानं सुग्रीभनं ॥  
 एवं समस्तं प्रत्यग्रं कृत्वा शय्यासनादिकं ।  
 वस्त्रालङ्कारशोभाढ्यमभिषेकं समारभेत् ॥  
 ततो वृषस्य योधस्य चर्मरोहितमक्षयं ।  
 सिंहस्याथ ढृतीयस्य व्याघ्रस्य च ततः परं ॥  
 शत्वारि तानि चर्मणि तस्यां वेद्यामुपस्तरेत् ।  
 शुभे मूहूर्त्तं सम्प्राप्ते पुण्ययुक्ते निशाकरे ॥  
 हैमं वा राजतन्ताम्ब्रं क्षीरवृक्षमयं शुभं ।  
 भद्रासनं प्रकर्त्तव्यं सार्द्धं हस्तं समुच्छ्रितं ॥  
 सपादहस्तामानन्तु राज्ञां मण्डलिकं तथा ।  
 सुसहृष्टमना राजा होमान्ते चाद्य संविशेत् ॥  
 दैवज्ञामात्यकञ्चुकिवन्दिपोरसुहृहतः ।  
 द्विजवेदध्वनिद्युतः शुभवाद्यरवान्वितः ॥  
 मृदङ्गशङ्खतुर्य्येष शब्दकौष शुभावहैः ।  
 अहृतक्षीमनिवसं नृपं कम्बलशायिनं  
 कलशैर्व्यलिपुष्पाद्यैः सर्पिःपूर्वैश्च स्थापयेत् ॥  
 अष्टषोडशविंशतिशतमष्टाधिकं भवेत् ।

कलशानां समाख्यातमधिकन्तूत्तरोत्तरं ॥  
 कल्याणेन तु मन्त्रेण मङ्गलेन जलेन वा ।  
 देवीशङ्खसवेनाथ स्नायादाज्येन वा विभो ॥  
 प्राज्यन्तेजः समुद्दिष्टं प्राज्यम्यापहरं शुभं ।  
 प्राज्यं सुराणामाहारमाज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥  
 भीमान्तरिक्षं दिव्यं वा यत्किञ्चिदनाशनं ।  
 सर्वं न्तदाज्यसंस्पर्शात् प्रणाशमुपगच्छतु ॥

कम्बलमुपनीय ततः पुष्पाम्बुपूरितैः कलशैः स्नापयेद्वाजा-  
 नमाचार्योऽनेन मन्त्रेण ।

सुरास्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः ।  
 ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च साध्याश्च समरुहणाः ॥  
 आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च निषहरो ।  
 अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥  
 कीर्तिर्लक्ष्मीर्द्युतिः श्रीश्च सिनीवासी कुङ्कुमा ।  
 दितिश्च सुरसा चैव विनता कट्टरेव च ॥  
 देवपत्न्याश्च पूर्वोक्ता देवमातर एव च ।  
 सर्वास्वामभिषिञ्चन्तु शुभाद्याप्सरसाङ्गणाः ॥  
 नक्षत्राणि मूङ्गर्ताश्च पक्षाहीराक्षसन्धयः ।  
 संवत्सरदिनेशश्च कलाःकाष्ठाः चण्डा जवाः ॥  
 सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालप्रायववाः शुभाः ।  
 वैमानिकाः सुरमन्त्रा मनवः सागरैः सह ॥  
 सरितश्च महाभागा नागाः शिंपुष्पास्तथा ।  
 वैश्वानसा महाभागा वानप्रस्थदिभिः सह ॥

हिजा वैहायसा होरा ध्रुवस्थानानि यानि च ।  
 मरीचिरत्रिपुलहःपुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥  
 भृगुः सनत्कुमारश्च सनकोऽथ सनन्दनः ॥  
 सनातनश्च दक्षश्च तथा सनकनन्दनः ॥  
 एकतश्च द्वितस्रैव त्रितो जावालिकश्चपौ ।  
 दूर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ॥  
 मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेफो विदूरथः ।  
 अर्ष्वः सखर्षकश्चैव अवनोऽत्रिः पराशरः ।  
 हैपायनो यवक्रीतो देवरातः सहानुजः ॥  
 एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः ।  
 सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदारश्च तपोधनाः ॥  
 पर्वतास्तरत्रो वल्लाः पुण्यान्यायतनानि च ।  
 प्रजापतिर्हितिस्रैव गावो विश्वस्य मातरः ॥  
 बाहूनानि च दिव्यानि सर्व्व लोकाश्चराचराः ।  
 अग्नयः पितरभ्यारो जोमूताः खन्दिगी जलं ॥  
 एते चान्ये च बहवः पुण्यसङ्कीर्त्तनाः शुभाः ।  
 तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्व्वोष्मातनिवर्हणेः ॥  
 कल्याणस्ते प्रकुर्व्वन्तु आयुरारोग्यमेव च ।  
 अथाभिषिक्तो मघवानेतैर्मुदितमानसैः ॥  
 इत्येवं शुभदैरेतैश्चैर्हिष्यैस्तथापरैः ।  
 शैवैर्नारायणे रौद्रेर्ब्रह्मण्यसमुद्रवैः ॥  
 आपोहिटा हिरण्येति शश्वेति तथैव च ।  
 सर्व्वं मङ्गलमाङ्गल्यैर्व्यंश्रं आपांसिकन्ध्रियात् ॥

शङ्खवेणुवैस्तूयै राचान्तो मङ्गलैर्नृपः ।  
 ततः सम्पूजयेद्देवान् गुरुन् विप्रान् ध्वजायुधान् ॥  
 ह्यन्नं वाद्यज्ञानगान् परिजप्तानि धारयेत् ।  
 वेदेन च जयेनेति भ्रूलङ्काराणि पार्थिवः ॥  
 द्वितीयायां ततो वेद्यां मत्वा ह्यग्राहताशनं ।  
 देवानां वदने स्थाने निमित्तानि तु लक्षयेत् ॥  
 स्वाहा रुद्राय चन्द्राम(१) विष्णवे ब्रह्मणे शिवे ।  
 ग्राजापत्ये कुमाराय विष्णुहाय विनायके ॥  
 सूर्याय यहराजाय वराहाय त्रिविक्रमे ।  
 मातृगणां वरदे मातृ चामुण्डायै स्वधेति च ॥  
 नागराजभ्रतन्ताय ततो राजा समाहरेत् ।  
 क्रमेण संस्थिते चर्मण्युपविष्टो नराधिपः ॥  
 त्र्यम्बकं त्र्यम्बकस्य खराश्वश्रुषतस्य च ।  
 तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परं ॥  
 उपविष्टे पुनर्होमन्तैर्मन्त्रैः सष्टतैस्तिलैः ।  
 कृत्वा शेषममाप्तिं स प्राञ्जलिः संस्थितो वदेत् ॥  
 यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवात् ।  
 सिद्धिन्दत्त्वा सुविपुलां पुनरागमनाय च ॥

आपोहिष्ठा इति च्च । शिरस्थवर्णा इति चतुर्भिर्चर्च । नमः  
 शश्वदे च मन्त्रो भवेत्यादिमन्त्रं स्नाप्यमान्त्रे जपेदिति शेषः ।

यदाह मन्त्रः ।

आपोहिष्ठायाश्चैव शिरस्थेति चतुर्भिर्चर्च ।

( १ ) स्वाहा रुद्राय चन्द्राय इति पुस्तकान्तरेपाठः ।

पुण्याहशङ्कनिनदैर्जपेत् स्नातो नराधिपः ।  
 घृत्वा चैवाहते वस्त्रे युगवस्त्राभिमन्त्रिते ॥  
 इति सर्वमङ्गलमाङ्गल्यैखन्दादिसिः सह धीतं कार्पासयुतं  
 विभ्रयात् ।

विष्णुधर्मोत्तरे ।

एवं स्नातो घृते दृष्ट्वा वदनं दर्पणे तथा ।  
 मङ्गलालम्बनकृत्वा धीतवासाः समाहितः ॥  
 अभ्यर्चनं ततः कुर्याद्देवादीनां पृथक् पृथक् ।  
 आयुधाभ्यर्चनकृत्वा वाहनाभ्यर्चनस्तथा ॥  
 राजचिह्नार्चनं कृत्वा ह्यलङ्कुर्यात्तनुं स्वकं ।  
 अनुलेपनमादद्यात् श्रीसूक्तेनाभिमन्त्रितं ॥  
 त्रियन्वातर्ध्रियि धेहि मन्त्रः सुमनसां लभेत् ॥  
 आयुष्यं वर्चस्यमिति मन्त्रीऽलङ्करणे स्मृतः ॥  
 ततोऽनुलिप्तसुरभिः स्त्रग्धी रुचिरभूषणः ।  
 केशवाभ्यर्चनं कृत्वा वक्रिस्थानं व्रजेदिति ॥

अथर्वपरिशिष्टे ।

पुण्याहं वाचयित्वास्य प्रारम्भं कारयेद्बुधः ।  
 तिघिनक्षत्रसंयुक्तमुङ्गसंकरणे शुभे ॥  
 उच्चैर्घोष इति त्र्य्याण्यभिमन्त्र्य पुरोहितः ।  
 सव्यं तूर्यमिनादेन ह्यभिषेके ह्यलङ्कृतः ॥  
 ततः सम्पूजयेदिति शेषः ।

अभिषेकानन्तरं धीतवासाः स्नाचान्तो देवगुरुविप्रान्

सम्पूजयेत् । ध्वजायुधादीनि तु सम्पूज्य स्वस्वमन्त्राभिमन्त्रितानि  
अपरस्मात् पुण्यस्नानाद्यथाकालं धारयेत् । दैवेनेत्यादिविजयाख्येन  
देवीमन्त्रेण शैवागमप्रसिद्धेनालङ्कारधारणं ।

ध्ववादिमन्त्रास्तु । विष्णुधर्मीक्षरे ।

—००(१)००—

राम उवाच ।

कृत्वाश्वकेतुक्करिणां पताकाखड्गचर्मणां ।

तथा दुग्धभिचापानां ब्रूहि मन्त्रास्त्रमानघ ॥

पुष्कर उवाच ।

शृणु मन्त्रान् महाभाग भगवान् यान् पराशरः ।

गालवाय पुरोवाच सर्वधर्म्मभृताम्बरः ॥

यथास्वदुग्धादयति शिवायेमां वसुध्वराम् ।

तथाच्छादय राजानं विजयारीम्यतद्वये ॥

कृत्वा मन्त्रः ।

गन्धर्वपन्नराजस्वमं माभूयाः कुलद्रुपकः ।

ब्रह्मणः सत्यवाक्सेन सीमस्य वरुचस्य च ॥

प्रभावाच्च हुताशस्य वदस्य त्वं तुरङ्गम ।

तेजसा चैवसूर्यस्य मुनीनान्तपसा तथा ।

वदस्य ब्रह्मचर्येण पवनस्य बसेन च ॥

आर त्वं राजपुत्रीऽसि कोस्तुभं च तृषिं क्षर ।

यां गतिं ब्रह्महा गच्छेत् पिच्छहा माट्टहा तथा ॥

भूम्यर्धेऽमृतवादी च चतुर्युध पराशरः ।



सूर्याचन्द्रमसौ वायुर्यावत्पश्यति दुष्कृतं ।  
 व्रजेतैताङ्गतिं क्षिप्रं तच्च पापं भवेत्तव ॥  
 निष्कृतिं यदि गच्छेन्नो युषे तस्मिन् तुरङ्गम ।  
 रिपून् विजित्य समरे सह भर्ता सुखी भव ॥

अश्वमन्दः ।

शक्रकेतो महावीर सुपर्णस्वामुपाश्रितः ।  
 पवित्रार्ह्येन ते यस्तु तथा नारायणध्वजः ॥  
 कम्पमेयोऽमृताहर्ता नागारिर्विष्णुवाहनः ।  
 आयामयो दुराधर्षो रणे देवारिसुदनः ॥  
 गरुत्मान्मारुतगतिस्वयि सन्निहितःस्थितः ।  
 साश्ववर्मायुधान् योधान् यत्रास्माकं रिपून् दह ॥

धजमन्दः ।

कुमुदैरावणः पद्मः पुष्यदम्बोऽथऽवामनः ।  
 सुप्रतीकोऽञ्जनो नील एतेऽष्टौ देवयोनयः ॥  
 तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च बलान्द्यष्टौ समाश्रिताः ।  
 भद्रो मन्दो मृदुश्चैव गजः सङ्कीर्ण एव च ॥  
 वने वंशे प्रसूतास्ते स्मर योनिं महागजः ।  
 पान्तु त्वां वसवो रुद्रा आदित्वाः समरुहणाः ।  
 भर्तारं रक्ष नागेन्द्र समयः प्रतिपाण्यतां ॥  
 अवाप्नुहि जयं युषे गमने स्वस्ति नो व्रज ।  
 त्रीस्ते सोमाद्बलं विष्णोस्तेजः सूर्याञ्जवोऽनिलात् ॥  
 स्यैर्यं भिरोऽर्ज्यं ब्रह्मादयथो देवात् पुरन्दरात् ।  
 हुष्टे रक्षन्तु नाग त्वां दिग्गश्च सहदैवतैः ।

अखिनौ सहगन्धर्वैः पान्तु त्वां पर्वताः सदा ॥

हस्तिमन्त्राः ।

हुतभुग्वसवो रुद्रा वायुः सोमो महर्षयः ।

नागकिन्नरगन्धर्वा यक्षभूतगणयज्ञाः ॥

प्रमथास्तु सहादित्विभूर्तेषो मातृभिः सह ।

शक्रः सेनापतिस्कन्दो वरुणश्चाश्रितस्वयि ।

प्रदहन्तु रिपून् सर्वान् राजा विजयमुच्छतु ॥

यानि प्रयुक्तान्यरिभिर्भीषणानि समन्ततः ।

पतन्तूपरि शत्रूणां हतानि तव तेजसा ॥

कालनेमिबधे यद्वदयहत्त्रिपुरघातने ।

हिरण्यकशिपोर्यहद्वधे सर्वासुरेषु च ।

नीलां श्वेतामिमां दृष्ट्वा नश्यन्त्याशु नृपारयः ॥

व्याधिभिर्विधिधैर्वीरैः शस्त्रैश्च युधि निर्जिताः ।

पूतना रेवतीनाम्ना कालरात्रीति पठ्यते ।

दहत्वाशु रिपून् सर्वान् पताके त्वासुपाश्रितः ॥

पताकामन्त्रः ।

असिर्विशसनः खड्गस्तौष्णधारो दुरासदः(१) ।

श्रीगर्भो विजययैव धर्मापालो नमोऽस्तु ते(२) ॥

इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा ।

नक्षत्रं कृत्तिकाख्यं त्वं गुरुदेवो महेश्वरः ॥

रोहिण्यश्च शरीरन्ते दैवतन्तु जगार्दनः ।

(१) तौष्णधर्मा दुरासद इति पुलकाशरपाठः ।

(२) अश्विनारक्षयैव इति पाठान्तरं ।

पिता पितामही देवः स त्वं पालय सर्वदां ॥

खड्गमन्त्रः ।

चर्मप्रदस्त्रं समरे चर्मसैन्योपमो ह्यसि ।

रक्ष मां रक्षणीयोऽहन्तवानघ नमोऽस्तु ते ॥

चर्ममन्त्रः ।

दुन्दुभे त्वं सपन्नानान्तथा विजयवर्द्धनः ।

यथाजीमूतघोषेण ह्वयन्ति जलचारिणः ।

तथास्तु तव शब्देन हृषींऽस्माकं मुदावह ॥

यथाजीमूतशब्देन शीणान्नासोऽभिजायते ॥

तथा च तव शब्देन अस्यन्वस्मद्दिषी रणे ॥

दुन्दुभिमन्त्रः ।

सर्वायुधमहामात्र सर्वदेवारिसूदन ।

चाप त्वं सर्वदा रक्ष साकं शरवरैः सदा ॥

चापमन्त्रः ।

द्वितीयायां वेद्याभिति पूर्वन्तावहेदित्रयं कार्यमित्युप-  
पादितं । तत्र पश्चिमवेद्यां स्नानं । दक्षिणवेद्यां ग्रहयज्ञाः ।  
इत्यन्तु ग्रहहोमापेक्षया वक्ष्यमाणद्वितीयहोमसम्बन्धितया वायव्य-  
वेदी वस्तुगत्या द्वितीयापि द्वितीयाशब्देनोच्यते । देवानां वदने  
स्थान इति खण्डकल्पोक्तविधिना कृते अग्निमुखे रुद्रादिदेव-  
ताभ्यः पूर्वपूजितमण्डलदेवताभ्यय प्रणवादिभिश्चतुर्थ्यन्तैः स्वाहा-  
युक्तैर्नामभिः प्रत्येकमष्टाविंशतिः अष्टोत्तरशतं वा घृताहुताहु-  
तीर्जयुयात् ।

तदुक्तं विश्वधर्मोत्तरे ।

—o—o—o—

तेषामेव ततो वज्रौ चतुर्थ्यन्तैः स्वनामभिः ।

ओंकारपूर्वं जुहुयाद्दष्टतं बहु पुरोहित इति ॥

निमित्तानीत्यादि होमे क्रियमाणे प्रदक्षिणयिष्यत्वमुहामदी-  
मित्वं शुभध्वनित्वमधूमत्वमित्यादीनि शुभसूचकानि निमित्तानि  
वज्रौ लयेत् ।

आह गर्भः ॥

ततः पुरोहितो वज्रावन्वारब्धे नृपे यजेत् ।

त्र्यम्बकं यजामहे यत इन्द्रं भजामहे ॥

वृष्टस्यतेः परिदीयत इदं विश्वुर्ध्विचक्रमि ।

आवायो भूपश्चिना मन्त्रैरेतैर्यथाक्रमं ॥

समित्तिलाज्यदूर्वाभिस्तथा विश्वफलैरपि ।

प्रत्येकं यतमष्टौ च होमो वा स्युर्द्वावराः ॥

आद्यर्घ्यपरिशिष्टे ।

चतुर्हीनविधानेन जुहुयाच्च पुरोहितः ।

चतुर्दिशु स्थितैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः ॥

विष्वाहारः फलाहारः पत्रसा वापि वर्त्तयेत् ।

समरात्रं वृताशी वा ततो होमं प्रयोजयेत् ॥

गव्येन पायसं कुर्यात् सोवर्णेन श्रुवेण तु ।

वेदानामादिभिर्मन्त्रैर्महाव्याहृतिपूर्वकैः ॥

शर्मवर्षगणश्चैव तद्या स्यादपराजितः ।

आयुष्याद्याभयश्चैव तद्यास्त्रस्ययनो गणः ॥

एतान् पञ्च गणान् जुत्वा वाचवेत्तु द्विजोत्तमान् ॥

शर्भवर्माद्यः सपन्न इत्यादिः ।

अपराजितः विश्वरम्य मान इत्यादिः । आयुष्याद्यः प्राणा-  
पानादीत्यादिः । अभयः खलिदात्रिशाभिभादिः । स्वस्थयनो  
सूपारेपातमित्यादिः । ततो गृह्णीतविधिना पुण्याहवाचनं ।  
ततीराजासनमिति । ततो होमानन्तरं तस्यामेव वेद्यामग्नेरुत्तर-  
भागे प्रागुक्तानङ्गहानि चर्माण्यास्तीर्थं तदुपरि राजासनं सिंहा-  
सनमाह्वयं स्थापयेत् । तस्य तर्प्योपरिक्रमेण वृषदंशादिचर्मा-  
ण्यास्तोत्र्यं राजोपवेशयेत् । उपविष्टे तु राजनि खञ्जमन्त्रैस्ताभ्य  
एव देवताभ्यः घृत्प्राप्तौस्तिलैः पुरोहितैः जुत्वा गेधस्य खिटकत्  
प्रायश्चित्तपूर्णाहुत्यन्तस्योत्तरांत्तरस्य अर्मासि कृत्वा यान्तु देवगणा  
इत्यादिमन्त्रेण प्राञ्जलिर्देवताविसर्जनं कुर्यात् ।

तदुक्तं विशुद्धचर्मात्तरे ।

— ०००(५००) —

वङ्गे रुत्तरदिग्भागे तथा प्रागुक्तचर्माणा ।

सिंहासनं न्यसेत् पृष्ठे शुभास्तरणसंयुतं ॥

ततस्तु तत्र चर्माणि प्राग्भोगाणि तु विन्यसेत् ।

वृषस्य वृषदंशस्य रुरीय पृषतस्य च ।

तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परं ॥

ध्रुवासिऽद्योरसि मन्त्रेण नृपं तच्चीपवेशयेत् ।

वृषोबलीवर्हः । वृषदंशो मार्जारः । रुर्गर्गरिमृगः । पृषत-

यितमृगः ।

दर्भपाणिर्भवेद्राजा तथैव च पुरोहितः ।

तयोर्हस्तगतावन्यो दर्भो संयत्येहिजः ॥

तयोर्नृपपुरोहितयोः पाणिगतौ दर्भवन्यो द्विजो हीमकाले  
ग्रहदग्ने संयत्येत् ।

ततः पुरोधा जुहुयाद्ब्राह्मैर्मन्त्रैः छेतं शुचिः ।

रीद्रवैष्णववायव्यशक्रसौम्यैः सवारुणैः ।

वार्हस्पत्यैस्ततः कुर्यात्तन्वमुत्तरसंज्ञकं ॥

ब्राह्मैर्भ्रजज्ञानमित्यादयः । रीद्रा अम्भरुद्रा इत्यादयः ।  
वैष्णवा विष्णोर्नृकमित्यादयः । वायव्या आवाय इत्यादयः ।  
शक्रः तातारमिन्द्र इत्यादयः । सौम्या आप्यायस्त्रेत्यादयः ।  
वरुणा इमं मे वरुण इत्यादयः । वार्हस्पत्या वृहस्पति अतीथ  
इत्यादयः ।

नृपतिस्त्वथ देवज्ञान् पुरोधसप्रवाचयेत् ।

गोभूहिरण्यरत्नैश्च अन्यानपि क्षपागतान् ॥

स्थानदेवान् पुरोदेवान् नदीकुलं चतुष्पथं ।

अभयञ्च जने देयं गोगीर्णं समाचरेत् ॥

अलङ्कृत्य यथान्याय मितौ तौ वस्तभूपितौ ।

देवन्देवोच्च विजाप्य वस्तनस्थांश्च मोचयेत् ॥

न मोचेद्राजः मन्दुशानन्तः पुरकृतागमः ।

विभवानुरूपभावेः पुरे पृजां समारभेत् ॥

सिंहासनं ममास्थाय चतुष्कोष्ठनद्यामितेः ।

दीपे रजतपात्रस्थेस्तोयाघ्राष्टनवन्दितेः ।

गीचनादि तत्रा पण्येर्षणं मङ्गलानि च ॥

ततो ज्योतिषिकान् पुरोहितञ्च गोभूहिरण्यादिभिरभ्यर्क्ष्य  
 अन्यानपि त्रिविधादीन् क्रमागतांश्च सम्पूज्य गृहदेवान् पूरो-  
 देवांश्च न दीकूलञ्च चतुष्वथञ्च पूजोपहारैरर्चयेत् । 'गोगोत्सर्गं  
 गोमिथुनमित्यर्षः' । तौ च धेनुवृषभौ खेतवर्णा वस्त्रालङ्कारादि-  
 भूषितौ । देवं महेष्वरं देवीञ्च भगवतीं प्रीत्यर्थं उत्सृजामीति  
 विज्ञाप्योत्सृजेत् । नृपशरीरे अन्तःपुरे च कृतापराधान्विहाय  
 बन्धनं मोक्षदित्वा पताकातोरणादिभिः पुरे पूजां कुर्यात् ।  
 चतुष्की रङ्गवस्त्रोरचना सभाविशेषो वा । दीपैर्नीराजित इति  
 शेषः । बन्दितं बन्धनं विशेषश्चेदतोया । ततो गोरोचनादधि-  
 दूर्वादीनि च दर्पञ्च मङ्गलानि च पश्येत् ।

आश्वर्षणपरिशिष्टे ।

प्रीक्तानि मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुतागनः ।  
 भूमिसिद्धार्थकाः सप्यिः शमी व्रीहियवौ तथा (१) ॥  
 एतानि सततं पश्यन् सृष्ट्यर्चयन्नपि ।  
 न प्राप्नोत्यापदं राजा त्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमं ॥  
 तथा सिंहासनं रुद्ध पताकां वा क्रमागतां ।  
 चामरञ्च त्रसंयुक्तं प्रतीहारविभूषितं ।  
 मत्तद्विषं चतुष्कञ्च चतुर्द्विचूपकल्पयेत् ॥  
 उपविष्टस्ततो राजा प्रजानां कारयेद्वितं ।  
 आकरा ब्राह्मणा गावस्त्रीबालजङ्घरोगिणः ॥  
 ततस्तु दर्शनं देयं ब्राह्मणानां नृपेण तु ।  
 त्रेणीप्रभृतिमुख्यानां स्त्रीजनञ्च नमस्करेत् ॥

(१) हिरण्यं सर्पिरादित्य चापोराजा तथाहम इति ह्यपि पाठः ।

आश्विनस्य प्रदशुस्ते तुष्टा जनपदा भुवि ।  
 एवं प्रजानुरज्येत पृथ्वी च वशगा भवेत् ॥  
 पुरोहितं मन्त्रिणञ्च सेनाध्यक्षं तथैव च ।  
 अश्लाध्यक्षं गवाध्यक्षं गोष्ठागारपतिं तथा ॥  
 भाण्डागारपतिं वैशं देवज्ञञ्च यथाक्रमं ।  
 यथाहर्षेण तु योगेन सर्वान् संपूजयेत्पुनः ॥  
 दूर्वासिद्धार्थकान् सर्पिः शमीर्वीरिहयवौ तथा ।  
 शक्तानि चैव पुण्याणि मूर्ध्नि दद्यात् पुरोहितः ॥  
 अथर्वविद्वितो ऋषेः विधिः पुण्याभिषेचने ।  
 राजा ज्ञाती मर्हति भुङ्क्ते शकलोकञ्च गच्छति ॥  
 देवीपुराणे ।

एवं पुण्ये अवाप्नोति कर्ता राज्यायुमम्पदः ।  
 विनापि चार्धफलदं पुण्यं पुण्याभिषेचनं ॥  
 राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु धूमकेतोश्च दर्शने ।  
 ग्रहोपमर्हने चैव पुण्यस्नानं समाचरेत् ॥  
 नास्ति स्त्रीके स उत्पातो यो ज्ञानेन न शास्यति ।  
 मङ्गलञ्चःपरं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते ॥  
 आधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्माभिकाङ्क्षिणः ।  
 तत्पूर्वमभिषेके च विधिरेव प्रशस्यते ॥  
 देवेन ब्रह्मणे दत्तं तेनाप्यशनसे पुनः ।  
 उशनसो गुरोः प्राप्तं ततो देवमभाङ्गतं ॥  
 महेन्द्रार्थमुवाचेदं ब्रह्मकीर्तिर्ब्रह्मस्यतिः ।  
 स्नानमायुःप्रजावृद्धिसौभाग्यकरसुप्तमं ॥



अनेनैव च तीयेन हस्त्यर्क्षं स्नापयेत्पुः ।  
 तन्नामयविनिर्मुक्तं परां वृद्धिमवाप्नुयात् ॥  
 प्रतिसंवत्सरं कार्यमभिषेकस्तु पार्थिव ।  
 मण्डलौकनरेन्द्राणां सामन्ताधिपतेरपि ॥  
 सामन्तानां सदा कार्यं विघ्नेश्वरमर्खं शुभं ।  
 स्त्रियो लक्षणयुक्ताया यस्या न भवने सुखं ।  
 तस्येदङ्गारयेत् स्नानं सर्वकामप्रसिद्धिदं ॥

इति पुष्यस्नानविधिः ।

उदगयनं आपूर्यमाणपक्षस्यैकरात्रमवरार्द्धमुपोष्य तिथिण  
 पुष्टिकामः स्यात्सीपाकं अपयित्वा महाराजमिष्टा तेन सर्पिषता  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा पुष्यार्धेण सिद्धिं वाचयेत् । एवमपरापर-  
 स्नात्तिथ्याद्द्वौ द्वितीये त्रीस्तृतीये एवं संवत्सरमभ्युच्चयेन महान्त-  
 स्म्योषं पुष्णाति आदित एवोपवासः । अवरार्द्धं अवरं । अवरता-  
 चैकरात्रोपवासस्यापूतस्य पुंसीबह्वपवासपक्षापि क्षया महाराजः  
 कुवेरः । तेन हुतशिष्टेन चरुणा पुष्यार्धेण सिद्धिं वाचयेत् पुष्टिः  
 सिद्धिरस्त्विति वाचयेत् । एवं पूर्व्ववच्चरुणा महाराजेष्टिब्राह्मण-  
 भोजनादि कार्यं । द्वौ द्वितीये द्वौ ब्राह्मणौ द्वितीये पुष्ये भोज-  
 येदित्यर्थः । एवं संवत्सरमभ्युच्चयेन पूर्व्ववत्तृतीयं चतुर्थं  
 तिथेषूत्तरीत्तरवृद्ध्या ब्राह्मणा भोजनीया इत्यर्थः । आदित  
 एव प्रथमपुष्ये पूर्व्वेष्टुत्तरे चेत्यर्थः ।

इत्यापस्तम्बीक्तं पुष्यव्रतं ।

दारुभ उवाच ।

स्त्रीणां धर्मं द्विजत्रैश्च उपवाससमुद्भवं ।

कथयस्व यथातत्त्वमुपवासविधिष्वयं ॥  
 कुमार्थ्याः स्वगृहस्थाया विधवायाश्च सत्तम ।  
 धर्मं प्रब्रूह्यशेषेण भगवन् प्रीतिकारकं ॥

पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतामखिलं ब्रह्मन् यदेतदनुष्टुप्सि ।  
 उपकाराय च स्त्रीणां त्रिषु लोकेषु विश्रुतं ॥  
 प्रश्रमेतं पुरा देवी शैलराजसुता पतिं ।  
 पप्रच्छ शङ्करं ब्रह्मन् कैलासशिखरस्थितं ॥

देव्युवाच ।

कुमारीभिश्च देवेश गृहस्थाभिश्च केशवः ।  
 विधवाभिस्तथा स्त्रीभिः कथमारारुध्यते वद ॥

ईश्वर उवाच ।

साधु साधु त्वया पृष्टमेतन्नारायणाश्रयं ।  
 उपवासादियत् कर्म श्रूयतामस्य यो विधिः ॥  
 यज्ञं परिसमासाद्य नारीश्च सुश्रमेधते ।  
 दुःशीलेऽपि हि कामार्थी नारी प्राप्नोति भर्त्सरि ॥  
 अनाधारा जगद्यथं सर्व्वं लोकेश्वरं हरिं ।  
 कथमाप्नोति चेश्वरी सर्व्वं लोकगुणान्वितं ॥  
 सुकलत्रयुतमस्माद्भूतमश्नुततुष्टिदं ।  
 कर्त्तव्यं लक्षणं तस्य श्रूयतां वरवर्ष्मिनि ॥  
 यज्ञोर्त्वा सर्व्वं नारीणां श्रेयः प्राप्नोत्यमंगयं ।  
 ऐहिकश्च सुखं प्राप्य मृता स्वर्गसुखान्यपि ॥  
 भगुन्प्राप्य स्वपिच्छती माद्यतश्च कुमारिका ।

पूजयेत्तु जयत्रायं भक्त्या पापहरं हरिं ॥  
 भिक्षूत्तरेष्वथर्षेषु पतिकामा कुमारिका ।  
 माधवायेति वै नाम जपेन्नित्यमतन्द्रिता ॥  
 प्रियङ्गुणा रक्तपुष्पैर्मधुकैः कुसुमैस्तथा ।  
 समभ्यर्च्यार्घ्येन दद्यात् कुङ्कुमेनानुलेपनं ॥  
 सर्वौषधिभिः सुस्नाता तमाराध्य जगत्वतिं ।  
 नमोऽस्तु माधवायेति होमयेन्मधुसर्पिषा ॥  
 सदैवमुत्तरायोगे समभ्यर्च्य जनाह्वनं ।  
 शोभनं पतिमाप्नोति प्रेत्य स्वर्गञ्च गच्छति ॥  
 अतिबाल्ये च यत्किञ्चित्तया पापमनुष्ठितं ।  
 तस्माद्भिमुच्यते पापात् सुखिनी चैव जायते ॥  
 अष्टेनैकेन तन्वङ्गि व्रतं प्राप्ता यदिच्छति ।  
 तदेव प्राप्नुयाद्भद्रे नारायणपरायणा ॥  
 वस्त्रासप्रीणनं कार्यं यथाशक्त्या च वे हरेः ।  
 पारशान्ते महाभागे भोजयेद्ब्राह्मणीत्तमान् ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सुकलत्रप्राप्तिव्रतं ।

— ००० —

अथ ज्येष्ठान्नव्रतं ।

तत्र लिङ्गपुराणात् ।

ऋषय ऋषुः ।

मायाविल्वं श्रुतं विष्णोर्होवदेवस्य चक्रिचः ।  
 कथं ज्येष्ठाससुत्यतिर्होवदेवाब्जनाह्वनात् ।  
 वक्रुमर्हन्ति चास्त्राकं रोमहर्षश्च तत्त्वतः ॥

सुत उवाच ।

अनादिनिधनः श्रीमान् ध्यात्वा नारायणः प्रभुः ।  
 जगद्द्विधमिदं चक्रे मोहनाय जगत्पतिः ॥  
 त्रिष्णुर्वै ब्राह्मणान् वेद वेदधर्मान् सनातनान् ।  
 त्रियं पद्भ्यां तथा योज्य भागमेकमकारयत् ॥  
 ज्येष्ठामलक्ष्मीमशुभां वेदबाह्यां नराधमान् ।  
 अधर्मे च महातेजा भागमेकमकारयत् ॥  
 अलक्ष्मीमघतः सृष्ट्वा पञ्चात्पद्भ्यां जनार्दनः ।  
 ज्येष्ठा तेन समाख्याता ह्यलक्ष्मीर्द्विजसत्तमाः ॥  
 असृतोद्भववेलायां सुधानन्तरमुत्थिता ।  
 अघतः सा समुत्पन्ना ज्येष्ठा इति च वैश्रुता ॥  
 श्रीरनन्तरमुत्पन्ना पद्भ्यां त्रिष्णुपरिग्रहा ॥  
 दुःसहो नाम विप्रविरुपयेभिः सुभान्मदा ।  
 ज्येष्ठां तां परिपूर्णां मनसा वीक्ष्य निष्ठितां ॥  
 लोके च चारुं हृष्टात्मा तथा मह मुनिस्तदा ॥  
 यस्मिन् घोषो हरेद्यैव हरस्य च महात्मानः ।  
 वेदघोषस्तथा विप्रा होमधूमस्तद्यैव च ॥  
 श्रीशिशो वाच यत्रासीत् तत्र तत्र भयार्हिता ।  
 पिपास कर्षो संयाति चावमाना इतस्ततः ॥  
 ज्येष्ठामिव विधां हृष्टा दुःसहो मोहमागतः ।  
 तथा मह वनं गत्वा च चारु स तदा मुनिः ॥  
 तत्रायान्तं महात्मानं मार्कण्डेयमपश्यत् ।  
 प्रक्षिपत्य महात्मानं दुःसहो मुनिमब्रवीत् ।

भार्य्यं भगवन् मच्छं न स्थास्यति कथञ्चन ॥  
 किं करिष्यामि विप्रर्षे ह्यनया सह भार्य्यया ।  
 प्रविशाम्यनया कुत्र कुत्र न प्रविशामि वै ॥  
 मार्कण्डेय उवाच ।  
 शृणु दुःसह सर्व्वं त्वमकीर्त्तिरशुभान्विता ।  
 अलक्ष्मीरतुला चेयं ज्येष्ठा इत्यभिशाब्दिता ॥  
 नारायणपरा यत्र वेद्मार्गानुसारिणः ।  
 रुद्रभक्ता महात्मानो भस्मोद्भूलितविग्रहाः ।  
 स्थिता यत्र जना नित्यं न विशेषाः कथञ्चन ॥  
 नारायण हृषीकेश पुण्डरीकाक्ष माधव ।  
 अच्युतानन्द गाविन्द वासुदेव जनाह्वन ।  
 नृसिंह वामनाचिन्त्य राघवेति च ये जनाः ।  
 वक्ष्यन्ति सन्ततं हृष्टास्तेषां धनगृहादिषु ।  
 आरामे चैव गोष्ठेषु न विशेषाः कथञ्चन ॥  
 ज्वालाजालकरालं यत् सहसादित्यसन्निभं ।  
 चक्रं विष्णोरतीवीर्यस्तेषां हन्ति सदाशुभं ॥  
 स्वाहाकारो वषट्कारो गृहे यस्मिन् प्रवर्त्तते ।  
 तद्विधा चान्यतो गच्छ सामघोषेऽथ यत्र वा ॥  
 वेदाभ्यासरता नित्यं नित्यकर्मपरायणाः ।  
 वासुदेवार्चनरता दूरतस्तान् विसर्जय ॥  
 अग्निहोत्र गृहे येषां लिङ्गार्चा वा गृहेषु च ।  
 वासुदेवतनुर्वापि चण्डिका यत्र तिष्ठति ॥  
 दूरतो व्रज तान् हित्वा सर्व्वपापविवर्जितान् ।

नित्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्यं यजन्ति महेश्वरं ।  
 तान् हित्वा व्रज वान्यत्र दुःसह त्वं सहानया ॥  
 श्रोत्रिया ब्राह्मणा गावो गुरवोऽतिथयः सदा ।  
 रुद्रभक्ताश्च पूज्यन्ते यैर्नित्यं तान् विसर्जय ॥  
 दुःसह उवाच ।

यस्मिन् प्रवेशो योग्या मे तद्ब्रूहि मुनिसत्तम ।  
 त्वहाक्याद्भयनिर्मुक्तो विशाम्येषां गृहे सदा ॥  
 मार्कण्डेय उवाच ।

यत्र भार्या च भर्ता च परस्परविरोधनौ ।  
 सभार्यस्त्वं गृहं तस्य विशेषा भयवर्जितः ॥  
 देवदेवो महादेवो रुद्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।  
 विनिद्रो यत्र भगवान् विशेषा भयवर्जितः ॥  
 वासुदेवे रतिर्नास्ति यत्र नास्ति सदा हरिः ।  
 जपहोमादिकं नास्ति भस्म नास्ति गृहे नृणां ॥  
 पर्वण्यभ्यर्चनं नास्ति चतुर्दश्यां विशेषतः ।  
 कृष्णाष्टम्याश्च रुद्रस्य सन्ध्यायां भयवर्जितः ॥  
 चतुर्दश्यां महादेवं न यजन्ति च यत्र वै ।  
 विष्णोर्नामविहीनास्यैरशुभास्यैर्दुरात्मभिः ॥  
 नमस्कारश्च सर्वाय शिवाय परमेष्ठिने ।  
 ब्राह्मणे च नरा मूढा न वदन्ति दुरात्मकाः ।  
 तत्र वै सततं वक्ष्ये सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 वेदघोषो न यत्रास्ति गुरुपूजा न यत्र च ।  
 पिढकर्मविहीनाश्च सभार्यस्त्वं समाविश ॥

रात्रौ रात्रौ गृहे यस्मिन् कलहो वर्त्तते मिथः ।  
 अनया सार्धमनिशं विश त्वं भयवर्जितः ॥  
 लिङ्गार्धा नास्ति यस्यैव यस्य नास्ति तपो दमः (१) ।  
 रुद्रभक्तिविनिन्दा वा तत्रैव विश निर्भयः ॥  
 अतिथिः श्रोत्रियो वापि गुरुर्वा वैष्णवोऽपि वा ।  
 न सन्ति यद्गृहे गावः सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 बालानां प्रेक्ष्यमाणानां यत्र वृक्षा हि भक्षकं ।  
 भक्षन्ति तत्र संप्लष्टः सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 अनभ्यस्य महादेवं वासुदेवमथापि वा ।  
 अहुत्वा विधिवद्भुवं यत्र तत्र समाविश ॥  
 पापकर्म्मरता मूढा दयाहीनाः परस्परं ।  
 गृहे यस्मिन् समासन्नो देशे तत्र समाविश ॥  
 प्राकारागारभिद्याऽसावन्ववेत्ता कुटुम्बिनी ।  
 तद्गृह्णन्तु समासाद्य वस नित्यमनन्यधीः ॥  
 यत्र कण्टकिनो वृक्षा यत्र निष्पाववज्जरौ ।  
 ब्रह्मवृक्षश्च यत्रास्ति सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 अगस्त्यार्कादयो वापि बभ्रुज्जीवो गृहेषु वै ।  
 करवीरं विशेषेण नन्दरावर्त्तमथापि वा ।  
 मल्लिका वा गृहे येषां सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 कन्या च यत्र वै वज्रो रोहितोऽथ जटी गृहे ।  
 वज्रसः कदली यत्र सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 तासस्तमास्तो भङ्गातस्तिन्निङ्गीच्छमेव च ।

(१) कवीरम इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

कदम्बः खदिरं वापि सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 न्यग्रोधी वा गृहे येषामश्वत्थश्च तथैव च ।  
 उद्गुम्बरः सपनसः सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 यस्य काकी गृहं विन्देदारामे वा गृहेऽपि वा ।  
 छिम्बेन मुण्डितो वापि सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 एकच्छागं हिरावियं त्रिगुणं पञ्चमाक्षिपं ।  
 षडंशं सप्तमातङ्गं सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 यस्य काली गृहे देवी प्रेतरूपा च डकिनी ।  
 चेषपासोऽथवा तत्र सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 भिन्नविम्बश्च वै यस्य गृहे चपपकं तथा ।  
 बौहं वा विम्बमाह्वयं तत्र तूर्णं समाविश ॥  
 शयनासनकाशेषु भोजनासनवृत्तिषु ।  
 येषां वदति वै वाची नामानि न हरेः सदा ।  
 तद्गृहहन्ते समाख्यातं सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 पाषण्डा वारगिरताः श्रौतधार्मिकवृत्तः ।  
 विष्णुभक्तिविनिर्मुक्ता महादेवविनिन्दकाः ।  
 नास्ति काच शवा यत्र सभार्यस्त्वं समाविश ॥  
 मृदा च भगवान् विष्णुः शक्रः सर्वं सुरेश्वरः ।  
 शिवसदाश्चेति न वदन्ति दुरात्मकाः ॥  
 मृदा च भगवान् विष्णुः शिवश्च सम एव च ।  
 वदन्ति मृदाः खद्योतं भानोर्वा मूढचेतसः ॥  
 तेषां गृहे तथा चेत्रे पावासे वा सज्जनया ।  
 विद्य भुङ्क्ते गृहे तेषां मिष्टान्नं त्वमनन्वधीः ॥



अयन्ति केवलं मृदाः पङ्कमत्रं विचेतसः ।  
 स्नानमङ्गलहीनाश्च तेषां त्वं गृहमाविश ॥  
 या नारी शीचविभ्रष्टा देहसंस्कारवर्जिता ।  
 सर्वं भक्षरता नित्यं तस्यां स्थानं समाविश ॥  
 मद्यपानरताः पापा मांसभक्षणतत्पराः ।  
 परदाररता मर्त्याम्नेषां त्वं गृहमाविश ॥  
 पर्व्वण्यनर्चनरता मैथुने वा दिवा रताः  
 सन्ध्यायां मैथुने वापि गृहे तेषां समाविश ॥  
 पृष्ठती मैथुनं स्त्रीणां श्वानवन्मृगवञ्च यः ।  
 जले वा मैथुनं कुर्व्यात् सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥  
 रजस्वलाङ्गनां गच्छेच्छाण्डालीं वा नराधमः ।  
 कन्यां वा गामजां वापि सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥  
 बहुना किं प्रलापेन नित्यकर्म्मवह्निष्कृताः ।  
 रुद्रभक्तिविहीना ये गृहे तेषां समाविश ॥  
 गृह्णैर्हि व्यौषधैः क्षौद्रैः शेषमालिष्य गच्छति ।  
 भगद्रावं करीत्यस्य सभार्य्यस्त्वं समाविश ॥  
 इत्युक्त्वा स मुनिः त्रीमान् निमील्य नयने तदा ।  
 ब्रह्मर्षिर्ब्रह्मसङ्घाशस्तत्रैवान्तरधीयत ॥  
 दुःसहोऽपि यद्योक्तानि स्थानानि समुपेयिवान् ॥  
 विशिषाद्देवदेवस्य विष्णोर्निन्दारतात्मनां ।  
 सभार्य्यो मुनिगार्हूलसैषा ऋषि इति स्मृता ।  
 दुःसहस्तामुवाचेदं तद्वागाश्रयसंस्तरे ।  
 आसूय त्वमत्र चैवाहं प्रपञ्चामि रसातलं ।

आवयोः स्थानमालोक्य निवासार्थं ततः पुनः ॥  
 आगमिष्यामि ते पार्श्वमित्युक्त्वा तमुवाच सा ।  
 किमग्रामि महाभाग को म दास्यति वै बलिं ॥  
 इत्युक्तस्तां मुनिः प्राह यान्निगृह्णान् यजन्ति वै ।  
 बलिभिः पुष्पधूपैश्च न तासांस्त्वं गृहं विप्र ॥  
 इत्युक्त्वा प्राविशत्तत्र पातालनिम्नयङ्गतः ।  
 अद्यापि स च नायातस्तेन सा जलसंस्तरे ।  
 ग्रामे कर्कटवाह्ये तु नित्यमास्तेऽशुभा पुनः ॥  
 प्रसङ्गाद्देवदेवेशो विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ।  
 लक्ष्मीजुष्टस्तथाऽलक्ष्मीः सा तमाह जनाहं नं ॥  
 भर्ता गतो महाबाहो बलिं त्यक्त्वा मम प्रभो ।  
 अनाथाहं जगन्नाथ वृत्तिं देहि नमोऽस्तु ते ॥  
 इत्युक्तो भगवान् विष्णुः प्रसङ्गाद् जनाहं नः ।  
 ज्येष्ठामलक्ष्मीं देवेशो माधवो मधुसूदनः ॥  
 ये रुद्रमनघं सर्व्वं शङ्करं नीललाहितं ।  
 अस्त्वं हैमवतीं वापि जनित्रीं जगतामपि ॥  
 मङ्गला निन्द्यन्त्यत्र तेषां वित्तन्तवैव च ॥  
 एवमेव महादेवं विनिन्द्यैव यजन्ति मां ।  
 सूडा ह्यभाग्या मङ्गला अपि तेषां धनन्तव ॥  
 यस्याक्षया ह्ययं ब्रह्मा प्रमादादसते सदा ।  
 ये विनिन्द्य यजन्त्येनं मत्पदम्भंशकारकाः ॥  
 मङ्गला नैव ते भक्ता एवं वर्त्तन्ति दुर्मदाः ।  
 तेषां धनं गृहं चैव दृष्टापूतन्तवैव च ॥

इत्युक्त्वा तां परित्यज्यालक्ष्मीं लक्ष्मीजनार्दनः ।  
 अवाप भगवान् रुद्रमलक्ष्मीक्षयसिद्धये ॥  
 तस्मात् प्रदेयस्तस्यै च बलिभिर्विन्द्योनरेश्वरैः ।  
 विष्णुभक्तैर्न सन्देहः सर्व्वयत्नेन सर्व्वदा ।  
 अङ्गनाभिः सदा पूज्या बलिभिर्विधिर्हिर्हिजैः ॥  
 भविष्यीत्तरात् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

श्रुतवत्सा तु या नारी काकवन्ध्या तथाऽपरा ।  
 गर्भस्त्रावा लतीया च नानादोषैश्च दूषिता ॥  
 निर्हनाश्च नराश्चैव दारिद्र्योपहता स्थिताः ।  
 कर्मणा केन मुच्यन्ते तन्मे ब्रूहि जनार्दन ॥  
 व्रतेन केन तत्सर्व्वं सुखं प्राप्नोति मानवः ।  
 चीर्णेन च जगन्नाथ तत्सर्व्वं कथयस्व मे ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

मासे भाद्रपदे शुक्ले पक्षे ज्येष्ठा यदा भवेत् ।  
 रात्रौ जागरणं कृत्वा गीतवादिचनिःस्वनैः ।  
 एषंविधिविधानेन एभिर्मन्त्रैः सुपूजयेत् ॥  
 एष्टेहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते ।  
 ज्येष्ठे त्वं सर्व्वं देवानां मन्त्रमौषा सदा भव ॥

आवाहनमन्त्रः ।

श्वेतसिंहासनस्था तु श्वेतवस्त्रैरलङ्कृता ।  
 वरश्च पुस्तकं पाशं विभ्रत्यै ते नमोनमः ॥

आसनमन्त्रः ।

ज्येष्ठे अष्टे तपोनिष्ठे ब्रह्मिष्ठे ब्रह्मवादिनि ।  
क्षीराब्धी च समुद्रूते अर्घ्यं ज्येष्ठे नमोऽस्तु ते ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

शार्ङ्गवाणेषु खड्गैश्च तोरनारोहदर्यणैः ।  
अन्यैरप्यायुर्धैर्युक्तां ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहं ॥

प्रार्थनामन्त्रः ।

सुरासुरनरैर्वन्द्या यत्तकिन्नरपूजिता ।  
पूजितासि मया देवि ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहं ॥  
पुत्रदारसम्पदार्थं लक्ष्म्याश्चैव विवृहये ।  
अलक्ष्म्यासु विनाशाय ज्येष्ठे त्वामर्चयाम्यहं ॥

पूजामन्त्रः ।

मन्त्रेण पूजयेज्जिह्वां स्त्री वाऽथ पुरुषोऽपि वा ।  
लक्ष्मीः सन्तानवृद्धिश्च अणिमादिगुणो भवेत् ॥  
अर्चिता चर्चिता ज्येष्ठा सदा काले नृपोत्तम ।  
गुरुं संपूजयेद्भक्त्या वस्त्रैराभरणादिभिः ॥  
हादयैव च वर्षाणि पूजनीया प्रयत्नतः ।  
यावज्जन्तु तथा पूज्या विधिनामेन मानवैः ॥  
ददाति वित्तं पुत्रान् च अर्चनीया सदा स्त्रिया ।  
अनेन विधिना युक्ती यो हि पूजयते नरः ॥  
नारी च पूजयेज्जिह्वां तस्या लक्ष्मीर्विबर्धते ।  
बन्ध्या च समते पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत् ॥  
सृतवन्ता जीवन्त्या काकबन्ध्या प्रजावती ।

दुःखितो हि नरः कश्चित् सुखी वसते सदा ॥  
 एवं विधिविधानेन ज्येष्ठां यस्त्वर्चयेत्सदा ।  
 विभ्रन्तस्य प्रणश्येत यथाप्सु लवणं तथा ॥  
 एतद्गतं महाश्रेष्ठं पुण्यं पापविनाशनं ।  
 तन्मया कथितं सर्वं ज्येष्ठायास्ते व्रतं महत् ॥  
 यथा ग्राह्यं कुरुश्रेष्ठ ज्येष्ठाव्रतं सुशीभनं ।  
 नीराजने कृते चैव दीपो ग्राह्यः सुभक्तितः ॥  
 नैवेद्यसहितं प्राश्य व्रतस्याग्रे युधिष्ठिर ।  
 गुरुहस्तात्सदा ग्राह्यो दीपः प्रज्वलितो महान् ॥  
 व्रतस्थो भक्तियुक्तस्तु शुचिः प्रयतमानसः ।  
 अनेन विधिना चैव व्रतं ग्राह्यं युधिष्ठिर ॥  
 ज्येष्ठा नाम परा देवी भक्तिमुक्तिफलप्रदा ।  
 यस्तु पूजयते राजंस्तस्मै स्वर्गं प्रयच्छति ॥  
 स्कन्दपुराणे । ईश्वर उवाच ।  
 मासे भाद्रपदे पक्षे शुक्ले ज्येष्ठार्चसंयुते ।  
 तस्मिन् काले दिने कुर्यात् ज्येष्ठायाः परिपूजनं ॥  
 तत्राष्टम्यां यदा भानुदिनं ज्येष्ठर्चमेव च ।  
 नीलज्येष्ठा तु सा प्रोक्ता दुर्लभा बहुकालिका ।  
 कृतस्नानो नरः कुर्यात्तस्यामन्यत्र वा दिने ॥  
 भक्तियुक्तः शुचिः कुर्यात् ज्येष्ठादेव्याः प्रपूजनं ।  
 नद्या, पूर्व्वेद्य, आहृत्य सिकताः शुद्धदेयजाः ॥  
 देवीरूपन्तु तत्रैव ध्यात्वा वै ब्राह्मणैः सह ।  
 मण्डले तान्तु संस्थाप्य देवीं हेममयीन्ततः ॥

स्थापयेद्भ्राजतीन्ताम्बीं लेख्यां वा द्विजसप्तम(१) ।  
 आवाहयेत्ततो देवीमथवा पुस्तकेऽपि वा ॥  
 त्रिलोचनां शङ्कदन्तीं विभ्रतीं राजतीं तनुं ।  
 विततां रक्तनयनां ज्येष्ठाभावाद्दयाम्यहं ॥  
 एष्टेहि त्वं महाभागे सुरासुरनमस्कृते ।  
 ज्येष्ठा त्वं सर्व्यदेवानां मत्समीपगता भव ॥  
 इति मन्त्रेण तां देवीमावाह्य सुकृतव्रती ।  
 दद्याद्भजलैः पाद्यं पादयोरुभयोर्द्विजः ॥  
 श्रीखण्डकपूर्वयुतन्दद्यादश्वस्तथार्हणं ।  
 भक्त्या प्रयत्नेन मया यदत्र दीयते तव ।  
 तद्गृहाण सुरेशानि ज्येष्ठे ज्येष्ठे नमोनमः ॥  
 इत्युच्चार्य्य सुवर्णादिपात्रेणाञ्जलिनापि वा ।  
 अर्घ्यं दत्त्वा स्मरेद्देवीं गन्धधूपैस्तथार्चयेत् ।  
 गोधूमयवशाल्यादितद्दृष्ट्वैः सुपारयेत् ॥  
 पञ्चप्रसृतिमात्रेस्तेः पूरिकादीनि सर्पिणा ।  
 निवेदयेच्च तीरेव दद्याद्देव्यै यतव्रतः ॥  
 ततः स्तुत्वा महादेवीं सर्व्यकामफलप्रदां ।  
 ज्येष्ठायै ते नमस्तुभ्यं ज्येष्ठायै ते नमो नमः ॥  
 ज्येष्ठे ज्येष्ठे तपोनिष्ठे वरिष्ठे सत्त्ववादिनि ।  
 एष्टेहि त्वं महाभागे अर्घ्यं गृह्य सरस्वति ॥  
 अर्घ्यमन्नः ।

स्तुत्वा स्तोत्रकथानृत्यगीतानि पुरतस्ततः ।

(१) लेख्यां वा पटके वा योरिति पुस्तकान्तरेपाठः ।

सीवीरे चैव संयुक्तां दद्याच्छुद्धेभ्य एव च ॥  
 सुवासिनीभ्यः शक्त्या तत् प्रदद्यात् सुकृतव्रती ।  
 देवीमनुन्नयार्चित्वा ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥  
 सखिभिः सह चान्नानि स व्रती सुकृतव्रतः ।  
 भुङ्क्ता पीत्वा तदाचम्य देवीं नत्वा पुनः पुनः ।  
 शयीत ब्रह्मचर्येण कुर्यात् पातर्विसर्जनं ॥  
 एवमेव प्रकुर्याद्वै व्रतन्तु प्रतिवत्सरं ।  
 विसर्जनान्ते तु ततः शिवां तां वारिणि क्षिपेत् ॥  
 अपूपवटकाम्दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्ततो हिलः ।  
 कुर्यादेवं प्रयत्नेन सायं वाथ विसर्जयेत् ॥  
 विद्यार्थी प्राप्नुयाद्दियां स्त्रीकामस्त्रियमाप्नुयात् ।  
 शिरस्तरणकारी तु देव्यै दद्यादसंशयः ॥  
 सौवर्णं राजतन्तान्त्रं कृतकृत्यो भवेत्तदा ।  
 व्रतं स्वयञ्च कृतवान् मिष्टिं वाथ कृतार्हणः ॥

देव्या महत्त्वं कथितन्तवेदं

विधिश्च मन्त्रार्चनसंप्रयुक्तः ।

मन्त्रोऽपि सायुज्यकरो व्रतस्व-

स्तस्यां सदाचारवतां सदैव ॥

यस्याः सिंही रथे युक्ता व्याघ्रश्चापि महाबलः ।

ज्जेष्टामहमिमाम्देवीं प्रपद्ये शरणं शुभां ॥

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टां दुर्ग  
 देवीं शरणमहं प्रपद्ये । सुतरसितरासगाय नमः । इत्यावाहयत्

आपोद्दृष्टेति तिसृभिर्हिरण्यवर्णाः शुचयः पावका इति तिस्र-  
भिरभिषेकं कुर्यात् ।

नाम्नाथ विष्टरन्दत्वा पाद्यमर्घ्यमथासनं ।

वस्त्रमाचमनं(१) चैव मधुपर्कादि सर्वतः ॥

गन्धं पुष्पन्तथाधूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।

पुनराचमनञ्चैव कारयित्वा विसर्जयेत् ॥

श्रीं ज्येष्ठायै नमः । श्रीं सत्यायै नमः । श्रीं काल्यै नमः ।

श्रीं कपालाय नमः । श्रीं कलिप्रियायै नमः । श्रीं विघ्नायै नमः ।

श्रीं विनायकाय नमः । श्रीं भाग्यै नमः । श्रीं ताप्यै नमः ।

श्रीं त्रियै नमः । श्रीं कृष्णायै नमः । श्रीं कृष्णपिङ्गलायै नमः ।

एभिर्नामभिस्तर्पणं ।

होमं दधिमधुक्षोरघृतैः कुर्यात् सुसंयतः ।

हविष्यं स्वयमश्रीयाद्दशह्यणांस्तेन भोजयेत् ॥

अनेन विधिना यस्तु वत्सराणाञ्चतुष्टयं ।

व्रतान्ते प्रतिमां कुर्यात् सौवर्णीं फलसन्नितां ।

कृष्णवस्त्रेण संयुक्तामाचार्याय निवेदयेत् ॥

वस्त्राभरणमाख्यैस्तु लेपनैः पूजितं द्विजं ।

प्रणिपत्य ततः पञ्चाक्षरैः सर्वं निवेदयेत् ॥

ब्राह्मणा भुक्तवन्तस्ते प्रकुर्युः स्वस्तिवाचनं ।

एवं कृते व्रते सम्यक् सर्वशान्तिः प्रजायते ।

धनधान्यसमृद्धिश्च आरोग्यञ्चैव जायते ॥

इति ज्येष्ठाव्रतं ।

(१) आचमनमिति पाठान्तरं ।



पुष्कर उवाच ।

शक्रे तूपोषितो विद्वान् यजमानमुपोषितं ।

मूलेन स्नापयेन्नित्यन्तत्स्नाम्याशामुखस्थितं ॥

तत्स्नाम्याशामुखं नैर्ऋत्यभिमुखं ।

पूर्वोक्ताशासन्मुखं वा पूर्वो न सुदृढेन च ।

कुम्भहयेन ज्ञातस्तु पूजयेन्मधुसूदनं ।

विरूपान्नं सवरुणं चन्द्रं शूलन्तथैव च ।

गन्धमाल्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा ॥

एतेषामेव जुहुयात्तथा नाम्ना घृतं द्विजः ।

पीतवासास्ततो भूत्वा मत्स्यं कूर्मञ्च शूकरं ॥

सुराक्षयरसंयावैः स्नानोक्ताशामुखस्थितः ।

बलं नृपतये दद्याज्जानु कृत्वा ततः क्षितौ ॥

ततोऽष्टादशभिः पुष्पैर्मूलैः पञ्चभिरेव च ।

सुवर्षगर्भन्तु मणिं विद्वान् शिरसि धारयेत् ॥

कृत्वैतत् सकलं कर्म कृषिं बहुफला लभेत् ॥

दक्षिणाञ्चान्न ये दद्यान्मूलानि च फलानि च ।

सितानि चैव वस्त्राणि कनकां रजतं तथा ।

भोजनञ्चात्र दातव्यं ब्राह्मणानामभीषितं ।

अक्षयम्भूलमिदञ्च कुर्वन्

ज्ञानं सदा भार्गववंशमुख्यः ।

कृषिं सप्तमाप्नोति सदैव वृषिं

यथेप्सितं नात्र विचारमस्ति ।

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं मूलज्ञानं ।

गर्गं मुनिवरश्रेष्ठं भार्गवः परिपृच्छन्नि ।  
 नैर्ऋतेन तु ऋषेण शिशोर्जातस्य किं फलं ॥  
 पादे पादे तु यत् प्रोक्तं तन्ममाचक्ष्व सुव्रत ।  
 ज्ञानदानादिहोमाश्च दर्शनीयं कथं भवेत् ॥

गर्ग उवाच ।

प्रथमे पितरं हन्ति द्वितीये हन्ति मातरं ।  
 तृतीये च धनं हन्ति चतुर्थे श्रीभनं भवेत् ॥  
 प्रथमे छेदनं कृत्वा रक्तस्त्रावो विधीयते ।  
 द्वितीये दीयते बालः परस्त्रीपुरुषस्य वा ॥  
 पञ्चवास्य तृतीये तु पञ्चाच्छान्तिस्तु कारयेत् ।  
 चतुर्थे शस्यते ज्ञानं कृत्वा चैव शिशोः पिता ॥  
 स्वयमुत्पाटयेत् प्राज्ञो मूलानाञ्च शतं पिता ।  
 मङ्गल्याश्च पवित्राश्च शोधयः कथयाम्यहं ॥  
 लक्ष्मणा शतमूला च शिरीषो वेतसस्तथा ।  
 सिंहका श्वेतमूला च विष्णुक्लान्ता च शङ्खिनी ।  
 सर्पाक्षी मीननेषा च पुत्रापरि कृताञ्जली ।  
 पलायो विष्वक्कक्षेव रोचना चन्दनद्वयं ।  
 कृष्णमांसी सुरोशीरं धवला च तथामलं (१) ॥  
 गोलिङ्गा तुलसी दूर्वा शतपुष्पा शतान्नस्त्री ।  
 ब्रह्मदण्डी द्रोणपुष्पी प्रियङ्गुः श्वेतसर्षपाः ॥

(१) बाज्जामंश्च तथासकृन्मिति पाठान्तरं ।

पिप्पलः काकजङ्घा च त्रायमाणा उडुस्तथा ।  
 ज्योतिष्मती च गान्धारी निर्गन्धा पूर्णकौशिका ॥  
 भगक्षुमा सुभद्रा च गुडची सेन्द्रवारुणी ।  
 अलम्बुका च दन्ती च कदली केतकस्तथा ॥  
 गीचुरः शतपत्री च अरिष्टकापराजिता ।  
 चित्रपर्णी शतपत्रा च निकुम्भोऽथ सुवर्चला ॥  
 अश्वगन्धा वृद्धिकर्णी हरिद्राद्वितयं तथा ।  
 उष्ट्रवी मधुकारश्च अश्वरथो वकुलस्तथा ॥  
 सर्जरजो अपामार्गो मन्दारश्चातिमुक्तकः ।  
 मालती स्वर्णपुष्पी तु श्रीऋणी श्रीफलस्तथा ॥  
 दभंमूलं करवीरं मदयन्ती विकङ्कतः ।  
 पाटला सुरदारश्च अर्षसूदनिका तथा ॥  
 फलं मन्मथवृक्षस्य पलाशस्य च पल्लवं ।  
 रास्ना नन्दीवृक्षमूलं सुरदारुर्विदारिका ॥  
 श्वेतवीथी श्वेतपाका नीलीत्यलं तथैव च ।  
 नागकेशरसिन्दूरी कुमारी चैव निक्षिपेत् ॥  
 तीर्षाम्बु पञ्चगव्यश्च सर्व्वीषध्यश्च काञ्चनं ।  
 यथासम्भवतो वापि चाञ्चं मूलीशतं शुभं ।  
 वीरत्वचा समेतश्च शतच्छिद्रे घटे न्यसेत् ॥  
 नद्या उभयकूलस्था गीमृङ्गखनिता च या ।  
 वह्निर्मूलगता या च तथा माद्वृष्टोद्भवा ।  
 वल्लीकपल्लवस्था च रजसा रक्तकाश्च ये ॥  
 रजसा रक्तकाः, गीरजीरञ्जिता रप्यामृत्तिका इत्यर्थः ।

ज्ञानकाले तु सा प्रोक्ता मृत्तिका पापनाशनी ।  
 तत्काले करकैः शान्तिन्ते चाष्टौ तीयपरिताः ॥  
 चत्वारो वाय तां दत्त्वा गिरम्नानि त्रिवेष्टिताः ।  
 सबालायास्ततः कुर्याद्विलिप्ते मण्डले शुभे ॥  
 वेदमङ्गलघोषैश्च मन्त्रैः पुण्याभिषेचनैः ।  
 आचार्यैः कक्षशब्दिव्यं अभिमन्त्रा ततः कृपेत् ॥  
 ज्ञानं कार्यमिदं दिव्यं सूतकाले ततः गिद्योः ।  
 मातरं स्नापयेत्पश्चाद्भृशपूजान्तु कारयेत् ॥  
 आचार्यं पूजयित्वा तु ब्राह्मणानाञ्च पूजनं ।  
 सौवर्णं पुरुषं दद्यादाचार्याय गुणान्वितः ॥  
 धेनुं दद्यात्तथा धान्यं शतमानञ्च दक्षिणा ।  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा पशुपत्यं त्रमापयेत् ॥  
 तैर्ब्रह्मैर्ननुजातस्य ग्रहरिष्टोद्भवस्य च ।  
 गण्डान्ते चैव भावस्य बालस्येति विधीयते ।  
 कृष्णतिलानाम्तु षष्ट्या हैरस्यं मानमुच्यते ॥

षष्टिकृष्णतिलमितं सुवर्णमानं । निकुम्भां दम्तीभेदः सुव-  
 र्णसा सर्पसक्ता । श्मश्रुकर्षी एरण्डः । उट्ट्रवः पीलुः । मधुकारी  
 मधुकः । सर्जर्राजो वीजकः । अषामार्गः घाटकः । अतिमूर्तं  
 माधवी । मालतिः जातिः । स्रष्टं पुष्पी मुषला । शीफलं विल्वं ।  
 मद्यन्ती पूतिका ।

अर्धसुदनिका पालह्वी । मन्त्रब्रह्मचर्याम्नः । सुरदारुः देव-  
 दारुभेदः । विदारिका कुष्माण्डी । श्वेतवीथो गिरिकर्णिका ।  
 श्वेतपाका गुम्फा । शिवाचि क्षनामप्रमिहानि ।

इन्द्राय स्वाहा । अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । पवमानाय स्वाहा । मरुते स्वाहा । यमाय स्वाहा । मृत्यवे स्वाहा । अन्तकाय स्वाहा । अग्नये सिष्टकृते स्वाहा ॥ त्रातारमिन्द्र । त्वत्रो अग्ने । सुगन्धपय्यां । असुन्वत । तत्त्वायामि अनोनियुद्धिः । वयं सोम । तमोशानं । अस्मैरुद्रा । सोना पृथिवी । इत्यादि मन्त्राः ।

इति मूलशान्तिः ।

—(०)000—

राम उवाच ।

काम्यं कर्म समाचक्ष्व वाणिम्यं येन सिध्यति ।

कृषिञ्च बहुलाञ्चैव कर्मणा केन वाञ्छते ॥

पुष्कर उवाच ।

मूलेषूपीषितः कुर्यादिदं कर्म पुरोहितः ।

उपीषितस्य धर्मज्ञ यजमानस्य नित्यशः ॥

प्राप्तासु पूर्वाषाढासु प्राज्ञं खं स्रपयेत्तरं ।

युक्तैर्वै तममूलैश्च शङ्खमुक्ताफलैस्तथा ॥

मणिभिर्य यथात्ताभं कनकैः तथैव च ।

अकालमूलैः कलशैश्चतुर्भिर्भृशुनन्दन ॥

अकालमूलैः, नवैः ।

ततस्तु पूजयेद्देवं शङ्खचक्रगदाधरं ।

प्राङ्मुखं तु तथैवान्न वरुचञ्च निष्ठाकरं ॥

गन्धमाब्जमस्कारुद्दीपधूपान्नसम्भवा ।

एतेषामेव जुहुयात्तथा नाम्ना हृतं द्विजः ।  
 नीलवासास्तथा भूत्वा क्षिपेदप्यु समाहितः ॥  
 नीलानि चैव वासांसि देवानि विविधानि च ।  
 चन्दनञ्च(१) सुरा चैव शैरेयं विविधस्तथा ॥  
 शक्तानि चैव मास्थानि धूपं दद्याद्भृती तथा ।  
 निष्पत्तिमकरस्यास्थि गङ्गमुक्ताफले तथा ।  
 सुवर्णात्तरितं कृत्वा धारयेच्च तथा मणिं ॥  
 कृत्वैतत् सिद्धिमाप्नोति वाणिज्यं नात्र संशयः ॥  
 समुद्रयाने च तथा कर्षणे च न सौदति ।  
 नीलानि सप्त वासांसि दक्षिणा चात्र शस्यते ॥  
 गङ्गं सुवर्णं रुप्यञ्च(२) तथा मुक्ताफलानि च ।  
 हर्षं कर्षं द्विजेभ्यस्तु सर्व्वं मेतद्विधीयते ।  
 ब्राह्मणान् भोजयेच्चात्र परमाद्यं सुसंस्कृतं ॥  
 अभ्यर्च्य प्रत्येकमथाष्टमूर्त्तिः  
 करोति कर्मैतदनिन्दितात्मा ॥  
 न जातु लाभाद्विनिवर्त्ततेऽमौ  
 समुद्रयानादिव निम्नगा वै ॥  
 इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं वाणिज्यलाभव्रतम् ।

सूत उवाच ।

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो वशिष्ठ इति विश्रुतः ।

(१) चोदमञ्च सुरार्चनेति मुक्ताकारे पाठः ।

(२) गङ्गं सुवर्णं रुप्यञ्चति पाठान्तरः ।

तस्य शक्तिरभूत्पुत्रस्तस्य पुत्रः पराशरः ॥  
 तपश्चकार समहृष्टकरं देवदानवैः ।  
 पूत्रार्थं ब्रह्मचारी च ततो लम्बवरी भवेत् ॥  
 सुपुत्रं लक्ष्मीस्त्रिवं भवैरुक्तोमहात्मभिः ।  
 कुरु संवत्सरं ज्ञानं श्रवणे श्रवणे मुने ॥  
 सोऽपि पुत्रानवापाष्टौ चकार श्रद्धयान्वितः ।  
 पाराशर्यः सुतं लेभे व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥  
 एवमन्योऽपि राजेन्द्रस्तावत् सिद्धिमवाप्नुयात् ।  
 पुत्रान् पौत्रांश्च लभते सुखञ्चात्यन्तमश्रुते ॥

इत्यादित्यपुराणीकं पुत्रोत्पत्तिव्रतं ।

श्रीराम उवाच ।

ज्ञानानामिह सर्वेषां यः ज्ञानमतिरिच्यते ।  
 तन्ममाचक्ष्व सकलं सर्वकल्पनाशनं ॥

पुष्कर उवाच ।

शृणु पादोदकज्ञानं सर्वकल्पनाशनं ।  
 चतुरात्रा हरिर्यत्र भवत्यन्वागतो हिज ॥  
 तत्र कार्यमिदं ज्ञानं सर्वकल्पनाशनं ।  
 ततः कार्यं प्रयत्नेन श्रवणार्चं विशेषतः ॥  
 षष्ठेत्तराषाढासु निराहारी जितेन्द्रियः ॥  
 सर्वोषधैः सर्वगन्धैर्होषदेवस्य शक्तिः ।  
 पादं प्रक्षालयेद्दिहान् क्रमेण चतुरात्मनः ॥  
 ततः सुकलशान् कुर्व्याच्चतुरः सुदृढाश्वान् ।

सौवर्णं राजतं ताम्रमद्यवापि महीशयान् ॥  
 ततो निरुद्धचरणः कूपान्निः क्षालयेत्ततः ॥  
 ताभिस्तु कलशम्पूर्णं स्थापनीयं तदग्रतः ॥  
 ततः प्रद्युम्नचरणौ क्षाल्यौ प्रश्रवणीदकैः ।  
 तैस्तु संपूर्णकलशं भवेत् स्थाप्यस्तदग्रतः ॥  
 सङ्कर्षणस्य चरणौ क्षाल्यौ तोयैश्च सारसैः ।  
 कलशं पुरितस्तैश्च स्थाप्यं तस्याग्रतो भवेत् ॥  
 वासुदेवस्य चरणौ नादैर्यैः क्षालयेद्बुधः ।  
 कलशं पुरितं तैश्च स्थापनीयं तदग्रतः ॥  
 ततस्तु पूजा कर्त्तव्या तथा वै चतुरात्मनः ।  
 कलशान् पुरयेत्तांश्च गन्धमाख्यफलाक्षतैः ॥  
 ततः प्राप्ते द्वितीयेऽङ्गि स्नातः पूर्वमुपोषितः ।  
 सङ्मुखयानिरुद्धश्च स्थाप्यद्योत्कटुकी भवेत् ॥  
 प्रद्युम्नस्य च देवस्य ततः सङ्कर्षणस्य च ।  
 ततश्च वासुदेवस्य सर्वावासस्य चक्रिणः ॥  
 पवित्रमन्त्रैः सर्वेषां घटानामभिमन्त्रणं ।  
 कर्त्तव्यं सान्वयेनाथ शुचिना भार्गवोत्तम ॥  
 अथ मन्त्रान् प्रवक्ष्यामि चतुर्षु कलशेषु ते ।  
 मङ्गल्यांश्च यशस्यांश्च सद्योऽविविनिषूदनान् ॥  
 अरुद्धमार्गः सर्वत्र सर्वगथापराजितः ।  
 वायुमूर्त्तिरचिन्त्याका सोऽनिरुद्धः स्वयं प्रभुः ॥  
 पादोदकेन दिग्भेन शिवेनाघनिनाशन ।  
 तथाद्यमुपपन्न्याश्च स्वयं वर्द्धयति प्रभुः ॥



लीकान् प्रथोतयति यः प्रद्युम्नी भास्करः प्रभुः ।  
 हुताशनः स तेजस्वी मङ्गलं विद्धातु ते ॥  
 कामदेवो जगद्योनिः सर्व्वगः प्रमुरीश्वरः ।  
 रोगहृत्तां जगन्नाथो मङ्गलानि ददातु मे ॥  
 जगतां कर्षणाद्देवो यः स संकर्षणः प्रभुः ।  
 रुद्रमूर्त्तिरचिन्त्यात्मा सर्व्वगः सर्व्वदारकः ॥  
 कामपालोऽरिदमनः सर्व्वभूतवशङ्करः ।  
 विश्वद्योनिर्महातेजा मङ्गलानि ददातु मे ॥  
 सर्व्वीशानो वासुदेवो भूतात्मा भूतभावनः ।  
 सर्व्वगद्याप्रमेयश्च पुरुषः परमेश्वरः ॥  
 अन्नस्तः सर्व्वदेवेशो जगत्तारणकारणः ।  
 अघापहारी वरदी विद्धातु श्रियं मम ॥  
 एवं स्वातस्तुतिं कृत्वा परिधाप्य सुवाससी ।  
 शकृवासा उपश्रव्य पूजां कुर्यात् क्रमेश तु ॥  
 गन्धैः पुष्पैः फलैः पुस्त्यैर्दीपधूपैः सुगन्धिभिः ।  
 नैवेद्यैर्विविधैश्चैव पायसान्नेस्तु पूजनैः ॥  
 एवं देवार्चनं कृत्वा सन्नताशीर्गताशुभः ।  
 भोजनं गोरसप्रार्यं कृत्वा तिष्ठेदतन्द्रितः ॥  
 प्रादुर्भावानि मुख्यानि शृणुयात् केशवस्य च ।  
 पाषण्डपतितानाञ्च वर्ज्येद्दर्शनं तथा ॥  
 इतिपादीदृक्कनानं प्रीतां रचीकृषं तव ।  
 मङ्गल्यम्याषण्डमनमलक्ष्मीनाशनं परं ॥  
 सर्व्वविघ्नप्रशमनं सर्व्वबाधाविनाशनं ।

सर्वं दुष्टोपशमनं सर्वव्याधिहरं परं ॥  
यात्रासिद्धिकरं पुण्यं कर्मणां सिद्धिकारकं ।  
शत्रुघ्नं बुद्धिदं मध्ये बलायुःश्रुतिवर्धनं ।  
सौभाग्यदं कामपरं यशःपुत्रविवर्धनं ॥  
अमोघवीर्यं पुरुषोत्तमस्य  
पादोदकस्नानमिदं प्रतिष्ठं ।  
स्नानोत्तमन्ते रणचन्द्रवेग-  
भुवस्तु ते किं करवाणि राम ॥  
इति विष्णु धर्म्मोत्तरात्तं पादोदकस्नानं ।

— ००० —

श्रीराम उवाच ।

आरोग्यकारकं स्नानं द्वितीया प्रतिपत्तया ।  
आरोग्यदं व्रतं चैव वैश्राव कथयस्व मे ॥

पुष्कर उवाच ।

धनिष्ठासु महाभाग यजमानपुरोहितौ ।  
उपोष्य वारुणं स्नानं यजमानस्य कारयेत् ॥  
कृत्वा कुम्भयतं पूर्णं शङ्खमुक्ताफलोदकैः ।  
भद्रासनीपविष्टः सन् स्नातश्चैवाहताम्बरः ॥  
केयवं वरुणं चन्द्रं नक्षत्रं वारुणं तथा ।  
पूजयेत् प्रयतो राम गन्धमान्यानुलेपनैः ॥  
दीपधूपनमस्कारैस्तथा चैवात्रसम्पदा ।  
देवतानां यद्योक्तानां कुर्वीतावाहनन्ततः ॥  
सर्वेषुधैस्तथा न यथागच्छि विचक्षणः ।

गुरवे वाससी देवे रसगोकुम्भकाशनं ।  
 ब्राह्मणानाम्नु दातव्याऽवित्तशठेन दक्षिणा ॥  
 शमीशास्त्रस्त्रिजैः पत्रैर्ध्वं शोषेण तथैव च ।  
 त्रिवृतस्तु मणिर्दीर्घः सर्व्वं रोगविनाशनः ॥  
 शाकानि हरितं माल्यं सर्व्वं शस्यानि वाञ्छनी ।  
 वरुणाय विनिक्षिप्य गन्धधूपं निवेदयेत् ॥  
 अलङ्कयानस्य हि वारुणं तत्  
 स्नानेन दानेन कृतेन सम्यक् ।  
 रोगाः समयाः प्रशमं प्रयान्ति  
 वदन्तथा मोक्षमवाप्नुयाच्च ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं शतभिषास्नानं ।

— ००० —

अतः परं प्रवक्ष्यामि काम्यं कर्म तवानघ ।  
 कर्त्ता त्पवसेत्तत्र कारकय तथैव च ॥  
 पूर्व्वं भाद्रपदायोगे अहिर्ब्रह्मगते तथा ।  
 स्नानं निशान्ते कुर्वीत द्वितीये इति शास्त्रवित् ॥  
 उडुम्बरस्य पत्राणि पञ्चगव्यं कुण्डिकं ।  
 रोचना चन्दनं वासः क्षिपेत् कुम्भहये बुधः ॥  
 कुम्भहयं ततः कुर्याद्भस्ममाल्याञ्जनैर्दृढं ।  
 अकालमूलं संस्त्राप्यः कर्त्ता तेन तदा भवेत् ॥  
 स्नात्वा गोबालवीराणि परिधानि समाहितः ।  
 पूजयेच्चाप्यहिर्ब्रह्मादित्यं च तथैव च ॥

वरुणश्च शशाङ्कश्च गन्धमाख्यात्रसम्पदा ।  
 दीपधूपनमस्कारैस्तथैव बलिकर्मणा ॥  
 अक्षतानान्तु पात्राणि ततो राम चतुर्दश ।  
 अहिब्रह्माय रुद्राय सफरीष निवेदयेत् ॥  
 षडङ्गैः तु दद्याद्दे तत्र धूपं द्विजोत्तमः ।  
 ततस्तु पूजा कर्त्तव्या देवदेवस्य चक्रिणः ॥  
 भोकारपूर्वमाज्यन्तु सर्वासां जुहुयात्ततः ।  
 देवतानां यथोक्तानामेकैकस्य शतं शतं ॥  
 गोपालशफम्बुसु तृप्तं कारयेन्मणिं ।  
 धारणं तस्य कर्त्तव्यं करे मूर्ध्नाथ वा भजे ॥  
 कर्त्तव्यं चैवोपदेष्टे तु शक्त्या देया च दक्षिणा ।  
 ब्राह्मणानाञ्च सर्वेषां यथावदनुपूर्वशः ॥

अलङ्कारयन्भाद्रपदामघान्यां  
 करोति यः स्नानमिदं सदैव ।  
 भवन्ति तस्यायुतशसु गावः  
 परामवाप्नोति तथैव वृष्टिं ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं अहिब्रह्मन्तानं ।

—०००—

वल्लगुरुवाच ।

व्रतान्यन्यानि मे ब्रूहि काम्यानि द्विजपुङ्गव ।  
 नारीणां पुरुषाणाञ्च सर्वेष्वस्त्वं यतो मम ॥  
 मार्कण्डेय उवाच ।  
 कृत्तिकास्वर्चयेद्द्वं कार्त्तिकीप्रभृति क्रमात् ।

यावत्स्यात्कास्त्रिकी भूयो नरसिंहमुपोषितः ॥

अनुलेपनपुष्पाद्यैः सर्व्वरत्नैः सदैव तु ।

व्रतावसाने दद्याद्वा तथा खेतां हिजातये ॥

श्रितवत्सयुताश्चैव (१) रजतञ्च तथा नृप ।

उपोषितः सदा कुर्याद्भूतं स्याच्छत्रुवर्जितः ।

मार्गशौर्षमधारभ्य सुगन्धं पूजयेन्नरः ।

अनन्तशयनासीनमनन्तं सर्व्वकामदं ॥

अनन्तपुष्पोपचयमनन्तसुखसम्पदं ।

यथाभिलषितावाप्तिः कुरु मे पुरुषोत्तम ॥

इत्युदीर्याभिपूजैरनमुपोषणपरो नरः ।

विप्राय दक्षिणां दद्याद्वनन्तः प्रीयतामिति ॥

पौषमासाद्धारभ्य पुष्टे नित्यमुपोषितः ।

यावत्पौषो भवेद्भूयो बलदेवमथार्चयेत् ॥

अनुलेपनपुष्पाद्यैः सर्व्वरत्नैस्तथैव च ।

व्रतावसाने दातव्यं (२) कांस्यं कनकमेव च ।

भक्त्या विप्राय भवति नित्यं पुष्टियुतो नरः ॥

माघमासाद्धारभ्य मघासु सततं नरः ।

वराहमर्चयेद्देवं तथा नित्यमुपोषितः ॥

घृताभ्यङ्गेन विधिवच्चन्द्रेण सुगन्धिना ।

तथा च परमासेन घृतहोमेन वाप्यथ ॥

दद्याद्ब्रतावसाने तु घृतधेनुं नराधिपः ।

(१) श्रितवत्सयुताश्चैवेति पाठान्तरं ।

(२) सप्तमं कांस्यमिति पुस्तककारे पाठः ।

पितृप्रसादमाप्नोति कृत्वैतद्व्रतमुत्तमं ॥  
 फल्गुनीतस्तथारभ्य फाल्गुनीषु समर्चयेत् ।  
 नरनारायणो देवो यावत्स्यात् फाल्गुनी पुनः ।  
 व्रतावसाने शयनं स्वास्तीर्णं प्रतिपादयेत् ॥  
 व्रतेनानेन नारी स्यात् सभर्त्री समलङ्कृता ।  
 भार्यां नरस्तथाप्नोति रूपद्रविणसंयुतां ॥  
 भनुकूलां प्रियां नित्यं तदा पञ्चवर्ती नृप ।  
 अविश्रीगमवैषम्यं करोत्वैतन्महाव्रतं ॥  
 चैत्रमासादथारभ्य नित्यं चित्रास्त्रार्चयेत् ।  
 यावच्चैत्री भवेद्भूषो नित्यं विष्णुमुपोषितः ॥  
 व्रतावसाने दद्याच्च चित्रं वस्त्रं द्विजन्मने ।  
 व्रतेनानेन पुरुषः पुत्रानाप्नोत्यधोष्मितान् ॥  
 नारी वा पुरुषव्याघ्र नाव कार्या विचारणा ।  
 वैशाखे च तथा विष्णुं विगात्रासु समर्चयेत् ॥  
 यावद्भूयात्तु वैशाखी भोपवामः पृथुं विभुं ।  
 दत्त्वा व्रतान्ते कनकं ज्ञातिश्रेष्ठं नरोत्तमः ॥  
 ज्यैष्ठ्यमासे तथा ज्येष्ठामूपोषितो नरः सदा ।  
 कृष्णं च पूजयेद्देवं वस्त्रालङ्कारभूषणैः ॥  
 व्रतावसाने दातव्यं गवां शतमनुत्तमं ।  
 वस्त्राणि कनकं भूरि कृष्णमायुष्यमाप्नुयात् ॥  
 आषाढीतस्तथारभ्य दिनहयमुपोषितः ।  
 आषाढास्वर्चयेद्देवं प्रद्युम्नमपराजितं ॥  
 भूयः स्यात्तु यदाषाढी दद्याच्च शयनं ततः ।

स्विस्तीर्णं तेन चाप्नोति नित्यं रूपयुता स्त्रियः ॥

श्रावणीतस्त्वधारभ्य ग्रहेण संयुतं हरिं ।

पूर्वधत्सोपवासस्तु यावत्स्यात् श्रावणी पुनः ॥

व्रतावसाने दद्याच्च ब्राह्मणाय घृतं बहु ।

व्रतेनानेन चीर्षेण दीर्घजोवितमाप्नुयात् ॥

आरभ्य प्रीठपादीतो नित्यश्चाद्रपदाहये ।

सङ्घर्षणं पूजयेत्तु यावद्भाद्रपदी पुनः ॥

व्रतावसाने दद्याच्च गवां मिथुनमुत्तमं ।

व्रतेनानेन भवति नित्यमाञ्जायतो नरः ॥

आश्वयुज्यामथारभ्य नित्यमेवाग्निनीषु च ।

अर्चयेत्तान्नाभन्तु वासुदेवमुपोषितः ।

व्रतावसाने दद्याच्च कास्यं रौप्यं घृतं तथा ॥

ऋणान्यशैतानि मया नरेन्द

प्रोक्तानि ते पापहराणि नित्यं ।

नाकप्रदान्युत्तमपुरुषाणां

कामामिदान्येव यथेष्टदानि ॥

यतद्रूपाख्याह विश्वकर्मा ।

बलभद्रो नीलवासा लाङ्गुली मुषली शितः ।

नरनारायणो नीलो साक्षात् शुक्लजटाजिनी ॥

रघुस्यैकैकचरणौ मध्यस्थौ सदृशीतनू ।

बाणवाचासनयुतौ द्विचतुर्बाहुधारिणौ ॥

बुधुः सचापो द्विभुजो राजलक्ष्मणसहितः ।

शङ्खकीर्णोदकीपद्मचक्री प्रद्युम्न उच्यते ।

प्रतल्लण्डं ३३ अध्यायः ।] हेमाद्रिः ।

सङ्घर्षणः शङ्खपद्मचक्रकीमोदकोधरः ॥

शेषाणि धरणीव्रते विनीकनीयानि ।

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सर्व्वकामाप्तिव्रतं ।

—000—

युधिष्ठिर उवाच ।

अप्राप्तेन यथा दुःखमैश्वर्यादेर्नरोत्तम ।

तथा मनोरथैर्लक्ष्मणाशाहुःखं भवेन्नृणां ॥

ऐश्वर्याद्दृश्यते वापि सन्तते वापि लोपतः ।

अभीष्टादन्यतो वापि स्वपदादयेन विद्युतिं ।

नरो नाप्नोति नारी वा व्रतं तद्दृष्ट्वा मे मुने ॥

कृष्ण उवाच ।

सत्यमेतन्महाभाग दुःखप्राप्तिषु संशयः ।

ऐश्वर्य्यस्यैव वित्तस्य बन्धुवगेषुतस्य च ॥

तदेव श्रूयतां पार्थ यथा ज्ञेष्टाप्यदायुतिः ।

स्वर्गादिर्जायते सम्यगुपवासव्रते नृणां ॥

दादयर्चाणि राजेन्द्र प्रतिमासन्तु यानि वै ।

पुष्येर्ध्रुवैस्तथाशोभिरभीष्टैरपरैरपि ॥

आदितः कृत्तिकां कृत्वा कार्तिके नृपसत्तम ।

कृशरामाचनेवेद्यं पूर्व्वमासचतुष्टयं ॥

निवेदयेत् फाल्गुनादौ संयावन्तु ततः परं ॥

आषाढादिषु (१) देवाय पायसं विनिवेदयेत् ॥

(१) आषाढादिषु तुष्कं घमिति पुस्तकालये पाठः ।



तेन कृशरामान्नैवेद्यं पूर्वमासचतुष्टये निवेदयेत् । फागुना-  
दिषु संयावं ततः परं आषाढादिषु चतुष्टु मासेषु पायसं  
विनिवेदयेत् ।

तेनैवान्नेन राजेन्द्र ब्राह्मणान् भोजयेदुदुधः ।

पञ्चगव्यजले स्नानं तस्यैव प्राशनाच्छुचिः ॥

सम्यक् संपूज्य राजेन्द्र तमेव पुरुषोत्तमं ।

प्रणम्य प्रार्थयेद्दिवान् शुचिस्नातो यथाविधि ॥

नमो नमस्ते मम संशयोऽस्तु

पापस्य त्वं ससुपैतु पुण्यं ।

ऐश्वर्यवित्तादि सदाक्षयं मेऽ

क्षया च मे सन्ततिरच्युतास्तु ॥

तथाच्युत त्वं परतः परात्मा

ब्रह्मात्मभूतः परतः परात्मा ।

यथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं तत्

पापं हरे मे तु हराप्रभियं ॥

अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यद्भीषितं ।

तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥

एवं देवं समभ्यर्च्यं प्रार्थयित्वा यथाविधि ।

नैवेद्यं स्वयमश्रीयान्नित्यं श्रद्धासमन्वितः ॥

ततः संवत्सरस्यान्ते सुखं सुमोत्थितेऽच्युते ।

सष्टतं ताम्रपात्रम्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

शक्तितो दक्षिणां दद्यादच्युतः प्रीयतामिति ।

एवं त्रिसप्तमे वर्षे कुर्यादुदयापनस्ततः ॥

तदपि ब्राह्मणी स्थाप्या स्वविरा शाश्वरायणी ।  
 महासती रौप्यमयी तस्मिन्नाह्वा सदेव सा ॥  
 ततस्ते पूजयित्वा तु मास्यवस्त्रानुलेपनैः ।  
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र प्रणिपत्य विधानतः ॥  
 प्रतिसंबन्धरं दद्यादन्नपानं द्विजातये ।  
 ब्राह्मणाय तिलान् दद्यात् सहिरण्याव्यसंयुतान् ।  
 गासाथ दद्याद्विप्राय सवक्षाः कांस्यदोहनाः ।  
 शय्याश्च शक्तिं दद्याद्भक्त्या तिष्ठेत्तु केशवः ।  
 घटसप्ताच निर्दिष्टाः स्थाप्याः पूर्णजसोक्चक्षाः ॥  
 छत्रोपानद्वयुगैः सार्धं दत्त्वा न च्यवते नरः ।  
 तस्मात् सर्वं प्रयत्ने न दत्त्वा विप्रान् विमर्जयेत् ॥  
 नृत्यगीतेन राजेन्द्र नरः प्राप्नोति वाञ्छितं ।  
 सत्पतिं स्वर्गमौभाग्यमैश्वर्यञ्च तथैव च ॥  
 तद्वृत्तिमितमत्यन्तं ततो न च्यवते नरः ।  
 तस्मात् सर्वं प्रयत्ने न चात्मना चैव पूजयेत् ।  
 यतेताश्चयकामस्तु सदैव पुरुषोत्तम ॥

कृष्ण उवाच ।

अत्रापि श्रूयते काचित् सिद्धा स्वर्गे महावता ।  
 नारी तपस्विनी भूत्वा प्रख्याता शाश्वरायणी ॥  
 समस्तसन्देहहरा सदा स्वर्गोक्तसां हिता ।  
 कष्ठांश्चिदेव जाले तु देवराजः शतक्रतुः ।  
 पूर्वोद्धारितं राजन् पप्रच्छेदं वृहस्पतिं ॥  
 पूर्वोद्धारितः पूर्वो धे बभूवुः सुरेश्वराः ।

तेषां चरितमिच्छामि श्रोतुमङ्गिरसां वर ॥  
 एवमुक्तस्तदा तेन देवेन्द्रेणामलघुतिः ।  
 प्राह धर्मभृतां चोष्ठः परमर्षिर्हृदस्यतिः ॥  
 आत्मनः समकाशीनं मामवेहि सुरेश्वर ।  
 ततः परमयं देवो ब्रह्मस्यतिसमन्वितः ॥  
 ययो यत्र महाभागा सम्यगास्ते तपस्विनी ।  
 सा तौ दृष्ट्वा समायातो देवराजब्रह्मस्यती ॥  
 सम्यग्दर्शनं संपूज्य प्रणिपत्याह सुव्रता ।  
 नमोऽस्तु देवराजाय त्रैवाङ्गिरसे नमः ॥  
 यद्वा कार्यं महाभागैः सकलन्तदिहोच्यतां ।  
 यदि कर्तुं मया शक्तं तत् करिष्येऽविमृश्य च ॥

ब्रह्मस्यतिरुवाच ।

आवाभ्यामागतो भद्रे प्रष्टुमत्राभिकाङ्क्षिनो ।  
 यच्च कार्यं महाभागे तत्पृष्टं कथयस्व मां ॥  
 यदि स्मरसि कल्याणि पूर्वन्दचरितानि वै ।  
 तदास्याहि महाभागे देवेन्द्रस्य कुतूहलं ॥

शाश्वारायण्युवाच ।

वत्से पूर्वसुरेन्द्रस्य ततश्च प्रथमे हि यः ।  
 तज्ज्ञात् पूर्वतरा ये च तस्यापि प्रथमश्च यः ॥  
 तेषां पूर्वतरा ये वै विद्मि तानखिलानहं ।  
 तेषाञ्च चरितं कृतञ्च जानाम्यङ्गिरसां वर ॥  
 मन्वन्तराण्यनेकानि सृष्टयस्त्रिदिवीकसः ।  
 सप्तर्षीञ्च वदन्कृ वेदिम नमूनाञ्च सुताञ्च यान् ॥

एवमुक्त्वा सुरेन्द्राणां सा शक्तं शाश्वरायणी ।  
 कथयामास आचार्यं तदापि कथयामि ते ॥  
 शृणु वत्स नकुकर्णो देवदेवतदुर्जायः ।  
 स लोकेकपालान् समरे विजित्य सहदेवतैः ।  
 इन्द्रस्यायतनं पश्चात् प्रविवेश सुनिर्भयः ॥  
 तं दृष्ट्वा सहसा प्राप्तं शक्रः शय्यातले लुठन् ।  
 जगोप सहसा श्रान्तं नकुकर्णभयाद्दिवं ।  
 दानबं शक्रशयने प्रणिपातपुरःसरः ॥  
 वासुदेवस्त, दुर्हत्तं दृष्ट्वा देवतकण्ठकं ।  
 चकार कण्ठपङ्कणं वामवस्त्रेन हृषितः ॥  
 ततः कृष्णश्च तरसा गृह्य दीर्घ्यां ग्रनैः ग्रनैः ।  
 पीडयामास विह्वलं नदस्तं भेरवान् रवान् ॥  
 ममार दानवेन्द्रोऽसौ बलाद्गन्तार्त्तपञ्जरः ।  
 निर्जंगाम ततः सोऽपि शय्यामूलमवाक् शिरः ॥  
 तृष्टाव हरिमामीनः शङ्खचक्रगदाधरं ।  
 एतद्दृष्टं मया शक्र उवाच सुरराट् प्रति ॥  
 ततः कुरु तपो रौद्रं देवराजस्तपस्त्रिणो ।  
 उवाच जानासि कथं त्वमेतत् शाश्वरायणि ॥

शाश्वरायणुवाच ।

सर्वं एव हि देवेन्द्र जगन्मा ये सुरेन्द्रराः ।  
 बभूवुश्चरितं तेषां श्रुतं दृष्टन्तवैव च ।

इन्द्र उवाच ।

किन्दृष्टं वद धर्मज्ञे त्वयानघे यदृच्छया ।  
 स्वर्लोके वसतिं प्राप्ता यथान्यायेन केनचित् ॥  
 अहो सर्व्वव्रतानाञ्च ह्युपोषितमयोहतं ।  
 प्रधानतरमत्यन्त स्वर्गवासप्रदं मतं ॥  
 एवमुक्त्वा ततस्तेन देवेन्द्रेण तपस्विनी ।  
 प्रत्युवाच महाभागा यथा तच्छाश्वरायणी ॥  
 समर्थैरर्चिता देवः प्रतिमासं सुरेश्वर ।  
 यथोक्तव्रतमासाद्य समवर्षाणि पूजितः ॥  
 तस्यैवं कर्मणां व्यामिरच्य ताराधनस्य मे ।  
 देवलोकादभिमताद्देवराज यदच्युतिः ॥  
 स्वर्गं द्रव्यमश्रेयश्वर्यं मततं यानि वाञ्छति ।  
 नरः प्राप्नोति तत्सर्व्वं तीर्षणीयस्तनः प्रभुः ॥  
 एतत्ते पूर्वं देवेन्द्रचरितं सकलं मया ।  
 स्वर्गवासालयत्वञ्च मासादच्युतपूजनात् ॥  
 यथा च कथितं देव पृच्छतस्त्रिदशेश्वर ।  
 धर्मार्थकाममोक्षञ्च वाञ्छितं विबुधाधिपैः ।  
 विष्णोराराधनायान्यत्परमं सिद्धिकारणं ॥  
 तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा देवराजदृष्टहस्यती ।  
 तां तथेत्युच्यतः साध्वीं चेरतुश्चापितद्वतं ॥  
 तस्मात्पार्थ प्रयत्नेनप्र तिमासं समाहितः ।  
 मासि मास्यच्युतं पूज्य भवेथास्तस्मान्नास्तादा ।  
 ये शाश्वरायणि कथां चरितव्रतेन  
 वर्षाणि सप्त विधिना सुधियो नयन्ति ।

ते खर्गलीकमभिस्रभ्य कृताधिवासाः  
कल्पायुतं सुतशतैरपि न च्यवन्ति ॥

इति श्रीभविष्योत्तरे ब्राह्मरायणीव्रतं ।

—०००—

वशिष्ठ उवाच ।

शृणुष्व च महीपाल व्रतं विष्णुपदत्रयं ।  
सर्वपापप्रशमनं यज्जगाद् पुरा हरिः ॥  
दक्षः प्रजापतिः पूर्व्वं विष्णुमाराध्य पृष्टवान् ।  
वदुशच विपत्त्यायां स सृष्टावरिसूदनः ॥

दक्ष उवाच ।

भगवन् सर्व्वकर्तृत्वमादिष्टं मे स्वयम्भुवा ।  
ब्रह्मणा देवदेवेन तवादेशेन केशव ॥  
विपत्सेन जगन्नाथ समसृष्टिः कृता तव ।  
विवशासङ्गविशमात्तन्माचक्ष्व चाच्युत ॥

वशिष्ठ उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा दक्षेण देवदेवो जनार्दनः ।  
आचष्ट दुःखत्रयदं व्रतं विष्णुपदत्रयं ॥  
सर्व्वारम्भविनिवृत्तिकारकं पापनाशमं ।  
संसारोच्छेदकै धीरैर्यज्ञेष्टं स्थिरबुद्धिभिः ॥  
तदहं तव राजेन्द्र व्रतानामुत्तमोत्तमं ।  
कथयामि समाचष्ट यथापूर्व्वं समासतः ॥  
आवाढे मासि राजेन्द्र पूर्वावाढावु पार्श्विव ।

( ८४ )

समस्यर्च्यं जगत्प्रथमं च्युतं नियतः शुचिः ।  
 पुष्यं धूपैस्तथा हृद्यैर्गन्धैः सागुरुचन्दनैः ॥  
 यथाविभवतस्तान्यैरत्नैर्वर्षासोभिरेव तु ।  
 नीरञ्जे हस्थितं तद्दृष्ट्व्यैर्विष्णुपदत्रयं ॥  
 समभ्यर्च्य यथाशक्त्या कोशवप्याग्रती न्यसेत् ।  
 यवांस दद्याद्विषाय श्रीपतिः प्रीयतामिति ॥  
 नक्तं भुञ्जीत राजेन्द्र हविष्यान्नं सुशोभनं ।  
 तथैषीत्तरषाढासु श्रावणे मासि मानवः ॥  
 तथैवाभ्यर्च्यं गोविन्दं तथा विष्णुपदत्रयं ।  
 विषाय च घृतं दत्त्वा प्रीययित्वा भुवःपतिं ॥  
 भुञ्जीत गौरसप्रायं मानवी मोनमास्थितः ।  
 स्त्री वा राजेन्द्रपूर्वासु तथा भाद्रपदासु वै ॥  
 फाल्गुने फाल्गुनी पूर्वा भवेदिति यदानृप ॥  
 त्रिविक्रमं तदा देवं पूर्वीं विधिना र्चयेत् ।  
 पदत्रयस्तु देवस्य समभ्यर्च्यं तु पार्थिव ॥  
 हिरण्यं दक्षिणां दद्यात् स्रज्जतिः प्रीयतामिति ।  
 नक्तं भुञ्जीत राजेन्द्र शान्द्यपाकत्रिवर्जितं ॥  
 एष एकोत्तरायोगे चैत्रे मासि विधिः स्मृतः ।  
 अपुत्रो लभते पुत्रमपतिर्लभते पतिं ॥  
 समागमं प्रवासञ्च तथा प्राप्नोति बान्धवैः ।  
 भद्रमैश्वर्यमारोग्यं सौभाग्यं वानुरूपतां ॥  
 प्राप्नुयादखिलानेतान् पूजयित्वा पदत्रयं ।  
 यान् यान् कामाक्षरः स्त्री वा हृदयेनाभिवाञ्छति ॥

तांस्तानाप्नोति निष्कामो विष्णुर्लोकं प्रपद्यते ॥  
पूर्वं कृत्वापि पापानि नरः स्त्रो वा नराधिप ।  
पदत्रयं व्रतञ्चात्र मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥

इति विष्णु धर्मीत्तरोक्तं विष्णुपदत्रयं ।

— ००० —

दश उवाच ।

अपुत्रता महादुःखमतिदुष्कं कुपुत्रता ।  
कुपुत्रः सर्वदुःखानां हेतुभूती यता मम ॥  
धन्यास्तु सुतं प्राप्य सर्वदुःखविवर्जिताः ।  
शतं प्रशान्तबलिनं भक्तं गुणविचक्षणं ॥  
स्वकर्मनिरतं नित्यं देवद्विजपरायणं ।  
अस्त्रञ्च वेदधर्मञ्च दानानाथसमाश्रयं ॥  
दैवानुकुलतायुक्तं युक्तं सम्यग्गुणेन तु ।  
प्राप्नोति पुत्रं वै योऽस्मान्मान्यो धन्यतरो भुवि ॥  
सोऽहमिच्छामि तत् श्रोतुं त्वत्तः कर्म महामुने ।  
येन तद्ब्रह्मणः पुत्रो लभ्यते मानवैरिह ॥

पुलस्त्य उवाच ।

एवमित्यन्नाहाभाग पित्रोः पुत्रसमुद्भवं ।  
सर्वदुःखोपशमनं येनैतत् कथयामि ते ॥  
कृतवीर्यो महीपालो हैहयानामभृत्परा ।  
तस्य श्रीशिवतीनाम्नी बभूव वरवर्षिणी ॥  
सा त्वपुत्रा महाभागा मंत्रेयी पर्यदृश्यत ।



गुणांश्च पुत्रलाभस्य कृतासनपरिग्रहा ।

कथयामास मैत्रेयी नान्जानन्तव्रतं ह्यभं ॥

मैत्रेय्युवाच ।

योऽयमिच्छेन्नरः कामं नारी वा वरवर्चिनी ।

स तं समाराध्य विभुं सम्यगाप्नोति केशवात् ॥

मार्गशीर्षे षडशिरऋक्षं यस्मिन्दिने भवेत् ।

तस्मिन् सम्प्राश्य गोमूत्रं ज्ञात्वा नियतमानसः ॥

पुष्पैर्धूपैस्तथा गन्धैरुपहारैश्च शक्तितः ।

वामपादमनन्तस्य पूजयेद्हरवर्चिनि ॥

अनन्तः सर्वकामाय अनन्तं भगवान् फलं ।

ददात्वनन्तश्च पुनस्तदिहैवान्धजम्बुनि ॥

अनन्तपुण्योपचयद्वारोऽस्येतिमहाव्रतं ।

तद्याभिलषितावामिं कुरु मे पुरुषोत्तम ॥

इत्युच्चार्यार्चनं तस्य यथाविधिविधानतः ।

समाहितमना भूत्वा प्रणिपातपुरःसरं ॥

विप्राय दक्षिणान्दद्यादनन्तः प्रीयतामिति ।

इत्युच्चार्य तद्या नक्तं भुञ्जीयात्तैलवर्जितं ॥

तद्यैव पुरुषं पीषे पुष्पैर्भगवत्कटिं ।

वामामभ्यर्च्य कर्त्तव्यं गोमूत्रप्राशनन्ततः ।

अनन्तः सर्वकामानामिति वीक्षारयेत् पुनः ॥

भुञ्जीत च तद्यान्धायं वाचयित्वा द्विजोत्तमान् ।

माघे मघासु तद्दहे वाङ्ग देवस्य पूजयेत् ॥

स्तन्यश्च फाल्गुनीयोगे फाल्गुने मासि भामिनि ।

चतुर्थेतेषु मासेषु गोमूत्रप्राशनं मतं ॥  
 ब्राह्मणाय तथादद्यात्तिलान् धान्यकमेव च ।  
 देवस्य दक्षिणं स्वाम्यश्चैत्रे चित्रासु पूजयेत् ॥  
 तत्रैव प्राशयेन्नात्र पञ्चगव्यं महीपते ।  
 किञ्चित्तु कनकं दद्याद्दयावन्मासचतुष्टयं ॥  
 वैशाखे तु विशाखायां वाहुं संपूज्य दक्षिणं ।  
 तत्रैव दद्यात् कनकं नक्तं भुञ्जीत वाग्यनः ॥  
 ज्येष्ठासु च काटिं पूज्य ज्यैष्ठे मासि शुभव्रत ।  
 आषाढासु तथाषाढे कुर्यात् पादार्चनं विभोः ॥  
 पादहयन्तु श्रवणे श्रावणे मासि पूजयेत् ।  
 घृतं विषय दातव्यं प्राशयेत् यथाविधि ॥  
 कार्तिकान्तेषु मासेषु प्राशनं दानमेव तु ।  
 सुखं प्रीष्टपदायोगे मासि भाद्रपदेऽर्चयेत् ॥  
 तद्देवाश्विने पूज्य हृदयश्चाश्विनीषु च ।  
 कुर्यात्समाहितमना स्नानं प्राशनमर्चनं ॥  
 अनन्तशिरसः पूजां कार्तिके कृत्तिकासु च ।  
 यस्मिन् यस्मिन् दिने पूजा तत्र तत्र दिने दिने ॥  
 नाम तस्य तु जप्तव्यं क्षुतःप्रक्षलितदिषु ।  
 घृतेनानन्तमुद्दिश्य पूज्यं मासचतुष्टयं ॥  
 ततश्चतुर्थं मासेषु मधुना कुलनन्दन ।  
 क्षीरेण श्रावणादौ च होमो मासचतुष्टयं ॥  
 प्रशस्तं सर्वं मासेषु हविष्यान्नेन भोजनं ।  
 एवं हादयभिर्भासेः पारण्यचितयं भवेत् ॥

व्रतावसाने चानन्तं सौवर्णं कारयेच्छुभम् ॥  
 राजतं मुषलञ्चैव तत्पार्श्वे विनिवेदयेत् ।  
 पुष्यधूपदिनैवेद्यं पूजा कार्या यथाविधि ॥  
 नाम्ना पीठोपरि हरिं मन्त्रैरेभिर्यथाक्रमं ।  
 नमोऽस्त्वनन्ताय गिरः पादो सर्वात्मने नमः ॥  
 शेषाय जानुयुगलं कामायेति कर्तिं नमः ।  
 नमोऽस्तु वासुदेवाय पार्श्वे संपूजयेद्दरेः ॥  
 सङ्कर्षणायेत्युदरं भुजौ सर्वास्त्रधारिणे ।  
 करणं श्रीकण्ठनाम्ना वै मुखमिन्दुमुखाय च ॥  
 हलञ्च मुपतञ्चैव स्वनाम्ना पूजयेद्बुधः ।  
 एवं संपूज्य गोविन्दं सितवस्त्रविभूषितम् ।  
 छत्रोपानसमायुक्तं स्रग्दामालङ्कृतं तथा ॥  
 नक्षत्रदेवताः पूज्या नक्षत्राणि च सर्वशः (१) ।  
 सीमं नक्षत्रराजानं मासान् संवत्सरं तथा ॥  
 नक्षत्रदेवतास्तु भविष्यत्पुराणात् ।  
 अश्विनो यमराज्जिर्धाता चन्द्र उमापतिः ।  
 अदितिर्ष्वीकपतिः सर्पाः पितरश्च भगोऽय्यमा ॥  
 रविस्त्वष्टा मरुच्चैव शक्राग्नी मित्र एव च ।  
 भवत्रा निर्वृतिस्तीर्थं विश्वे देवाः श्रियःपतिः ॥  
 वसवो वरुणस्तस्माद्जोऽह्विभ्रध्रपूषणौ ।  
 नक्षत्रदेवता ह्येता कथितास्तत देवताः ॥  
 द्वादशात्र घटाः कार्याः सतीयाद्यानसंयुताः ॥

(१) नक्षत्राणि चतुर्दश इति पुरुषकारे पाठः ।

एवं संपूज्य विधिवद्देवदेवं जनार्दनं ।  
 ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु वस्त्रेराभरणैः शुभैः ॥  
 एकं वा वेदवेदाङ्गपारगं संयतेन्द्रियं  
 पुराणञ्च धर्मविदं अच्यङ्क्तु प्रियम्बदं ॥  
 तस्य देयं समस्तं तदनन्तः प्रीयतामिति ।  
 अन्येषां ब्राह्मणानाम् तु देयं यिक्तानुसारतः ॥  
 अनेन विधिना भद्रे व्रतञ्चैतत् समाप्यते ।  
 पारिते च समाप्नोति सर्वानिष मनोरथान् ॥  
 पुत्रार्थिभिर्विक्तकामैर्भृत्यदारानभेषुभिः ।  
 पार्थिवद्विष मर्त्यैस्मिन्नारोग्यबलसम्पदः ।  
 एतद्व्रतं महाभागे पश्यं स्वस्वगनं परं ॥  
 अनन्तव्रतसंयुक्तं सर्वपापप्रणाशनं ।  
 तत् कुरुष्वेतदेव त्वं व्रतं शीलधनप्रदं ।  
 वरिष्ठं सर्वलोकस्य यदि पत्रमभोष्मि ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तमनन्तव्रतं ।

— ००० —

पुरूरवा उवाच ।

श्रीतुमिच्छामि भगवन् रूपसचं महाफलं ।  
 यत्समाप्तौ भविष्यामि दिव्यरूपधरो मुने ॥

अभिरुवाच ।

तदेतद्गतकामेन अन्विष्यी ब्राह्मणो गुरुः ।  
 ज्योतिषं योऽभिजानाति इतिहासांध कृत्स्नगः ॥  
 तत् प्रदिष्टेन विधिना पादाक्षपञ्चक्रमात् ।

फाल्गुन्यां समतीतायां कृष्णपक्षाष्टमी तु या ।  
 समूलां तां तु संप्राप्य व्रतं गृह्णीत मानवः ॥  
 उपोषितव्यं नक्षत्रं नक्षत्रस्य च दैवतं ।  
 वरुणश्च तथा चन्द्रं पूजयेद्विधिना नरः ॥  
 पूजयेद्देवदेवश्च भगवन्तं जगद्गुरुं ।  
 उपोष्याद्भानि देवस्य प्रयत्नेन च पूजयेत् ॥  
 ततोऽग्निहवनं कृत्वा पूजयित्वा तथा गुरुं ।  
 उपवासस्तु कर्त्तव्यो द्वितीयेऽहनि पार्थिव ॥  
 उपोष्य ऋषे विगते स्नात्वा संपूज्य केशवं ।  
 कृत्वाग्निहवनं यत्नया पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥  
 हविष्यान्नस्रभोक्तव्यं शृणु चाङ्गकर्म मम(१) ।  
 पादयोः कथितं मूलं प्राजापत्यन्तु जङ्घयोः ॥  
 अश्विनौ जानुयुगलं जङ्घयुग्मे च पार्थिव ।  
 सहिते ह्ये तथाषाढे गुह्यश्च सहिते स्मृते ॥  
 पूर्वोत्तरे च फाल्गुन्यौ कृत्तिका च कटिर्भवेत् ।  
 पार्श्वयोः कुक्षियुतयोर्नक्षत्रचित्तयं समं ।  
 उभे प्रोष्ठपदे राजन् रेवती च तथा भवेत् ॥  
 उरोऽनुराधासु प्रष्ठं धनिष्ठासु प्रकीर्तितं ।  
 भुजो ज्ञेयौ विशाखासु हस्ते प्रोक्ता तथा करौ ॥  
 अङ्गुल्यश्च तथा प्रोक्ता राजसिंह पुनर्वसो ।  
 अश्लेषायां नखाः प्रोक्ता ज्येष्ठार्यां तृप कश्चरः ॥  
 श्रवणे श्रवणौ ज्ञेयौ मुखं पुष्ये प्रकीर्तितं ।

(१) शृणु चाङ्गकर्म मम इति प. ठा. करं ।

दत्ताः स्वाती शतभिषा इतुः प्रोक्ता तथा नृप ॥  
 मघायां नासिके प्रोक्ते मृगशीर्षे च लीचने ।  
 चित्रा ललाटे विज्ञेया भरण्याञ्च तथा शिरः ॥  
 शिरोरुहास्तथार्द्रासु व्रतस्यान्ते नराधिप ।  
 चैवशुक्लावसाने तु सत्रं परिममाप्यति ॥  
 यद्यन्तरायं न भवेत् किञ्चिच्छौचं निमित्ताज ।  
 अङ्गक्रमेण सकलमृत्तवर्गमुपोषितः ॥  
 ततान्ते प्रयतः स्नात्वा पूजयेन्मधुसूदनं ।  
 चन्दनागुरुकपर्ूरमृगदर्भैः सकुङ्गमैः ॥  
 जातीफलैः सककौलैर्लवङ्गकुसुमैस्तथा ॥  
 बालगुरगुलुनिर्य्यासैः पुष्पैः कालोद्भवैः शुभैः ॥  
 धूपी नरेन्द्रागुरुणा चन्दनेन सुगन्धिना ।  
 दीपाद्य देया राजेन्द्र तिलतैलेन पूरिताः ॥  
 अग्नेषा वर्त्तयः कार्य्या महारजतरञ्जिताः ।  
 नैवेद्यञ्च तथा कार्य्यं परमान्नं पूरिणा ॥  
 दध्ना क्षीरघृताभ्याञ्च मधुना च गुडैश्च च ।  
 मितया च तथा भक्ष्यैः फलेसूर्लैर्यथाविधि ॥  
 अपूपैः पानकैर्हृद्यैः शीतलैश्च सुगन्धिभिः ॥  
 लवणस्य च पात्राणि क्लृप्तरञ्च निवेदयेत् ।  
 सर्व्व वीजानि राजेन्द्र भूषणानि च शक्तितः ।  
 महार्हाणि च वस्त्राणि भक्त्या प्रयतमानसः ।  
 तद्विष्णीः परमित्येवं हीमः कार्य्याश्चानन्तरं ॥  
 हादगाक्षरको मन्त्रस्त्रीशूद्रेषु विधीयते ।

( ८५ )

घृतभाक्षिकसंयुक्तान् जङ्घ्यात्तिसतण्डुलान् ॥  
 ततस्तु दक्षिणा देया गुरवे नृपसत्तम ॥  
 नागानि च प्रदेयानि ग्रामाणि विविधानि च ।  
 तुरगाणि च मुख्यानि रत्नानि विविधानि च ॥  
 ब्राह्मणस्तु पिता श्रेयो रूपसत्रप्रदर्शकः ।  
 रूपसौभाग्यलाभण्यजन्मारीग्यप्रदायकः ॥  
 राज्यस्य वा द्विजत्वस्य बहुवित्तस्य दायकः ।  
 न तस्य निष्कृतिः शक्या गन्तुं दानेन भूरिणा ॥  
 गुरुप्रसाद एवात्र दक्षिणा न तु कारणं ।  
 तस्मात् प्रसादमाकाङ्क्षेद्रूपसत्रप्रदर्शकः ॥  
 अथश्रुत्वा तस्य दातव्यं घृतपूर्णन्तु भाजनं ।  
 चतुःपलन्तु कांस्यस्य सुवर्णं काञ्चनस्य च ॥  
 ततः परं भोजनीयाः स्वशक्त्या द्विजपुङ्गवाः ।  
 स्रवणस्त्रीरदध्याख्यगुडभक्षसितोद्दटं ॥  
 भोजनं पानकीपेतं पश्चाद्देया च दक्षिणा ।  
 वस्त्रयुग्मं प्रदातव्यं ब्राह्मणाय नवं शुभं ।  
 बहुमूल्यं शुभश्चैव महारजतरञ्जितं ॥  
 सप्त बीजानि देयानि स्रवणं कुप्यमेव च ।  
 यक्षान्यदप्यभीष्टं स्याच्छोपानहमेव च ॥  
 वित्तशाठ्यं न कर्त्तव्यं ह्यदाने महौपते ।  
 अथश्रुत्वा तस्य सचेऽस्मिन् घृतपूर्णन्तु भाजनं ॥  
 चतुःपलन्तु कांस्यस्य सुवर्णं काञ्चनस्य च ।  
 व्रतेनानेन चीर्षेण देहत्यागे दिवं व्रजेत् ॥

तत्रास्ते सुचिरं कालं मानुषे यदि जायते ।  
 राजा भवति धर्मज्ञो ब्राह्मणो वा धनान्वितः ॥  
 कुलं महति सभूतो रूपेणाप्रतिभो भुवि ।  
 आरोग्यं महदाप्नोति सौभाग्यमपि चात्तमं ॥  
 लावण्यं बुद्धिनिधाञ्च मतिं धर्मैऽतिग्राह्यती ।  
 संपूर्णचन्द्रप्रतिमः सर्व्वं सत्त्ववशंकरः ॥  
 नरा भवति राजेन्द्र नारी चाप्सरसां समा ।  
 सुभगा दर्शनैया च लावण्यगुणसंयुता ॥  
 बहुधान्या बहुधना बहुभूषणसंयुता ।  
 भर्तुं धात्वन्तदयिता लोके ख्याता च सद्गुणैः ।  
 नित्यारोग्यवती कान्ता सर्व्वं दोषविवर्जिता ॥  
 चन्द्रानना नीलसरोजनेषा  
 चैलोक्यकान्ता पतिव्रता च ।  
 भवत्यवश्यं सुभगा सुशीला  
 लावण्ययुक्ता यशसा त्रिधा च ।  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं रूपसत्त्वतः ।

— ००० —

अथ नीराजनविधिः ।

राम उवाच ।

नीराजनं विधिस्त्वत्तः श्रोतुमिच्छामि सत्तम ।  
 कथं कार्या नरेन्द्रस्य शान्तिर्नीराजनी प्रभो ॥  
 पुष्कर उवाच ।



पूर्वोत्तरे तु दिग्भागे नगरे च मनोहरे (१) ।  
 विस्तीर्णं कारयेद्राजन् सुमनोहरमाश्रमं ॥  
 कटैर्गुप्तं कुशास्तीर्णं पताकाध्वज शोभितं ।  
 तीरणत्रितयं तत्र प्राप्नुखं कारयेच्छुभं ॥  
 कार्यं घोडशहस्तान्तु तीरणन्तु समुच्छयेत् ।  
 वैपुल्यं दशहस्तान्तु तथा कार्यं भृगूक्षमं ॥  
 तीरणादृक्षिणे भागे तत्र कार्यमथाश्रमं ।  
 देवतार्चा भवेत्तत्र तथाग्निहवनक्रिया ॥  
 अष्टहस्तायतीत्सेधमुल्लु कानान्तु वामतः ।  
 कार्यं भवति शष्काणां कूटं भृगुकुलीद्वह ॥  
 पञ्चरङ्गकसूत्रेण शतग्रन्थि मंनोरमा ।  
 मध्यमे तीरणे कुर्याच्छतपाशान्तु मध्यगां ।  
 छादयित्वा कुशैस्तान्तु मृदा संछादयेत्पुनः ॥  
 तस्याश्च लङ्घनं वर्ज्यं प्रपन्नात् सर्व्वजन्तुभिः ।  
 न लङ्घिता च यावत्स्यात् प्रथमं राजहस्तिना ॥  
 चित्रान्यक्ता यदा स्वातिं सविता प्रतिपद्यते ।  
 ततः प्रभृतिकर्त्तव्या यावत् स्वाती रवि स्थितः ॥  
 आश्रमे प्रत्यङ्गं देवाः पूजनीया हिजोत्तम ।  
 ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च शक्रश्चैवानिलानलौ ॥  
 विनायकः कुमारश्च वरुणो धनदो यमः ॥  
 विश्वे देवा महाभागा उच्चैःश्रवस एव च ॥

(१) पूर्वोत्तरे तु नगरे देशे तु सुमनोहरे रति पुलकाकरे पाठः ।

अष्टौ महागजाः पूज्यास्तेषां नामानि मे शृणु ।  
 कुमुदैरावणः पद्मः पुष्पदन्तोऽथ वामनः ॥  
 सुप्रतीकोऽङ्गनी नील एतेऽष्टौ देवयोगयः ॥  
 पूजा कार्या षडर्चाणां तथैव च पुरोधसा ।  
 ततस्तु जुहुयाद्ब्रह्मो पुरोधाः सुममाहितः ।  
 यथाभिहितदेवानां मन्त्रैस्तस्मिन्प्रसन्नकैः ॥  
 तथा च मन्त्रहोनानां प्रणवेन महाभुज ॥  
 समिधः क्षीरतृष्णाणां तथामिद्वार्यकानि च ।  
 हुत्वा च कलशान् कुर्यात् सोदकान् घनसंयुतान् ॥  
 पूजितान्माल्यगन्धैश्च वनस्पतिविभूषितान् ।  
 पञ्चरङ्गकमूत्रैश्च कुर्याद्द्वन्द्वयुगन्तथा ।  
 भङ्गातशालिसिद्धार्धैश्चाकुष्ठप्रियङ्गवः ॥  
 तीरणात् पश्चिमे भागे कलशैः पूर्वकल्पितैः ।  
 स्नातः संस्त्रापनीयाः स्युर्ध्वं पूतैर्गजोत्तमाः ॥  
 तुरगाश्च महाभाग अलङ्कृत्य ततस्तु तान् ।  
 ततोऽभिषेकं नागस्य तथा तं तुरगस्य च ॥  
 अक्षपिण्डं ततो देयमभिमन्त्र्य पुरोधसा ।  
 तस्याभिनन्दने राज्ञो विजयः परिकीर्त्तितः ॥  
 त्यागे च तस्य विघ्नेयं महद्द्वगमुपस्थितं ।  
 निष्क्रामयेत्तीरणैस्तु ततोहि प्रथमं गजं ॥  
 तत्रापि प्रथमं राम अभिषिक्तं गजोत्तमं ।  
 तस्यादौ तुरगश्चैव राज्ञो मरणमादिशेत् ॥  
 दुर्भिक्षं तत्र विघ्नेयं गोश्वरोद्भस्म लङ्घने ॥

लङ्घयेदामपादेन यदि तं नृप कुञ्जरं ।  
 राज्ञीपुरीहितामात्यराजपुत्राङ्घ्रितं भवेत् ॥  
 राज्ञस्तु मरणं ब्रूयादात्मानिसं पदा यदा ।  
 राज्ञो विजयमाचष्टे लङ्घयेद्विधिणेन तं ॥  
 राजहस्तिनि निष्क्रान्ते सान्त्वयस्व क्षयो भवेत् ॥  
 निष्क्रामेयुस्ततः सर्वं प्राप्नु स्वास्तोरणैर्गजाः ॥  
 ततोऽग्नाः सुमहाभाग ततस्तु नरसप्तम ।  
 ततश्छत्रं ध्वजश्चैव राजलिङ्गानि यानि च ॥  
 ततस्तु तानि संस्थाप्य पूजयेदायुधानि च ।  
 पञ्चरङ्गकमुत्रे ण यास्ताः प्रतिसराकृताः ॥  
 दूष्यादूष्येति मन्त्रे ण निबध्नीयात् पुरीहितः ।  
 सर्वेषां नृप नागानाम्तरङ्गाणाञ्च भार्गव ॥  
 स्वर्गहेष्वथ ते नेयाः कुञ्जरास्तुरगैः सह ।  
 स्वातिस्थः सविता यावत् तावच्छालासु संस्थितान् ॥  
 पूजयेत् सततं राम माक्रोशेन च ताडयेत् ।  
 राजचिह्नानि सर्वाणि पूजयेदाश्रमे सदा ॥  
 पूजयेद्गुरुं नित्यं तथा सुविधिवद्भिजान् ।  
 भूतेज्या च तदा कार्य्या राज्ञो बलिभिरुत्तमैः ॥  
 आश्रमो रक्षणीयः स्यात् पुरुषैः शस्त्रपात्रिभिः ।  
 वसेतामाश्रमे नित्यं संवत्सरपुरीहितौ ॥  
 अश्ववैद्यप्रधानश्च तथा नागभिक्षुश्चरः ।  
 क्षीचितैश्च तथा भाव्यं ब्रह्मचारिभिरेश च ॥  
 स्वातिं त्वक्ता यदा सूर्यो विगाथां प्रतिपद्यते ॥

अन्तद्वय्याहिने तस्मिन् वाहनन्तु विशेषतः ।  
 पूजिता राजलिङ्गाद्य कर्त्तव्या नरहस्तागाः ॥  
 हस्तिनन्तुरगं कृतं शङ्खचापश्च दुग्धिं ।  
 ध्वजं पताकां धर्मज्ञ चापन्तमभिमन्त्रयेत् ॥  
 अभिमन्त्र्य ततः सर्वान् कुर्यात्कुञ्जरधूर्गतान् ।  
 कुञ्जरोपरिगो स्यातां संवत्सरपुरोहितौ ॥  
 अश्ववैद्यप्रधानश्च तथा नागभिषग्वरः ।  
 ततोऽभिमन्त्रितं राजा समारुह्य तुरङ्गमं ॥  
 निष्क्रम्य तीरणैर्नागमभिमन्त्रितमारुहेत् ।  
 तीरणेन विनिष्क्रम्य कुर्यात् सुरविवर्जितं ॥  
 बलिं विभज्य विधिवद्वाजा कुञ्जरधूर्गतः ।  
 रत्नैरलङ्कृतः सर्वैर्विज्यमानश्च चामरैः ॥  
 उन्मुकानान्तु निचयमदीपितमनन्तरं ।  
 राजा प्रदक्षिणीकुर्यात् त्रीन्वारान् सुसमाहितः ॥  
 चतुरङ्गबलोपेतः सर्वसैन्यसमन्वितः ।  
 पौरैः क्लिलिकलाशब्दैः सर्ववादिचनिस्वनैः ।  
 बलितैश्च पदातीनां दृष्ट्वा तान् मनुजोत्तम ॥  
 एवं कृत्वा गृहं गच्छेद्वाजसैन्यपुरःसरः ।  
 जनं संपूज्य च महत्सर्वमेव विसर्जयेत् ॥  
 शान्तिर्नाराजनाख्येयं कर्त्तव्या वसुधाधिपैः ।  
 चेमठद्विकरो राम नरकुञ्जरवाजिनां ॥

धन्या यशस्या रिपुनाशनी च

सुखावहा शान्तिरनुत्तमा च ।

कार्थ्या नृपैराद्भविद्भिहेतोः

सर्व्वप्रगल्हेन भृगुप्रवीर ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तो नीराजनविधिः ।

भीष्म उवाच ।

उपवासेष्वगस्तस्य तदेव फलमिच्छतः ।

अनभ्यासेन रोगाहा किमिष्ट व्रतमुच्यतां ॥

पुलस्त्य उवाच ।

उपवासेष्वगस्तानां नक्तं भाजनमिष्यते ।

यस्मिन् व्रते तदप्यत्र श्रूयतां वै व्रतं महत् ॥

आदित्यशयनं नाम यथावच्छङ्करार्चनं ।

येषु नक्षत्रयोगेषु पुराणज्ञा प्रचक्षते ॥

यदा हस्तेन समस्यामादित्यस्य दिनं भवेत् ।

सूर्यस्य वाद्य संक्रान्ती सा तिथिः सर्व्वकामिकी ॥

उमामहेश्वरस्यार्चामर्चयेत् सूर्यनामभिः ।

सूर्यार्चां शिवलिङ्गं च उभयं पूजयेदतः ॥

उमापते रवेर्वापि न भेदः क्वचिदिष्यते ।

यस्मात्तस्मान्नृपत्रे ष्ट गृहे शम्भुं समर्चयेत् ॥

अर्चा प्रतिमा । उमामहेश्वररूपन्तु प्रथमकृष्णाष्टमीव्रतीक्तं  
वेदितव्यं ।

हस्तेन सूर्याय नमोऽस्तु पादा-

वर्काय चित्रासु च गुल्फदेशं ।

स्वातीषु जङ्घे च सुरोत्तमाय  
 धात्रे विशाखासु च जानुदेशं ॥  
 तथानुराधासु नमोऽस्तु पूज्य  
 ऊरुहयं देवसहस्रभानोः ।  
 ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्य-  
 मिन्द्राय सोमाय कटिञ्च मूले ॥  
 पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिं  
 त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय ।  
 तीक्ष्णांशवे तु श्रवणे च वक्षः  
 कक्षे धनिष्ठासु विक्रान्तमाय ॥  
 वक्षस्थलं ध्वान्तविनाशनाय  
 जलाधिपर्चे प्रतिपूजनीयं ।

जलाधिपर्चं, श्रततारा ।

पूर्वोत्तराभाद्रपदहये च  
 वाहू नमश्चन्द्रकराय पूज्यौ ॥  
 सान्नामधीशाय करहये च  
 संपूजनीयं नृप रेवतीषु ।  
 नखानि पूज्यानि तथाऽग्निनीषु  
 नमोऽस्तु सप्तारम्भधुरन्धराय ॥  
 कठोरधास्त्रे भरणीषु घृष्टं  
 दिवाकरायैत्यभिपूजनीया ।  
 पीवाग्निऋचेऽधरमम्बुजेषं  
 संपूजयेद्भारतरोहिणीषु ॥  
 ( ८६ )

अग्निश्चान्तु कृत्तिका ।

सृगोत्तमाङ्गे दशनाः पुरारे  
संपूजनीया हरये नमस्ते ।  
नमः सविते इति शाङ्करे तु  
नासाक्षिपूज्याथ पुनर्व्वंसौ च ॥  
शाङ्करमाद्रौ ।

ललाटमश्रीरुहवल्गभाय  
पुष्ये ऽलकाव्येदसमीरणाय ।  
साप्ये ऽथ मौलिं विबुधप्रियाय  
मघासु कर्णाविति गीर्गणेशः ॥

साप्यं अश्लेषा ।

पूर्वासु गोब्राह्मणनन्दनाय  
नेत्राणि संपूज्यतमानि शश्वोः ।  
अथोत्तराफाल्गुनिषु भ्रुवौ च  
विश्वेश्वरायेति च पूजनीयौ ॥  
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशपद्मशूल  
कपालसर्पेन्दुधनुर्धराय ।

गजासुरानङ्गपुरान्धकारे  
विनायकभूलाय नमः शिवाय ॥  
इत्यादि चास्त्राणि च पूज्य नित्यं  
विश्वेश्वरायेति शिरोऽभिपूज्यं ।  
भीतव्यमत्रैव मतैस्तमस-  
ममांसमचारमभक्तशेषं ॥

इत्येवंविधनक्तानि कृत्वा दद्यात् पुनर्द्वयं ।

शालीयतण्डुलप्रस्थमुद्धस्वरमये घृतं ।

उद्धस्वरमये, ताम्रमये ।

संस्थाप्य पात्रे विप्राय सहिरस्यं निवेदयेत् ।

सप्तमे वस्त्रयुग्मस्य पारणे त्वधिकं भवेत् ॥

चतुर्दशे तु संप्राप्ते पारणे भारताब्दिके ।

आब्दिके, सांवत्सरिके । सप्तविंशत्या दिवसेरेकैकम्पारणमिति-  
संवत्सरे अष्टादशदिनाधिके चतुर्दशपारणानि भवन्ति ।

ब्राह्मणान् भीजयेद्भक्त्या गुह्यक्षीरघृतादिभिः ॥

कृत्वाथ काञ्चनं पद्ममष्टपत्रं सकर्षिकं ।

शुद्धमष्टाङ्गुलं तच्च पद्मरागदलान्वितं ॥

शय्यां विलक्षणां कृत्वा विशुद्धयन्निवर्जितां ।

सोपधानकविश्रामां स्वास्तीर्णां चरणाश्रयां ॥

पादुकोपानङ्गुलैश्चामरासनदर्पणैः ।

भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः ॥

तस्यां निधाय तत्पद्ममलंकृत्य गुणान्वितं ।

कपिलां वस्त्रसंयुक्तामतिशीलां पयस्विनीं ॥

रौप्यक्षुरां हेमशुक्लीं सवक्त्रां कांस्यदोहनौ ।

दद्यान्मन्त्रेण पूर्वार्द्धे वज्रिनाभिविलङ्घयेत् ॥

यथैवादित्यशयनमशून्यं तव सर्वदा ।

कान्ध्या धृत्वा श्रिया रत्या तथा मे सन्तु मिदयः ॥

यथा न देवाः श्रेयांसि त्वदन्यमनघं विदुः ।

तथा मामुहराशेषदुःखसंसारसागरात् ।



ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च विसर्जयेत् ॥

शय्यासनादि तत्सर्वं द्विजस्य भवनं नयेत् ।

इदं महापातकभिन्नराना

मघक्षयं वेदविदो वदन्ति ।

न बन्धुपुत्रेण धनैर्वियुक्तः

पत्नीभिरानन्दकरःसुराणां ।

नाभ्येति रोगं न च दुःखशीकं

यावाप्य नारी कुरुतेऽथ भक्त्या ॥

इति पठति शृणोति वा य इत्थं

हरिशयनं पुरुङ्गतवल्गुभः स्यात् ।

अपि नरकगतान् पितृनषेष्टेषा-

नपि दिवमानयतीह यः करोति ॥

इति पद्मपुराणोक्तमादित्यशयनव्रतं ।

—००@००—

अश्विन्यामहोरात्रं वा दिनानि त्रिः विंश रोगो जायते ।  
अश्विनौ देव त्रिः । क्षीरलब्धकनैवेद्यं । नीलोत्पलपुष्पं । छत-  
गुग्गुक्षुधूपः । देवस्येति पूजामन्त्रः । क्षीरद्वयस्य समिधो  
होमद्रव्यं ॥ १ ॥

भरण्यां मृत्युः सन्देहो वा । दिनानि एकविंशतिः । यमो  
देवता । गुडपूपार्कनैवेद्यं । कृष्णसुरभिपुष्पं । सुरभी तुलसी ।  
पुत्रकेशगुडधूपः । त्र्यम्बकं यजामह इति पूजामन्त्रः । छतमधु-  
तिसान् जुहुयात् ॥ २ ॥

कृतिकायां दिनानि सप्त । अग्निर्देवता । हृतीदनं नैवेद्यं ।  
यूथिकापुष्यं । सर्पिर्धूपः । पुनस्तु मां देवजना इति पूजा-  
मन्त्रः । हृतं प्रधानद्रव्यं ॥ ३ ॥

रोहिण्यां दिनान्यष्टौ । प्रजापतिर्देवता । चीरोदनं नैवेद्यं ।  
कमलपुष्यं । सरस्वी धूपः । नमो ब्रह्मणे नमोऽगस्त्य इति मन्त्रेण  
पूजा । सर्वधान्यानि जुहुयात् ॥ ४ ॥

मृगशिरसि पञ्चदिनानि । सौमो देवता । पायसनैवेद्यं ।  
कुङ्कुमपुष्यं । दशाङ्गीधूपः । नवीनवी भवति इति पूजामन्त्रः ।  
गव्यं पयः प्रधानद्रव्यं ॥ ५ ॥

आर्द्रायां सप्तः । रुद्रो देवता । सौहालिका नैवेद्यं । बीरि-  
कापुष्यं जीवकः धूपः । नमः शम्भवायेति पूजामन्त्रः । मध्याह्नं  
प्रधानद्रव्यं ॥ ६ ॥

पुनर्वसौ दिनानि सप्त । अदितिर्देवता । गुहोदनं नैवेद्यं ।  
मल्लिकापुष्यं । मलयजधूपं । अदितिर्यौरदितिरिति पूजामन्त्रः ।  
हृततण्डुलं प्रधानद्रव्यं ॥ ७ ॥

पुष्ये दिनानि सप्त । गुरुर्देवता । खण्डमण्डका नैवेद्यं । सरोरुह-  
पुष्यं । षठिकाधूपः । हृहस्यते अतीयेति मन्त्रेण पूजा । हृतपाय-  
सम्यधानद्रव्यमिति ॥ ८ ॥

अश्लेषायां दिनानि दश नागादेवताः । हृतनैवेद्यं । अग्नित-  
पुष्यं । हृतगुडधूपः । नमोस्तु सूर्येभ्य इति पूजामन्त्रः । दधिहृत-  
शालियवं प्रधानद्रव्यं ॥ ९ ॥

मघायां सप्तः । सन्देहोवा । दिनान्येकत्रिंशतिः । पितरो-  
देवताः । हृतपुराणे नैवेद्यं । चम्पकपुष्यं । गुग्गुलुधूपः । पितु-

स्तुस्तीषमिति पूजामन्त्रः । तिलतण्डुलमधु घृतपात्राच्च प्रधानद्रव्यं ॥ १० ॥

पूर्वफागुन्यान्दिनानि पञ्चदश । भगोदेवता । कृशरानैवेद्यं । श्वेतकरवीरपुष्पं । विश्वफलधूपः । यन्मे गर्भेवसतइति पूजामन्त्रः । समत्रीह्वयः प्रधानद्रव्यं ॥ ११ ॥

उत्तरफलगुन्यान्दिनान्येकविंशतिः । अर्धमा देवता । रक्तशाल्योदनं नैवेद्यं । रक्तोत्पलपुष्पं । घृतगुग्गुलुधूपः । अहं रुद्रे भिर्वसुभिरिति पूजामन्त्रः । प्रियङ्गवः प्रधानद्रव्यं ॥ १२ ॥

हस्ते मृत्युसन्देशो । दिनानि पञ्चदश । सविता देवता । अपूपनैवेद्यं । रक्तकरवीरपुष्पं । शङ्खकीधूपः । उदुत्यन्नातवेदसमिति पूजामन्त्रः । दधि प्रधानद्रव्यं ॥ १३ ॥

चित्तायां दिनानि दश । त्वष्टा देवता । मोदकानैवेद्यं जयापुष्पं । यूथिकापर्षकधूपः । चित्रं देवानामिति पूजामन्त्रः । चित्रोदनं प्रधानद्रव्यं ॥ १४ ॥

स्वात्यां मासा नयथा । वायुर्देवता । दध्योदनं नैवेद्यं । दमनकपुष्पं । कृष्णागुरुधूपः । सनः पितेव सूनव इति पूजामन्त्रः । घृतयवाकद्रव्यं ॥ १५ ॥

विशाखायां दिनानि पञ्चविंशतिः । इन्द्राग्नी देवते । घृण्णकानैवेद्यं । तुम्बरिका पुष्पं । देवदारुधूपः । इन्द्राग्नी आगतमिति पूजामन्त्रः । दध्योदनं प्रधानद्रव्यं ॥ १६ ॥

अनुराधायां दिनानि दश । मित्रोदेवता । कृशरानैवेद्यं । पीण्डरीकपुष्पं । चन्दनसिद्धरसधूपः । देव सवितः प्रसुव यज्ञमिति मन्त्रः । सूरणकन्दं प्रधानद्रव्यं ॥ १७ ॥

ष्येष्टायां दिनानि पञ्चदश । इन्द्रो देवता । शिवो देवता ।  
कर्पूरागुरुधूपः । पाटलिकापुष्पं । इन्द्रो मायाभिरिति पूजामन्त्रः ।  
सुरकन्दमूलं प्रधानद्रव्यं ॥ १८ ॥

मूले मृतुः । राक्षसो देवता । सप्तमाससुरापोलिकानैवेद्यं ।  
कृष्णसोम्वरिका पुष्पं । मेघशुद्धधूपः । ब्राह्मणान्नसंविधान इति  
पूजामन्त्रः । मूलकन्दः प्रधानद्रव्यं ॥ १९ ॥

पूर्वाषाढायां दिनानि सप्तविंशतिः । आपो देवता । मण्डकी  
नैवेद्यं । कङ्कारपुष्पं शैलजधूपः । किञ्चिदम्बरुणेति पूजामन्त्रः ।  
रक्तशाखयः प्रधानद्रव्यं ॥ २० ॥

उत्तराषाढायां दिनानि त्रिंशतिः । विश्वे देवा देवता ।  
विश्वपञ्चकनैवेद्यं । पञ्चवर्षपुष्पं । बालकधूपः । विश्वे देवास  
आगत इति पूजामन्त्रः । शङ्कलीखण्डानि प्रधानद्रव्यं ॥ २१ ॥

श्रवणे दिनानि नव । विष्णुर्देवता । क्षीरशर्कराघृतमण्डका-  
नैवेद्यं । जातीपुष्पं । दशाङ्गधूपः । अतो देवा अथन्तु न इति  
पूजामन्त्रः । रक्ततण्डुलाः प्रधानद्रव्यं ॥ २२ ॥

धनिष्ठायां दिनानि पञ्चदश वसवो देवता । वटवटका-  
नैवेद्यं । शतपत्रिका पुष्पं । घृतगुग्गुलधूपः । आयन्तामिह देवा  
इति पूजामन्त्रः । उडुम्बरउदकोद्भवानि प्रधानद्रव्यं (२३) ।

शतभिषायां दिनानि दश । वरुणो देवता । घृतवटका-  
नैवेद्यं । उदकोद्भवानि पुष्पं । कर्पूरागुरुधूपः । इमं मेहेति  
पूजामन्त्रः । उदकोद्भवानि पुष्पाणि प्रधानद्रव्याणि च (२४) ।

पूर्वभाद्रपदायां मृत्युः । अजैकपादेवता । दधिसर्पिणी  
नैवेद्यं । शतपत्रपुष्पं । सर्वाषधिधूपः । शमन्निरन्निभिः

करदिति पूजामन्त्रः । ग्राम्यं पूतिकरञ्च कुशाण्डखण्डानि च प्रधानद्रव्यं (२५) ।

उत्तरभाद्रपदायां दिनानि पञ्चदश । अहिबध्नो देवता । गुड-  
पल्लशीतीदनं नैवेद्यं । कर्पूरपत्रिका पुष्पं । घृतनिम्बपत्र  
भूपः । विष्णुर्योनिं कल्पयतु इति पूजामन्त्रः । आर्द्रमेघरधिर-  
दुग्धानि प्रधानद्रव्यं (२६) ।

रेवत्यां दिनान्यष्टौ । पूषा देवता । तिललड्डुकपिन्याकं नैवेद्यं ।  
मन्दारपुष्पं । गुग्गुलधूपः । हंसः शुचिघदिति पूजामन्त्रः ।  
घृतदुग्धानि फलानि जुहुयात् ॥ २७ ॥

यथोक्तब्राह्मणेन यस्य नक्षत्रस्य यदुक्तं द्रव्यं तदष्टौत्तरशतं  
जुहुयात् गायत्र्या ।

यथोक्तविधिरेवैषः सद्यः प्रत्ययकारकः ।

नक्षत्रतर्पणं यागस्तथारोग्यं प्रयच्छति ॥

पूर्वसमिद्धि (१) स्तिलैः क्षीराज्येनाष्टशतं जुहुयात् ।  
द्वादशनामानि मण्डले लिख्य पूजयेत् । मध्ये नक्षत्रदेवतां प्रति-  
ष्ठाप्य वस्त्रयुग्मे न वेष्टितां ब्राह्मणाय दद्यात् । रोगशान्तिर्भवति ।

इति गर्गाक्तो नक्षत्रक्षीमविधिः ।

—०—

मार्कण्डेय उवाच ।

यस्मिन् हि जननं यस्य जननस्तस्य तत् स्मृतं ।

चतुर्थमानसं तस्माद्दशमं कर्म्मसंज्ञितं ॥

(१) पूर्वसमिद्धिरिति पुलकान्तरे पाठः ।

साङ्घातिकं षोडशं स्याद्विंशं समुदयं स्मृतं ।  
 वैनाशिकन्तु नक्षत्रं कर्षकं चाख्यं त्रयोदशं ॥  
 षड् नक्षत्रस्तु पुरुषः सर्वप्रोक्तो महीपते ।  
 राजा च नवनक्षत्रो नक्षत्रत्रितयं शृणु ॥  
 नित्यमभ्यधिकं षड्भ्यः पार्थिवस्य नृपोत्तम ।  
 देशोऽभिषेकनक्षत्रं जातिनक्षत्रमेव च ।  
 जात्याश्रितानि वक्ष्यामि नक्षत्राणि तवानघ ॥  
 पूर्वार्धयमथान्नेयं ब्राह्मणानां प्रकीर्त्तितं ।  
 पौष्णं मेतत्र तथा पितृं प्राजापत्यं तथा स्मृतं ॥  
 आदित्यमाश्विनं हस्तं शूद्राणामभिजिज्जथा ।  
 सापं विशाखा याम्यश्च वैष्णवश्च नराधिप ॥  
 प्रतिलोमोद्भवानाञ्च सर्वेषां परिकीर्त्तितं ।  
 इह देहार्थहानिः स्यात् जन्मर्त्तं तूपतापिते ॥  
 कर्मर्त्तं कर्षणां हानिः षोडश मनसि मानसे ।  
 मूर्त्तिद्रविणवम्भूनां हानिः साङ्घातिके हते ॥  
 सन्तसे सामुदयिके मित्रभृत्यार्थसंक्षयः ।  
 वैनाशिके विनाशः स्याद्देहद्रविणसम्पदां ।  
 षोडशे चाभिषेकर्त्ते राज्यभ्रंशं विनिर्द्दिशेत् ॥  
 देशर्त्ते षोडशे षोडशे देशस्य च पुरस्य च ।  
 षोडशे जातिनक्षत्रे राज्ञो व्याधिं विनिर्द्दिशेत् ॥

ग्रहर्त्तजातां समवाप्य षोडशं

पूजा तु कार्या विधिना स्वकेन ।

ततः शुभं विन्दति राजसिंह

( ८७ )

विभूतपापः पुरुषः सदैव ॥

शक्यन्ते तु संगृह्य खेतस्य वृषभस्य तु ।  
 खेतगोः पयसा सार्धं स्नातव्यं कुशवारिणा ॥  
 जम्बूनक्षत्रपीडायां तस्मात् क्लेशादिमुच्यते ।  
 शिरीषचन्दनाश्वत्थनागदानाम्बुभिनैरः ॥  
 स्नातस्तु मानसे तप्ते तस्माद्दीपादिमुच्यते ।  
 सिद्धार्थं च प्रियङ्गुञ्च शतपुष्पां शतावरीं ॥  
 स्नातव्यमश्वसि क्षिप्त्वा कर्मर्त्तं नृप पीडिते ।  
 प्रियङ्गुविल्वसिद्धार्थं वाश्वत्थसुराह्वया ॥

सुराह्वा, देवदारुः ।

चन्दनीदकसंयुक्तं स्नानं साङ्घातिके हितं ।  
 सर्वगन्धोदकैः स्नानं तथामिहार्थकैः शुभैः ॥  
 पीडिते समुदायर्त्तं पुंषां कल्पप्रनाशनं ।  
 वृषशृङ्गाहृतमृदा तथा विल्वोदकैः शुभैः ॥  
 शतपुष्पासमीपेतैः स्नानं वैनाशिके भवेत् ।  
 पीडिते चाभिषेकर्त्तं सर्वरत्नोदकैस्तथा ।  
 पीडिते देशनक्षत्रे ऋद्धिः स्नानं विधीयते ॥  
 ऋत्तिकाञ्च प्रवक्ष्यामि शृणुष्व गदतो मम ।  
 नद्याः कूलहयान्मध्यात् सङ्घमात्सरसस्तटात् ॥  
 अश्वस्थानाङ्गस्थानान्नीस्थानान्निर्मिस्रकात् ।  
 शकस्थानात् सखलीकाद्राजस्थानात्सुरालयात् ॥  
 गजशृङ्गोद्धृताश्चैव वृषशृङ्गोद्धृतां तथा ।  
 सर्व्व वीजोदकैः स्नातो जातिनक्षत्रपीडने ।

मुच्यते किस्विपाद्राजन् नात्र कार्या विचारणा ॥

इदमापः प्रवृत्तः स्नानमन्त्रः प्रकीर्तितः ॥

स्नातस्तथैवं नृपचन्द्रपथात्

स्नानम्यकुर्वीत जथोपदिष्टः ।

पीडाकरस्याथ ततस्तु कार्यी

नक्षत्रयागो विहितो यथावत् ॥

पीडाकरस्याथ ततस्तु कार्यी

पूजा यद्देन्द्रस्य नरन्द्रचन्द्र ।

तं पूजयेदाप्यथ चन्द्रयुक्तं

ततः स दीषान् सकलान् जहाति ।

इति विष्णुधर्मात्तरोक्ता नवनक्षत्रशान्तिः ।

—oo(u)oo—

मनुरुवाच ।

यदीच्छसि सुभर्तारमिह जन्मन्यथापरे ।

कन्या कुर्यान्नृपश्चेष्ट विष्णुना कथितं व्रतं ॥

सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामफलप्रदं ।

उमामहेश्वरं नाम कर्त्तव्यं विधिना यथा ॥

प्रोष्ठाश्विने तथा मासे मृगे भाग्येऽथ वा मुने ।

मैत्रे शाक्रेऽथवा कार्यं अष्टम्याश्चाथ शाङ्करे ॥

प्रोष्ठी भाद्रपदो मासः । मृगो मृगगिरीनक्षत्रं । भाग्य पूर्व  
फाल्गुनी । मैत्रं अनुराधा । शाक्रं ज्येष्ठा । शाङ्करं आर्द्रा ।

पूर्वेऽहनि सपत्नीकं ब्राह्मणं शुभसङ्गतं ।

एकभार्यं नरं यत्स सर्वधर्मव्रतान्वितं ॥



आमन्त्र्य मम चीद्देशं प्रातः कार्यस्त्वनुग्रहः ।  
 मुदान्वितस्तदा कुर्यात्कलिहन्धविवर्जितः ॥  
 मधुरान्नेन भोज्यन्तु क्षीरेस्तुयवशालिभिः ।  
 सितमूत्रे तथा रक्ते शुभे देये च वाससी ॥  
 निर्मले सदशे बल्ल देवदेवीप्रसाधके ।  
 स्नात्वा उमेश्वरं पूज्य स्थण्डिले प्रतिमासु च ॥  
 उमामहेश्वरप्रतिमालक्षणप्रमाणन्तु अविद्योगह  
 वेदितव्यं ।

हुत्वा दिशां बलिं दत्त्वा वितानमवधारयेत् ।  
 चतुरस्रं चतुर्द्वारं गोमयेनोपलिप्य च ॥  
 चतुष्कं शालिगोष्मकर्णकैरुपशोभितं ।  
 दीपमालान्वितं कृत्वा दाम्पत्यं भोजयेत्ततः ॥  
 शङ्करोमं समाध्याय गक्तास्यं शुभचर्चितं ।  
 मदचन्दनकाश्मीरकपूर्वागरुधूपितं ।  
 जातीपुन्नागमन्दारमितपत्रैस्तु कल्पितं ॥  
 स्थाप्य युग्मं सुसंवीतं त्रिधा कृत्वा प्रदक्षिणं ।  
 सुखलेपेन सम्भोज्य ध्यायेत्तु तमुमेश्वरं ॥  
 आचम्य चार्घ्यपाद्यञ्च दद्याद्बन्धोदकं तथा ।  
 सहिरण्यं सरत्नन्तु पुनर्दत्त्वा क्षमापयेत् ॥  
 प्रीयतां मे उमाभर्ता सर्व्वदेवपतिः पतिः ।  
 उमामन्त्रेण चैवोमामीशमन्त्रेण शङ्करं ॥  
 पूजितः सर्व्वकामान्त्रे प्रयच्छत्यविचारतः ।  
 अनेन प्राप्नुयान्नारी अविद्योगं सुरेश्वर ॥

इह जन्मनि सौभाग्यं धनपुत्रसुखानि च ।  
 मृता याति परं स्थानं शङ्करोमासमन्वितं ॥  
 तत्र भुक्त्वा महाभोगान्देहावाप्तिर्महाकुले ।  
 समृद्धिऋतिसम्पन्नं पतिं विन्दति शोभनं ॥  
 लावण्यरूपसम्पन्ना भर्तुं श्रेष्ठा सदा भवेत् ॥  
 श्लाघनीया समस्तस्य विभवान्तः पुरस्य च ।  
 सुपुत्रा जीववत्सा च आधिव्याधिविवर्जिता ॥  
 भुक्त्वा यथेप्सितान् कामान् ब्रह्मत्वे पतिपूर्विका ।  
 दिवं याति नृपश्चैष्ठ शङ्करोमाञ्चका च या ॥  
 नरो वानेन विधिना नारीणां जायते पतिः ।  
 समृद्धः सर्व्यं भूतानां पतित्वमुपगच्छति ॥  
 शङ्करोमाञ्चकं शकलक्ष्म्या पूर्व्वं मनुष्ठितं ।  
 रत्या देव्या अरुन्धत्या रोहिण्या सुरमत्तम ॥  
 कृतमासीत् सुखार्थन्तु ताय भुञ्जन्ति तत्फलं ॥  
 इति देवीपुरानोक्तं उमामहेश्वरव्रतं ।

— ०००(a,०००) —

इन्द्र उवाच ।

कथितं शङ्करोमाख्यं व्रतं मनसि तुष्टिदं ।  
 श्रोतुमिच्छाम्यहन्तात विष्णुशङ्करसंज्ञितं ॥

मनुरुवाच ।

यथा उमेश्वरन्तात तथा कार्यमिदं व्रतं ।  
 किन्तु पीतानि वासांसि केशवाय प्रकल्पयेत् ॥

गन्धपुष्पं तथा धूपं सुगन्धञ्च जनार्दने ।  
 कार्यं पूजनसम्भारे लड्डुकादिरसं दधि ॥  
 एतन्तो पूजयित्वा तु प्रतिमास्थण्डिलेऽपि वा ।  
 आहुत्वं ब्राह्मणौ वत्स वेदवेदाङ्गपारगौ ॥  
 यती वा व्रतसम्पन्नौ जटाकापायधारिणौ ।  
 तौ भोजयेद्विधानेन शूलपाणिजनार्दनी ॥  
 क्षमाप्य विधिना वत्स सर्वकामप्रसाधकौ ।  
 हेमात्र दक्षिणां विष्णोर्मौक्तिकं शङ्कराय च ॥  
 दत्त्वानुव्रजतो लोकौ क्रमाद्देहक्षये ततः ।  
 भक्ता भोगांस्तथा शक्र इहायातो सुरेश्वरः ॥  
 कुले भवति भूपानां सखो पञ्चादिसंयुतः ।  
 पूर्वभावाद्भवेद्भक्तिः शिवे विष्णौ च शाश्वतो ।  
 योगं प्राप्य परं याति यत्र तत् स्थानमच्ययं ॥  
 इति देवीपुराणोक्तं शङ्करनारायणव्रतं ।

— ०००(१०००) —

अनेनैव विधानेन लक्ष्मीनारायणव्रतं ।  
 ब्रह्मगायत्रिजन्तात् चन्द्रोद्दिशिजन्तथा ।  
 भवविज्ञानुसारेण सत्यमेव फलं लभेत् ॥

इति पद्मपुराणोक्तं (१) ब्रह्मगायत्रिचन्द्रोद्दिशिप्रतं ।

— ००० —

वृषङ्गाश्च समादाय युवानौ लक्ष्णान्वितौ ।

(१) देवीपुराणोक्तमिति पुस्तकालये पाठः ।

हेमशृङ्गेः खुरै रौष्यैः सवस्तैः पूजयेन्मने ॥  
शिवीमे पूजयित्वा तु तद्दिने सम्प्रयच्छति ।

शिवश्च उमा च शिवीमे ।

शिवभक्ताय विप्राय रोहिण्या वा शृगेण वा ॥  
न विशेषो भवेत्तस्य सुतपत्रीपतेः कश्चित्(१) ।  
विमानैर्वा समारुह्य गच्छेच्छिवपुरं द्विजः ॥  
तत्र भोगांशिरं भुक्त्वा इह चागत्य जायते ।  
समृद्धैर्धनधान्याद्यैः पुत्रमित्रसमाकुलैः ।  
विगतारिर्भवेद्ब्रह्म व्रतस्यास्य प्रभावतः ॥

इति देवीपुराणोक्तं गीयुग्मव्रतं ।

— ०० —

यो ता रत्नसमायुक्तं गीयुगं पूजयेन्मने ।  
प्रयच्छति शिवीमा च प्रीयतां भावितात्मनः ॥  
यो वारह्वनभायुक्तमिति पूर्वव्रतेन सह विकल्पाद्वापि  
पूर्वव्रतोक्त एव कारतो विज्ञायते ।  
स सर्वपापदुःखाभ्यां विसुक्तः क्रीडते सदा ।  
इह लोके भवेदन्यो देहास्ते परमं पदं ।'

इति देवीपुराणोक्तं गीरत्नव्रतं ।

— ० —

(१) सुतपत्न्यपंचात् कश्चिदिति पुस्तकान्तरेषां ।

मनुस्वा च ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि रूपसौभाग्यकारकं ।  
 नक्षत्रविधिना वत्स यथा तुष्यति शङ्करौ ॥  
 मृगादारभ्य मूलेन पादौ जातिस्त्रया पुरा ।  
 पूजयेन्मोपवासस्तु, नक्षत्रान्ते तु पारणं ॥  
 यवाकं हविषा सिद्धं ब्राह्मेण जह्वे प्रपूजयेत् ।

ब्राह्मणं रोहिणी ।

कङ्कारैर्भृङ्गराजैश्च तिलमासाजभोजनः ।  
 तेनैव प्रथमं विप्रानश्विभ्यां जानुनी यजेत् ॥  
 कुन्दैश्च शितपुष्पैश्च भोजनं दधि शर्करा ।  
 आषाढदहितये चारु बिल्वपत्रैश्च पूजयेत् ॥  
 क्षीरान्नैर्भोजयेत्तत्र ब्राह्मणांस्तश्च पारणं ।  
 गुह्यन्तु फाल्गुनीयुग्मे पारयन्त्या प्रपूजयेत् ॥  
 पारयन्ती पुष्यविशेषः ।

दधिभक्तान्तु नैवेद्यं कृत्तिकासु काटिं जयेत् ।  
 दमनैःशितपुष्पैश्च लङ्कुकेर्दधिभोजनैः ।  
 पार्श्वे भाद्रपदायुग्मे पूजयेत् कुसुमैः शितैः ॥  
 क्षीरान्नदधि विप्राणां नक्षत्रान्ते तु भोजनं ।  
 पीष्णि कुक्षिद्वयं देव्याः सप्तकारस्त्रजा यजेत् ॥  
 घृतमाषान्नभोज्यन्तु अनुराधायुगे यजेत् ।  
 कर्णिकारैः शुभैः पीतैर्भोजनं घृतपाचितं ॥  
 पृष्ठदेशं धनिष्ठासु हेमपुष्पैः प्रपूजयेत् ।

हेमपुष्पैर्नागकेसरैः ।

कर्णपत्रा च नैवेद्यं दोषिशाखासु पूज्यते ।

मरुपत्रैः सुगन्धैश्च देयं भोज्यञ्च पायसं ॥

करी करे पूजयीत लशीरतगरादिभिः ।

गुडचीरश्च नैवेद्यमङ्गुलीश्च पुनर्व्वसौ ॥

कुङ्कुमीनार्चयेद्देव्या देयं भोज्यञ्च षष्टिकं ।

नखान् भुजङ्गदैवत्ये पुत्रागादिभिरर्चयेत् ॥

भोजान्तु मौक्तिकं देयं (१) यीवां ज्येष्ठासु पूजयेत् ।

सितमालादिभिर्द्देव्या देयं भोज्यं घृतादिकं ।

रश्मापुष्पदलैः कर्णौ पूजयेद्भोजयेद्दधि ॥

रश्मा कदली ।

पुथ्ये मुखन्तु पद्माद्यैः शर्करान्नन्तु भोजयेत् ।

स्वात्यान्तु रदना देव्याः सुरक्तैः कमलैर्यजेत् ॥

हंसं शतभिषर्त्तु च नागकेसरचन्दनैः ।

खर्जूरशर्करा भोज्यं यजेन्नासां मघासु च ॥

जयापुष्पैस्तथा भोज्यं गोधूमं घृतसंस्कृतं ।

मृगे नेत्रद्वयं देव्याः सुगन्धैः कुसुमैर्यजेत् ।

घृतमाघान्नभोज्यन्तु त्रिचित्रं परिकल्पयेत् ॥

त्रिचित्रं चित्रस्त्रजा पूज्यं ललाटं चित्रभोजनं ।

भरणीषु शिरो देव्याः पञ्चकादिस्त्रजा यजेत् ॥

क्षीरान्नं भोजनं देयं केगानान्द्रासु पूजयेत् ।

जात्यादि कुसुमैर्द्देव्याः सर्वाङ्गानि च भोजयेत् ॥

(१) भोज्यन्तु, मञ्जिका देया । मञ्जी शिखरिणी इति पुस्तकान्तर पाठः ।

नक्षत्रेणिति पूज्यार्या रूपपुत्रार्थिभिः सदा ।  
 शशुर्वाप्यथवा विष्णुर्द्वैतहेमाद्रदक्षिणा ॥  
 देयं वस्त्रयुगं विप्रे सपत्नीके जितेन्द्रिये ।  
 देवीशास्त्रार्थकुशले शिवज्ञानविशारदे ॥  
 संपूर्णचन्द्रवदना पद्मपत्रायतेक्षणा ।  
 शोभना दशना शुभाः कर्णौ चापि सुमांसलौ ॥  
 षट्पदीघनिभैः केशैर्युता कोकिलवादिनी ।  
 ताम्नीहो पद्मपत्राभा सुहस्ता स्तननामिता ॥  
 नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता रश्मादण्डनिभोरुका ।  
 सुशोणी तनुमध्या च सुस्निष्टाङ्गलिशोभना ।  
 प्रमदा सुभगा भर्तुर्मनुष्योऽपि मञ्जुभुजः ।  
 पीनत्क्षाः पृथुस्कन्धः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥  
 सितदन्तो गजगामी महाबलपराक्रमः ।  
 प्रियः सर्वस्य लोकस्य पद्मपत्रायतेक्षणः ॥  
 सर्वशास्त्रार्थवेत्ता च स्त्रीणां चेतोपहारकः ।  
 कामतुल्यो महावीर्या व्रतेनानेन जायते ।  
 अविद्योगश्च इष्टानामर्थानाञ्च समागमः ।  
 नक्षत्रार्थं महापुण्यं व्रतानामुत्तमं व्रतं ॥  
 आपत्स्वपि न भेदस्तु, स्त्रिया कार्यं न दुष्यते ।  
 अपि दोषात्मकैर्भावैर्न त्याज्यं सुनिसत्तम ॥

इति देवीपुराणोक्तं नक्षत्रार्थव्रतं ।

नारद उवाच ।

श्रीमदारोग्यरूपायुःसौभाग्यसर्व्वसम्पदा ।  
संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमानुद्र कथं भवेत् ॥  
नारी वाविधवा सर्व्वगुणसौभाग्यसंयुता ।  
क्रमान्मुक्तिपदं देव किञ्चिद्भूतमिहीच्यतां ॥

रुद्र उवाच ।

सम्यक् पृष्टन्त्वया ब्रह्मन् सर्व्वलोकहितारहं ।  
श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यै तद्भूतं शृणु नारद ॥  
नक्षत्रपुरुषं नाम परं नारायणार्चनं ।  
पादौ हि (१) कुर्वाहिधिवहिष्णुनामानि कीर्त्तयेत् ॥  
प्रतिमां वासुदेवस्य मूलर्चायामिपूजयेत् ।  
चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाधनं ॥

मूले नमो विश्वधराय पादा-  
वनन्तदेयाय च रोहिणीषु ।  
जङ्घेऽभि पूज्ये वरदाय चैव  
हे जानुनी वाञ्छिकुमारकर्त्ते ॥  
पूर्वीत्तरावाङ्कुगे च पादौ  
नमः शिवायेत्सभिपूजनीयो ।  
पूर्वीत्तराफाल्गुनियुग्मके च  
मैत्रं नमः पञ्चशराय पूजां ॥  
कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः  
संपूजयेन्नारद कृत्तिकासु ।

(१) पदादि कुर्वाहिनि पुस्तकाकारे पाठः ।



तथार्चयेन्नाद्रपदाहये च  
 पार्श्वे नमः केशिनिसूदनाय ।  
 कुन्दिहयं नारद रेवतीषु  
 दामोदरायेत्यभिपूजनीयं ॥  
 अक्षेऽनुराधासु च माधवाय  
 नमस्तथोरस्थलमेव पूजयेत् ।  
 पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीयं  
 मघासुविध्वं सकराय तद्धत् ॥  
 त्रोगङ्गचक्रासिगदाधराय  
 नमो विशाखासु भुजाय पूज्याः ।  
 हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय  
 नमोऽभिपूज्या इति कैटभारिः ।  
 पुनर्वसावङ्गुलिपर्वभागाः  
 सान्नामधीशाय नमोऽभिपूज्याः ।  
 भुजङ्गनक्षत्रदिने नखानि  
 संपूजयेन्मन्त्रशरीरिणश्च ।  
 कूर्मस्य पादो शरणं व्रजाम्नि  
 ज्येष्ठासु कर्म्ये हरिरर्चनीयः ॥  
 श्रोत्रे वराहाय नमोऽभिपूज्ये  
 जनाहंनस्य श्वषणे च सम्यक् ॥  
 पृथ्ये मुखन्दानवसूदनाय  
 नमो नृसिंहाय च पूजनीयं ॥  
 सूर्यो नमः कारणवामनाय  
 स्वातीषु दन्ताग्रमथार्चनीयं ।

आस्यं हरेः कीर्तकभार्गवाय  
 संपूजनीयं द्विज वारुणे तु ।  
 नामोऽस्तु रामाय मघासु नामा  
 संपूजनीया रघुनन्दनस्य ॥  
 सृगोत्तमांगे नयने च पूज्ये  
 नमोऽस्तु ते राम विघूर्णिताक्ष ।

सृगोत्तमाङ्गं सृगशीर्षं

बुधाय शान्ताय नमो ललाटं  
 चित्रासु संपूज्यतमं सुरारेः ।  
 शिरोभिपूज्यं भरणीषु विष्णो  
 नमोऽस्तु विश्वेश्वर कल्किरूप ॥  
 आर्द्रासु केशाः पुरुषोत्तमस्य  
 संपूजनीया हरये नमस्ते ।  
 उपोषिते रुचदिनेषु शक्त्या  
 संपूजनीया द्विजपुत्रवाः स्युः ॥  
 पूषं व्रते सर्वगुणान्विताय(१)  
 वायूपशीलाय च शामगाय ।  
 हेमीं विशालायतबाहुदण्डां  
 मुक्ताफलेन्द्रोपलवञ्जयुक्तां ।  
 गूढस्य पूषं कलशे निविष्टा

(१) ब्राह्मणपुत्रवाय इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

मर्चां हरेर्व्यस्रयुतां सहैमीं ।

शय्यां तथोपस्करभाजनादि-

युक्तां प्रदद्याद्विजपुङ्गवाय ॥

यद्यत् प्रियं किञ्चिदिहास्ति देयं

ततद्विजायात्महिताय सर्व्वं ।

मनोरथान्नः सफलौकुरुष्व

द्विरण्यगर्भाच्यतरुद्ररूप ॥

स लक्ष्मीकं सभार्याय काञ्चनं पुरुषोत्तमं ।

शय्यां दद्याच्च मन्त्रेण यज्य भेदविवर्जितां ॥

यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित् ।

तथा सुरुपतारम्ये केशवे भक्तिरुत्तमा ॥

यथा लक्ष्म्या न शयनं तव श्रूयं जनार्दन ।

शय्या ममाप्यशून्यास्तु कृष्ण जन्मनि जन्मनि ॥

एवं निवेद्य तत् सर्व्वं वस्तमान्यानुजेपनैः ।

नक्षत्रपुरुषज्ञाय विप्रायाद्य विसर्जयेत् ॥

भुञ्जीतातैलसवणं सर्व्वं क्षैष्यप्युपोषितः ।

भोजयेच्च यथाशक्त्या विस्रगाठविबर्जितः ॥

इति तक्षत्रपुरुषमुपोष्य विधिवत् स्वयं ।

सर्व्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके मङ्गोयते ॥

ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदयदत्तामुच वा कृतं ।

आत्मना चाद्य पिबन्मिस्तत् सर्व्वं नाशमाप्नुयात् ॥

इति पठति शृणोति वातिभक्त्या

पुरुषवरो व्रतमङ्गनाद्य कुर्यात् ।

कलिकलुषविदारणं सुरारिः  
सकलविभूतिफलदञ्च पुंसः ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तं नक्षत्रपुरुषव्रतं ।

—000—

युधिष्ठिर उवाच ।

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः ॥  
अनभ्यासेन रोगाहा किमिष्टं व्रतमुच्यतां ।  
शिवय्योपरि यस्य स्याद्भक्तिः सूर्यस्य वा विभी ।  
नक्षत्राख्यं व्रतं तेन कथं कार्यमिहीच्यतां ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते ।  
यस्मिन् व्रते तदप्यत्र अग्रनामक्षयं महत् ॥  
शिवनक्षत्रपुरुषं शिवभक्तिमतां नृणां ।  
तस्मिन्नक्षत्रयोगे च पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥  
फाल्गुनस्यामले पक्षे यदा हस्तः प्रजायते ।  
तदा याज्ञं व्रतं चैतद्रक्तेनाभ्यर्च्यं शूलिनं ॥  
शिवायेति च हस्तेन पादौ संपूजयेद्विभीः ।  
शङ्कराय नमो गुल्फो पूज्यौ चित्रासु पाण्डव ॥  
भीमाय जङ्घे स्वातीषु देवदेवस्य पूजयेत् ।  
ऊरुद्वयं विशाखासु चिनेत्राय तु पूजयेत् ।  
मेढ्रक्षेत्रानुराधासु अनङ्गाय हरेति च ॥  
सदा ज्येष्ठासु च तथा सुरज्येष्ठेति चार्चयेत् ।

नादाख्याय नमो नाभिः पूज्या मूलेन शूलिनः ॥  
 आषाढयुगले पार्श्वे पार्व्वतीपतयेति च ॥  
 श्रवणेन ततः कुक्षी पूज्यौ कापालिने नमः ।  
 वक्षस्थलं धनिश्रासु सद्योजाताय वै नमः ॥  
 वामेति पूजयेत्पार्श्वं हृदयं शतभिषासु च ।  
 पूर्व्वोत्तरायुगे वाङ्ग नमः खट्वाङ्गधारिणे ॥  
 पूज्यं रुद्राय च तथा रेवतीषु करहयं ।  
 नखाः पूज्याश्विनीयोगे नमस्कृत्य पिनाकिने ॥  
 भरणीषु ततः पृष्ठं वृषाङ्गाय नमोऽश्विति ।  
 कृत्तिवस्त्राय वदनं कृत्तिश्रासु कृत्काटिकां ॥  
 वाक् पूज्या रोहिणीयोगे नमो वाचस्पतेरपि ।  
 मृगोत्तमाङ्गे दशनान् भैरवायति पूजयेत् ॥  
 आर्द्रास्वीशाधरी पूज्यौ स्थाण्वेति युधिष्ठिर ।  
 नामा पुनर्व्वसो पूज्या पूषणो दन्तविघातिने ॥  
 पृथे नेत्रहयं पूज्यं नमस्ते सर्व्वदर्शने ।  
 अश्लेषायां ललाटन्तु त्राम्बकाय नमो नमः ॥  
 मघासु च जटाजूटं पूजयेदम्बकारये(१) ।  
 पूर्व्वं फाल्गुनीयागे च श्रवणौ सोमधारिणे ॥

नमोऽस्तु पाशाङ्गशमूलपद्म

कपालसर्पन्दुधनुर्धराय(२) ।

गजासुरानङ्गपुराम्बकादि-

(१) पञ्चनेत्रम्बकायचेति पुस्तकाकारे पाठः ।

(२) सर्पन्दुधनुर्धराय इति पुस्तकाकारे पाठः ।

विनाशमूलाय नमः शिवाय ॥  
 शिरः संपूजयेद्दद्यात्ततो धूपविलेपने ।  
 ततस्तु रात्रौ भोक्तव्यमलक्षारविवर्जितं ॥  
 शालीयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतं ।  
 दद्यात्सर्वेषु नक्षत्रेषु ब्राह्मणानां नृपोत्तम ॥  
 शक्त्यभावेन दोषः स्यादधिके ह्यधिकं फलं ।  
 नक्षत्रयुगले प्राप्ते नक्षत्रयुग्मं समाचरेत् ॥  
 सूतकाशीचदोषेषु पुरनन्यः समाचरेत् ।  
 एवं क्रमेण संप्राप्ते व्रतस्यैवास्व पारणे ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः ।  
 काञ्चनं कारयेद्देवमुमया सह शङ्करं ॥  
 शय्यां सुलक्षणां कृत्वा विरुद्धयन्विवर्जितां ।  
 सोपधानकत्रियामां स्वास्तराभरणां शुभां ॥  
 भाजनीपानहस्तचामरासनदर्पणैः ।  
 भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्तानुलेपनैः ॥  
 सप्तस्राङ्गास्यदोहनीं हेमशुक्लिविभूषितां ।  
 दद्यात्पूर्वाङ्गसमये न किञ्चिदपि लक्ष्म्येण ॥  
 मन्त्रेणानेन राजेन्द्र हृदि शम्भुं निधाय वै ।  
 यथा न देव शयने तव पर्वतजानघ ।  
 शून्यं वर्त्तेत सततं तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥  
 यथा न देव श्रियांस्तु त्वदृते विद्यते क्वचित् ।  
 तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारमागरात् ॥  
 ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विमर्जयेत् ।

( ८६ )

शयनादिकश्च तत् सर्वं द्विजस्य भवनं नयेत् ॥

नैतद्विशौलाय न नास्ति काय

कुतर्कदृष्टाय विनिन्दकाय ।

प्रकाशनीयं व्रतसिन्दुमौलेः

पञ्चाप्तिलेभ्योपहृतात्तरात्मा ॥

भक्ताय दान्ताय गुणान्विताय

प्रदेयमेतच्छिवभक्तियुक्ते ।

इदं मन्त्रपातकिनां नराणां

मघक्षयं वेदविदो वदन्ति ॥

या काचिदेतत् कुर्वतेऽथ भक्त्या

भर्त्सारमाश्रित्य शुभम्, इं वा ।

न बन्धुपुत्रादिधनैर्वियोग-

माप्नोति दुःखं न सुखञ्चसुखं ॥

इदं वसिष्ठेन पुराण्यनेन

कृतं कुवेरेण पुरन्दरेण ।

यत्कौर्त्तनादप्यस्त्रिस्तान्यघानि

विध्वंसमायान्ति न संशयोऽत्र ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं शैवनसूत्रपुराणव्रतं ।

—०—

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणाधीश्वर-

सकलविद्याविशारदश्रीचेमाद्रिविरचिते-

चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे

नवमव्रतानि ।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥



स्वप्ना वैरं चिरपरिचितं मित्तभावं प्रपन्ने  
बाणो लक्ष्मीः किल विलसती बभूव गेहेऽनुरागात् ॥  
येनापूर्वं प्रकटितमिदं वैभवं पुस्तभाजान् ।  
ओऽबं योगव्रतसमुद्भवं वन्नि हेमाद्रिरस्मिन् ॥

अथ योगव्रतानि ।



इत्यु उवाच ।

विष्णुश्चादिषु योगेषु भवेदेकादशी नरः ।  
श्री ददाति क्रमात्पार्श्वं दृत्ततैलपलैश्च वं ॥  
यवगोधूमवरचं निष्पावाब्ध्यालितं तुलान् ।  
सवचं दधिदुग्धञ्च वस्त्रं कनकमेव च ॥  
कम्बलं गोहृषं ह्यचमुपानद्युगलन्तया ।  
कर्पूरं कुङ्कुमञ्चैव चन्दनं कुसुमानि च ॥  
लोहं ताम्रञ्च कांस्यञ्च रौप्यञ्चेति यधिष्ठिर ।  
ज्ञातः स्वयन्त्या विधिवत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ।  
न विद्योगमवाप्नोति योगव्रतमिदं स्मृतं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं योगव्रतं ।





धरस्युवाच ।

यस्त्वयोक्तो व्यतीपातः कौटुम्भः स स्वरूपतः ।  
कस्य पुत्रः कर्षं पूज्यः पूजिते तत्र ५ फलं ॥

वराह उवाच ।

यदा वृहस्पतेर्भाष्यां ताराञ्चयाह ग्रीतगुः ।  
मित्रत्वात् प्राह तं सूर्यस्वज भाष्यां वृहस्पतेः ॥  
चक्रे चन्द्रो न तद्वाक्यं हितं गियोऽपि तं यदा ।  
रुष्टस्तदा किलादित्यो दीप्तदृष्ट्या तदैक्षत ॥  
तावत् सोमोऽपि रुष्टोऽस्य ततोऽन्योऽन्यमवेक्षतां ।  
उभयोर्दृष्टिसम्पाते क्रुद्धयोः सोमसूर्ययोः ।  
उद्यतास्यो भवेद्द्वोरः पुरुषः पिङ्गलेक्षणः ॥  
दष्टौष्ठदीर्घदशनो भृकुटोकुटिलाननः ।  
कपिलश्मशुकेशान्तो लम्बभ्रूः सुकृग्रोदरः ॥  
करालो दीर्घजिह्वश्च सूर्याम्नियमसन्निभः ।  
सम्भोक्तुकामश्चैलोक्यं रवीन्दुभ्यां निवारितः ।  
क्रोधक्षुधी मां बाधेते पात्ये वै कुच ते मया ॥

सूर्यसोमावूचतुः ।

कोपदृष्टान्तो विविधादतिपाताङ्गवानभूत् ।  
व्यतीपातस्ततो नाम भवान्भुवि भविष्यति ॥  
यस्मिन्काले त्वदुत्पत्तिस्तदा कल्याणकारिणः ।  
व्यतीपाताय भङ्गन्ते त्वयि यः पापकारकः ॥  
तद्वचं क्षुधितो भुङ्क्ष्व तत्र क्षीपो निपात्यतां ।  
व्यतीपातस्ततो नाम भवान् भुवि भविष्यति ॥

व्यतीपात उवाच ।

नमो वां पितरो मेखःकोटपातः सभोजनः ।  
दत्तो भवद्गमधुना प्रसादः क्रियते चमा ॥

रवीन्दू उवाच तुः ।

ज्ञानदानजपहोमपूर्णां कं  
यद्ब्रवीत्यसमये समाचरेत् ।  
तस्य पुण्यमिह ते प्रसादती-  
नन्तमस्तु हृतनीरनुषङ्गात् ॥  
तत्काले तव विदधाति पूजनं  
यस्तस्यैष्टं भवतु भवेत्तु भद्रभूयः ।  
पुत्रायुर्जनसुखकीर्त्तिपुष्टि-  
रूपारोग्याद्यङ्गुलिनजनवत्तु भत्वपूर्णां ॥

वराह उवाच ।

एतस्मात्कारणाद्गमौ व्यतीपातोऽर्चितो नरैः ।  
अर्चिते च फलं तस्य तदुक्तान्ते समाहितैः ॥  
विस्तरेणार्चितफलं गदितुं केन शक्यते ।  
येनार्थते व्यतीपातः स विधिः श्रूयतामिति ॥  
शुभे व्यतीपातदिने विगाहयेत्  
स पञ्चगव्येन महानदीजलं ।  
उपावसेहै पवमानजापको  
जपेत्तु शुद्धो व्यतीपात ते नमः ॥  
छादिते ताम्रपात्रे च शर्करापरिते षटे ।

काञ्चनाञ्जे प्रतिष्ठाप्य हेममष्टभुजवरं ॥

अष्टभुजं अष्टादशभुजं । उत्पत्तिवाक्ये व्यतीपातमूर्तेरष्टाद  
भुजत्वात् । उत्पत्तिवाक्यानुसारत्वाच्च विनियोगवाक्यस्य य  
भगवद्गीतासु चत्वारोमनवस्तथेति चत्वारश्चतुर्दश ।

गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपबन्धनिवेदनैः ।

भक्षैर्भोज्यैः फलेर्विचैर्मांसि मार्गश्रिरेऽर्चयेत् ॥

नमस्तेऽस्तु व्यतीपात सूर्यसोमस्तु प्रभो ।

यद्दानादिहृतं किञ्चित्तदनन्तमिहास्तु मे ॥

इतुक्त्वा पञ्च रत्नाढ्यं सपुष्पाक्षतमञ्जलिं ।

प्रक्षिप्य तत्पञ्चादेव सर्वपापक्षयो भवेत् ॥

यदि द्वितीयेऽपि दिने व्यतीपाता भवेन्नक्षी ।

तदा पूर्वोपवासस्तु दद्यात्तत् सकलं गुरोः ॥

पारणं व्यतीपातान्ते कुर्व्यात् संप्राश गोमयं ।

अथे कल्पिषेव दिने व्यतीपातो भवेच्चदि ।

तत्रैवाङ्घ्रि तदा दत्त्वा उपवासं समाचरेत् ॥

सूर्यादेवं मांसि मांसि व्यतीपातकालेऽद्य ।

व्यतीपाते तु संप्राप्ते कुर्व्यादुद्यापनं बुधः ॥

व्यतीपाताय स्वाहेति क्षीरहृत्समन्वितं ।

आज्यक्षीरतिलानाञ्च हीतव्यं वै शतं शतं ॥

शर्कराघटपूर्णेन सहसोपस्कारैर्युतां ।

प्रतिमां काञ्चनीदृत्वा प्रदद्याद्ब्रतदेशिने ॥

वन्देव्यतीपातमहं महान्तं

रवीन्दुसूनुं सकलेष्टसम्भै ।

समस्तपापस्य मम क्षयोऽस्तु  
 पुण्यस्य चानन्तफलं ममास्तु ॥  
 इति समीप्य गुहः परिपूज्यते  
 कटक-कुच्छल काञ्चन-भूषणैः ।  
 सकलमेव समाप्य यथोदित-  
 सुपलभ्यमिहान्रुते मही ।

गां वै पयस्विनीं दद्यात्पुवर्णोत्तमदक्षिणा ।  
 तस्यै शय्यां समासाद्य सारदारुमयीं दृढां ॥  
 दत्तपत्रवितानाभ्यां हेमपट्टैरलङ्कृतां ।  
 हंसतूष्णीप्रतिच्छन्नां हृत्प्रगण्डीपधानकां ॥  
 प्रच्छादनपटीयुक्तां धूपगन्धादिवासितां ।  
 ताम्बूलकुङ्कुमचोदकपूर्वागुरुसुन्दरां ।  
 दीपिकोपानहच्छन्नां प्रदद्यात्सामरासनां ।  
 देहान्ते सूर्यलोकात् विमाने रत्नसुपभैः ॥  
 अष्टरोगक्षसंशोभ्येर्गीतवृत्त्यविलासिभिः ।  
 गत्वा कल्पार्कदशतं मोदते त्रिदशार्चितः ॥  
 तदन्ते राजराजः स्वाद्रूपसौभाग्यभागभवेत् ।  
 कौर्त्याक्ष्यो गुणपुत्राशुरारोग्यधनधाम्यवान् ।  
 प्रतापघ्नो महैश्वर्ययुक्तभाक्चो बहुश्रुतः ॥  
 जनसौभाग्यसम्पन्नो यावज्जन्माष्टकाश्रुतं ।  
 द्यौं यतगुहं दानं तच्छतव्रन्दिनक्षत्रे ॥  
 यतव्रन्तश्च संक्रान्तौ यतव्रं विदुषी ततः ।  
 बुगादौ तच्छतगुहं यवने तच्छताश्रुतं ॥

सोमग्रहे तच्छतघ्नं तच्छतघ्नं रविग्रहे ॥  
 असंख्यं व्यतीपाते दानं वेदविदो विदुः ।  
 उत्पत्तो तल्लक्षणं कोटिगुणं भ्रमणनाडिकायां ।  
 अर्बुदगुणितं पतने जपदानाद्यक्षयं पतिते ॥  
 जम्बहाविंशतिनाडी भ्रमणस्त्रिंशतिः ।  
 व्यतीपातस्य पतनं दशसप्तशतं विदुः ॥

समर्पितं यद्ग्रतिपातकाले  
 पुनः पुनस्तद्रविशीतरश्मौ । . .  
 प्रयच्छतः कल्पशतार्बुदानि  
 विवर्द्धमानं नहि ह्यीयते तत् ॥  
 तस्मान्नाह्नि त्वं व्यतीपातपूजां  
 कुरुष्व चेत् पुण्यमनन्तमिष्टं ।  
 यदि स्थिरत्वं सततन्तवेष्टं  
 समस्तधारित्वमभोषितञ्च ॥

गणयित्वा व्यतीपातकालं वा वेत्ति यो नरः ।  
 सर्वपापहरो तस्य भवती भानुभेश्वरी  
 पठति लिखति यः शृणोति वै  
 तत्कथयति पश्यति कारयत्यवश्यं ।  
 रविशशिदिवमाप सोपि  
 दिवैश्विरसमयं परिपूज्यमान आस्ते ॥

इति वराह पुराणोक्तं व्यतीपातव्रतं ।

युधिष्ठिर उवाच ।

येन व्रतेन चीर्णेन नपश्येद्यमशासनं ।  
परिपृच्छाम्यहं ब्रह्मन् पापघ्नं व्रतमुत्तमं ॥  
तद्गतं ब्रूहि विप्रर्षे कृत्वा जगति वै कृपां ।  
मार्कण्डेय उवाच ।

शृणु राजन् व्रतमिदं ह्यर्थेष्वेन पुरातनं ।  
तेनैव राज्ञा तद्गतं शूकराय च दुःखिने ॥  
एकदा तु सृष्टित्वा स हर्षस्थो राजसत्तमः ।  
अन्तश्चरन् भवे राजन् दृष्ट्वा तत्रैव शूकरं ॥  
दग्धपादकटिञ्चैव दग्धप्रीवमुखोदरं ॥  
दृष्ट्वा तथा विधन्तन्तु कृपासूक्ते दयापरः ।  
केन कर्मविपाकेन श्रवस्त्वां प्राप्सवानर्यं ।  
अहीकाष्टमष्टकष्टं सूकरेणापभुञ्जति ।  
अवश्यमनुसर्त्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभं ॥  
इत्युक्त्वा तम् स्वरूपेण राजा तं प्राह शूकरं ।  
इयती किमवस्था वै तन्मम ब्रूहि शूकर ॥  
तच्छ्रुत्वा नृपतेर्वीक्यं निःश्रमन् शूकरो मुहुः ।  
श्रुत्वा पुराकृतं कर्म प्रत्युवाचाथ तं नृपं ॥

शूकर उवाच ।

शृणु राजव्रतं पूर्वं वैश्वो विश्वमग्नाभवः ।  
आशाकारी न दाताहमाश्रितेभ्यश्च किञ्चन ॥  
श्रुताश्च बहवो धर्माः पराणश्रुतिनोदिताः ।

( ८० )

तद्यपि पापबुद्ध्याहं न करोम्यात्मनो हितं ॥  
 आशापायमनुप्राप्ता भन्नाशास्ते विनिर्गताः ।  
 कृतवान् पापमेवाहं न किञ्चित्कृतं कृतं ॥  
 एकदा तु द्विजः कश्चिदातीपाते गृहं मम ।  
 आगतो याचते माञ्च न किञ्चिद्दत्तवानहं ॥  
 ततश्च कुपितो विप्रो मम शापमवाद्दत् ।  
 आशाम्निर्दहते यद्वन्महाङ्गानि पृथक् पृथक् ॥  
 तथैव तु तवाङ्गानि दावाग्निः पुरुषाधम ।  
 अरण्ये निर्जने देशे निर्जले द्रुमवर्जिते ॥  
 तत्र शूकरयोनौ त्वं प्रसूतिं समवाप्नुहि ।  
 प्रसादितो मया विप्रः पुनरप्युक्तवांसादा ।  
 ज्ञानित्वं शूकरत्वेऽपि इत्युक्त्वाथ जगाम मः ॥  
 तेन शापेन राजेन्द्र शूकरत्वमवाप्नुयात् ।  
 अहं दुःखी ह सञ्जातो निर्जने निर्जले वने ॥

राजोवाच ।

केन त्वं मुच्यते पापात् ममाचक्ष्वेह शूकर ।  
 येन शक्यो मया कर्तुं तव शापस्य संशयः ॥

वराह उवाच ।

श्रूयतां मम राजेन्द्र सुक्तिः स्याद्येन कर्माणा ।  
 अतीपातव्रतं नाम कृतं राजंस्त्वया पुरा ॥  
 यथा माता सुतस्त्रेह सर्व्वस्य हितकारिणी ।  
 तथा व्रतमिहं राजत्रिहं लोके परम च ।

यथैवाभ्युदितः सूर्यो ज्ञेयं च तमो दहेत् ॥  
 इदं व्रतं तथैवैव सर्वपापं व्यपोहति ॥  
 सकृत् स्मृतो यथा विष्णुर्दृष्टां परमनिर्हति ।  
 ददात्येव न सन्देहस्तथा व्रतमिदं शुभं ॥  
 व्रतमिन्दुक्षये दानं सहस्रान्तु दिनक्षये ।  
 विषुवे व्रतसाहस्रं व्यतीपाते त्वनन्तकं ॥  
 व्यतीपातव्रतस्यास्य विधानं शृणु तत्स्वतः ।  
 माघे वा फाल्गुने वापि अन्त्यस्निग्धासि वा भवेत् ॥  
 व्यतीपातो दिने सन्निधुं प्रारभेद्भूतसुत्तमं ।  
 तिलैः पूर्णशरावच्च सगुडं गुरवेऽर्पयेत् ॥  
 एवं द्वितीये दातव्यं तृतीये तु समापयेत् ।  
 सष्टतं पायसञ्चैव दातव्यं वीक्षरोत्तरं ॥  
 एवं संवत्सरस्यान्ते देवस्वार्थान्तु कारयेत् ।  
 शङ्खचक्रगदापाणिं पद्महस्तं हिरण्ययं ॥  
 वस्त्रयुग्मेन संवेद्य पूजयेद्बहुध्वजं ।  
 गीष्ठीरेण च संपूर्णकांस्यभाजनसुत्तमं ॥  
 स्थापयेद्देवदेवस्य स्थानन्तचैव कल्पयेत् ।  
 शय्या च सन्निधौ तस्य स्थाप्या देवमनुस्मरन् ॥  
 अनन्तशायिनं देवमनन्तफलदं शुभं ।  
 लक्ष्म्या सहान्वितं विष्णुं भक्त्या संपूजयेद्बुधं ॥  
 वैदिकेनैव मन्त्रेण ज्ञातीपुष्यैः समर्चयेत् ।  
 पायसैर्नैव नैवेद्यं गर्करामयुतेन च ॥  
 दत्त्वा निवेद्यं देवस्य प्रार्थनं प्रार्थयेद्भृती ।



व्यतीपातव्रतं देव त्वयानन्त समर्पितं ॥  
 भवत्वनन्तफलदं मम जन्मनि जन्मनि ।  
 देवदेवं हृषीकेशं प्रार्थयित्वा ततो व्रती ॥  
 तत्सर्वं गुरवे दद्याच्छ्रीत्रिषाय कुटुम्बिने ।  
 व्रतोपदेष्ट्रे विप्राय ब्रह्मज्ञाय विशेषतः ॥  
 भूमिर्वाय सुवर्षं वा दक्षिणा तु विधीयते ।  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु व्रतमेतत् समापयेत् ॥  
 इदं व्रतं त्वया देव गृहीतं पूर्वजन्मनि ।  
 स्वर्गापवर्गदं नृणामनन्तफलदं शुभं ॥  
 मुञ्चेहं किल्बिषादस्मान्शूकरत्वात् संशयः ।  
 तेनैव मुक्तो ह्यर्थाश्रयः शूकर वाक्यमवब्रवीत् ॥  
 मया कृतमिदं सर्वं तत्फलन्ते ददाम्यहं ।  
 एवमुक्त्वा नृपञ्चेष्टः शूकराय फलं ददौ ॥  
 तत्क्षणात्तेन पुण्येन शूकरो मुक्तकिल्बिषः ।  
 मुक्तः शूकरदेहाच्च सर्वभरणभूषितः ॥  
 दिव्यं विमानमाख्याय वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥  
 हेजनाः किञ्चजानीध्वं व्यतीपातव्रतोत्तमं ॥  
 इहैव सुखदं नृणां परमं च पराङ्कृतं ।  
 दृष्ट्वा मां पापनिर्मुक्तं व्रतस्यास्य प्रभावतः ।  
 विश्वासः क्रियतामस्मिन् व्यतीपातव्रतोत्तमे ॥  
 इत्युक्त्वा स्वर्गतः सोऽथ राज्ञी वै पश्यतस्तदा ।  
 तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा राजापि अहधे व्रतं ॥  
 ततो राजा पुरङ्गत्वा व्रतं बाह्यारयञ्जनान् ।

सर्व्वं च कृतवांस्तत्र व्यतीपातव्रतं शुभं ॥  
 ततो राज्यं चिरं कृत्वा देवदेवस्य चक्रिणः ॥  
 हृद्यैश्चः प्राप्तवांस्तेन विष्णोस्तत्परमं पदं ।  
 अतस्त्वं कुरु राजेन्द्र व्यतीपातव्रती क्षमं ॥  
 सर्व्वपापक्षयकरं शृणामिह सुखपदं ॥  
 इदं यः कुरुते मर्त्यः श्रद्धाभावसमन्वितः ।  
 सर्व्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥  
 यया तु पुत्रकामिन्या कृतं सा लभते सुतान् ।  
 स्त्रीकामिनेह तद्वत्स लभेन्नारीमनुत्तमां ॥  
 व्यतीपातव्रतमिदं व्यतीपातदिने यजेत् ।  
 ज्ञानवान् धनवान् श्रीमान् इहैव स सुखी भवेत् ।  
 य इदं शृणुयाद्भक्त्या विष्णुलोके मञ्जीयते ॥

इति नारदीयपुराणोक्तं व्यतीपातव्रतं ।

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणा  
 धीश्वरसकलविद्याविगारश्रीहेमाद्रिविर-  
 चिते चतुर्व्वर्गचिन्तामणौ व्रत-  
 खण्डे योगव्रतानि ।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ।

— 000 —

अथ करणव्रतानि ।

येनेदं निजगौरवेषु दूरा-  
दुत्कर्षञ्च गदपि नीयते स एषः ।  
आचष्टे निखिलमनीषितार्थमिहैव  
हेमाद्रिः करणगणव्रतानि ॥

सनत्कुमार उवाच ।

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि करणव्रतमुत्तमं ।  
बवाख्यं बालवञ्चैव कौलबन्धैतिलङ्घरं ।  
वणिजं विष्टिरित्याहुः करणानि पुराविदः ॥  
माघमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे यदा भवेत् ।  
ववाभिधानकरणमुपवासस्तदा भवेत् ॥  
पूजयेन्नाम्बुतं देवं गन्धमाख्यबिलेपनैः ।  
सौवर्णी प्रतिमा कार्या विष्णोः कर्षमिता शुभा ॥  
जपेद्दहर्निशं तत्र मन्त्रमष्टाक्षरं नुधः ।  
कलशञ्च समानीय ताम्रपात्रं तद्योपरि ॥  
विन्ध्यस्य पूजयेद्देवं सुवर्णकमलेन च ।  
बितानं चामरं घण्टां देवाय प्रतिपादयेत् ॥

एवं सप्त विधियानि बवाख्यान्यथ सप्तमे ।  
 बवे तु करणे प्राप्ते पूर्व्वं पूर्व्वं समाचरेत् ॥  
 ब्राह्मणान् भोजयेत्वात् सप्तसंख्यान् सदक्षिणं ।  
 अथैवं बालवादीनि विष्टयन्तानि यथा क्रमं ॥  
 उषित्वा सप्त सप्तैव पूर्व्वोक्तविधिना नृप ।  
 समापयेद्द्रुतं भूरिगोभूहेमादिदानतः ॥  
 एवं कृते व्रते राजन् राजसूयाश्वमेधयो ।  
 समस्तं फलमाप्नोति सुखं कीर्तिं महष्कृत्यं ।

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तं करणव्रतं ।

युधिष्ठिर उवाच ।

कृष्ण केयं जनैः सर्व्वैर्विष्टिभद्रेति चोच्यते ।  
 कस्यात्मजेयं का ज्येष्ठा कथं वा पूज्यते नरैः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

सुता मार्त्तण्डदेवस्य क्रायया जनिता पुरा ।  
 गनैश्चरस्य भगिनी सौन्दर्यातिभयङ्करा ॥  
 सा जातमात्रा भुवनं यस्तं समुपचक्रमे ॥  
 निर्याति यदि कार्य्येण कथितस्य पुरस्थिता ।  
 विघ्न करोति स्वपतो भुञ्जानस्य स्थितस्य च ।  
 यन्नविघ्नकरी रौद्रा समाजोत्सवनाग्निनी ॥  
 नित्योद्देगकरीपार्थ त्रिनाशयति सा जगत् ।  
 तान्तु दुर्व्विनयां कस्मै यच्छाम्येनां सुमध्यमां

कन्यादुर्विन्ध्याङ्गैः पिता दीपेण गृह्यते ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कन्या देया विजानता ॥  
 चित्त्यैवमशुभां भद्रां यस्य यस्य प्रयच्छति ।  
 तं तमेव क्षणेनैव सुरराजसकिन्नराः ।  
 मण्डपं मण्डपारम्भे विनाशयन्ति तत्क्षणात् ।  
 विवस्वान् चित्तयामास कस्येयं प्रतिपाद्यते ॥  
 विरूपा दुष्टहृदया गर्हभास्या त्रिपादिका ॥  
 ऊर्ध्वरोममहादंष्ट्री स्वेच्छाचारविहारिणी ।  
 दत्ता येषामसौख्याय भवतीह कथञ्चन ॥  
 एवं वितर्कयन् देव आस्ती यावद्विद्वस्यतिः ।  
 तावत्तया जगत्सर्वं दुष्टया समभिद्रुतं ॥  
 अथाजगाम सवितुः पाशं त्रिद्वारण्डसम्भवः ।  
 उपालभ्य ददौ चास्य विष्टेर्ह्यष्ट्यमग्रेपतः ।  
 भास्करस्तगुवाचेदं स्वयम्भुवनेश्वरं ॥  
 भवान् कर्त्ता च हर्त्ता च कस्मादेवं प्रभाषसे ।  
 एवमुक्तस्तदा ब्रह्मा भास्करेणामितदुच्यते ॥  
 तदीयाच विष्टिमात्स्यं शृणु भद्रे मयोदितं ।  
 करणेः सह वर्त्तन्व ब्रवन्नालवकौलवैः ॥  
 सप्तभिर्द्वेदिने प्राप्ते यद्भोष्टं कुरुष्व तत् ।  
 यात्राप्रवेशमाङ्गल्यकृत्पिवाण्यकारकान् ॥  
 भक्षयस्वाभिसुखगान् नरानुन्मार्गगामिनः ।  
 नोद्दिजनीयो हि जनी भ्रजन्त्या दिवसत्रयं ॥  
 पूज्या सुरासुराणां त्वं दिवसाङ्गं भविष्यति ।

उल्लङ्घ्य ये प्रवर्त्तन्ते भद्रे त्वां निर्भया नराः ।  
 तेषां विनाशय शुभं कार्य्यमार्य्ये सुनिश्चितं ॥  
 एवमेघा समुत्पन्ना विष्टिरिष्टिविनाशनी ।  
 निवेदितेति कौत्सेय तस्मात्तां परिवर्ज्य ॥  
 सिंहघीव सप्तभुजा त्रिपादा पुच्छसंयुता ।  
 खरोत्तमाङ्गवदना प्रेतरूढा कशोदरी ॥  
 ज्वलच्चक्षुष दधती हस्ते पाशासिंघनायः ।  
 नरमुण्डाश्च मालाश्च मुद्रा सप्तविधा स्मृता ॥  
 सजलजलदवर्णा दीर्घनासोरुदंष्ट्रा  
 विपुलहनुकपोला पिण्डकोदण्डजङ्घा ।  
 अनलशतसहस्रं चोद्गिरन्ती समन्तात्  
 पतति भुवनमध्ये कार्य्यविनाशाय विष्टिः ॥  
 भानोः सुता किन्तु गतायजाता  
 लक्ष्णा कुमूर्तिः सततं कुचैला ।  
 देवैर्नियुक्ता करणान्तसस्था  
 विष्टिस्तु सर्व्वेषु विवर्जनीया ॥  
 मुखे तु घटिकाः पञ्च हेतु कण्ठे सदा स्थिते ।  
 हृदि चैकादश प्रोक्ताश्चतस्रो नाभिमण्डले ।  
 पञ्च कट्यान्तु विज्ञेयास्तिस्रः पुच्छे जयावहाः ॥  
 मुखे कार्य्यविनाशाय घोवायां धननाशनी ।  
 हृदि प्राणहरा श्रेया नाभ्यान्तु कलहावहा ।  
 कट्यामर्धपरिभ्रंशो विष्टिपुच्छे ध्रुवक्षयः ॥  
 पृथिव्यां यानि कार्य्याणि पशुभानि दृग्भानि च ॥

( ८१ )

तानि सर्वाणि सिध्यन्ति विष्टिपुच्छे तृपोत्तम ।  
 जलानसेन्दुक्रूरेण याम्यवातेन्द्रदिक्क्रमात् ॥  
 संख्यासमानैः प्रहरैर्विष्टिर्दुष्टामुखे येतः ।  
 कराली मन्दिनी रौद्री समुखी दुर्मुखी तथा ॥  
 त्रिशिवा वैष्णवी हंसी ह्यष्ट चैतास्तु विष्टयः ।  
 धन्या दधिमुखी भद्रा महामारी खरानना ॥  
 कालरात्रिमंहारौद्री विष्टिश्च कुलपुत्रिका ।  
 भैरवी च महाकाली असुराणां त्रयङ्करी ॥  
 द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।  
 न च व्याधिभयन्तस्य रोगी रोगात् प्रमुच्यते ॥  
 ग्रहाः सर्वेऽनुकूलाः स्युर्न च विघ्नादि जायते ।  
 रणे राजकुले द्यूते सर्वत्र विजयी भवेत् ॥  
 यद्य पूजयते नित्यं शास्त्रोक्तविधिना नरः ।  
 तस्य सर्वार्थसिद्धिस्तु जायते नात्र संशयः ॥  
 एतद्भद्राव्रतं पूर्वमेतत्तं कथितं मया ।  
 एवमेवा समुत्पन्ना विष्टिरिष्टविनागनी ।  
 तस्मान्नरेण कौन्तेय वर्जनीया फलार्थिना ॥  
 येनोपवासविधिना व्रतेन च युधिष्ठिर ।  
 पूजिता तोषमायाति तद्देव कथयामि ते ॥  
 यस्मिन् दिने भवेद्भद्रा तस्मिन्नहनि भारत ।  
 उपवासस्य नियमं कुर्यान्मारी नरोऽथ वा ॥  
 यदि रात्रौ भवेद्विष्टिरेकभक्तं दिनद्वयं ।  
 कार्यस्तेनोपवासः स्यादिति धीराणिको विधिः ॥

प्रहरस्योपरि यदा स्याद्विष्टिः प्रहरत्रयं ।  
 उपवासस्तथा कार्यं एकभक्तमतोऽन्यथा ॥  
 सर्वौषधिजलस्नानं सुगन्धामलकैरथ ।  
 नद्यान्तङ्गाग्रेऽथ गृहे स्नानं सर्वत्र शस्यते ॥  
 देवान् पितृन् समभ्यर्च्य ततो दर्भमयों शुभां ।  
 विष्टिं कृत्वा पुष्यधूपैर्नैवेद्यादिभिरर्चयेत् ॥  
 होमन्तु नामभिर्विष्टिः शतमष्टोत्तरं नृप ।  
 भुञ्जीत दत्त्वा विप्राय तिलान् पापममेव च ।  
 सतैलं कशरं भुक्त्वा पथाङ्गुञ्जीत कामतः ॥  
 छायासूर्यसुते देवि विष्टिरिष्टार्थनाशनि ।  
 पूजितामि यथाशक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव ॥  
 उपोष्य विधिनानेन दश मम यथाक्रमात् ।  
 उद्यापनं ततः कुर्यात् पूष्वैवत् पूज्य भामिनीं ॥  
 स्थापयित्वायमे पीठे कशरान्नं निवेद्य च ।  
 परिधाय कृष्णवस्तयुगं मन्त्रेण तं पुनः ॥  
 ब्राह्मणाय पुनर्हृद्यास्त्रीहृत्तैलांस्तिलांस्तथा ।  
 कृष्णां सवत्सां गामेकान्तथैव कृष्णकम्बलां ।  
 दक्षिणाञ्च यथा शक्त्या दत्त्वा भद्रां विमर्जयेत् ।  
 य एवं कुरुते पार्थ सम्यग्भद्राव्रतं नरः ।  
 विघ्नं न जायते तस्य कार्यारम्भे कथञ्चन ॥  
 राक्षसा वा पिशाचा वा पूतना शाकिनी यज्ञाः ।  
 न पीडयन्ति तं मर्त्यं यो भद्राव्रतमाचरेत् ॥  
 न चैष्टवियोगः स्याद्वहानिस्तस्य जायते ॥



देहान्ते याति सदनं भास्करस्य न संशयः ।  
 सूर्यात्मजातिभयदाभ गिनौ शनेर्या  
 मर्त्तय भ्रमत्यविरतं करणक्रमेण ।  
 तां कृष्णभासुरमुखीं समुपोष्य विष्टि-  
 मिष्टार्थसिद्धिमनिशच्च पुमानुपैति ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं विष्टिव्रतं ।

—000—

कृष्ण उवाच ।

तथान्यदपि ते वच्मि विष्टिव्रतमनुत्तमं ।  
 यत्कृत्वा विष्टितो न स्याद्भयङ्गापि युधिष्ठिरः ।  
 सुकरं सुगुणं श्रेष्ठं सर्वकामार्थदं नृणां ।  
 परं प्रीतिकरं भानोः सर्वविघ्नोपशान्तिदं ॥  
 मार्गशीर्षामले पक्षे चतुर्थ्यामारभेद्बुधः ।  
 संपूज्य ब्राह्मणश्रेष्ठं विष्ट्यादौ भरतर्षभ ॥  
 प्रागुक्तां पूज्य तां देवीं मन्त्रमेतमुदीरयेत् ।  
 भद्रे भद्राय भद्रं हि चरिष्ये व्रतमेव ते ॥  
 निर्विघ्नां कुरु मे देवि कार्यसिद्धिश्च भावय ।  
 सुस्नातः पूज्यतामेवं ब्राह्मणं च स्वशक्तितः ।  
 ततो भुञ्जीत राजेन्द्र यावद्भद्रा न जायते ॥  
 अथ वान्तेऽपि भद्रायाः कामतो वाग्यतः शुचिः ।  
 न किञ्चिद्भक्षयेत्प्राज्ञो यावद्भद्रा प्रवर्तते ।  
 अनेन विधिना पार्थ प्रतिभद्रां समाचरेत् ।

नरो वा यदि वा नारी सर्वकामार्थसिद्धये ॥  
 ततः संवत्सरे पूर्णे प्रतिमाङ्गारयेद्बुधः ।  
 लौहीं शैलमयीं वापि दारुजां वा स्वशक्तितः ॥  
 शक्त्या चोद्यापनं कृत्वा स्थापयित्वा यथाविधि ।  
 पूजयेद्भक्तिमान्विप्रो मन्त्रैरेभिरुदारधीः ॥  
 पूजितासि यथा पूर्वमिन्द्रेण धनदेन च ।  
 विष्णुना शङ्करेणाथ तथाऽन्नः पूजयाम्यहं ॥  
 निर्व्विघ्ननार्थसंसिद्धिर्यथा तेषां कृता त्वया ।  
 तथा ममापि भक्त्या भद्रे भद्रप्रदा भव ॥  
 अन्नानाद्यवा दर्पास्वामन्नङ्गं कृतं हि यत् ।  
 तत्क्षमस्वाशुभे मातर्हीनस्य शरणार्थिनः ॥  
 इति कुर्याद्यथाशक्त्या वित्तशोठाविवर्जितः ।  
 अशक्तः परकीयां वा पूजयित्वा नराधमः ।  
 अभावे लेखजां कृत्वा विधिं निष्पादयेद्बुधः ॥  
 एवं हि कुरुते यस्तु भक्त्या भद्रावतं नरः ।  
 भद्रायामपि कार्याणि तस्य सिद्धान्त्यसंशयः ॥  
 इह लोके सुखं भुक्त्वा पुनैश्वर्य्यसमन्वितः ।  
 अविघ्नेन नरव्याघ्र दीर्घायुर्व्याधिर्वर्जितः ।  
 ततोऽन्ते स्वर्गतिं प्राप्य मोदते सुरराष्ट्रिव ॥  
 एतत्पुरा महेंद्रेण श्रीर्षेण वृत्रजिघांसया ।  
 विमानार्थं कुबेरेण नीतं यन्निदमारिणा ॥  
 शशुना त्रिपुरान्ताय पाञ्चजञ्जालाय विष्णुना ।  
 भद्रं हि भद्रं भवतीह सदैव पुंसां

ये भक्तिपूर्वकमिदं व्रतमादरेण ।  
 भद्राभिधानमभिधाय मनोनुगं ये  
 कुर्वन्तु ते ह्यखिलमेव मृषाप्रवन्ति ।

इति भविष्योत्तरोक्तं द्वितीयभद्राव्रतं ।

इति श्रीमहाराजाधिराज श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-  
 धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रि  
 विरचिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ  
 व्रतखण्डे करणव्रतार्नि ।

अथ षड्विंशोऽध्यायः ।

—००१.००—

अथ सङ्क्रान्तिव्रतानि ।

—०—

परो रजोभिचरितैर्यद्दीयै-  
रानन्दितो विष्णयमेति लोकः ।  
स एष हेमाद्रिसुधीरिदानीं  
प्रक्रान्ति सङ्क्रान्तिगतव्रतोषं ॥

वञ्ज उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन तिर्यग्योनी न जायते ।  
क्लं च्छदशे च पुरुषस्तन्मनाचक्ष्व पृच्छतः ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

मेषसंक्रमणे भानी. सोपवासोऽनरोत्तम(१) ।  
पूजयेद्भार्गवं देवं रामं गन्ध्या शूषाविधि ॥  
वृषसंक्रमणे प्राप्ते तथा शृणुष्व पूजयेत् ।  
तथा मिथुनसंक्रान्तौ पूजयेद्भोगशायिनं ॥  
तथा कुम्भीरसंक्रान्तौ वराहमपराजितं ।  
नरसिंहं तथा देवं सिंहसंक्रमणे विभुं ॥  
कन्यासंक्रमणे देवं तथाश्वशिरसं यजेत् ।

---

(१) सोमकारे नरोत्तम इति पुलहान्तरे पाठः ।

तथा मकरसंक्रान्तीं रामं दशरथात्मजं ॥  
 कुम्भसंक्रमणे राजन् रामं यादयनन्दनं ।  
 मौनसंक्रमणे मत्स्यं वासुदेवन्तु पूजयेत् ॥  
 पटे वा यदि वार्त्तायां गन्धमाख्यानसम्पदा ।  
 प्रादुर्भावस्य नाम्ना च होमं कुर्वीत पार्थिव ।  
 व्रतान्ते जलधेनुन्तु कृत्वापानक्षमन्वितां ॥  
 वस्त्रयुग्मयुता दद्यात् प्रतिमासं सकाञ्चनां ।  
 रात्रौ तु दीपमालाभिर्होवदेवं प्रपूजयेत् ॥

कृत्वा व्रतं वत्सरमेतदिष्टं  
 स्तेच्छेषु तिर्यक्तु न चापि जन्म ।  
 प्राप्नोत्यवाप्नोति चिरञ्च नाकं  
 कामस्तथाप्नोति मनोऽभिरामं ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सुजन्मावाप्तिव्रतं ।

ब्रह्मीवाच ।

कुङ्कुमं रोचना मांसो सुराचन्दनबालकं ।  
 हरिद्रासह संयुक्तं मेघे स्नानं ग्रहापहं ॥  
 रोचना गोरोजना । ग्रहापहं ग्रहदोषापहं ।  
 प्रियङ्गुः पद्मकं कुष्ठं त्वचं मांषी निशाकरं ॥  
 रोचनागरुसंयुक्तं हृषस्नानं महाफलं ।  
 प्रियङ्गु फलिनी । निशाकरं कर्पूरं ॥  
 उशीरं पद्मकं कुष्ठं रोचना यन्विपर्ययकं ।

कुङ्कुमागुरुसंयुक्तं मिथुने राज्यदं मतं ॥  
उशीरं बालकं ।

रीचना बालकं सुप्तसुराशैलेयचलनं ।  
सिंहस्नानं सुराध्यक्ष राज्यायुःपुत्रवहनं ।  
हरिद्रा बालकं कुष्ठं मांसौ चन्दनरीचना ।  
कान्यास्नातं प्रकर्त्तव्यं मन्तानरतिवर्जन ॥  
रीचनारङ्गकुष्ठञ्च चन्दनीशीरपद्मकं ।  
हरिद्रा बालसंयुक्तं तुले दुष्कृतनाशनं ॥  
प्रियङ्गुस्फटिकं मांसौ पद्मकं रीचनागुरुः ।  
सुप्ताकुष्ठममीपेतं हृषिके राज्यदं मतं ॥  
प्रवालं मीतिकं कुष्ठं रीचनाघनपद्मकं ।  
सुरामांसौ समीपेतं धनुःसंक्रमणे शुभं ॥

घनो मुस्ता ।

रीचनातात्रकं कुष्ठं चन्दनागुरुकुङ्कुमं ।  
उशीरं पद्मकेयूरं मकरे सर्वसौख्यदं ॥  
ग्रन्थिपर्णं त्वचा बासा केसरं ज्ञातिपत्रकाः ॥  
रीचनासह संयुक्तं कुष्ठे पुत्रासुराज्यदं ।

केसरी नागकेसरः ।

कपूरफलमूलीर्वा मांसौ चन्दनपद्मकं ।  
बालकं सघनीशीर त्वचा मीने शुभाबहं ॥  
हादशैते समाख्याताः स्नाताः सुरवरार्षिताः ।  
चक्रच्छीनाशना धन्या महापातकनाशनाः ॥  
देवदारुमहाकुष्ठं चन्द्रशैलेयकुन्दरः ॥

पद्मकं पत्रकम्बोलं सुरसा गुग्गुलुस्तथा ।

महिषाख्यमथान्यन्तु द्रव्याख्यिकादशेति वै ॥

चन्द्रं कपूरं । सुरमा तुलसी ।

नक्षत्रे सोमदैवत्ये योजनीया नियम्बितः ॥

सोमदैवत्ये ऋगग्निरसि ।

विजयाविद्यया जप्तं कृतमङ्गे नयोजितं ।

विजयं नाम विख्यातं सर्वोपद्रवनाशनं ॥

अलक्ष्मीशयनं धन्यं ग्रहकृत्यदुरापहं ।

बालानां रक्षणार्थाय राजकार्येण (१) सिद्धिदं ॥

एतत् कथितं शक्र समासेन मया तव ।

स्नानं संक्रान्तिधूपस्तु यथावत्परिपृच्छतः ॥

इति देवीपुराणोक्तानि संक्रान्तिव्रतानि ।

— ००० —

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि धान्यव्रतमनुत्तमं ।

यत् कृत्वा हि नरो राजन् सर्व्व कामानवाप्नुयात् ॥

अग्ने विषुवे चैव स्नानं कृत्वा विचक्षणः ।

व्रतस्य नियमं कुर्याद्वात्वा देवं दिवाकरं ॥

करिष्यामि व्रतं देव त्वङ्गत्स्वत्परायणः ।

तद्विघ्निन मे जातु तव देव प्रसादतः ॥

(१) परकार्येण इति वा पाठः ।

इत्युच्चार्य लिखित्पत्रं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकं ।  
 भास्करं पूष्वपत्रेषु आग्नेये च तथा रविं ॥  
 विवस्वन्तं तथा याम्ये नैऋत्ये पूषणं तथा ।  
 आदित्यं बारुणे पश्चे वायव्ये तपनन्तथा ॥  
 मार्त्तण्डमिति कौविरे ऐगानि भानुमेव च ।  
 एवञ्च क्रमशोऽभ्यर्च्य विश्वात्मा मध्यदेशतः ॥  
 कृताञ्जलिपटो भूत्वा सर्वन्दद्यात्समन्त्रक ।  
 कालात्मा सर्वभूतात्मा विदात्मा विश्वतीमुखः ।  
 व्याधिमृत्युजरागोकसंसारभयनाशनः ॥

इत्यर्घमन्त्रः ।

पुष्यधूपैः समभ्यर्च्य शिरसा प्रणिपत्य च ।  
 रविभ्यात्वा ततो दक्षाहान्यप्रस्थं द्विजातये ॥  
 प्रतिमासं पुनस्तद्वत् पूज्यो देवः सहस्रपात् ।  
 एषं सदा प्रदातव्यं धान्यप्रस्थं द्विजन्मने ॥  
 एवं संवत्सरे पूर्णं कुर्व्यादुद्यापनक्रियां ।  
 अर्घपात्रं हि शीवर्णं कारयेन्मण्डल शुभं ॥  
 द्विभुजं पूजयेद्भागुं रक्तवस्त्रयुगान्वितं ।  
 धान्यद्रीणेन सहित तदर्हं न स्यशक्तितः ॥  
 स्वर्णशृङ्गीं रोप्यक्षरां कांस्थलेहीं पयस्विनीं ।  
 रविरूपं द्विजं ध्यात्वा तस्मै वेद्विदे तथा ॥  
 विद्यापात्राय विप्राय तत्सर्वं विनिवेदयेत् ।  
 अष्टौमसहस्राणां फलमाप्नोति मानवः ॥



सप्तजन्मसहस्राणि धनधान्यसमन्वितः ।  
 निर्व्याधिर्निरुजो धीमान् रूपवानपि जायते ॥  
 इति स्कन्दपुराणीक्तं धान्यसंक्रान्तिव्रतं ।

—000(1)000—

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अतःपरं प्रवक्ष्यामि लवणसंक्रान्तिमुत्तमं ।  
 संक्रान्तिवासरं प्राप्य स्नानं कृत्वा शुभैर्जलैः ॥  
 वस्त्रालङ्कारसम्बोधि भक्तिभावसमन्विते ।  
 कुङ्कुमेन लिखेत्पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकं ॥  
 भास्करं पूजयेद्भक्त्या यथोक्तक्रमयोगतः ।  
 तदग्रे लवणं पात्रं सगुडं स्थापयेद्बुधः ॥  
 पुष्पैर्धूपैः समभ्यर्च्य नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ।  
 प्रदक्षिणं ततः कृत्वा उपविश्य यथाविधि ॥  
 ध्यायेद्द्विजन्मने रूपं भास्करेण समन्वितं ।  
 पूजितस्तु यथा शक्त्या प्रसीद मम भास्कर ॥  
 लवणं सगुडं पात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 एतं संवत्सरे पूर्णं भानुं कृत्वा हिरण्यमयं ॥  
 रत्नवस्त्रयुगच्छन्नं रत्नचन्दनचर्चितं ।  
 कमलं लवणं पात्रं धेन्वा सर्षपं द्विजातये ॥  
 प्रदद्याद्भानुमुद्दिश्य विष्णोः प्रीयतामिति ।  
 एतं कृते तु यत्पुण्यं प्राप्यते भुवि मानवैः ॥  
 न केन गदितुं शक्यं वर्षकोटिशतैरपि ।

लवणाचलदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥  
 सर्वकामसमृद्धात्मा विमानवरमध्यगः ।  
 सूर्यलोके वसेत् कल्पं पूज्यमानः सुरासुरैः ।  
 इति स्कन्दपुराणोक्तं लवणसंक्रान्तिव्रतं ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

वश्ये ऽहं भोगसंक्रान्तिं सर्वलोकविवर्द्धनीं ।  
 संक्रान्तिवासरं प्राप्य योषितस्तु समाह्वयेत् ॥  
 कुङ्कुमं कञ्जलञ्चैव सिन्दूरं कुसुमानि च ।  
 सुगन्धीनि च सर्वाणि ताम्बूलं शशिसंयुतं ॥  
 शशिसंयुतं कपूरसंयुतं ।

तण्डुलान् फलसंयुक्तान् प्रदद्याच्च विचक्षणः ।  
 अन्यान्यपि हि वस्तूनि भोगसाधनकानि च ॥  
 दद्यात् प्रहृष्टमनसा मिथुनेभ्यः प्रयत्नतः ।  
 भोजयित्वा यथा शक्या वस्तुयुग्मं प्रदापयेत् ॥  
 एवं संवत्सरस्यान्ते रविं सम्पूज्य पूर्ववत् ।  
 सुवर्णमृङ्गौ रीष्यक्षरां सर्वोपस्करसंयुतां ।  
 धेनुं सदक्षिणां दद्यात्सपत्नीकदिजातये ॥  
 एवं यः कुरुते भक्त्या भोगसंक्रान्तिमादरात् ।  
 स्यात् सुखी सर्वमर्त्येषु भोगी जन्मनि जन्मनि ॥  
 इति स्कन्धपुराणोक्तं भोगसंक्रान्तिव्रतं ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अथान्यदपि ते वच्मि रूपसंक्रान्तिमुत्तमां ।  
 संक्रान्तिवामरं स्नानं तैलं कृत्वा विचक्षणः ॥  
 हैमपात्रे घृतं कृत्वा हिरण्येन समन्वितं ।  
 सुरूपं वीक्ष्य तत्पात्रं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 एकभक्तं ततः कृत्वा भक्त्या चैव समन्वितं ।  
 व्रतान्ते काञ्चनं दद्याद्घृतधेनुसमन्वितं ॥  
 अश्वमेधमहस्त्राणां फलमाप्नोति मानवः ।  
 रूपयौवनसम्पत्त्या आयुरारोग्यसम्पदा ॥  
 लक्ष्मीश्च विप्लान् भोगान् लभन्तीह न संशयः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोकश्च गच्छति ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं रूपसंक्रान्तिव्रतं ।

—050—

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि तेजःसंक्रान्तिमुत्तमां ।  
 संक्रान्ति वामरं प्राप्य स्नानं कृत्वा विचक्षणः ॥  
 शालितण्डुलसंयुक्तं कारणं कारयेच्छुभं ।  
 तन्मध्ये दीपकं स्थाप्य प्रज्वलन्तं स्वतेजसा ।  
 तन्मध्ये मोदकं स्थाप्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 अर्घ्यं च पूर्वं वत्कार्यमेकभक्तान्तु पूर्वं वत् ।  
 संवत्सरे तु संपूर्णं कुर्यादुद्यापनं बुधः ॥  
 शोभनं दीपकं कार्यं सुवर्णं न तु नारद ।

ताम्रिण करकं कार्यं तन्मध्ये दीपकं न्यसेत् ॥  
 कपिला सह दातव्या करकेण द्विजातये ।  
 सुवर्षकाटिदानस्य तत्फलं प्राप्यतेऽनघ ॥  
 तेजसादिव्यमङ्गाशो वायोबलमवाप्नुयात् ॥  
 संक्रान्तिव्रतमाहात्म्यात्प्रभते नात्र संशयः ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं तेजःसंक्रान्तिव्रतं ।

— ००० —

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अथान्यां संप्रवक्ष्यामि सौभाग्यसंक्रान्तिमुत्तमां ।  
 शृणु नारद यत्नेन धनैश्वर्यपटागिनीं ॥  
 अयने विषुवे गुक्ते व्यतीपातेन भानुना ।  
 संक्रान्तिदिवसे कुर्यादेकभक्तं विमत्सरः ॥  
 पूर्ववद्दानमभ्यर्च्य तथा चैव सुवामिने ।  
 सौभाग्याष्टकसंयुक्तं वस्त्रयुग्मं मयोषिते ॥  
 विप्राय वेदविदुषे भक्त्या तत् प्रतिपादयेत् ।  
 एवं संवत्सरे पूर्णं कृत्वा ब्राह्मणभोजनं ।  
 पर्वतं स्तवणं कृत्वा यथा विभवमारतः ॥  
 काञ्चन कमलं कृत्वा भास्करश्चैव कारयेत् ।  
 गन्धपुष्पादिना पूज्य विप्राय प्रतिपादयेत् ॥  
 पुष्करे च कुरुक्षेत्रे गोसहस्रफलं लभेत् ।  
 सा प्रिया मर्त्यलोकेषु ना करोति व्रतं त्विदं ॥

गङ्गरस्य यथा गौरी विष्णोर्लक्ष्मीर्यथा द्विवि ।

मत्स्येलीके तथा सापि प्रियेण सह मोदते ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं सौभाग्यसंक्रान्तिव्रतं ।

— ००० —

स्कन्द उवाच ।

अथान्यामपि ते वच्मि फलसंक्रान्तिमुत्तमां ।

संक्रान्तिवासरं प्राप्य ज्ञानं कृत्वा तु पूर्व्ववत् ॥

सपूज्य पूर्व्ववद्भानुं पुष्पधूपादिना तथा ।

शर्करासहितं पात्रं फलाष्टकसमन्वितं ॥

सक्रान्तिवासरं प्राप्य ब्राह्मणाय निवेद्येत् ।

तदन्ते तु रविं कुर्यात्सुवर्णं च नारद ॥

कुम्भस्योपरि सख्याप्य गन्धदुग्धैः प्रपूजयेत् ।

फलाष्टकं ततो दद्याद्भक्ष्यं ज्यसमन्वितं ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तफलसंक्रान्तिव्रतं ।

— ००० —

नन्दिकेश्वर उवाच ।

धनसंक्रान्तिमाहात्म्या शृणु स्कन्द विधानतः ।

यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥

संक्रान्तिवासरं प्राप्य शुचिर्भूत्वा समाहितः ।

कलशं निर्घणं गृह्य वारिपूष्यं निधापयेत् ॥

सुवर्णं युक्तं कृत्वा प्रतिमासन्तु दापयेत् ।

विधिनानेन वर्षान्ते प्रीयतां मे दिवाकरः ॥

पूजाविधानं सर्वत्र धान्यसंक्रान्तिवद्भवेत् ॥  
 उद्यापनञ्च वक्ष्यामि संपूर्णव्रतसुत्तमं ।  
 सौवर्णं कमलं कृत्वा सूर्यश्चोपरि विन्यसेत् ॥  
 हस्ते सुवर्णघटितं पद्मजं वै निवेदयेत् ।  
 गौदानं तत्र दातव्यं एवं संपूर्णभावेन ॥  
 एवं कृते तु यत्पुष्पं फलं ख्यातं न चोक्तहे ।  
 जलानां व्रतसाहस्रं धनयुक्तो भवेन्नरः ॥  
 आयुरारोग्यसम्पन्नः सूर्यलोके महीयते ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तं धनसंक्रान्तिव्रतं ।

—०००—

नन्दिकेश्वर उवाच ।

यथान्यां संप्रवक्ष्यामि आयुःसंक्रान्तिसुत्तमां ।  
 शृणु वक्त विधानेन यथा पुष्पं प्रवर्षते ॥  
 संक्रान्तिदिवसे पूज्य पूर्ववच्च दिवाकरं ।  
 कांस्यं चीरद्वृतं दद्यात्कश्चिरञ्च स्वशक्तितः ॥  
 मन्त्र एव पृथग्दाने पूजा सैव प्रकीर्तिता ।  
 सचीरं सुरभीजातं पीयूषसमरूपदृक् ॥  
 आयुरारोग्यमैश्वर्यं मनो देहि विजापितं ।  
 क्षमेन विधिना सम्भक्त्वा सर्वं दद्याद्दत्तन्द्रितः ॥  
 उद्यापनादिकं सर्वं धान्यसङ्क्रान्तिवद्भवेत् ।  
 एवं कृते तु यत्पुष्पं शक्यं नेदं मयोदितं ॥  
 निष्ठाधिरपि दीर्घायुस्तेजस्वी सर्वत्रश्रुतः ।

( ८१ )

अपमृत्योर्भयं नास्ति जीवेच्च शरदः शतं ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तमायुःसंक्रान्तिव्रतं ।

—000@000—

ब्रह्मीवाच ।

आज्ञासद्भ्रान्तिमाहात्म्यं शृणु स्कन्द विधानतः ।

यां कृत्वा सर्वं लोकेषु आज्ञावान् जायते नरः ।

सद्भ्रान्तिदिवसे पुण्ये प्रारभेन्नियमं व्रते ।

पद्ममष्टदलं कृत्वा कुङ्कुमेन तु भास्करं ॥

पूजयेन्मन्त्रसुखार्थं विधिवद्बुधसन्निधौ ।

आज्ञा तेजस्करी पृष्ठे प्रभादीप्तिशशस्करी ॥

आज्ञां सर्वं व्र गां देव मम देहि नामोऽस्तुते ।

पूज्यैवं कुङ्कुमिनाद्य दद्याद्दिप्राय भोजनं ।

उद्यापने तु चण्डाद्यं सौवर्षं सरथं तथा ॥

एकचक्रश्च सप्ताश्वमेवमेव ममन्वितं ।

यः कुर्वाद्दिशिमानेन आज्ञासद्भ्रान्तिमुत्तमां ॥

अथाज्ञाऽसुवक्षिता लोके सूर्यतस्तस्य जायते ।

गोमन्त्रमिवसुतेष्टे आज्ञा सर्वं च जायते ।

रिपवः सहस्रं यान्ति सुखं प्राप्नोत्यनुत्तमं ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तमाज्ञासंक्रान्ति व्रतं । ॥

—000—

नन्दिकेशर उवाच ।

कीर्त्तिसद्भ्रान्तिमाहात्म्यं शृणु स्कन्द विधानतः ।

सङ्क्रान्तिवासरं प्राप्य रविविम्बं लिखेद्भुवि ॥  
 तस्य मध्ये स्थितं देवं पूजयेत्सर्वमन्त्रतः ।  
 यथाविभवसारेण ततो विप्राय दक्षिणां ॥  
 प्रतिमासं तु वै श्रेतं वस्त्रयुग्मं प्रदापयेत् ॥  
 उद्यापने तु दौष्ण्यं सूर्यमन्त्रं प्रदापयेत् ।  
 श्रेतवस्त्रयुग्मं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 एवं कृते पराकीर्तिर्जायते वापि वज्रज ।  
 फलं न शक्यते वक्तुं ह्यतेरपि जिह्वया ॥  
 विमला कीर्त्ती राज्यञ्च जायते नात्र संशयः ।  
 आयुरारोग्यसम्पन्ने जीवेद्दुर्घटं नरः ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तं कौर्त्तिसंक्रान्तिव्रतं ।

— ०००@००० —

मन्दिजेम्बर उवाच ।

वक्ष्याम्यपापसङ्क्रान्तिं शृणु स्कन्द विधानतः ।  
 संक्रान्तीं नियतो भूत्वा तिस्रैः श्रेतैः समन्वितैः ॥  
 करकं वर्षमानञ्च प्रतिमासं निवेदयेत् ।

वर्षमान इति श्रावः

मन्त्रे चानेन तु स्त्रायाम्भक्तिभावसमन्वितः ॥  
 तिस्रो माम्पातु पापेभ्यस्तव देव प्रसादतः ।  
 त्वञ्च मां रक्ष देवेश वाङ्मनःकायकल्पात् ।  
 उद्यापने च देवस्य सौवर्षमाषकेण तु ।  
 द्विभुजा प्रतिमा कार्या रक्षतेनाथ कारयेत् ॥



तिलधेनुः प्रदातव्या व्रतेऽग्निचात्र संशयः ।  
 पूर्वपापप्रक्षायाय आयुरारोग्यहेतवे ॥  
 एतत्सर्वं पुरा प्रोक्तं ब्रह्मणा विश्वे तदा ।  
 विश्वरिन्द्राय जगदे तथा प्रोवाच शश्वे ॥  
 शश्वेव ममाचष्टे मया प्रोक्तं प्रभी तव ।  
 सर्वसङ्क्रान्ति दिवसे प्रारभेद्भ्रतसुत्तमं ।  
 दक्षिणोत्तरसङ्क्रान्तौ सर्वास्त्रिति च केन च ॥  
 अद्भुतत्वाच्छरीरस्थेयौगपद्यात् प्रशस्यते ।  
 न चात्र विधिलोपः स्वात्सर्वत्रैकन्तु दैवतं ॥  
 नानादेवव्रतानान्तु नैककालः प्रशस्यते ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तमपापसंक्रान्तिव्रतं ।

—००@००—

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अद्याद्यां संप्रवक्ष्यामि ताम्बूलाख्यामनुत्तमां ।  
 विधानं पूर्वं वक्तुर्याद्यान्यसङ्क्रान्तियच्च तत् ॥  
 ताम्बूलचन्दनाद्यश्च प्रष्टव्यान्नां द्विजोत्तमात् ।  
 यावत्सर्ववत्सरं पूर्णं रात्रौ रात्रौ ततः परं ॥  
 याम्बूलं भक्षयेद्दिप्रान् कारयश्चैव नान्तरं ।  
 वत्सरान्ते तु कमलं कृत्वा चैव तु काश्चनं ॥  
 पत्रकीशश्च कुर्वीत तथा पूगीफलालयं ।  
 चूर्णभाण्डं प्रकुर्वीत पूगप्रस्फोटनं तथा ।  
 चक्षुषासादिचूर्णानां भाण्डानि च द्विजर्षभ ॥

द्विजदाम्बल्यमावाह्य सर्वोपस्कारसंयुतैः ।  
 द्रव्यैश्च पूजयेद्ब्रह्मवा भोजयेत् षड्वारसैर्द्विजान् ॥  
 उपकल्पितश्च यस्मिंश्चिद्ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 एवं करोति वा नारी ताम्बूलाख्यं व्रतोत्तमं ॥  
 सर्वकामानवाप्नोति मर्त्ये जातिकुलोद्भवे ।  
 सौभाग्यन्तेज अतुल्यं प्राप्नोति द्विजसत्तम ॥  
 भर्ता पुत्रैश्च पौत्रैश्च भोदते च गृहे गृहे ।  
 मृता कालान्तरे पश्चात् सूर्यलोके महीयते ॥  
 पतिना देवबहिर्ष यावदाहृतसंग्रहं ।  
 मृष्योति युवती काचित् सापि तत्फलममृते ।  
 मृष्यते सर्व पापेभ्यः स्वर्गलोके महीयते ॥  
 इति स्कन्दपुराणोक्तं ताम्बूलसङ्ग्रान्तिव्रतं ।

—०—

मन्दिषेध्वर उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि सङ्ग्रान्तिश्च मनोरथा ।  
 गुह्येन पूर्णकुम्भश्च सवस्त्रश्च स्वयत्नितः ।  
 सङ्ग्रान्तिवासरे दद्याद्ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥  
 एवं संवत्सरे पूर्णं स्वयत्नरोद्यापनं शुभं ।  
 गुह्येन पर्वतं कार्यं वस्त्ररत्नैश्च भूषितं ॥  
 अयने चीत्तरे दद्याच्चित्तगाठं न कारयेत् ।  
 यं यं प्रार्थयते कामं तं तं प्राप्नोति पुष्कलं ॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ।  
 इति स्कन्दपुराणोक्तं मनोरथमङ्ग्रान्तिव्रतं ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि विशोकसङ्घान्तिमुत्तमां ।  
 अयने विषुवे पुष्ये व्यतीपातो भवेद्यदि ॥  
 एकभक्तं नरः कुर्वीतित्तैः ज्ञानन्तु कारयेत् ।  
 काञ्चनं भास्करं कृत्वा यथा विभवशक्तितः ॥  
 ज्ञापयेत्पुष्यगन्धेन गन्धपुष्पैः सुपूजयेत् ।  
 विष्टयेद्रक्तवस्त्राभ्यां तान्त्रपात्रे निधापयेत् ॥  
 भास्कराय नमः पादौ रवे जङ्घेति वै नमः ।  
 आदित्याय नमो ज्ञानु अरु चैव दिवाकरः ॥  
 अर्थ्यन्ते तु कटिं पूष्य भानुशैवोदरे तथा  
 नमः पूष्ये तु बाहुभ्यां अर्थ्यन्ते तु पुनस्तनौ ॥  
 विवस्त्रते नमः कण्ठे सहस्रांगी मुखे स्मृतं ।  
 प्रभाकर नमो नेत्रे तेजोराशे नमः शिरः ॥  
 वरुणाय नमः केशान् पादादौ पूजयेद्रविं ।  
 अर्घ्यादि पूर्व्ववत्कार्यं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 एवं संवत्सरे पूर्णे काञ्चनेन दिवाकरं ।  
 सपञ्चहस्तं सम्युज्ज यथाविभवशक्तितः ॥  
 कारयेत्पूजयेद्भक्त्या रक्तवस्त्रैश्च विष्टयेत् ।  
 ततो होमं प्रकुर्वीत सूर्यमन्त्रैश्च नारद (१) ॥  
 द्वादश कपिला दद्याद्दशालङ्कारसंयुताः ।  
 अशक्तः कपिसामिकां वित्तशठाविवर्जितः ।

(१) अन्वयमन्त्रैश्च नारद इति पुस्तकान्तरे पाठः ।

ग्रहणे च कुरुक्षेत्रे सत्याचे च प्रदीयते ॥  
कीटि कीटिसुवर्णस्य दत्तस्य लभते फलं ।  
आयुरारोग्यमैश्वर्यं भार्यापुत्रसमन्वितं ॥  
इति स्कन्दपुराणोक्तं विशोकसङ्ग्रहान्तिव्रतं ।

—००—

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तरणाधीश्व-  
रसकलविद्याविद्यारदश्रीहेमाद्रिविरचिते  
चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे  
सङ्ग्रहान्तिव्रतानि ।

—

अथ सप्तविंशोऽध्यायः ।

—000—

अथ मासव्रतानि ।

येन त्रिलोकी धरणी कृतेयं  
कर्पूरतुल्यप्रतिमैर्ष्यशोभिः ।  
हेमाद्रिसूरिः समहाप्रभावं  
मासव्रतं व्रातमिहव्रवीति ॥

वक्ष्ये उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन रूपवान् जायते नरः ।  
एतन्मे संश्रयं ह्यिच्छि त्वं हि सर्व्वं विदुष्यते ॥  
माकण्डेय उवाच ।

फाल्गुन्यां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ।  
यावच्चैषी महाराज तावत्स्त्रातो दिने दिने ॥  
बहिः संपूजयेद्देवं केशवं भोगशायिनं ।  
एकभक्ताशनो नित्यमधःशायी तथा भवेत् ॥  
त्रिरात्रोपोषितः पूजाश्चैषां कुर्यात्तद्यैव च ।  
स्वशक्त्या रजतन्द्याहस्त्रयुग्मं तद्यैव च ॥

रूपार्चिनो मासमिदं मयोक्तं  
व्रतोत्तमं नित्यमदीनसत्त्वं  
कृत्वा तु नाकं मनुजस्ववाप  
मानुष्यमासाद्य च रूपवान् स्यात् ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं रूपवाप्तिव्रतं ।

ब्रह्मीवाच ।

धर्मराज निबोधिद् दमनादिमहोत्सवं ।  
 प्रहृत्तवरनारीकं पञ्चमीश्वारसुन्दरं ॥  
 संयुतो नन्दनवने प्रार्थयथा सह भार्यया ।  
 विभ्रयोत्फुल्लनयनी बभ्रामोक्तवच्छिवः ॥  
 स ददर्श वने फुल्ले विद्याधरगणान् बहून् ।  
 वसन्तर्त्तौ नक्तमानान् सुरासुरगणार्चितान् ॥  
 सन्तानपारिजाताभ्यां बद्धा वै माधवीलता ।  
 कदाचिद्दीलनञ्चक्रुः समालिङ्ग्य घनस्तनीं ॥  
 शीतमान्दोलकारूढा अभसन् परमस्त्रियः ।  
 येनैवीत्याटयन्ति स्म स्ननाद्यमपिमन्त्रयं ॥  
 तद्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टा भवानी प्राह शङ्करं ।  
 कौतुकं मे समुत्पन्नं पद्मगाभरण प्रभो ॥  
 आन्दोलकं मम कृते कारयस्व स्वलङ्घनं ।  
 यथा समन्दोलयेऽहं यथा चेन्ने त्रिलोचन ॥  
 तद्गोरीवचनं चारु श्रुत्वाऽसौ वृषभध्वजः ।  
 आन्दोलहारयामास समाह्वय महासुरं ॥  
 स्तम्भहयहारयित्वा श्लेषकाष्टमयं दृढं ।  
 सत्यञ्चैवोपरितनं श्रेष्ठं काष्ठमकल्पयत् ॥  
 वासुकिं दक्षिणाश्वानि बह्वानिन सुसंघतं ॥  
 तत्पुरा सञ्चयं पीठं कृतवाग्धृषिमण्डितं ॥  
 भूरिकार्पासकौशेयेः सहस्रैर्बैष्टितेन वै ।  
 स्रग्दामालम्बितकरं मणिमोक्तकशेखरं ॥

चेरयित्वा विचिन्तान्तां दोलां वैजालिनोत्तरां ।  
 संसिद्धां सिंहगुरवे गौरवेण न्यवेदयन् ॥  
 तत्रारूढस्तु भगवान् सोमः सोमविभूषणः ।  
 मण्डनान्दोलयामास पार्श्वस्थैः पार्श्वदैः सह ॥  
 वामपार्श्वे तु विजया दक्षिणे तु जया भवेत् ॥  
 चामराक्रान्तवाङ्मंशसमाञ्जितकुचद्वयं ।  
 चान्दोलयन्त्या पार्श्वत्वा तद्वीतं गद्गदाक्षरं ॥  
 येन देवासुरस्त्रीणामासीदानन्दनिर्भरः ।  
 अयुर्गन्धर्वपतयो नन्दतुषासुरीगणाः ॥  
 उत्तालवाद्यानि तथा वादयन्ति स्म चारणाः ।  
 चेलुः कुलाचलाः सर्वे चक्षुभुः सम सागराः ॥  
 ववुर्वाताः सनिर्घाता देवे दोलासमन्विते ।  
 आलोक्य व्याकुलं लोकं देवाः शक्रपुरीगमाः ।  
 उपेत्य प्रणिपत्योच्चैः सर्वपापहरं परं ॥  
 उपारमन्व भगवन् भवतः क्रीडयानया ।  
 जगद्गघूर्णितं देव विचलञ्जलसागरं ॥  
 गीर्वाणगीर्भिः संप्रष्टः शङ्करो लोकशङ्करः ।  
 समुत्तार दोलातः प्रहर्षीत्फल्गुलोचनः ॥  
 उवाच वचनं शक्रः सुरसार्धस्य पश्यतः ।  
 सानुकम्पं सुललितं विस्फुटार्धपदाक्षरं ॥  
 श्रीमहेन्द्र उवाच ।  
 अथ प्रवृत्तिं वै दोलाक्रीडां पुष्करिणीतटे ।  
 वसन्ते कारयिष्यन्ति मन्त्रिते त्रिदगाङ्गणे ॥

नेत्रपट्टपटीच्छ्वं पद्मरागविभूषितं ॥

छाद्यकैरुपसम्पन्नां विन्यस्तकनकादुकां ॥

अदुका शृङ्खला ।

विचित्राभरणां भूरिभाभासितदिगन्तरां ।

मालाविद्याधराक्रान्तां प्रान्तारोपितदर्पणां ॥

छत्रचामरसंछ्वां यथाशक्त्यथवा कृतां ।

अग्निकार्यं ततः कृत्वा दिक्षु दिक्षु दिशां बलिं ॥

तस्यामारोपयेद्देवमिष्टशिष्टजनावृतं ।

मूलमन्त्रेण देवाणां प्राप्तं दीलाधिरोहणं ॥

पार्श्वस्थो ब्रह्मणो विद्वान् पठेद्वा मन्त्रमुत्तमं ।

विश्वतश्चरुत विश्वतो सुखो विश्वतो वाहुत विश्वतस्त्वान् ।

संवाहुभ्यां धमति सम्पत्त्रैर्यावाभूमौ जनयन् देव एकः ॥

गभीरतूर्यनिर्घोषैः कलहानाञ्चनिःस्वनैः ॥

स्तुतिमङ्गलशब्दैश्च पुष्यधूपाद्दिवासितं ।

शुद्धमक्षोदताम्बूलपुष्पमालाकुली जनः ॥

तां विहाय जलक्रीडामन्यासां विदधीत च ।

पीतशीतजलाघातताडितो यज्जनः सुखं ॥

मन्यते नियतं कोऽपि प्रभावोऽयमनङ्गजः ।

एवं येऽनुगमिष्यन्ति नरीं दीलामुपागतां ॥

निरुजस्ते भविष्यन्ति सुखिनः शार्दः शतं ।

पुत्रपौत्रसमायुक्ता धनधान्यसमायुताः ॥

विद्वान्मेह सुखं मर्त्ये ततो वासन्ति तत्परं ।

प्राप्ते ब्रह्मसमये सुरसत्तमाना-



मान्दोलनं सुरवरानसु कुर्वते ये ।  
 ते प्राप्नुवन्ति भुवि जन्मतरोः फलानि  
 दुःस्वार्त्तितः कुलशतान्यपि तारयन्ति ॥

इति भविष्योत्तरोक्त आन्दोलनविधिः ।

— . —

महाभारते ।

चैत्रन्तु नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।  
 सुवर्णमणिसुक्ताढ्यो कुले महति जायते ॥  
 विष्णुधर्म ।

चैत्रं विष्णुपरो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।  
 सुवर्णमणिसुक्ताढ्यं गार्हस्थ्यं समवाप्नुयात् ॥  
 अहिंस्रः सर्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ।  
 नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यह्रयाष्टशतं जपेत् ॥  
 अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

— ००० —

अथ वैशाखव्रतानि ।

श्रीकृष्ण उवाच ।

वैशाखे पुष्यलवणं वर्जयित्वा तु गोमयः ।  
 विष्णुलोकमवाप्नोति ततो राजा भवेदिह ॥

एतत्कान्तिव्रतं नाम कान्तिसौभाग्यदायिनी ॥  
विष्णुरत्र देवता ।

इति पद्मपुराणोक्तं कान्तिव्रतम् ।

— — —  
महाभारते ।

निरन्तरैकभक्तेन वैशाखं यो जितेन्द्रियः ।  
नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥  
विष्णुधर्म्यम् ।

यः क्षिपेदेकभक्तेन वैशाखं पूजयेत्परिं ।  
नरो वा यदि वा नारी ज्ञातीनां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥  
अश्विनः सर्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ।  
नमाऽस्तु वासुदेवायैत्यह्यष्टशतं जपेत् ।  
अतिरात्रस्य यत्रस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतम् ।

— — —  
वल्गु उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन बुद्धियुक्तो भवेन्नरः ।  
एतदेव मनुष्याणां मनुष्यत्वमुपाहृतम् ॥  
मार्कण्डेय उवाच ।  
चेन्नान्तु समतीतायां यावन्मासं दिने दिने ।  
पूर्ववत् पूजयेद्देवं नृसिंहमपराजितम् ॥

पूर्ववदिति चत्रमासोक्तरूपावाप्तिव्रतवदेकभक्तवह्निःज्ञान-  
भूगव्यादिकं कर्त्तव्यमित्यर्थः ।

होमश्च प्रत्यहं कुर्वीतथा सिद्धार्थकैर्तृप ।

ब्राह्मणान् भोजयेत्तथा तथा त्रिमधुरं तृप ॥

त्रिमधुरं मधुष्टतशर्कराः(१) ।

वैशाख्यां कनकन्द्याभिरात्रोपीषितो नरः ।

ज्ञानावाप्तिप्रदत्वेतद्भूतं बुद्धिविवर्द्धनं ॥

कृत्वा व्रतं मासमिदं यद्योक्त-

मासाय नार्कं सुचिरं मनुष्यः ।

मानुष्यमासाय तु बुद्धियुक्तो

ज्ञानेन युक्तश्च तथा भवेच्च ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं ज्ञानावाप्तिव्रतं ।

### अथ ज्यैष्ठ्यव्रतानि ।

महाभारते ।

ज्येष्ठामूलन्तु वै मासमेकभक्तन्तु यः क्षिपेत् ।

ऐश्वर्यं मतुलं श्रेष्ठं पुमान् स्त्री वाभिजायते ॥

विष्णुधर्म्म ।

कृत्वापि तमना ज्येष्ठमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।

अहिंस्रः सम्भूतेषु वासुदेवपरायणः ॥

(१) दुग्ध शतशर्करा इति पाठान्तरं ।

नमोऽस्तु, वासुदेवायेत्यहयाष्टयत् जपेत् ।  
अतिरात्रस्य यज्ञस्य समग्रं फलमाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

— ००० —

वच उवाच ।

श्रीविष्णोर्नस्य लोकेऽस्मिन् जोषितस्यापि किं फलं ।  
तस्माद्भूतं समाचक्ष्व येन स्याच्छीयुतो नरः ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

वैशाख्यां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिव्रतमात् ।  
पूर्वं वत् पूजयेद्देवं श्रीमहायं दिने दिने ॥  
पूर्वं वदिति चैत्रादिरूपावामिन्नतवत् ।  
पुष्यमूलैः फलेषु वै जुहुयादक्षतानि च ।  
बिल्वाश्च वज्री सततं गोरसैर्भीजयेच्चिजान् ॥  
चिरात्त्रोषितो ऽप्येष्टां कनकं प्रतिपादयेत् ।  
वस्त्रयुग्मञ्च राजेन्द्र तेन साफल्यमश्नुते ॥

कृत्वा व्रतं मासमिदं यद्योक्त-

मासाद्य मासं सुचिरं मनुष्यः ।

मानुष्यमासाद्य विवृण्वतेजाः

श्रिया युतः स्नात्स्वगतिं प्रधानं ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं श्रीप्राप्तिव्रतं ।

अथाषाढव्रतानि ।

महाभारते ।

आषाढमेकभक्तो न स्थित्वा मासमतन्द्रितः ।

बहुधान्यो बहुधनो बहुपुत्रश्च जायते

विष्णुधर्मा ।

आषाढमेकभक्तो न पूजयेद्विष्णुतत्परः ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

—००—

वज्र उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन भोगमाप्नोति मानवः ।

किन्तु भोगविहीनस्य कार्यमस्ति धनैर्द्विज ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

ज्यैष्ठ्यान्तु समतीतायां प्रतिपत्पञ्चमिहमात् ।

पूर्वं यत् पूजयेद्देवं विश्वरूपधरं हरिं ॥

अत्रापि पूर्ववदिति रूपावाप्तिव्रतवदित्यर्थः ।

कृत्वा व्रतास्ते च तथा चिरात्

दत्त्वा सुयुक्तं शयनं द्विजाय ।

स्वर्लोकमामाद्य चिरं नरेन्द्र

मानुष्यमासाद्य च भोगवान् स्यात् ॥

इति विष्णुधर्मात् भोगावाप्तिव्रतं ।

—०००—

अथ श्रावणव्रतानि ।

सञ्जय उवाच ।

कदाच यावन्ती पूज्या क्रियते तु कदा व्रतं ।  
कथमेवा कृतेन्द्राण्या किं फलन्तद्देवीहि मे ॥

विजय उवाच ।

प्राप्ते तु श्रावणे मासि शुक्लपक्षे मनोहरे ।  
संस्थाप्य पार्वतीं देवीं पूजयेद्भक्तिगन्तव्यः ॥  
मासं यावन्नियमतः संस्मरन् पार्वतीं हृदि ।  
श्वेतार्घ्यैः श्वेतकुसुमैः श्वेतचन्दनकेन च ॥  
गन्धैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्यथाकालोद्भवैः फलैः ।  
अर्घ्यं दद्यात् फलेनैव कुसमाहृतचन्दनैः ॥  
नमोऽर्हश्रावणी देवी सर्वपापक्षयङ्करी ॥  
गृह्णाणार्घ्यं हि देवेशि शङ्करेण समं मम ॥

अर्घ्यमन्त्रः ।

नमो नमस्ते देवेशि अर्हश्रावणि पार्वति ।  
नमस्तेऽस्तु जगन्मातर्नमस्ते हरवन्नभे ॥  
नमो देवि नमस्तुभ्यं कात्यायनि नमोऽस्तु ते ॥  
नमः कालि महाकालि शिवे दुर्गे नमोऽस्तु ते ।  
नमो रुद्राणि सर्वाणि अपर्णे शङ्करप्रिये (१) ।  
सर्वभूतहिते देवि त्राहि संसारसागरात् ।

पूजामन्त्रः ।

धूपोऽयं सर्वदेवानां आहारो ह्यमृतोपमः ।

(१) नवमे शङ्करप्रिये इति पुलकाकरे पाठः ।

धूपं गृह्णाच्च देवेशि अर्धश्रावणि नमोऽस्तु ते ॥  
 श्रुतवस्त्रं प्रदातव्यं धीतं वा निर्मले शुभे ।  
 श्रावणान्ते ततः पश्चात्समाप्य नियमं श्रुतिः ॥  
 गौरिणीर्भोजयेच्छक्त्या मिष्टान्नेन जये शुभे ।  
 द्विजांश्च भोजयेत्तत्र वस्त्राणि परिधापयेत् ॥  
 एवंविधविधानेन कृत्वाऽर्धश्रावणीव्रतं ।  
 न तस्य स्याच्च दारिद्र्यं न चैवेष्टविद्योजनं ॥  
 अष्ट पुत्राङ्गभेजारी भर्तारश्च गुणाधिकं ।  
 सुरूपं गुणिनं कान्तं पण्डितं प्रियवादिनं ॥  
 एकभक्तो नक्तो न कुर्यादेतद् व्रतं शुभं ।  
 इदं कृत्वा पुरेन्द्राणीन्द्रं लेभे पतिमुत्तमं ॥  
 रोहिणी पतिमालेभे चन्द्रं व्रतनिषेवणात् ।  
 रक्ष्या देवी सुभर्तारं प्रादित्यं प्राप सत्पतिं ॥  
 इदं कृत्वा कथितं भद्रे अर्धश्रावणिकाव्रतं ।  
 कुरुते या च पूर्णानि व्रतान्यस्या भवन्ति हि ॥  
 यदा अष्टकृतैर्दोषैर्यदि देवो न वर्षति ।  
 कथाश्रवणमात्रेण देवो वर्षति वासवः ॥  
 दुर्भिक्षे डामरे घोरे सङ्ग्रामे राजविग्रहे ।  
 कथामेतां निशम्याश्च दोषैः सर्वैः प्रमुच्यते ॥  
 इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तमर्धश्रावणिकाव्रतं ।

— ००० —

युधिष्ठिर उवाच ।

स्वभर्त्ररति सम्बन्धे महाकेशो यथा भवेत् ।  
कुलस्त्रीणां तथाचक्ष्व व्रतं मम जगद्गुरो ॥

कृष्ण उवाच ।

यमुनायास्तटे पूर्वं मथुरास्ति पुरी शुभा ।  
तस्यां शत्रुघ्ननामाभूद्राजा राघवनन्दनः ॥  
तस्य भार्या कीर्त्तिमाला नाम्नासौत् प्रथिता भुवि ।  
कदा प्रणम्य भगवान् वशिष्ठमुनिसत्तमः ॥  
पृष्टः कथं मुनिश्रेष्ठ सौभाग्यमतुलं लभेत् ।  
ब्रूहि मे तिलसम्बन्धं कारणं व्रतमुत्तमं ॥  
एवमुक्त्वास्तथा ज्ञानौ वशिष्ठः कीर्त्तिमालया ।  
ध्यात्वा गुह्यं तन्माचख्यौ कोकिलाव्रतमुत्तमं ॥

वसिष्ठ उवाच ।

आषाढपौर्णमास्यान्तु सन्ध्याकाले ऋपस्थिते ।  
सङ्कल्पयेन्नासमेकं आवणीप्रभृति च्छहं ।  
ज्ञानं करिष्ये नियता ब्रह्मचर्ये स्थिता सती ।  
भोक्षामि नक्तं भूगय्याङ्गरिष्ये प्राणिनान्दयां ॥  
इति सङ्कल्प्य पुरुषो नारी वा ब्राह्मणार्थान्तिके ।  
प्राप्यानुष्ठान्ततः प्राङ्गे सर्व्वं सामग्रिसंयुतः ।  
पुरुषः प्रतिपत्काले दन्तधावनपूर्व्वकं ॥  
नद्याङ्गत्वाद्यवा वाप्यां ब्रह्मचर्ये स्थिता सती ।  
तुलसीमृत्तिकां गृह्णन् तङ्गागे गिरिनिर्भरे ॥  
ज्ञानं कुर्याद्व्रती पार्थ सुगन्धामलकैस्तिलैः ।



दिनाष्टकं ततः पश्चात् सर्वाषध्या पुनः पुनः ॥  
 यत्रया पिष्टया चाष्टौ दिनानि पृथगाचरेत् ।  
 स्नात्वा ध्यात्वा रविं सन्धान्तर्पयित्वा पितृंस्तथा ।  
 तर्पयित्वा लिखेत् पिष्टैः कीकिलां पल्लिरूपिणीं ॥  
 कलकम्बां शुभैः पुष्पैः पूजयेच्चम्पकौद्रवैः ।  
 पात्रैर्वा धूपनैवेद्यैर्दीपालक्तकचन्दनैः ॥  
 तिलतण्डुलैर्दूर्वाभैः पूजयेत्तां क्षमापयेत् ।  
 नित्यं नित्यश्चरेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन पाण्डव ॥  
 तिलात्स्निहन्तिलास्कीर्णं तिलवर्णं तिलप्रिये ।  
 सौभाग्यधनपुत्रांश्च देहि मे कीकिले नमः ।  
 इत्युच्चार्य ततः पश्चाद्ब्रह्मभ्येत्य संयतः ॥  
 कृत्वाहारं स्वपेत्यार्थं यावन्मासं समाप्यते ।  
 मासान्ते ताम्रपात्रे तु कीकिलां तिलपिष्टजां ॥  
 रत्ननेत्रां स्वर्णपद्मां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 वस्त्रैरत्रैर्गुणैर्युक्तां श्रावण्यां कुण्डलेऽथवा ॥  
 श्वश्रुश्वश्रुवर्गे वा दैवज्ञे वा पुरोहिते ।  
 व्यासे वा संप्रदातव्या व्रतिभिः शुभकाङ्क्षया ।  
 एवं या कुरुते नारी कीकिलाव्रतमादरात् ।  
 सप्तजन्मनि सौभाग्यं सा प्राप्नोति सुविस्तरं ॥  
 निःसपत्नं पतिं भव्यं सञ्जेहं प्राप्य भूतले ।  
 मृता गौरीपुरं याति विमानेनार्कवर्षसा ॥  
 एतद्भूतं वशिष्ठेन मुनिना गदितं पुरा ।  
 तथा चानुष्ठितं पार्थ समग्रं कीर्त्तिमालया ॥

तयामं सर्व्वसम्पन्नं वशिष्ठ वचनादि ह ।  
 पुत्रसौभाग्यसत्कारं भद्रबुद्धस्य प्रसादतः ॥  
 एवमन्यापि कौन्तेय कीकिलाव्रतमादरात् ।  
 चरिष्यति ध्रुवं तस्याः सौभाग्यञ्च भविष्यति ॥  
 ये कीकिलां कलरवाकुलकण्ठपीठां  
 यच्छन्ति साज्यतिलपिष्टमयीं द्विजेभ्यः ।  
 ते नन्दनादिषु वनेषु विहृत्य कामं  
 मर्त्यं समेत्य मधुरध्वनयो भवन्ति ।  
 इति भविष्योत्तरोक्तं कीकिलाव्रतम् ।

— ००० —

महाभारते ।

आयुषं नियतो मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।  
 यत्र तत्राभिक्षेकेण युज्यते ज्ञातिवर्धनः ॥  
 विष्णुधर्मम् ।  
 क्षपयेच्चैकभक्तेन आवणं विष्णुतत्परः ।  
 ऋक्षिंसुः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ।  
 नमोऽस्तु वासुदेवायैत्यहृषाष्टशतं जपेत् ।  
 वाजपेयस्य यज्ञस्य समयं फलमश्नुते ।

— ००० —

इति एकभक्तव्रतम् ।

वक्ष्ये उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन नित्यं धर्मपरो भवेत् ।  
धर्मवत्त्वं महाभाग जन्मसाफल्यकारणं ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

आघातृणां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ।  
पूर्व्ववत् पूजयेद्देवं धर्मविग्रहधारिणं ॥  
पूर्व्ववदित्यनेन रूपावाप्तिव्रतातुक्तविशेषेण ग्रहणं ।

मासस्य चान्ते नृप पौर्णमास्यां

कुर्यान्निरात्रं कनकञ्च दद्यात् ।

व्रतीत्तमं धर्मकरन्तवीर्यं

सर्व्वार्थदं नात्र विचारमस्ति ।

इति विष्णुधर्मात्तरोक्तं धर्मावाप्तिव्रतं ।

—०००①०००—

अथ भाद्रपदव्रतानि ।

—०८०—

महाभारते ।

प्रौष्ठपादन्तु यो मासमेकाहारो भवेन्नरः ।  
धनाढ्यस्फ्रीतमतुलमैश्वर्य्यं प्रतिपद्यते ॥

विष्णुधर्म ।

एकाहारो भाद्रपदे यद्य ज्ञानव्रतं नयेत् ।

अहिंस्रः सर्व्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ॥

नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहवाष्टयतं जपेत् ।

राजसूयस्य यज्ञस्य फलवद्भगुणं लभेत् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

— ००० —

वक्ष्य उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन धनवान् पुरुषो भवेत् ।

पुत्रवान् देवलोकेषु पूज्यो भवति मानवः ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

आवस्थां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ।

पूर्ववत् पूजयेद्विष्णुं देवं सङ्घर्षणं विभुं ॥

अनुक्तान्तु रूपावामिन्नतादिस्रियं ।

नीलोत्पलदलैः पत्रैर्भृङ्गराजस्य पार्थिव ।

घृतेन परमाग्नेन तथा विश्वैश्च पार्थिव ॥

त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् प्रोष्ठपथां ततो नरः ।

गाञ्च दद्याद्द्विजेन्द्राय व्रतात्सो मनुजोत्तम ॥

कृत्वा व्रतं मासमिदं त्वयोक्त-

मासाद्यनाकं सुचिरं मनुष्यः । ,

मानुष्यमासाद्य धनान्वितः स्यात्

व्रतेन चीर्षेण नरेन्द्रसिंहः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं धनावाप्तिव्रतं ।



अथाश्विनव्रतानि ।

ब्रह्मीवाच ।

मासि चास्युजे शुक्ल एकादश्यामुपोषितः ।  
 षष्ठीयात्तु व्रतं श्रेष्ठं कौमुदाख्यं महाफलं ॥  
 अहिंसकः शुचिर्भूत्वा धीतवासा जितेन्द्रियः ।  
 द्वादश्यामर्चयेत्स्नात्वा वासुदेवं जगद्गुरुं ॥  
 विलिप्य तु सुगन्धैश्च चन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।  
 कमलोत्पलकङ्कारैरक्तोत्पलसुगन्धिभिः ॥  
 अर्चयेदप्युत्तं नित्यं मालत्या च सुगन्धया ।  
 घृतेन पूरयेत्पात्रं न तु तैलेन पूरयेत् ॥  
 दीपं दद्याद्दिवानक्तं वर्त्या तु चिरया शुभं ।  
 नेवेद्यं पायसापूपमोदकैर्क्वनिवेदयेत् ॥  
 निवेद्या वासुदेवः य भक्त्या चैव जितेन्द्रियः ।  
 व्रतमेतन्नरः कृत्वा धर्मं ध्यात्वा चमापयेत् ॥  
 श्रीं नमो वासुदेवाय सततञ्च जपेद्बुधः ॥  
 विप्रांश्च भोजयेद्भक्त्या दद्याच्चैव तु दक्षिणां ।  
 अनेनैव विधानेन मासमेकं व्रतञ्चरेत् ॥  
 यावद्द्विबुध्यते देवः कात्तिके गरुडध्वजः ।  
 व्रतमेतन्महापुण्यं महापातकनाशनं ॥  
 समं मासोपवासेन फलमस्याधिकं हि वा ।  
 सर्व्वकामप्रदं पुण्यं पुत्रारोग्यधनावहं ॥  
 व्रतमेतन्नरः कृत्वा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ।  
 इति विष्णु रहस्योक्तं कौमुदीव्रतं ।

वच उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन नरस्मारोग्यमाप्नुयात् ।  
रूपसौभाग्यलावण्यं सरोमस्य निरर्थकं ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

प्रोष्ठपद्यासतीतायां प्रतिपत्प्रभृति क्रमात् ।  
यादवाय दिवार्चायामनिरुद्धं प्रपूजयेत् ।  
पूर्वोक्तेन विधानेन यावदाश्वयुजौ भवेत् ॥

पूर्वोक्तेन रूपावामिव्रतोक्तेन ।

मारसैरर्चयेद्देवं जातीपुष्पैर्द्दिने दिने ।

मारसैः कमलैः ।

ष्टुतेन जङ्घुयाहङ्गिं ष्टुतं दद्याद्दिजातये ।  
भीजनं गोरसप्रायं तथा विप्राय भीजयेत् ॥  
द्विरात्रोपोषितः सम्यगाश्वयुज्यान्ततो नरः ।  
सष्टुतं ससुवर्णञ्च कांस्यपात्रं दिजातये ॥  
दद्यान्नृपतिशार्दूलं नरस्त्रारोग्यवृद्धये ।  
व्रतमेतद्विनिर्दिष्टं स्वर्गलोकप्रदं शुभं ॥

न केवलं रोगहरं प्रदिष्टं

मास्राकरं रूपविवृद्धिदयम् ।

व्रतोत्तमं ते कथितं तृवीर

यथेष्टकामासिकरं तृलोके ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तमारोग्यव्रतम् ।

महाभारते ।

तथैवाश्वयुजं मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।  
मृत्यवान् वाहनाढ्याश्च बहुपुत्रश्च जायते ॥

विष्णुधर्मीक्षरे ।

नयं चाश्वयुजं विष्णुं पूजयन्नभोजनः ।  
अहिंस्रः सर्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ॥  
नमोऽस्तु, वासुदेवायेत्यहयाष्टशतं जपेत् ।  
अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

अथ कार्तिकव्रतानि ।

कार्तिकीमासः सर्वदैवलोऽग्निश्च सर्वदेवानां मुखं तस्मात्  
कार्तिके मासि बहिः स्थायीत गायत्रीजपनिरतः ।

सर्वदैवहविष्ठाशी संवत्सरकृतात्पापात् पूतो भवति ॥

इति विष्णुस्मृत्युक्तः कार्तिकस्नानविधिः ।

मैत्रेय उवाच ।

कार्तिकः खलु मासो वै सर्वदेवमतीमहान् ।

यानि कृच्छ्राणि (१) चीलानि सर्वपापहराणि हि ॥

कृतानि मुनिभिस्तानि भवन्ति मनुजाधिप ।

(१) यानि कृच्छ्रानि इति पाठान्तरं ।

देवप्रित्तममुखेभ्यो दत्तं छतमधु म्रुतं ॥  
 तत्रान्नमद्यं प्रीतं ब्रह्मणा लोककर्तृणा ।  
 समभ्यर्च्य हरिं भक्त्या दीपं दत्त्वा दिवानिशं ।  
 सर्वपापविशुद्धात्मा नरो याति दिवं नृप ॥  
 इति वङ्गपुराणोक्तं कार्तिकव्रतं ।

सनत्कुमार उवाच ।

दामोदरस्य वाक्यन्तु श्रुत्वा प्रसन्नकारसः ।  
 केनोपायेन भगवत्प्रयते तन्महत्तमः ॥  
 नाकलोकसमं सौख्यं प्रेतलोके भवेत्कथं ।  
 भगवन् देवकीपुत्रस्तद्वाक्यस्वीत्तरं ददी ॥  
 उवाच परमं शुभं मनोरथफलप्रदं ।  
 भी शृणुष्व महर्षिषुषे यत् प्रवक्ष्यामि ते वचः ॥  
 पूर्णपात्रयुजे मासि पीर्णमास्यां समाहितः ॥  
 प्रथमे च निशारन्मनोवाक्यायसंगतः ।  
 व्रतः पितृभ्यः प्रेतेभ्यो नमोऽर्प्याय विष्णवे ।  
 नमो यमाय इन्द्राय कान्तारपतये नमः ॥  
 दद्यादनेन मन्त्रेण दीपं अहासमन्वितः ।  
 यः कार्तिकं समधन्तु वर्त्तन्मे तस्य सम्पदः ॥  
 दिवाकरेऽस्ताषण्णमौलिभृते  
 गृह्णाद्दूरे पुत्रवः पुराणं ।  
 यूपार्जतिं यज्ञीयहृत्तदाक



मारोप्य भूमावथ तस्य मूर्ध्नि ॥  
 यवाङ्गुलच्छिद्र युतास्तु मध्ये  
 द्विहस्तादीर्घाय सुपटिकासु ।  
 कृत्वा चतस्रोऽष्टदला कृतिस्तु  
 याभिर्भवेदष्टदिगानुसारी ॥

यथैर्मितमङ्गुलं यवाङ्गुलं ।

तत्कर्षिकायान्तु मङ्गाप्रकाशो  
 दीपः प्रदेयो दलगास्तथाष्टौ ।  
 खदिङ्गुला दीपवरास्तु तैल-  
 धृतादियुक्तास्तु यथोपलब्धं ॥  
 यनङ्गुलश्चतस्रश्च वस्त्रखण्डं  
 नवं सुरकम्बधवा सुशुक्तं ॥

यनङ्गुलान् अपरिहितं ॥

धन्यं प्रयोक्तव्यं वसुकञ्च हृद्यं  
 स्निग्धं सुखत्वं सुसमं समस्तं ।  
 तच्छालिपिष्टोपरिसन्निधेयं  
 यथा न नश्येन्न च कम्पते वा ॥  
 सर्वं प्रकुर्याच्चिगुणप्रमाणं  
 मध्ये स्थितस्याप्यथ दीपराजः ।  
 दलेषु शीभाठमतीव कुर्व्यात्  
 मनोरथानामुपलब्धये च ॥  
 घण्टाष्टकं लम्बितपुष्पदाम  
 सुवस्त्रशोभान्वितमत्र पश्चात् ।

संयोज्य भूमिं त्वथ गोमयेन  
सचन्दनाग्निं जलेन लिप्तां ।  
अनेकवर्णैरथ मण्डले तु  
ऊत्वाष्टपत्रं कमलप्रमाणं ।  
फलानि मूलानि तथाक्षतानि  
लाजा दधिलीरमग्राक्षपानं ॥  
नानाविधं भक्तत्रिशेषणञ्च  
सुनृत्यगीतं मधुरञ्च वाद्यं ।  
निविद्य धर्माय हराय भूमौ  
दामोदरायाप्यथ धर्मराज्ञे ॥  
प्रजापतिभ्यस्त्वय मत्पितृभ्यः  
प्रेतेभ्य एवाथ तमस्थितेभ्यः ।  
नैऋत्यकीणादथ दक्षिणान्तं  
धर्मादिभ्यः प्रेतपर्यान्तिकेभ्यः ॥  
ततो जलं शीतलमानयित्वा  
सर्पिःसमध्वक्तमतीव हृद्यं ।  
आपूर्य चाष्टौ कलगान् जलेन  
नैऋत्यकीणादथ सन्निधाय ॥  
हेमादिपात्रान्ति लमेव पूर्णं  
दद्यात्पिधानञ्च सदक्षिणञ्च ।  
गोभृद्दिरण्यं रजतञ्च वस्त्रं  
फलानि भुक्तानि यद्यञ्च धान्यं ॥  
गृहं रथं शयनं ब्राह्मणसु

यहाथ किञ्चिद्बृद्धये मनोत्रं ।  
 निवेदयेद्ब्राह्मणसप्तमेभ्यो  
 नैऋत्यकोणादथ संस्थितेभ्यः ॥  
 एकैकशः प्रीणनश्चाथ कुर्यात्  
 धर्मादिभ्यः प्रेतपुर्यान्तिकेभ्यः ।  
 पूतक्षमग्रं विधिवच्च कुर्यात्  
 स्वशक्तिमादौ स्वधनं विचार्य ॥  
 दीपान् समग्रानथ वर्जयित्वा  
 सर्वं नयेयुस्त्वपि विप्रमुख्यान् ।  
 प्रदक्षिणीकृत्य वनाङ्गनाम्  
 ततोभवेत्संयतनत्तभोजी ॥  
 वनाङ्गनां वनदेवतां दीपस्तभस्मूर्त्तिं ।  
 इतीदमौट्गव्यवहारयुक्तं  
 निशागमे प्रत्यहमेव कुर्यात् ।  
 मासं समग्रं परया च भक्त्या  
 समाप्यते कार्तिकपौर्णमास्यां ॥  
 दिनत्रयं दीपमहीक्षवं वा  
 एकोऽथ वा दीपवरश्च देयः ।  
 तथाश्व युज्यादिसमग्रमासं  
 निशागमे प्रत्यहमेव भक्त्या ॥  
 नमोऽस्तु कान्तारकदेवताभ्यः  
 इतीव मुक्ता स्वगृहस्व शाक्यै ।  
 नार्या नरेणाथ सुसंयतेन

भक्त्या युतेनाद्य निशासु भोज्यं ॥  
 सन्ध्यात्रये दीपवराद्य देयाः  
 रात्र्यां समे कार्तिकपीर्णमास्यां ।  
 दरिद्रपेश्मस्वथ गोकुलेषु  
 श्मशानदेवायतनेषु चैत्ये  
 नदीतटेषु स्वष्टहान्तरे वा  
 भयैकलिङ्गे पथि चैकवृक्षे ॥  
 सहस्रमष्टाधिकमत्र तैल-  
 पलस्य पात्रे सुशुभे शतं वा ॥  
 ये नो तद्वर्षेणवा तद्वैः  
 प्रमाप्य रिक्तास्वथ पूरणीयाः ।  
 हस्तान् स्वकीयांश्च चतुर्दशैव  
 प्रमाप्य वस्त्रं त्वथ सूत्रवर्त्ति ॥  
 प्रज्वालयेत्ताश्च निरुध्य धीमान्  
 स्त्रीणामलङ्कारशतैः प्रपूज्य ।  
 देवी महावर्त्तिरतीव वन्द्या  
 पुण्या च साद्या भुवनप्रकाशी ॥  
 एतन्न कुर्यादथ यस्तु मन्द-  
 स्तस्यान्वकारस्य कुतोऽपि शान्तिः ।  
 अयं हि दीपः किलकल्पवृक्ष-  
 चिन्तामणिर्भद्रघटोऽथ वेणुः ॥  
 अनेन दीपेन मनोरथानां  
 सम्प्राप्तिरस्तीति न संशयोऽत्र ।

एतानि उक्त्वा कतिचिद्दृष्ट्वांसि  
दामोदरयान्तरितो बभूव ॥

इत्यादिपुराणोक्तः प्रदीपविधिः ।

वञ्ज उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन सर्व्वं त्वं जयमाप्नुयात् ।  
व्यवहारे रते द्यूते विवादे च द्विजोत्तम ॥  
जयावाप्तिः परन्नास्ति सौख्यं लोकेषु सत्तम ।  
जयावाप्तिः परं सौख्यं तदपि व्रतमुच्यतां ।

मार्कण्डेय उवाच ।

आश्वयुज्यामतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।  
पूर्व्वं वत् पूजयेद्देवं लोकनाथं त्रिविक्रमं ॥  
पूर्व्वं वदिति रूपावामिव्रतवत् ।  
त्रिरात्रगन्ते तु कार्त्तिक्यां दद्याद्भक्षणमुत्तमं ।  
सर्व्वं शस्यधरङ्कृत्वा गन्तधारत्नै रलङ्कृतः ॥

कृत्वा व्रतं मासमिदं यथोक्तं  
प्राप्नोति लोकं सुचिरं नृवीर ।  
तत्रोत्थ कालं सुचिरं मनुष्यः  
प्राप्नोति सर्व्वं च जयन्त्रिलोके ॥

इति विष्णुधर्मीत्तरोक्तं जयावामिव्रतं ।

ब्रह्मीवाच ।

सुपुण्ये कार्तिके मासि देवविपिदसेविते ।  
 क्रियमाणे व्रते नृणां स्वल्पेऽपि स्यान्महाफलं ॥  
 कृत्स्नः संवत्सरः पुण्यस्तस्मादर्षासु पूजितः ।  
 वर्षायाः कार्तिकः पुण्यः कार्ति काञ्चीनपञ्चकं ॥  
 नैवेद्यं पुष्यधूपञ्च चर्चनं सुविलेपनं ।  
 दत्त्वेकं कार्तिकं विष्णोः फलं संवत्सरं लभेत् ॥  
 अतः कार्तिकमासाद्य सदैव शुभकार्त्तुभिः ।  
 हरिमुद्दिश्य कर्त्तव्यं सुशक्त्या सुकरं व्रतं ॥  
 कार्तिकस्यासिते पक्षे वायुभक्षतुर्द्दशी ।  
 समुपैष्य नरो भक्त्या पूजयेद्भक्तुध्वजं ॥  
 उपवासस्तु कर्त्तव्यो वारिमध्ये स्थितेन च ।  
 जनकृच्छ्रमिदं कृत्वा विष्णुलोकं व्रजेन्नरः ॥  
 दशम्यां पञ्चगव्याशी एकादश्यामुपैपितः ।  
 अर्चयेच्चाश्रुतं देवं नियतस्य व्रतश्चरेत् ॥  
 कार्तिकस्यासिते कृत्वा नरो देवव्रतश्चरेत् ।  
 दामोदरं समभ्यर्च्य देवी येमानिकी भवेत् ॥  
 अपः क्षीरं दधि घृतं मत्स्यादिचतुर्द्दिनं ।  
 कार्तिकस्यासिते पीत्वा एकादश्यामुपैपितः ॥  
 कृष्णैतामहं नाम कुर्वन् संपूजयेद्हरिं ।  
 प्राप्नोति परमं विष्णोः स्थानं त्रैलोक्यपूजितं ।  
 त्रिरात्रं पयसः पानमुपवासपरस्य च ॥  
 बध्यादौ कार्तिके शुक्ले कृष्णे माहेन्द्र उच्यते ।

( ८७ )

दामीदरं समभ्यर्च्यं कृच्छ्रं माचेन्द्रमाचरेत् ॥

प्रयात्यसुक्तभन्देव विष्णुलोकमनुत्तमं ।

व्रह्मं मुन्यन्नमश्रीयादद्यावकञ्च व्रह्मं ततः ॥

मुन्यन्नं नीवारारामं ।

त्रयहोपवसेदस्यं कृच्छ्रीऽयं वैष्णवः स्मृतः ।

कार्तिकस्य तृतीयादावर्षयेद्विष्णुमव्ययं ।

शुक्लपक्षे नरो याति तद्विष्णोः परमं पदं ॥

पञ्चरात्रं पयः पीत्वा प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।

दध्याहारो भवेत्पञ्च एकादश्यामुपावसेत् ॥

कार्तिकस्य सिते कुर्वन् पूजयेद्गुरुभुजं ।

भास्कराख्यमिदं कृत्वा श्वेतहीपं व्रजेन्नरः ॥

यवागूं यावकं ग्राकं दधिश्चीरघृतफलं ।

पञ्चम्यादि सिते पक्षे कार्तिकस्य समाचरेत् ॥

कृच्छ्रं समर्षिदक्षेदं कुर्वन्विष्णुर्चने रतः ।

वैष्णवं लोकमाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितं ॥

पलाशविल्वपत्रैश्च कुशपद्मैरुडुम्बरैः ।

सुश्रुतञ्च पिबेत् शीरं घृष्टामुपवसेद्दिनं ॥

कुर्वन् हि कार्तिके शक्ते कृच्छ्रमाग्नेयमुत्तमं ।

विष्णुलोकमवाप्नोति भक्त्याभ्यर्च्यं जनार्दनं ॥

पयो विल्वानि पद्मानि शृणालकवलांनि तु ।

सप्तम्यादौ नरः कृत्वा एकादश्यामुपावसेत् ॥

कार्तिकस्यामले पक्षे लक्ष्मीप्रदमिदं व्रतं ।

केशवञ्च समभ्यर्च्यं वैष्णवीं गतिमाप्नुयात् ॥

कृच्छ्राण्ये तानि सर्वाणि सर्व्व पापहराणि च ।  
 कर्त्तव्यानि नरैर्भक्त्या कार्तिके तु विशेषतः ॥  
 गृहस्थो वा वनस्थो वा मुमुक्षुर्वाथ भिक्षुकः ।  
 कृत्वा व्रतमवाप्नोति वैष्णवं पदमव्ययं ॥  
 कृच्छ्राणि कुर्व्वन् सर्वाणि वाङ्मनोनियतेन्द्रियः ।  
 धीतवासःशुचिसनातः पूजयेद्देवमच्युतं ॥  
 अहिंसको दानरती जपहोमपरायणः ।  
 अर्चयेद्द्वरदं विष्णुं कृच्छ्राणि तु समाचरेत् ॥  
 व्रतद्रव्याणि सर्वाणि क्षीरादीनि सदा व्रती ।  
 विप्रदत्तानि चाग्नीयाचेच्छया न प्रकामतः ॥  
 यानि वै परकीयानि द्रव्याणि कश्चितानि तु ।  
 तेषां पुण्यतमन्दानं यद्दाति हिजोत्तमे ।  
 कुर्व्वन् कृच्छ्राणि पीडात्तं क्षुभया मुह्यतेऽथ वा ॥  
 अमृतम् तु गवां क्षीरं पाययेत् पोडितक्षरं ॥  
 अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।  
 हविर्ग्राह्यणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधं ॥  
 यथाज्ञेन विधानेन कृच्छ्राणि समुपाचरेत् ।  
 कार्तिके कृष्णमभ्यर्च्य धाति यत्र जनार्दनः ॥  
 एवं नानाह्वयैर्नित्यं पूजितो गरुडध्वजः ।  
 व्रतोपवासनियमैस्ते सुक्तिफलभागिनः ॥

इति विष्णु रक्षस्योक्तानि कृच्छ्रव्रतानि ।



माश्वता उवाच ।

संप्राप्य कार्तिकं मासं राजा रुक्माङ्गदो मुने ।  
मोहिनीं मोहसंयुक्तां कथं सम्बुभुजे वद ॥  
विष्णुभक्तस्तुतिपरः प्रवरः स महीक्षिता ।  
तस्मिन् पुण्योत्तमे मासि तस्यां किमकरोद्भृपः ॥

वसिष्ठ उवाच ।

संप्राप्य कार्तिकं मासं प्रबोधकरणं हरेः ।  
अतिमृगोऽप्यसौ राजा मोहिनीं वाक्यमब्रवीत् ॥  
वत देवि त्वद्वा सार्धं बहून् संवत्सरान् मया ।  
तवापमानस्य भयान्न त्वं मुक्ता मया क्वचित् ॥  
साम्प्रतं व्रतकामोऽहं तन्निबोध वरानने ।  
त्वय्यासक्तस्य मे देवि बह्वयः कार्तिका गताः ॥  
न प्रती कार्तिके जातो मुद्गैकं हरिवासरं ।  
सोऽहं कार्तिकमिच्छामि व्रतेन परिसर्पितुं ॥  
अव्रतेन गतो येषां कार्तिकी मर्त्यधर्मिणां ।  
दृष्टापूर्त्तं वृथा तेषां धर्मं पद्मोद्भवात्मजे ॥  
मांसाशिनो हि भूपाला अत्यर्थं वृगयागताः ।  
ते मांसं कार्तिके त्यक्त्वा गता विष्णुालयं शुभं ॥  
प्रवृत्तानां हि भक्षाणां कार्तिके नियमे कृते ।  
अवश्यं विष्णुरूपत्वं प्राप्यते मुक्तिसाधनं ॥  
हृदयाङ्गादकर्तृणि दीपदानाद्दिवं व्रजेत् ।  
तस्याप्यमावे सुभगे परदीपप्रबोधनं ॥  
कर्त्तव्यं भूतिकामिन सत्त्वं दानाधिकं यतः ।

एकतः सर्वदानानि दीपदानं हि चैकतः ॥  
 कार्तिके न समं प्रीतां दीपको ह्याधिकः स्मृतः ।  
 कार्तिके कार्तिकीं कृत्वा विष्णोर्नाभिभक्तो ह्येव ॥  
 आजन्मनः कृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः ।  
 प्रतीपवासनियमैः कार्तिकी यस्य गच्छति ॥  
 देवी वैमानिकी भूत्वा स याति परमं पदं ।  
 तस्मान्मोहिनि मोहन्तु परित्यज्य ममोपरि ॥  
 भव भूधरपूजायां निरता नौरजेक्षणे ।  
 अहं व्रतधरश्चैव भविष्ये हरिपूजने ॥

मोहिन्युवाच ।

विस्तरेण ममाख्याहि माहात्म्यं कार्तिकस्य च ।  
 सर्वपुण्याधिकः प्रीतो मासोऽयं राजसत्तम ॥  
 विशेषात् पुष्करे प्रक्तो ह्यारावत्यान्तु सौकरे ।  
 श्रुत्वा कार्तिकमाहात्म्यं करिष्येऽहं यथेप्सितं ॥

तस्माद्ब्रूद उवाच ।

माहात्म्यमभिधास्यामि मासस्यास्य वरानने ।  
 येन ते जायते भक्तिर्भक्त्या येनार्थते हरिः ॥  
 कार्तिके कृच्छ्रसेवी यः प्राजापत्यरतोऽपि वा ।  
 षड्हादशाहं पञ्चमा मासं वा वरवर्षिणि ॥  
 क्षपयित्वा नरो याति तद्विष्णोः परमं पदं ।  
 एकभक्तेऽथवा नक्ते तथा सुभ्नु अयाचिते ॥  
 कृते नरैर्हाराप्राप्तिर्भवेच्चै दीपमालया ।  
 तस्मिन् हरिदिने पुष्पं तथा वै भीष्मपञ्चकं ॥

प्रवीधनीं नरः कृत्वा जागरेण समन्वितां ।  
 न मातुर्जठरे याति अपि पापान्वितो नरः ॥  
 तस्मिन्दिने वरारोहे मण्डलं यस्तु पश्यति ।  
 विना सांख्येन योगेन स याति परमं पदं ॥  
 कार्तिके मण्डलं दृष्ट्वा सौकरे शूकरं शुभे ।  
 दृष्ट्वा कीकवराहन्तु न भूयस्तनपो भवेत् ॥  
 त्रिविधस्य तु पापस्य दृष्ट्वा मुक्तिर्भवेन्नृणां ।  
 मन्दारे चपलापाङ्गि कुञ्जके श्रीधरं तथा ॥  
 कार्तिके वर्जयेत्तैलं कार्तिके वर्जयेन्मधु ।  
 कार्तिके वर्जयेत्कांस्यं कार्तिके मामि सन्धितं ॥  
 तैलं राजिकादिसन्धानं ।

निष्पावान् कार्तिके देवि यो भुङ्क्ते विष्णुतत्परः ।  
 संसत्सरकृतात्पुण्याहानिर्भवति तत्क्षणात् ॥  
 प्राप्नोति राजकीं योनिं सकृद्गच्छणसम्भवात् ।  
 कार्तिके सौकरं मांसं यस्तु भुङ्क्ते सदुर्मतिः ॥  
 षष्टिर्बर्षसहस्राणि रौरवे परिपच्यते ।  
 तन्मुक्तो जायते पापी विहायी ग्रामशूकरः ॥  
 न मात्स्यं भक्षयेन्मांसं न कौर्म्यं नान्यदेव हि ।  
 चण्डालो जायते राजन् कार्तिके मांसभक्षणात् ॥  
 कार्तिकः सर्वपापघ्नः किञ्चिद्भूतधरस्य तु ।  
 गच्छेद्यस्य तु धर्मात्मा न स शीघ्रः कृताकृते ॥  
 कार्तिके तु कृता दीक्षा नृणां जन्मनिकृन्तनी ।  
 तस्मात्सर्वं प्रथमेन दीक्षापूर्वीत कार्तिके ॥

अदीक्षितस्य वामोरु कृतं सर्वं निरर्थकं ।  
 पशुयोनिं समाप्नोति दीक्षया कुलजन्म च ॥  
 न गृहे कार्तिकीं कुर्याद्दिशेषेण तु कार्तिकीं ।  
 तीर्थेषु कार्तिकीं कुर्यात्सर्व्यद्वेन भामिनि ॥  
 कार्तिके शुक्लपक्षस्य कृत्वा ह्येकादशीं नरः ।  
 प्रातर्ह्रस्वा शुभान् कुम्भान् स याति हरिमन्दिरं ॥  
 संवत्सरव्रतानां हि समाप्तिः कार्तिके स्मृता ।  
 पञ्चाहा यत्र दृश्यन्ते विष्णोर्नाभिजसम्भवे ॥  
 दिनानि यत्र चत्वारि तथैव वरवर्षिणि ।  
 उत्तरायणहीनेऽपि शुद्धिर्लम्बं विना शुभे ॥  
 दृश्यन्ते यत्र सम्बन्धाः पुत्रपौत्रनिवर्द्धनाः ।  
 तस्मान्मोहिनि कर्त्तास्मि कार्तिकव्रतसेवया ।  
 अशेषपापनाशाय तव प्रीतिविष्टुचये ॥

इति नारदीयोक्तं कार्तिकमासव्रतं ।

— ००० —

ब्रह्मीवाच ।

चीराशी कार्तिके यस्तु देव्या भक्तिरतीं नरः ।  
 शाकपाचकनक्ताशी प्रातस्त्रायी शिवारतः ॥  
 पूजयेत्तिलहोमस्तु मधुचौरहृतादिभिः ।  
 कार्यस्तु देवीमन्त्रे च ऋणु पुण्यफलं हरेः ॥  
 महापातकसंयुक्ती युक्ती वा तूपपातकैः ।  
 मुच्यते नात्र सन्देहो यस्मान्मन्त्र्यगता शिवा ॥

अन्यो वा भावनायुक्तो अनेन विधिना शिवो ।  
 स्त्रयं वा अन्यतो वापि पूजयेत् पूजयेत वा ॥  
 न तस्य भवति व्याधिर्न च शत्रुकृतं भयं ।  
 नोत्पातं गृहदुःखं वा न च राष्ट्रं विनश्यति ॥  
 महास्वभावसम्पन्ना ऋतवः शुभदायकाः ।  
 निष्पत्तिः सर्वशस्यानां तस्करा न भवन्ति च ॥  
 प्रभृतपयसो गावो ब्राह्मणाः सत्क्रियापराः ।  
 स्त्रियः पतिव्रताः सर्वा नृपा निर्हृतवैरिणः ॥  
 फलपुष्पवती देवी वनस्पतिमती महो ।  
 भवने नात्र सन्देहश्छिन्नाविधिपूजनात् ॥  
 जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।  
 दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वभा स्वाहा नमोऽस्तुते ॥  
 अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमन्तु कारयेत् ।  
 प्रातः सम्यक् स्मृता वक्ष्ये महिषघ्नो प्रपूजिता ॥  
 अघं नाशयति क्षिप्रं यथा सूर्योदयस्तमः ।  
 इति देवीपुराणोक्तं देवीव्रतं ।

— ००० —

नारद उवाच ।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि व्रतानामुत्तमस्य च ।  
 विधिं मासोपवासस्य फलश्लास्य यद्योदितं ॥  
 यथाविधा नरैः कार्या व्रतचर्या यथा भवेत् ।  
 आरभ्यते यथापूर्वं समाप्यं हि यथाविधि ॥

यावत्संख्यन्तु कर्त्तव्यं तावद्ब्रूहि पितामह ।

व्रतमेतत् सुरश्रेष्ठ विस्तरेण ममानघ ॥

ब्रह्मीवाच ।

साधु नारद यच्चैतत् पृष्टश्चर तपोधन ।

यादृशतिमतां श्रेष्ठ तच्छृणुष्व त्रयीमि ते ॥

सुराणाञ्च यथा विष्णुस्तपताञ्च यथा रविः ।

भेरुः शिखरिणां गृहहैनतेयस्त, पक्षिणां ॥

तीर्थानान्तु यथा गङ्गा प्रजानान्तु यथा वणिक् ।

श्रेष्ठं सर्व्वव्रतानान्तु तदन्मासोपवासनं ॥

सर्व्वं व्रतेषु यत्पुण्यं सर्व्वं तीर्थेषु यत्फलं ।

सर्व्वं दानोद्भवं वापि लभेन्मासोपवासकृत् ॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैर्विधिवद्भूतिदक्षिणैः ।

न तत्पुण्यमवाप्नोति यन्मासपरिलङ्घनात् ॥

तेन दत्तं दृतं जप्तं स्नानञ्चैव स्वधा कृता ।

यः करोति विधानेन नरो माममुपवासणं ॥

प्रविश्य वैष्णवं यज्ञं तेनाभ्यर्च्य जनार्दनं ।

गुरोराज्ञां ततो लब्ध्वा कुर्यान्मासोपवासनं ॥

वैष्णवानि यथोक्तानि कृत्वा सर्व्वं व्रतानि तु ।

द्वादश्यादीनि पुण्यानि ततो भ्रममुपाचरेत् ॥

अतिक्रष्टुं पराकृष्टं कृत्वा चान्द्रायणं ततः ।

मासोपवासकुर्यात् कृत्वा देहबलाबलं ॥

वानप्रस्थो यतिर्व्यापि नारी वा विधवा मुने ।

मासोपवासं कुर्यात् गुरुविप्राज्ञया ततः ॥

आश्विनस्यामले पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।  
 व्रतभेतस्तु गृह्णीयाद्यावत् त्रिंशद्दिनानि तु ॥  
 वासुदेवं समुद्दिश्य कार्त्तिकं सकलं नरः ।  
 मासञ्चोपवसेद्यस्तु स मुक्तिफलभाग्भवेत् ॥  
 अच्युतस्यालये भक्त्या त्रिकालं कुसुमैः शुभैः ।  
 मालतीन्दीवरैः पद्मैः कमलैः सुसुगन्धिभिः ॥  
 कुङ्कुमीशीरकपूरैर्विलिप्य वरचन्दनैः ।  
 नैवेद्यधूपदीपाद्यैरर्चयेत् जनार्दनं ॥  
 मनसा कर्मणा वाचा पूजयेद्भक्तुर्बुध्बजं ।  
 कुर्यान्नरस्त्रिसवनं वृहद्भक्तिजितेन्द्रियः ॥  
 नान्नामेव तथालापं विष्णोः कुर्यादहर्निशं ।  
 भक्त्या विष्णोस्तुतिर्वाच्या नृषावाद् विवर्जयेत् ॥  
 सर्वसत्त्वदयायुक्तः शान्तवृत्तिरहिंसकः ।  
 सुप्तो वासनसंस्थो वा वासुदेवं प्रकीर्त्तयेत् ॥  
 स्मृत्यालोकनगन्धादिस्वादनं परिकीर्त्तनं ।  
 अन्नस्य वर्जयेत् सर्वं यासानाद्याभिकाङ्क्षनं ॥  
 गात्राभ्यङ्गं शिरोऽभ्यङ्गं ताम्बूलं सुविलेपनं ।  
 व्रतस्थो वर्जयेत् सर्वं यच्चान्यत्र निराकृतं ॥  
 व्रतस्थो न स्मृष्टिकश्चिद्विद्विक्कर्मस्थान्न चासयेत् ।  
 देवतायतने तिष्ठेन्न गृहस्थघरेद्भृतं ॥  
 कृत्वा मासोपवासन्तु सन्ध्यात्मा जितेन्द्रियः ।  
 ततोऽर्चयेत्ततः पुष्पं द्वादश्याङ्कबुध्बजं ॥  
 पूजयेत्पुष्पमालाभिर्गन्धधूपविलेपनैः ।

वस्त्रालङ्कारवाच्यैश्च तीर्षयेद्व्युत्तं नरः ॥  
 स्नापयेत् हरिं भक्त्या तीर्थचन्दनवारिणा ।  
 चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं पुष्पधूपैरलङ्कृतं ॥  
 वस्त्रदानादिभिश्चैव भोजयेच्च द्विजोत्तमान् ।  
 दद्याच्च दक्षिणां तेभ्यः प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥  
 विप्रान् क्षमापयित्वा तु विसृज्याभ्यर्च्यं पूज्य च ।  
 एवं वित्तानुसारेण भक्तियुक्तेन शक्तितः ॥  
 एवं मासोपवासन्तु कृत्वाभ्यर्च्यं जनार्दनं ।  
 भोजयित्वा द्विजांश्चैव विष्णुलोके महीयते ॥  
 एवं मासोपवासं हि सम्यक् कृत्वा तयोद्दश ।  
 निर्व्यापयेत्तत्तस्मान् वै विधिनानेन तच्छृणु ॥  
 कारयेद्देष्यां यन्नमेकादश्यामुपोषितः ।  
 पूजयित्वा च देवेशमाचार्यानुत्तया हरिं ॥  
 अर्चयित्वा हरिं भक्त्या अभिवाच्य गुरुस्तथा ।  
 ततोऽनुभोजयेद्विप्रान् भोजयेत् यथाविधि ॥  
 विशुद्धकुलचारिणान् विष्णुपूजनतत्परान् ।  
 पूजयित्वा द्विजान् सम्यग्भोजयित्वा तयोद्दश ॥  
 तावन्ति वस्त्रयुग्मानि भाजनान्यासनानि च ।  
 योगपट्टानि शभ्राणि ब्रह्मसूत्राणि चैव हि ।  
 दद्याच्चैव द्विजादिभ्यः पूजयित्वा प्रणम्य च ।  
 ततोऽनुकल्पयेच्छय्यां शस्तास्तरणसंस्कृतां ॥  
 साच्छादनशुभां श्रेष्ठां सोपधानामलङ्कृतां ।  
 कारयित्वात्मनो मूर्तिं काञ्चनोन्तु स्वशक्तितः ॥



न्यसेत्तस्यान्तु शय्यायामर्चयित्वा स्रगादिभिः ।  
 आसनं पादुके छत्रं वस्त्रयुग्ममुपानहौ ॥  
 पतिवराणि च पुष्पाणि शय्यायासुपकल्पयेत् ।  
 एवं शय्यान्तु सङ्कल्प्य प्रणिपत्य च तान् द्विजान् ॥  
 प्रार्थयेच्चानुमीदार्थं विष्णुलोकं ब्रजाम्यहं ।  
 एवमभ्यर्चिता विप्रा वदेयुर्व्रतिनं सदा ॥  
 ब्रज ब्रज नरश्रेष्ठ विष्णोस्थानमनामयं ।  
 विमानं वैष्णवं दिव्यं सशय्यापरिकल्पितं ॥  
 तेन विष्णुपदं याहि सदानन्दमनामयं ।  
 ततो विसर्जयेद्विप्रान् प्रणिपत्यानुगम्य च ॥  
 ततश्च पूजयेद्भक्त्या गुरुं ज्ञानप्रदायकं ।  
 तां शय्यां कल्पितां सम्यग्गुरुं व्रतसमापकं ॥  
 प्रणम्य शिरसा शान्तो गुरवे प्रतिपादयेत् ।  
 एवं पूज्य हरिं विप्रान् गुरुं ज्ञानप्रकाशकं ॥  
 कृत्वा मासोपवासंश्च नरो विष्णुतनुं विशेत् ।  
 कृतमासोपवासश्च विष्णुपूजनतत्परः ॥  
 नचेष्ट्यान्तमनाः कालं धर्मस्थः सुजितेन्द्रियः ।  
 कृत्वा मासोपवासंश्च निर्व्याप्य विधिवन्मुने ॥  
 कुलानां शतमुद्धृत्य विष्णुलोकं ब्रजेन्नरः ।  
 तस्मिन् जातो महापुण्ये कुक्षे मासोपवामकृत् ॥  
 वर्षेप्रापदिनिर्मुक्ती विष्णुलोके महोयते ।  
 नरो मासोपवासानां कर्ता पुण्यव्रतां नरः ॥  
 पितृमातृकुलाभ्याश्च समं विष्णुपुरीं ब्रजेत् ।

नारी वा सुमहाभागा यश्चोक्तं व्रतमास्थिता ।  
कृत्वा मासोपवासांश्च व्रजिद्विष्णुं सनातनं ॥

नारद उवाच ।

सदुष्करमिदं देव मूर्च्छाग्लानिकरं नृणां ।  
व्रतं मासोपवासास्थं भक्तिं जनयति ऽच्युते ॥  
पीडितस्य भृगन्देव मुमूर्षोर्वीरतिनस्तदा ।  
त्यागी वानुग्रहो वाथ किन्तु कार्यः पितामह ॥

ब्रह्मोवाच ।

व्रतस्थं कथितं दृष्ट्वा मुमूर्षुं वा तपीधन ।  
दृष्ट्वा तु ब्राह्मणस्तस्य कुर्यात्सम्यगनुग्रह ॥  
अमृतं पाययेत् क्षीरमिच्छमानं सकृन्निशि ।  
यथेह न वियुज्येत प्राणैः क्षुत्पीडितो व्रतो ॥  
अतिमूर्च्छान्वितं क्षीणं मुमूर्षुं क्षुत्पपीडितं ।  
पाययित्वा पितं क्षीरं रक्षेद्दत्त्वा फलानि च ॥  
अहीरात्रच्च यो नित्यं व्रतस्थं परिपालयेत् ।  
पयो मूलं फलं दत्त्वा विष्णुलोकं व्रजेत सः ॥  
एवं मासोपवासस्यमारूढं प्राणसंग्रहे ।  
अव्रतघ्नगुणैर्द्विव्यैः परीक्षेद्ब्राह्मणाजया ॥  
नैते व्रतं विनिघ्नन्ति हविर्विप्रानुभादितं ।  
क्षीरीषधं गुरीराजयापो मूलफलानि च ॥  
एवं कृत्वाभिभजेत् (१) मगुडं पायमं तदा ।

(१) एव कृत्वाभिवासेति क्वचित् पाठः ।

पाययेद्रक्षितो यस्मात्समाप्नोति पुनर्व्रतं ॥  
 अथ विष्णुव्रतं विष्णुर्दाता विष्णुर्व्रतौ तथा ।  
 सर्व्वं विष्णुमयं ज्ञात्वा व्रतस्यं क्षीणमुद्धरेत् ॥  
 यथा समुर्षु निक्षेष्टः परिग्लानोऽतिमूर्च्छितः ।  
 तदा समुद्धरेत् क्षीणमिच्छन्तं विमुखस्थितं ॥  
 परिपाल्य व्रतौ देहं व्रतशेषं समापयेत् ।  
 यथोक्तं द्विगुणं तस्य फलं विप्रमुखोदितं ॥  
 इन्द्रियार्थेष्वसंसक्ता सदैव विमला मतिः ।  
 परितोषयते विष्णुं नीपवासोऽजितात्मनां ॥  
 किं तस्य बहुभिस्तीर्थैः स्नानहोमजपव्रतैः ।  
 येनेन्द्रियगणो घोरो निर्जितो हृष्टचेतसा ॥  
 जितेन्द्रियः सदा शान्तः सर्व्वभूतहिते रतः ।  
 वासुदेवपरो नित्यं न क्लेशं कर्तुं मर्हति ॥  
 कृत्वा व्रतं(१) यथोक्तं वैष्णवं पुरुषोत्तमं ।  
 विष्णुलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभं ॥  
 ये स्मरन्ति सदा विष्णुं विशुद्धेनान्तरात्मना ।  
 ते प्रयास्ति भयं त्यक्त्वा विष्णुलोकमनामयं ॥  
 प्रभाते चार्द्धरात्रे च मध्याह्ने दिवसत्रये ।  
 अच्युतं येऽनुकीर्त्तन्ति ते तरन्ति भवार्णवं ॥  
 पानन्दितोऽथ दुःखार्त्तः क्रुद्धः गान्तीऽथवा हरिं ।  
 यो हि कीर्त्तयते भक्त्या स गच्छेद्द्वैष्णवीं पुरीं ॥

(१) कृत्वा मूममिति क्वचित पाठः ।

गर्भजन्म-जरारोग-दुःखसंसारवन्धनैः ।  
 न बाध्यते नरो नित्यं वासुदेवमनुष्मरन् ॥  
 स्थावरे गङ्गामे सत्त्वे स्थूले सूक्ष्मे शुभाशुभे ।  
 विष्णुं पश्यति सर्व्वं त्वं यः स विष्णुः स्वयं नरः ॥  
 सर्व्वं विष्णुमयं ज्ञात्वा त्रैलोक्यं सचराचरं ।  
 यस्य शास्ता मतिस्तेन पूजितो गरुडध्वजः ॥  
 अतिकल्पानुकल्पानां व्रतानामुत्तमस्य च ।  
 विष्णुलोकमवाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥  
 विधिर्मासोपवासस्य यथावत् परिकीर्त्तितः ।  
 सुतस्त्रेह्यह्विजश्च षट् सर्व्वं लोकहिताय च ॥  
 कृत्वा श्रुत्वा च यं भक्त्या ततो विष्णुपुरीं व्रजेत् ।  
 नाभक्ताय प्रदातव्यं न देयं दुष्टचेतसे ॥

इति विष्णुरहस्योक्त मासोपवासव्रतं ।

—००—

महाभारते ।

कार्त्तिकन्तु नरो मासं यः कुर्यादेकभाजनं ।  
 शूरश्च बहुभाग्यश्च कार्त्तिकमाथैव जायते ॥

विष्णुधर्मः ।

कार्त्तिके एकदा भुङ्क्ते यश्च विष्णुपुरी नरः ।  
 शूरश्च कृतविद्यश्च बहुपुत्रश्च जायते ॥  
 अहिंस्रः सर्व्वं भूतेषु वासुदेवपरायणः ।

नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहृषाष्टगतं(१) जपेत् ।  
अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इत्येकभक्तव्रतं ।

— ० —

अथ मार्गशीर्षव्रतानि ।

— ००० —

महाभारते ।

मार्गशीर्षन्तु यो मासमेकभक्तेन संक्षिपेत् ।  
भोजयेत्तु द्विजान् भक्त्या सुच्यते व्याधिकिस्त्रिषैः ॥  
सर्वकल्याणसम्पूर्णः सर्वदुःखविवर्जितः ।  
उपोष्य व्याधिरहितो वीर्यवानभिजायते ।  
कृषिभागी बहुधनो बहुधान्यश्च जायते ॥

विष्णुधर्मं ।

मार्गशीर्षन्तु यो माममेकभक्तेन संक्षिपेत् ।  
कुर्वन् वै विष्णुशुश्रूषां स देशे जायते शुभे ॥  
अहिंस्रः सर्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ।  
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहृषाष्टगतं जपेत्(२) ।  
वाजपेयस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

(१) वासुदेवाय अहृषाष्टगतमिति पुलकान्तरे पाठः ।

(२) वासुदेवाय अहृषाष्टगतं जपेति कश्चित् पाठः ।

वञ्ज उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन नरो लावण्यमाप्नुयात् ।  
लावण्यरहितं रूपं निष्कलं प्रतिभाति मे ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

कार्त्तिक्यां समतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।  
पटे वा यदि वार्त्त्यायां प्रद्युम्नं पूजयेद्दिभुं ॥  
बहिः स्नानं ततः कुर्यान्नक्तमश्रीत वाग्यतः ।  
एकभक्तं महाराज हविष्यं प्रयतः सदा ॥  
मार्गशीर्षं ततः प्राप्य त्रिरात्रोपीषितः शुचिः ।  
सम्यूज्य देवप्रद्युम्नं हुत्वाग्नौ घृतमेव च ॥  
भोजयेद्ब्राह्मणांश्चात्र भोजनं लवणोत्कटं ।  
चूर्णितस्य ततः प्रस्यं लवणस्य द्विजातये ॥  
महारजतरक्तञ्च वस्त्रयुग्मं तच्चा गुरोः ।  
दद्याच्च कनकं राजन् कांस्यपात्रं तथैव च ॥

मासेन लावण्यकरं प्रदिष्टं

व्रतोत्तमं नाकगतिप्रदञ्च ।

न केवलं यादव सर्वकामान्

नरस्य दद्यात्पुरुषप्रधानं ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं लावण्यावाप्तिव्रतम् ।

—०—

( २२ )

## अथ पौषव्रतानि ।

— ००० —

महाभारते ।

पौषमासन्तु कौन्तेय भक्तेनैकेन यः क्षिपेत् ।  
सुभगो दर्शनीयश्च यशोभागौ च जायते ॥

विष्णुधर्म्यं ।

पौषमासं तथा दासभ्य एकभक्तेन यः क्षिपेत् ।  
शुश्रूषणपरः शीरेररोगी जायते नरः ॥  
अहिंस्रः सर्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ।  
नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहश्चाष्टशतं जपेत् ।  
अश्वमेधस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

— ००० —

वच्य सवाच ।

भगवन् कर्मणा केन शीलवान् पुरुषो भवेत् ।  
कुलजातिश्रुतेभ्यस्तु शीलमेव विशिष्यते ॥

मार्कण्डेय सवाच ।

आषहायष्यतीतायां मासमेकं दिने दिने ।  
पूर्ववत्पूजयेद्देवं वराहमपराजितं ॥  
हृतेन स्नापयेद्देवं हृतेन जुहुयाद्धरिं ।  
हृतं द्विजेभ्यो दद्याच्च हृतमिव निवेदयेत् ॥  
त्रिरात्रोपोषितः पोष्यां हृतपात्रेषु च द्विजं ।

पूजयेच्च सुवर्षेण यथाशक्ति नराधिप ॥

कृत्वा व्रतं मासमिदं यद्योक्त-

मासाद्य नाकं सुचिरं मनुष्यः ।

मानुष्यमासाद्य च शीलवान् स्यात्

प्राप्नोति पुष्टिं चिरजीवितश्च ॥

इति विष्णुधर्मीकं श्रीलावाग्निव्रतं ।

—oo@oo—

अथ शुक्लचतुर्दश्यां पौषमासे समाहितः ।

चान्द्रायणव्रतं मासं याहयेत्सर्वपापजित् ।

पूर्णेन्दुपौर्णमास्यान्तु पूजयेत्प्रत्यहं जलैः ॥

पौषइति सामीप्ये सप्तमी । चतुर्दशीपौर्णमास्योः पूर्वमासा-  
वयवत्वात् ।

मनोरथाय स्वाहेति तथा सन्ते पर्यासि च ।

तर्पयेदम्बिरेताभिस्तिस्रभिश्च सदैव हि ॥

अथाहुतिभिरष्टाभिर्हुताभिश्च निशाकरं ।

यद्देवादेव इत्येतैश्चतुर्भिर्मन्त्रसप्तमैः ॥

आज्येन तर्पयेदाहुं सर्वपापोपशान्तये ।

तथा देवकृतस्येति समिद्धिर्नित्यमेव हि ॥

चदशैस्त्वं तथा सक्तुन्तकं यावकमेव च ।

शाकं चीरं दधि घृतं फलमूलीदकानि च ॥

पौर्णमास्यामारभ्य प्रत्यहं तर्पणं होमश्च कारयेदित्यर्थः ।

हुतग्रिष्टश्च वै पश्चात् प्राशयेद्ब्रमादरात् ॥



कुक्कुटाण्डीपमान् घासान् पौर्णमास्याञ्च भक्षयेत् ।  
 कृत्वा पञ्चदशैवाद्य ऋसयेत्तु दिने दिने ॥  
 विंशत्या सहितं येन कृष्णपक्षे भवेच्छतं ।  
 अमावस्यादिने चैव विप्रश्चीपवसेत्ततः ॥  
 शुक्लप्रतिपदारभ्य चन्द्रवृद्धिक्रमेण तु ।  
 विंशत्या सहितं भूयो घासानां स्याच्छतं यथा ॥  
 मासेन द्वे शते येन भवेतां द्वे च विंशतौ ।  
 एकस्य प्रणवो मन्त्रोभूषणयोश्च भवेदऽपि ॥  
 भुवस्त्रयाणां स्वद्यापि चतुर्णां मह एव च ।  
 भवेदथ च पञ्चानां षष्ठाञ्जन उदाहृतः ॥  
 समानान्तु तपः सत्यमष्टानां परिकीर्त्यते ।  
 ॐ नवानामिडावाद्य दशानां मन्त्र एव च ॥  
 एकादशानां योजस्व विजयस्व परम्भवेत् ।  
 तयोद्दशानां पुरुषस्ततो धर्मः प्रकीर्तितः ॥  
 शिवः पञ्चदशानान्तु घासानां मन्त्र उच्यते ।  
 स्वाहाकारनमस्कारयुक्तैर्मन्त्रैः पृथक् पृथक् ।  
 अभिमन्त्रा यसेद्घासान् दिनसंख्याक्रमेण च ॥  
 श्री नमः स्वाहा भूर्नमः स्वाहेत्यादिमन्त्राः ।  
 समाप्ते च व्रते दद्याद्वा तृषष्ठ हिजातये ।  
 चान्द्रायणेन चैकेन सर्वपापक्षयो भवेत् ॥  
 एवं संवत्सरं कृत्वा चन्द्रलोकमवाप्नुयात् ।  
 इह लोके धनारोग्यं सुखं सौभाग्यसम्पदं ॥

भवेदमरलोके च शक्रस्य सद्ने गतिः ।  
भवेच्छिवन्तदभ्यासाञ्जन्म ब्राह्मणजन्मनि ॥

इति ब्रह्मपुराणोक्तं चान्द्रायणव्रतं ।

—००—

अथ माघमासव्रतानि ।

नारदीयपुराणे ।

काष्ठकौल उवाच ।

सम्प्राप्ति माघमासोऽयं तपस्विजनवल्गभः ।  
यस्मिन् क्रोशन्ति पापानि यन्नस्नानवतां सदा(१) ॥  
कृतानि सर्व देहेषु ब्रह्महत्यासमान्यपि ।  
दुर्लभो माघमासस्तु बहुदानप्रदायकः ॥  
देवैस्तेजः परिक्षिप्तं माघमासे जले सदा ।  
न वृद्धिं सेवयेत् स्नातो ह्यस्नातोऽपि वरानने ॥  
ह्यमार्थं सेवयेद्वृद्धिं शीतार्थं न कदाचन ।  
यावत्प्रभा वरारोहे तावत् सूर्योदये स्मृता ॥  
सरित्तोयाद्यभावे तु नवकुम्भस्थितं जलं ।  
वायुना ताडितं रात्रौ गङ्गातोयसमं विदुः ॥  
तन्नास्ति पातकं लोके यत्र स्नानाहिनश्यति ।  
अग्निपवेशादधिकं भागस्नानं वरानने ॥

(१) अतिस्नानवतां सदेति पाठान्तरं ।

जीवता भुञ्चते दुःखं मृतो दुःखं न पश्यति ।  
 एतस्मात्कारणात् सुभ्रू माघस्नानं विशिष्यते ॥  
 अहन्यहनि दातव्यास्तिलाः शर्करयान्विताः ।  
 त्रिभागस्तु तिलानां हि चतुर्थः शर्करान्वितः ॥  
 अनभ्यङ्गी वरारोहे सर्व्व मासं नयेद्गती ।  
 सूर्या भि प्रीयतां देवो विष्णुमूर्त्तिर्निरञ्जनः ॥  
 माघावसाने सुभगे षड्रसं संप्रदापयेत् ।  
 दम्पत्येर्वाससी शुक्ले सप्तधान्यसमन्विते ॥  
 त्रिंशत्तु मोदका देयाः कृतास्तिलमयाः शुभाः ।  
 मरिचैर्निर्भिताः श्लक्ष्णाः नारङ्गाणि च दापयेत् ॥  
 सरितः प्रभवस्त्वं हि परं धाम जले मम .  
 त्वत्ते जसा परिभ्रष्टं पापं यातु सहस्रधा ॥  
 दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते ।  
 परिपूर्णं कुरुष्वेह माघस्नानमुषःपते ॥  
 एवं माघप्रवो याति भित्त्वा विम्बं दिवाकरं ।  
 परित्राङ्योगयुक्तस्य रणे वाभिसुखो हतः ।  
 तृतीयोऽत्र वरारोहे माघस्नायो प्रकीर्तितः ॥

भविष्योत्तरात् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

माघमासे मम ब्रूहि स्नानं यदुकुलोहह ।  
 येन दुःखात्सुपह्वीवाद्दत्तरन्ति भवार्थवात् ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

ब्राह्मं कृतयुगं प्रोक्तव्ये ता तु चतुर्यं श्रुतं ।

वैश्वं द्वापरमित्याहुः श्रुद्धं कलियुगं तथा ॥  
 कलौ राजन् मनुष्याणां शैथिल्यं ज्ञानकर्षणि ।  
 तथापि माघव्याजेन कथयिष्यामि तच्छृणु ॥  
 यस्य हस्तौ च पादौ च वाङ्मनश्च सुसंयतं(१) ।  
 विद्या तपश्च कौन्तिंश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥  
 अशुद्धानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ।  
 हेतुनिन्दारतश्चेते न तीर्थफलभागिनः ॥  
 प्रयागं पुष्करं प्राप्य कुरुक्षेत्रमथापि वा ।  
 यत्र वा तत्र वा स्नायाच्चाघे नित्यमिति स्थितिः ॥  
 त्रिरात्रफलदा नद्यो याः काश्चिदसमुद्रगाः ।  
 समुद्रगास्तु पक्षस्य मासस्य सरितां पतिः ॥  
 अपां समीपे यत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ ।  
 प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनं ॥  
 प्रातरुदधाय यो विप्रः प्रातःस्नायी भवेत्सदा ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥  
 वृषा चीशोदकज्ञानं वृषा जाप्यमवैदिकं ।  
 अश्रोत्रिये वृषा श्राद्धं वृषा भुक्तमसाधिकं ॥  
 ज्ञानं चतुर्विधं प्रोक्तं ज्ञानविद्विर्युर्विद्विर ।  
 वायव्यं वाक्शं ब्राह्म्यं दिव्यश्चेति पृथक् श्रुत्वा ॥  
 वायव्यं गौरजज्ञानं वाक्शं सागरादिभिः ।  
 ब्राह्म्यं ब्राह्मणमन्त्रोक्तं दिव्यं भिषाब्जु भास्करात् ॥  
 ज्ञानानामपि सर्वेषां वाक्शं श्री हसुच्यते ।

(१) मनश्चैव हृदयश्च इति पाठान्तरः ।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ॥  
 एते सर्वे प्रशंसन्ति सर्वदा माघमज्जनं ।  
 बालवृहयुवानयं नरनारीनपुंसकाः ॥  
 स्नात्वा माघे शुभे तीर्थे प्राप्नुवन्तीप्सितं फलं ।  
 ब्रह्मक्षत्रविद्यां चैव मन्त्रवत्स्नानमिष्यते ॥  
 तुष्णीमेव हि शूद्राणां तथैव कुरुनन्दन ।  
 नमस्कारेण वा कार्यं सर्वपापीघहानिदं ॥  
 माघमासे रटन्यापः किञ्चिदभ्युदिते रबी ।  
 ब्रह्मघ्नं वा सुरापं वा (१) कं पतन्तं पुनोमहे ॥  
 प्रासादा यत्र सौवर्णाः स्त्रियश्चाप्सरसां समाः ।  
 दग्धदुग्धदहा यत्र नद्यः पायसकर्दमाः ॥  
 तत्र ते यान्ति मज्जन्ति ये माघे भास्करोदये ।  
 यतिवत्पथि गच्छेत् मौनी पैशून्यवर्जितः ॥  
 य इच्छेद्द्विपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् ।  
 पुण्यफालगुनयोर्मध्ये प्रातः स्नायी भवेत्तु सः ॥  
 पौर्णमासीभवावा यां प्राण्य स्नात्वा माचरेत् ।  
 त्रिंशद्दिनानि पुण्यानि मकरस्थे दिवाकरे ॥  
 तत उत्थाय नियमं गृह्णीयाद्द्विधिपूर्वकं ।  
 माघमासमिमं पुण्यं स्नात्येऽहं देव माधव ॥  
 तीर्थे शीतजले नित्यमिति सङ्कल्प्य चेतसि ।  
 अप्राकृतशरीरस्तु यः साक्षात् स्नानमाचरेत् ॥  
 पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।

(१) ब्रह्मघ्नमपि चाप्याकृतमिति पाठान्तरं ।

ततः स्नात्वा शुभे तीर्थे दत्त्वा शिरसि वै मृदं ।  
 वेदोक्तविधिना राजन् सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ॥  
 पिष्टृन् सन्तर्प्य तत्रस्थः श्रवतीर्थं ततो जलात् ।  
 इष्टदेवं नमस्कृत्य पूजयेत्पुरुषोत्तमं ॥  
 शङ्खचक्रधरं देवं माधवं नाम पूजयेत् ।  
 वज्रं हुत्वा विधानेन ततस्त्रिकाशनी भवेत् ॥  
 भूगय्या ब्रह्मचर्येण शक्तः स्नानं समाचरेत् ।  
 अशक्तो ब्रह्मचर्यादौ स्वेच्छा तस्यैव कल्पते ॥  
 अवश्यमिति कर्तव्यं माघस्नानमिति श्रुतिः ।  
 ईश्वरेण यथाकामं बलं धर्मोऽनुवर्त्तते ॥  
 तिलस्त्रायो तिलो हर्ती तिलहोमी तिलादकी ।  
 तिलभुक्तिलदाता च घट्तिलाः पापनाशनाः ॥  
 तैलमामलकाश्चैव तीर्थे देयाश्च नित्यगः ।  
 तथा प्रज्वालयेद्दह्निं निवातां कारयेत्कुटं ॥  
 एवं माघवमसे तु शक्ती भोज्यमवारितं ।  
 कारयेद्यथ शक्त्या वा वित्तगाठानिवर्जितं ॥  
 दम्पत्यानि द्विजायाणां पूज्यवस्तुभिर्भूषणैः ।  
 भूषयित्वा प्रदेयानि दानानि विविधानि च ॥  
 कम्बलाजिनवस्त्राणि नानारत्नानि शक्तितः ।  
 चोलकानि च देयानि प्रच्छादनपटानि च ॥  
 उपानहो पादगुप्ते माचको पापमाचको ।  
 तथान्यद्वयितं किञ्चिन्माघस्नाने प्रदीयते ।

तन्माघस्नायिनान्देयं विप्राणां भूतिमिच्छता ॥  
 स्वल्पेऽपि दाने वक्तव्यं माधव प्रीयतामिति ॥  
 अगम्यागमनात्स्ती यात्पापेभ्यश्च प्रतिषद्वात् ।  
 रहस्याचरितात्पापान्मृच्यते स्नानमाचरन् ॥  
 माघमासे विधानेन चेतस्याधाय माधवं ।  
 पितुः पूर्वान् समुहृत्य मातुः पूर्वान्पितृनथ ।  
 एकविंशकुलैः सार्धं भोगान् भुक्त्वा यथेष्टितान् ॥  
 माघस्योषसि स्नात्वा वै विष्णुलोके महीयते ॥  
 यो माघमास्युषसि सूर्यकराभिताम्ने  
 स्नानं समाचरति चारुनदोप्रवाहे ।  
 उद्धृत्य पूर्वपुरुषान् पितृमाहृत्य  
 स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोऽमी ॥

इति माघस्नानविधिः ।

—०००—

माघमास्युषसि स्नानं कृत्वा दम्पत्यमर्चयेत् ।  
 भोजयित्वा यथाशक्त्या बालवस्त्रविभूषणैः ॥  
 सौभाग्यपद्माप्नोति शरीरारोग्यमुत्तमं ।  
 सूर्यलोकप्रदं नूनं सूर्यव्रतमिदं स्मृतं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं सूर्यव्रतं ।

—०००—

ब्रह्मोवाच ।

कृष्णकभक्तं हेमन्ते माघमासमतन्द्रितः ।  
 मासान्ते च रथं कुर्याच्चिचदस्त्रीपथोभितं ॥

श्वेतैश्चतुर्भिर्युक्तान् तरुणैः समलङ्कृतं ।  
 श्वेतध्वजपताकाभिः कृत्वा चामरदर्पणं ॥  
 तच्छुलादकपिष्टेन कृत्वा भानुवराधिप ।  
 विन्यस्य तं रत्नप्रख्ये संश्रया सह भूपते ॥  
 तं रात्रौ राजमार्गेषु ग्रहभेदादिभिः स्मृतैः ।  
 भ्रामयित्वा ग्रहैः पश्चात् सूर्यायतनमानयेत् ॥  
 तत्र चागुरुपिष्टेन प्रदीपाद्युपशोभितं ।  
 प्रेक्षणीयप्रदामैश्च क्षपयित्वा ग्रहैः ग्रहैः ॥  
 प्रभाते क्षपणकृत्वा पयसा वा घृतेन वा ।  
 दीनाभ्यक्षपणानाञ्च यथाशक्त्या च दक्षिणां ।  
 रथं सम्बाह्वनोपेतं भास्कराय निवेदयेत् ॥  
 भुक्त्वा च ब्राह्मणैः सार्धं प्रथम्यार्कं गृहं व्रजेत् ॥  
 सर्वव्रतानां परमं शक्रधर्मस्थितः सदा ।  
 तत्र सूर्यव्रतं नाम सर्वकामार्थसाधकं ॥  
 सर्वव्रतेषु तत्पुण्यं सर्व तीर्थेषु यत् फलं ।  
 सर्वं सूर्यरथेनेह तत्पुण्यं लभते नृप ॥  
 सूर्यायुतप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।  
 त्रिसप्तकुसुमैः सार्धं सूर्यलोके महीयते ॥  
 भुक्त्वा तु विपुलान् भोगान् सर्वलोकेऽनुत्तमान् ।  
 कल्यायुतव्रतं साधं ततो राजा भवेत् क्षितौ ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं सूर्यव्रतं ।



माघमासि समुद्युक्तस्त्रिसप्तत्यं योऽर्चयेद्भक्तिं ।  
भवेत् पापमासिकं पुण्यं मासेनैव न संशयः ।

इति भविष्यत्यु राणोक्तं रविव्रतं ।

—०००—

महाभारते ।

माघमासन्तु यी मासमेकभक्तेन यः क्षिपेत् ।  
श्रीमान् कुलज्ञातिमांस्तु, स महत्त्वं प्रपद्यते ॥  
विष्णुधर्म ।

माघमासं द्विजश्रेष्ठ एकभक्तेन यः क्षिपेत् ।  
विष्णुशुश्रूषणपरः सत्कुले जायते सतां ॥  
अहिंस्रः सर्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ।  
नमोऽस्तु, वासुदेवायेत्यहृद्याष्टशतं जपेत् ।  
अतिरात्रस्य यन्नस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

—०००—

वज्र उवाच ।

भगवन् कर्षणा केन विद्यावान् पुरुषो भवेत् ।  
सुभिक्ष एव विज्ञेयः पुरुषः पश्यन्त्यथा ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

पौष्यान्तु समतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्लमात् ।  
प्राग्वत्तु पूजयेद्देवतुरङ्गशिरस हरिं ॥

प्राग्वदिति रूपावामित्रतोक्तविधिना तुरङ्गभिरसं ह्यधीवं ॥  
 तिलांश्च जुहुयाद्दक्षी तिलैर्द्वैवं समर्चयेत् ।  
 त्रिरात्रीषोषितो माघं तिलान् कनकमैत्र च ॥  
 दद्याद्ब्राह्मणमुख्याय सम्यक् प्रयतमानसः ।  
 मुख्यान् यज्ञीपवीतांश्च प्रभूतगपि चन्दनं ॥  
 हात्वा व्रतं मासमिदं यथोक्तं  
 विद्यान्वितः स्यात्पुरुषः सदैव ।  
 स्वर्लोकमासाद्य सुखानि भुञ्जा  
 कामानभीष्टान् पुरुषोऽत्र ते च ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं विद्यावाप्तिव्रतं ।

—००५१०००—

अथ फाल्गुनव्रतानि ।

महाभारते ।

भगदेवन्तु योमाममेकभक्ते न विक्षिपेत् ।  
 ऐश्वर्य्यमनुलं यिष्ठं पुमान् स्त्री वा पापशते ।  
 स्त्रीषु वल्लभतां याति तस्याद्यैव भवन्ति ते ॥  
 विष्णुधर्मो ।

क्षपयेदेकभक्तेन शुश्रुष्यस्य फाल्गुने ।

शुश्रूषुः विष्णुशुश्रूषापरः ।

सोभाग्यं स्वजनानाञ्च सर्वेषामिव सोत्रतिः ।

अहिंस्रः सर्व्वं भूतेषु वासुदेवपरायणः ॥  
 नमोऽस्तु वासुदेवायेत्यहसाष्टशतं जपेत् ।  
 अतिरात्रस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥

इति एकभक्तव्रतं ।

—००००—

वराह उवाच ।

फाल्गुनस्य तु मासस्य पुष्याणि सुरभीणि च ।  
 कर्मण्यानि शुभानीह गृहीत्वा भक्तिमात्ररः ॥

ततः वक्ष्यमाणश्लोकोक्तादाचार्यात् ।

यस्तु जानाति कर्मणि सर्व्वं कर्मविनिश्चितः ।  
 उदाहरति मन्त्राद्य नक्तादिनियमस्थितः ॥  
 जानुभ्यां धरणीकृत्वा कराभ्यामङ्गुलैः पुटं ।  
 गृहीत्वेतिशेषः, पुटं पुष्यपूर्णपात्रपुटं ।  
 नमो नारायणेत्यङ्गा इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥  
 नमोऽस्तु देवदेवेश चक्रनिर्मथनाय ते ।  
 नमोऽस्तु लोकनाथाय सुपवीर नमोऽस्तु ते ॥  
 आदिमध्यावसानन्ते न जानातीह कथन ॥  
 वसन्तागमपुष्याणि गृह्णाण पुरुषोत्तम ।  
 य एतेन विधानेन कुर्यान्मासे तु फाल्गुने ।  
 न च गच्छति संसारं परं लोकां च गच्छति ॥  
 इति वराहपुराणोक्तः फाल्गुनविधिः ।

वक्ष्ये उवाच ।

भगवन् कर्मणा केन सोभाग्यं महदाप्नुयात् ।  
लावण्यरूपसोभाग्यं विना ज्ञेयं निरर्घकं ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

माघ्यान्तु समतीतायां प्रतिपत्प्रभृतिक्षमात् ।  
पटे वा यदि वार्चायां क्षणं संपूजयेत्तदा ।  
पूर्वीक्षं सकलं कुर्याद्विधिं चात्र नराधिप ॥

पूर्वीक्षमिति चैत्रमाससम्बन्धिरूपावाप्तिव्रतीक्षमित्यर्थः ।

नित्यं समाचरेत् स्नानं तथा गन्धप्रियङ्गुना ।

चरुं प्रियङ्गुना कुर्याद्धोमं कुर्यात् प्रियङ्गुना ॥

गन्धः प्रियङ्गुसदृशगन्धद्रव्यं, प्रियङ्गुः कङ्कुसदृशगन्धद्रव्यं

प्रियङ्गुः कङ्कुः ।

फाल्गुन्यान्तु ततोदद्यात् चिराचोषोषितो नरः ।

वक्ष्ये च देये नृप कुङ्कुमाक्षे

शौद्रस्य पाचस्य तथैव कांस्यं ।

सोभाग्यदं ह्येतदनुत्तमन्ते

व्रतं ममैतत्कथितं नृवीर ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं सोभाग्यावाप्तिव्रतं ।

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-

धीश्वरसकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते

चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे

मासव्रतानि ।

## अथ षष्ठादशोऽध्यायः ।

—000v)000—

### अथ नानामासव्रतानि ।

अथान्तश्चारुचामीकर ००० (१)परिप्रीणितप्राणिवर्गः  
स्वर्गद्गासङ्गभूमीरुहतलविलमत्किन्नरोगीतकीर्त्तिः ।  
हेमाद्रिः संपतीञ्च स्फुरदुरुदुरितव्रातघातैकहेतुं  
नानामासव्रतानां क्रमनमथ कलाकीविद्ः संविधत्ते ॥

### तत्र चातुर्मासीव्रतानि ।

विष्णुधर्मोत्तरात् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

अथ स्वपिति वस्त्रात्मन् देवदेवी जनाहिनः ।  
लक्ष्मीसहायः सततं शेषपर्यङ्कमास्थितः ॥  
एकादश्यामापादस्य शुक्लपक्षे जनाहिनं ।  
देवाश्च ऋषयश्चैव स्तुवन्ति दिनपञ्चकं ॥  
ततश्च चतुरीमासान् योगनिद्रामुपस्थितां ।  
सप्त च तमुपासन्ति ऋषयो ब्रह्मसंमिताः ॥  
कार्तिकस्य मिते पक्षे तदेव दिनपञ्चकं ।  
विबोधयन्ति देवेशं गत्वा सेन्द्रा दिवोकमः ॥  
तस्मादेताश्चतुर्मासीर्नरः कुर्यात् महोत्सवम् ।  
भविष्योत्तरात् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

गोविन्दगयनं किन्तु किमर्थं स्वपितीत्यसौ ।  
 कथन्तच्छयनं तस्य देवदेवस्य चक्रिणः ॥  
 के चात्र मन्त्राः पूजा च दानार्थं नियमाश्च के ।  
 किं याज्ञं किञ्च मोक्तव्यं सुमे देवजगत्पती ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि गोविन्दगयनव्रतं ।  
 कर्णिकानं समुत्थानं चातुर्मासौव्रतक्रमं ॥  
 मिथुनस्थे सहस्रांगौ स्थापयेन्मधुसूदनं ।  
 तुलां प्राप्ते (१) महाराज पुनरुत्थापयेच्च तं ॥  
 अधिप्रयत ते देव एष एव विधिक्रमः ।  
 नान्यथा स्थापयेत् क्षण्य नान्यथोत्थापयेत्तथा ॥  
 आपादस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।  
 स्थापयेत् प्रतिमा विष्णोः शङ्खचक्रगदाधरं ॥  
 काञ्चनीं राजतीं ताम्रमयीं पित्तलज्जां तथा ।  
 पीताम्बरधरां सौम्यां पथ्यङ्गे चाश्रिते शुभे ।  
 शुक्लवस्त्रपटच्छत्रे सोपधानं संपूर्जितं ॥

ब्रह्मपुराणात् ।

एकादश्यान्तु शुक्लायां आपाद्रे भगवान् हरिः ।  
 भुजङ्गगयने गते यदा क्षीराणीव सदा ॥  
 तदा तत्प्रतिमा कार्या सर्वलक्षणमयुता ।  
 सुप्ता तु शेषपथ्यङ्गे शैलमृद्धिपटारुभिः ॥

(१) तुलावस्त्रे रतिपुलकान्तरे पाठः ।

ताम्बारकूटरजतैः कृता चित्रपटेषु वा ।  
 लक्ष्म्या स्वहस्ताविन्यस्तमनीष्वचरणाश्रुजा ॥  
 नानाविधोपकरणैः पूज्या तु विधिपूर्वकं ।  
 उपवासश्च कर्त्तव्यो रात्रौ जागरणं तथा ॥  
 तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां हादृश्यां पूजयेच्च तां ।  
 त्रयोदश्यां ततो गीतनृत्यवाद्यं निवेदयेत् ॥  
 भविष्योत्तरे (१) ।

इति ह्यसपुराणस्त्री वेदवेत्ताय वा पुमान् ।  
 स्थापयित्वा दधिक्षीरच्छतक्षोद्रसितादिभिः ॥  
 समालभ्य शुभैर्गन्धैर्धूपैर्वस्त्रै रलङ्कृतां ।  
 जातीकुसुममालाभिर्मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥  
 सुमे त्वयि जगन्नाथे जगत्सुमं भवेदिदं ।  
 विबुधे च विबुध्येत प्रसन्नो मे भवायुत ॥  
 एवं तां प्रतिमां विष्णोः स्थापयित्वा स्वयं नरः ।  
 प्रभाषेच्चग्रतो विष्णोः कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥  
 चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनावधिः ।  
 द्रुमं करिष्ये नियमं निर्व्विघ्नं कुरु मेऽयुत ॥  
 स्त्री वा नरो वा मङ्गलो धर्मार्थं सुदृढव्रतः ।  
 गृह्णीयान्नियमानेतान् दन्तभावनपूर्वकान् ॥  
 तेषां फलानि वक्ष्यामि तत्कर्त्तृणां पृथक् पृथक् ।  
 मधुसूरो भवेद्राजा पुरुषो गुडवर्जनात् ॥  
 तैलस्य वर्जनाद्देव सुन्दराङ्गः प्रजायते ।

(१) लक्ष्म्यास्ते इति पूज्याकरे पाठः ।

कटुतैलपरित्यागाच्छत्रुनाशमवाप्नुयात् ॥  
 मधूकतैलत्यागेन सीभाग्यमतुलं लभेत् ।  
 योगाभ्यासी वेदतस्तु स ब्रह्मपदमाप्नुयात् ।

कटुकास्तु तिलमधुश्चारकषायसञ्चयः ॥

यो वर्जयेत् स वैरूप्यं दीर्घं च नाप्नुयात् कश्चित् ।  
 ताम्बूलं वर्जयेत् भोगी रक्तकण्ठश्च जायते ॥  
 घृतत्यागाच्च सावर्ष्यं सर्वस्त्रिंशत्तनुर्भवेत् ।  
 फलत्यागाच्च मतिमान् बहुपुत्रश्च जायते ॥  
 शाकपत्राशनाद्भोगी अपक्वाद्मलो भवेत् ।  
 पादाभ्यङ्गपरित्यागाच्छिरोऽभ्यङ्गं विवर्जयेत् ॥  
 दौमिमान् दौसकायेन सोऽपि शौद्रपतिर्भवेत् ।  
 दधिदुग्धैकनियमी गोभक्तो गोपतिर्भवेत् ।  
 इन्द्रातिथित्वमाप्नोति स्थालीपाकस्य वर्जनात् ॥  
 लभते सङ्गतिर्दोषां तैलपक्तस्य वर्जनात् ।  
 भूमौ प्रस्तरशायी च विप्रो मुनिवरो भवेत् ॥  
 सदा मुनिः सदा योगी मधुमांसश्च वर्जयेत् ।  
 निर्व्वराधिर्नीरुगोजम्बी सुरामद्यं विवर्जयेत् ॥  
 एवमादिपरित्यागात् धर्मः स्यात् धर्मनन्दन ।  
 एकान्तरोपवासेन ब्रह्मलोके महीयते ।  
 धारणाश्रवरोन्माश्च गङ्गास्नानफलं लभेत् ॥

धारणाद्यष्टयोगाङ्गं ।

मीनव्रती भवेद्यस्तु, तस्याज्ञा फलिता भवेत् ।  
 नमीनारायणायेति जपन्त्यज्ञफलं लभेत् ॥



अयं चातुर्भास्यव्रतारम्भो गुर्व्वस्तमयादावपि कार्यः ।  
 यदाहृष्टवर्गः । न शैशवन्न मीढाच्च शुक्रगुर्व्वीर्नवा तिथेः ।  
 खण्डस्त्वं चिन्तयेच्चादौ चातुर्भास्यविधौ नरः ।  
 पादाभिवन्दनाद्विष्णोर्लभेद्गोदानजं फलं ॥  
 भूमौ भुङ्क्ते सदा यस्तु स पृथिव्याः पतिर्भवेत् ।  
 नमो नारायणायेति जपन्यन्नफलं लभेत् ॥  
 विष्णुपादाब्जसंस्पर्शाद्दिनपापात् प्रमुच्यते ।  
 पादोदकाभिषेकाच्चै गङ्गास्नानं दिने दिने ॥  
 पर्णेषु यो नरो भुङ्क्ते कुरुक्षेत्रफलं लभेत् ।  
 नित्यं शास्त्रसमाख्यानाङ्गोक्तान् यस्तु प्रबोधयेत् ॥  
 व्यासस्तुष्यति तस्याशु विष्णुलोकं स गच्छति ।  
 कृत्वा प्रेक्षणकं विष्णोर्लोकमप्सरसां लभेत् ॥  
 तीर्थान्मुखापनाद्विष्णोर्निर्मलं देहमाप्नुयात् ।  
 पञ्चगव्याशनात्पार्थ चान्द्रायणफलं लभेत् ॥  
 अयाचितेन प्राप्नोति पुत्रान्धर्म्यानिशेषतः ।  
 षष्ठाक्षकालभोक्ता यः कल्पस्यायी भवेद्दिवि ॥

उपवासद्वयान्तरितैकभक्तः ।

शिलोष्णखेन भुञ्जानः प्रयागस्नानमाप्नुयात् ।  
 विष्णुदेवकुले कुर्यादुपलेपनमार्ज्जने ॥  
 कल्पस्यायी भवेद्भ्राजा स नरो नात्र संगमः ।  
 प्रदक्षिणशतं यस्तु करोति स्तुतिपाठकः ॥  
 हंसयुक्तविमानेन स तु विष्णुपुरं व्रजेत् ।  
 शीतवाद्यकरो विष्णोर्गान्धर्व्वं लोकमाप्नुयात् ॥

यामहयं जलत्यागाक्षरोगैरभिभूयते ।  
 गुडवर्ज्जीं नरोदद्यादद्भुतं ताम्रभाजनं ।  
 सहिरण्यं नृपत्रेष्ठ लवणस्याप्ययं विधिः ॥  
 ब्रह्मवैवर्ते ।

नारद उवाच ।

कथं सुप्ते तु गोविन्दे व्रतचर्या सुरोत्तम ।  
 कर्त्तव्या मानवैर्भक्त्या विष्णुपूजनतत्परेः ॥  
 तिथयः काच पुण्या वै निःशेषफलदायिकाः ।  
 सन्तुष्यते हरिर्यासु स्वल्पेन तपसा नृणां ॥  
 दानहीमजपस्नानं व्रतचर्यार्चनं हरेः ।  
 समाचक्ष्य सुरत्रेष्ठ उपवासविधिक्रियां ॥

ब्रह्मोवाच ।

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि चातुर्न्मास्यविधिक्रियां ।  
 यां निर्वर्त्य नरो भक्त्या प्रयाति परमाङ्गतिं ॥  
 अवगम्य विधानेन समर्चनविधिं हरेः ।  
 व्रतपूजादिकं कुर्यात्सतो भक्तिसमन्वितः ॥  
 अविज्ञाय विधानोक्तां हरेः पूजाविधिक्रियां ।  
 कुर्वन् भक्त्या समाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदं ॥  
 यस्तु विष्णुपरो नित्यं दृढभक्तिर्जतेन्द्रियः ।  
 स गृहेऽपि वसन् याति तद्विष्णोः परमं पदं ॥  
 शिवे वा भक्तिसंयुक्तो भानो वा गणनायके ।  
 कृत्वा व्रतस्य नियमं यद्योक्तफलभागभवेत् ।  
 नरस्य चयमाप्नोति पापं जन्मशतौह्ववं ॥

पाषाणस्य स्रिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।  
 नक्तं कुर्याद्द्विजश्चेष्ट गृह्णीयान्नियमं व्रती ॥  
 कुर्यादिति, नियमं नक्तं गृह्णीयादित्यन्वयः ।  
 एकादश्यान्तु गृह्णीयात् संज्ञान्ती कर्कटस्य च ॥  
 पाषाणदादौ नरो भक्त्या चातुर्मासीव्रतक्रियां ।  
 चातुर्मासीव्रतानान्तु कुर्वीत परिकल्पनां ॥  
 इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव ।  
 निर्विघ्नं सिद्धिमायातु प्रसादान्तव केयव ॥  
 गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव पञ्चत्वं बहि मी भवेत् ।  
 तदा भवतु संपूर्णस्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥  
 गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव यद्यपूर्णं भिजे त्वहं ।  
 तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥  
 एवमभ्यर्च्य गोविन्दं व्रतार्चनजपादिकं ।  
 सर्वत्र परिगृह्णीयात्परिपूर्णं यथा भवेत् ॥  
 व्रतानि त्रैलोक्यानीह शैवानीह द्विजोत्तम ।  
 एकभक्तं नरः कृत्वा नित्यस्त्रायी दृढव्रतः ॥  
 बोऽर्षेयेश्वरुमासात्वासुदेवं स नाकभाक् ।  
 समामौ भोजयेद्द्विपान् भक्त्या दद्याच्च दक्षिणां ॥  
 यस्तु सुप्ते हृषीकेशे नक्तमाचरते व्रती ।  
 वस्त्रयुग्मं नरो दत्त्वा शिवलोके महीयते ॥  
 अपूपवर्ज्यं कृत्वा भोजने व्रतमाचरेत् ।  
 कार्तिके स्वर्णगोधूमान् वस्त्रं दत्त्वाग्नेमिधकृत् ॥  
 पञ्चं दत्त्वा च विप्राव ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।

रीष्यं दत्त्वा ब्राह्मणाय व्रती तद्गतमानसः ॥  
 अन्नदानं व्रतं कुर्याद्द्रीष्यदानञ्च पारणं ।  
 एकात्मरोपवासेन विष्णुपूजनतत्परः ॥  
 गान्दत्त्वा वासुदेवस्य लोके संपूज्यते नरः ।  
 यस्तु सुप्ते हृषीकेशे क्षितिशायी भवेन्नरः ॥  
 शय्यां सोपस्करान्दत्त्वा इन्द्रलोके महीयते ।  
 वार्षिकीचतुरोमासान् मद्यं मांसञ्च यस्त्वजेत् ॥  
 स्वर्णादी हरिमुद्दिश्य स भवेद्देदविद्भुजः ।  
 यः क्षिपेत् कच्छपादेन पाषाढादिभृत्तुहयं ।  
 विष्णुपूजनकर्मस्यः स लभेत्तविकेतनं ।  
 गोप्रदानाद्भवेत्कोऽहिः समाप्ते द्विजसत्तम ॥  
 यस्त्रिरात्रकृताहारो नित्यशायी जितेन्द्रियः ।  
 वासुदेवार्चने युक्तः स लोके वैष्णवं व्रजेत् ॥

पूर्वार्कदानपारणं ।

व्रीहीं यो वर्जयित्वा तु कार्तिके मासि मानवः ।  
 द्विरण्यं शालिना दत्त्वा पदं प्राप्नोति वैष्णवं ॥  
 यस्तु केशवभक्तो हि विष्णोः पादोदकं पिबेत् ।  
 वर्षारात्रं नरो भक्त्या स विष्णोः मद्यं संविशेत् ॥  
 रीष्यं चन्दनसंयुक्तं धेनुं दद्यात्पयस्विनोः ।  
 वार्षिकीचतुरो मासान् प्राजापत्यश्चरेन्नरः ॥  
 समाप्ते गीयुगं दद्याद्दत्त्वा ब्राह्मणभोजनं ।  
 पराकेशे नरो नित्यं यः क्षिपेत् वार्षिकीं सकृत् ॥  
 वर्जयित्वाऽप्युतं भक्त्या स गच्छेद्दिव्यलोकतां ।

पूर्वोक्तं पारणं ।

गोसूत्रयाचकाहारो योऽर्चयेच्च ऋतुद्वयं ॥  
 विष्णुमभ्यर्च्य सङ्गत्या नरोविष्णुपुरं व्रजेत् ।  
 समाप्तौ गोवृषं दद्याद्वस्त्रं काञ्चनसंयुतं ॥  
 शकसूत्रफलैर्वापि वर्षारात्रं नयेन्नरः ।  
 समाप्तौ गोप्रदो भूत्वा स याति विष्णुमन्दिरं ॥  
 पयोव्रती तथाप्राति ब्रह्मलोकं सनातनं ।  
 व्रतान्ते च तथा दद्याद्दामिकाञ्च पयस्विनीं ॥  
 वर्जयित्वा मधुं यस्तु दधिक्षीरघृताखितम् ।  
 दद्याद्दस्ताणि सूक्ष्माणि कार्त्तिक्यां गोप्रदो भवेत् ॥  
 संपूज्य विषमिश्रुनं गौरी मे प्रीयतामिति ।  
 दद्याच्च काञ्चनं शत्रया गौरीलोके महोयते ॥  
 ब्रह्मचर्य्येण यो मामां व्रतुरः क्षपयेन्नरः ।  
 प्रतिमां काञ्चनीं दद्याद्दम्पत्योर्ब्रह्मलोकभाक् ॥  
 ताभ्यूलवर्जनाङ्गीरो रक्तकण्ठश्च जायते ।  
 समाप्तौ वस्तयुग्मन्तु वस्त्रं दद्याद्द्विजातये ॥  
 सद्यः भौनन्ततः कृत्वा समाप्तौ छतकुम्भदः ।  
 वस्तयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
 सारस्वतं पदं याति विद्यावान् धनवान् भवेत् ।  
 कृत्वा प्रक्षेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्य च ॥  
 शार्ङ्गिकांश्चतुरो मामान् धेनुं दद्यात्पयस्विनीं ।  
 अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्ये शच वाग्यतः ॥  
 एकभक्तं नरः कुर्याच्चतुर्मास्यमतन्द्रितः ।

व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुसमन्वितं ।

वृक्षान् हिरण्मयान् दद्यात् सोऽन्नमिधफलं लभेत् ॥

वृक्षानश्नत्थान् ।

घृतेन स्नापनं कृत्वा शश्वीर्यं केशवस्य च ।

अक्षते च समं कुर्यात् पद्मं गोमयमण्डले ॥

समाप्तौ हेमकमलान्तिलधेनुसमन्वितं ।

ब्राह्मणाय व्रती दद्याच्छिवलीके महीयते ॥

सन्ध्यादीपप्रदो यस्तु प्राङ्गणे द्विजसत्तम ।

समाप्तौ दीपिकां दद्याच्चकचतुरस्त्रे गृहाङ्गने ॥

वस्त्रयुग्मान्विते वस्त्रे स तेऽस्त्रो भवेदिह ।

वैमानिको भवेद्देवो गन्धर्वास्तु सखितः ॥

भूमिन्तु भाजनं कृत्वा यो भुङ्क्ते तु षट्पदं ।

कांस्यपात्रञ्च गां दत्त्वा पृथ्वीशो भवते नरः ॥

पर्णसंस्तरसम्भोजी समाप्तौ कांस्यभाजनं ।

दत्त्वा स्वर्गगतो ब्रह्मन् पूज्यते त्रिदिवोकसा ॥

उत्प्रेषणफलं भुङ्क्ते रश्मापलाशवृक्षजैः ।

अन्धानि यान्यभीष्टानि वर्जयेद्विष्णुतत्परः ।

विशुद्धमानसो ब्रह्मन् सर्वमेवालयो भवेत् ॥

पादाभिवन्दनं कृत्वा केशवस्य नरोत्तम ।

प्राप्नुवत्युत्तमानन्धं प्रसन्ने गरुडध्वजे ।

तच्छुद्धमनसः पुंसस्तीर्थं यान्ति त्रिमोकसः ॥

एवं व्रतानि पुष्पानि जम्बदुःखहराणि च ।

हरिमुद्दिशा चीर्षानि भुक्तिमुक्तिप्रदानि तु ॥

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां पक्षयोर्द्वयोरपि ।  
 नक्तं समाचरेद्यस्तु दीपं दद्याच्चतुष्यथे ॥  
 प्राङ्गणे तु तथा दीपं दत्त्वा चैव गवाङ्गिकं ।  
 चातुर्मास्यव्रतं कृत्वा व्रतान्ते गोष्ठ्यप्रदः ।  
 स याति भवनं शम्भोः पूजितो देवसप्तमैः ।  
 विष्णोः प्रदक्षिणां कृत्वा शम्भोर्वाथ द्विजोत्तम ॥  
 व्रतान्ते वस्त्रदो भूत्वा दत्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ।  
 यस्तु वै चतुरो मासान् करोति च जगत्पतेः ॥  
 केशवस्य सहाभाग पादपूजां द्विजोत्तम ।  
 स याति वैष्णवं लोकां शश्वतं नात्र संशयः ॥  
 यस्तु केशवमुद्दिश्य नित्यमेव तिलप्रदः ।  
 तिलत्यागो भवेन्नित्यं चातुर्मास्यमत्कन्दितः ॥  
 समाप्ते तु व्रते विप्र तिलधेनुप्रदो भवेत् ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोके महीयते ।  
 तदन्ते च भवेद्राजा भारते भूभृताम्बरः ॥  
 गीतन्तु देवदेवस्य केशवस्य शिवस्य च ।  
 करोति नित्यमाप्नोति नरो योगस्य वै फलं ॥  
 व्रतान्ते स व्रतो दद्यात् षण्ढां देवाय सुस्वरां ।  
 कटुतिक्तकषायाय वर्जयेद्यन् मानवः ॥  
 स भवेद्रूपमम्भो व्याधिभर्ताभिभूयते ।  
 व्रतान्ते च द्विजं पूज्यं शक्त्या दद्याच्च दक्षिणां ॥  
 पतितालापमन्वृतं वर्जयेच्च ऋतुद्वयं ।  
 पादाभ्यङ्गनरो दद्याद्वाङ्मन्त्रानाञ्च भोजनं ।

दक्षिणाञ्च यथाशक्त्या स गच्छेद्विष्णुमन्दिरं ॥  
 यस्तु वै चतुरो मासान् वर्जयेद्दत्तमुत्तमं ।  
 महालावण्यमाप्नोति गात्रसौरभ्यमेव च ॥  
 व्रतास्ते हरिसुहृद्व्य दत्त्वा ब्राह्मणभोजनं ।  
 गन्धेन पूज्य गोविन्दं ब्राह्मणाय द्विजोत्तम ।  
 वस्त्रयुग्मन्ततो दत्त्वा विष्णुलोके महीयते ॥  
 तेजस्वी जायते विप्र तैलपक्वप्य वर्जनात् ।  
 विप्रान् सम्भोज्य विप्रर्षे याति लोकाञ्च वैष्णवं ॥  
 यस्यजेद्वरिसुहृद्व्य स्नानसुष्येन वारिणा ।  
 गङ्गास्नानं क्षतस्तेन नित्यमेव न संशयः ॥  
 यस्तु संस्मरते नित्यं गङ्गां भागीरथीं शुभां ।  
 स नित्यं स्नानमाप्नोति गङ्गायां नात्र संशयः ॥  
 यस्तु सुप्ते हृषीकेशे पुष्पाणि च विवर्जयेत् ।  
 व्रतास्ते तु भवेद्घातः स व्रतो स्तर्णपुष्पदः ॥  
 स याति भुवन शुभ्रं विष्णोरमिततेजसः ।  
 प्रसुप्ते तु जगन्नाथे शिवस्याङ्गणमर्चयेत् ।  
 पञ्चवर्णैस्तु यो नित्यं स्वस्तिकैः पद्मकेतवा ।  
 स याति रुद्रलोकं हि गाणपत्यमवाप्नुयात् ॥  
 यस्तु सुप्ते हृषीकेशे पूजयेन्मधुसूदनं ।  
 स्नायं प्रातस्तु भुक्त्वा वै प्राजापत्यपुरं व्रजेत् ॥  
 यस्तु सुप्ते हृषीकेशे तृतीयार्थां नरोत्तमं ।  
 प्रतिपद्यं गुहं दद्याद्गोरो मे प्रीयतामिति ॥  
 समाप्ते विप्रमिच्छुने पूजयित्वा द्विजोत्तमं ।



वस्त्रैराभरणैश्चैव भोजयित्वा भवेत् सुखी ॥  
 पञ्चम्यां प्रतिपन्नस्तु तण्डुलैः पूरितं घटं ।  
 यः प्रदद्याद्भूतस्यान्ते पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ॥  
 वस्त्रैराभरणैश्चैव तण्डुलप्रस्थमेव च ।  
 दत्त्वा सारस्वतं याति पदं गन्धर्वपूजितं ।  
 विद्वान् स पूर्णविभवो धनधान्यसमन्वितः ॥  
 रूपवान् गुणवान् चैव रत्नकण्ठश्च जायते ।  
 चतुर्हस्त्यान्तु संपूज्य उमामाहेश्वरं विभुं ॥  
 प्रतिपन्नस्तु संपूज्य पुष्यैर्गन्धैर्निवेदनैः ।  
 चातुर्मास्ये ततो वृत्ते रोप्यं कृत्वा हृषीकेशं ।  
 तत्रोपरि च शौवर्णमुमामाहेश्वरं विभुं ॥  
 पूजयित्वा द्विजत्रयेण ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 ततो स याति भुवनं विमानेन हि श्राद्धरं ।  
 कल्पान्ते तत्र वै स्थित्वा पृथ्वीपालो भवेदिति ॥

भविष्योत्तरात् ।

एवमःद्वित्रितैः पार्थ तोषमायाति तोषितः ।  
 केशवः क्षेपहा लुष्यः कंसकेशिनिसूदनः ॥  
 सुप्ते यस्मिन्निवर्त्तन्ते क्रियाः सर्वाः शुभोदयाः ।  
 यिवाहव्रतवन्धादिचूडासंस्कारवीक्षणं ।  
 यज्ञगृहप्रवेगश्च प्रतिष्ठादेवभूभृतां ॥  
 पुण्यानि यानि कर्माणि न स्युः सुप्ते जगत्पते ।  
 असंक्रान्तस्तथा मासं देवे पैत्रे च कर्माणि ॥  
 भक्तमासमुच्यते च वर्जयेन्नतिमाकरः ।

प्राप्ते भाद्रपदे मासि एकादश्यां सितेऽहनि ॥

कटिदानं भवेद्विष्णोर्महापातकनाशनं ।

कटिदानमिति श्रुतस्य विष्णोरङ्गपरिवृत्तिकरणं ।

यदेतद्देवश्रयणं तत्रेदङ्गारणं शृणु ॥

पुरा तपःप्रभावेण तीषितोऽहं महाभुज ।

प्रार्थितः स्वानमङ्गेषु प्रीत्यर्थं योगनिद्रया ॥

ततो मयात्मनो देहं तत् स्थानार्थं निरीक्षितं ।

उरो लक्ष्म्या नम व्याप्तं हृदयं कौस्तुभेन तु ॥

शङ्खचक्रगदाशङ्खं वीजवीयाङ्गवस्त्रमाः ।

अधो नाभिर्निरुद्धं मे वेनतेयेन पद्मिणा ।

सुकुटेन शिरो रुद्धं कुण्डलाभ्यां श्रुतिहयं ॥

ततो दत्तं मया पार्थ नेत्रयोः स्थानमादरात् ।

चतुरो वार्षिकान्नासान् वसुः प्रीतो भविष्यति ॥

योगनिद्रापि तद्वाक्यं श्रुत्वा प्रीताभवत्सु सा ।

चकार लोचनावासमतोर्थं मे युधिष्ठिर ॥

अहञ्च ताभ्यावयित्वा मानयाम्यात्मसंस्थितां ।

योगनिद्रां महानिद्रां श्रेयाद्विश्रयणे स्वपम् ।

शीरोद्वेग्यवीच्योवैर्होतपादः समाहितः ॥

लक्ष्म्याः कराम्बुजैः स्रक्ष्यैर्भूष्यमानपदहयः ।

तस्मिन् काले च महती यो मामां चतुरः क्षिपेत् ॥

व्रतैरनेकैर्नियमैः पाण्डव त्रेयसेऽनघ ।

कल्पमेकं विष्णुलोके पूज्यमानो नरो वसेत् ॥

ततो विबुध्यते देव शङ्खचक्रगदाधरः ।

ब्रह्मपुराणात् । एकादश्याञ्च शुक्लायां कार्तिके मासि केशवं ।

प्रसप्तं बोधघेद्राभौ अष्टाभक्तिसमन्वितः ॥

नृत्यैर्गोतेस्तथा वाद्यैः ऋग्यजुःसाममङ्गलैः ।

वीणापटहशब्दैश्च पुराणश्रवणेन च ॥

वासुदेवकथाभिर्यस्तोत्रैरन्यैश्च वैष्णवैः ।

सुभासितैरिन्द्रजालैर्भूरिशोभाभिरेव च ॥

पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्दीपैश्चैः सुशोभनेः ।

हीमैर्भस्मैरपूपैश्च फलैः शर्करपायतैः ॥

इक्षोर्विकारैर्मधुरैर्द्राक्षाक्षुद्रैः सदाङ्गिमैः ।

कुठेरकस्य मञ्जरीया मालत्या कमलेन च ॥

कुठेरकः कृष्णतुलसी ।

हृद्याभ्यां श्वेतरक्ताभ्याश्चन्दनाभ्याश्च सङ्गदा !

कुङ्कुमालताकाभ्याश्च रक्तमूत्रैः सकङ्कणैः ॥

तथा नानाविधैः पुष्पैर्द्रवैर्वीरकानाहृतैः ।

रक्तयुक्तेन प्रथमं माख्येन ग्रहणं तथा ॥

तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां द्वादश्यामङ्गोदये ।

आदौ घृतेनैक्षवेण मधुना स्नापयेत्ततः ॥

दध्ना क्षीरेण च ततः पञ्चगव्येन शास्त्रवत् ।

उदत्तनं माषचूर्णं मसूरामलकानि च ॥

सर्षपाय पिशङ्गश्च सख्खोजानि काश्चन ।

मङ्गलानि यथाकामं रत्नानि च कुशोदकं ॥

एव संशोध्य देवेशं दद्याद्गोरोचनां शुभां ।

ततस्तु कलशा देया यथा प्राप्ताः स्वस्वङ्गताः ॥

जःतीपङ्कवसंयुक्ताः सफलाश्च सकाशनाः ।  
 पुण्याहवेष्टुशब्देण वीणावेणुरवेण च ॥  
 एवं संज्ञाप्य गोविन्दं स्वगुलिप्तं स्वलङ्कृतं ।  
 सुवाससन्तु मम्मन्त्रा संमनोभिः सुकृद्दमेः ।  
 दीपेर्धूपैर्मनोज्ञैश्च पावसेन च मूरिणा ॥  
 पात्रेभ्यश्चान्नदानैश्च होमैः पुष्यैः सदक्षिणैः ।  
 वासोभिर्भूषणैरन्यैर्गोभिर्देव मगोज्ञैः ॥  
 ब्राह्मणाः पूजनीयाश्च विष्णोर्हृदयाय मूर्त्तयः ।  
 यत्तु शिष्टासृतं पयाङ्गोक्तव्यं ब्राह्मणैः सह ॥  
 भविष्योत्तरात् ।

कार्तिके शुक्लपक्षस्य एकादश्यां समाहितः ॥  
 मन्त्रेण चैव राजेन्द्र देवमुत्थापयेद्भिजः ।

मन्त्रास्तु वराहपुराणोक्ताः ।

श्रीं ब्रह्मेन्द्रहृद्राग्निकुवेरमूर्य्य-  
 सोमादिभिर्वन्दितवन्दनोयः ।  
 बुध्यस्व देवेश जगत्प्रवास  
 मन्त्रप्रभावेण सुखेन देव ॥

इयं तु हादगी देव प्रवाधार्थन्तु निर्मिता ।  
 त्वयैव सर्वलोकानां हितार्थं शेषशान्तिना ॥  
 त्वयि सुमे जगन्नाथ जगत्सुप्तं भवेदिदं ।  
 चरिष्यते चेष्टते सर्वमुत्तिष्ठोत्तिष्ठ माधव ॥  
 गता मेघा त्रियत्रैव निर्मलं निर्मला दिशः ।  
 शारदानि च पुण्यानि यद्वाच्यं मम कोशव ॥

इदं विष्णुरिति प्रोक्ते मन्त्रमुत्थापने इरेः ।  
 समुत्थिते ततो विष्णौ प्रवर्तन्ते शुभाः क्रियाः ॥  
 तत्रैव देवदेवस्य स्नानम् पूर्व्ववद्वेत् ।  
 महातूर्य्यरवौ रात्रौ भ्रामयेद्देवमुत्थितं ॥  
 विमानाकारयानेन नगरे पार्श्ववः स्वयं ।  
 दीपोद्योतकरे मार्गं नृत्यगीतजनाकुले ॥  
 यो यो दामीदरं पश्येदुत्थितं धरनीधरं ।  
 स स प्राणो महाराज सञ्चः स्वर्गाय कल्पयेत् ॥  
 रात्रौ प्रजागरे देव एकादश्यां सुरालये ।  
 प्रभाते विमले स्नात्वा द्वादश्यां विष्णुमर्चयेत् ॥  
 होमयेद्द्वयाहश्च होमद्रव्येष्टितादिभिः ।  
 ततो विमानं नृपञ्चेष्ट भोजयेदन्नविस्तरेः ॥  
 घृतचीरदधिचीरकामारगुडमोदकैः ।  
 यजमानयुतस्तुष्टस्वरां हास्य विवर्जयेत् ॥  
 एकादश्याद्यौ वा पञ्च हो वा कुरुत्तम ।  
 चर्चयेच्चन्दनैर्गन्धैवस्त्रमाल्यादिभिर्हजान् ॥  
 शास्तीकविधिना पार्थ अथवा विधितत्परः ।  
 पितरस्तापितास्ते न तीपितस्ते न केयवः ॥  
 न हि कश्चित्तमः मात्तदस्मिन् आत्मेन पाण्डव ।  
 यित्तुद्दिश्य यत्किञ्चिद्दीयते अथयान्वितैः ।  
 तत्प्रात्या भुज्यते देवैर्गृह्यादिभिरसंग्रयं ॥  
 अतः शास्तीकविधिना व्रतान्ते पूजयेद्द्विजान् ।  
 आचान्ते तु ततोदद्यात्स्वत्तं यत्किञ्चिद्देव हि ॥

स्ववाचा स्वमनोभीष्टं ज्ञेयधाम्यफलादिकं ।  
 चतुरो वाचिकान् मासान् नियमो येन यः कृतः ॥  
 कथयित्वा द्विजेभ्यस्तद्दद्याद्भक्त्या सदक्षिणं ।  
 दद्याद्विसर्जयेद्दिपान् ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥  
 यत्पुण्यं चतुरो मासान् प्रवृत्तिं तस्य वाचयेत् ।  
 य एनं कुरुते पार्थ सोऽनन्तफलभागभवेत् ॥  
 प्रतिवर्षं च यः कुर्याद्देवं संस्मरते हरिं ॥  
 देहान्तेऽतिप्रदोषे न विमानेनार्कवच्च सा ।  
 मोदते विष्णुलोकेऽसौ यावदाहुतसंज्ञकं ॥  
 यस्याविष्टैः समाप्येत चातुर्मासीन्ननं कृप ।  
 स भवेत् कृतकृत्यस्तु तुष्टो बभूव जनार्दनः ॥  
 यो देवशयने भक्त्या चतुष्टयं समाचरेत् ।  
 गङ्गादितोर्ध्याचायास्तु स्वं फलमवाप्नुयात् ॥  
 चत्थानं वापि कृण्वन् स हरिर्लोकमाप्नुयात् ।  
 शृणोति ध्यायति स्तोति समाख्यात्यनुमोदते ।  
 व्रतमेतन्नरो भक्त्या स गच्छेद्देणवं पुरं ॥  
 दुग्धाब्धिर्भोगिशयने भगवाननन्तो ,  
 यस्मिन् दिने स्वपिति वाथ निवृत्त्यते वा ।  
 तस्मिन्ननन्यमनसामुपवासभाजां  
 पुंसान्ददाति सगतिं ह्यङ्गुलमङ्गुलः ।

इति देवशयनोत्थानविधिः ।

आषाढाद्विषतुर्मासान्भङ्गं वर्जयेन्नरः ।  
 पारिते च पुनर्द्द्यात्तिसतेसयुगं षटं ॥  
 भोजनं पावसाज्ज्वल स वाति भवनं विभोः ।  
 लोकप्रोतिकारं ज्ञेयत् ज्येष्ठव्रतमिहोच्यते ॥

इति पद्मपुराणोक्तं ज्येष्ठव्रतं ।

—००—

आषाढाद्विषतुर्मासां वर्जयेच्चक्रान्तनं ।  
 उन्तासभञ्जचचैव मधुसर्पिर्षटान्वितं ॥  
 कार्तिक्यान्तत्पुनर्हेमं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।  
 षड्लोकानवाप्नोति शिवव्रतमनुत्तमं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं शिवव्रतं ।

—००—

महाफलानि वक्ष्यन्ता चातुर्मास्यं विजातये ।  
 वैमानि कार्तिके दद्यात्प्रोद्युमेन समं नरः ॥  
 सितवस्त्रयुगेनाथ सम्पूर्णाज्वहतेन च ।  
 एतत् फलव्रतं नाम सर्वकामफलप्रदं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं फलव्रतं ।

—००—

आषाढाद्विषतुर्मासान् प्रातः स्नायी भवेन्नरः ।  
 विषय भोजनं दत्त्वा कार्तिक्याङ्गोपदेशो भवेत् ॥  
 घृतशुभ्रन्तथा दद्यात् सर्वकामानवाप्नुयात् ।  
 वैष्णवव्रतमित्युक्तं विष्णुलोकप्रदायकं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं वैष्णवव्रतं ।

षष्ठीं वै मार्गशीर्षे तु यस्तु पिष्ठमयन्ददेत् ।  
 शिवं सम्यक् विधिवत् सृष्ट्यलोके महीयते ॥  
 दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तदन्ते स्यान्नहीपतिः ।  
 पौषे पिष्ठमयी दन्ती शिवस्याघे निवेदयेत् ॥  
 त्रिःसप्तकुलसंयुक्तः शिवलोके महीयते ।  
 दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तदन्ते स्यान्नहीपतिः ॥  
 चक्रवर्ती महावीरः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।  
 माघे चाश्वरथं यस्तु शिवाय विनिवेदयेत् ॥  
 उदरेऽपि नरकात् स्वपिष्टं नृ रोरवादितः ।  
 शिवलोके तु वसति दिव्यवर्षायुतथयं ॥  
 तदन्ते तु महीं कर्त्स्ना न च खण्डा भुनक्ति सः ।  
 फाल्गुने हृषयूषन्तु पिष्टोत्थं बहुसंख्यया ॥  
 निवेश्य तु शिवस्याघे त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत् ।  
 दिव्यं वर्षसहस्रन्तु तदन्ते स्यान्नहीपतिः ॥  
 चक्रवर्ती महावीरः सर्वैश्वर्यसमन्वितः ।  
 चैत्रे गृहमिन्दमयं दासदासीसमन्वितं ॥  
 गृहोपकरणैर्गुणैर्विचित्रैश्चैव चर्चितं ।  
 पूजान्ते परया भक्त्या शिवाय विनिवेदयेत् ॥  
 दिव्यवर्षगतान्यष्टौ रुद्रलोके महीयते ।  
 जातिस्मरस्तदन्ते तु चक्रवर्तित्वमाप्नुयात् ।  
 मासि वैशाखसंज्ञे तु सप्तश्रीद्विसप्तकान् ॥  
 शिवाय पुरतो दद्यात् पूजान्ते प्रीतिचेतसा ।  
 च याति शिवसाहस्रं बभ्रुभिः सहितो नरः ॥



फलानां वै शते यस्तु, गुग्गुलन्तु दहेत्सुधीः ।  
 ज्यैष्ठे मासि शिवस्याग्रे पूजान्ते भक्तिसंयुतः ॥  
 त्रिःसप्तकुलसंयुक्तः शिवलोके महीयते ।  
 तदन्ते पृथिवीं भुङ्क्ते न च खण्डां ससागरां ॥  
 बलिमण्डलकं कार्यं षाषाढे शूलपाणिनः ।  
 नानाभक्षैर्विर्चितं नानाभक्षसमन्वितं ॥  
 नानाचित्रसमाकीर्णं कर्तव्यं बलिमण्डलं ।  
 संपूज्य परमेशानं ततस्तस्य निवेदयेत् ॥  
 पितृन् पितामहांश्चैव उच्यते प्रपितामहान् ।  
 पुत्रपौत्रसमायुक्तः शिवलोके महीयते ॥  
 दिव्यवर्षसहस्राणि तदन्ते पृथिवीपतिः ।  
 श्रावणे मासि देवस्य विमानं पुष्पसम्भवं ॥  
 पूजावसाने दातव्यं विचित्ररचनाकुलं ।  
 वर्षीयुतप्रमाणन्तु रुद्रलोके महीयते ॥  
 योगीशो जायते शान्तो येन मोक्षं व्रजेत्तु सः ।  
 मासि भाद्रपदे यस्तु, रुद्रपूजां चरेत्तदा ॥  
 गुग्गुलं प्रथमं धूपं सुरदाब ततो दहेत् ।  
 विश्वभोजं हृतं तद्वत् तथा नानाहृतान्वितं ॥  
 पञ्चमं ह्यगुरुन्देयं धूपं सर्वात्मना विभोः ॥  
 मासमेकन्देद्यस्तु नैरन्तर्येण भक्तितः ।  
 याति सायुज्यतां शम्भोः सपुत्रः सहबान्धवः ॥  
 यत्स्वर्कपत्रपटकं पूरयेत्क्षीरसर्पिषा ।

मासमश्वत्थुर्जं शश्वीर्नैरन्तये च भक्षितः ॥  
 तस्य पुष्पफलं वक्तुं न शक्नोऽपि वङ्गानन ।  
 तत्कुले पतिता ये तु चिन्धादिभक्षता पुनः ॥  
 ते प्रयान्ति महाभागा बद्रलोके यथावृषं ॥  
 वर्षायुतायुतं साधं तद्वक्तुं तु नरेश्वराः ।  
 जायन्ते शिवभक्तो च ज्ञानिनो वीतकल्मषाः ॥  
 शिवदीक्षां समासाद्य ते यान्ति परमावृतिं ।  
 वस्त्राहृतमिन्दुरसं पुष्टकन्तु शिवाग्रतः ।  
 पूजान्ते दापयेद्यन्तु मासि प्राप्ते च कार्त्तिके ॥  
 देहान्ते बद्रलोके तु मोदते सह बान्धवैः ।  
 व्रतान्ते चैव संपूज्य शिवभक्तान् यथाविधि ॥  
 हैमवस्त्रान्नपानैश्च विसृष्टाऽथ विना सुत ।

इति कालोत्तरोक्तं शिवव्रतं ।

—०१०—

एकभक्तेन या नारी कार्त्तिकन्तु सपेद्रूप ।  
 च्छमाहिंसादिनियमैः सञ्जाता ब्रह्मचारिणी ॥  
 गुह्यान्मिश्रं शाल्यन्नं भास्कराय निवेदयेत् ।  
 पुण्यादि करवीरादि गुग्गुलुं साज्यमादरात् ॥  
 सप्तम्याश्चाष्टवर्ष्या वा सप्तवासरतिर्भवेत् ।  
 पञ्चयोद्धभयोरेव त्रहया परयान्वितः ॥  
 इन्द्रनोःसप्तोकाग्रं विमानैः सार्वकामिकैः ।  
 नारीयुगयतं साधं सूर्यलोके महीयते ॥  
 तथा च सूर्यलोकेषु भोगानासाद्य ब्रह्मतः ।

तस्मादागत्य लोकेऽस्मिन् यद्येष्टं विन्दते पतिं ॥

अमा सत्यन्द्या दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।

सूर्यपूजाम्निहवनं सन्तोषस्तोयवर्जनं ॥

सर्ववतेश्वयं धर्मः सामान्येन सदा स्थितः ।

मार्गशीर्षे शुभे मासि व्योमपिष्टेन निष्कृतं ॥

गन्धमाख्यैरलङ्कृत्य भास्कराय निवेदयेत् ।

गैरिकेयैर्महास्थानैरप्सरोगणसेवितैः ॥

मासैकादशसाहस्रं सूर्यलोके महीयते ।

गैरिकेयैः महास्वर्णैः ।

क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजानं पतिमाप्नुयात् ।

पीथे तु गरुडङ्कत्वा भानवे विनिवेदयेत् ॥

गन्धमाख्यैरलङ्कृत्य भास्करं विभूषीतमं ।

ताम्रपात्रेऽथ कांस्ये वा तत्सर्वं विनिवेदयेत् ।

महापद्मकदानेन दिव्यगन्धप्रवाहिना ॥

अथैकादशसाहस्रं सूर्यलोके महीयते ।

सम्प्राप्यैवं क्रमाज्ञीकं यद्येष्टं विन्दते पतिं ॥

माघे रथशान्त्रयुतं दीपमाख्यविभूषितं ।

पैष्टभानुसमायुक्तं कृत्वा यतनमानयेत् ॥

विमानैः सूर्यसङ्घाशैर्गीतवाद्यसमाकुलेः ।

सप्तैकादशसाहस्रं सूर्यलोके महीयते ।

पुनरेत्य इमा लोकं यद्येष्टं विन्दते पतिं ॥

देवार्चां फाल्गुने मासि कृत्वा पिष्टमयीं रवेः ।

गन्धमाख्यैरलङ्कृत्य ज्वापयेत् भास्कराख्ये ॥

विमानैः सूर्यसहायैर्गीतवाद्यसमाकुलैः ।  
 वर्षावृतगतं साधं सूर्यलोके महीयते ॥  
 क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् यद्येष्टं विन्दते पतिं ।  
 कृत्वा च तत्रा च तत्रे गन्धमाख्योपशोभितं ॥  
 स्याप्य पात्रे यथोक्तस्तु भस्कराय निवेदयेत् ।  
 यरदिन्दुपतीक्यैर्विमानैः सार्वकामिकैः ॥  
 वर्षावृतगतं साधं सूर्यलोके महीयते ।  
 कर्षाद्यदिहागत्य पुत्रपौत्रसम्बिता ॥  
 चभीष्टं पतिमासाद्य तत्र भोगान् सुदुर्लभान् ।  
 तन्मन्त्राङ्कपिष्टेन कृत्वा वै मेरुपर्वतान् ॥  
 निक्षुभागं समायुक्तं सर्वधातुविभूषितं ॥  
 नानासङ्घारसम्पन्नं नानामाख्यविभूषितं ।  
 सर्वरत्नसमायुक्तं स्यापयेद्भस्करालये ॥  
 महाख्यानगतं ह्येतत् वैशाखे यः समाचरेत् ।  
 नानाविधैर्विमानैश्च सूर्यलोके महीयते ॥  
 क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् क्रीडतेमानसेऽचले ।  
 पिष्टेन पङ्कजं कृत्वा ज्येष्ठे मासि सवेदिकं ॥

पङ्कजं पङ्कजं ।

पात्रैः संपूज्य गन्धाद्यैर्नानामाख्यविभूषणैः ।  
 यद्यस्फटिकसहायैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।  
 वर्षावृतगतं साधं सूर्यलोके महीयते ॥  
 क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजानं पतिमाप्नुयात् ।  
 विद्याश्च तत्रा पङ्कजापाङ्के पैटसुत्तमं ॥

सर्व्वबीजरसैः पूर्णं कृत्वा तु शुभलक्षणं ।

नानाकैमरगभ्यादृग्ं सर्व्वरत्नसमन्वितं ॥

भास्कराय निवेदयेदिति शेषः ।

इंसवाहैर्महायानैः सर्व्वभोगान्वितै रृप ॥

वर्षकोटिगतं सायं व्रध्रलोके महीयते ।

प्रध्रलोके सूर्यलोके ।

क्रमाङ्गोकमिमं प्राप्य राजानं विन्दते पतिं ।

निवेदयेत्तु सूर्याय त्रावणे तिलपम्बतं ॥

स्वच्छन्दगामिभिर्यानेर्नानारत्नविभूषितैः ।

वर्षकोटिगतं सायं सूर्यलोके महीयते ॥

सम्प्राप्य विविधान् भागान् बह्वायस्यसमन्वितान् ।

क्रमाङ्गोकमिमं प्राप्य राजानं विन्दते पतिं ॥

कृत्वा भाद्रपदे मामि व्योमशालिसवं नृप ।

वितानध्वजवस्त्राद्यं नानामान्दविभूषितं ॥

निशाकरकरप्रस्थैर्महायानैः शुशो भनैः ।

वर्षकोटिसहस्रानि सूर्यलोके महीयते ॥

क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजानं विन्दते पतिं ।

कृत्वा वाश्रयुजे मामि विपुलं धान्यपम्बतं ।

सुवर्णवस्त्रगन्धर्व्यं सूर्यस्याग्रे निवेदयेत् ॥

सा विचित्रैर्महासामैर्वरभोगसमन्वितैः ।

वर्षकोटिसहस्राणि सूर्यलोके महीयते ॥

अस्मिन् लोकमनुपान्ना राजानं विन्दते पतिं ।

इति भविष्यपुराणोक्तं स्त्रीपुत्रकामावाप्तिव्रतं ।

पुस्तक उवाच ।

आषाढशुक्लपक्षान्ते भगवान् मधुसूदनः ।  
 भोगिभोगे निजां मायां योगनिद्रान्तु मानयेत् ॥  
 शैतेऽभौ चतुरो मासान् यावद्भवति कार्तिकी ।  
 विधिष्टाभ्युत्पवर्तन्ते तदा यज्ञादिकाः क्रियाः ॥  
 तत्राषाढसितान्ते तु यो नरो दिनपञ्चकं ।  
 अधःशायी वहिःशायी साममभ्यङ्गवर्जितः ॥  
 समस्तमन्दिरावर्जं सकलकलागनो भवेत् ।  
 ब्रह्मचारो जितक्रीधी जपहीमपरायणः ।  
 चरिं संपूजयेन्नित्यं गन्धमास्ताससम्पदा ॥  
 गीतवाद्यैस्तथा नृत्यैर्हीमालाभिरेव च ।  
 सार्धनां जलधेनुनां प्रदानेन तथैव च ।  
 तथा कार्तिकशुक्लान्ते तृतीये पार्वणं भवेत् ॥  
 प्रस्वापे च प्रबोधे च दिनादि दश त्रै द्विज ।  
 द्विसाक्यकेस्तु किन्तस्य यज्ञैः कार्यं महात्मनः ॥  
 प्रस्वापे च प्रबोधे च पूजितो येन ज्ञेयव ।  
 दशाहमेतत् कृत्वा तु व्रतं विष्णुपरो नरः ॥  
 अम्बिष्टीममवाप्नोति कुलक्षैव समुद्धरेत् ।  
 अम्बिमुखं देवतानामम्बिदं वच कृतिक्रा ॥  
 कार्तिकशुक्लदेवत्वो मासो देवमुखः स्मृतः ।  
 आश्वयुज्यामतीतायां यावत्स्यार्द्धं ज कार्तिकी ॥  
 व्रतं दशाहाभिहितं कृत्वा स्वर्गं महीयते ।  
 पौष्करीकमवाप्नोति कुलमुद्धरति स्वकं ॥

( १०४ )

प्रत्यहं दीपदानेन कार्तिकेऽभिसुखीभवेत् ।  
 चतुष्टयान् ब्राह्मण्येष्टस्तथा सर्वेषु पूजितः ॥  
 एतावन्तं तद्याकाशं सर्वमासविवर्जकः ।  
 स्वर्गलोकात्परिभ्रष्टो मानुषे सुखमाप्नुयात् ॥  
 पारोग्यरूपसम्बन्धा युक्तञ्च सुभगो भवेत् ।  
 प्रसृप्ते देवदेवेशे द्दगरात्रोदितं व्रतं ॥  
 कृत्वा तु चतुरो मासान् प्रसृप्ते मधुसूदने ।  
 अश्वमेधफलं प्राप्य नाकपृष्ठे महीयते ॥  
 असिधाराव्रतं कृत्वा तद्या संवत्सरं नरः ।  
 सर्वयज्ञानवाप्नोति विष्णुलोकञ्च गच्छति ॥  
 येन येन तु कामेन खड्गधाराव्रतञ्चरेत् ।  
 तं तद्धाममवाप्स्याय विष्णुलोके महीयते ॥  
 तथा समर्थो भवति दाने च वरदापयोः ।  
 आदित्यतेजा भवति नाच कार्या विचारणा ॥

दाह्य उवाच ।

असिधाराव्रतविधिं समाचक्ष्व महाश्रुते ।  
 एतन्ने संशयं ह्यिन्धि त्वं हि सर्वविदुष्यते ॥

पुलस्त्य उवाच ।

आतयात्कृतस्त्रयी भुक्तवाप्सासवर्जितं ।  
 हातदैवत्वपूज्यञ्च श्रीसहायः स्वपेत्रिमि ॥  
 ब्रह्मचारी द्विज्येष्ठ खड्गधाराव्रतं चरेत् ।  
 अपूर्वञ्चाप्य पूज्यं च समाप्तिञ्च स्वपेत्रिमि ॥  
 ब्रह्मचारी यतस्तु चं कर्ममाप्नोत्वसंशयं ।

अतीवदुष्करमिदं ब्रह्मधाराव्रतं स्मृतं ॥

कृत्वा व्रतं द्वादशवत्सराणि  
त्रैलोक्यराज्यं भुवमाप्नुयात् ॥  
भुक्त्वापिरन्ते द्विजसुख्यमन्ते  
सायुज्यमायाति अनार्दनस्य ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तमसिधाराव्रतं ।

—००००००—

मार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्भूतिव्रतन्तव ।  
विद्याकामेन यत्कार्यं नरेण सुविपश्चिता ॥  
बहिः ज्ञानं नरः कृत्वा कृतकृच्छे दपूजनः ।  
कृत्वे दं शृणुयान्नित्यं मासद्वयमतन्द्रितः ॥  
चैत्रादारभ्य धर्मज्ञी नित्यं नक्तागतो भवेत् ।  
ततो नृपवर प्राप्ते ज्येष्ठस्य चरमिऽहनि ॥  
बामोयुगं हिरण्यञ्च तथा धेनुं पत्रत्रिणीं ।  
हृतपूर्वं कांस्यपात्रं सहिरण्यन्तु दक्षिणां ॥  
आषाढादिषु मासेषु यजुर्वेदव्रतं चरेत् ।  
अग्निनादिषु मासेषु सामवेदव्रतं चरेत् ॥  
तथाप्यथर्वव्रतं नाम पौषादिषु विधीयते ।  
सर्वेषु मर्त्यकर्त्तव्यं कृत्वे दव्रतकोत्तितं ॥  
वेदात्मनो वासुदेवस्य पूजां  
कृत्वा नरो द्वादशवत्सराणि ।



विष्णोर्लीकं याति लोकेर्विशिष्टं  
यस्मिन् प्राप्ते सर्वं दुःखं जहाति ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं वेदव्रतं ।

— ००० —

मार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्मूर्तिव्रतं तव ।  
वैश्यामलपक्षे तु सोपवासो जितेन्द्रियः ॥  
वासुदेवन्तु संपूज्य ब्राह्मणाय विचक्षणः ।  
दक्षिणार्थन्तु वै दद्याद्द्रव्यं यज्ञोपयोगिवित् ॥  
सङ्कर्षणन्तु संपूज्य वैशाखे धर्मवत्सल ।  
अत्रियाय तथा दद्याद्द्रव्यं सांघामिकं शुभं ॥  
प्रद्युम्नं पूजयित्वा तु ज्येष्ठे मासि द्विजोत्तम ।  
वैश्याय दद्यात्तानि ज्येष्ठे द्रव्यं यदुपयुज्यते ॥  
कृत्वानिरुद्धपूजान्तु मास्याघाटे यथाविधि ।  
कर्त्तव्यं पारणं (१) द्रव्यं दद्याच्छूद्राय गार्गव ॥  
मासैस्वतुभिर्भवति पारणं प्रथमं द्विज ।

कृत्वा नरस्त्रिष्वथ पारणानि  
लीकं समाप्नोति पुरन्दरस्य ।  
तत्रोच्य राजन् सचिरञ्च कालं  
मानुष्यमासाद्य भवेत् समृद्धः ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं वर्षव्रतं ।

(१) कामाद्य कारकमिति पुस्तकान्तरं पाठः ।

मार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्भूतिव्रतन्तव ।  
 नित्यञ्चतुर्षु मासेषु यावगाद्येषु यादव ।  
 चतुःसागरविह्वानि पूर्णकुम्भास्तु पूजयेत् ।  
 चतुरात्मा हरिर्ज्ञेयः सागरात्मा विचक्षणैः ॥  
 ज्ञानं समाचरेन्नित्यं नदीतीयेन यादव ।  
 ह्रीमञ्च प्रत्यहं कुर्यात् व्रततं तेलवर्जितं ॥  
 कार्त्तिकस्यावमानाद्धि पूजयित्वा द्विजोत्तमान् ।  
 तैलं दत्त्वा तु विप्राय नाकपृष्ठे महीयते ।  
 सर्व्वं कामं समृद्धस्य यज्ञस्य लभते फलं ॥  
 मानुष्यमासाद्य महीपतिश्च  
 भुक्त्वा महीं सागरमेखलान्ता ।  
 तत्रापि धर्मस्य मनोनिविष्टो  
 भवन्नरोगय बलेन युक्तः ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं सागरव्रतं ।

— ००० (१) ००० —

मार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्भूतिव्रतन्तव ।  
 वासुदेवस्य गरुडस्तालः सङ्घर्षणस्य च ॥  
 प्रद्युम्नस्य तथा चिह्नं मकरो व्यादिताननः ।  
 देवानिरुद्धो धर्मज्ञ ऋष्यकेतुः प्रकोर्तितः ॥  
 पीतं नीलं तथा श्वेतं रक्तञ्च यदुनन्दन ।

तेषाम्नु कथितं वासः पताका तादृगिष्यते ॥  
 यस्य देवस्य यच्चिह्नं स चात्मना प्रकीर्तितः ।  
 पताका तादृशी तस्य बसनन्तस्य तादृशं ।  
 चैत्रेषु प्रत्यहं मासि गरुडं पूजयेन्नरः ॥  
 पीतेन गन्धनेवेद्यमाख्यवस्त्रादिना द्विज ।  
 वैशाखे च तथा मासि तालं संपूजयेत्सदा ॥  
 नीलेन गन्धनेवेद्यमाख्यवस्त्रादिना द्विज ।  
 ज्यैष्ठे च प्रत्यहं मासि मकरं पूजयेत्सदा ॥  
 श्रितेन गन्धनेवेद्यमाख्यवस्त्रादिभिर्द्विज ।  
 षष्ठ्यं संपूजयेद्देवं मास्याषाढे यथाविधि ।  
 रक्तेन गन्धनेवेद्यमाख्यवस्त्रादिना द्विज ॥  
 बह्विः स्नानं तथा कुर्यादस्त्रिमंपूजनं तथा ।  
 नित्यञ्च कुर्याद्द्वैमं च तथा ब्राह्मणभोजनं (१) ।  
 पारनार्थं तथा कुर्यात्कृतं तैलविवर्जितं ॥  
 षधःशयी तथा च स्याद्ब्रह्मचारी सदा भवेत् ।  
 व्रतमेतन्नरः कुर्यात् सम्यग्नामचतुष्टयं ॥  
 ब्राह्मणान् पूजयेच्छ्रुत्या प्राषाढे चरमेऽहनि ।  
 वस्त्राण्युक्तानि धर्मेण दद्याद्विप्रेषु दक्षिणां ॥  
 कृत्वैकं पारणं राजन् स्वर्गलोके महीयते ।  
 द्वितीयं पारणं कृत्वा शक्रलोके महीयते ॥  
 तृतीयं पारणं कृत्वा ब्रह्मलोके महीयते ।  
 कृत्वा पारणघट्कम्बु रुद्रलोके महीयते ॥

(१) ब्राह्मणवर्षवर्षितं पुण्यकामर वाढः ।

विष्णुलोकमवाप्नोति कृत्वा द्वादश पारणं ।

ध्वजव्रतं द्वादशवत्सराधि  
कृत्वा नरो भार्गववंशसुख्य ।  
सायुज्यमायाति जनार्दनस्य  
देवस्य विष्णोः परमेश्वरस्य ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं ध्वजव्रतं ।

—००@००—

मार्कण्डेय उवाच ।

इदमन्यत् प्रवक्ष्यामि चतुर्भूर्त्तिव्रतमव ।  
शङ्खचक्रं गदापद्मं चतुराङ्गा प्रकीर्त्तितः ॥  
वासुदेवः स्मृतः शङ्खः चक्रः सङ्कर्षणस्तथा ।  
प्रद्युम्नश्च गदापद्मनिकुञ्जीजगद्भुक्तः ॥  
आवणादिषु मामेषु वदिः स्नातस्तु, नक्तभाक् ।  
तेषाम्नु पूजनं कुर्यात् प्रतिमासमनुकृतात् ॥  
गन्धमाख्यनमस्कारदीपधूपान्नसम्पदा ।  
ततस्तु कार्तिकस्यान्ते समामे तु तथा व्रते ॥  
ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या दद्याच्छक्त्या च दक्षिणां ।  
पांसुपात्रञ्च सष्टत्वं ससुवर्णं तत्रैव च ।

कृत्वा व्रतं मासचतुष्टयञ्च  
प्राप्नोति लोकां त्रिदशेश्वरस्य ।  
मानुष्यमासाद्य तथैव पयात्  
वसुधैरिणो भवतीह वीरः ॥  
इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं आयुधव्रतं ।

ब्रह्मीवाच ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वाभ्युदयवर्धनं ।  
 यत्कृत्वा जायते राजा सार्वभौम इहानघ ॥  
 मासे नभसि संप्राप्ते नक्ताहारी जितेन्द्रियः ।  
 प्रातःस्नायी मदाध्यायी अग्निकार्यपरायणः ।  
 देवीं संपूजयेद्दत्त बिल्वपुष्पद्रागचम्पकैः ॥  
 धूपस्तु गुग्गुलुं दद्यात्सैवेद्यं छतपाचितं ।  
 चीरात्तं दधिभक्तञ्च अथवा शाकयावकं ॥  
 जपञ्च कुर्यान्मन्त्रस्य सहस्रमथवा शतं ।  
 देव्यास्तत्र समर्प्यत यावत् पूर्णं व्रतम्भवेत् ॥  
 पूर्णं व्रते ततोवत्स कन्याचार्यद्विजस्तियः ।  
 भोजयेत् पूजयेच्छक्त्या हेमगीचरभूषणैः ॥  
 अभावान्मन्त्रजपञ्च नित्यं कार्यं नृपोत्तम ।  
 यः कुर्यात् शततं भक्त्या मापि तत्तुल्यतामियात् ॥  
 नचव्याधिजरासृत्रर्न भयञ्चारिसम्भं ।  
 जायते देवि भक्तस्य अन्ते च फलमव्ययं ॥

अत्र मन्त्रपदानि भवन्ति । श्रीं नन्दने नन्दनि सर्वार्थसा-  
 धनी नमः । मूलमन्त्रः । श्रीं नन्दने हृदयाय नमः, हृदयं ।  
 नन्दिनो शिरसे नमः, गिरः । सर्वार्थे नमः । गिखा ।  
 श्रीं प्रथमाधिनो नमः, कवचं । श्रीं नमः, ह्रँ फट्, अस्त्रं ।  
 श्रीं नेत्राय नमः । श्रीं नन्दिनो उपचारहृदयं ।

तृतीयायाञ्च पञ्चम्यां चतुर्थ्यामष्टमीषु च ।

नवम्यां षोडशमास्यामेकादश्यां द्वादशीषु च ।  
 षड्यां सा चैव विद्येशा पूजनीया विशेषतः ॥  
 नन्दामुद्दिश्य यो दद्याच्छ्रावणे गोवृषं सितं ।  
 स लभेद्विष्णुकार्थं देवीलोकञ्च शाश्वतं ॥  
 नभस्येतां समुद्दिश्य दद्याद्वां काञ्चनं पिवा ।  
 स व्रजेद्व्रतपापस्तु नन्दासुलोकञ्च निर्भयं ॥  
 पाश्विने नवरात्रञ्च उपवासमयाचितं ।  
 कृत्वा देवीं प्रपूज्याथ षष्ट्यामपरेऽहनि ॥  
 हेमपुण्यमणिर्वस्त्रं नानाचित्रविभूषितं ।  
 दानञ्च काञ्चनं देयं नन्दायै स्वार्थमिहये ॥  
 विधूतपापसङ्घातः सर्व्वकाममन्वितः ।  
 गच्छन्ती तन्तु लोकं वै यत्र देवी सरारिहा ।  
 वसते कल्पकोटिस्तु षष्ठ्यरोगणसेवितः ॥  
 नन्दतेष्यागतस्यात्र पृथिव्यामेकराड् भवेत् ।  
 कार्त्तिके पूजयित्वा तु देवीं जातीगजाङ्गये ॥  
 षड्दानं ददद्विप्रे कन्यासु स्त्रीष्वथापि वा ।  
 श्लेतानि चैव वस्त्राणि तथा देयानि दक्षिणा ॥  
 सुच्यते सर्व्वपापैस्तु जन्मान्तरकृतैरपि ।  
 इहैव जायते योगी परत्र पदमव्ययं ॥  
 मार्गे तु विधिवत्सत्त्वात्वा देवीं पूज्य च कुङ्कुमैः ।  
 नैवेद्यं द्रव्यपूपाद्य देयाः कन्यासु च द्विजे ॥  
 भोजयेद्दक्षसेहस्त वस्त्रैः कीटकुलोद्भवैः ।  
 प्राप्नुयात्सर्व्वकामाद्य सर्व्वपापैः प्रमुच्यते ॥

( १०५ )

पौषे देवीं समाधाय जलजैरभिपूजयेत् ॥  
 नैवेद्यं शालिभक्तञ्च कन्यां सम्भोज्य दक्षयेत् ।  
 पीतवस्त्रैस्तथा शय्या देव्या देयातिशोभना ॥  
 अनेन विधिना वक्ष साक्षाद्देवी प्रसीदति ।  
 ददाति कामिकान् भोगान् अन्ते च स्वपुरं नयेत् ॥  
 माघे तु पूजयेद्देवीं कुन्दजस्त्रगिराद्रात् ।  
 कुङ्कुमेन सदर्पेण तथा मङ्गपलेपितं ॥

सदर्येण कस्तूरिकामहितेन ।

स्नापितां विधिवत्पूर्वं ततः कन्यास्तु पूजयेत् ।  
 दिजांश्च चण्डिकां भक्त्या विधिवद्गतपायमेः ।  
 दक्षिणां तिलह्रीमञ्च यथागत्या प्रदापयेत् ॥  
 विधूतपापकलिकः सर्वभोगसमन्वितः ।  
 विश्वत्रयं हृत्पुत्रश्च जायते नरसत्तमः ॥  
 देहान्ते नन्दिनीलोकं सर्वदेवनमस्कृतं ।  
 प्रयाति नात्र मन्दे हो अनेन विधिना नृप ॥  
 फाल्गुने पूजयेद्देवीं कुसुमैः सहकारकैः ।  
 तथा निवेद्य भक्ष्याणि शर्करामधुना सह ॥  
 भोजयेत्कन्यकान् विप्रान् दक्षिणामितवासमी ।  
 अनेन जायते भोगी देवीलोकश्च गच्छति ।  
 सम्प्राप्ते चैत्रमासे तु देवी पूज्या दमानकैः ॥  
 नैवेद्यं सङ्कुका देया तथा कन्याश्च भोजयेत् ।  
 स्त्रियश्च रत्नवस्त्रैश्च पूजितव्याः (१) यथाविधि ॥

(१) दक्षिणामा इति पुस्तकाकारे पाठः ।

अनेन सर्वकामान् वै प्राप्नुयाद्विचारणात् ।  
 देवीलोकं व्रजेदस्य यत्र भोगा निरन्तराः ॥  
 वैशाखे पूजयेद्देवीं पुष्पैर्वर्णकारजैः ।  
 नैवेद्यं सक्तवः खण्डं कन्यां भोज्याथ दत्तयेत् ।  
 शुभानि हेमच्छाणि देयानि द्विजसत्तमैः ॥  
 देवीन्तु प्रणमेदस्य सर्वदेवेष्वनूत्तमां ।  
 ज्येष्ठे तु शङ्करे पूज्या रक्ताशोककरगटकैः ॥  
 तथा देयञ्च नैवेद्यं घृतपूरैश्च कन्यकाः ।  
 भोजनीयास्तथा दत्त्वा गोभृदानादिभिः शुभैः ॥  
 जलकुम्भास्तथा देयाः सम्पूर्णा वा सिताम्भसा ।  
 अनेन वारुणान् भोगान् तेषां क्षिप्रं प्रयच्छति ॥  
 आषाढे पूजयेद्देवीं पद्मेर्नीलोत्पलेर्हृत्लेः ।  
 नैवेद्यं शर्करायुक्तं दधि भक्तञ्च पायसं ।  
 कन्या द्विजा स्त्रियो भोज्या दत्तयेच्च तथा रचनात् ॥  
 नामाहेमाङ्गरागाद्यैस्तिलभृग्यैः समौक्तिकैः ।  
 पूज्या भगवती शक्त्या सर्वकामप्रसिद्धये ॥  
 मन्दा सुनन्दा कनका उभा दुर्गा त्रमाद्रती ।  
 गौरी योगेश्वरी श्वेता नारायणी सुनाशिका ॥  
 अम्बिकेति च नामानि यावन्नाहादशक्रमात् ।  
 सङ्गीर्त्तयन्ति उत्थाय ये नवा धौतकल्पयाः ॥  
 भवन्ति नरशार्दूल पृथिव्यां धनसङ्गलाः ।  
 एतानि पथि संग्रामे रिपुपीडासु नित्यशः ॥  
 समुत्तरति दुर्गाणि चर्चिकेति सुरोत्तम ।



व्रतानां प्रवरं कार्यं ऋषं वा पादमेव वा ॥  
मासं वापि प्रदातव्यं श्रावणादिकमेण तु ।

इति देवीपुराणोक्तं नन्दाव्रतं ।

—००(१,००)—

गौरमुख उवाच ।

देवकी नाम राजेन्द्र देवकस्याभवत् सुता ।  
अनपत्या तपस्तेपे पुत्रार्थं किल भामिनी ॥  
भार्या सा वसुदेवस्य सत्यधर्मपरायणा ।  
न च तुष्यति गोविन्द तपस्तामाह भार्गवः ॥

भार्गव उवाच ।

किमर्थन्तप्यते भद्रे तपः परमदुःस्करं ।  
कीर्त्तयस्वाभिलषितो वद कुत्र तवेषितं ॥

देव्युवाच ।

अपुत्राहं हिजयेष्ठ पतुर्मेनास्ति सन्ततिः ।  
साहमारोध्य गोविन्दं पुत्रमिच्छामि शोभनं ॥  
तपस्तावत्करिष्यामि परमेण समाधिना ।  
यावदाराधितो विष्णुर्दास्यत्परिमतस्वरं ॥

भार्गव उवाच ।

गोविन्दाराधने यत्नो यदि ते कुलनन्दनि ।  
तदिदं व्रतमास्थाय तीघयस्व जनार्दनं ॥

प्रथमे कार्तिकेष्वाङ्गि सम्प्राप्ते देवकि स्वयं ।  
 पञ्चगव्यकृतस्नानः पञ्चगव्यकृताशनः ॥  
 बाणपुष्पैः समभ्यर्च्य वासुदेवमजस्विभुं ।  
 दत्त्वा च चन्दनं धूपं परमान्नं निवेदयेत् ॥  
 घृतं निवेदयेद्दिप्रे गृह्णीयाच्च ततो व्रतं ।  
 अद्यप्रभृत्यहं मासं विरतः प्राणिनां बध्नात् ॥  
 असत्यवचनात्स्त्रेयान्मधुमांसादिभक्षणान् ।  
 स्वपन् विबुधान् गच्छंश्च स्मरिष्याम्यहमभ्युतं ॥  
 परापवादं पेशुन्यं परपौडाकरस्तथा ।  
 सञ्छास्य देवतायज्ञनिन्दामन्यस्य वा भुवि ॥  
 न वक्ष्यामि जगत्यस्मिन् पश्यन् सर्वगतं हरिं ।  
 अत्यन्तो वाधिशक्तोऽपि यस्मिन् बौद्धं यशस्विनि ॥  
 कुर्वीत नियमन्तस्य त्यागोधर्मोपहृदये ।  
 कृत्वैवं पुरतो दिग्गो निर्द्वीतिं पापतः शुभे ।  
 नैवेद्यं स्वयमश्रीयात्स्त्रीनो नित्यमुदस्रत् ॥  
 मार्गशीर्षे तथा मासि जातीपुष्यैर्जनाह्ननं ।  
 समभ्यर्च्य पुनर्धूपं चन्दनञ्च निवेदयेत् ॥  
 परमान्नञ्च देवाय त्रिपाय च पुनर्घृतं ।  
 दत्त्वा तथैव गृह्णीयान्नियमः योऽस्य रोचते ॥  
 तथैव नक्तं भुञ्जीत नैवेद्यं कुलनन्दिनि ।  
 सर्वेष्वेव चतुर्मासं पञ्चगव्यादिकं समं ।  
 पुष्पधूपपहारेषु त्रिंशो दक्षिणासु च ॥  
 स्नानप्राशनयोः साम्यन्तथैव नक्तभोजनं ।

अर्चयेत् प्रतिमासञ्च येः पुष्पैस्तानि मे शृणु ॥  
 ये च धूपाः पदातव्या नैवेद्यान्त्र यत्तथा ।  
 बाणस्य जातिकुसुमैः तथैव च मुकुन्दजैः ॥  
 कुन्दातिमुक्तकै रक्तै रक्तवीरैश्च रक्तकैः ।  
 श्वेतैः शुभ्रैर्मल्लिकायास्तथा मल्लिकया ततः ॥  
 दधिपद्माभकेतव्याः पद्मरक्तात्पलेन च ।  
 क्रमेणाभ्यर्चितो विष्णुर्द्वादति मनसि स्थितं ॥  
 कार्तिके मार्गशीर्षे च धूपं पीपे च चन्दनं ।  
 माघफाल्गुनचैत्रेषु दद्याद्विष्णोस्तथा गुरुं ॥  
 वैशाखादिषु मासेषु त्रिषु देवकि भक्तितः ।  
 कर्पूरं देवदेवाय गुग्गुलुं यावणादिषु ॥  
 कार्तिकादिषु मासेषु परमात्रं शुभे त्रिषु ।  
 कामारं माघपूर्वेषु यवान्त्र यतस्त्रिषु ॥  
 घृतस्तिलान् जलघटं हिरण्यमथवा व्रतो ।  
 प्रतिमासं तथा दद्याद्वाह्मणाय शुभव्रते ॥  
 यथोक्तनियमानाञ्च ग्रहण प्रतिमासिकं ।  
 कुर्वन् जगत्पतिर्विष्णुः प्रीयतामिति मानवः ॥  
 योषिदप्यमलप्रज्ञा व्रतमेतद्यथाविधि ।  
 करोति मासान् सकलान् अवाप्नोति मनोरथान् ॥  
 व्रतेनाराधितो विष्णुरनेन जगतःपतिः ।  
 ददात्यभिमतान् कामान् क्षिप्रकालेन भामिनि ॥  
 धान्यं यशस्यमायुष्यं सौभाग्यारोग्यदस्तथा ।  
 व्रतमेतत् प्रियतरं व्रतेभ्योऽव्यक्तजन्मनः ॥

व्रतेनानेन शुहात्मा पदेनेकेन साधवः ।  
 सुखदृश्यो न सन्देहो दीपेन वाग्यतस्मितः ।  
 कायवाङ्मनसा बुद्ध्या करोत्येतन्महाव्रतं ।  
 शुहानाममर्त्तो देवो दृश्य एव जनार्दनः ॥  
 तस्मिन्नेकाद्यचित्तानां प्राणिनां वरवर्णिनि ।  
 प्राप्नुवन्ति प्रशब्देन मुक्तिभाजो विभूतयः ॥  
 यथा कल्पतरुं प्राप्य यद्यदिच्छति चेतसा ।  
 तत्तत्फलमवाप्नोति यथा सम्प्राप्य तं विभु ॥  
 शुभव्रतमिदं तस्मान् महापातकनाशनं ।  
 पाराधनाय कृण्वन् कुरु देवकि पावनं ॥  
 तस्मिन्वीर्यं हृषीकेशो नूनं यास्यति दर्शनं ।  
 दृष्टे चाभिमतं यत्ते तदशेषं भविष्यति ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तं विष्णुदेवकीव्रतं ।

—000—

नारद उवाच ।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि ज्ञानदानव्रतक्रियाः ।  
 हेमस्ते शिशिरे चैव यथा पूज्यो जनार्दनः ॥  
 मार्गशीर्षे तथा पुष्ये माघे चैवाथ कार्गुणे ।  
 यत्कलं प्राप्यते पुंभिः प्रसज्य सधुघातनं ॥

ब्रह्मोवाच ।

नष्टं वक्तुं महापुण्यं हेमस्तशिशिरावधौ ।  
 पत्रं संपूजितः क्षणः कस्येनापि प्रतुष्यति ॥

मार्गशीर्षे सिते पक्षे प्रतिपत्प्रभृतिक्रमात् ।  
 व्रतचर्यां विष्टङ्गीयाद्देमन्ते शिशिरात्मिकां ॥  
 आस्वाभ्यर्च्य हृषीकेशं प्रणिपत्य नरो व्रतो ।  
 वरश्च याचयेद्भक्त्या चराचरगुरुन्ततः ॥  
 भगवन् चपला ह्येषा प्राणिनां प्राणसंस्थितिः ।  
 ध्रुवं मृतमर्मनुष्याणां दुर्विज्ञेयं कदा भवेत् ॥  
 अतस्त्वां प्रार्थयाम्येव वरमेतदधीक्षज ।  
 यथा खण्डं व्रतं न स्यात् प्रसन्ने त्वयि मे विभो ॥  
 व्रतमेतन्मया देव गृहीतन्तव गामनात् ।  
 जीवतोपि मृतस्यापि परिपूर्णं भवत्विति ॥  
 एवमभ्यर्च्य लोकेशं चराचरगुरुं हरिं ।  
 ततो नु ब्रूहिमान् कुर्यात् व्रतचर्यां च शिशिरीं ॥  
 मार्गशीर्षस्य कृष्णादौ प्रतिपत्प्रभृतिं नरः ।  
 अर्हिसकः क्रियायुक्तः प्रातःस्नाथी सदा भवेत् ॥  
 अर्चयेद्देवदेवेशं मध्याह्ने केशवं सदा ।  
 विलिप्य कुङ्कुमाशीरं चन्दनेनाथ शक्तिः ॥  
 पूजयेन्मालतीपुष्पैर्भृङ्गबिल्वादिकेन च ।  
 दीपं सङ्कोज्ज्वलं दद्यात्सद्युतं गुग्गुलुन्दहेत् ॥  
 शाब्दीदनं दधियुतं नैवेद्यं सन्निवेदयेत् ।  
 प्रश्ने च तथा भक्त्या शिरसा केशवं महुः ॥  
 अनेन विधिना चैव संपूज्य गरुडध्वजं ।  
 ॐ नमः केशवायेति जपेदष्टोत्तरं शतं ॥  
 एवं पञ्च सुराध्यक्षं मार्गशीर्षं ततो नरः ।

अकार्ष्यपात्रे भुञ्जीत दत्त्वा भिक्षां दिजाय च ॥  
 वर्जयेन्मधुमांसानि सदाध्वानं कुभीजनं ।  
 अमृतस्तेयपारुथं सम्पर्कं पतितैः सह ॥  
 गवाञ्जिकं सदा दद्यात् क्षितिगायो भवेन्निशि ।  
 सदाभिवन्दे दश्वत्थङ्गुं ज्ञानप्रदन्तथा ॥  
 एव पृथे तथा माघे फाल्गुने च नरो व्रती ।  
 व्रतं समापयेच्छक्या नच कर्षेत् कथञ्चन ॥  
 हेमन्तांशुतुरोसामान व्रतेतानेन नर्त्तयेत् ।  
 विगेषोऽत्र विधिस्तत्र द्वादशो च पृथक् शृणु ॥  
 मार्गशीर्षे शुभे पक्षे एकादश्यामुपीषितः ।  
 पूजयेज्जगतामोगं केगवं कल्पपापहं ॥  
 द्वादश्यां स्यापशेष्टिवं क्षीरेण पुरुषीचामं ।  
 रमेग सर्पिषा चैव पञ्चगव्येन च क्रमात् ॥  
 द्वादश्यां स्यापशेष्टिवं पृथे माघे च फाल्गुने ।  
 नैवेद्यं पुष्पधूपान्मैः पूजयेच्च ततो हरिं ॥  
 प्रणम्य गिरमा देवं केगवं केशिपातन ।  
 भक्त्या कृताञ्जलिभूत्वा याचयेत् पशुवं वरं ॥  
 मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनञ्च केगव ।  
 यत्पूजितं मया देव परिपूर्णोऽदक्षमे ॥  
 एवमभ्यर्च्य देवेशं पण्डित्य पुनः पुनः ।  
 ततोऽनुभोजयेद्दिपान भक्त्या दद्याच्च दक्षिणां ॥  
 अनेनेव विधानेन पृथे माघे च फाल्गुने ।  
 सनाम्ना प्रथमेद्दीशं प्रार्थयेत् पूज्य वै हरिं ॥

भोजयेत् द्विजान् भूयस्तेभ्योदद्याच्च दक्षिणां ।  
 ब्राह्मिवस्त्वितिलान् माष्येर्दद्यान्मासक्रमेण तु ॥  
 द्वादश्यां देवमुद्दिश्य द्विजाग्रभ्यश्च भक्तितः ।  
 समाष्येव व्रत भक्त्या नाम्ना त्वनरकत्ररः ॥  
 न गच्छेन्नरकं याति यत्रास्ते गरुडध्वजः ।  
 व्रतमेतन्महापुण्यं व्रतेभ्योऽभ्यधिकां मुने ॥  
 दुःस्करञ्चलचिन्तानां महापातकनाशनं ।  
 सुरापो ब्रह्महा स्तेयो गुरुगामो सदावृत्ती ॥  
 कृत्वा नरो व्रत भक्त्या सद्यः पापात् प्रमुच्यते ।  
 महर्षिभिः सदाचीर्णं भृगतिभुजगोत्तमैः ॥  
 ज्ञानार्थिभिर्महाभागैर्व्रतमेतत् प्रपूजितं ।  
 स्वर्गन्ती ह्यनद्यं प्राप्तः सम्पूज्य गरुडध्वजं ॥  
 व्रतेनानेन देवेगो दक्षाद्यैर्ऋषिभिस्तुतः ।  
 भार्गवेणावनिं प्राप्य अक्रूरेण ययातिना ॥  
 परितोय सुरयोष्टं व्रतेनानेन केगवं ।  
 सदा नमं परं स्थानं वेणुवं मुक्तिलक्षणं ॥  
 अनेनार्च्यं विधिं भक्त्या सम्प्रप्ते सनकादिभिः ।  
 सर्वकामप्रदं पुण्यं नाम्ना त्वनरकं व्रतं ॥  
 कृत्वा श्रुत्वा तथा ध्यात्वा न गच्छेन्नरकं नरः ।

इति विष्णुरहस्योक्तमनरकव्रतं ।

—०००—

चेनादिचतुरी मासान् कृते बुद्ध्यादिपितं ।

व्रतास्ते मणिकन्द्यान्नववस्त्रममन्वितं ॥  
 तिलपात्रं हिरण्यश्च ब्रह्मलोके महीयते ।  
 कल्पास्ते भूपतिर्नालमानन्दव्रतमुच्यते ॥

इति मन्स्यपुराणीक्तमानन्दव्रतं ।

पौर्णमास्यां तथापाढ्यां शिव संपूज्य यत्नतः ।  
 उपवीतं शिवे दद्याच्छिवभक्तांश्च भोजयेत् ॥  
 पुनरेव च कार्त्तिक्यां पूज्य गन्धं क्षमापयेत् ।  
 यतीनां दक्षिणां दत्त्वा सूत्रवस्त्रादिपूर्विकां ॥  
 यः कुर्यात्सकृदप्येवं चातुर्मास्यां पवित्रकं ।  
 कल्पक्रीटिसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥  
 पुण्यक्षयात्परिभ्रष्टः चतुर्विदः प्राजायते ।  
 इच्छया तु भवेद्राजा गुरुरूपसमन्वितः ॥

इति शिवधर्मोक्तं शिवोपवीतव्रतं ।

— ०००(१००) —

प्रतिमासं प्रवक्ष्यामि शिवव्रतसत्तमं ।  
 धर्मकार्थभोक्षार्थं नरनार्याद्विद्विनां ॥  
 पुष्ये मासे तु मन्मसि यः कुर्यात्सकृन्नोजनः ।  
 सत्यवादी जितक्रोधः शान्तिगाधूमगौरमैः ॥  
 पक्षयोरष्टर्षी यत्रादुपवासेन यर्त्तयेत् ।  
 द्विसंश्रमर्षं येदीशमन्त्रिकार्यंश्च भक्तितः ॥



भूमिशय्याञ्च मासान्ते पीर्णमास्यां वृतादिभिः ।  
 कृत्वा स्नानं महापूजां शिवे यत्रात् प्रकल्पयेत् ॥  
 नैवेद्यं यावकप्रस्थं क्षीरमिदं निवेदयेत् ।  
 भोजयित्वा द्विजानष्टौ शिवभक्तान् सद्चिणान् ।  
 शिवे गोमिथुनञ्चैव कपिलञ्च निवेदयेत् ॥  
 अलङ्कृत्य सुरूपञ्च तस्य पुण्यफलं शृणु ।  
 सूर्यकीटिपतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ॥  
 रुद्रकन्यासमाकीर्णमहावृषभसंयुतैः ।  
 सद्गीतनृत्यवाद्यैश्च अप्सरीगणसेवितैः ।  
 चामरैर्धूपमाल्यैश्च स्तूयमानः सुरासुरैः ॥  
 त्रिनेत्रः शूलपाणिश्च शिवैश्वर्यसमन्वितं ।  
 गच्छेच्छिवपरं रम्यं यथास्ते शङ्करः स्वयं ॥  
 यावत्तद्ग्रीमसङ्घानं तत्पशस्तिः कुलेषु च ।  
 तावदयुगसहस्राणि सुखी शिवपरं व्रजेत् ॥  
 त्रिःसप्तकुलजैः सहैर्भोगान् भुङ्क्ते यथेष्टतान् ।  
 ज्ञानयोगं समासाद्य स तत्रैव विमुच्यते ॥  
 इत्येष वः समाख्यातः संसारार्णववर्तिनां ।  
 शिवमोक्षक्रमोपायः शिवाश्रमनिषेविणां ॥  
 माघमासे तु संप्रप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनं ।  
 कृशरां वृत्तसंयुक्तां भुञ्जानः सञ्चितेन्द्रियः ॥  
 सोपवासश्चतुर्दश्यां भवेदुभयपक्षयोः ।  
 शिवाय पीर्णमास्यान्तु प्रदद्याद्दृतकम्बलं ॥  
 कृष्णं गोमिथुनञ्चाप्यसुरूपं विनिवेदयेत् ॥

शेषं कृत्वा यथोद्दिष्टं पूर्वोक्तान्तु फलं लभेत् ।  
 इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः शिखिसंयुतैः ॥  
 गत्वा शिवपुरं रम्यं भुक्त्वा भोगान् यथेगितान् ।  
 सम्प्राप्तिं फाल्गुने मासे यः कुर्यान्नक्तभोजनं ॥  
 श्यामाकक्षीरनीवारैर्जितक्रोधोजितेन्द्रियः ।  
 चतुर्दश्यामथाष्टम्यामुपवासरतो भवेत् ॥  
 पौर्णमास्यां महास्नानं पञ्चगव्यष्टतादिभिः ।  
 वस्त्री कायादिमृद्भिश्च गोमूत्रगोमयादिभिः ॥  
 त्वग्भिश्च क्षीरहज्जाणां धात्रीगन्धादिभिस्तथा ।  
 दद्याद्द्वीमिथुनं भक्त्या ताम्नाभं परमेष्ठिने ।  
 शेषमन्यद्यथोद्दिष्टं प्राप्नोति सुमहत् फलं ।  
 पञ्चरागप्रतीकाशैर्विमानैर्गजसंयुतैः ॥  
 गत्वा शिवपुरं रम्यं पूर्वोक्तं लभते फलं ।  
 चैत्रमासे तु सम्प्राप्तिं यः कुर्यान्नक्तभोजनं ।  
 पिष्टकं पयसा युक्तं भुञ्जानः संयतेन्द्रियः ॥  
 दद्याद्द्वीमिथुनश्चाल पाटलं समलङ्कृतं ।  
 शिवायातिसुरूपञ्च शेषं पूर्ववदाचरेत् ॥  
 पुष्यरागप्रभैर्यनिर्दिव्यैश्च रथसंयुतैः ।  
 गत्वा शिवपुरं रम्यं दुःस्वप्नापं त्रिदशरपि ॥  
 वैशाखे मासि सम्प्राप्तिं यः कुर्यान्नक्तभोजनं ।  
 पिष्टकं पयसा युक्तं भुञ्जानः सञ्चितेन्द्रियः ।  
 गौष्ठशायी शिवध्यायी निशायां वस्त्रमेकष्टकं ॥  
 नियमञ्च यथोद्दिष्टं सामान्यं सर्वमाचरेत् ।

वैशाखपौर्णमास्याञ्च कुर्यात् स्नानं घृतादिभिः ॥

शिवायालङ्कृतं श्वेतं दद्याद्दोमिश्रणं शुभं ।

हंसकुन्देन्दुवर्णाभैर्महायानैरलङ्कृतैः ॥

श्वेतवृषभसंयुक्तैः प्रयातोश्वरमन्दिरं ।

सर्वाभिः सर्वरूपाभिः स स्त्रीभिः परिवारितः ॥

नीलोत्पलसुगन्धाभिः क्रीडते कालमलयं ।

ज्येष्ठे मासे तु सम्प्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनं ॥

शाल्यत्रं पयसा युक्तमाज्यक्षीरेण संयुतं ।

वीरामनो निगर्हं स्याद्दिवा गामनुगच्छति ॥

अनुपविश्यावस्थानं वीरासनं ।

द्वित्तकारी गवां नित्यमहङ्कारविवर्जितः ।

पौर्णमास्याञ्च पृथ्वीक्तं कुर्यात् स्नानादिकं विधिं ॥

देयं गोमिश्रणञ्चात्र धूम्रवर्णमलङ्कृतं ।

नीलोत्पलसमप्रस्थैर्महायानैर्मनीरमैः ॥

महासिंहनिबद्धे क्रीडते कालमलयं ।

आषाढमासे सम्प्राप्ते यः कुर्यान्नक्तभोजनं ॥

भूरिखण्डास्संमिश्रं सक्तुं दद्यात्सगोरसं ।

दद्याद्दोमिश्रणं गौरं शिवायालङ्कृतं शुभं ॥

सामान्यञ्च विधिं कुर्यात् सर्वं वै प्रव्य चोदितं ।

इति पुष्यमासोदितं ।

शुद्धम्फटिकमङ्गागैर्यानैः सारमवाहनैः ।

अग्निमादिगुणैर्युक्तः शिववद्विचरेत् स्वयं ॥

सम्प्राप्ते यावणे मासि यः कुर्यान्नक्तभोजनं ।

शीरषशिकभक्तेन सर्व्वभूतहिते रतः ॥  
 श्वेताम्बपादपोगङ्गा च दद्याद्दाम्भियुनं शिवे ।  
 सामान्यमविलं कृषादिधिना यत् प्रकीर्त्तितं ॥  
 सचिन्निवैमहापातं विचित्राश्वनिशो जितेः ।  
 गत्वा शिवपुरन्द्विच्य पूर्व्वीकं लभते फलं ॥  
 प्राप्ते भाद्रपदे मासे च कुर्यात्प्रतभोजनं ।  
 द्रुतशेषस्तु भञ्जानो व्रतम् नार्थिती दिवा ॥  
 रात्रौ वासतने वामे सर्व्वभूतान् कम्पकः ।  
 नीलस्करं शेषमात्रं शिवाय विनिवेदयेत् ॥  
 त्रिगाकरकरपथ्येर्विज्ञोद्व्यंशभनेः ।  
 चक्रवाकममायुते त्रिमानेः सार्व्वकामिके ॥  
 गत्वा शिवपुरं रथमभरासरवान्दिव ।  
 क्रीडते महाभोगैर्यावदाहतसंप्रव ॥  
 श्यामानमायुते माषियः कर्वाव्रतभाजनं ।  
 घृताशनपशुभ्रान् पसन्नात्मा जितेन्द्रियः ॥  
 शृपभ नीलवर्णात्सरोदेशं समव्रतं ।  
 तिसुच्य भगवत्ये गामिहा समलङ्कृतं ।  
 विधिप्रं हि पूर्व्वीकं तस्मै सम्पाचर ॥  
 प्राणान्तं च परं स्थानं पर्यानि शिवः शिवः ।  
 स्वच्छमौक्तिकसद्गं शिन्दुनालापगोमिते ॥  
 जीवं जीवकमयुते विभीनेः सार्व्वकामिके ।  
 प्रक्रीडते महाभोगैर्यावदाहतसंप्रव ॥  
 शभे च आर्त्तिके मासे च कुर्यात्प्रतभोजनं ।

श्रीरोदनञ्च भुञ्जीत सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥  
 दद्याद्दोमिथुनञ्चात्र कपिलं कञ्जलप्रभं ।  
 पूव्वीक्तविधिवत् कृत्वा शिवतुल्यः प्रजायते ॥  
 कल्पानलग्निष्वाप्रखैर्महायानैर्मनोरमैः ।  
 महासिंहकृताटोपैः शिववशेष्टते सुखो ॥  
 मार्गशीर्षे शुभे मासे यः कुर्यान्नक्तभोजनं ।  
 यवान्नं पयसा युक्तं भुञ्जानः सञ्जितेन्द्रियः ॥  
 दद्याद्दोमिथुनं दिव्यपाण्डुरं समलङ्कृतं ।  
 शिवाय शेषं पूव्वीक्तविधिना समपकमेत् ॥  
 सितपद्मानिभैर्यानिः श्वेताश्वरथसंयुतैः ।  
 गत्वा शिवपुरं दिव्यं शिवतुल्यबली भवेत् ॥  
 अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा दया ।  
 विद्वानश्चाग्निहवनं भूगय्या नक्तभोजनं ॥  
 पक्ष्यीरूपवासेन चतुर्दशशमीं क्षिपेत् ।  
 इत्येवमादिनियमैराचरेत् शिवव्रतं ॥  
 शिवभक्ता तु या नारी भवं सा पुरुषः भवेत् ।  
 स्त्रीत्वमत्युत्तमं सा चेत् काङ्क्षति शृणुयाद्भृतं ॥

इति विश्वधर्माक्तं शैवमहाव्रतं ।

—000—

कार्तिके तु शुभे मासे एकभक्तेन वक्ष्येत् ।  
 क्षमाऽहिंसादिनियमैः संयता व्रतचारिणी ॥  
 गुडान्पिप्पिष्याकां मासान्ते विनिवेदयेत् ।

षष्टम्याश्च चतुर्दश्यां लषवासरतो भवेत् ॥  
 इन्द्रनीलप्रतीकाशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः ।  
 वर्षाणामयुतं सायं रुद्रलोके महीयते ॥  
 यथावत्सर्वलोकेषु भोगानासाद्य यत्नतः ।  
 क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् यथेष्टं पतिमाप्नुयात् ॥  
 इत्येवं सर्व्वमासेषु विधिस्तुत्यः प्रकीर्त्तितः ।  
 एकभक्तोपवासस्य फलन्तु सदृशं विदुः ॥  
 क्षमा सत्यम्या दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।  
 शिवपूजाग्निहोमश्च सन्तोषस्नेहभाषण ॥  
 सर्व्वं व्रतेश्वयं धर्मः सामान्यो दशधाऽस्मृतः ।  
 मार्गशीर्ष शुभे मासे षषष्टं सुनिर्मलं ।  
 गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥  
 षषयुक्तैर्महाया नैरप्सरोगणसेवितैः ।  
 वर्षायुतगतं सायं शिवलोके महीयते ॥  
 पुष्ये मासि पिनाकश्च शूले कृत्वा पिनाकिने ।  
 गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य शिवाय विनिवेदयेत् ॥  
 ताम्रकास्यादिपात्रे वा दत्त्वा दद्यात्पिनाकिने ।  
 महापुष्पकयानेन दिव्यगन्धप्रभावतः ।  
 वर्षाणामयुतं सायं रुद्रलोके महीयते ॥  
 रथश्चाश्वयुतं माघे दीपमालाप्रगोभितं ।  
 पिष्टं लिङ्गममायुक्तं कृत्वायतनमानयेत् ॥  
 महारथोपमैथ्यानैः श्वेताश्वरथमयुतैः ।  
 वर्षायुतं गतं सायं शिवलोके महीयते ॥

फाल्गुने प्रतिमां पैथीं कृत्वा चरुसमन्वितां ।  
 गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य स्थापयेद्दीश्वरालयं ।  
 यानैरप्रतिमैर्द्दिव्यैर्गायनाद्यसमाकुलैः ॥  
 वर्षायुतशतं सायं शिवलोके महीयते ।  
 चैत्रे भवकुमारश्च कृत्वा पुष्पैरलङ्कृतं ।  
 स्नाप्य पात्रे यथोक्ते च आनयेच्छिवमन्दिरं ॥  
 शरदिन्दुप्रतीकाशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः ।  
 वर्षायुतशतं सायं रुद्रलोके महीयते ।  
 तन्दुलाढकपिष्टेन कृत्वा कैलासपर्व्वतं ।  
 ईश्वरोमासमायुक्तं सर्व्वधातुविभूषितं ॥  
 कन्दरैर्विविधं चित्रं लक्षणप्रस्थसंयुतं ।  
 सर्व्वरत्नसमायुक्तं स्थापयेद्दीश्वरालये ॥  
 कैलासव्रतमित्येवं वैशाख्यां यः समाचरेत् ।  
 कैलासकल्पयानैः स शिवलोके महीयते ॥  
 लिङ्गपिष्टमयङ्गुत्वा ष्येष्ठमासे सवेदिकं ।  
 भक्त्या संपूज्य गन्धाद्यैर्वस्त्रयुग्मे न वेष्टयेत् ।  
 उपशोभाविशेषैश्च तत्र जागरमाचरेत् ॥  
 प्रभाते ध्वजशङ्खाद्यैः शिवाय विनिवेदयेत् ।  
 शुक्लस्फटिकसङ्काशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः ।  
 वर्षकोटिशतं सायं शिवलोके महीयते ।  
 ष्टहं पिष्टमयङ्गुत्वा आषाढेऽपिष्टमूमिकं ॥  
 सर्व्वबीजरसैश्चापि संपूर्णं शुभलक्षणं ।  
 गृहोपकरणैर्युक्तं सुगन्धीदूखलादिभिः ।

सर्वरत्नसमायुक्तं दासीशय्याद्यलङ्कृतं ।  
 एतैः पिष्टमयैः साद्यैः प्रदीपाद्युपशोभितं ॥  
 सर्वभक्तसमाकीर्णं गन्धमास्यैरलङ्कृतं ।  
 श्वेतरत्नामितैः पीतैर्ध्वजवस्त्रैः सुशोभितं ॥  
 चतुर्विधेनसंयुक्तश्चरुणा सर्षपेषु तु ।  
 षाषाढे पीर्षमास्यान्तु गृहं स्थाप्य शिवायतः ॥  
 सर्वोपकरणोपेतं प्रणिपत्य निवेदयेत् ।  
 शतभूमेर्महायानैर्विमानैः सार्वकामिकैः ॥  
 वर्षकोटिशतं सायं रुद्रलोके महीयते ॥  
 सुधाधातुसमाकीर्णं विचित्रध्वजशोभितं ।  
 निवेदयीत सर्वाय त्रावणे तिलपर्वतं ॥  
 स्वच्छेन्द्रनीलसङ्घाशैर्यानेरप्रतिमैः शुभैः ।  
 वर्षकोटिशतं सायं रुद्रलोके महीयते ॥  
 कृत्वा भाद्रपदे मासे शोभितं धान्यपर्वतं ।  
 वितानध्वजच्छत्राद्यैः शिवाय विनिवेदयेत् ॥  
 दिवाकरकरप्रख्यैर्महायानैः सुशीभनैः ।  
 वर्षकोटिसहस्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ ,  
 कृत्वा षाषयुजे मासि विपुलं शिखिपर्वतं ।  
 सुवर्णवस्त्रसंयुक्तं शिवाय विनिवेदयेत् ।  
 सुविचित्रैर्महायानैर्वरभोगसमन्वितैः ॥  
 वर्षकोटिशतं सायं रुद्रलोके महीयते ।  
 सर्वधान्यसमायुक्तं सर्वबीजरमादिभिः ॥  
 सर्वधातुसमायुक्तं सर्वरत्नोपशोभितं ।



शृङ्गैश्चतुर्भिः संयुक्तां वितानच्छत्रशोभितं ॥  
 गन्धमाल्यैस्तथा धूपैः प्रदीपैश्चातिशोभितं ।  
 विचित्रैर्नृत्यगीतैश्च शङ्खवीणादिभिस्तथा ॥  
 मङ्गलघोषैस्तथा पुण्यैर्मङ्गल्यैश्च विशेषतः ।  
 महाध्वजाष्टकयुतं विचित्रकुसुमोज्ज्वलं ॥  
 नगेन्द्रमेरुनामानं त्रैलोक्याधारमुत्तमं ।  
 तस्य मूर्द्ध्नि शिवं कुर्यात्सर्वदेवसमायुतं ॥  
 दैत्यगन्धर्वभूताश्च सिद्धयज्ञगणास्तथा ।  
 विद्याधराः पुरोनागा ऋषयश्च विशेषतः ॥  
 शालिपिष्टमयं लिङ्गं रूपहृत्वा विचक्षणः ।  
 देयञ्च दक्षिणे हस्ते शूलं विदग्धपूजितं ॥  
 एवं सर्वेषु देवेषु कुर्यादन्नं यथाक्रमं ।  
 शिवस्य महतीं पूजां कृत्वा चरुसमन्वितां ॥  
 पूजयेत्सर्वदेवांश्च दग्धदक्ष्णं बलिं हरेत् ।  
 व्रतास्ते भोजयेत्यथात् शिवभक्तान् सदक्षिणान् ॥  
 सर्षीरन्ध्रसमायुक्तं यथाविभवकल्पितं ।  
 निवेदयेत् रुद्राय कार्तिके नगमुत्तमं ॥  
 यः कुर्यात्सकृदप्येवं तस्य पुण्यफलं शृणु ।  
 देवतुल्यगणो भूत्वा गुणरूपसमन्वितः ॥  
 शिववद्विचरेन्नित्यं निश्चलं भुवनं सदा ।  
 सदागमेषु यत्पुण्यं कथितं मुनिभिः पुरा ।  
 तत्पुण्यं कीटिगुणितं प्राप्नुयात्तत्र संशयः  
 महारत्नप्रभैर्यानैः सर्वैरन्नसमन्वितैः ॥

गीतलृत्यादिवाद्येषु प्रपञ्चरीभिः समन्वितैः  
सूर्यकोटिसमप्रख्यैर्विमानैर्मरुसम्भवेः ॥  
नरनारीसमाकीर्णैर्गन्धवाहैः शुभेस्तथा ।  
देषदानवगन्धर्वैस्तूयमाना गणादिभिः ॥  
स्वच्छन्दा सर्व्वगा भूत्वा प्रयातीश्वरमन्दिरं ।  
कल्पकोटिशतं दिव्यं मोदते सा महत्तपाः ॥  
एवं सर्व्वेषु देवेषु भोगान् भुङ्क्ता यथेष्टान् ।  
पुण्यक्षयादिहागत्य राजानं पतिमाप्नुयात् ॥  
सुरूपा सुभगा नित्यं भवतीश्वरभाविता ।

इति शिवधर्मीक्तमपरशैवमहासतं ।

— ००० —

श्रीकृष्ण उवाच ।

चैत्रारभ्य पितृन्स्तीयञ्जलभारं प्रपातयेत् ।  
वर्षान्तिष्ठतसंपूर्णान्द्यादृक्निकां नवां ॥  
एतद्धारव्रतं नाम सर्व्वेद्देगहरं परं ।  
कान्तिभोग्यजननं सपत्नीदर्प्यनाशनं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं धाराव्रतं ।

—

देवीपुराणे ।

मार्गे रसोत्तमं दद्यादृष्टं पीबे महाफलं ।

रसोत्तमं खड्गं ।

तिलान्नाघे मुनिश्रेष्ठ सप्तधान्यानि फाल्गुने ।  
 विचित्राणि च वस्त्राणि चैत्रे दद्याद्द्विजातये ॥  
 वैशाखे द्विज गोधूमान् ज्यैष्ठे तोयभृतं घटं ।  
 आषाढे चन्दनं देयं सकपूर्वं महाफलं ॥  
 नवनीतं नभोमासि कृतं प्रीष्ठपदे मतं ।  
 गुडगर्करवर्णाट्यान् लड्डुकानाग्निने मुने ।  
 दीपदानं महापुण्यं कार्तिके यः प्रयच्छति ॥  
 सख्यं कामानवाप्नोति क्रमेण तु उदाहृतं ।  
 व्रतान्ते गां शुभां दद्यात् सवत्सां कांस्यदीहनीं ॥  
 मयूगां सस्त्रजं वत्स दापयेद्विधिना मुने ।  
 देवीं विरञ्चिमादित्यं विष्णुं वायुं यथाविधि ॥  
 स्वभावशुद्धो विधिवत् पूजयित्वा द्विजोत्तम ।  
 दातव्या वीतरागे तु कामक्रीधविवर्जिते ॥  
 अयाचके सदाचारे विनीते विनयान्विते ।  
 गोदानान्नाभते कामान् गोलोकेषु मनोरमान् ॥

इति देवीपुराणोक्तं मासव्रतं ।

वसिष्ठ उवाच ।

शृणु भूपाल यैर्विष्णुर्वीतेरागध्यते नरैः ।  
 नारीभिश्चापि घोरैऽस्मिन् पतिताभिर्भवाण्येव ।  
 समभ्यर्च्य जगन्नाथं वासुदेवं समाधिना ॥  
 एकमत्राति यो भक्तं द्वितीयं ब्राह्मणार्पणं ।

करोति केशवप्रीत्यै कीर्तिकं मासम्भ्रमवान् ॥  
 पूर्व्वं वयसि यत्तेन जानताजानतापि वा ।  
 पापमाचरितं तस्मान्मुच्यते नात्र संशयः ॥  
 अनेनैव विधानेन मार्गशीर्षे, पि माधवं ।  
 समभ्यर्च्य कभक्तं वै वर्णिभ्यो यः प्रयच्छति ।  
 भगवत् प्रीणनार्थाय फलन्तस्य शृणुष्व मे ॥  
 मध्ये वयसि यत्पापं योऽपिना पुरुषेण वा ।  
 कृतं तस्माच्च तेनोक्तो विमोक्षः परमात्मना ॥  
 तथा चैवैकभक्तं वै यस्तु, गोभ्यः प्रयच्छति ।  
 पुण्डरीकाक्षमभ्यर्च्य पीपमासे महीयते ॥  
 तत् प्रीणनाय यत्पापं वार्द्धके तेन वै कृतं ।  
 स तस्मान् मुच्यते राजन् पुमान् गोषिदद्यापिवा ।  
 वैमासिकं व्रतमिदं यः करोति नरेश्वर ॥  
 सविष्णुप्रीणनात् पापैर्लघुभिः परिमुच्यते ।  
 द्वितीये वत्सरे राजन् मुच्यते चोपपातकैः ॥  
 तद्वत्तृतीयेपि कृतं महापातकनाशनं ।  
 व्रतमेतन्नरेः स्त्रीभिस्त्रिभिर्मामैरनुश्रितं ॥  
 त्रिभिः संवत्सरैथैव प्रददाति फलं शृणां ।  
 त्रिभिर्मामैस्त्र्योवस्यास्त्रियिधात्पातकानृप ॥  
 त्रीणि नामानि देवस्य मीचयन्ति त्रिवार्षिकैः ॥  
 यतस्ततो व्रतमिदं त्रिविक्रममुदाहृतं ।  
 सर्व्वं पापप्रशमनं केशवाराधनं परं ॥

इति विष्णुधर्मोक्तं त्रिविक्रमव्रतं ।

सुमन्तुरवाच ।

समभ्यर्च्य जगन्नाथं देवमर्कमथापि वा ।  
 एकमश्नाति यो भक्तं द्वितीयं ब्राह्मणार्प्यणं ॥  
 करोति भास्करप्रीत्ये कार्तिक मासमाप्तवान् ।  
 पूष्ववयमि यन्नेन जानता जानतापि वा ॥  
 पापमाचरितं तस्मान् मुच्यते नात्र संग्रहः ।  
 अनेनैव विधानेन मार्गशोर्षे विभाकर ॥  
 समभ्यर्च्य एकभक्तं विप्रेभ्यो यः प्रयच्छति ।  
 भगवत्प्रीणनार्थाय फलन्तस्य शृणुष्व मे ॥  
 मध्ये वयमि यत्पापं घोषिता पुरुषेण च ।  
 कृतं तस्माच्च तेनोक्ती विमोक्षः परमात्मना ॥  
 तथाचै वैकभक्तञ्च यथ विप्राय यच्छति ।  
 दिवाकरं समभ्यर्च्य वीधे मामि महोपते ॥  
 तद्वत् तृतीयेपि कृतं महापातकनाशन ।  
 व्रतमेतन्नरैस्त्रोभिस्त्रिभिर्मर्मासैरनुष्ठितम् ॥  
 त्रिभिः संवत्सरैरेव प्रददाति फलं नृणां ।  
 त्रिभिर्मर्मासैस्त्रावस्थास्तु त्रिविधात्पातकानृप ॥  
 त्रोग्णि नामानि देवस्य मीचयन्ति त्रिवार्षिकान् ।  
 यतस्ततो व्रतमिदं त्रिविक्रममुदाहृतम् ।  
 सर्वभूतप्रशमनं भास्कराराधनं परम् ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं सौरत्रिविक्रमव्रतम् ।

चेत्रादिचतुरी मासान् जले कुर्यादयाचितं ।  
ज्यैष्ठाषाढे तथा गाधे पौषे वा राजसत्तम ॥  
व्रतान्ते मणिकं दद्यादन्नवस्त्रमन्वितं ।  
तिलपात्रं हिरण्यञ्च ब्रह्मलोको महोयते ।  
तदस्ते राजराजः स्याद्धारिव्रतमिहोच्यते ॥

इति पञ्चपुराणे वारिव्रतं ।

— ००० —

इति श्रीमहाराजाधिराजश्रीमहादेवस्य समस्तकरणा  
धीश्वरसकलविद्याविशारदश्रीहेमाद्रिवि-  
रचिते चतुर्वर्गचिन्तामणौ  
व्रतखण्डे मासतानि ।

## अथोन्नतिशोऽध्यायः ।

—०००—

### अथ ऋतुव्रतानि ।

—०—

उपक्रियायै सुहृदामिदानीं  
हेमाद्रिसुरिः प्रकटीकरोति ।  
ऋतुव्रतत्रये णिमकम्पसम्पत्-  
संपादयित्रीं दुरितापहन्त्रीं ॥  
मार्कण्डेय उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि घग्मूर्त्तै रञ्जनं परं ।  
वसन्तं पूजयेन्नित्यं ह्रीं मासौ मुनिपुंगव ॥  
फलैः पुष्पैः कषायैस्तु, शीघ्रैः शीघ्रैश्च पूजयेत् ।  
मधुरेण मद्याराजं प्राष्ठत्काले ऋतुश्चरेत् ॥  
अनेन पूजयेन्नित्यं शरदं लवणेन च ।  
कटुस्त्रेण च हेमन्तं तिलैः शिगिरं तथा ॥  
नत्ताशनस्तथा तिष्ठेत्पञ्चकं वर्जयेद्रुचं ।  
ब्राह्मणान् भोजयेत्तपि प्रभूतवसनादिभिः ॥  
संवत्सरमिदं कृत्वा व्रतं परमपावनं ।  
अश्वमेधमवाप्नोति राजसूयश्च विन्दति ॥  
सर्वान् कामानवाप्नोति नात्र कार्थ्या विचारणा ।  
फलमक्षयमाप्नोति व्रतस्यास्य करोत्तम ॥

चेत्रे समारभ्य सिते तु षष्ठीं  
 संपूजयेद्यस्त्वृत्पटकमेकं ।  
 कृतीपवासः स नरो यथोक्तं  
 लभेत् फलं शाश्वतमेव शीघ्रं ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्ता घणमूर्तिव्रतं ।

—०—

कृत्वैकभक्तं हेमन्ते माघमासे तु यन्वितः ।  
 माघान्ते च रथं कुर्याच्चित्रवस्त्रोपशोभितं ॥  
 श्वेतैश्चतुर्भिः संयुक्तं सृषभैः समलङ्कृतं ।  
 शोभितं ध्वजमालाभिश्चित्रचामरदर्पणैः ॥  
 तण्डुलाटकपिष्टेन लिङ्गं कृत्वा सर्वदिक् ।  
 विलम्ब्य रथमध्ये तु पूजयेत् कृतलक्षणं ॥  
 तद्रात्रौ राजमार्गं च शङ्खभेर्यादिभिः स्वनैः ।  
 भ्रामयित्वा ततः पश्चाच्छिषायतनमानयेत् ॥  
 तत्र जागरपूजाभिः प्रदीपाद्युपशोभितैः ।  
 प्रेक्षणीयप्रदानेय क्षपयेत् शनैर्निर्गतां ।  
 प्रभाते स्नापनं कृत्वा तद्गङ्गामासु भोजनं ॥  
 हीनाम्भकपणानासु यथाशक्या च दक्षिणां ।  
 रथं शोभासमायुक्तं शिवाय विनिवेदयेत् ॥  
 भुक्त्वा च वाग्ध्वैः सार्धं प्रणम्येयं गृहं व्रजेत् ।  
 प्रवरः सर्वदानानामस्मिन् धर्मैः समाप्यते ॥  
 व्रतं शिवरथं नाम सर्वकामार्थसाधकं ।



सर्व्वव्रतषु यत्पुण्यं (१) सर्व्वयज्ञेषु यत्फलं ॥

सर्व्वं शिवरथेनैव तत्पुण्यं सकलं भवेत् ।

सूर्यायुतप्रतीकाशैर्विमानैः सार्व्वकामिकैः ।

त्रिःसप्तकुलजैः सार्द्धं शिवलोके महीयते ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्त्तं शिवरथव्रतं ।

—०००—

पुलस्त्य उवाच ।

वर्जयेद्यस्तु पुष्पाणि हेमन्तशिगिरे व्रती ।

पत्रत्रयञ्च फाल्गुन्यां कृत्वा शक्त्या 'व काञ्चनं ॥

दद्याद्द्वै कालवेलायां (२) प्रीयेतां शिवकेशिबौ ।

शिरःसौगन्धजननं सदानन्दप्रदं नृणां ॥

कृत्वा परं पदं याति सौगन्धव्रतमुत्तमं ।

इति पद्मपुराणोक्तं सौगन्धव्रतं ।

—००—

पुलस्त्य उवाच ।

यद्येभ्यनन्देद्विप्रे वर्षादिचतुर स्मृतून् ।

ष्टतधेनुप्रदोऽन्ते च स परं ब्रह्म गच्छति ॥

वैश्वानरव्रतं नाम सर्व्वपापप्रणाशनं ।

इति पद्मपुराणोक्तं वैश्वानरव्रतं ।

( १ ) सर्व्वप्रायेषु यत् पुष्पमिति पुस्तकाकारे पाठः ।

( २ ) दद्याद्द्वै कालवेलायामिति पुस्तकाकारे पाठः ।

व्रतखण्डं २८ अध्यायः । ] चेमाद्रिः ।

८११

पवित्रतोययुक्तैर्यैः कुम्भैः यीष्णे शिवोपरि ।  
गालयेद्यः पयोधारां स ब्राह्मणपदमश्नुते ॥

इति शिवरहस्योक्तज्जलनिकाव्रतं ।

—•—

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-  
धीश्वरसकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते  
चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे  
ऋतुव्रतानि ।

—

अथ त्रिंशोऽध्यायः ।

—०००@०००—

अथ संवत्सरव्रतानि ।

—०००—

विद्वन्मनःकैरव कोरकाणां  
शशाङ्कसन्दोषितिरद्भुतो यः ।  
हेमाद्रिणा प्राणभृतां जिताय  
वितन्यते तेन समान्नतौषं ॥

पुलस्त्य उवाच ।

मत्तमष्टशरित्वा तु गवा सर्षं कुटुम्बिने ।  
हैमशकं विशूलश दद्याद्विप्राय वाससी ॥  
प्रणम्य भक्त्या शक्तश्च प्रीयतां शिवकेशवी ।  
एतदेवव्रतं नाम महापातकनाशनं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं दशव्रतं ।

—०—

पुलस्त्य उवाच ।

सन्ध्यामीनं नरः कृत्वा समान्ते घृतकुम्भकं ।  
वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥  
शोकं सारस्वतं याति पुनरत्रैव जायते ।  
एतन्सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदायकं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं सारस्वतव्रतं ।

यस्तु संवत्सरं पूर्णमेकभक्तो भवेन्नरः ।  
 अहिंसः सर्वभूतेषु वासुदेवपरायणः ॥  
 नमोऽस्तु, वासुदेवायेत्यह्यष्टगतं जपेत् ।  
 पौण्डरीकस्य यज्ञस्य ततः फलमवाप्नुयात् ॥  
 दशवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ।  
 तत् क्रियादिषु वागत्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ॥  
 इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तमेकभक्तव्रतं ।

—००(१००)—

पुलस्त्य उवाच ।

काल्पोत्तरेण शम्भोरघतः केशवस्य च ।  
 यावदष्टं पुनर्दद्याच्चित्तं जलघृतस्य च ॥  
 स सर्वपापनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ।  
 राजा भवति सम्भूतः सर्वभीमा महेश्वरः ।  
 एतत् अद्वाव्रतं नाम बहुकल्याणकारकं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं अद्वाव्रतं ।

—०००(१,०००)—

पुलस्त्य उवाच ।

अष्टवर्षं भास्करं गङ्गां प्रणम्येकत्र वाग्यतः ।  
 एकभक्तं नरः कुर्यादष्टमेकं विमत्सरः ॥  
 व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्य वेनुचयाश्रितं ।  
 वृत्र हिरण्ययं दद्यात्सोऽश्वमेधफलं सभेत् ॥

दिवि देवविमानस्थो गीयतेऽप्सरसाङ्गणैः ।  
 एतत्कीर्त्तिव्रतं नाम भूमिकीर्त्तिप्रदायकं ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तं कीर्त्तिव्रतं ।

घृतेन स्नापनं कृत्वा केशवस्य शिवस्य च ।  
 ब्राह्मणो भास्करस्यापि गौर्या लम्बोदरस्य च ॥  
 अक्षतेषु शुभं कुर्यात्पद्मं गोमयमण्डले ।  
 समान्ते हेमकमलं तिलधेनुसमन्वितं ॥  
 समा वर्षं ।

शुद्धमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयत ।  
 सामगाययतश्चेत् सामव्रतमिहीयते ॥

इति पद्मपुराणोक्तं सामव्रतं ।

ताम्बूलभक्षणादौ या गौरीपत्रं ददाति च ।  
 गौरीपत्रं ताम्बूलपत्रं ।

पूगचूर्णसमायुक्तं स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ॥  
 वर्षस्यान्ते तु सौवर्णं फलपत्रन्तु राजतं ।  
 मुक्ताफलमयं चूर्णं सम्पूर्णं वा प्रयच्छति ॥  
 न सा प्राप्नोति दीर्भाग्यं न दीर्गन्धां सुखस्य वा ।  
 एतत्पत्रव्रतं नाम गौरीलोकप्रदायकं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं पत्रव्रतं ।

पञ्चामृतेन स्नापनं कृत्वा विष्णोः शिवस्य वा ।  
 वक्त्रान्ते पुनर्दद्याच्चैतुं पञ्चामृतैर्युतं ॥  
 विप्राय कनकं शङ्खं वस्त्रयुग्मञ्च पाण्डुरं ।  
 स्वर्गलोकप्रदं दिव्यं धृतिव्रतमिदं स्मृतं ॥

इति विष्णुपुराणोक्तं धृतिव्रतं ।

— ००० —

पुलस्त्य उवाच ।

वर्जयित्वा पुमाणांसमब्दान्ते गोप्रदी भवेत् ।  
 तद्दधेममृगं दत्त्वा सोऽश्वमेधफलं लभेत् ।  
 अहिंसाव्रतमितुरक्तं कल्पान्ते भूपतिर्भवेत् ॥

इति पद्मपुराणोक्तमहिंसाव्रतं ।

—

मुखवासं परित्यज्य समान्ते गोप्रदी भवेत् ।  
 यथाधिपत्यमाप्नोति मुखव्रतमिच्छीच्यते ॥

इति पद्मपुराणोक्तं मुखव्रतं ।

—

यश्च नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतं ।  
 एकान्तरितनक्ताशी समान्ते हृषसंयुतं ।  
 दद्यादिति शेषः ।

स वैष्णवं पदं याति नीलव्रतमिदं स्मृतं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं नीलव्रतं ।

( १०८ )

वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यफलकुम्भदः ।  
 शिवलोके वसेत्कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतं ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तं प्राप्तिव्रतं ।

—000—

सन्ध्यादीपप्रदो यस्तु समां तैलञ्च वर्जयेत् ।  
 समान्ते दीपकान् दद्याच्चक्रं शूलञ्च काञ्चनं ॥  
 वस्त्रयुग्मञ्च विप्राय स तेजस्वी भवेद्दिह ।  
 रुद्रलोकमवाप्नोति दीप्तिव्रतमिदं स्मृतं ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तं दीप्तिव्रतं ।

—000—

प्राकाशाशी समां दद्याच्चेतुमन्ते पयस्विनीं ।  
 शकलोकमवाप्नोति शक्रव्रतमिदं स्मृतं ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तं शक्रव्रतं ।

—000—

यश्चैकभक्तेन समां क्षिपेच्चेतुं वृषान्वितां ।  
 धेनुं तिलमयीं दद्यात् पदं याति शाङ्करं ।  
 एतद्ब्रह्मव्रतं नाम पापशोकविनाशनं ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तं रुद्रव्रतं ।

—000(300)—

हे सङ्घे पलानान्तु माहिषाख्यन्तु यो दहेत् ।  
 देवि संवत्सरं पूर्णं स मे नन्दितनोभवेत् ।

पलं नव समारभ्य पयः प्रतिदिनं दहेत् ॥

इति पद्मपुराणोक्तं शम्भुव्रतं ।

—०००—

दक्षिणायाञ्च यो मूर्त्तौ पायसं सधृतञ्च वै ।

निवेद्येदर्द्धमेकं सीऽपि नन्दिसमी भवेत् ॥

ततः संवत्सरे पूर्णं सीपवासोऽथ जागरं ।

कृत्वाभ्यर्च्य महेशानं महास्नानादिभिर्हृतं ॥

इत्यादिप्रायः पृथिवीं शय्यां गाञ्च पयस्विनीं ।

नन्दिना चरितं पुण्यं व्रतं पातकनाशनं ।

कृतं संवत्सरं भक्त्या तावदेव निवेदितं ॥

इति स्कन्दपुराणोक्तं महेश्वरव्रतं ।

—०००(१)०००—

संवत्सरन्तु द्वी भुङ्क्ते नित्यमेव ह्यतन्द्रितः ।

निवेश्य पित्रदेवेभ्यः पृथिव्यामेकराज्यवेत् ॥

यो भुङ्क्ते पृथिव्यामित्यन्वयः ।

इति पद्मपुराणोक्तं भुभाजनव्रतं ।

—

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-

धीश्वरमकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते

चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे

संवत्सरव्रतानि ।

—



अथ एकत्रिंशोऽध्यायः ।

—०००—

अथ प्रकीर्णकप्रलानि ।

—०००—

हेमाद्रिरुनिद्रसुरारिभक्ति-

रधीतवेदाखिलधर्मवेदः ।

अग्नेयलोकोद्धारणावतीर्षः

प्रकीर्णकं वर्षयति क्रमिष ॥

श्वेतद्वीपे सुखासीनं देवदेवं जगद्गुरुं ।

वासुदेवं जगन्नाथं स्थितिसंहारकारकं ॥

प्रशिपत्य महादेवं चराचरगुरुं हरिं ।

शरीरारोग्यमैश्वर्यं कामदेवसमः पतिः ॥

सुखावबोधने नित्यमवियोगश्च तेन वै ।

तद्दानं वा व्रतं वापि पूजामाराधनादिकं ॥

सकृन्मोः प्रोवाच शनकैर्भर्तारमसितेक्षणा ।

भगवन् देवदेवेश लोकानामनुकम्पया ।

प्रष्टुं त्वां किञ्चिदिच्छामि दयां कुर्वन्ममोपरि ॥

व्रतं कथय मे किञ्चिद्रूपसौभाग्यदायकं ।

कृतेन येन देवेश सर्व्वतीर्थफलं लभेत् ॥

येन पुत्राश्च पौत्राश्च गृहं सर्व्वसम्बद्धिदं ।

शरीरारोग्यमैश्वर्यं कामदेवसमःपतिः ॥

सुखावबोधने नित्यमवियोगश्च तेन वै ।

तद्दानं वा व्रतं वापि तीर्थमाहात्म्यमिव च ॥  
 येनानुष्ठितमात्रेण सर्वसिद्धिर्भवेत् ध्रुवं ।  
 कथयस्व सुरश्रेष्ठ गुह्याङ्गुष्ठतरं मम ॥  
 विष्णुरुवाच ।

कथयामि न सन्देहो व्रतानामुत्तमं व्रतं ।  
 प्रद्युम्नायापि नाख्यातं पुत्रप्रीत्या व्रतं त्विदं ॥  
 तेजस्विनां यथादित्यः पक्षिणाङ्गरुजो यथा ।  
 यथा नदीनां गङ्गा च वर्षानां ब्राह्मणो यथा ।  
 तथा व्रतमिदं श्रेष्ठं कथ्यते तव भामिनि ॥  
 न गङ्गा न कुरुक्षेत्रं न काशी न च पुष्करं ।  
 पावनानि महाभागे यद्येदं व्रतमुत्तमं ॥  
 गौर्यां देव्या कृतं पूर्वं शङ्करेण महात्मना ।  
 रामेण सीतया साङ्गं दमयन्त्या नलेन च ।  
 कृष्णेन पाण्डवैः सर्वैः कृतं व्रतमुत्तमं ॥  
 रत्नया मेनया चापि पौलोम्या सत्यभामया ।  
 शान्तिष्ठय्याप्यरुन्धत्या सर्वश्या देवदत्तया ॥  
 गायत्र्या चैव सावित्र्या व्रतं श्रेष्ठमुत्तमं ।  
 अग्न्याभिश्चैव नारीभिर्ह्येव व्रतमिदं कृतं ॥  
 तस्मात्तेऽहं करिष्यामि सर्वपापप्रणाशनं ।  
 विष्णुप्रीतिकरं रम्यं व्रतानां प्रवरं शृणु ॥  
 ब्रह्महा मुच्यते पापासुरापो रुक्महारकः ।  
 गुरुभार्याभिगामी च एतेषां सङ्गमी च यः ॥  
 मानकूटस्तुलाकूटः कन्यामृगविक्रयी ।

अगम्यागमनो यस्तु मांसाशी वृषलीपतिः ॥  
 भूमिहर्ता कूटमात्मी कन्यादूषयिता च यः ।  
 एभिः सर्वैर्महापापैर्मुच्यते नात्र संशयः ।  
 तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमं ॥  
 काञ्चनाख्या पुरी नाम व्रतं त्रैलोक्यपावनं ।  
 शुक्लतृतीया कृष्णा च एकादश्यंश्च पूर्णिमा ॥  
 संक्रान्तिर्वा महाभागे कुहुर्वा चाष्टमी तिथिः ।  
 पर्वस्वेषु दातव्या काञ्चनाख्या पुरी शुभा ॥  
 व्रती स्नात्वा तु पूर्वार्द्धे नद्यादौ विमले जले ।  
 सृत्तकालश्चनं कार्यं विधिनानेन तत् प्रिये ॥  
 उद्धृतासि धरे पूर्वं विष्णुना क्रोडरूपिणा ।  
 लोकानामुपकाराय वन्दिता मित्रिकामदा ।  
 तस्मात्त्वं वन्दिता पापं हर मेऽनेकजन्मजं ॥

सृत्तकालश्चनमन्त्रः ।

आपोययं सर्वं योनिर्विष्णुना निर्मिताः स्वयं ।  
 सान्निध्यं तीर्थसङ्घिताः कुरुध्वं साम्प्रतं मम ॥  
 उदकाभिमन्त्रणं ।

अनेन विधिना स्नात्वा गृहभागव्य सद्गती ।  
 नालपेत् पिशुनान् चण्डान् पापिनः पापसङ्गिनः ॥  
 पाषण्डिनो विकर्मस्थान् देवब्राह्मणनिन्दकान् ।  
 प्रक्षाल्य पाणिपादश्च कुर्याद् वै दन्तधावणं ॥  
 उपवासस्य नियमं कुर्यान्नक्तस्य वा पुनः ।  
 शङ्खप्रवरमादाय हेमयुक्तं ततो जलं ॥

नमो भगवते वासुदेवायेत्यभिमन्त्र्य च ।  
 वन्दे तीर्थं शुचिभूर्त्वा हरिरित्यक्षरं जपम् ॥  
 शमीवृक्षमयी वेदी चतुःस्तम्भैः समन्विता ।  
 चतुर्हस्तप्रामाणा तु कार्य्या चैव सुशोभना ॥  
 वस्त्रेणावेष्टितास्तम्भा वितानवरमण्डिताः ।  
 पुष्पमालान्विताः कार्य्या दिव्यरूपाधिवासिताः ॥  
 मध्ये तु मण्डलं कार्य्यं पद्माख्यं वर्णकैः शुभैः ।  
 मण्डलस्य तु मध्ये तु भद्रपीठं सुशोभनं ॥  
 आसनं तत्र विन्यस्य कमलं तत्र विन्यसेत् ।  
 तस्योपरि न्यसेद्देवं लक्ष्म्या युक्तं जनार्दनं ॥  
 अग्रे तु स्थापयेत् कुम्भं जलपूर्णं सुशोभनं ।  
 क्षीरसागरनामास्य कल्पितव्यं प्रयत्नतः ।  
 सामान्यैकपक्षाः कार्य्या आत्मवित्तानुसारतः ॥

चत्वारिपलान्यस्यामिति वीप्सायां बहुव्रीहिः समवर्णवत् ।  
 वीप्सायाश्च गृहाणां गृहाणि च पततः षोडशमध्य एकमिति  
 समदशतावद्वाङ्मणविधानात् । मध्यगृहञ्चाष्टमाचार्य्यगृहत्वात् ।  
 तत्प्रकारस्तद्वत् । बहिःप्रकारो बहिर्गृहवत् । एवं चतुश्च-  
 त्वारिंशदधिकशतपलं हेम । तावच्च रूप्यं(१) ।

रीप्या ह्यस्या अधोभूमिः शिखरं काञ्चनं तथा ।

(१) आदर्शपुस्तकेषु पतद्गणसमुच्चत् पूर्णं कतिचित् पाठाः पतिताः प्रतिभा-  
 मि, अन्यथा पतद्गणसमुच्चत् पूर्णं यादृश पदसमुच्चं आदर्शपुस्तकेषु दृष्टं तस्यैव  
 चतुष्पक्षा इति शब्दाभावात् चत्वारि पलान्यस्यामिति कृतं पतिशरच्च न सधोचोर्णं  
 भवितुमर्हति ।

स्तम्भा रत्नमयाः कार्थ्या दशैरसप्तसन्निताः(१) ।

प्राकारं कारयेद्द्वैमं रौप्यं पैष्टमथापि वा ॥

पैष्टं सीसं ।

मोदकान् स्थापयेद्विद्वान् प्रासादशिखरेषु च ।

समस्तादृष्टयेत्तान् पुरीं वस्त्रैः सुशोभनैः ॥

तदये कदलीस्तम्भैस्तोरणं परिकल्पयेत् ।

पुष्पशीभानुकर्त्तव्या विभवादिस्तरेण च ॥

चतुश्चरणिकैर्विप्रैः प्रतिष्ठाप्या पुरी शुभा ।

तस्या मध्ये न्यसेद्विष्णुं हैमलक्ष्मणा समन्वितं ॥

नेत्रे रत्नमये कार्थ्ये दशनाथ सुभूषिताः ।

सुक्ताफलमयं तत्र भूषणं परिकल्पयेत् ॥

अङ्गं स्वर्णमयं कार्थ्यं शङ्खचक्रगदायुतं ।

पञ्चासृतेन संस्त्राप्य गन्धपुष्पैः प्रपूजयेत् ॥

ब्राह्मणो वैदिकैर्मन्त्रैः पुराणोत्तैस्तथोत्तरैः ।

वासुदेवाय पादौ तु गुल्फी संकर्षणाय च ॥

त्रैलोक्यजननायेति जानुनी पूजयेद्दरेः ।

जानु त्रैलोक्यनाथाय गुह्यं ज्ञानमयाय च ॥

कटिं दामोदरायेति उदरं विष्णुरुपिणे ।

पद्मनाभाय नाभिन्तु उरः श्रीवत्सधारिणे ॥

कण्ठं कौस्तुभनाभाय आस्यं यज्ञसुखाय च ।

द्वैत्यान्तकारिणे वाङ्ग स्वनाम्ने चायुधानि च ॥

शिखाशैशाणमन्त्रेषु देवदेवस्य पूजयेत् ।

(१) पाठोःपञ्चादशं हीपच न चमीचीनः ।

त्रियं स्वमन्त्रैः संपूज्य लोकपालांस्ततोऽर्चयेत् ॥  
 नवग्रहाश्च पूज्या वै होमं तेषान्तु कारयेत् ।  
 दुर्गागणपती पूज्यौ तयोर्होमं प्रकल्पयेत् ॥  
 अग्रे नैवेद्यमतुलं द्युपयेद्दत्तपाचितं ।  
 पायसं घृतपूरांश्च मोदकान् पूपकांस्तथा ॥  
 देशकालीह्वान्यत्र फलादीनि प्रकल्पयेत् ।  
 दीपान् दशदिशं दद्यात् पार्श्वतः पुष्पचर्चितान् ॥  
 घृतेन तु विशालाक्षि मूलमन्त्रेण दापयेत् ।  
 कुम्भाः षोडश कर्त्तव्याः श्वेतवस्त्रैर्विभूषिताः ॥  
 मिष्टान्नेन समायुक्ताः सहिरण्याः पृथक् पृथक् ।  
 पक्वानानि तु ह्वानि षोडशैव प्रदापयेत् ॥  
 फलानि तत्र देयानि नानारूपाणि सुन्दरि ।  
 दीपांस्ताम्रमयांश्चैव तेषु कुम्भेषु विन्यसेत् ॥  
 ब्राह्मणान् भूषयेत्तैस्त्रैरलङ्कारैर्यथाविधि ।  
 सपत्नीकान् प्रयत्नेन जपं कुर्यात्तु षोडश ॥  
 सहस्रश्रीर्षा इत्यादि कश्चिकाभिस्तु मन्त्रयेत् ।  
 त्रिणुं मत्वा ब्राह्मणस्तु लक्ष्मीरूपा स्त्रियांऽर्चयेत् ॥  
 छत्रञ्चोपानहौ चैव वस्त्राण्याभरणानि च ।  
 फलानि सप्तधान्यश्च भोजनश्च पथेप्सितं ।  
 दातव्यन्तु सभार्ष्वाणां त्रिणुमं प्रीयतामिति ॥  
 तत्र आचार्य उच्यते प्रहृष्टे गीतमङ्गले ।  
 धृत्वा बाहू यजमानं देवसमीपमानयेत् ॥  
 श्वेतवस्त्रेण नेत्रे तु यजमानस्य ये यसे ।

आचार्यः सर्ववित्प्राप्तो बन्धयेत्सदस्येन च ॥  
 आसन्ननेत्रे सुप्राञ्च आचार्यस्तु इदं वदेत् ।  
 सर्वकामप्रदां पश्य काञ्चनाख्यां पुरीमिमां ॥  
 तरवस्त्रयुतां रम्यां दुःखदोर्भाग्यनाशनीं ।  
 एवमुक्त्वा महाभागे वस्त्रमुत्सर्जयेत्ततः ॥  
 पुष्पाञ्जलिं ततः क्षिप्त्वा स पश्येन्नगरीं शुभां ।  
 दृष्ट्वा तां नगरीं देवि यजमानः पुरोहितः ॥  
 सौवर्णपात्रमादाय रीप्यन्ताम्नमथापि वा ।  
 अथवा शङ्खमादाय पात्रालाभे तु सुन्दरि ॥  
 पञ्चरत्नं क्षिपेत्तत्र जलगन्धांस्तथा फलं ।  
 सिद्धार्थञ्चाक्षतं दूर्वां रोचनाञ्च दधि प्रिये ॥  
 ततस्त्वर्घाः प्रदातव्या मन्त्रेणानेन सुव्रते ।  
 सन्मीनारायणी देवौ भक्तिपूतेन चेतसा ॥  
 जानुभ्यां धरणीं गत्वा मन्त्रमेनमुदीरयेत् ।  
 स्वर्णस्य निर्मिता देवी विष्णुना शङ्करेण च ॥  
 पार्वत्या चैव गायत्र्या स्कन्दवैश्रवणेन च ।  
 यमेन पूजिता देवी धर्मस्य विजिगीषया ॥  
 सौभाग्यं देहि पुत्रांश्च धनं रूपञ्च पूजिता ।  
 गृह्णाणार्घ्यं मया दत्तं देवि सौख्यं प्रयच्छ मे ।  
 एवमर्घ्यं तदा दत्त्वा दीपान् प्रज्वलायेत्ततः ॥  
 जागरं तत्र कुर्वीत गीतनृत्यादिना तथा ।  
 विष्णोर्जागरणे पुण्ये शतयज्ञफलं लभेत् ॥  
 प्रभाते विमले जाते कृत्वा नित्यादिपूजनं ।

आचार्यं पूजयेत्तद्वस्त्रै राभणैस्तथा ॥  
 सपत्नीकं सपुत्रञ्च यत्नात् सम्भोज्य पूजयेत् ।  
 शय्या सीपस्करा तस्मै वस्त्रचन्दनसंयुता ॥  
 प्रदेशा गुरवे तत्र सर्व्वोपस्करसंयुता ।  
 तां पुरीं काञ्चनीं दद्यान्मन्त्रे णानेन सत्रती ॥  
 लक्ष्मीनारायणी देवी सर्व्वं कामफलप्रदी ।  
 रुक्मपुर्याः प्रदानेन यच्छतां मम वाञ्छितं ॥  
 नारायण ऋषीकेण ज्ञानज्ञेय निरञ्जन ।  
 रुक्मपुर्याः प्रदानेन यच्छ मे मुक्तिदं परं ॥  
 दत्त्वा त्वनेन मन्त्रे ण गीर्दया गुरवे ततः ।  
 तेभ्यस्तु दक्षिणां दद्यात्सन्तुष्ट्या यद्भवन्ति ते ॥  
 एवं क्षमापयित्वा तान् प्रणम्य च पुनः पुनः ।  
 अनाथान् बधिरान् पङ्गूनभ्यांश्चैव विगृह्यतः ॥  
 गवाङ्गिकञ्च दातव्यं गोभ्यः सकृत् प्रयत्नतः ।  
 एवमुच्चारयेत्तत्र विष्णुर्मिं प्रीयतामिति ॥  
 एवं कृत्वा तु तत्सर्व्वं पारणं तत्र कारयेत् ।  
 द्रष्टैर्मित्रैः कुटुम्बैश्च पुत्रपौत्रैः समन्वितः ॥  
 एवं कृते तु यत्पुण्यं अशक्यं कश्चित्तुं मर्या ।  
 कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥  
 ब्रह्मलोकं समामाद्य व्रती भोदति ब्रह्मवत् ।  
 ब्रह्मलोकाद्ब्रह्मलोकमिन्द्रलोकमतः परं ॥  
 क्षीणलोकस्तती देवि मदीयं लोकमाप्नुयात् ।  
 तत्र भुक्त्वा तु बिस्तीर्णान् भोगान्स्त्रै लोकासुन्दरि ॥



महेहे लीयते चैव पुमान्मृततां व्रजेत् ।  
 सार्व्वभौमस्तु, रात्रा वै जायते विजुक्ते कुक्के ॥  
 य इदं शृणुयान्नित्यं वाच्यमानं व्रतस्त्रिद्वंदं ।  
 महस्त्रकुलमुदृत्य विष्णुलोके महीयते ॥  
 त्वया काञ्चनपुर्यास्थं व्रतमेतत् कृतं पुरा ।  
 व्रतप्रसादाद्ब्रह्मर्षिं लब्धस्त्रै लोकापूजितः ॥

इति गारुडपुराणोक्तं काञ्चनपुरीव्रतं ।

— ००० —

युधिष्ठिर उवाच ।

संपूर्णतां मनुष्याणां व्रतानाञ्च जनार्दन ।  
 कुरु प्रसादङ्गु द्वार्षमेतन्मो वक्तुमर्हसि ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

साधु साधु महाबाहो कुरुराज युधिष्ठिर ।  
 रहस्यानां रहस्यन्ते कथयामि व्रतोत्तमं ॥  
 संपूर्णं नाम तच्चापि व्रतं सम्यक् फलप्रदं ।  
 यस्त्रीर्णं नरनारीभिर्ष्वावत् संपूर्णकालकं ॥  
 अथश्रयन्तश्च कर्त्तव्यं संपूर्णफलकाङ्क्षिभिः ।  
 किञ्चिद्भग्नं प्रमादेन बद्धं व्रतिनां भवेत् ॥  
 तत् संपूर्णं भवेत् सर्व्वं व्रतेनानेन पाण्डव ।  
 उपद्रवैर्बद्धुभिर्महामोहाच्च पार्थिव ॥  
 यद्भस्त्रं किञ्चिदेव स्यात् व्रतं विघ्नविनायकैः ।  
 तत् संपूर्णं भवेत् सर्व्वं सत्यं सत्यं न संशयः ॥  
 काञ्चनं रीष्यकं रूपं शिल्पिना तु घटापयेत् ।

भग्नव्रतस्य योदेवस्तत् स्वरूपं मुनिर्भितं ॥  
 रूपं स्त्रीपुंसयोर्वापि प्रारब्धं तद्गतं किल ।  
 नच निष्पादितं किञ्चिद्देवात् सर्वं तथा स्थितं ॥  
 द्विभुजं पद्मजाकृत् सौम्यं प्रहसिताननं ।

द्विभुजादीनि स्त्रीपुंसयोरुपस्य विशेषणं ॥

तच्च रूपमज्ञातेषु व्रतेषु, जन्मान्तरकृतानां विष्मृतानाञ्च  
 ज्ञातत्वं तेष्वपीदं प्रायश्चित्तमिति ।

निष्पादितं शिष्टिना च तस्मिन्नेव दिने पुनः ।  
 तस्मान्नासे पुनः प्राप्ते ब्राह्मणो विधिना गृह्ये ॥  
 स्नापयेत्पयसा दध्ना घृतक्षीररसाम्बुभिः ।  
 गन्धचन्दनपुष्पैस्तु पूजयेत् कुसुमादिना ॥  
 तीयपूर्णस्य कुशस्य मुखे विन्यस्य चन्दनैः ।  
 धूपदीपाक्षतैर्वस्त्रैरस्त्रैर्बन्धुपहारकैः ॥  
 अर्घ्यं दद्याच्च तन्नाम्ना मन्त्रेणानेन पाण्डव ।  
 उपवासेन ह्येनस्य प्रायश्चित्तं कृताञ्जलिः ॥  
 शरणञ्च प्रपन्नस्य कुरुष्वाय दयां पुनः ।  
 परञ्च भयभीतस्य भग्नवर्ण्यव्रतस्य च ॥  
 कुरु प्रसादं संपूर्णं व्रतं संपूर्णमस्तु मे ।  
 तपस्विद्वं व्रतच्छिद्रं यच्छिद्रं भग्नके व्रते ।  
 तव प्रसादात्तद्देव सर्वमच्छिद्रमस्तु मे ॥

स्वाहा अमुकदेवाय नमः ।

पूर्वतो दक्षिणत उत्तरतो विधिं कुर्यात् ।

उपर्यधस्ताद्दिक्पालेभ्यो नमः ।

इदमर्धमिदं पाद्यं नैवेद्यं ते नमीनमः ।  
 एवं प्रीक्षा ततः पादौ जानुनी कटिशीर्षके ॥  
 वक्षःकुक्षी च हृदयं पृष्ठं वास्यशिरोरुहान् ।  
 ततो हिलाय कौन्तेय विधिवत् प्रतिपादयेत् ॥  
 पुत्रयेत्तस्य देवस्य ततः पश्चात् क्षमापयेत् ।  
 पूजितस्त्वं यथाशक्त्या नमस्तेऽस्तु सुरोत्तम ॥  
 ऐहिकामुष्यिकीं नाथ कार्यसिद्धिं दिशस्व मे ।  
 एवं क्षमापयित्वा तां देवमूर्त्तीं विधानतः ॥  
 स्थित्वा पूर्वमुखो विप्रो गृह्णीयाद्दर्भपाणिना ।  
 विप्रस्य हस्ते यच्छेत्तु दाता चैवोत्तरामुखः ॥  
 ब्राह्मणोऽपि प्रयच्छेत मन्त्रेणानेन तद्गतं ।  
 वाक्यं पूर्णं मनः पूर्णं काया पूर्णा व्रतेन ते ।  
 संपूर्णस्य प्रसादेन तव पूर्णा मनोरथः ॥  
 ब्राह्मणा यानि भाषन्ते अनुमोदन्ति देवताः ।  
 सर्वदेवमया विप्रा न तद्वचनमन्यथा ॥  
 जलस्य क्षीरतां नोतः पावकः सर्वभक्षतां ।  
 सहस्रनेत्रः शक्रोऽपि कर्तोविप्रैर्महात्मभिः ॥  
 ब्राह्मणानान्तु वचनात् ब्रह्महत्या प्रणश्यति ।  
 अश्वमेधफलं साद्यं प्राप्यते नात्र संशयः ॥  
 व्यासवाल्मीकिरचनात्परासरवसिष्ठयोः ।  
 गर्गगौतमधौम्यात्रिवसिष्ठाङ्गिरसां तथा ।  
 वचनाद्भारदादीनां पूर्णं भवतु मे व्रतं ॥  
 एवंविधविधानेन गृहीत्वा ब्राह्मणी व्रजेत् ।

दाता तत् प्रेरयेत् सर्व्वं ब्राह्मणस्य गृहे स्वयं ॥  
ततः पञ्चमहायज्ञान्निर्वपेद्भोजनादिभिः ।  
एवं यः कुरुते भक्त्या व्रतमेतस्मिन्नुद्युधः ॥  
तस्य संपूर्णतां याति तद्गतं यत्पुरास्थितं ।  
खण्डं संपूर्णतां याति प्रसन्ने व्रतदैवते ॥  
संपूर्णं च ततः कर्त्ता सपूर्णाद्भोभवेद्भृती ।  
भोगी भव्योऽसत्कीर्त्तिः स संपूर्णमनोरथः ॥  
स्थित्वा वर्षगतं मर्त्ये ततः स्वर्गोऽमरी भवेत् ।  
यद्येष्टचेष्टाचारी च ब्रह्मविष्णोश्शुभजितः ॥  
खर्गलोके चिरं स्थित्वा पुनर्मोक्षमवाप्नुयात् ।  
प्रायश्चित्तमिदं प्रोक्तं पुरा गर्गेण मे प्रभो ॥  
गोकुले गोकुलाकीर्णे मया वाक्ये ह्युपोषितं ।  
एवं त्वमपि कौन्तेय चर संपूर्णकं व्रतं ॥  
भक्त्यानि यानि मदमीहवशाद्दृष्टीत्वा ।  
जन्मान्तरेष्वपि नरेण समत्सरेण ॥  
संपूर्णपूजनपरस्य पुरो भवन्ति ।  
सर्व्वव्रतानि परिपूर्णफलप्रदाणि ॥ '

इति भविष्योत्तरोक्तं संपूर्णव्रतं

— ००० —

नन्दिकेश्वर उवाच ।

साधु माधु महाविप्र शिवभक्तोऽसि सुव्रत ।  
मौनं वक्ष्यामि तत्त्वज्ञ देवैरपि निषेवितं ॥

शृणु वक्ष्ये प्रवक्ष्यामि मौनं सर्वार्थसाधकं ।  
 मौनव्रतं महापुण्यं हुं हुं तत्र विवर्जयेत् ॥  
 पुंसां भोजनकाले तु वृद्धारो यदि निर्गतः ।  
 सर्वमेव सुरामांसं तस्मात्पौने विवर्जयेत् ॥  
 कर्मणा मनसा वाचा तत्र हिंसां विवर्जयेत् ।  
 मौनस्यास्य प्रभावेन देवाश्च त्रिदिवं गताः ॥  
 अहिंसकः चमो भुङ्क्ते शान्तो मौनव्रते स्थितः ।  
 अष्टमासं चरेन्नौनं यः षण्मासमथापि वा ॥  
 मासत्रयसमायुक्तो मासमेकन्तथैव च ।  
 मासार्धन्तु पुनः कुर्याद्विवसान् द्वादशाय वा ॥  
 षट्पञ्च त्रीणि एकं वा मोनी भुञ्जीत यत्रतः ।  
 समाप्ते तु व्रते तस्मिन् मौनव्रतसमाहितः ॥  
 लिङ्गं चन्दनजं कृत्वा षडङ्गैः तु प्रीक्षयेत् ।  
 गोरोचनां समारभ्य गन्धैः पुष्पैस्तु पूजयेत् ॥  
 धूपश्चागुरुकं दद्यान्नमस्कारं ततः पुनः ।  
 करपादशिरोभिस्तत् प्रणिपत्य निवेदयेत् ॥  
 आत्मवित्तानुसारेण हेमघण्टां प्रदापयेत् ।  
 शिवाग्रतो निबन्धीयाच्छिबस्यातीव वल्लभं ॥  
 शोभितां ध्वजमालाभिः पञ्चरत्नैः सुशोभनैः ।  
 पुष्पदामविलम्बैश्च बहुवर्णैरनेकधा ॥  
 विदिशासु विमानस्य कांस्यघण्टां निबन्धयेत् ।  
 बन्धीयाच्चतुरस्त्रीणि देवैकां शक्तिस्तथा ॥  
 कांस्यलोहमयीं वापि सुशोभां च निवेदयेत् ॥

शिवस्य पुरतो विप्रांश्चिवभक्तांश्च भोजयेत् ॥  
 पायसं हृतसंमिश्रं मधुमासंपरिप्लुतं ।  
 अनेकभक्तभोज्यान्नेर्लेह्यपेयसपिण्डकैः ॥  
 मञ्जुलक्ष्मीरसंमिश्रैर्मण्डकैः सुसमाहितैः ।  
 भुक्त्वा प्रव्रजितानांश्च निरुच्छेषं समापयेत् ॥  
 शक्त्या च दक्षिणां दद्याद्विस्तृष्टां विवर्जयेत् ।  
 क्रमेण जायते विप्र यस्य यस्य तु तद्भवेत् ॥  
 शिवभक्तायतो नित्यं शान्तिवाक्यं पुनः पुनः ।  
 तान्नपात्रे तु तद्विह्वं स्याप्य पुष्पैरलङ्कृतं ॥  
 शिरसाधार्यं तत्पात्रं स्वयं मौनी समाहितः ।  
 स गच्छेत् नृपमार्गेण यावत्तु शिवगोचरं ॥  
 प्रदक्षिणीकृत्य शिवे चीन् वारांश्च समन्ततः ।  
 प्रविशेन्नर्भगृहकं स्यापयेद्देवदक्षिणे ॥  
 पुनः पुनः समभ्यर्च्य गन्धपुष्पैश्च सर्व्वतः ।  
 नमस्कारैस्ततः पथात् प्रणम्य शिरसा भुवि ॥  
 मौनस्यैव विधिः प्रोक्तोमया तव महासुने ।  
 अस्य मौनस्य माहात्म्याद्देवताः शिवतां गताः ॥  
 दिव्यवर्षसहस्राणि दिव्यवर्षगतानि च ।  
 दिव्यवर्षशतं कीटि रुद्रकन्यासमाहृतः ॥  
 कीटिकीटिविमानानामसंख्याकीटिसङ्कुलैः ।  
 वज्रस्फटिकसोपानैस्तथैर्मरकतप्रभैः ॥  
 सर्व्वैर्हृमयैर्दिव्यैर्वनमासाविभूषितैः ।  
 चामरासङ्गहस्ताद्यैः कीटिकीटिनरैर्हृतैः ॥

( १११ )

दिव्यगन्धसंपूर्णैर्युक्तमालाफलाम्बितैः ।  
 एवं विधैर्विमानैस्तु भास्ते शिवपुरे सुखी ॥  
 कालक्षयादिहागत्य राजा ह्यमितविक्रमः ।  
 वक्ता च सुभगः श्रीमान् सुरूपः प्रियदर्शनः ॥  
 धर्मबुद्धियुतश्चैव सर्वशास्त्रविशारदः ।  
 एवं मौनव्रतं प्रोक्तं सर्वकामार्थसाधकं ।  
 भुवि सर्व्वासमर्थानां सुकरं प्रकटीकृतं ॥

ज्ञानमधर्मविनाशनमाद्यं  
 मोक्षमनादिमनन्तरमेकं ।  
 शिवं सर्व्वजगत्प्रभुं शान्तिकरं  
 प्रभुमव्ययसूक्ष्मसूक्ष्मतनुं ॥  
 तनुलम्बितनरमुखमालधरं  
 परिपिङ्गजटार्धशशाङ्कधरं ।  
 दशवाहुनिलोचनपापहरं  
 श्रवणोज्वलकुण्डलनागधरं ।  
 वरनूपरसृष्टसुपादधरं  
 कमलोपरि संस्थितपादतलं ॥

सुरासुरशिरश्रेणीमणिनीराजितं ह्यथे ।  
 नमः शिवाय शान्ताय कारणचयहेतवे ॥  
 पठते सर्व्वशास्त्रेषु वेदैश्चैव विशेषतः ।  
 ध्यानधारणयोगात्मा परापरविभूतये ॥  
 य इदं पठते स्तोत्रं भक्त्या चैव तु पूजयेत् ।

न तस्य पीडा कुर्वन्ति ग्रहाद्यापि ग्रहोत्तमाः ॥  
 वाचिकं मानसं पापं (१) नश्यते नात्र संशयः ।  
 इति मौनव्रतं पुष्पं यस्तनोति महेश्वरं ।  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥  
 इति शिवधर्माक्तं मौनव्रतं ।

—०००@०००—

श्रुतिस्मृतिपुराणेभ्यो यन्मया ज्ञानधारितं ।  
 तस्मै वणिम सुरश्रेष्ठ कस्यान्यस्योपदिश्यते ॥  
 ज्ञात्वा प्रभातसन्ध्यायासुपस्यूय च पिप्पलं ।  
 तिस्रपात्रन्तु यो दद्यात् स न शोचः कृताकृते ॥  
 व्रतानामुत्तमं ह्येतत् सर्वपापप्रणाशनं ।  
 पुत्रव्रतमितिख्यातं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥  
 इति भविष्योत्तरोक्तं पुत्रव्रतं ।

—००@००—

कञ्चान्ते गीयुगं दद्यात् भीजनं शक्तितः पदं ।  
 विप्राणां शाङ्करं याति प्राजापत्यमिदं स्मृतं ॥  
 शाङ्करं पदं यातीत्यन्वयः ।

इति पद्मपुराणोक्तं प्राजापत्यव्रतं ।

—०—

त्रिसन्धां पूज्य दम्पत्यसुपवामी विभूषणैः ।  
 इत्याद्या धनमाप्नोति मोक्षमिन्द्रव्रतादिह ॥  
 इति पद्मपुराणोक्तमिन्द्रव्रतं ।



गौरीसमन्वितं शम्भुं लक्ष्म्या सह जनार्दनं ।  
 राज्ञीसमन्वितं सूर्यं प्रतिष्ठाप्य यथाविधि ।  
 धूपोच्छ्रयेण सहितं(१) घण्टां पात्रेण संयुतां ॥  
 पात्रं, दीपपात्रं ।  
 यो ददाति द्विजेन्द्राणां पुण्यै रभ्यर्थं पाण्डुरैः ।  
 दक्षिणासहितं दत्त्वा प्रणम्य च पुनः पुनः ॥  
 द्विजेन्द्राणामिति बहुवचनादेव युग्मानां पृथग्दानं धूपादित्रयञ्च  
 प्रतियुग्मं ।

एतद्देवोव्रतं नाम दिव्यदेहप्रदायकं ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं देवीव्रतं ।

—०—

मासीपवासी यो दद्याद्देवैः विप्राय शोभनां ।  
 सर्वेश्वरपदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं भीमव्रतं ।

—०—

चान्द्रायणञ्च यः कृत्वा हैमचन्द्रं निवेदयेत् ।  
 चन्द्रव्रतमिदं प्रीतं चन्द्रलोकप्रदायकं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं चन्द्रव्रतं ।

—०००—

पञ्चोपवासी यो दद्याद्दिप्राय कपिलाहयं ।  
 ब्रह्मलोकमवाप्नोति देवासुरसृष्टिजितः ।

(१) श्रुत्यात्पत्रेण च चित्तमिति पुलकितकारे पाठः ।

तदन्ते राजराजः स्यात् प्रभात्रतमिदं स्मृतं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं प्रभात्रतं ।

ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा तिलराशिसम्बितं ।  
 चण्डं तिलप्रदो भूत्वा वक्रिं सन्तर्प्य च द्विजान् ॥  
 संपूज्य विप्रदम्पत्यं माख्यवस्त्रविभूषितं (१) ।  
 शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति ॥  
 पुण्यैरङ्गि दद्यात्स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवं ।  
 एतद्ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणफलदं वृणां ॥

इति पद्मपुराणोक्तं ब्रह्मव्रतं ।

—000@000—

यद्योभयमुखीं दद्यात् प्रभूतकनकान्वितां ।  
 दिनं पयोवती तिष्ठेत् सयाति परमं पदं ।  
 एतद्ब्रह्मव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं वसुव्रतं ।

अतः परं प्रवक्ष्यामि मन्दादेव्याः पद्मव्यं ।  
 येन सा प्रीयते वक्ष्ये अचिरेण महाव्रतात् ॥  
 हेमोत्थे पादुके कार्त्तये यथाशक्त्यनुसारतः ।

१) चादरेण ह्यचोचितमिति पुस्तकालय पाठः ।

भान्मदुर्वाद्यैर्विस्वपत्नैः पूज्ये तु मन्वतः ॥  
 देवीं संपूज्य भक्त्या तु स्थण्डिले प्रतिमासु च ।  
 तद्भक्त्या च विप्राय कन्यकासु निवेदयेत् ।  
 मुच्यते सर्वपापेभ्यो दुर्गालोकस्य गच्छति ॥  
 ततः क्षये महाप्राज्ञो विद्याधरपतिर्भवेत् ।  
 कालेनैवमिहायातः पृथिव्यां नृपसप्तमः ॥

इति पद्मपुराणोक्तं नन्दापदहयव्रतं ।

— ००० —

सप्तराजोषिती दद्यात् छतकुम्भं द्विजातये ।  
 वरव्रतमिदं प्रोक्तं ब्रह्मलोकप्रदायकं ॥

इति पद्मपुराणोक्तं वरव्रतं ।

एकभक्ता च सप्ताहं गौरिणीरत्र भोजयेत् ।  
 संपूज्य पार्वतीं भक्त्या गन्धपुष्पविलेपनैः ॥  
 ताम्बूलसिन्दूरवरेनीरिकेलफलेन च ।  
 प्रीयतां कुसुदा देवीं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥  
 एकैकां पूजयेद्देवीं सप्ताहं यावदेव तु ।  
 पुनश्च सप्तमे प्राप्ते ताः सप्तैव निमग्नयेत् ।  
 बह्व्यः सम्भोजयित्वाश्च यथाशक्त्या विभूषणैः ।  
 भूषयित्वा मास्यवस्त्रैः कर्षवेष्टाङ्गुलीयकैः ॥  
 कुसुदा माधवी गौरी भवानी पार्वती उमा ।  
 प्रम्बिका चैतिः संपूज्या दर्पणं दापयेत् पृथक् ॥

ब्राह्मणं पूजयेत्त्वेकं वाच्यं सम्पन्नमस्तु मे ।  
सप्तसुन्दरकं नाम व्रतं पापहरं शुभं ।  
कृत्वा प्राप्नोति सौन्दर्यं सोभाग्यमतुलं तथा ॥

इति भविष्योत्तरोक्तं सप्तसुन्दरकव्रतं ।

नन्दिकेश्वर उवाच ।

अतः परमिदं गुह्यं ब्रूयामि मुनिसत्तम ।  
पुण्यातिशयसंयुक्तं सर्वदेवैरनुष्ठितं ॥  
ब्रह्मणा विष्णुना देव्या स्कन्देन्द्रेण यमेन च ।  
वरुणादित्थसोमाम्निमरुद्वनदनारदैः ॥  
धर्मस्त्रीशुक्लनक्षत्रैर्विलोहितशनैश्चरैः ।  
विश्वामित्रवसिष्ठानिष्ठहृत्पतिबुधादिभिः ॥  
श्वेतागस्त्यदधीषाद्यैः सर्वैश्च मुनिसत्तमैः ।  
भार्गवात्रिमहाकालैश्छेत्स्वरगणाधिपैः ॥  
हृषवासुम्निकर्कोटकुलिकानन्ततक्षकैः ।  
शङ्खपद्ममहापद्मैरन्येषां महोरगैः ॥  
सिद्धैर्यक्षैः किंपुरुषैर्वसुभिश्च महात्मभिः ।  
अश्वरोदैत्यगन्धर्वैरक्षोभूतगणैरपि ॥  
शिवो गतिर्यथा प्राप्ता सर्वगत्यतिशायिनी ।  
मया शिवप्रसादेन तथा विधिपरं शृणु ॥  
सितचन्दनतोयेन स्नाप्य लिङ्गं विशेष्य च ।  
श्वेतैर्विजसितैः पद्मैः संपूज्य प्रक्षिपत्य च ।

पङ्कजे विमले सोमि निष्छिद्रे पुष्पिते वने ॥  
सोमे रम्ये ।

मध्ये केसरलालस्य स्वाप्य लिङ्गं कनौयसं ।  
पङ्क, हमात्रं विधिवत्सर्व्वं गन्धमयं शुभं ।  
स्वाप्य दक्षिणामूर्त्तौ तु विश्वपत्रैः समर्चयेत् ॥  
दक्षिणामूर्त्तिसमीपे ।

अगुरुं दक्षिणे पाष्णं पश्चिमेन मनःशिलं ।  
उत्तरे चन्दनं दद्याद्दरितालञ्च पूर्व्वतः ॥  
शुभगन्धैश्च कुसुमैर्विचित्रैश्चैव पूजयेत् ।  
धूपं कण्ठागुरुं दद्यात्कष्टतश्चापि गुग्गुलं ॥  
बासांसि चापि सूक्ष्माणि विकाशानि नवानि च ।  
पायसं छतसंयुक्तं छतदीपांश्च कारयेत् (१) ॥  
सर्व्वं निवेद्य मन्त्रेण ततो गच्छेत् प्रदक्षिणं ।  
प्रणम्य भक्त्या देवेशं स्तुत्वा चान्ते क्षमापयेत् ॥  
सर्व्वोपहारसंयुक्तं तच्च लिङ्गं निवेदयेत् ।  
शिवाय शिवमन्त्रेण दक्षिणामूर्त्तिमाश्रितः ॥  
दक्षिणामूर्त्तिमाश्रितो यस्तस्मै शिवाय ।

अनेन विधिना देवाः सर्व्वं देवत्वमा गताः ।  
देवी देवीत्वमापन्ना स्तन्मः स्वामित्वमागतः ॥  
इन्द्रश्च देवराजत्वं गणाश्च गणताङ्गताः ।  
एवं योऽर्चयेत् लिङ्गं पद्मे गन्धमयं शुभं ॥  
सर्व्वं पापविनिर्मुक्तः श्रितमेवाभिमगच्छति ।

(१) रापने दिनि च्छित् पाठः ।

एतद्भूतोत्तमं गुह्यं शिवलिङ्गं महाव्रतं ।  
भक्तस्य ते मयाख्यातं न देयं यस्य कस्यचित् ॥

इति शिवधर्मोत्तरोक्तं शिवलिङ्गव्रतं ।

— ००० —

युधिष्ठिर उवाच ।

देवदेव महाभाग बालानां हितकाम्यया ।  
वर्षापनविधिं ब्रूहि राज्ञामपि विशेषतः ॥

श्रीकृष्ण उवाच ।

पितृकर्मसमुद्भूतः पारागर्थी महामुनिः ।  
गत्वा प्रयागं सत्तीर्थं गङ्गायमुनयोस्तटे ॥  
कृत्वा स्नानञ्च विधिवत् कृत्वापि पितृतर्पणं ।  
नत्वा तु माधवं देवं दृष्ट्वा तत्र महामुनिं ॥  
सनत्कुमारं योगीन्द्रं सत्यलोकाधिपतिं ।  
तं प्रणम्य यथान्यायं मुनिः कालोसमुद्भवं ॥  
भूजितस्तेन विधिवत् कथायुक्ते मनीहराः ।  
कथान्ते तु महाभाग मुनिः पप्रच्छ सद्गुरुं ।  
श्यामः सत्यवतीस्रगुः सर्वलोकाहिताय वै ॥

सनत्कुमार उवाच ।

मासि मासि प्रहृष्टन्तु बालवर्षापनं वृधैः ।  
प्रासमान्तात्मन्ताश्च समात्तात् सविधीयते ॥  
कुमुदा माधवी गौरी रुद्राणी पार्वती उमा ।  
काली सरस्वती चैव सावित्री ब्रह्मणः प्रिया ॥

( ११२ )

सती संज्ञा तथा मेधा पुष्टितुष्टिसमन्विता ।  
 नृपञ्चिभ्रपरित्रासा जयन्ती नाम षोडशौ ॥  
 पूजनीयाः प्रयत्नेन सूर्यमध्ये विलिख्य ताः ।  
 रजनीपिष्टतो वापि लिखेद्वा कुङ्कुमेन वा ॥  
 गन्धपुष्पैः सुगन्धैश्च दीपवस्तनिवेदनैः ।  
 फलैर्मनोहरैर्भक्षैः पक्वान्नेर्विविधैरपि ॥  
 तूर्थ्यघोषैर्ब्रह्मघोषैः कुर्यात्तत्र महोत्सवं ।  
 सोपलिप्ते शुची देशे स्थाप्य सूर्यं विधानतः ॥  
 अक्षतैश्चन्दनैः स्थाप्य कुमुदाद्याः पृथक् पृथक् ।  
 नामभिः पूजनीयास्ताः स्नापयित्वा च बालकं ॥  
 भूपतिं वा मुनिञ्चैव सर्वालङ्कारभूषितं ।  
 पूजतां मादृपितरौ बालवर्द्धापने सति ॥  
 पुरोधाम् पूजयेद्ब्रह्मन् राजवर्द्धापने विधी ।  
 कुमुदाद्याः समुद्दिश्य वंशपात्राणि कल्पयेत् ॥  
 एकैकस्यै धनाठान्तु दद्यात् षोडश षोडश ।  
 तदर्धानि तदर्धानि चैकैकमद्यापि वा ॥  
 बहुपक्वान्मयुक्तानि फलपुष्पयुतानि च ।  
 सुवासिनीभ्यो विपाशां दद्याद्भक्तिपुरःसरं ॥  
 प्रीयतां कुमुदाद्या मे बालत्राणविवर्द्धनो ।  
 बालेन यशसा पुष्ट्या बालं मे वर्द्धयन्तु वै ॥  
 प्रयच्छन्तु सदारोग्यं सोऽस्यं सोभाग्यमेव च ।  
 त्रीन्व ते इतिमन्त्रेण अर्घ्यन्ताभ्यः प्रकल्पयेत् ॥  
 एवं कृत्वा नमस्कृत्य विप्राग्नीर्वादेऽर्घ्वकं ।

भुञ्जीत गोक्षैः सार्द्धं दृष्टतुष्टमना नृप ॥  
वस्त्रताम्बूलपुष्पादि दिने तस्मिन् प्रकल्पयेत् ।  
सुवासिनीनां विप्राणां कुमुदा प्रीयतामिति ॥

अथाथर्वणगोपथब्राह्मणे ।

अथ वर्षशतं प्रवर्षमाने(१)संवत्सरे राजानमभिवर्द्धयिष्यन्नायुषा-  
वर्द्धसा तेजसा यगसा प्रजया त्रिधा विजयेन कौर्त्यापचितैर्मङ्गलै-  
रभ्युष्य रुक्मैरर्चयित्वा माहेन्द्रं हविर्निरूप्य लोकपालेभ्यः प्राप-  
येत् । माहेन्द्रो यत्तुजसेति लोकपालांश्चेष्टा राजानमन्वालभ्य  
जुहुयात् । अर्वाचमिन्द्र तातारमिन्द्र वर्द्धय क्षत्रियं मद्रतिशितं  
जीव गरदोवर्द्धमानोऽभिवर्द्धस्व प्रजया वाहधानेतिहाभ्यां, रक्षन्तु-  
त्वागिरयः(२) इति चतसृभोरक्षां कृत्वा सगुणं प्राप्त इति  
रीचनेनालङ्घुर्यात् । ना वै स तन्तुमिति सृक्तं सम्पातवृत्तं कृत्वा  
धाता ते यन्मिन्त्यक्तमभिवर्द्धस्वेत्यसपत्नी भवेदित्येतत् कर्म मौर-  
लपुत्रः पैठोनसिः ।

स्कन्द पुराणे ।

एवं वर्षापनक्षैव जन्म वा प्राप्तवासरे ।  
मासे मासे व्यतीते तु बालानां हृदिहेतवे ॥  
न बालरोगाः प्रभवन्ति तस्य  
न स्कन्द रोगा न तु ग्राहिनीभ्यः ।  
भय भवेन्नैव जलाग्निदिग्भ्यो  
बालस्य राक्षोऽपि विशेषतश्च ॥

(१) प्रवर्षमाने इति पुस्तकालरे पाठः ।

(२) माग्नि इति पुस्तकालरे पाठः ।



सम्प्राप्य राज्यं नृपतिः समाप्ते  
 कुर्यादिदं शान्तिमहोत्सवञ्च ।  
 ग्रहान् सुसंपूज्य विनायकञ्च  
 दुर्गा च भक्त्या कुमुदादिदेवी ।  
 यः पूजयेद्भक्तिपुरःसरं वै  
 जेता रिपूणां बलबुद्धियुक्तः ॥  
 इति षड्वर्षीपनविधिः ।

— ००० —

अथर्वणगीपथब्राह्मणे ।

अथ घृतावेक्षणं ।

प्रातः प्रातः शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वा प्रबोधितो  
 राजा शयनगृह्णादुत्थायापराजितान्दिग्मभिक्रम्योपाध्यायं प्रती  
 चेत । अथ पुरोधः स्नातानुलिप्तः शुचिः शुक्रवामाः कृतमङ्गल-  
 रचितोष्णीषः शान्तिगृहं प्रविश्य देवानां नमस्कारं कृत्वा स्वस्ति-  
 वाचनमनुज्ञाप्य विनीतोपविशेद्यमस्य लोकाद्यथाकालं यो न  
 जीवोसीति स्वस्थयनं कृत्वोन्मिष्याभ्युज्य परिस्तीर्य शान्तातीयेन  
 तिलान् घृताक्तान् जुहुयात् शान्तः मौवर्णराजतमौदुस्वरं वा पात्रं  
 घृतपूर्णं सहिरण्यं घृतस्य जुतिमहस्त्रं शृङ्गोरुविष्णो विक्रमस्त्रि  
 त्यभिमन्त्रा आज्यन्तेज इति तदा लभते ।

आज्यन्तेजः ससृष्टिमाज्यं पापहरं परं ।

आज्येन देवास्तृप्यन्ति आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥

भौमान्तरीक्षदिव्यं वा यत्ते कल्पसमागतं ।

सर्वं तदाज्यसंस्पर्शान् प्रणायामपगच्छतु ॥

तस्मिन् सर्वमात्मानं पश्येदक्ष्णा । शिरोहृदयमन्वात्मभे-  
दुच्चापतन्त्रमिति द्वाभ्यां । सूर्यस्याहतमिति प्रदक्षिणमावृत्त्वा शेषं  
साधयेदिति ।

तत्र श्लोकाः ।

अयं घृतावेक्षणस्य प्रोक्तो विधिरथर्वणः ।  
एवं समाचरेत्सम्यक् प्रयतः सुसमाहितः ॥  
उपास्योदयकाले तु स राजा जयमिच्छया ।  
स राजा जयते राष्ट्रं न पश्यन्ते तु शत्रवः ॥  
पञ्चादानीय कपिलां राजा दद्याद्द्विजातये ।  
आशीर्वाद्दं ततश्चैव श्रुत्वा तन्मुखनिःसृतं ॥  
गुरुणावेदिते तस्माद्दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।  
पुत्रान् पौत्रांश्च मित्राणि लभते नात्र संग्रयः ॥  
आयुष्यमथ वर्षस्यं सौभाग्यं शत्रुतापनं ।  
दुःस्वप्ननाशनं धन्यं घृतावेक्षणसुच्यते ॥

इति घृतावेक्षणविधिः ।

अथ अगस्त्यार्घ्यविधिः ।

पद्मपुराणात् ।

भीष्म उवाच ।

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महर्जनः ।  
तपः सत्यञ्च सप्तैते देवलोकाः प्रकीर्त्तिताः ॥  
पर्यायेण तु सर्वेषां आधिपत्यं कथं भवेत् ।

इह लोके शुभं रूपं आयुरारोग्यमेव च ।  
 लक्ष्मीश्च विपुला ब्रह्मन् कथं स्यात्सुरपूजित ॥  
 पुलस्त्य उवाच ।

वसिष्ठो यो भवेत्तस्मिन् जलकुम्भे च पूज्यं वत् ।  
 ततश्चेतद्यत्कर्तुः सात्त्विककर्मण्डलुः ॥  
 अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तमः ।  
 मलयस्यैव देशे च वैखानसविधानतः ॥  
 सभार्थः समुतोविप्रैस्तपसके सुदुष्करं ।  
 ततः कालेन महता तारकादिनिपौडितं ॥  
 जगद्दीप्य स कीपेन पीतवान्वरुणालयं ।  
 ततोऽस्य वरदाः सर्वे बभूवुः शङ्करादयः ॥  
 ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् वरदानाय जग्मतुः ।  
 वरं वृणीष्व भद्रं ते यथाभीष्टोऽच वै मुने ॥  
 अगस्त्य उवाच ।

यावद्ब्रह्मसङ्क्राणां पञ्चविंशतिकीटयः ।  
 वैमानिको भविष्यामि दक्षिणाञ्चरवर्त्मनि ॥  
 महिमानीदयात् कुर्व्यात् यः कश्चित् पूजनं मम ।  
 स चेव पुण्यतां यातु वर एष वृत्तो मया ॥  
 आर्द्रं ये तु करिष्यन्ति पिण्डपूर्व्यं तु भक्तितः ।  
 तेषां पिष्टगणः सर्वो मया सार्धं द्विवि स्थितः ॥  
 एतत् कालञ्च तिष्ठेत एष एव वरो मम ।  
 एवमस्त्विति तेप्यक्ता जग्मुर्द्वा यथागतं ।  
 तदर्घ्यः संप्रदातव्यो अगस्त्यस्य सदा बुधैः ॥

विष्णुधर्मोत्तरे ।

अगस्त्यस्य महामुनिं प्रति

पितामहवाक्यं ।

देवकार्यमहं ब्रह्मन् त्वया कृतमिदं शुभं ।  
 तस्मात्स्यान्तु ते वक्ष्मि वैश्वानरपथादहिः ॥  
 दिव्यदेहो भवांस्तत्र विमानवरमास्थितः ।  
 दक्षिणां दिशमाश्रित्य अस्तोदयसमन्वितः ॥  
 प्रसादमन्त्रसां शैत्यं निर्विषत्वं तवोदये ।  
 भयिष्यत्यमलप्रज्ञ मत्प्रसादात्तदैव तु ॥  
 शरत्समुदितो भूत्वा वसन्तेऽस्तमयं दिज ।  
 प्राकाम्ययुक्तश्च तथा समघां वसुधाञ्चर ॥  
 शरत्समयमासाद्य तस्माद्विप्र तवोदये ।  
 पूजां त्वमाश्रसे लोके मत्प्रसादाद्विजोत्तम ॥  
 ये च त्वां पूजयिष्यन्ति गन्धमाख्यफलाक्षतैः ।  
 दधिकाञ्चनरत्नैश्च परमान्त्रेण भूरिणा ॥  
 पूर्णकुम्भैः सकृन्नाण्डैश्चोपानहयिष्टमि ।  
 धेन्वा वृषेण भक्षैश्च वासीभिः कनकेन च ॥  
 संवत्सरश्च त्यागेन फलस्यैकस्य वाप्यथ ।  
 पूजनैर्ब्राह्मणानाञ्च त्वन्मन्त्र परिकीर्त्तनैः ।  
 विधानं यदगस्त्यस्य पूजने तददस्व मे ॥

पुस्तक्य उवाच ।

प्रसूषसमये विद्वान् कुर्व्यादस्योदये निशि ।  
 ज्ञानं शुक्लतिलैस्तदङ्कुलमाख्याम्बरी गृही ॥

निश्चये निशि दिनमुखे ज्ञानं समावरेत् ।  
 स्वापयेदन्नं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितं ॥  
 पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रान्नसंयुतं ।  
 नानाभक्षफलैर्युक्तं ताम्रपात्रसमन्वितं ॥

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव  
 सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डं ।  
 चतुर्भुजं कुम्भमुखे निधाय  
 धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि ॥  
 सकाशपुष्पाक्षतशुक्तियुक्तं  
 मन्त्रेण दद्याद्द्विजपुङ्गवाय ।  
 उत्क्षिप्य लम्बोदरदीर्घबाहु-  
 मन्यचेता यमदिक्षु खस्यः ॥

सकाशपुष्पाक्षतया शुक्ता युक्तं प्रयुक्तमर्घ्यं मुत्क्षिप्य दद्यादित्य-  
 न्वयः । अत्यायतबाहुदण्डमित्युत्क्षेपणक्रियाविशेषणं । लम्बोदर  
 दीर्घबाहुमिति प्रतिमाविशेषणं । द्विजपुङ्गवीऽगच्छः ।

श्रेताणां दद्याच्छक्तिरौप्य-  
 श्वत्सुरां हेममुखीं सवत्सां ।  
 धेनुधरः क्षीरवतीं प्रशम्य  
 सवस्त्रघटाभरणां द्विजाय ।

भविष्योत्तरात् ।

ज्ञानं कारयित्वा च यथाशक्त्या सुशीभनं ।  
 बुद्ध्यास्मृतिं प्रशान्त्य जटामञ्जलधारिणं ॥  
 कामञ्जलकरं शिष्यैः स्वर्गैश्च परिवारितं ।

अन्येषु विषयान्तरं दर्शयन्मन्त्रं मुनिं ।  
 तस्मिन् कुम्भे समालम्बनं चन्दनेन ततो न्यसेत् ॥  
 स्थापितश्चानुलिप्तश्च चन्दनेन सुगन्धिना ।  
 पूजितं जातिकुसुमैश्चैधूपैश्च धूपितं ॥  
 अथ विष्णुरहस्ये ।

काशपुष्पमयीं रम्यां कृत्वा मूर्त्तिं तु वाहणेः ।  
 प्रदीपे विन्यसेत्तान्त्तु पूर्णकुम्भे स्वलङ्कृते ॥  
 इह पूर्णोत्सववर्षकृष्येण सह शक्त्यनुसाराद्विकल्पः । पूर्णकुम्भो  
 जलपूर्णकुम्भः ।

कुम्भस्थं पूजयेत्तन्तु पुष्पधूपविलेपनेः ।  
 दध्नुश्चतबलिं दद्याद्रात्रौ कुर्यात् प्रजागरं ॥  
 पूजा च वक्ष्यमाणैरर्घ्यं मन्त्रविधेया ।  
 प्रभाति तं समादाय यावत् पुण्यजलाशयं ।  
 निशावसाने तान् पश्यन् जलास्ते प्रतिमां मुनेः ॥  
 अर्घ्यं दद्याद्दशस्त्राय भक्त्या सम्यगुपोंषितः ।  
 पुष्पैर्मूलेः फलेर्गन्धैर्धूपैरथ सुगन्धिभिः ॥  
 द्राक्षा खर्जूरककेशूनारिकेलादिभिः शुभैः ।  
 पञ्चरत्नसमायुक्तं हेमरूप्यसमन्वितं ॥  
 सप्तधान्यभृतं पात्रचन्दनेन समायुतं ।  
 तन्तु ताम्रमयं कृत्वा दद्यादर्घ्यं द्विजातये ॥  
 अगस्त्यः खनमानेति पठन्मन्त्रमिमं मुने ।  
 यथा लाभकतार्थेन सर्व्वैर्वाद्य स्वशक्तितः ॥  
 अर्घ्यं ददुःखरगस्त्याय शूद्रेमन्त्रविधिस्त्वयं ।

( १११ )

काशपुष्यप्रतीकाश वज्रिमाहृतसम्भव ।

त्रिचावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥

भविष्योत्तरात् ।

ततश्चार्घ्यं : प्रदातव्योयैर्द्रव्यैस्तान् नृणस्व मे ।

खर्जूरैर्नालिकेलैश्च कुष्माण्डैस्त्रपुसैरपि ॥

कर्कोटैः कारुवैलैश्च कर्मरैर्बीजपूरकैः ।

इत्याकैर्दाडिमैश्चैव नारदैः कदलीफलैः ॥

दूर्वाङ्गुरैः कुशैः काशैः पद्मैर्नीलोत्पलैस्तथा ।

नानाप्रकारैर्भक्षैश्च गोभिर्बन्धै रसैः शुभैः ॥

विरुद्धैः सप्तधान्यैश्च वंगपात्रे निधापितैः ।

सौवर्णरूप्यपात्रेण तान्प्रवक्ष्यमयेन च ॥

सूर्ध्नि स्थितेन नम्रेण जानुभ्याम्बरणीं गतः ।

दक्षिणाभिमुखो भूत्वा ध्यात्वागच्छं क्षणं नृप ॥

दद्यादर्घ्यं प्रयत्नेन चेतसागुरुचन्दनैः ।

शुक्रयाकारं पार्श्वं पात्रं सकाशपुष्याद्यतशुक्तीति वचनात् ।

काशपुष्यप्रतीकाश वज्रिमाहृतसम्भव ।

त्रिचावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥

वातापिर्भक्षितो येन समुद्रः शोधितः पुरा ।

लोपासुद्रापतिः श्रीमान् योऽसौ तस्मै नमो नमः ॥

येनोदितेन पापानि विलयं यान्ति व्याधयः ।

तस्मै नमोऽस्वगस्थाय सशिष्याय च पुत्रिणे ॥

ब्राह्मणो वेदमन्त्रेण दद्यादर्घ्यं नृपोत्तम ।

पगस्त्वः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्वं वक्तमिच्छमानः ।

उभो वर्षावृषिरुचः पुषोष सत्या देवेष्वग्निषो जगाम ॥

दत्त्वैवमर्घ्यं कौरव्य प्रथिपत्य विसर्जयेत् ।

अर्घितस्त्वं यथाशक्त्या नमोऽगस्त्यमहर्षये ।

ऐहिकानुष्किणीं दत्त्वा कार्य्यसिद्धिं व्रजस्व मे ॥

विसर्जनमन्त्रः ।

विसर्जयित्वाऽगस्त्यं तं विप्राय प्रतिपादयेत् ।

दैवज्ञे व्यासरूपाय वेदवेदाङ्गवादिने ॥

अगस्त्यो मे मनस्वोऽस्तु अगस्त्यो अग्निं घटे स्थितः ।

अगस्त्यो द्विजरूपेण प्रतिवृत्त्वातु सरक्ततः ॥

अगस्त्यः समजन्तोत्सवाशयत्वावयोरघं ।

अतुलं विमलं सौख्यं प्रयच्छ त्वं महामुने ।

प्रतिघट्टमन्त्रः ।

एवं यः कुरुते भक्त्या ह्यगस्त्यव्रतमाद्रात् ।

फलमेकं तद्या धान्यं रसचैकं परित्यजेत् ।

सम्यग् च तद्या वर्षं पुनरप्यनुपक्रमेत् ॥

विष्णुरहस्ये ।

दत्त्वार्घ्यन्तु विधानेन नरः कुम्भीव्यास च ।

त्यजेद्गस्त्यमुद्दिश्य धान्यमेकं फलं रसं ॥

अथ माषेप्यगस्त्यार्घ्यमभिधाय ।

प्रत्यन्दश्च फलत्यागमेवं कुर्वन् न सौदति ।

हीमं कृत्वा ततः पञ्चाहर्जयेन्मानवः फलं ॥

हीमश्च स्नाहानेन प्रचवादिना अर्घमन्त्रे च सर्पिणा विधिः ।



ततोऽनु पूजयेद्विप्रान् वृत्तपायसमीदकैः ।

गाः सुवर्षश्च वासांसि तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणां ॥

वृत्तपायसयुक्तेन पात्रेण स्वगिताननं ।

सद्विरस्यच्च तं कुम्भं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

अप्राप्ते भास्करे कन्यामर्वाभ्यै सप्तभिर्दिनेः ।

अर्घ्यं ददुरगस्त्राय ये बसन्ति महोदये ॥

पूर्वानक्षत्रान्तर्गतेऽर्क ईर्त्स्वः । उज्जयन्त्यां त्वर्वाक् ।

यदाह वराहमिहिरः ।

संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य

विज्ञाय संदर्शनमादिशेद्ब्रह्मः ।

तच्चोज्जयन्त्यामगतस्य कन्यां

भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥

स्वराख्यैर्भागैः सप्तभिरंशैः कन्यामगतस्य स्फुटस्वादित्यस्य  
मघाद्वितीयचरणान्तर्गतस्येत्यर्थः ।

तथा ।

ईषत्प्रकाशेऽक्षरस्मिजाले ।

नेशेऽन्धकारे दिशि दक्षिणस्यां ॥

संवत्सरावेदितदिग्बिभागी ।

भृगोऽर्घ्यमूर्त्वा प्रयतः प्रयच्छेत् ॥

भविष्योत्तरे कृष्णवाक्यं ।

तस्मैवं चेष्टितस्यार्घ्यैः प्रयच्छार्घ्यं बुधिशिरः ।

कन्यायामागते सूर्य्ये अर्वाभ्यै सप्तमे दिने ।

कन्यायां समनुप्राप्ते अथ्यकाकोनिवत्तते ॥

युधिष्ठिरे पुरे पूर्वां तृतीयचरणाच्छिवा सत्यर्कउदये इत्यर्थः ।  
यस्मिन् देशे यस्मिन् दिने अगस्त्यसन्दर्शनं भवति । तस्मिन्  
देशे तस्मिन्नर्घ्यदानमिति रुच्येपः । कन्यायां समनुप्राप्ते इत्यादि-  
ना सप्तमाहिनादारभ्य संक्रान्तिमनधीकुर्वता उदयादारभ्य सप्त-  
दिनाभ्यन्तरेऽपि युक्तमर्घदानमित्येतद्वर्णितं ।

तथाच पद्मपुराणे ।

आसतरात्रादुदयाद्यमस्य  
दातव्यमेतत्सकलं नरेण ॥

यमस्य अगस्त्यस्य । उदयादूर्ध्वं आसतरात्रात् । सतरात्रम-  
धीकृत्य एकस्मिन् दिने अर्घ्यादातव्य इत्यर्थः ।

सतरात्रादूर्ध्वं तु अर्घ्यदानमनर्थकमिति ।

ब्रह्मपुराणे ।

अगस्त्योदक्षिणामाशामान्त्रित्य नभसि स्थितः ।

वरुणस्यात्मजो योगो विश्वापादविमर्हनः ॥

कन्याशिभ्यः पश्चिमेभ्यः षड्भ्यः प्रारभ्य संख्यया ।

अंगान् द्विसप्ततिं यावत् भुङ्क्ते सूर्यस्तु राशिषु ।

उदेति तावद्भगवान् अगस्त्यो व्योम्नि धामभृत् ॥

उक्षांशिभ्यः पश्चिमेभ्यः प्रारभ्य पूर्ववत् क्रमात् ।

षट्त्रिंशत्तश्च यावच्च भुङ्क्ते भानुयेशात्मनः ॥

तावच्छान्तस्य पातालं प्रयात्यस्तमुपैति च ॥

उक्षा वृषभः । अंगचरणः । नवचरणोराशिः । सपादनक्ष-  
त्रयभोगात् । सतरात्रतृतीयचरणादयः । तद्विसप्ततिरश्मिनी तृती-  
यचरणान्ताः । एतावत् सूर्यभागिनोदयकालः । शेषोऽपि कालः

कृतोपवासः सम्पश्येद्दगच्छमुदितं मुनिं ।  
 सर्वकामप्रदं पुण्यं सर्वभाग्यप्रवर्धनं ॥  
 अर्चनीयश्च भगवान् अर्वाभक्तिसमन्वितैः ।  
 पूर्वकुम्भैः सकृन्नाष्टैर्यैर्वैर्ध्यान्वैर्हृतेन च ॥  
 जातिपद्मोत्पलैः पुष्पैश्चन्दनेन सितेन च ।  
 गोभिर्हृतेस्तथा वस्त्रै रत्नैः सागरसम्भवैः ॥  
 उपानच्छत्रदण्डैश्च पादुकाञ्जनवस्त्रकैः ।  
 हविषा परमान्नेन फलैः पुष्पैश्च शोभनैः ॥  
 अन्धप्रकारैर्भक्षैश्च होमैर्ब्राह्मणतर्प्यणैः ।  
 आशास्य च शुभं काममुद्दिश्यैकं मनोगतं ॥  
 यद्यहं प्राप्नुयाम् कामं भगवन्मनसि स्थितं :  
 त्वत्प्रसादादविघ्नेन भूयस्त्वां पूजयाम्यहं ॥  
 इत्युक्त्वा पूजयेत्पश्चाद्देवज्ञांश्च तथा गुरुन् ।  
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु ततो भुञ्जीत वाग्यतः ॥

अथ पद्मपुराणे ।

आसतरात्रादुदयाद्यमस्य

दातव्यमेतत्कालं नरेण ।

यावन्ममाः सप्तदशाद्य वा स्व-

रक्षोर्ध्वमप्यथ वदन्ति केचित् ॥

अनेन विधिना यस्तु पुमानर्घं निवेदयेत् ।

ब्रह्मं लोकमवाप्नोति रूपारोग्यसमन्वितः ॥

द्वितीयेन भुवर्लोकं स्वर्लोकश्च ततः परं ।

सप्तैवसोकानाप्नोति सप्तार्घान् वः प्रवक्ष्यति ॥

यावदायुष यः कुर्यात् स परं ब्रह्म गच्छति ।  
बराहसंहितायां ।

नरपतिरिममर्घ्यं अहधानो ददानः  
प्रविगतमद्दोषैर्निर्जितारातिपक्षः ।  
भवति यदि हि दद्यात्सप्तवर्षाणि सम्यक् ।  
जलनिधिरसनायाः स्वामितामेति भूमिः ॥  
भविष्योत्तरात् ।

दत्त्वायं सप्तवर्षाणि क्रमेणानेन पाण्डव ।  
पुमान्यत्फलमाप्नोति तदेकाग्रमनाः शृणु ॥  
ब्राह्मणः स्यात् चतुर्वेदः सर्वशास्त्रविशारदः ।  
क्षत्रियः पृथिवीं सर्व्यां प्राप्नोत्यर्णवमिस्त्रलां ॥  
वैश्यानां धान्यनिष्पत्तिर्गोधनञ्चापि निन्दति ।  
शूद्राणां धनमारोग्यं सस्याजश्चाधिकं भवेत् ॥  
स्त्रीणां पुत्राः प्रजायन्ते सौभाग्यं गृहशुद्धिमत् ।  
विधवानां महत्पुत्र्यं वर्धते पाण्डु नन्दन ॥  
कन्या भर्तारमाप्नोति व्याधेर्मुच्येत दुःखितः ।  
येषु देशेष्वगस्तुर्षः पूजेयं क्रियते जनैः ॥  
तेषु देशेषु पर्जन्यः कामवर्षा प्रजायते ।  
ईतयः प्रथमं यान्ति नश्यन्ति व्याधयस्तथा ।  
पठन्ति ये स्वगुरुवैभवं तं श्रुन्ति चापरे ॥  
ते सर्वे पापनिर्मुक्ताः चिरं खित्वा महौतसे ।  
हंसयुक्तधिमानेन स्वर्गं यान्ति नरोत्तमाः ॥  
सर्वैर्यद्विन्दसि गृहं परमर्षिबुद्धं

भोगान् शरीरमतुलं पशुपुत्रपुष्टिं ।

तद्ब्रह्मवत्तमं मुनेरुदये महाध्वं-

मर्षं प्रयच्छ फलवस्त्ररसैः सधान्यैः

पद्मपुराणे ।

इति पठति शृणोति वा य एत-

हसुयुगलाङ्गभवस्य संप्रदानं ।

मतिमपि च ददाति सोपि विष्णो-

र्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः ॥

ब्रह्मोवाच ।

सितचन्दनतोयेन व्योम स्थाप्य विलिप्य च ।

कर्णिकाकल्पितैः पद्मैः संपूज्य प्रणिपत्य च ॥

कर्णिकाकल्पितैः, कर्णिकामण्डितैः ।

वकुले विमले सौम्ये निष्कन्द्रे पुष्पिते सति ।

पुष्पिते विकसिते ।

मध्ये केसरजालस्य व्योम स्थाप्यं सुशीभनं ॥

अङ्गुष्ठपर्व्वमात्रं सत्त्वं गन्धममन्वितं ।

अथ संस्थापयित्वा च भास्करस्य सुरीक्ष्णम् ॥

पूजयेत् करवीरैस्तु तथा रत्नैश्च चन्दनैः ।

धूपश्च गुग्गुलुं दद्यात् प्रथम्य शिरसा रविं ॥

कुङ्कुमं पूर्व्वपार्श्वे तु दद्याद्दहीमसमाहितः ।

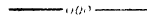
दक्षिणे चाशुक्लं दत्त्वा पश्चिमे चन्दनं सितं ॥

चतुःसमक्षीक्षरे तु दद्याद्दहीमविचक्षणः ।

दद्यान्मध्ये शुभं पुष्यं रत्नचन्दनमादरात् ॥

पूजयेद्विधिवैः पुष्पैस्तथा सागुरुवन्दनेः ।  
 धूपं कृष्णागुरुं दद्यात्कष्टं वापि गुग्गुलं ॥  
 वामांमि च सुसूत्राणि विकेशानि निषेदयेत् ।  
 पादसं छृतसंयुक्तं छृतदीपांश्च दापयेत् ॥  
 सर्व्वं निवेद्य मन्त्रेण ततो गच्छेत् प्रदक्षिणं ।  
 प्रणम्य शिरसा भानुमुतषायैर्न चमापयेत् ॥  
 सर्व्वीपहारसंयुक्तं बन्दिन्देवाय दाहरेत् ।  
 खखील्कायेति मन्त्रेण सूर्यायामिततेजसे ॥  
 अनेन विधिवद्देवञ्चार्चयित्वा परा रविं ।  
 अहं ब्रह्मत्वमापन्नः प्रसादान्नास्करम्य तु ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं व्योमव्रतं ।



निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोपदो भवेत् ।  
 वारुणं लोकमाप्नोति वरुणव्रतमिहोच्यते ॥

इति पद्मपुराणोक्तं वरुणव्रतं ।



योऽष्टमेकं प्रकुर्व्वीत नक्तं पर्व्वणि पर्व्वणि ।

पर्व्वं पञ्चदशौ ।

ब्रह्मचारो जितक्रोधः शिवार्चनरतः सदा ।

वत्सरान्ते च विप्रेन्द्र शिवभक्तान् समाहितान् ॥

भोजयित्वा ततो ब्रूयात् प्रीयतां भगवान् प्रभुः ।  
 एवं विधिसमायुक्तः शिवलोकञ्च गच्छति ।  
 न च मानुषतां लोके अध्रुवां प्राप्नुते नरः ॥

इति भविष्यत्पुराणोक्तं पर्वनक्तव्रतं ।

—०००—

पृथिवीभाजने भुङ्क्ते नित्यं पर्वसु यो नरः ।  
 अतिरात्रफलं देवि अहोरात्रेण विन्दति ॥  
 पृथिवीभाजने भूनावसं निधायेत्यर्थः शिवोऽत्र देवता ।

इति पद्मपुराणोक्तं पर्वभूभाजनव्रतं ।

—०००॥००—

यो विंशतिपलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीं ।  
 दिनं पयोव्रतं दद्याद्दृष्टलोकं महीयते ।  
 धराव्रतमिदं प्रोक्तं समकल्पयतांशुगं ।  
 दिनं देवानामुत्तरायणं । पयोव्रतमित्यन्तरं कृत्वेत्यनुसङ्गः ।  
 वदो देवता धरादानं पारणं ।

इति पद्मपुराणोक्तं धराव्रतं ।

—०००—

नन्दिकेश्वर उवाच ।

तथा सर्वफलत्यागमाहात्म्यं शृणु नारद ।

यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलव्रतं ॥  
 मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुनिव्रतं ।  
 द्वादश्यामथ वाष्टम्याञ्चतुर्दश्यामथापि वा ॥  
 आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनं ।  
 अश्वेष्वपि च मासेषु पुण्ये ऽङ्गि मुनिसत्तम ॥  
 सदक्षिणां पायसेन शक्तितः पूजसेहिजान् ।  
 अष्टादशानां धान्यानां अन्यत्र फलमात्रकं ॥  
 वर्जयेदष्टमेकन्तु विनैवौषधकारणात् ।  
 सव्रतं काञ्चनं रुद्रधर्मराजञ्च कारयेत् ॥  
 कृष्णाण्डं मातुलिङ्गञ्च हस्ताकम्पनसन्तथा ।  
 आम्नाम्नातकपितथानि कालिङ्गमथ वारुकं ॥  
 श्रीफलाश्वत्थमद्रश्चम्बीरं कदलीफलं ।  
 कर्भरन्दाडिमं शतया कलधौतानि षोडश ॥

कलधौतं हेम ।

मूलकामलकञ्जम्बूतिन्निडीकरमन्दकं ।  
 कडैलकञ्च तुण्डीर करीरकुटजं समी ॥

एलकमेलाफलं ।

उदुम्बरं नारिकेलन्द्राचाथ वृहतीहयं ।  
 रीप्यानि कारयेच्छतया फलानीमानि षोडश ॥  
 ताम्रन्तालफलं कुर्यादगस्तिफलमेव च ।  
 पिण्डीरकाश्मर्यफलं तथा शृणुकन्दकं ॥

काश्मर्यः श्रीपर्णी ।

रत्नालुकाकण्टकञ्च केतेकान्त्रीकचिर्भटं ।



केतकः अम्बुप्रसादनफलं । अम्लीकश्चिञ्चा ।

चित्रवल्लीफलं तद्वत् कूटशौल्मलिजं फलं ।

कूटशास्मलिः रोहीतकः ।

ग्रामनिष्पावमधुकवटेऽङ्गुदपटोलकं ।

मधुकीमषकः । ईङ्गुदो हिङ्गुणः ।

ताम्राणि षोडशैतानि कारयेच्छक्तितो नरः ।

उदकुम्भद्वयं कुर्यादाङ्गोपरि सवखकं ॥

ततश्च कारयेच्छय्यां शय्योपरि सवाससं ।

भक्षपात्रद्वयोपेतं यमं रुद्रहृषान्वितं ॥

धेन्वा सहेव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने ।

सपत्नीकाय संपूज्य पुण्ये ऽङ्गि विनिवेदयेत् ॥

यथा फलेषु निवसन्त्यमरा रसरूपिणः ।

तथा सर्वफलत्यागप्रताङ्गिः शिवेऽस्तु मे ॥

यथा शिवश्च धर्मश्च सदानन्दफलप्रदः ।

तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे फलप्रदौ ॥

यथा फलानि कामाः स्युः शिवभक्तषु सर्वदा ।

तथानन्तफलप्राप्तिर्मिऽस्तु जन्मनि जन्मनि ॥

यथा भेदेन पश्यामि शिवविष्णुर्कपञ्जजां ।

तथा ममास्तु विश्वात्मा शङ्करः शङ्करः सदा ।

इति वत्सरतः सर्वमलङ्कृत्य च भूषणैः ॥

वत्सरतः वर्षीत्यरं ।

शक्तषेच्छयनं दद्यात्सर्वीपस्करसंभृतं ।

अशक्तस्तु फलान्येव यद्योक्तानि विधानतः ॥

तथोदकुम्भयुग्मञ्च शिवधर्मो च काञ्चनेः ।  
 विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितं ॥  
 अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयेद्विजपुङ्गव ।  
 एतस्मान्न परं किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥  
 व्रतमस्य मुनिश्रेष्ठ बदनन्तफलप्रदं ।  
 सौवर्णताम्ररौप्येषु यावन्तः परमाणवः ॥  
 भवन्ति चूर्णमानेषु फलेषु मुनिसत्तम ।  
 तावद्युगसहस्राणि रुद्रलोके महोयते ॥

एतत्समस्तकलुषापहरं जनाना-  
 माजीवनाय मनुजेषु च सर्वदा स्यात् ।  
 जन्मान्तरेषु न च पुत्रविद्योगदुःख-  
 माप्नोति धाम च पुरन्दरदेवजष्टं ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तं फलत्यागव्रतं ।

— ००० —

श्रीकृष्ण उवाच ।

हन्ताकस्य विधिं वक्ष्ये शृणु पार्थ सभाहितः ।

संवत्सरं वा षण्मासान् त्रीन्मासान् वा न भञ्जयेत् ॥

अथ भरण्यां मघायां वा एकरात्रोपवासं कृत्वा स्थण्डिले  
 देवतामाह्वय गन्धपुष्पनैवेद्यादिना च संपूज्य दर्भपाणिर्गन्धो  
 दकेनावाहयेत् । यमराजमावाहयामि । कालमावाहयामि ।  
 चित्रगुप्तमावाहयामि । मृत्युमावाहयामि । परमेष्ठिनमावाहयामि  
 इति । ततोऽग्निं समाधाय तिलाज्यं जुहुयात् । यमाय स्वाहा ।  
 नीलाय स्वाहा नीलकण्ठाय स्वाहा । यमराजाय स्वाहा । चित्र-

गुप्ताय स्वाहा । वैवस्वताय स्वाहा ।

अग्निमूर्ध्व्याहृतीरष्टशतञ्जुहुयात् ।

प्रायश्चित्तं दत्त्वा ब्राह्मणः स्वयमेव इतरेषामाचार्यः । अथ स्वशक्त्या सौवर्णं हस्ताकं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

कृष्णां गान्तथा वृषञ्च तथैव कर्णवेष्टाङ्गुलीयकैः कृत्रीपानही कृष्णवस्त्रयुगं कृष्णकम्बलं दद्यात् ।

ब्राह्मणान् भोज्यागिषो वाचयेत् ।

अनेन विधिना यस्तु हस्ताक्तञ्च प्रयच्छति ।

चीन्मासान्घन्मासं वा वर्षमेकं न भक्षयेत् ॥

अथ वैनं विधिं कृत्वा जन्मावधि त्यागं करोति स तु विष्णु लोकं प्रयाति पौण्डरीकीऽश्वमेधफलमाप्नोति ।

सप्तजन्मसहस्राणि नाकष्टे महीयते ।

सप्तलोकोत्तरं यावद्यमलोकं न पश्यति ।

हस्ताकमप्रतिहतं वरहेमसिद्धं

दद्याद्दहिजाय घृतवस्त्रसमन्वितं यः ।

कृत्वा तु वर्षमपि मासमथैकमेव

याम्यं न पश्यति पुरं पुरुषः कदाचित् ॥

इति भविष्योत्तरोक्तो हस्ताकत्यागविधिः ।

— ००० —

त्राहं पयोव्रते स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपं ।

पलादूर्ध्वं यथाशक्त्या तन्दुलं सूर्पसंयुतं ॥

सूर्पन्द्रीणहयं ।

दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पवृक्षव्रतं क्षृतं ॥

व्रतखण्ड २१ अध्यायः ।] हेमाद्रिः ।

८११

ब्रह्माऽत्र देवता ।

इति पद्मपुराणोक्तं कल्पवृक्षव्रतं ।

—(१११)—

हैमं पलदद्याद्दूर्ध्वं रथमश्वयुगादिकं ।

ददन् छातीपवासः स्याद्दिवि कल्पगतं वसेत् ।

तदन्ते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतं ॥

इन्द्रोऽत्र देवता ।

इति पद्मपुराणोक्तं अश्वव्रतं ।

—(११२)—

तद्वहेमरथं दद्यात्करिभ्यां संयुतं पुनः ।

सत्यलोके वशीकल्पसङ्घसमथ भूमिपः ।

भवेदुपोषितो भूत्वा करिव्रतमिदं स्मृतं ॥

उपोषितो भूत्वा दद्यादित्यन्वयः । तदत्कल्पदद्याद्दूर्ध्वैः ब्रह्मा-  
ऽत्रय देवता ।

इति पद्मपुराणोक्तं करिव्रतं ।

—

छृताभिषेकं यः कुर्याद्द्वारात्तत्र शिवस्य तु ।

नियतं स्नानधाराभिः पुष्पमाले समुद्यतः ॥

गीतकृत्योपहारैश्च शङ्खवादित्रनिःस्वने ।

कुर्यात्स्नानगरुणं तत्र प्रदीपादुपशोभया ॥

समस्तपापनिर्मुक्तः समस्तकुलसंयुतः ।

ज्वलद्भिः स महायानैरसंख्यैर्नगोत्तमैः ॥  
 युक्तः शिवपुरे नित्यं मोदते शिववत्सखी ।  
 ग्रहणे विषुवे चैव पुण्येषु दिवसेषु च ॥  
 धृताभिषेकं यः पश्येदासमामिमुपोषितः ।  
 विधूय सर्वपापानि शिवलोकं स गच्छति ॥  
 एकः पूजयते भक्त्या अन्यो भक्त्या प्रशस्यति ।  
 तुल्यमेव फलन्ताभ्यां भक्तिरेवाऽत्र कारणं ॥

इति शिवधर्माक्तो दृतस्नपनविधिः ।

— ००० —

सूत उवाच ।

दुर्लभा खलु या मुक्तिरनायासेन देहिनां ।  
 जायते कर्मणा येन शृणुष्वं तदुद्दिजोत्तमाः ॥  
 गोचर्ममात्रमालिख्य मण्डलं गीमयेन च ।  
 चतुरस्रं विधानेन चरुणाभ्युक्ष्य मन्त्रवित् ॥  
 अलङ्कृत्य वितानाद्यैश्च त्रैधापि मनोरमैः ।  
 बहुदेरर्षेचन्द्रे च स्वर्णैरश्वत्थपत्रकैः ॥  
 सितैर्विकसितैः पद्मैः रक्तैर्नीलोत्पलैस्तथा ।  
 विमानेन विचित्रेण मुक्ता दाम्ना दिजोत्तमाः ।  
 सितनृत्यात्मकैश्चैव सुस्रक्तैः पूर्णकुम्भकैः ॥  
 फलपल्लवमालाभिवैजयन्तोभिरंशुकैः ।  
 पञ्चाशद्दीपमालाभिर्धूपैश्च विविधैस्तथा ॥  
 पञ्चाशद्दलसंयुक्तं लिखित्वा पद्ममुत्तमं ।  
 तत्तद्वर्णैस्तथा चूर्णैश्चैतच्चूर्णैरिथापि वा ॥

एकहस्तप्रमाणेन कृत्वा पद्मं विधानतः ।  
 कर्णिकायां न्यसेद्वेवन्द्याद्देवस्वरम्भवं ॥  
 तत्र वर्णनकारादीन्त्यसेत् प्रागाद्यनुक्रमात् ।  
 प्रणवादिनमोक्तांश्च सर्ववर्णान् हि सुव्रतः ॥  
 संपूज्यैव मुनिश्रेष्ठ गन्धपष्पादिभिः क्रमात् ।  
 ब्राह्मणान् भीजयेत्तत्र पञ्चाशद्विधिपूर्वकं ॥  
 अक्षमालीपवीतञ्च कुण्डलानि कमण्डलुं ।  
 आसनञ्च तथा दण्डं उष्णीषं वस्त्रमेव च ॥  
 दत्त्वा तेषां हिजेन्द्राणां देवदेवाय शम्भवे ।  
 महाचक्रञ्च नैवेद्यं कृण्वन् गोभियुनं तथा ॥  
 अत्रैव देवदेवाय दत्त्वा तद्वर्णमण्डलं ।  
 गोगोपयोगिद्रव्याणि शिवानि विनिवेदयेत् ॥  
 ओंकाराद्यं जपेदोमान् प्रतिवर्णमनुक्रमात् ॥  
 एवमालिख्य शोभन्त्या वर्णमण्डलमत्तमं ।  
 यत् फलं लभते मर्त्यस्तद्वदामि समागतः ॥  
 साङ्गान् वेदान् यथान्यायमधीत्य विधिपूर्वकान् ।  
 इष्ट्वा यज्ञैर्यथान्याय ज्योतिष्टोमादिभिः क्रमात् ॥  
 ततो विश्वजित्शिष्ट्वा पुत्रानुत्याद्य तादृशान् ।  
 वानप्रस्थाश्रमं गत्वा सदारः सांस्वरेण च ॥  
 चान्द्रायणादिकान् कृत्वा संन्यस्य वै द्विजः क्रमात् ।  
 ब्रह्मविद्यामधीत्यैव ज्ञानमापाद्य यत्नतः ॥  
 ज्ञानेन ज्ञेयमालोक्य योगी यत्फलमाप्नुयात् ।  
 तत् फलं लभते सर्वं वर्णमण्डलदग्दीनात् ॥

( ११५ )

येन केनापि वा लिख्य प्रलिप्यायतनाश्रयं ।  
 उत्तरे दक्षिणे वापि पृष्ठतो वा द्विजोत्तमाः ॥  
 चतुःश्लोकेऽपि वा वर्णैरलङ्कृत्य समन्ततः ।  
 विकीर्य गन्धकुसुमैर्धूपदोषैश्चतुर्विधैः ।  
 प्रार्थयेद्देवमीशानं शिवलीकञ्च गच्छति ॥  
 तत्र भुक्त्वा महाभोगान् कल्पकीटिशतं नरः ।  
 स्वदेहगन्धैः स शुभैः पूरयेच्छिवमन्दिरं ॥  
 क्रमाद्गन्धर्व्वं मासाद्य गन्धर्व्वंस्तत्र पूजितः ।  
 क्रमादागत्य लोकेऽस्मिन् राजा भवति वीर्यवान् ॥  
 इति सौरपुराणोक्तं वर्णमण्डलं ।  
 शुकपक्षे नवं धान्यं पक्कं ज्ञात्वा सुशीभनं ।  
 सुतिथौ च सुनक्षत्रे सुहृत्तं च शुभे सति ॥  
 गच्छेत् क्षेत्रं विधाने च गीतवाद्यपुरःसरः ॥  
 तत्र वक्रिन्तु प्रक्षाल्य धान्यैः संस्तीर्य शास्त्रवत् ।  
 कृत्वा होम ततः पञ्चानयेद्धान्यं विभूषितं ॥  
 पुष्पैर्वस्त्रैः फलैर्मूर्त्तैर्हस्त्यश्वरथसंयुतं ।  
 तेन देवान् पितॄन् बभूवुन् तर्पयित्वा यथाक्रमं ॥  
 विभण्य च यथाशक्त्या दैवज्ञाः सस्यरक्षितः ।  
 नववस्त्रावृतः स्रग्वी स्वनुलिगः स्वलङ्कृतः ॥  
 स्मितः पूर्वं मखस्तुष्टा ब्रह्मघोषपुरःसरः ।  
 श्चक्रवन्त्वा परमं हृष्टो मङ्गलालम्बनादयुक् ॥  
 प्राञ्चीयाद्दुधिसंयुक्तं नवमन्त्राभिमन्त्रितं ।  
 कृताहारञ्च कुरुते गीतवाद्यैर्महीत्सवं ॥  
 इति ब्रह्मपुराणोक्तं संस्तीत्सवः ।

श्रीरोदसागरात् पूर्व्वं मथ्यमानात् पुरातनात् ।  
 श्यामा देवी समुत्पन्ना सर्व्वलक्षणसंयुता ॥  
 नारायणी याऽसावुक्ता सुकुमारा यशस्विनी ।  
 सतीदेहसमुद्भूता सती परमगोभना ॥  
 तां दृष्ट्वा चकितास्तत्र तत सर्व्व सुरासुराः ।  
 मनोन्ना समुखी चैषा हन्त दत्तामहे वर्य्यं ॥  
 एवमुक्त्वा वचस्तां च ददृशुः सर्व्व एव तत् ।  
 चतुर्नामथ तस्यास्ते द्राक्षेति भुवि विस्तरं ॥  
 अतोऽर्षं सा सुपक्वा च पूजितव्या प्रयत्नतः ।  
 पुष्यधूपानुलेपाद्यैस्तथा ब्राह्मणतर्प्यं गेः ॥  
 ह्यो बालको तथा हृदो संपूज्य तदनन्तरं ।  
 धर्मार्थकाममोक्षश्च समद्दिश्य कुटोरकेः ।  
 स्त्रीसहायेन हृष्टेन भृत्यमित्सुतैः सह ॥  
 स्रजुस्त्रिभुवन विधिवत् स्रग्विणा च सुवाससा ।  
 निविदिता गुरुभ्यश्च स्वयं भोज्या न चान्यथा ।  
 उक्तवद्यापि कर्त्तव्यो नृत्यगीतसमाकुलः ॥

इति आदित्यपुराणोक्तः श्यामामर्षीसुवः ।

—००—

ब्रह्मोवाच ।

ऋग्वेदमात्रेयगोत्रं सीमदं विदुर्मुने ।  
 काश्यापं च यजुर्वेद उपदेवं विदुर्बुधाः ॥  
 सामवेदोऽपि गोत्रेण भारद्वाजः पुरन्दरः ।



अधिदेवं विजानीयाद्गुण्यस्माच्छृणुष्व तु ॥

ऋग्वेदः पद्मपत्रायताक्षः प्रलङ्घिताम्बरः ।

सुविभक्तप्रीवः कुञ्चितकेयशमश्रुः प्रमाणेनापि वितस्तयःपञ्च ।

स राजतो मीत्तिकजोऽथ पूज्यो

वरप्रदो भक्तियुतद्विजाय ॥

यजुर्वेदः पिङ्गलाक्षः कृगमध्यस्थूलगलकपोलः ताम्रवर्णः प्रादे-  
शात् षड्दैर्घ्येण ।

चित्रे लिङ्गेऽथवा पूज्य सर्वकामानवाप्नुयात् । सामवेदो  
नित्यस्त्रग्वी सुव्रतः शुक्तिः शुचिवासाः क्षमी दान्तय दण्डी  
काचनयनः आदित्यवर्णो वर्णेन षड्वरत्रिमात्रः । ताम्रेय-  
मणाविन्द्राद्यास्येड्वा पूजितः शुभदो भवेत् । अथर्वदेदस्तीक्ष्णधण्डः  
कामरूपी विश्वात्मा विश्वकृत् क्रूर जङ्घ्वज्वालावान् क्षुद्रकर्मा  
वंगच्छतोरथापी नीलोत्पलवर्णो वर्णेन स्वदारतुष्टः सौवर्णः पद्म-  
रागे वा रुद्राक्षे वा पूजनीयः प्रपूज्य सर्वान् कामानवाप्नुयात् ।

अथर्ववेदविहितानि ।

यावन्ति वेदगोतानि पुण्ययज्ञव्रतानि च ।

तावन्ति श्रवणादस्य प्राप्नुयाद्भक्तिभावितः ॥

अपुत्रो लभते पुत्रानधनो धनमाप्नुयात् ।

विद्यामविदानाप्नोति दुःखी दुःखात् प्रमुच्यते ॥

पठित्वा सर्वदेवानां सम्मतो द्विजवल्गवः ।

जायते नात्र सम्वेहो देवी च वरदा सदा ॥

इति देवीपुराणोक्तं देवव्रतं ।

सौरपुराणात् ।

अथात्मचरणौ स्थित्वा शिवक्षेत्रे वसेन्नरः ।  
देहान्ते शिवसायुज्यं लभति नात्र संग्रयः ॥  
लिङ्गपुराणात् ।

भित्त्वा पदद्वयं वापि शिवक्षेत्रे वसेत्तु यः ।  
स याति शिवताक्षेत्रे नात्र कार्या निचाराणा ॥

इति तीव्रव्रतं ।

—०—

शङ्कर उवाच ।

आदित्यग्रहणे राम ग्रहणे च निशाभृतां ।  
उपवामाद्वाप्नोति सर्वं कल्पपनाशनं ॥  
स्नानं दानं तथा ज्ञाप्यमन्त्रय्यं तत्तदा स्मृतं ।  
आहश्च भार्गवेशेष्ठ वङ्गिमंपूजनं तथा ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तो ग्रहणोपवामः ।

—०००—

अथ महातपोव्रतानि ।

मासे मामे च यः कुर्यात्त्रिरात्रचरणं बुधः ।  
कौबेरं लोकमामाद्य स विन्देत् परमं पदं ॥  
चतुर्थेऽहनि यो भुङ्क्ते व्रतवांथ शुचिर्मरः ।  
गात्र्यर्ध्वं स पदं प्राप्य मोदते शक्रवाहिवि ॥  
पञ्चमेऽहनि यो भुङ्क्ते प्रतिमाममतन्द्रितः ।

विमुक्तः सर्वपापैश्च स गच्छेद्विवमूर्जितः ॥  
 यो भुङ्क्ते दिवसे षष्ठे नित्यं नियमवान् शुचिः ।  
 वारुणं लोकमासाद्य स विन्देत्परमं पदं ॥  
 सप्तमेऽहनि यो भुङ्क्ते जितहन्दी दृढव्रतः ।  
 आदित्यलोकमासाद्य सोऽपि विन्देन्महाश्रियं ॥

जितहन्तः सहिष्णुः ।

अष्टमेऽहनि यो भुङ्क्ते जितहन्दी दृढव्रतः ।  
 वैष्णव लोकमासाद्य स भवित्परमद्युतिः ॥  
 नवमेऽहनि यो भुङ्क्ते नरा नियममास्थितः ।  
 स वसूनां प्रियो भूत्वा चरते वसुभिः सह ॥  
 दशमेऽहनि यो भुङ्क्ते द्वादशाहफलं लभेत् ।  
 अग्निभ्यां च समो भूत्वा अन्नं च खिलते तथा ॥

द्वादशाहः क्रतुविशेषः ।

एकादशं तु यो भुङ्क्ते दिवसे मानवः शुचिः ।  
 एकादशाहं संप्राप्य स रुद्रगणतां व्रजेत् ॥  
 यो द्वादशं तु दिवसे भुङ्क्ते देवि सदा नरः ।  
 द्वादशाहन्तु सम्प्राप्य शकल्लोके महीयते ॥  
 त्रयोदशं तु यो नित्यमश्नाति दिवसे नरः ।  
 वसेत् स भार्गवस्थानं प्राप्य दिव्यसुखान्वितं ॥  
 चतुर्दशं तु दिवसे नित्यमश्नाति यो नरः ।  
 स वसेद्गुह्यलोके तु शिवमायुच्यतां व्रजेत् ॥  
 अर्धमासं क्षिपेद्यस्तु नित्यमेव जितेन्द्रियः ।  
 देवराजं तुल्योऽसौ भूत्वा स्वर्गं च तिष्ठति ॥

यस्तु मासं क्षिपेद्दीरो जितक्रीडो जितेन्द्रियः ।  
 विमानेन स दिव्येन अप्सरीभिः समन्वितः ॥  
 सर्वं लोकेषु वसते जन्मान्यष्टायुतानि च ।  
 ततो ब्रह्मासनं प्राप्य ब्रह्मणा च सुपूजितः ।  
 ब्रह्मलोके निवसते यथा ब्रह्मनरोत्तमः ॥

महाभारते ।

मामि मामि तिरात्राणि कृत्वा वर्षाणि द्वादश  
 गणाधिपत्यं प्राप्नोति निःसपत्नमनाविलं ॥  
 यस्तु संवत्सरं पूर्णं एकाहारा भवेन्नरः ।  
 अतिरात्रस्य यज्ञस्य सम फलमुपाश्रुते ॥  
 दशवर्षमहस्त्राणि सर्गलोके महाश्रुते ।  
 तत्क्षणादिह चागत्य माहात्म्यं प्रतिपद्यते ॥  
 यस्तु संवत्सरं पूर्णञ्चतुर्थं भक्तमश्रुते ।  
 अहिंसानिरतो नित्यं सत्यवाम्बिजितेन्द्रियः ॥  
 वाजपेयस्य यज्ञस्य स फलं समुपाश्रुते ।  
 त्रिंशद्वर्षमहस्त्राणि वर्षाणां दिवि सोदते ।  
 अष्टमेन तु भक्तेन जीवेत्संवत्सरं नरः ।  
 गवां मेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥  
 हंसमारमयुक्तेन विमानेन स गच्छति ।  
 पञ्चाशत्सु महस्त्राणि वर्षाणि दिवि सोदते ॥  
 पक्षे पक्षे गते राजन् योऽश्रांशद्वर्षमेव तु ।  
 षण्मासानग्नस्तस्य भगवानिह राऽब्रवीत् ॥  
 षष्टिवर्षमहस्त्राणि दिवमावसते स च ॥

अश्रीयाद्द्वितीये पक्षे सर्वदिनेष्विति विशेषः ।

वीणानां वल्लकोनाश्च वेणूनाश्च विश्राम्यते ।

सुघोषैर्भधुरैः शब्दैः सुसुप्तः प्रतिबुध्यते ॥

संवत्सरमिहैकान्तु मासि मासि पिवेत् पयः ।

फलं विश्वजित्स्नात प्राप्नोति स नरोत्तमः ॥

सिंहध्यान्नप्रयुक्ते न विमानेन स गच्छति ।

गतश्चाष्टौ सुरकन्या रमयन्ति च तन्नरं ।

सप्ततिश्च सहस्राणि वर्षाणां दिवि मोदते ।

मासादूर्ध्वं नरध्यान्न नोपवासो विधीयते ॥

युधिष्ठिर उवाच ।

यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं भवेत् प्रभो ।

तुल्यो यन्नफलैरेव तन्मे ब्रूहि पितामह ॥

भीष्म उवाच ।

यस्तु कर्ण्यं तथा सायम्भुञ्जानो नान्तरा पिवेत् ।

अहिंसानिरतो नित्यं जुह्वानो जातवेदसं ॥

यज्ञं बहुसुवर्णं ग्नी वासवप्रियमाहरेत् ।

सत्यवाक् दानशीलश्च ब्रह्मशासनसूचकः ॥

दान्तो दान्तो जितक्रोधी यत्फलं समवाप्नुयात् ।

पाण्डुराभप्रतीकाग्नि विमाने हंसलक्षणे ॥

कर्ण्यमिति प्रातः । पिवेद्दुदकमपीति शेषः ।

षड्भिरेव च स वर्षैः सिध्यते नात्र संशयः ।

देवस्त्रीणामपि वसेत् नृत्यगीतनिनादिते ।

प्राजापत्यं वसेत् पद्मं वर्षाणामग्निसम्भवं ॥

पद्मं कीटिशतं ।

त्रीणि वर्षाणि यः प्राशेत् शततन्त्रे कभोजनं ।  
 धर्मपत्नीरतीनित्यमग्निष्टोमफलं लभेत् ॥  
 द्वितीये दिवसे यस्तु प्राश्रीयादेकभोजनं ।  
 सदा द्वादशमासान् जृह्णानो जातवेदसं ॥  
 यच्च बहुसुवर्षं यो वासवप्रियमाचरेत् ।  
 सत्यवाग्दानशीलश्च ब्रह्मश्यासनसूयकः ॥  
 क्षान्तो दान्तो जितक्रोधः यत् फलं समराप्नुयात् ।  
 पाण्डुराभ्रप्रतीकाशं विमाने हंससङ्घणे ॥  
 द्वे समाप्ते ततः पद्मे सोऽप्सरोभिर्बन्धुसह ।

समाप्ते परिपूर्णं ।

द्वितीये दिवसे यस्तु प्राश्रीयादेकभोजनं ।  
 सदा द्वादशमासान् जृह्णानो जातवेदसं ॥  
 अग्निकार्यपरो नित्यं नित्यकार्यप्रबोधनं ।  
 अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं ॥  
 सप्तर्षीणां सदा लोके सोऽप्सरोभिर्बन्धुसह ।  
 निवर्त्तनञ्च तत्रास्य त्रीणि पद्मानि वै विदुः ॥

आस्यति स्थित्वा ।

दिवसेयश्चतुर्थे तु प्राश्रीयादेकभोजनं ।  
 स च द्वादशमासान् जृह्णानो जातवेदसं ॥  
 वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं ।  
 सागरस्य च पर्यन्ते सर्वलोके च वेगयेत् ॥  
 देवराजस्य च क्रोडानित्यकालमवेक्षते ।

सागरस्य च पथ्यन्तं समुद्रसंख्याविशिशान्तं ॥

दिवसे पञ्चमे यस्तु प्राग्नीयादेकभोजनं ।

स च द्वादशमासात् वै जुह्वानो जातवेदसं ॥

इत्युच्यः सत्यवादी च ब्रह्मण्यथाविहितकः ।

अनसूयुरपापस्थो द्वादशाहफलं लभेत् ॥

जाम्बूनदमय दिव्यं विमानं हंसलक्षणं ।

सूर्यमालासमाभासमारीहेत्याण्डुरं गृहं ॥

आवर्त्तनानि चत्वारि । तुलापद्मानि द्वादश ।

शराग्निपरिमाणञ्च तथाभी वसते चिरं ॥

आवर्त्तनानि मन्वन्तराणि तुलापद्मानि गतंप्रमानि ।

शराग्निपरिमाणं । शराः पञ्च । अग्नयस्तयः ॥ इदमपि

परिमाणं मन्वन्तराणामेव ।

दिवसे यस्तु पष्टे तु मुनिः प्राग्नीत भोजनं ।

सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं ॥

सदा त्रिषवणस्त्रायो ब्रह्मचार्यनसूयकः ।

मुनिः संयतवाक् ।

गवांभेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं ।

तथैवाप्सरसामङ्गे प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते ॥

नूपुराणां निनादेन मेखलानाञ्च निस्वनैः ।

कीटोसहस्रवर्षाणि युगकोटिगतानि च ॥

पद्मान्यष्टादश तथा पताके द्वे तथैव च ।

अयुतानि च पञ्चागह्वनचर्मगतस्य च ।

लोम्ना प्रमाणेन समं ब्रह्मलोके महीयते ॥

पताकाः संख्याविशेषः ।

द्विवसे मममे यस्तु प्राश्रीयादेकभीजनं ।  
 सदा द्वादशमामान्वे जृह्वाणी जातवेदसं ॥  
 सरस्वतीं गोपयानो ब्रह्मचर्यं समाचरेत् ।  
 समनोवर्णकञ्चैव मधुमांसञ्च वर्जयेत् ॥  
 पुरुषो मरुतां लोकमिन्द्रलोकञ्च गच्छति ।  
 तत्र तत्र च मिद्वार्यो देवकन्याभिरर्च्यते ।  
 फलं ब्रह्मसूत्रण्यस्य यज्ञस्य लभते नरः ॥  
 संख्यामतिगुणां वापि तेषु लोकेषु मोदते ।

कुडुमाद्रि श्रिगुणं । अतिक्रान्तगुणानामपिरिमितामिति  
 यावत् ।

यस्तु संवत्सरं पूर्णं भुङ्क्तेऽद्वन्द्वेभे नरः ।  
 देवकार्यपरां नित्यं जृह्वानो जातवेदसं ॥  
 पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोत्यनुक्रमं ।  
 पञ्चवर्णनिभञ्चैव विमानमधिरोहति ॥  
 ऊष्णाः कनकगौराद्यनार्थः श्यामास्तथा पराः ।  
 वर्धरूपममायुक्ता लभते नात्र भगवः ॥  
 यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते नवमे नवमेऽहनि ।  
 सदा द्वादशमामान्वे जृह्वानो जातवेदसं ॥  
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।  
 पुण्डरीकप्रकाशं वे विमानं लभते नरः ।  
 दीप्तसूर्याग्निनेत्रांभिर्दिव्यमानाभिरिव च ।



नीयते रुद्रकन्याभिः सोऽन्तरिक्षं मनातनं ॥  
 अष्टादशसहस्राणि वर्षाणां कल्पमेव च ।  
 कीटीशतसहस्रञ्च तेषु लोकेषु मोदते ॥  
 यस्तु संवत्सरं भुङ्क्ते दशाहे वै गते गते ।  
 सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसं ॥  
 गते प्राप्ते तथा ब्रह्मकन्या चामरविजिता ।  
 कुरुते तत्र सा क्रीडा मर्व्वभूतमनोहरे ॥  
 अश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं ।  
 रूपवत्पथ तं कन्या रमयन्ति सदा नरं ॥  
 एकादशे तु दिवसे यः प्राप्ते प्रायते हविः ।  
 सदा द्वादशमासांश्च जुह्वानो जातवेदसं ॥  
 परस्त्रियं नाभिलषेहाचाथ मनसापि वा ॥  
 अमृतञ्च न भाषेत मातापित्रोः कृतेऽपि च ।  
 अभिगच्छेन्महादेवं विमानस्थं महाबलं ।  
 रुद्राणां तमधोवासं दिवि दिव्यं मनोरमं ।  
 वर्षाणां परिमेयानि युगान्ताग्निसमप्रभः ॥  
 कीटीशतसहस्रञ्च क्रीडिदशगतानि च ।  
 रुद्रं नित्यं प्रणमते देवदानवसंस्मृतः ॥  
 स तस्मै दर्शनं प्राप्तो दिवसे दिवसे भवेत् ।  
 दिवसे द्वादशे यस्तु प्राप्ते वै प्रायते हविः ।  
 सदा द्वादशमासान्वै जुह्वानो जातवेदसं ।  
 आदित्यद्वादशाभासं विमानं सोऽधिरोहति ॥  
 अष्टमहर्षिसंयुक्तं ब्रह्मलोके प्रतिष्ठितं ।

नित्यमावसथं राजन् नरनारीसमाकुलं ।  
 त्रयोदशे तु दिवसे यः प्राप्ते भुञ्जते हविः ॥  
 सदा द्वादशमासान् वै देवसत्रफलं लभेत् ।  
 रत्नपद्मीदयं नाम विमानं साधयेन्नरः ।  
 तत्र शङ्खपताके द्वे युगान्तं कल्पमेव च ॥  
 अयुतायुतं तथापद्मं समुद्रश्च तथा वसेत् ॥

शङ्खपताकाप्रभृतयः पताकाविशेषः ।  
 गीतगन्धर्व्वघोषैश्च भेरीपणवनिःस्वनेः ।  
 सदाप्रसुदितस्ताभिर्देवकन्याभिरीज्यते ॥  
 चतुर्दशे तु दिवसे यः सदाप्राशयेत्तविः ।  
 सदा द्वादशमासान्वै महामेधफलं लभेत् ॥  
 अग्निर्दृश्यवयोरूपा देवकन्याः स्वलङ्घिताः ।  
 सृष्टतप्ताङ्गदधरा विमानैरूपयान्ति तं ॥  
 कलहंसविनिर्घोषैर्नूंपुराणाश्च निस्वनेः ।  
 काञ्चीनाश्च समुत्कर्षेस्तत्र तत्र विप्रोध्यते ॥  
 देवकन्यानिवासे च तस्मिन् वसति मानवः ।  
 जाह्नवीवालुकाकीर्मूर्च्छासंवक्षरं नरः ॥  
 यस्तु पक्षे गते भुङ्क्ते एकभक्तं जिनेन्द्रियः ।  
 सदा द्वादशमासांस्तु जह्वाणो जातवेदसं ॥  
 राजसुगसहस्रस्य फलं प्राप्नोत्यनुत्तमं ।  
 यानमारोहते दिव्यं हंसवर्ह्णमेधितं ॥  
 मनिमण्डलकौशित्तं जातरूपसमाहृतं ।  
 दिव्याभरणशोभाभिर्व्वरस्त्रीभिरलङ्कृतं ॥

एकस्तम्भश्चतुर्द्वारं सप्तभौमं सुमङ्गलं ।  
 वैजयन्तीमहस्त्रैश्च शोभितं गौतनिखनैः ॥  
 दिव्य दिव्यगुणोपेतं विमानमधिरोहति ।  
 मणिमुक्ताप्रवालैश्च भूषितं वैद्युतप्रभं ॥  
 वसेत् युगमहस्त्रञ्च खड्गकुञ्जरवाहनः ।  
 षोडशे दिवसे प्राप्ते यः कुर्यादेकभोजनं ।  
 सदा द्वादशमासान् वै सोमयज्ञफलं लभेत् ॥  
 सोमकन्यानिवासेषु सोऽध्यावसति नित्यशः ।  
 सौम्यगन्धानुलिप्तश्च कामचारगतिर्भवेत् ॥  
 सुदर्शनाभिर्नारीभिर्मुधुराभिस्तथैव च ।  
 अर्चयते वै विमानस्यः कामभोगैश्च सेव्यते ॥  
 फलं पद्मशतप्रख्यं महाकल्पं दशाधिकं ।  
 आवर्त्तनानि चत्वारि साधयेच्चाप्यसौ नरः ॥  
 दिवसे सप्तदशमे यः प्राप्ते प्राशते हविः ।  
 सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं ॥  
 स्थानं वारुणमैन्द्रञ्च रुद्रश्चाप्यधिगच्छति ।  
 मारुतीश्वरसश्चेव ब्रह्मालोकं स गच्छति ॥  
 तत्र दैवतक्रत्याभिरासने नोपचर्यते ।  
 भूर्भूवश्चापि देवर्षिं विश्वरूपमवेक्षते ॥  
 तत्र देवाधिदेवस्य कुमार्यो रमयन्ति तं ।  
 द्वात्रिंशद्रूपधारिण्यो मधुराः समलङ्कृताः ॥  
 चन्द्रादित्याङ्गभौ यावत् गगणे चरतः प्रभौ ।  
 तावच्चरत्यसौ वीरः सुधाश्रुतरसाशनः ॥

अष्टादशे यो दिवसे प्राग्गीयादिकभोजन ।  
 सदा द्वादशमासान् वै सप्तलोकान् स पश्यति ॥  
 रथैः सनन्दिघोषैश्च पृष्ठतः सोऽनुगम्यते ।  
 देवकन्याभिरुद्वैस्तु भ्राजमानैः स्वलङ्कृतैः ॥  
 व्यघ्नसिंहप्रयुक्तश्च भेषम्वननिनादितं ।  
 विमानमुत्तमं दिव्यं सुमुखी ह्यधिराहृतं ॥  
 तत्र कल्पसहस्रं स कन्याभिः सह भीदत ।  
 सुधारसश्च भुञ्जीत अमृतोपममुत्तमं ॥  
 एकोनविंशतिदिने यो भुङ्क्ते एकभोजनं ।  
 सदा द्वादशमासान् वै सप्तलोकान् स पश्यति ॥  
 उत्तमं लभते स्थानमप्सरोगणसेवितं ।  
 गन्धर्व्वरूपगीतश्च विमानं सूर्यवर्षमं ॥  
 तत्रामरवरप्सोर्भर्मोदते विगतञ्जरः ।  
 दिव्याम्बरधरः श्रीमानयुतातानां शतं शतं ॥  
 पूर्णैश्च विंशे दिवसे यो भुङ्क्ते त्वेकभोजनं ।  
 सदा द्वादशमासांस्तु सत्यवादी धृतव्रतः ॥  
 अमांसाशो ब्रह्मचारी सर्व्वभूतहिते रतः ।  
 स लोकान् विपुलान् रम्यानादित्यानामुपायते ॥  
 गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च दिव्यमाख्यानमुलेपनैः ।  
 विमानैः काञ्चनैर्दिव्यैः पृष्ठतश्चानुगम्यते ॥  
 एकविंशे तु दिवसे यो भुङ्क्ते द्वेकभोजनं ।  
 सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं ॥  
 लोकभोगनसं दिव्यं शक्रलोकश्च गच्छति

अश्विनोर्मरुताश्चैव सुखेष्वभिरतः सदा ।  
 अनभिन्नश्च दुःखानां विमानवरमास्थितः ॥  
 सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडत्यमरवत् प्रभुः ।  
 हाविंशे दिवसे प्राप्ते यो भुङ्क्ते श्लोकभोजनं ।  
 सदा हादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं ॥  
 अहिसानिरतो धीमान् सत्यवागनसृयक ।  
 लोकान् वसूनामाप्नोति दिवाकरसमप्रभः ॥  
 कामचारी सुधाहारी विमानवरमास्थितः ।  
 रमते देवकन्याभिर्हिव्याभरणभूषितः ॥  
 त्रयोविंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनं ।  
 सदा हादशमासांस्तु मिताहारी जितेन्द्रियः ॥  
 वायो रुसनश्चैव रुद्रलोकश्च गच्छति ।  
 कामचारी कामगमः पूज्यमानोऽप्यरोगणैः ॥  
 अनेकगुणपर्यन्तं विमानवरमास्थितः ।  
 रमते देवकन्याभिर्हिव्याभरण भूषितः ॥  
 चतुर्विंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनं ।  
 सदा हादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदसं ॥  
 आदित्यानामधीवासे मोदमानो वसेच्चिरं ।  
 रमते देवकन्यानां सहस्रै वायुतै स्तथा ।  
 पञ्चविंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनं ॥  
 सदा हादशमासान् वै पुष्कलं यागमारुहन् ।  
 रथैः सनन्दघोषैस्तु पृष्ठतोऽङ्गनुगम्यते ॥  
 देवकन्यासमारुहे राजतैर्विमलैः ह्रमैः ।

तत्र कल्पसहस्रं वै रमते स्त्रीगतावृतः ॥  
 भोज्यं रसश्च लभते सदा ते अमृतोपमं ।  
 षड्विंशे दिवसे यस्तु प्राश्यादेकभोजनं ॥  
 सदा द्वादशमासान् वै नियती नियताशनः ।  
 जितेन्द्रियो वीतरागो जुह्वानो जातवेदमं ॥  
 सम्प्राप्नोति महाभाग पूज्यमानोऽपरीगणैः ।  
 समानां महतां लोकान्वमूनाश्च समश्रुते ॥  
 गन्धर्वैरपरीभिश्च पूज्यमानः समश्रुते ।  
 द्वे युगानां सहस्रेतु दिवि दिव्येन तेजसा ॥  
 सप्तविंशे तु दिवसे यः प्राशेदेकभोजनं ।  
 सदा द्वादशमासान् वै जुह्वानो जातवेदमं ॥  
 फलमाप्नोति विपुलं देवलोके च मोदते ।  
 अमृताशी वसंस्तत्र स वै तप्तः प्रपूज्यते ॥  
 स्त्रीभिर्भ्रानोभिरामाभीरममाणो मदीत्कटः ।  
 युगकल्पसहस्राणि तीर्ण्णावमति वै सुखं ॥  
 योऽष्टाविंशे तु दिवसे प्राश्यादेकभोजनं ।  
 सदा द्वादशमासान् वै जितात्मा च जितेन्द्रियः ॥  
 फलं देवर्षिचरितं विपुलं समुपाश्रुते ।  
 भोगवांस्तेजसायुक्तः स्वर्गे रविरिवामनः ॥  
 सुकुमार्यश्च तं नार्यी रममाणाः सुवर्चसः ।  
 रमयन्ति मनःकान्ते विमाने सूर्यवर्षसे ॥  
 सर्वकामयुते दिव्ये कल्पायुतशतं समाः ।  
 एकोनविंशे दिवसे यः प्राशेदेकभोजनं ॥

सदा द्वादशमासान् सत्यव्रतपरायणः ।  
 तस्य लीकाः शुभा दिव्या दिव्यगन्धगुणान्विताः ॥  
 तत्र वैतं शुभानार्यीं दिव्याभरणभूषिताः ।  
 मनोभिरामा मधुरा रमयन्ति मदीत्कटाः ॥  
 भोगवांस्तेजसा युक्तो वैश्वानरसमप्रभः ।  
 दिव्यो दिव्येन वपुषा भ्राजमान इवामरः ॥  
 वसुनां मरुताश्चैव साध्यानामश्विनोस्तथा ।  
 ब्रह्मणाञ्च तथा लोकान् ब्रह्मलोकञ्च गच्छति ॥  
 यस्तु मासे गते भुङ्क्ते एकभक्तं समात्मकः ।  
 सदा द्वादश वै मासान् ब्रह्मलोके गतिर्भवेत् ॥  
 सुधारसक्तताहारः श्रीमान् सर्वमनोहरः ।  
 तेजसा वपुषा युक्तोभ्राजते रश्मिमानिव ॥  
 स्वयं प्रभाभिर्नारीभिर्विमानस्थो मण्ड्यते ॥  
 रुद्रदेवर्षिकन्याभिः सततश्चाभिपूज्यते ।  
 यावद्वर्षसहस्रन्तु जम्बूद्वीपेऽभिवर्षति ॥  
 तावत्संवत्सराः प्रोक्ता ब्रह्मलोकस्य धीमतः ।  
 विप्रश्चैव यावन्त्यो निपतन्ति नभस्त्रालात् ॥  
 वर्षा सु वर्षतस्तावन्नवसत्यमरप्रभः ।

यावदित्यादि । जम्बूद्वीपेषु च वर्षासु वर्षसहस्रं धीमती  
 देवस्य वृष्टिकुर्वती यावन्तो विप्रघोजसकशा नमस्यन्तात्रिपतन्ति  
 तावन्तः संवत्सरान् ब्रह्मलोके वसतीत्यर्थः ।

मासोपवासी वर्षस्तु दशभिः स्वर्गसुत्तमं ।  
 महर्षित्वमथासाद्य सशरीरगतिर्भवेत् ॥

मुनिर्दान्तो जितक्रोधोजितशिश्रोदरस्तथा ।

जुह्वयन्तो नियमतः सन्धोपासनसेविता ।

बहुभिर्नियमैरेवं मासमश्राति योत्तरः ।

अभावकाशशीलस्य तस्य यासो निरुप्यते ॥

दिवङ्गत्वा शरीरेण स्वेन राजन् यथाऽमरः

स्वर्गं पुण्यं यथाकामं नृप भुङ्क्ते यथाविधि ॥

उपवामानिमान् कृत्वा गच्छेच्च परमां गतिं ।

तथा वैश्याश्च शूद्राश्च उपवासं प्रकुर्वते ॥

त्रिरात्रं द्वित्रिरात्रश्च तयोः पुष्टिर्न विद्यते ।

चतुर्थभक्तक्षपणं वैश्यशूद्रेऽभिधीयते ॥

त्रिरात्रन्तु न धर्मज्ञैर्विहितं ब्रह्मवादिभिः ।

इति महानपोन्नमानि ।

—०—

राम उवाच ।

कच्छ्राणां श्रोतुमिच्छामि नामानि च विधिं तथा ।

एतन्मे ब्रूहि धर्मज्ञत्वं हि वेत्सि यथा तथं ॥

पुष्कर उवाच ।

कच्छ्राण्येतानि कार्याणि राम वर्णत्रयेण च ।

कच्छ्रेष्वेतेषु शूद्रस्य नाधिकारो विधीयते ॥

आदौ तु मण्डलं कार्यं सर्वैकच्छ्रेषु भार्गव ।

नित्यं त्रिषवणस्नान केशवस्य च पूजनं ॥

होमः पवित्रमन्त्रैश्च तथातद्गत एव च ।



स्त्रीशूद्रपतितानाञ्च तथालापं विवर्जयेत् ॥

एतत् कृच्छ्रेषु सर्वेषु कर्त्तव्यमविशेषतः ।

वीरासनञ्च कर्त्तव्यं कामतोऽथ यथाविधि ॥

वीरामनेन हीनञ्च विधिहीनं प्रकीर्तितं ।

राम उवाच ।

वीरामनमहं तत्त्वं श्रोतुमिच्छामि सुव्रत ॥

वीरासनेन सहितं कृच्छ्रं बहुगुणं यथा ।

पुष्कर उवाच ।

उत्थितस्तु दिवा तिष्ठेदुपतिष्ठेत्तथा निशि ।

एतद्दीरासनं प्रोक्तं महापातकनाशनं ॥

आमिच्छया तु ही मासौ पक्वो न पयसा तथा ।

अष्टरात्रं तथा दध्ना त्रिरात्रमपि सर्पिषा ॥

निराहारस्त्रिरात्रन्तु कुर्यादुद्दालकव्रतं ।

सर्वपापप्रशमनं सर्वकामप्रदन्तथा ॥

स्नापयेदात्मनोर्थाय पावकं भृगुनन्दन ।

वह्नी ततोनुजुहुयाद्घातेन च कस्यचित् ॥

ब्रह्मदेवेति मन्त्रेण साध्यमानो विचक्षणः ।

दर्भांस्तु खलु बध्नीयाद्ब्रह्मार्थमिति च स्तुतिः ॥

त्रितञ्च स्नाप्यमानञ्च भाण्डे न्यस्तं तथा पुनः ।

अनेन राम मन्त्रेण नरस्त्रिरभिमन्त्रयेत् ॥

यवोसि धान्यराजोसि वारुणं मधुसंयुतं ।

विच्छेदे सर्वपापानां पवित्रमृषिभिस्तुतं ॥

हृतं यवा मधु यवा चापीहि अमृतं यवाः ।

सर्वं पुनीत मे पापं यन्मया दुःस्कृतं कृतं ॥  
 वाचाकृतं कर्मकृतं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितं ॥  
 अलक्ष्मीं नाशयत्येव सर्वं पुनीत मे यवाः ।  
 श्वशूकरावलीढञ्च उद्वाद्युपहतञ्च यत् ।  
 मातुर्गुरोश्च शूश्रूषा सर्वं पुनीत मे यवाः ।  
 गणात्मं गणिकामञ्च शूद्रात्मं श्रावस्तकं ॥  
 चीरस्यात्मं नवश्रावणं सर्वं पुनीत मे यवाः ।  
 बालवृद्धमधर्मं च राजहारगतञ्च यत् ॥  
 सुवर्णसैन्यजं ब्राह्मणमयाण्यस्य च याजनं ।  
 ब्राह्मणानां परीवादं सर्वं पुनीत मे यवाः ॥  
 भास्त्रं न्यस्तस्य मन्वीयन्ततस्तु परिकीर्त्तयेत् ।

ये देवा मदनो जाताः मनोयुताः तेसुदत्ता दत्तपितारस्ते नः  
 पान्तु ते नोऽवन्तु तेभ्यो नस्तम्यः ।

अनेनात्मनि धर्मज्ञ जुष्टयादात्मनः सदा ।  
 न कुर्यादतिसौहित्यं ब्रह्म एतद्दि यावकं ॥  
 ये चाधिनिस्त्रिरात्रन्तु षड्रात्रमपि यापितः ।  
 उपपातकिना प्रीक्तं सप्तरात्रिमरिन्दम ।  
 मञ्जापातकयुक्तस्तु षड्रात्रं द्विगुणं स्मृतं ॥  
 एकविंशतिरात्रेण कामानाप्नोति वाञ्छितं ॥  
 मासेन सर्वपापेभ्यो मोक्षमाप्नोत्यसंग्रहं ।  
 गवां निहारनिर्मुक्तैर्यवैः कृत्वात देव तु ॥  
 फलं प्राप्नोति धर्मज्ञ तथा दशगुणं भुवं ।  
 मासेन मोक्षान् त्रिदशान् वेदान् विद्याञ्च पश्यति ॥

वरशापसमर्थं तथा भवति भार्गव ।  
 एकैकवृक्षाद्यग्यान् पिण्डाच्छिष्यसंमितान् ॥  
 एकैकं ज्ञासयेत् कृष्णे प्रतिघत्पमृत्तक्रमात् ।  
 हविष्यञ्च महाभाग नाश्रीयाच्चन्द्रसंचये ॥  
 एतच्चान्द्रायणं प्रोक्तं यवमध्यं महामुनिः ।  
 एतदेव विपर्यस्तं वाजिमिध्यं प्रकीर्तितं ॥  
 अष्टभिः प्रत्यहं यासैर्यं वैश्वान्द्रायणञ्चरेत् ।  
 तथा कथञ्चित्पिण्डानाञ्चत्वारिंशच्छतद्वयं ॥  
 मासेन भक्षयेदेतत्सुरचान्द्रायणं भवेत् ।  
 गोचीरं सप्तरात्रञ्च हे सुरे च चष्टयं ॥  
 सुराजयात् सप्तरात्रं सप्तरात्रात्सुराद्वयं ।  
 सुरा एयेण षभ्रात्रं त्रिरात्रं वायु ना भवेत् ॥  
 एतत् सोमायनं नाम व्रतं कल्मषनाशनं ।  
 ब्रह्मं पिबेदपस्तूणाः ब्रह्ममुष्णं पयः पिबेत् ॥  
 ऋह मुष्णं घृतं पौत्वा वायुभक्षी भवेत् ब्रह्मं ।  
 तप्तकञ्चमिदं प्रोक्तं शीतैः शीतं प्रकीर्तितं ॥  
 कञ्चतिक्ञ्चं पयसा दिवसानेकविंशतिः ।  
 गोमूत्रं गोमयं चीरं दधि सर्पिः कुशीदकं ॥  
 एकरात्रोपवासञ्च कञ्चं सान्तपनं स्मृतं ।  
 एतच्च प्रत्यहाभ्यस्तं महासान्तपनं स्मृतं ॥  
 ब्रह्माभ्यस्तमथैकैकं महासान्तपनं स्मृतं ।  
 कञ्चं पराकसंज्ञं स्यात् द्वादशाहमभोजनं ॥  
 एकभक्तिं न नक्ते न तथैवायाचितेन च ।

उपवासेन चैकेन कृच्छ्रपादः प्रकीर्तितः ॥  
एतदेव चिरभ्यस्तं शिशुकृच्छ्रं प्रकीर्तितं ।  
व्रतं प्रातस्त्रहं सायं चतुस्रहं दद्याच्चितं ॥  
चतुस्रं परस्य नाश्रीयात् प्राजापत्यचरेहिजः ।  
पिण्याकचन तक्राम्बुसक्तानां प्रतिवासरं ॥  
एकैकमुपवासस्य सौम्यं कृच्छ्रं प्रकीर्तितं ।  
अम्बुसिद्धैस्तथा मासं केवलं वारुणं समैः ॥  
फलैर्भासेन कथितं फलकृच्छ्रं मनोविभिः ।  
श्रीकृच्छ्रं श्रीफलैः प्रोक्तं पद्माक्षैरपरं तथा ।  
मासमामलकैरेव श्रीकृच्छ्रमपरं स्मृतं ॥  
पचैर्युतं पञ्चकृच्छ्रं पुष्यैस्तत्कृच्छ्रमुच्यते ।  
मूलकृच्छ्रं तथा मूलैस्त्योयकृच्छ्रं जलैस्तु ॥  
दध्ना क्षीरेण तक्रैश्च पिण्याकचनकैस्तथा ।  
शाकं मासन्तु कार्याणि स्वनामानि विचक्षणैः ॥  
सायं प्रातश्च भुञ्जानो नरो येनान्तरा पिवेत् ।  
षड्भिर्ध्वजैरिदं प्रोक्तं कृच्छ्रं नित्योपवासिना ॥  
एकभक्तेन मासेन कथितश्चेकभक्तकं ॥  
नक्तेन भोजयेद्यद्यस्तु नक्तकृच्छ्रश्च वक्षरात् ॥  
नक्तोसितस्तु धर्मश्च एकभक्तश्च वा पुनः ।  
चतुस्रं सोपवसेद्यस्तु ज्ञायीत सवनत्रयं ॥  
निमग्नश्च तथैवाप्युक्तिः पठेत्सर्वधर्मणं ।  
देवताभाषणतन्तु हृद्यैवाप्यनुष्ठुभं ॥  
संस्मरेत्तस्य च तथा ऋषिज्ञैवाद्यधर्मणं ।

चतुर्थेऽहनि दातव्या ब्राह्मणाय पयस्विनी ॥  
 ब्राह्मं जपेद्यथाशक्ति शुचियैवाघमर्षणं ।  
 भाववृत्तः स्मृतौ देवस्तथा च पुरुषः परः ॥  
 तद्देवत्यं विजानीयात् सूक्तान्तदघमर्षणं ।  
 यथाश्वमेधे क्रतुराट् सर्व्वं पापापनीदनः ॥  
 तथाघमर्षणं प्रीक्तं सर्व्वं कल्पघनाशनं ।  
 कृष्णाजिनं वा कुतपं परीधायथ वल्कलं ॥  
 संवत्सरं व्रतं कुर्यात् सचित्रं रामभागव ।  
 गृहं न प्रविशेत्तत्र भवेदाकाशशायकः ॥  
 अशक्तो वा भवेद्द्राम महाशैलगुहाश्रयः ।  
 नित्यन्दिषवणस्त्रायी तथास्य दिश्वसम्भव ॥  
 भैक्षशाकफलाहारः कामं स्याद् द्विजसत्तम ।  
 वीरासनं तथा कुर्यात् काष्ठमोनं तथैव च ॥  
 सर्व्वं कामप्रदं ह्येतत् सर्व्वं कल्पघनाशनं ।  
 वायव्यं कृष्णसूक्तान्तु पाणिपूरान्नभोजनं ॥  
 मासेनैकेन धर्म्यन्न सर्व्वं कल्पघनाशनं ।  
 तिलैर्हाद्दशरात्रेण कृष्णमाग्नेयमुच्यते ॥  
 राजप्रसूतिमध्ये कं कनकेन समन्वितं ।  
 भुञ्जानस्य तथा मासं कृष्णश्चनददेवतं ॥  
 सर्व्वान् हरीतकीयुक्तैर्यैवैः सक्तान् समघतः ।  
 याम्यकृष्णं विनिर्द्दिष्टं मासेन भृगुनन्दन ॥  
 गोमूत्रेण चरेत् स्नानं वृत्तिं गोमयमाचरेत् ।  
 गवां मध्ये सदा तिष्ठेन्नोपुरीषे च संदिशेत् ॥

गोस्त्रपीतासु न पिवेदुदकं भृगुनन्दन ।  
 अभुक्तवत्सु नाश्रीयादुत्थितासूत्थितो भवेत् ॥  
 तथाचैवोपविष्टासु सर्वासुपविशेन्नरः ।  
 मासेनैकेन कथितं गोव्रतं कल्पपापहं ॥  
 अनाकृच्छ्रं तदैवेतदजामध्ये तु वर्त्तितः ।  
 त्रिराग्निस्तुषादात्मा(१) सन्तुष्ये न फलैर्भवे ॥  
 द्वादशाहेन कथिते सर्वपातकनाशने ।  
 उपोषितयतुर्ह्यस्यां पञ्चदश्यामनन्तरं ॥  
 पञ्चगव्यं समश्रीयाद्द्विष्यागी त्वनन्तरं ।  
 ब्रह्मकूर्चमिदं कुर्यादुक्तप्रथमनाय वै ॥  
 पक्षान्ते त्वथवा कार्यं मासमध्ये ऽथवा पुनः ।  
 ब्रह्मकूर्चं नरः कुर्यात् पौर्णमासीषु यः सदा ।  
 तस्य पापं क्षयं याति दुर्भृतादि न मंगयः ॥  
 मासेन दिव्द्वारः कृत्वा ब्रह्मकूर्चं समाहितः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तो यथेष्टाङ्गतिमाप्नुयात् ॥  
 ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च ।  
 योगभूतं परिचरन् केगवं महमाप्नुयात् ॥  
 एवमेतानि कृच्छ्राणि कथितानि मया तव ।  
 शमितानीह पापानि दुरितानि च भार्गव ॥  
 संवत्सरस्यैकमपि चरेत् कृच्छ्रं द्विजोत्तमः ।  
 अज्ञातभुक्तशुद्धार्थं ज्ञातस्य तु विगेषतः ॥  
 अज्ञानं यदि वा ज्ञातं कृच्छ्रपापं विगोधयेत् ।

( १ ) वाकोष्पमाहर्षदीपे च पनोषोनी भवितुं शक्यम् ।

कृच्छ्रसंशुद्धपापानां नरकं न विधीयते ॥  
 श्रीकामः पुष्टिकामश्च स्वर्गकामस्तथैव च ।  
 देवताराधनपरस्तथा कृच्छ्रं समाचरेत् ॥  
 रसायनानि मन्त्राश्च तथा चैवौषधाय ये ।  
 तस्य सर्वेऽपि सिध्यन्ति यो नरः कृच्छ्रकृत्नवेत् ॥  
 वैदिकानि च कर्माणि यानि काम्यानि कानिचित् ।  
 सिध्यन्ति सर्वाणि तदा कृच्छ्रकर्तुर्भृङ्गूत्तम ॥  
 तेजसस्तस्य संयोगो महत्तथैव जायते ।  
 वाञ्छितान्मानसान् कामान् स प्राप्नोति न संशयः ॥  
 ज्ञातो भवति देवेषु तथा ऋषिगणेष्वपि ।  
 विपाप्मा वितमस्कश्च संशुद्धश्च विशेषतः ॥

आराधनार्थं पुरुषोत्तमस्य

कृच्छ्राणि कृत्वामधुसूदनस्य ।

पापैर्विमुक्तः परिशुद्धचित्तः

कामानवाप्नोति यथेप्सितांश्च ॥

आयातु भगवान् ब्रह्मा समुनिर्हंसवाहनः ।  
 तपोयज्ञव्रतानान्तु भर्ता देवश्चतुर्मुखः ॥  
 आह्वय पद्मयोनिन्तु मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ।  
 देवस्य चेतिमन्त्रेण भक्तितस्तं समर्चयेत् ॥  
 अर्घैर्धूपैः पवित्रैश्च मात्रया कुसुमैः फलैः ।  
 मूलैर्वल्युपहारैश्च नैवेद्यैर्विधिधैरपि ।  
 दीपदानैर्यथाशक्त्या जपेन स्तुतिमङ्गलैः ।  
 तदये पञ्चगव्यन्तु कुर्वीत सुसमाहितः ॥  
 गोमूत्रन्तान्नवर्णायास्त्वष्टमाषकसंख्यया ।

पुण्यं वरुणदैवत्यं गायत्र्या चाभिमन्त्रणं ॥  
 गोमूत्रं श्वेतवर्णायाश्चतुर्माषकमाषकं ।  
 गृह्णीयाद्ग्निरुदेवस्य गन्धहारिति वै शनैः ॥  
 पयः काश्चनवर्णाया सीमदैवत्यमेव च ।  
 आप्यायस्वेति मन्त्रेण माषकद्वादशान्तिकं ॥  
 गृह्णन्ति वायुदैवत्यं कृष्णवर्णोद्भवं दधि ।  
 दशमाषकमाचन्तु दधिक्रावण इति स्मरन् ॥  
 छतन्तु नीलवर्णायाः पञ्चमाषकसंख्यया ।  
 गृह्णन्ति सूर्यदैवत्यं तेजोसोति जपन् क्रमात् ॥  
 शतत्रयं माषकानां चत्वारिंशच्च पुञ्च च ।  
 कुयोदकस्य गृह्णीत देवस्यत्वेति कीर्त्तयेत् ॥  
 ताम्रपात्रे पलाशे वा पात्रे मिश्रोक्तञ्च यत् ।  
 आपोहिष्टेति चासोडा प्रणवेन पिवन्ति च ॥  
 उदङ्मुखस्त्रिराचम्य ततो गच्छेत् स तद्गृहं ।  
 तत्राम्निहोमं प्रागूढं कृत्वा दद्याच्च दक्षिणां ॥  
 ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भोजनञ्च मनोहरं ।  
 गवां वर्णास्तु शक्ताद्याः सन्ति शेषेषु यत्र च ।  
 तत्र वर्षाविभागेन पञ्चगव्यानि चारुरेत् ॥  
 वर्षालाभाच्च दीर्घाऽस्ति मात्राज्ञानं विवर्जयेत् ।  
 त्वान्यानि दूषितानाञ्च न विमृत्रपगांसि च ॥  
 प्रसक्तानाञ्च शक्रेण प्राप्तानाञ्च गीणितं ।  
 चैलकेश्याश्च भक्ष्याणामभक्तौ संपृतान्तया ॥  
 रोगार्त्तानाञ्च पूर्णाद्यैर्मृताण्डानामसहस्रैः ।



निष्फलत्वेन वृद्धानां कृशानां कृमिभिस्तथा ॥  
 अनतिप्रीतिदत्तानि साधनाप्रभवाणि च ।  
 शशभाण्डे मनोज्ञे तु भूमावपतितानि तु ॥  
 गृहीतव्यानि विधिना खेदत्तासां न कारयेत् ।  
 ब्रह्मकूर्चव्रतमिदं सर्व्वपापप्रनाशनं ॥  
 सर्व्वकामप्रदं पुंसां रूपारोग्ययशस्करं ।  
 महतामपि पापानां नाशनं श्रीविष्वक्नं ॥

इति ब्रह्मपुराणोक्तं ब्रह्मकूर्चव्रतं ।

—000—

विष्णुधर्मोत्तरात् ।

ऋषय ऊचुः ॥

कर्म्मणा केन पुरुषः किमाप्नोति महामते ।  
 एतन्मे संग्रयं किञ्चि दिजानां दिजसत्तम ॥

इंम उवाच ।

दानेन भोगी भवति तपसा विन्दते महत् ।  
 तद्दोषमेवया विप्र प्राज्ञो भवति मानवः ॥  
 यज्ञेन लोकानाप्नोति मत्पुत्रेण च पराङ्कतिं ।  
 स्नानेन शुद्धिमाप्नोति प्राणायामाद्द्विषतः ॥  
 ध्यानेन धारणाभिस्तु पदमाप्नोत्यनुत्तमं ।  
 दमने सर्व्वमाप्नोति यत्किञ्चिन्नानसि स्थितं ॥  
 गौत्रेण देवाः प्रीयन्ते प्रीयन्ते चोपवासतः ।  
 उपवासव्रतस्थानां कामावाप्तिर्भवं भवेत् ॥  
 भवन्ति विपुला भोगाः संग्रामेष्वपलायिनां ।

मधुमांसनिवृत्तस्य सर्व्व एव मनोरथाः ॥  
 मांसाशननिवृत्तोऽपि परं सौख्यमुपाश्रुते ।  
 अहिंसया त्वरीगी स्याद्दीर्घायुश्चाप्यहिंसया ॥  
 रूपलावण्यसौभाग्यधनधान्ययुतः सदा ।  
 तीर्थानुसरणाहिंसाः पापनाशमवाप्नुयात् ॥  
 सर्व्वकल्मषहीनस्तु यान् लोकान् मनसीच्छति ।  
 प्रतिश्रयप्रदानेन स्थानमाप्नोत्यनुत्तमं ॥  
 पूज्य पूजयिता विषा यशसा युज्यते नरः ।  
 अभिवादनशौलस्य नित्यं हृष्टोपसेविनः ॥  
 समङ्गत्वा विवर्द्धन्ते कीर्त्तिमायुर्थ्यशोबलं ।  
 ऋतुकालादृते भार्यां तथैव परिवर्जयेत् ॥  
 पानीयमपि विप्रेन्द्रा विष्णुलोकं स गच्छति ।  
 अनेनैव विधानेन देशकालगनेनरः ॥  
 सर्व्व कामानवाप्नोति गतिं प्राप्नोत्यभोषिता ।  
 तथा भोजनकाले तु यस्तु भोजनं समाचरेत् ॥  
 उपवासफलस्तस्य प्रत्यहं भोजनस्य तु ।  
 सर्व्वान् कामानवाप्नोति भोजनो नृणांशतः सकृत् ॥  
 नाप्नोति नरकं दुःखं नित्यं चाथो नरो यदिः ।  
 यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमध्वानवतिने ॥  
 शान्तायादृष्टपूर्वाय तस्य पुण्यफलं महत् ॥  
 पाद्यमासनमेवाथ दीपमन्नं प्रतिययं ॥  
 दद्यादतिथिपूर्वाद्ये स यत्नः पञ्चदक्षिणः ।  
 चतुर्द्वादशानां दद्याद्वाचं दद्याच्च मृत्तानां ॥

अनुव्रजेदुपाक्षीणः सर्व्वकामफलप्रदः ।  
 पुष्पाग्निनाम्नैश्चर्य्यं धनं शाकाग्निनां महत् ॥  
 पयोभक्षा दिवं यान्ति अभक्षाद्यामितां गतिं ।  
 दत्तो लूस्वलको विप्रो यद्याप्युच्छेन जीवति ॥  
 कापोती मास्यती वृत्तिं यथेष्टाङ्गतिमाप्नुयात् ।  
 प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्व्वं च फलमुत्पते ।  
 येन प्रीणाति पितरन्तेन प्रीतः प्रजापतिः ॥  
 प्रीणाति मातरं येन पृथिवी तेन पूजिता ।  
 येन प्रीणात्युपाध्यायन्तेन स्याद्ब्रह्म पूजितं ॥  
 सर्व्वं तस्यादृता धर्म्मायस्येते त्रय आदृताः ।  
 अनादृतास्तु यस्येते सर्व्वा तस्याफला क्रिया ॥  
 गुरुशुश्रूषया विद्या निष्पन्नाद्येन सन्ततिः ।  
 नित्यस्त्रायौ भवेद्दत्तः संध्ये तु द्वे जपेत्सदा ।  
 द्विजशुश्रूषया राज्यं द्विजत्वं वापि पुष्कलं ।  
 देवसुश्रूषया कामं यथेष्टं प्राप्नुयात् ततः ।  
 सान्ख्यदः सर्व्वभूतानां सर्व्वलोकैः प्रपूज्यते ॥  
 परिचर्यात्तुरं सम्यक् न रोगैः परिभूयते ।  
 गोलोकमाप्नोति तथा गवाश्च परिचर्य्यया ॥  
 देवमात्वापनयनात्पादगौचात् द्विजस्य तु ।  
 श्रान्तसंवाहनादिप्राः सुखमत्यन्तमश्रुते ॥  
 जले सप्तसहस्राणि एकादश हुताग्ने ।  
 भृगुप्रपाते च दश संग्रामे विंशतिस्तथा ॥  
 नरो वर्षसहस्राणि तनुं त्यक्त्वा तु मोदते ।

अनाशके तु धर्मज्ञाः परिसंख्या न विद्यते ॥  
 मेरोः साधयते राज्यं यथेष्टं भुवि जायते ।  
 पुण्यप्रस्थानमाविश्य यथेष्टाङ्गतिमाप्नुयात् ॥  
 वज्रिप्रवेशे नियतमभीष्टं लोकमश्नुते ।  
 धारुणं लोकमाप्नोति त्यक्त्वाभूमि तनुत्तरः ॥  
 शष्पं सृगमुन्नीत्सृष्टं यो सृगैः सह सेवते ।  
 दीक्षितो वै सुदा युक्तः स गच्छत्यमरावतीं ॥  
 शैवलं शीर्षपर्णम्वा तद्भृतं यो निषेवते ।  
 शीतयोगवहे नित्यं स गच्छेत्परमाङ्गतिं ॥  
 वायुभक्षोरुभीक्षो वा फलमूलाशनोऽपिवा ।  
 याक्षमैश्वर्यमाप्नोति मोदतेऽप्सरमाङ्गणैः ॥  
 अग्नियोगवहे घोष्ठी विधिदृष्टेन कर्मणा ।  
 दीर्घहादशवर्षाणि राजा भवति पार्थिवः ॥  
 आहारनियमं कृत्वा मुनिर्हादशवर्षिकं ।  
 व्रतं समाप्य कालेन राजा भवति पार्थिवः ॥  
 स्थण्डिले शुद्धमाकाशं परिस्पृष्ट्य समन्ततः ।  
 प्रविश्य च सुदायुक्तो दीक्षां हादशवर्षिकीं ।  
 स्थण्डिलस्य फलान्याह यानानि शयनानि च ।  
 स्पृष्ट्वाणि शयनार्हाणि चन्द्रशुभ्राणि ब्राह्मण ॥  
 आत्मानमुपजीवन् यो नियतो नियताशनः ।  
 देहं वानशने त्यक्त्वा स स्वर्गं समपाश्रुते ॥  
 आत्मानमुपजीवन् यो दीर्घहादशवर्षिकीं ।  
 आत्मना चरन्तो दत्त्वा गुणकेषु च मोदते ॥

साधयित्वात्मनात्मानं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।  
 तीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षाभेदां मनोगतां ।  
 स्वर्गलोकमवाप्नोति पित्रभिः सह मोदते ॥  
 स्वात्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवर्षिकीं ।  
 त्यक्त्वा महाहवे देहं वारुणं लोकमाप्नुयात् ॥  
 आत्मानमुपजीवन्यो दीक्षां द्वादशवर्षिकीं ।  
 हुताग्नी देहमुत्सृज्य वज्रलोके महोयते ॥  
 यस्तु विप्रो यथान्यायं दीक्षितो नियतेन्द्रियः ।  
 आत्मन्यात्मानमाधाय निर्द्वन्द्वो धर्मलालसः ।  
 तीर्त्वा द्वादशवर्षाणि दीक्षाभेतामरोगतां ।  
 अरणीसहितः स्कन्धे तीर्थाटनविधिसुरेत् ॥  
 वीराध्वानमवानीत्य वीरासनगतः सदा ।  
 वीरस्थायी च सततं स वीरगतिमाप्नुयात् ॥  
 वीरलोके गते वीरो वीरयोगावहः सदा ।  
 मत्स्यस्य सर्व्वमुत्सृज्य दीक्षितो नियतः शुचिः ।  
 शक्रलोकगतः श्रौमान् मोदते दिवि देववत् ॥  
 उपव्रताः शुचिर्दान्ता अहिंसाः सत्यवादिनः ।  
 संसिद्धाः प्रेत्यगन्धर्वैः सह मोदन्त्यनामयं ॥  
 मण्डूकयोगशयनो यथास्थानं यथाविधि ।  
 दीक्षां चरति धर्मात्मा स नागैः सह मोदते ॥  
 आर्द्रवासास्तु शिशिरे व्रतं वहति यो नरः ।  
 द्वादशाब्दानि नियतं राजा भवति पार्थिव ॥  
 वृक्षवनगतान् प्राणान् सप्तपूर्व्वीपरांस्तथा ।

नरांस्तारयते दुःखादात्मानञ्च विशेषतः ॥  
 येन येन शरीरेण यद्यत्कर्म करोति यः ।  
 तेन तेन शरीरेण तत्फलं हि समश्रुते ॥  
 यस्यां यस्यामवस्थायां यत् करोति प्रभागुभं ।  
 तस्यां तस्यामवस्थायां तत्फलं समपाश्रुते ॥

महाभारतात् ।

फलमूलाग्निनां राज्यं स्वर्गः पर्णाग्निनाश्चरेत् ।  
 पयोभक्षो दिवं याति स्थनिन द्रविणोदकः ॥  
 गवाद्यः शाकदीक्षाभिः स्वर्गमाहुस्तृणाग्निनां ।  
 स्त्रियस्त्रिसवणस्त्रानाहायुं पीत्वा कर्तुं लभेत् ॥  
 नित्यस्त्रायी लभेद्राज्यं मस्थे तु हे जयं द्विजः ।  
 सेन्द्रं साधयते राज्यं नाकपृष्ठमनाशकः ॥  
 स्थण्डिले तु गयानानां गृहाणि शयनानि च ।  
 रत्नानां प्रतिसंहारे मीमांस्यमभिविद्यते ॥  
 आग्निप्रतिसंहारे प्रजा आयुष्मती भवेत् ।  
 उद्वासं वसेद्यत्न, स नराधिपतिर्भवेत् ॥  
 प्रतिसंहारः परित्यागः, उद्वास उदके वासः ।  
 सत्यवादी नरयेष्टो देवतैः गृह मीदते ॥  
 गन्धमास्थानुवृत्त्या तु कान्तिर्मवति पुष्कला ।  
 केशमश्रु धारयति तामश्रुतां वसति लभेत् ॥  
 उपवासञ्च दीक्षाञ्चाप्यभिषेकञ्च पार्थिव ।  
 कृत्वा हादृश वर्षाणि वामवत्वादिगिष्यते ॥  
 अवाक्शिरास्त, यो लब्धेद्दृशसं वसेच्च यः ।

( ११८ )

सततञ्चैकसाधी यः स लभेदीप्सिताङ्गतिं ॥  
 परं विन्दति दानेन मौनेनात्मा प्रतीच्छति ।  
 उपभोगांश्च तपसा ब्रह्मचर्य्येण जीवितं ॥  
 रूपमैश्वर्य्यमारोग्यं अहिंसामफलमुच्यते ।  
 प्रायोपवेशनाद्राज्यं सर्व्वत्र फलमङ्गते ॥  
 स्वर्गं सत्येन लभते दीक्षया कुलमुत्तमं ।  
 अधीत्य सर्व्ववेदान्वै सद्यो दुःखात् प्रमुच्यते ॥  
 मानसन्तु वरं धर्मं स्वर्गलोकमवाप्सते ।

विष्णुधर्म्मोत्तरात् ऋषय ऊचुः ।

कं लोकं कर्मणा किंन संप्राप्नोति नरोत्तमः ।  
 तत्त्वमस्माकमाचक्ष्व त्वं हि सर्व्वविदुच्यते ॥

हंस उवाच ।

ज्येष्ठं स्वसारं पितरं गुरुं मातरमेव च ।  
 नित्यं संपूजयेद्भक्त्या याम्यलोके महीयते ॥  
 भोजनावसथाद्येन त्वतिथिञ्चैव पूजयेत् ।  
 राजराजस्य लोकेषु मोदते नात्र संशयः ॥  
 भिरोः समोपं गच्छन्ति यथा चैवीत्तरान् कुरुन् ।  
 नित्यं दानपराः शान्ता लोक गच्छन्ति शीतगोः ॥  
 आदित्यलोकं गच्छन्ति यथा येन परिस्थिताः ।  
 तीर्ष्याणां परां यान्ति तथा लोकं प्रचेतसः ॥  
 संग्रामे निहता यान्ति शक्रलोकमसंशयं ।  
 प्राजापत्यं तथा यान्ति सम्यग् दत्त्वा महीक्षितः ॥  
 गवां भक्त्या तथा यान्ति गोलोकं मानवीक्षमाः ।

यान्ति लोकान्तु साध्यानां नित्यं ये सत्यभाषिनः ॥  
 प्रतिग्रहान्निवृत्ताथ वसूनामपि मानवाः ।  
 वायुलोके महीयन्ते रोगिणां परिचारकाः ॥  
 लोकं गच्छन्त्यथाम्नेयं वज्रशृङ्गणे रताः ।  
 यान्ति ते नैर्ऋतं लोकं पररक्षणतत्पराः ।  
 भृगूणामथ लोकेषु मोदन्त्याकाशगायिनः ॥  
 यान्ति चाङ्गिरसे लोके व्रतिनी नात्र संग्रयः ।  
 मरुताच्च तथा लोकं यान्ति यानप्रदा नराः ॥  
 नासत्यलोके मोदन्ते तथैवोपधिदायिनः ।  
 रुद्रलोकं प्रपद्यन्ते गोविपातुरवक्त्रलाः ॥  
 स्ववाचि निरता यान्ति वैश्वदेवमसंग्रयं ।  
 आदित्येः सह मोदन्ते दयावन्तस्तु ये नराः ॥  
 ब्रह्मलोकं विष्णुलोकं रुद्रलोकं तथैव च ।  
 तद्द्वारवेण लभ्यन्ते नान्यथा हि जसत्तमाः ॥  
 यस्य देवस्य यां भक्तिं सदा वहति मानवः ।  
 सम्पदस्तस्य सालोक्यं याति नास्त्यत्र संग्रयः ॥  
 लोकेषु दिव्येषु गतिर्मयीकृता  
 कश्चानुरुपा पुरुषस्य विप्राः ।  
 अतः परं किं कथयाम्यहं वै  
 तन्मे वदध्वन्तपि प्रथानाः ॥

इति नानाशुभफलानि ।



अथ शरीरोत्सर्गविधिरभिधीयते । तेचानगनाग्निप्रवेश  
भृगुपतनादयः ।

तत्र विष्णुधर्मीक्षरात् ।

नरो नव्याधिरहितः सन्धजेदात्मनस्तनुं ।  
अधमा नाम ये लोका अन्धेन तमसाहताः ।  
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥  
अनिष्टैरात्मनो ज्ञात्वा सृत्युकालमुपस्थितं ।  
व्याधितो भिषजा त्यक्तः पूर्णं वायुषि चात्मनः ॥  
यथा युगानुसारेण सन्धजेदात्मनस्तनुं ।  
तस्मिन् काले तनुत्यागाद्यथोक्तं फलमाप्नुयात् ॥  
आयुषस्तु पुरा दृष्टं मरणत्राहणस्य च ।  
अत्रियस्य तु संग्रामे सृतभर्त्सरि श्रेयितः ॥  
ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा सन्धजेदात्मनस्तनुं ।  
सर्वीं ह्यपामकालोऽपि गतिमग्रामवाप्नुयात् ॥

आदित्यपुराणात् ।

समायुक्तो भवेद्यस्तु पातकेर्महदादिभिः ।  
दुश्चिकित्सेर्महारोगैः पीडितो वा भवेत्तु यः ॥  
स्वयं देहे विनाशस्य काले प्राप्ते महामतिः ।  
आब्राह्मणोऽपि स्वर्गादिमहाफलजिगीषया ॥  
प्रातरुज्वलनन्दोषं करोत्यनशनं तदा ।  
अगाधतोरराशिं वा भृगोः पतनमेव वा ॥  
गच्छेन्नहापथं वापि तृषारगिरिमादरात् ।  
प्रयागवटशाखायै देहत्यागं करोति वा ॥

उत्तमान् प्राप्नुयात् लोकान् नात्मघाती भवेत् क्वचित् ।  
 महापापक्षयात् सर्व्वी दिव्यान् भोगान् ममश्रुते ॥  
 एतेषामधिकारस्तु तपसा सर्व्वजन्तुषु ।  
 नराणामथ नारीणां सर्व्ववर्णेष्वयं विधिः ॥  
 श्वश्रुश्च मातरश्चैव भगिनीं ब्राह्मणीं मतीं ।  
 मासोपवामिनीं गत्वा गुरुपत्नीं तद्यैव च ।  
 करीषाम्निं विशिदिषी गच्छेत्तैव महातपं ॥

तथा रेवाखण्डे ।

ये सृता नर्मदातीरे सङ्गमे लिङ्गदर्शने ।  
 तेषां गृहाश्च रम्याश्च पूर्व्वभागव्यवस्थिताः ॥  
 नर्मदासदमध्ये तु सावित्रीसङ्गमे तथा ।  
 त्रिपुरासन्निधाने च विश्वी सन्निहिते तथा ॥  
 र्वाकारदक्षिणे भागे पूर्व्वतो सरकण्ठके ।  
 जलाधारे कीटितीर्थे ये सृताः स्वभ्रमानपाः ॥  
 हृषीरिमैर्मनोरम्यैर्वसन्ति च नरोत्तमाः ।  
 शृगावस्त्रौ जले वापि नद्याः सकलमङ्गमे ।  
 गोदावर्यां पयोण्यां च तपायश्चैव मङ्गमे ॥  
 आचेत्याश्चैव भारत्यां वाराणस्यान्त्यैव च ।  
 द्रुमालये गीर्गहे च गोकर्णे च महात्मने ॥  
 हरिश्चन्द्रे पुरीश्चन्द्रे मीशिले त्रिपुरात्मके ।  
 कण्ठायान्तुङ्गभद्रायां महारथ्यां सर नदीं ।  
 कार्तिके स्वामिकुण्डे च ये स्त्रियस्ते च पुत्रक  
 सरस्वत्यान्त्यजेत् प्राणान् प्रभासे शशिभूषणे ॥

पारियात्रे महाकाले जायन्ते तत्त्ववर्तिनः ।

अनगनं तावदुच्यते ।

विष्णुधर्मात् ।

तदेतदुक्तं तपसामशेषानां महामते ।

शुणैरनशने ब्रह्मा प्रधानतममवबोत् ॥

त्यजेदनशनस्थी हि प्राणान् यः संस्मरन् हरिं ।

स याति विष्णुमालोक्यं यावदिन्द्रायतुर्दृश ॥

अतीतानागतानीह कुलानि पुरुषर्षभ ।

पुनान्यनशनं कुर्वन् सप्त सप्त च सप्त च ॥

नान्यतसुकृतमुद्दिष्टं तमैरनशनात् परं ।

तस्याहं लक्षणं वक्ष्ये यच्च जप्यं समूर्पता ॥

यादृक् रूपं भगवान् चिन्तनीयो जनार्दनः ।

आसन्नमात्मनः कालं ज्ञात्वा प्राज्ञो महासुर ॥

निधूतमलदोषश्च स्नातो नियतमानसः ।

समभ्यर्च्य हृषीकेशं पुष्पधूपादिभिस्तथा ॥

प्रणिपातैः स्तवैः पुण्यैर्धानयोगैश्च पूजयेत् ।

दत्त्वा दानञ्च विप्रेभ्यो विकलादित्य एव च ॥

सभायोगि ब्राह्मणीको देवीकस्तपयोगि च ।

बन्धौ पुत्रे कलत्रे च चेतधान्यधनादिषु ॥

मित्तवर्गे च दैत्येन्द्र ममत्त्वं विनिवर्त्तयेत् ।

मिचाण्डमिचमध्यस्थान् परांश्चाशु पुनः पुनः ॥

अभ्यर्चनोपचारेण समयेत् सुकृतं स्वकं ।

ततश्च प्रयतः कुर्यादुत्सर्गं सर्वकर्मणां ॥

शुनाशुनानां दैत्येन्द्र वाक्यं वेदमुदाहरेत् ।  
 परित्यजाम्यहं दानं यजामि सुहृदोऽखिलान् ॥  
 भोजनादि मयोत्सृष्टुन्ताग्मूलमनुलेपनं ।  
 सूत्रघृणादिकं त्यक्तं दानञ्चानमेव च ॥  
 ह्योमादयः पदार्था ये ये च नित्यक्रमा मम ।  
 निमित्ताद्य तथा काम्याः यावत्कर्मक्रियोदिता ॥  
 त्यक्ताद्यात्रमिषां धर्मा वर्णधर्मास्तथा हिताः ।  
 पद्भ्यां कराभ्यां विहरन् कुर्वन् वा काममत्यहं ॥  
 न पापं कस्यचिद्वास्ते प्राणिनः सन्तु निर्भयाः ।  
 नभसि प्राणिनो ये च ये जलेष्वपि भूतले ॥  
 क्षितौ विषरगा ये च ये च पाषाणसङ्घटे ।  
 ये धाम्नादिषु वस्ते च शयने श्नासनेषु च ॥  
 न स्त्रयं किञ्च बुद्ध्यातु दानस्तेभ्यो भयावहं ।  
 नमोऽस्ति बान्धवः कश्चिद्विष्णुं त्यक्त्वा जगद्गुरुं ॥  
 मित्रपत्ने च मे विष्णुरधर्षोर्षं तद्यापतः ।  
 पार्श्वयोमुर्द्धि हृदये बाहुभ्यां वापि चक्षुषोः ॥  
 श्रोत्रादिषु तद्याज्ञेषु मम विष्णुः प्रतिष्ठितः ।  
 इति सर्व्वं समुत्सृज्य ध्यात्वा सर्व्वगमञ्चतं ॥  
 वासुदेवस्य नियतं नाम देवेश कीर्त्तयेत् ।  
 दक्षिणाशेषु दर्भेषु शयीत प्राक्शिरास्ततः ॥  
 उदक्शिरा वा दैत्येन्द्र चिन्तयन् जगतः पतिं ।  
 विष्णुं जिष्णुं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनं ॥  
 नारायणं नरं शौरिं वासुदेवं जनाईनं ।

वाराहं यज्ञपुरुषं पौण्डरीकमथाच्युतं ॥  
 वामनं श्रीधरं कृष्णं तृसिंहमपराजितं ।  
 पद्मनाभमजं श्रीगं दामोदरमधोज्ज्वलं ॥  
 सर्वेश्वरेश्वरं शुद्धमनन्तं राममीश्वरं ।  
 चक्रिणश्चदिनं शान्तं गङ्गितं गरुडध्वजं ॥  
 किरीटकौस्तुभधरं प्रणमाम्यहमव्यय ।  
 अहर्मास्मिन् जगन्नाथे मयि वास्य जनार्दनः ।  
 आवयोरन्तरं मास्तु, शमीराकाशयोरिव ।  
 अयं विष्णुरयं सीरिरयं कृष्णः पुरी मम ।  
 नीलीत्पलदलश्यामः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥  
 एष दृश्यतमो ह्रीगः पश्याम्यहमबोहरिं ।  
 यतो न व्यतिरिक्तोऽहं यन्मनोऽहं यदाश्रयः ॥  
 इत्थं अपेदेकमनाः स्मरन् सर्वेश्वरं हरिं ।  
 अतीतः सर्वदुःखेषु ममो मित्राहितेषु च ॥  
 नमोऽस्तु वासुदेवाय व्रतोक्तं मततं जपेत् ।  
 यद्बोदीरयितुं नाम समर्थस्तदुदीरयेत् ।  
 तथा ध्यायेच्च देवस्य विष्णोरूपं मनोरमं ॥  
 प्रसन्ननेत्रभ्रूवक्त्रं शङ्खचक्रगदाधरं ।  
 श्रीवक्त्रसं सुमनसञ्चतुर्बाहुं किरीटिनं ॥  
 पीताम्बरधरं कृष्णं चारुकेशधरधरिणं ।  
 चिन्तयेच्च सदा रूपं मनः कुलैकनिधये ॥  
 यादृशे वामनः स्थैर्यं रूपे बध्नाति चक्रिणः ।  
 तदेव चिन्तयेद्दूपं वासुदेवेति कौत्सयेत् ॥

इत्थं जपन् स्मरन्वित्यं स्वरूपं परमात्मनः ।  
 अप्राणीपरमाहीरन्तश्चित्तस्तत्परायणः ।  
 सर्वपातकयुक्तोऽपि पुरुषः पुरुषर्षभ ।  
 प्रयाति देवदेवेशे लयमीडातमेऽच्युते ॥  
 यथाग्निस्तृणजातानि दहत्यनिलसङ्गतः ।  
 तद्यानशनसङ्गत्यः पुंसां पापान्यलङ्घिताः ॥  
 पृष्ठतद्यामरधरा विमानैरनुयान्ति तं ।  
 देवकन्या निवासे च तस्मिन् वसति मानवः ।  
 जाङ्गवीवालकापूर्णे पूर्णसंवत्सरं नरः ॥

बलिरुवाच ।

उत्क्रान्तिकाले भूतानां सुहृन्ते चित्तवृत्तयः ।  
 जराव्याधिविहीनानां किञ्च व्याध्यादिदोषिणां ॥  
 अन्यन्तं वयसा वृद्धो व्याधिना रोगपीडितः ।  
 यदि स्यात् न शक्नोति चित्तस्थो दर्भसंस्तरे ।  
 तन् किमन्धोऽप्युपायोऽस्ति नरानशनकर्मणि ।  
 वैफल्यं येन नाप्नोति तन्मे ब्रूहि पितामह ॥

प्रज्ञाद उवाच ।

नात्र भूमिनं च कुशासास्तरय न कारणं ।  
 चित्तस्थालम्बनोभूतो विष्णुरेवात्र कारणं ॥  
 तिष्ठन् ब्रह्मन् स्वप्नं बुध्यन् तथा धावन्नितस्ततः  
 उत्क्रान्तिकाले गोविन्दं संस्मरन् तन्मयो भवेत् ॥  
 किं जपेः किं नु वा क्तस्यैः किङ्कुगैर्देव्यसत्तम ।  
 तथापि कुर्वती यस्व हृदये न जनाई न ॥

तस्मात् पुत्र सदा कार्यं वासुदेवस्य चिन्तनं ।  
 तन्मयत्वेन दैत्येन्द्र तस्योपायश्च विस्मरात् ॥  
 इत्येतत् कथितं सर्व्वं यत् पृष्टोऽहं त्वयानघ ।  
 उत्क्रान्तिकाले स्मरणं किन्भूयः कथयामि ते ॥

भविष्योत्तरात् ।

समासहस्त्राणि तु सम वै जले  
 दशैकमग्नौ पतने च घोडुश ।  
 गवां गृहे षष्टिरशीतिराहवे  
 अनाशने भारत चाक्षया गतिः ॥  
 तथा च ग्रातपथी श्रुतिः ।

तमितं वेदानुवचनेन विविदिषन्ति ब्रह्मचर्य्येण तपसा अक्षया  
 यज्ञेनानाशनेन ।

सौरपुराणात् ।

शिवक्षेत्रे निराहारो भूत्वा प्राणान् परित्यजेत् ।  
 शिवसायुज्यमाप्नोति प्रभावात् परमेष्ठिनः ॥

लिङ्गपुराणात् ।

यावत्तावन्निराहारो भूत्वा प्राणान् परित्यजेत् ।  
 शिवक्षेत्रे मुनिश्रेष्ठाः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥

इति अनशनविधिः ।

— ०००० —

अथ महायात्राप्रकरणं ।

क्रीडन्त्याकागङ्गायामटने वातवर्त्मनि ।

गजेन्द्राः कुमुदाद्याय येन प्राप्ता जनाहूतं ॥  
 तस्मात् प्रधानमत्रोक्तं वासुदेवस्य चिन्तनं ।  
 निर्भ्रंशं ब्रह्मसम्भूतं करैस्तज्जाङ्गवीजलं ॥  
 गृहीत्वा प्रतिमुञ्चन्ति फुटकारं दर्शयन्मृगः ॥  
 मृष्टाः पृष्ठेऽशुपातैश्च सामीप्यात् सूर्यरश्मिभिः ॥  
 बहुधुस्तम्भसामर्थ्यं दाहस्य शमनाय च ।  
 महाप्रपातं नीलाभं पतमानन्तु तज्जलं ॥  
 वायुना ख्याप्यमानन्तुस्थानत्वमुपगच्छति ।  
 तत्पण्डं हिमवत्क्षानौ पतते च यदा हिमं ॥  
 प्रथमं तत्र संपूज्यो हिमवांश्चिश्चिरस्तथा ।  
 हेमन्तश्च तथा नागो नीलनीलाङ्गसम्भवः ॥  
 स्थाननागाश्च संपूज्याः कालपात्रेर्नभेरुजैः ।  
 स्वर्कपुष्पाणि देयानि धूपो नुग्गुलसम्भवः ॥  
 मध्याह्न्यतिलसमिथं पिष्टमिश्च हिमं बहु ।  
 यस्मिन् देशे हिमं न स्यात् तत्र वृथाहिमं हिमं ॥  
 महाप्रस्थानयात्रा च कर्तव्या तु हिमोपरि ।  
 आश्रित्य सर्व्वं धैर्य्यं च मदाः स्वर्गादा च सा ॥  
 यावत् पुरन्दरं लोके न यातः कार्य्यगौरवात् ।  
 तावत्तुषारमध्ये तु स्वतन्त्रस्वात्मसङ्केत ॥  
 यतस्तुषारदग्धस्तु मृत्तन प्राणान विक्षितमा ।  
 प्रदक्षिणावर्त्तगङ्गं पश्येद्योमइतागन ।  
 साकर्षणं वपुर्विज्जोयन्दाग्निभवटाहकं ॥

इति ब्रह्माण्डपुराणोक्त महाप्रस्थानं ।



अथाग्निप्रवेशः

वायुपुराणे ।

यो वाङ्मिताग्निप्रवेशो वीराध्वानं गतोऽपि वा ।

समाधाय मनः पूर्वं मन्त्रमुच्चारयेच्छनेः ॥

त्वमग्ने रुद्रस्त्वंसुरोमहोदितस्त्वं शर्द्धीमारुतं पृच्छइशिषे ।

त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्खयस्त्वं पूषा विधतः पासि आत्मना ॥

इत्थेवं मनसा मन्त्रं सम्यगुच्चारयन् द्विजः ।

अग्निं प्रविशते यस्तु रुद्रलोकां स गच्छति ॥

अग्निस्तु भगवान् कालः कालोरुद्र इति स्मृतः ।

तस्माद्यः प्रविशेदग्निं स रुद्रमतिवर्त्तते ॥

लिङ्गपुराणात् ।

आधायाम्निं शिवक्षेत्रे संपूज्य परमेश्वरं ।

स्वदेहपिण्डं जुहुयात् स याति परमं पदं ॥

सौरपुराणात् ।

शिवस्य पुरतो वङ्गं संस्थाप्याभ्यर्च्य केशवं ।

जुहुयादात्मनो देहं स याति शिवसन्निधिं ॥

अथ स्तोणामग्निप्रवेशोविधीयते ।

तत्र वृहस्पतिः ।

आर्त्तात्तं मुदिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा ।

मृते म्रियेत या पत्न्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ॥

अथ अङ्कुराः ।

साध्वीनामिह्नारीणामग्निप्रपतनादृते ।

नान्यो धर्मो हि विद्मो मृते भर्त्सरि कर्हिषित् ।  
 तावन्न सुच्यते नारी स्त्रीशरीरात् कथञ्चन ॥  
 सहृत्तभावापितभर्त्सकाणां  
 स्त्रीणां वियोगः क्षितिकातराणां ।  
 तासाम्पतावस्तमिते यतः स्वा-  
 दम्निप्रवेशादपरो हि मार्गः ॥

हारीतः ।

मृते भर्त्सरि या नारी धर्मशीला दृढप्रता ।  
 अनुगच्छति भर्त्सरं मृष्ट तस्यास्तु यत्फलं ॥  
 तिस्रः कीटयोर्ब्रह्मोटी वा यावन्नोर्माणि मानुषे ।  
 तावद्वृत्तसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥  
 माह्वकं पैलकश्चैव यत्र कन्या प्रदीयते ।  
 कुलत्रयं पुनात्येषा भर्त्सरं यानुगच्छति ॥

व्यासः ।

ब्रह्मन्ने वा जतन्ने वा मित्रन्ने यत्त दुष्कृतं ।  
 भर्त्सं पुनाति सा नारी तमादाधि मृता तु या ॥  
 आदायालिक्रियत्यर्थः । एवं कल्पसूत्रकाराः । भर्त्सशरीरेण  
 सह संवेद्यनमाहुः पत्नी संवेद्यन्तीति ।

आदित्यपुराणात् ॥

सुहृत्पत्नी शरीरं वा मृतेन पतिना सह ।  
 सखीद्विकान्दहन्धीरा या काचित्पा पतिव्रता ॥  
 पिष्टमिधमहायज्ञः स्त्रीणामिधः प्रकीर्तितः ।  
 देहः सजीवो यत्र स्नाह्विः प्राणास्तु दक्षिणा ॥

अत्रिरुद्वृगर्थन्तु देवरः सार्वकालिकं ।  
 आराधयेद्गाढजायां सह भर्त्सा समन्वितां ॥  
 वितामारोपयन् प्राज्ञः प्रसृतं घर्म्मसुत्तमं ।  
 इमाः पतिव्रताः पुण्याः स्त्रियोजाताः पतिव्रताः ॥  
 अवैधव्यमनुप्राप्ताः रत्नाभरणभूषिताः ।  
 कुङ्कुमाज्याञ्जनाः स्रग्भिरर्चिताः कृतमण्डनाः ॥  
 सुस्थिरं भर्त्ससंयोगं प्राप्नुवन्तु स्वयं बलात् ।  
 दुष्टप्रवादादरहिता सुस्थास्त्वव्याधिदूषिताः ।  
 सह भर्त्सशरीरेषु संविशन्तु विभावसुं ॥  
 एवं श्रुत्वा ततो नारी अह्माभक्तिमन्विता ।  
 पिष्टमेधेन यज्ञेन यहा स्वर्गमवाप्नुयात् ॥  
 मृते भर्त्सरि सुस्त्रीणां न चान्या विद्यते गतिः ॥  
 नान्यद्भर्त्सवियोगाम्निदाहस्य श्रमनं भवेत् ।  
 ऋग्वेदवचनात् साध्वी न भवेदात्मघातिनी ॥

तदेवेदं ऋग्वेदवचनं ।

इमा नारीरविधवाः सुपत्नी  
 रज्जनेन सर्पिषा सविशन्तु ।  
 अनस्रवी अनमीराः सरत्ना  
 पारोहन्तु जनयो गीनिमग्ने ॥

देशान्तरमृते तस्मिन् साध्वी तत्पादुकाहयं ।  
 निधायोरसि संशुद्धा प्रविशेज्जातदेदसं ॥

व्यासः ।

दक्षितं यान्यदेशस्थं वृत्तं श्रुत्वा पतिव्रता ।

समारोहति दीप्तेऽग्नौ तस्याः शक्तिं निबोधत ॥  
वृत्तं मृतमित्यर्थः ।

यदि प्रविष्टो नरकं बहः पाशैः सुदारुणैः ।  
संप्राप्या यातनास्तत्र गृहीतो यमकिङ्करैः ॥  
तिष्ठते विषसो दौनो वेष्टमानः स्वकर्मभिः ।  
व्यालपाहो यथा व्यालं बलादुद्धरति बलात् ।  
तद्वह्नीरमादाय दिव याति तपावलात् ॥  
तत्र सा भर्तृपरमा स्तूयमानाऽस्मरोगणैः ।  
क्रीडते पतिना सार्धं यावदिन्द्रायतुर्हृष ॥  
वाराहपुराणे ।

ततो दिव्याम्बरधरन् दिव्याभरणभूषितं ।  
दिवि दिव्यविमानस्थं भर्तारं स्वन्दर्श सा ॥  
कूर्मपुराणात् ।

ब्रह्मघ्नं वा सुरापन्न महापातकदूषितं ।  
भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा मह पावकं ॥  
एतदेव परं स्त्रीणां प्रायश्चित्तं विदुर्बुधाः ।  
सर्वपापं समुद्धृतं नात्र कार्या विचारणा ॥  
आदित्यपुराणात् ।

मृते भर्तारि वा वज्रं समारोहति कर्हिवित् ।  
साहस्यतीसमाचारा स्वर्गलाके महोयते ॥  
मातृकं पैतृकं वापि यत्र कन्या प्रदीयते ।  
पुनति त्रिकुलं नारी भर्तारं यानुगच्छति ॥  
क्रीडते पतिना यत्र यावदिन्द्रायतुर्हृष ॥

स्वेच्छया तदवाप्नोति यत्र गत्वा न शोचति ॥

इत्यग्निप्रवेशविधिः ।

— ००० —

अथ कारीषाग्निसाधनं ।

कारीषं साधयेद्यस्तु पुष्करे तु षणे नरः ।  
 सर्व्वं लोकान् परित्यज्य ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥  
 ब्रह्मलोके वसेत्तावत् यावत् कल्पक्षयो भवेत् ।  
 नैव भ्रश्यति मर्त्येषु क्लिश्यमानः स्वकर्म्मभिः ॥  
 गतिद्यास्याप्रतिहता तिर्य्यगूर्ध्वमधस्तथा ।  
 सप्तर्षिसर्व्वं लोकेषु स्ववशो विचरन् वशी ॥  
 उपचारविधिस्तत्र सर्व्वेन्द्रियमनोहरः ।  
 मृत्यवादित्रगीतज्ञः सुभगः प्रियदर्शनः ॥  
 संसेव्यमानः कुसुमैः दिव्याभरणभूषितः ।  
 नीलोत्पलदलश्यामो नीलकुञ्चितमूर्ध्वजः ॥  
 अजेयतनुमध्याय सर्व्वसौभाग्यपूजिताः ।  
 सर्व्वे श्रेय्यगुणोपेताः यौवनेनातिगर्ब्विताः ॥  
 स्त्रियः सेवन्ति तं नित्यं शयने रमयन्ति च ।  
 वीणावेणुनिनादैश्च सुमः स प्रतिबुध्यते ॥  
 महोत्सवसुखं भुङ्क्ते दुष्प्रापमङ्गतात्मभिः ।  
 प्रसादाद्देवदेवस्य ब्रह्मणः शुभकारिणः ॥

इति पद्मपुराणोक्तं कारीषाग्निसाधनं ।

— ००० —

अथ भृगुपतनविधिः ।

रेवाखण्डात् ।

युधिष्ठिर उवाच ।

भृगोः पतन्ति ये शूराः काङ्क्षति वै प्रयान्ति ते ।

त्र्योतुमिच्छाम्यहं ह्येतत् कथय त्वं महासुने ॥

मार्कण्डेय उवाच ।

एकान्तरोपवासैश्च भृगुगोचरसंयतैः ।

प्राणांस्त्वजन्ति ये शूरा गतिं तेषां निबोधय ॥

पृथक् पृथक् निवासश्च तेषां कर्मानुसारतः ।

चतुर्विंशतिकोटास्तु सप्तदश तद्यापराः ॥

उमायां तु पुरा शमा मध्यमोत्तमकल्पकाः ।

अनेन विधिना यस्तु प्राणांस्त्वजन्ति मानवः ॥

स तु भर्ता मया दत्तो युष्माकन्तु प्रसादतः ।

अमरेश्वरं प्रमोताश्च भर्तृतां वो व्रजन्ति वै ॥

भृगुं दृष्ट्वात्स्यश्रेष्ठ मुच्यते ब्रह्महत्याया ।

चतुरशीतिभृगवो जम्बूद्वीपे प्रकीर्तिताः ॥

तथान्ये सप्त निर्दिष्टाः स्वर्गसोपानमुत्तमाः ।

भैरवश्च भृगुश्रेष्ठो ज्ञेयश्चामरकण्ठके ॥

शूद्राश्च चक्रिथा वैश्या अन्याजाबाधमास्ताथा ।

एते त्वजेयुः प्राचान्यै वर्जयित्वा द्विजं शृप ॥

पतित्वा ब्राह्मणस्यैव ब्रह्महा चाज्जहा भवेत् ॥

( १२१ )

द्वात्रिंशच्च सहस्राणि राहुसोमसमागमे ।  
 वर्षाणां जायते राजन् राजा विद्याधरे पुरे ॥  
 अस्ती तु राहुणा सूर्य्यं द्विगुणं फलमश्रुते ।  
 अथशः स्ववशो वापि जलपूरानलेर्हतः ।  
 नृपते गोभृगुं प्राप्य स विद्याधरराड् भवेत् ॥  
 भृगुं भैरवरूपेण विद्धि कैलाससम्भवं ।  
 गर्हयन्ति भृगुं ये तु ते लिङ्गब्रह्मवादिनः ।  
 भैरवः क्षमते तेषामिति स्कन्देन कीर्तितं ॥  
 सन्धासाश्च श्रुतो विप्रो माट्टहा पिट्टहा तथा ।  
 शत्रुगो माट्टगश्चैव सुषागः स्वसृगस्तथा ॥  
 एतेषां पतनं शस्तं काषाम्निश्च प्रसाधनं ।  
 मुच्यते तेन पापेन शिवलीकं स गच्छति ॥  
 वत्सरं वत्सराष्टन्तु त्रिमासं मासमेव च ।  
 सप्तत्रीणि दिनानीह वसेद्यो वै युधिष्ठिर ॥  
 एकान्तरोपवासाहै स गच्छेच्छिवमन्दिरं ।  
 हरिश्चन्द्रे पुरीषन्द्रे श्रीशैले त्रिपुरान्तरे ॥  
 धीतपापे महापुण्ये वाराहे विन्ध्यपर्वते ।  
 कावेर्यास्तु तथा कुण्डे पतनात् स्वर्गमाप्नुयात् ॥  
 शृगोस्तु दक्षिणे भागे लिङ्गं वै चापलेश्वरं ।  
 क्षेत्रसंरक्षणायेह विख्यातं पापनाशनं ॥  
 भृगुः षड्या भृगोस्तद्धि विज्ञेयं चापलेश्वरं ।  
 पारोहति गिरिं यस्तु तमदृष्ट्वा तु मानवः ।  
 तस्य पुष्पकलं सर्व्वं स गृह्णाति न संशयः ॥

आलिख्य च पटे सूर्यं पताकादण्डमण्डितं ।  
 बलयश्च करे कृत्वा वीज्यमानस्तु चामरैः ।  
 वीरैरुद्रपतितच्छत्रं आरोहेद्भृगुपर्वतं ।  
 पदे पदे यज्ञफलं तस्य स्याच्छङ्करोऽत्रवीत् ॥  
 पर्वकालं प्रतीचन्तेऽप्सरसः काममोहिताः ।  
 दिव्ययानसमारूढा दिव्याभरणभूषिताः ॥  
 वीरस्तु पतितस्तत्र स्वयं त्यक्त्वा कलेवरं ।  
 तत्क्षणाद्दिव्यलोकेषु शक्यतुष्यो भवेन्नृप ॥  
 कामदं यानमारुह्य विवादेन परस्परं ।  
 गच्छेच्छिवपुरं सार्धं अप्सरोभिर्मुदा युतः ॥  
 क्रीवस्य सत्त्वहीनस्य ह्यृतीर्णस्य भृगोः पुनः ।  
 पदे पदे ब्रह्महत्या भवेत्तस्य न संशयः ॥  
 न चिरायुर्यतो मर्त्यो मृत्योः कस्माद्द्विभेत्यसौ ।  
 केऽपि धारयितुं शक्ताः कालमृत्युवशं नरं ॥  
 स पापिष्ठो दुराचारखाण्डाक्षो लोकगर्हितः ।  
 सन्नगासादिकमारुह्य च्यवते यस्तु मानवः ॥  
 सन्नगासप्रच्युतं, विप्रं दृष्ट्वा नरोऽर्कवीक्षणं ।  
 कुर्यात्सर्वप्रयत्नेन स्वयं चान्द्रायणश्चरेत् ॥  
 सत्यानृतं न वक्तव्यन्तेन सार्धं कादाचन ।  
 प्रस्थातव्यं हि मौनेन न चेत्पापमवाप्नुयात् ॥  
 निश्चिते मरणे प्राप्ते कथं भृगुवपेक्षते ।  
 जरामृत्युश्च रोगश्च संसारोदधिसङ्घटे ।  
 एवं कृत्वा नृपत्रेष्टं आरोहेत् भृगुमुत्तमं ॥



भविष्योत्तरात् ।

कृष्ण उवाच ।

अहन्ते कथयिष्यामि तं विधिं पाण्डु नन्दन ।  
यत् कृत्वा प्रथमं कर्म निपतेत्तदनन्तरं ॥  
कृत्वा कृच्छ्रत्रयं पूर्वं जपन् लक्षान् दशैव तु ।  
शाकयावकाहारस्यः शुचिस्त्रिषवणो नरः ॥  
त्रिकालमर्चयेद्दीपं देवदेवं त्रिलोचनं ।  
दशांशेन तु राजेन्द्र होमस्तत्रैव कारयेत् ॥  
लक्षवारक्षपेदेवं गन्धमास्थैश्च पूजयेत् ।  
रात्रौ स्वप्ने तदा पश्येद्दिमानस्यस्ततः क्षिपेत् ।  
आत्मानं मन्यते तात अकृतार्थं कथञ्चन ॥  
अनैनेव विधानेन आत्मानं यस्तु निक्षिपेत् ।  
स्वर्गलोकमनुप्राप्य मोदते त्रिदशैः सह ॥  
त्रिंशद्दशसहस्राणि त्रिंशत्कोटास्तथैव च ।  
क्रीडित्वा विविधान् भोगान् तदा गच्छेत्तद्दहीतलं ॥  
पृथिवीमेककृत्त्रेण भुङ्क्ते स द्विजपूजितः ।  
व्याधिशोकविनिर्मुक्तो जीवेच्च शरदां शतं ॥

देवीपुराणात् ।

परमेश्वर उवाच ।

यद्दि वै भैरवं रूपं कृतं भूतचयं प्रति ।  
अनुपहाय भूतानां भूधरेन्द्रे भविष्यति ॥  
तस्मिन् ये भावभाषणा मत्पुत्रा मयि भाविताः ।

पतन्ति ते च भर्तारो मम तुल्या भवन्ति वै ।  
भुक्त्वा भीगांस्तथा तेन राज्ञा राजपुरीचितान् ।  
क्रमादनुन्नवं यान्ति तत्र मीक्षपदं ध्रुवं ॥

ब्रह्मोवाच ।

एवं तासां वचो दत्तं देवदेवेन शूलिना ।  
नारीणां भर्तृकामानां नित्यमानन्दकारकं ॥

सनत्कुमार उवाच ।

किं रूपं भैरवं ह्येतत् कथं कायं गतो विभी ।  
पातयाच्चाफलं देव कथयस्व प्रसादतः ॥

ब्रह्मोवाच ।

ये ते संभावसम्पन्नाः कृत्वा मनसि वै शिवं ।  
भैरवं यान्ति ते रुद्रं ते यान्ति परमं पदं ॥  
ये वा स्नेहाद्दयाक्रीभात् कौतुकात् यान्ति भैरवं ।  
तेऽपि वै तत्प्रसादेन भुवनानां महामते ।  
शिवत्वं क्रमयोगिन रुद्रत्वं यान्ति ते द्विजाः ॥  
अथवा भैरवं रूपं पावनं सुरपूजितं ।  
कृत्वा स्वास्थां महावाच्चे भैरवं सर्वकामदं ।  
पञ्चविंशभुजं देवं रुद्रत्वं यान्ति ते द्विजाः ॥  
अथवा भैरवं रूपं पटगं सुरपूजितं ।  
कृत्वा स्वास्थां महावाच्चे भैरवं सर्वकामदं ॥  
पञ्चविंशभुजं देवं पीताङ्गं सुरपूजितं ।  
सङ्गखेटभरं कार्यं शूलोद्यतकरं परं ॥

गजचर्मधरश्चैव चक्रोद्यतभुजं तथा ।  
 खटाङ्गश्च कपालश्च वज्रं डमरुकं तथा ॥  
 एवंविधेन रूपेण भीमदंष्ट्रं धराननं ।  
 अश्वकं भिन्दमानन्तु शङ्करन्तु त्रिलोचनं ॥  
 कुर्वन्तु भैरवं देवं ससुरासुरपूजितं ।  
 नानाशिवशिवैर्युक्तं ननाभरणभूषितं ॥  
 नवयौवनशोभाटां सर्वशोभाप्रकाशकं ।  
 क्षुरिकानागराजेन वासुकिशोपवीतकं ॥  
 कुलिकस्तु जटाबन्धे शङ्खपालेन कङ्कणं ।  
 तक्षकः पद्मनागश्च कार्य्यो केयूरमण्डने ॥  
 पद्मकर्कोटकी नागौ नूपुरौ पादगौ शुभौ ।  
 एवं देवं प्रकुर्वीत भैरवं सर्वकामदं ॥  
 तस्य हास्यी प्रकर्त्तव्यौ पीताङ्गौ सर्वलक्षणी ।  
 शूलहस्तौ शुभौ देवौ गजवाजिरथौ परौ ॥  
 द्वारपी तत्र गङ्गाद्या द्वारे कार्य्यास्तु भैरवे ।  
 उद्भेजितास्तु पीडाद्यैः प्रकुर्युरिह पातकं ॥  
 एवञ्चात्र प्रसङ्गेन कथितं तव सुव्रत ।  
 कपालशूलहस्तौ तु उत्पलाङ्कुरधारिणौ ।  
 हास्यौ देवस्य कर्त्तव्यौ सर्वाभरणभूषितौ ॥  
 भैरवश्चीर्द्धवदनं ब्रह्मविष्णादिभिर्युतं ।  
 शूलभिन्नाश्वकं रूपं धार्य्यमानं तु कल्पयेत् ॥  
 एवं पटगतङ्कत्वा पूजयित्वा परं विभुं ।  
 सातुगं सह मन्त्रेण रक्तमाख्याम्बरादिभिः ॥

आत्मानं भूषयित्वा तु मुद्रालङ्कृतपाणिना ।  
 प्राप्य तद्दृष्ट्वा रम्यं भोगमोक्षप्रदायकं ॥  
 पूजाङ्गत्वा तु देवेशे गयाश्वकमदापहे ॥  
 आरोहेदमरं स्थानं भुक्तिमुक्तिफलप्रदं ॥  
 आकारं चिन्तयित्वा तु रूपं स्वच्छन्ददायकं ।  
 तस्य वक्षानले होममात्माहुत्या तु कारयेत् ॥  
 देववक्त्रं हुताशस्तु स्वयङ्कृततिलादिकं ।  
 हीतव्यं तेन भावेन परां सिद्धिमभीप्सकेः ॥  
 पातङ्गकेन वीरो वै यथावर्त्तं निबोधत ।  
 पतङ्ग इव चात्मानं दीपान्नी निक्षिपेत्तु यः ।  
 पातङ्गी नाम पातोऽयं हंससंज्ञमतः शृणु ॥  
 संयम्य पक्षसङ्घातं कृत्वा वेगवतीं तनुं ।  
 तं पातं हंसनामानं साधकेच्छापलप्रदं ॥  
 मृगोऽपि यूथे गर्त्तादिलङ्घनेस्तु यथा व्रजेत् ।  
 समपादमतिर्यस्तु मृगपातः स उच्यते ॥  
 मीशलं मुशलीभूत्वा पतेद्यद्ददूखले ।  
 विमानं ध्वजमालादिशाखादीलादिकं लभेत् ॥  
 वृषभस्येव कृत्वा तु धूननं सुचिरं द्विज ।  
 वृषपातं विजानीहि रुद्रलोकफलप्रदं ॥  
 सिंही गजेन्द्रनिधने यथा विक्रमते तनुं ।  
 एवं तत्कृतभावस्तु पातः सिंहकर्मो मतः ॥  
 कृत्वा तु भैरवं रूपं सायुधं विगतज्वरः ।  
 शिवानने क्षिपेत्कार्यं तं पातभैरवप्रदं ॥

पातङ्गाद्या यथा पाताः स्वात्मभावगता द्विजाः ।  
 तथा ते फलदाः सर्व्वे क्रमन्ते भैरवं पदं ॥  
 भुवनानि विचित्राणि असंख्येषानि संख्यया ।  
 अन्नपानानि यानीह क्रमयः सीन्नि तानि तु ॥  
 दीक्षादिना विरहिता येऽपि भङ्गवगङ्गताः ।  
 तेऽपि भुक्त्वा वरान् भोगान् प्रयान्ति परमं पदं ॥  
 पापीपि हि पुमांस्तत्र वर्णाश्रमविवर्जितः ।  
 प्रभावाच्चैव देवस्य भुङ्क्ते चैव वरं सुखं ॥  
 नन्दकेदारदेवस्य तथा रुद्रमहालयं ।  
 भैरवेण तु तुल्याणि भोगान्ते मोक्षदानि तु ॥  
 षत्वारि देवशार्दूल सर्व्वानिष्टहराणि तु ।  
 प्रसङ्गेनापि नुद्यन्ते तत्र ये कुपितैर्नराः ।  
 तेऽपि यानं समारुह्य त्वायान्ति च शिवं पदं ॥  
 स्वर्गताः क्रमयोगेन भुक्त्वा तु बहुधा परान् ।  
 विचित्ररूपसपत्नाः सर्व्वकामसुखप्रदाः ॥  
 कन्या हिरण्यर्षाश्च पीनोन्नतपयोधराः ।  
 भुञ्जन्ति सुविचित्रास्ताः पातं युञ्जन्ति मानवाः ॥  
 नार्थी वा पतनं कुर्युस्तदा भुञ्जन्ति भैरवान् ।  
 प्रभुत्वं दिव्यभोगाद्याः अप्सरोगणसंयुताः ॥  
 गाःधर्ष्वश्च यथा यच्च किञ्चरं वारुचं तथा ।  
 तथा विद्याधरं सीरं रौद्रं च क्रमयःस्थितं ॥  
 स्वकामभोगसम्पन्नं पतनाद्भूवनं लभेत् ।  
 स्वकामतोपि तद्भुक्त्वा चान्ते याति परं पदं ॥

वैष्णवास्थिमयीं मालां कम्बुकं शाश्वतं सदा ।  
 धारयेद्देवदेवेशं लोकानुग्रहकारणात् ॥  
 ये चित्रधातुकाष्टोत्थं रत्नशैलमयश्च वै ।  
 पूजयन्ति कृतपुण्यास्तेऽपि यान्ति शिवं पदं ॥  
 एवं गृहेऽथ शैले वा नदीविश्याटवीषु च ।  
 भैरवं पूजयेद्यस्तु स लभेदीप्सितं फलं ॥  
 पत्रं पुष्पं मठं कूपमारामाणि च भैरवे ।  
 कृत्वा च तानि चत्वारि देयानि सुखमिदये ॥  
 यद् दत्त्वा सर्वदेवानां फलं प्राप्नोति मानवः ।  
 विघ्ने वा वेदविदुषे तत् फलं भैरवान्नभेत् ॥

### इति शृंगुपतनविधिः ।

— ००० (१) ००० —

अथ संग्रामविधिः ।

वक्रिपुराणात् ।

धर्मध्वज उवाच ।

शूराणां मे समाख्याता स्वर्गतियुधिसंस्तरात् ।  
 कृते त्वया मुनिश्रेष्ठ तस्मात् त्वं वक्तुमर्हसि ॥

मैत्रेय उवाच ।

अग्निष्टोमादिभिर्ब्रह्मैरिद्धा विपुलदक्षिणेः ।  
 न तत् फलमवाप्नोति संग्रामे वदवाप्रयात् ॥

( १२२ )

इति यज्ञविदः प्राहुर्धृञ्कर्मविशारदाः ।  
 तस्मात्तत्ते प्रवक्ष्यामि यत् फलं शस्त्रजीविनां ॥  
 धर्मलाभोऽर्थलाभश्च यशोलाभस्तथैव च ।  
 यः शूरो विद्यते पुंसां विमुच्य परवाहिनीं ॥  
 तस्य धर्मार्थकामश्च यज्ञाद्यैवाप्तदक्षिणाः ।  
 परं ह्यभिसुखं हत्वा तद्यानं योऽधिरोहति ॥  
 विष्णुक्रान्तं स यतते एवं युध्यन् रणाजिरे ।  
 अश्वमेधानवाप्नोति चतुरस्तेन कर्मणा ॥  
 यस्तु शस्त्रमनुत्सृज्य वीर्यवान् वाहिनीमुखे ।  
 सम्मुखो वर्त्तते शूरः स स्वर्गान् निवर्त्तते ॥  
 राजा वा राजपुत्रो वा सेनापतिरथापि वा ।  
 हतः क्षत्रेण येनाशु तस्य लोकोऽक्षयो ध्रुवं ॥  
 यावन्ति तस्य शस्त्राणि भिन्दन्ति त्वचमाहवे ।  
 तावतो लभते लोकान् सर्व्वकामदुहोऽक्षयान् ॥  
 वीरासनं वीरशय्या धीरस्थानस्थितिस्थिरा ।  
 गवार्थं ब्राह्मणस्यार्थं गोस्वाभ्यर्थं तु ये हताः ।  
 ते गच्छन्त्यमलं स्थानं यथा सुकृतिनस्तथा ॥  
 अभग्नं यः परं हन्याद्भग्नञ्च परिरक्षति ।  
 घृष्टस्थितः पालयति सोऽपि गच्छति तद्भक्तिं ॥  
 षणुत्तीर्णस्तथा सद्यः प्राणान् सन्त्यजते युधि ।  
 हताश्वः पतते युधे सः स्वर्गान् निवर्त्तते ॥  
 दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि हता ऋच्छेद्य तस्करैः ।  
 स्वाम्यर्थं ये हता राजन् तेषां स्वर्गो न संभयः ॥

भयेन लज्जया वापि ज्ञेहेन च रणाजिरे ।  
 सन्मुखो क्रियते राजन् तदा स्वर्गो न संशयः ॥  
 यस्य चिह्नोक्तं गात्रं शरशक्त्यृष्टितोमरैः ।  
 देवकन्यास्तु तं वीरं रमयन्त्यनुयान्ति च ॥  
 पराप्सरः सहस्राणि शूरमायोधने हतं ।  
 त्वरितन्तं विधावन्ति मम भर्ता ममेति च ॥  
 यत्र तत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।  
 अन्नगाल्लभते लोकान् यदि शीवं न भाषते ॥  
 जिते च लभते लक्ष्मीमूर्तेनापि सुराङ्गणां ।  
 क्षणविध्वंसिकायाश्च का चिन्ता मरणे रणे ॥  
 हतस्याभिसुखस्यस्य पतितस्यानिवर्त्तिनः ।  
 क्रियते यत्परैर्द्रव्यं स्वमेव सफलं हि तत् ॥

विष्णुधर्मात् ।

शक्यन्तिह सधर्मस्तु यदुक्तन्तु शतैर्नरैः ।  
 आत्मदेहन्तु विप्रार्थं त्यक्तुं युष्मिं सुदुष्करं ॥

यां यज्ञसङ्घैस्तपसा च विप्राः ।  
 स्वर्गेषिणः सच्चयैश्च यान्ति ।  
 क्षणेन तामेव गतिं प्रयान्ति  
 महाहवे स्वांतगुमुत्त्यजन्ति ॥  
 सर्व्यं च वेदाः सह षड्भिरङ्गैः  
 साष्टाक्षरं योगं तपसा च पुंसं ।  
 एतान् गुणानेकपदेऽतियेत  
 संशामधन्वात्मतनुं त्वजेद् यः ॥



इमां गिरं चित्रपदां शुभाक्षरां

सुभाषितां वृषभिदां दिवोकसां ।

रणोन्मुखे यः स्मरते दृढव्रतः

न हन्यते हस्ति च सङ्करे रिपून् ।

एषः पुण्यतमः स्वर्गः सुयज्ञः सर्व्वतीमुखः ।

सर्व्वेषामेव वर्णानां क्षत्रियस्य विशेषतः ॥

भूयश्चैव प्रवक्ष्यामि भीष्मवाक्यमनुत्तमं ।

यादृशो यः प्रहर्त्ता तं तादृशं परिवर्जयेत् ॥

आततायिनमायान्तमपि वेदान्तकद्रुषे ।

जिघांसन्तं जिघांसं सीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥

हताश्वश्च न हन्तव्यः पानीयं यद्य भाषते ।

व्यसनार्त्ता भवेद्यद्य भुञ्जानद्य महामते ॥

पलायनपरश्चैव प्राणेषु कृपणं त्यजत् ।

विमुक्तकेशो धावंश्च यश्चीन्मत्ताकृतिर्भवेत् ॥

पर्णशाखाटणयाही तक्मश्नीति च यो वदेत् ।

ब्राह्मणोऽश्नीति यद्याहं वाली वृद्धो नपुंसकः ।

तस्मादेतान् परिहरेद् यथोद्दिष्टान् रणाजिरे ॥

काशिकापुराणात् ।

ऋषयस्तु पुरा ख्यातं नराणां नास्ति निष्कृतिः ।

आतुरश्चीतमुद्दिग्गं कायस्थं शरणागतं ॥

स्त्रियमप्यथ बालं वा गावं पङ्कं तपस्त्रिनं ।

विलपन्तं तद्योन्मत्तं विस्रस्तं ब्राह्मणं तथा ॥

पतन्तं प्रपलायन्तं एकाकिनं निरस्त्रकं ।

नम्नं दीनं तथा वृद्धं हताशाभ्यासमादन ॥  
 मुक्तकेशं तथा मत्तं सुप्तं भूरियनोकसं ।  
 स्र्दयिष्यन्ति ये मृदा नूनन्ते नरकार्णवात् ॥  
 अमुत्थाना विविध्यन्ते पतितः कुञ्जरो यथा ॥  
 विष्णुधर्मोत्तरात् ।

राम उवाच ।

सांघामिकं महत्तत्त्वं श्रोतुमिच्छामि भूभुजां ।  
 सर्व्वं वेत्ति महाभाग त्वं देव परमेष्ठिवत् ॥

पुष्कर उवाच ।

द्वितीयेऽहनि संघामो भविष्यति यदा तदा ।  
 गजांश्च स्र्पयेद्राजा सर्व्वोपधिजलैः शुभैः ॥  
 गन्धमाल्यैरलङ्कय्यात् पूजयेच्च यथाविधि ।  
 नृसिंहं पूजयेद्विष्णुं राजलिङ्गान्यशेषतः ॥  
 छत्रं ध्वजं पताकाञ्च धर्मं चैव महाभुज ।  
 आयुधानि च सर्व्वानि तथा पूज्यानि भुभुजा ॥  
 तेषां संपूजनं कृत्वा रात्रौ प्रथमपूजनं ।  
 कृत्वा तु प्रार्थयेत् स्वप्नं विजयायेतराय वा ॥  
 प्रथमञ्च महापार्थ धरण्याञ्च महोपतिः ।  
 भिषक्पुरोहितामात्यमन्त्रिमध्ये तदा स्वपेत् ॥  
 संयतो ब्रह्मचारी च नृसिंहं सम्भरन् हरिं ।  
 रात्रौ दृष्टे शुभे स्वप्ने समरारम्भमाचरेत् ॥  
 रात्रिशेषे समुत्थाय स्नातः सर्व्वोपधिजलैः ।  
 पूजयित्वा नृसिंहन्तु वाहनाद्यमशेषतः ॥

पुरोधसा हृतं पश्यन् ज्वालितं जातवेदसं ।  
 पुरोधाः पूर्ववत्तत्र मन्त्रांस्तु जुहयाच्छुचिः ॥  
 दक्षिणाभिस्ततो विप्रान् पूजयेत् पृथिवीपतिः ।  
 ततोऽनुलिम्बेहावाणि गन्धदारेति पार्थिव ॥  
 चन्दनागुरुकर्पूरं कान्तकालीयकैः शुभैः ।  
 मूर्द्ध्नि कण्ठे समालभ्य रोचनाञ्च तथा शुभां ॥  
 आयुष्यं वर्चस्यञ्चेति मन्त्रेणानेन मन्त्रितं ।  
 अलङ्करणमावध्याच्छ्रियन्थोतुरितिस्रजं ॥  
 ध्यात्वौषधय इत्येवं धारयेदौषधीः शुभाः ।  
 नवीनवेति वस्त्रञ्च कार्पासं विभ्रयाच्छुभं ॥  
 ऐन्द्राग्नेति ततो धर्मं धन्वनागिति वै बुधः ।  
 ततो राजा समादद्यात् सरस्वन्वभिमन्त्रितं ॥  
 कुञ्जरं वा रथं वाश्वन्दुहेदिव्यभिमन्त्रितं ।  
 आरुह्य सिद्धिमद्राजा निष्क्रम्य तु समप्रभे ॥  
 देशे च दृश्यः शत्रूणां कुर्यात् प्रकृतिकल्पनां ।  
 संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद्दृङ्गन् ॥  
 सूचीमुखमनीकं स्यादल्पाणां बहुभिः सह ।  
 व्यूहाः प्राण्यङ्गरूपाश्च द्रव्यरूपाश्च कीर्त्तिताः ॥  
 गरुडाकारव्यूहश्च चक्रस्येनस्तथैव च ।  
 अर्धचन्द्रश्च वज्रश्च शकटव्यूहएव च ॥  
 व्यूहत्र सर्व्वेतीभद्रः सूचीव्यूहस्तथैव च ।  
 पद्मश्च मण्डलव्यूहः प्राधान्येन प्रकीर्त्तिताः ॥  
 व्यूहानामथ सर्व्वेषां पञ्चधा सैन्यकल्पना ।

द्यौ पक्षी बभ्रुपक्षी तु हारस्य पञ्चमे भवेत् ॥  
 एकेन यदि वा द्वाभ्यां तत्समं युद्धमाचरेत् ।  
 भागतयं स्यापयेत् तेषां रक्षार्थमेव च ॥  
 न व्यूहे कल्पना कार्या राज्ञो भवति कर्हिचित् ।  
 पत्रच्छेदे फलच्छेदे वृक्षच्छेदावकल्पने ॥  
 पुनः प्ररोहमायाति मूलच्छेदे विनश्यति ।  
 स्वयं राज्ञा न योद्धव्यमपि सर्वान्स्वगलिना ॥  
 नित्यं लोके हि दृश्यन्ते शक्तेभ्यः शक्तिमत्तराः ।  
 सैन्यस्य पशान्तिष्ठेत्तु क्रोशमात्रे महोपतिः ॥  
 भग्नमन्यारणं तत्र योधानां परिकीर्तितं ।  
 प्रधानत्वेन सैन्यस्य नावस्थानं विधीयते ॥  
 न भग्नान् पीडयेच्छत्रून् नैकायनगता हि ते ।  
 मरणे निश्चिताः सर्वे हन्युः शत्रुचमृमिति ॥  
 भटभङ्गच्छलेनापि नयन्ति सभवं परान् ।  
 तेषां स्वभूमिसंस्थानां बधः स्यात्सुकरस्तदा ॥  
 न संहतात्र विरलान् योधान् व्यूहे प्रकल्पयेत् ।  
 आयुधानान्तु संमर्द्दा यथा न स्यात् परस्परं ॥  
 तथा च कल्पना कार्या योधानां भग्ननन्दन ।  
 भेदकामः परानीकं संहतैरेव भेदयेत् ॥  
 देवरक्षापरिणापि कर्त्तव्या संहता तथा ।  
 स्वेच्छया कल्पयेत् व्यूहं ज्ञात्वा चारप्रकल्पनं ॥  
 व्यूहान्तदा वद्धन् कुर्यात् रियुव्यूहस्य पार्थिवः ।  
 गजस्य देया रक्षार्थं चत्वारः सुरथा द्विज ॥

रथस्याश्वस्य चत्वारस्तावन्तस्तस्य चर्मिणः ।  
 चर्मिभिश्च समास्तत्र धन्विनः परिकीर्त्तिताः ॥  
 पुरस्ताच्चर्मिणो देया देयास्तदनु धन्विनः ।  
 धन्विनामनु चाश्वीयं रथांस्तदनु योजयेत् ॥  
 रथानां कुञ्जरास्थानु दातव्याः पृथिवीचिता ।  
 पदातिकुञ्जरास्थानां वर्श्म कार्यं प्रयत्नतः ॥  
 भावर्जयित्वा यो वाहमात्मानं वर्श्मयेन्नरः ।  
 शूरा मरणकं यान्ति सुकृतेनापि कर्मणा ॥  
 शूराः प्रमुखतो देया न देया भीरवः क्वचित् ।  
 शूरा वा मुखतो दत्ता तनुमात्रप्रदर्शनं ॥  
 कर्त्तव्यं भीरुसङ्घे न शत्रुविद्रावकारकं ।  
 दानयन्ते(१) पुरस्तात्तु विद्वता भीरवः पुरः ॥  
 य उक्त्वाहयन्ते रणे भीरुं शूराः पुरा स्थिताः ।  
 प्रांशवः सुकनासाश्च योजित्रञ्चेक्षणा नराः ॥  
 संहतभ्रू युगाश्चैव क्रोधनाः कलहप्रियाः ।  
 नित्यदृष्ट्या न दृष्ट्याश्च शूरा ज्ञेयाश्च कामिनः ॥  
 पञ्चालाः शूरसेनाश्च रथेषु कुशला नराः ।  
 दाक्षिणात्याश्च विज्ञेयाः कुशलाः खड्गचर्मिणः ॥  
 काङ्गला धन्विनो ज्ञेया पर्वतीयास्तथैव च ।  
 पाषाणयुद्धकुशलाः तथा पर्वतवासिनः ॥  
 काम्बोजा ये च गान्धाराः कुशलास्ते ह्येषु च ।  
 प्रायश्च तथा क्लृप्ता विज्ञेयाः प्रासयोजिनः ॥

१ पाठोऽयमादर्शदीपे च न समीचीनो भवितुमर्हति ।

अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च ज्ञेया मातङ्गयोधिनः ।  
 आहतानाञ्च पतने रथादानयनक्रिया ॥  
 प्रतियुद्धमजानाञ्च तोयदानादिकञ्च यत् ।  
 आयुधानयनञ्चैव पत्तिकर्म विधीयते ॥  
 रिपूणां भेत्तुकामानां स्त्रसैन्यस्य तु रथञ्च ।  
 भेदनं संहतानाञ्च चर्मिणाञ्चर्मकीर्तनं ॥  
 विमुखीकरणं युद्धे धन्विनाञ्च तथोच्यते ।  
 दूरापसरणं यत्तदस्त्रिनश्च तथोच्यते ॥  
 प्रासनं रिपुसैन्यानां रथकम्ब तथोच्यते ।  
 भेदनं संहतानाञ्च भिन्नानामपि संहतिः ॥  
 प्रासादात् गोमुखाहालद्रुमभङ्गाद्य भार्गव ।  
 गजानां कर्म निर्दिष्टं यदसङ्ग तथा परैः ॥  
 पक्षी च विषमा ज्ञेया रथास्त्रस्य तथा समा ।  
 शक्यद्रुमा च नागानां युद्धभूमिरुदाहृता ॥  
 एवं विरचितव्यूहः कृतपृष्ठदिवाकरः ।  
 तथानुलोमशुक्राग्निर्दिक्पालरुधमारुतः ॥  
 योधानञ्च जयेत्सर्वान्नमनात्नावदानतः ।  
 भोगप्राप्तया च विजयाः स्वर्गप्राप्तया मृतस्य च ।  
 धन्यानि तु निमित्तानि वदन्ति विजयं हि ज ॥  
 अदनं शुभगात्राणि शुभस्वप्ननिदर्शनं ।  
 निमित्तञ्च गजाश्वाश्च सर्व्वतो दृश्यन्ते शुभं ॥  
 शशूचां मङ्गलाद्यैव दृश्यन्ते हि मनोनुगैः ।  
 विपरीतमरिः सर्व्वमत्र पश्यति नान्यथा ॥

भवन्तीपि कुक्षे जाताः सर्वभास्त्रास्त्रपारगाः ।  
 ननु धर्मपरा नित्यं नित्यं सन्मार्गमाश्रिताः ॥  
 अनाहारीः परैर्नित्यं कथं न स्याज्जयो मम ।  
 राण्यन्वीर्भवतामिव भवद्भिः केवलं मम ॥  
 हे चामरेऽधिके शूराः कृषं चन्द्राभमेव च ।  
 जित्वारिभागसम्प्राप्तिर्स्तस्य च परा गतिः ।  
 निष्कृतिः स्वामिपिच्छस्य नास्ति युद्धपरा गतिः ॥  
 शूराणां यद्विनिर्व्याति रक्तं सास्त्राधतः कश्चित् ।  
 तेनैव सह पाप्मानं सर्वं त्यजति धार्मिकः ॥  
 तथा चिकित्सां कुर्याद्वा वेदनां हरते तु यः ।  
 ततो नास्त्यधिका लोके बाधा परमदारुणा ॥  
 मृतस्य नास्मिन्सत्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ।  
 कर्तुमिच्छति यस्मिन् संश्रामादधिकस्तु किं ॥  
 तपस्विनो ज्ञानपरा यज्वानो बहुदक्षिणाः ।  
 शूरानां गतिमिच्छन्ति दृष्ट्वा भोगाननुत्तमान् ॥  
 वराप्सरः सहस्राणि शूरमायोधने हतं ।  
 अभिद्रवन्ति कामार्त्ता मम भर्ता भविष्यति ॥  
 स्वामी सुकृतमादत्तेऽभयानां विनिवर्त्तनात् ।  
 कस्य तेषां तथा प्रोक्तमाश्रमेधं पदे पदे ॥  
 जित्वारिभोगसंप्राप्तिर्स्तस्य च परा गतिः ॥  
 सपर्यां तस्य कुर्वन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः ।  
 अश्रमेधफलं प्रोक्तं भयानां विनिवर्त्तनात् ॥  
 पदे पदे महाभाग सन्मुखानां महात्मनां ।

देवस्त्रियस्तथा लक्ष्मीरपाप्मानमयस्तथा ।  
 प्रतीचन्ते महाभाग संग्रामे समुपस्थिते ॥  
 परामयो मया प्राणो जीवत्यवाय वा मृते ।  
 इत्येवमामयस्तस्य पाप्मना स च तिष्ठति ॥  
 लक्ष्मीः सन्तिष्ठते तस्य जीवतः कृतकर्म्मणः ।  
 मृतस्य चोपतिष्ठन्ति विमानस्थाः सुरस्त्रियः ॥  
 एवमुद्धर्षणं कृत्वा धर्मणे क्लेशं रणे ।  
 अधर्मविजये राज्ञो यमलोको भयावहः ॥  
 अधर्मविजयादर्धं यच्छिद्रमभिधीयते ।  
 छिद्रादेवापरं छिद्रन्तस्य स्यान्नात्र संशयः ॥  
 न कर्षी न तथादिग्धः शरस्यार्धमयोधिना ।  
 नास्तगन्धः शरः कार्यो दत्तगन्धश्च भार्गव ।  
 समः समेन योद्धव्यो नानोपचारनेर्हिज ॥  
 सत्रहेन च सत्रदः साश्वशाश्वगतेन च ।  
 रथी च रथिना नाम पदातिश्च पदातिना ॥  
 कुम्भरस्थो गजस्थेन योद्धव्यो भृगुनन्दन ।  
 विमुखो भग्नशस्त्री च स्त्रीबालपरिरक्षिता ॥  
 व्यायुधो भम्बगात्रश्च तथैव शरचागतः ।  
 परेषु युद्धमानश्च युद्धप्रेक्षक एव च ।  
 आर्त्ततीयप्रदाता च दण्डपाणिस्तथैव च ।  
 एते रणे न हन्तव्याश्च अधर्ममभीष्टता ।  
 पापिष्ठे कूटयुद्धे तु कर्त्तव्यो मुखवाहनः ॥  
 आत्मेन प्रातिभूतेन सर्वोत्तीर्णवसेन च ।



दुर्दिने न च युद्धानि कर्त्तव्यानि महाबल ॥  
 प्रवृत्ते समरे राम परेषां नाम कारणात् ।  
 बाहू प्रवृत्त विक्रीयेद्गन्नाभम्नान् परेन्वितान् ॥  
 प्राप्तश्चिन्मलो भूरिनायकोऽपि निपातितः ।  
 सेनानीर्निहतः सोऽयं सेनानीद्यापि वैजतः ॥  
 एवं चित्रासनं कुर्यात्परेषां भृगुनन्दन ।  
 विद्वतानाम्नु योधानां सुविघातो विधीयते ।  
 धनुर्वेदविधानेन कल्पना च तथा भवेत् ॥  
 वपाञ्च देया धर्मज्ञास्तथा च परमोहनी ।  
 एतयाभ्युच्छ्रयः कार्यः स्वस्यले च तथा शुभः ॥  
 सन्भारश्चैव कर्त्तव्यो वादित्राणां जयावहः ।  
 एतत्सर्वं प्रवक्ष्यामि भवोपनिषदि द्विज ॥  
 संप्राप्य विजयं युष्मे कार्यश्चैव तु पूजनं ।  
 पूजयेत् ब्राह्मणांश्चान् गुरुनपि तु पूजयेत् ॥  
 रत्नानि राजगामीनि वर्ष्म बाह्वनमेव च ।  
 सर्वमन्यद्भवेत्तस्य यद्येनेव रणे हृतं ॥  
 कुलस्त्रियस्तु विज्ञेयास्तथा राम न कस्यचित् ।  
 स्वदेशे परदेशे वा साध्वी यत्र च दूषयेत् ॥  
 अन्यथा संगरो घोरो भवतीह जयावहः ।  
 शत्रुं प्राप्त रणे मुक्तः पुत्रस्तस्य प्रकीर्तितः ॥  
 पुनस्तो न न योद्धव्यन्तस्य धर्मविदां मतं ।  
 देशे देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ॥  
 स एव परिपाल्यः स्यात् प्राप्य देशं समीक्षितः ।

नृणां प्रदर्शयेद्राजा समरेऽपि हते रिपो ॥  
 न मे प्रियं क्षतन्तेन येनायं समरे हृतः ।  
 किन्तु पूजां करोत्यस्य मच्छन्दमविजानतः ॥  
 हतोऽयं महितार्थाय प्रियमद्यापि नो मम ।  
 अपुत्राणां स्त्रियश्चैव नृपतिः परिपालयेत् ॥  
 ततस्तु स्वपुरं प्राप्य मुहूर्त्तं प्रविशेद्दृष्टुं ।  
 यात्राविधानविहितं भूयो देवतपूजनं ॥  
 द्विजानां पूजनश्चैव तथा कुर्याद्विशेषतः ।  
 संविभागं परावासेः कुर्याद्विज्ञानस्य तु ॥

विजित्य धर्मैश्च नृपस्तु पृथ्वीं  
 यज्ञीययूपादिसुरालयाङ्गां ।  
 कृत्वा तद्यान्यान् विजयांश्च शत्रूणां  
 लोकां जयत्यप्यमराधिपस्य ॥

आह पराशरः ।

ललाटे रुधिरस्नातः पतितो भुवि सङ्गरे ।  
 सोमपानस्तदेवास्य सर्वदेवगणो भवेत् ॥  
 ललाट देशे रुधिरं स्नवन्  
 यच्छस्त्रघातात्तु सुखे प्रविष्टं ।  
 तस्मैमपानेन तु तस्य तुल्यं  
 संग्रामयज्ञे विधिरेव दृष्टः ॥

याज्ञवल्क्यः ।

आनीय विप्र सर्वस्वं हतं घातित एव वा ।

तन्निमित्तं कृतः शस्त्रैः कुर्वन्नपि विशुध्यति ॥  
 संप्रामे वाहनो यस्तु मृतः शुद्धिमवाप्नुयात् ।  
 मृतकल्पप्रहारैर्वा जीवन्नपि विशुध्यति ॥  
 यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।  
 अक्षयान् लभते लोकान् यदि क्लीवं न भाषते ॥  
 मनुः ।

हाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।  
 परित्राङ्ग्योगयुक्तश्च रणे वाभिमुखो हतः ॥  
 भविष्यपुराणात् ।

यो ब्राह्मणार्थमुद्युक्तः प्राणैर्द्यदि विमुच्यते ।  
 प्राप्नोति परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥  
 ब्रह्मवैवर्त्तात् ।

गोब्राह्मणस्वामिधने महार्णवे  
 त्यक्त्वा शरीराख्यभयास्तु ये नराः ।  
 न योगिनस्तत्परमात्मचित्रकाः  
 फलं लभन्ते श्रमतां जनादिभिः ॥  
 यदाह शालिहोत्रः ।

या संख्या रोमकूपाणां वाहकस्य हयस्य च ।  
 तावत्समा वसेत् स्वर्गं हयपृष्ठहतो नरः ॥  
 यं लोकं वाजिपृष्ठेषु हता गच्छन्ति मानवाः ।  
 तं लोकमधिगच्छन्ति वड्ढ्वासु हताश्च ये ॥  
 पालकाप्यः ।

गजस्वाम्यहता यान्ति स्वर्गं स्वर्गोऽपि मत्ततः ।

तुभ्यानोगणयं (१) वीचिर्ध्वारिधिरिव मन्दिरः ॥  
 शरतीमरचक्रैश्च नागस्कन्धहता नराः ।  
 अन्धान्स्वर्गं प्रयान्तेव यावदाहृतसंभ्रवं ॥

### इति संग्रामविधिः ।

—०००(०)०००—

अथ वृषात्मर्गः ।

कार्तिकव्रामस्ययुज्यां वा । तत्रादौ वृषभं परीक्षेत । जीव-  
 चक्षायाः पुत्रं सर्वं लक्षणीयं नोत्तमोद्धृतं वा पुच्छपादेषु  
 सर्वशुक्तं यूथस्याच्छादकं ।

ततो गवां मध्ये सुममिहमग्निं परिस्तोर्ध्वं पीण्यश्चक्रं अप-  
 यित्वा पूषा गा अन्वेतु न इहरादिति च हुत्वा वृषभमयस्कार-  
 माह्वयेत् । एकस्मिन् पार्श्वे चक्रेषु अपरस्मिन् शूलेनाङ्कितश्च  
 हिरण्यवर्णेति चतसृभिः शन्नोदेवीति च ज्ञापयेत् । ज्ञातालङ्कृतं  
 ज्ञातालङ्कृताभिषतसृभिर्वत्सतरीभिः साधैमानीय वद्रान् पुरुष-  
 सृक्तं कृष्णाण्डौ च जपेत् ।

पिता वक्षेति मन्त्रे वृषभस्य दक्षिणे कथे ।

वृषो हि भगवान् धर्म्ययतुष्यादः प्रकीर्तितः ।

वृषोमि तम्रहं भक्त्या च मां रक्षतु सर्वतः ॥

एनं युवानं पतिं वी ददानि तेन क्रीडन्तीसरस्य मियेष ।

मानः प्राप्तप्रनुबेति ।

१ शब्दोऽयं चादर्शरोपेण वहीषीको वसिष्ठं वाचतेति ।

माहात्म्यं हि प्रजयामातनूभिर्मरिधामद्विषते सोमराजन् ।  
 वृषं वत्सतरीयुक्तं ऐशान्यां कारयेत् दिशि ।  
 होतुर्वस्त्रयुगं दद्यात्सवर्णं कांस्यमेव च ॥  
 अयस्कारस्य दातव्यं वेतनं मनसेषितं ।  
 भोजनं बहुसार्पिथं ब्राह्मणांश्चात्र भोजयेत् ॥  
 सत्सृष्टो वृषभो यस्मिन् पिवत्यथ जलाशये ।  
 शृङ्गेणोत्सिखते भूमिं यत्र कचन दर्पितः ।  
 पितृणामन्नपानादि प्रभूतमुपतिष्ठते ॥

ब्रह्मपुराणे ।

अन्यच्चैवां वृषोत्सर्गं कार्त्तिक्यां वा प्रयत्नतः ।  
 कर्त्तव्यः स्नानशस्त्रैस्तस्त्रिभिर्वर्णं द्विजातिभिः ॥  
 वृषभः कृष्णसारस्तु प्रत्यग्रस्तु त्रिहायनः ।  
 मनोघ्नो दर्शनीयश्च सर्व्वलक्षणसंयुतः ॥  
 अष्टाभिर्धेनुभिर्युक्तश्चतुर्भिरथवा क्रमात् ।  
 त्रिहायनीभिर्धन्याभिः सुरूपाभिश्च शोभितः ॥  
 सर्व्वोपकरणोपेतः सर्व्वसस्यचरो महान् ।  
 सत्सृष्टो विधिनामेन अपि स्मृतिविधानतः ॥  
 प्रागुदक्प्रवणे देशे मनोघ्ने निर्ज्जने वने ।  
 न च वाह्यो न तत्क्षीरं पातव्यं केनचित् कश्चित् ।  
 स्वधा पितृभ्यो मातृभ्यो बन्धुभ्यश्चापि दत्तये ॥  
 मातृपक्षाच्च ये केषित् ये चान्ये पितृपक्षाजाः ।  
 गुरुभ्यश्चरुबन्धूनां ये कुलेषु समुद्भवाः ।  
 ये प्रेतभावमापन्ना ये चान्ये त्राहवर्जिताः ।

वृषोत्सर्गेन ते सर्वे लभन्ते वृषिसुत्तमां ॥  
 दद्यादनेन मन्त्रेण तिलाक्षतयुतं जलं ।  
 पितृभ्यश्च समासेन ब्राह्मणेभ्यश्च दक्षिणां ॥  
 ततः प्रसूदितास्तेन वृषभेण समन्विताः ।  
 वनेषु गावः क्रीडन्ति वृषोत्सर्गप्रसिद्धये ॥  
 अप्रवृत्ते वृषोत्सर्गं दाता वक्रोक्तिभिः पदैः ।  
 ब्राह्मणानाह यत्किञ्चिन्मयोत्सृष्टन्तु निजने ॥  
 तत्कश्चिदन्यो न नयेद्दिभाज्यन्तु यथाक्रमं ।  
 वृषोत्सर्गादृते नान्यत् पुण्यमस्ति महोत्तले ॥

मत्स्यपुराणे ।

मनुस्मृतौ ।

भगवन् श्रोतुमिच्छामि वृषभस्य तु लक्षणं ।  
 वृषोत्सर्गविधिश्चैव तथा पुण्यफलं महत् ॥  
 धेनुमादौ परीक्षेत सुशीलां लक्षणांवितां ।  
 अव्यङ्गामपरिक्रान्तां जीववसामरीगिणीं ॥  
 सिग्धवर्णां सिग्धक्षुरां सिग्धशृङ्गान्तथैव च ।  
 भनोहरातिसौम्याश्च सुप्रमाणामनुदृतां ॥  
 आवर्त्तेर्दक्षिणावर्त्तयुक्ता दक्षिणतय या ।  
 वामावर्त्तेर्वामतय विस्तीर्णजघनस्तना ॥  
 मृदुसंहतताम्बीठी रक्तजिह्वा सुपूजिता ।  
 आस्यावदीर्घा स्फुटितरक्तजिह्वा तथा च या ॥  
 ताम्नाभवलिनेषा च शफेरविरलेर्दृष्टेः ।

( १२४ )

वैदूर्यमधुवर्णं च जलवुद्गुदसन्निभैः ॥  
 रक्तस्त्रिग्वै च नयनैस्तथा रक्तकनीलकैः ।  
 सप्तचतुर्दशदन्ता भवेदश्यामतामुका ॥  
 षड्दन्ता सुपार्श्वीरुष्टुपञ्चसमायुता ।  
 अष्टायतशिरोशीवायुता सा, शुभलक्षणा ।  
 षड्दन्ता भवेत् केषु केषु पञ्चसु चायता ।  
 चायताश्च तथैवाष्टौ धेनूनाङ्गे शुभावहाः ॥  
 मत्स्य उवाच ।

उरः पृष्ठं शिरः कुक्षिः श्रोणी च वसुधाधिप ।  
 षड्दन्तानि धेनूनां कथयन्ति विचक्षणाः ॥  
 कर्णौ नेत्रे ललाटञ्च पञ्चैव रविनन्दन ।  
 समायतानि शस्यन्ते पुच्छं शस्तञ्च चामरं ॥  
 चत्वारश्च स्तना राजन् एवमष्टौ मनीषिभिः ।  
 शिरोशीवायुताश्चैव भूमिपालायता भृशं ॥  
 तस्याः सुतं परीक्षेत हृषभं लक्षणान्वितं ।  
 उन्नतस्कन्धककुदं ऋजुलाङ्गूलकम्बलं ॥  
 महाकाटिं तटस्कन्धं वैदूर्यमणिलोचनं ।  
 प्रबालवर्णशृङ्गायं सुदीर्घमणिबालधिं ॥  
 नवाष्टदशसंख्यैर्वा तीक्ष्णाघैर्दशनैः शुभैः ।  
 मङ्गिकाक्षश्च मोक्षव्यो गृहेऽपि धनधान्यदः ॥  
 वर्षतस्ताम्रकपिली ब्राह्मणस्य प्रशस्यते ।  
 श्वेतो रक्तश्च गौरश्च कृष्णः पाटल एव च ॥  
 इन्द्रनीलाभपृष्ठश्च श्वेतः पञ्चकालकः ।

पृथ्वकर्णी महास्कन्धश्चक्षुरोमा च यो भवेत् ॥  
 रक्ताक्षः कपिलो यस्य रक्तशृङ्गश्च यो भवेत् ।  
 श्वेतोदरः कृष्णपृष्ठो ब्राह्मणस्य च शस्यते ॥  
 श्विग्धरक्तेन वर्षेण क्षत्रियस्य प्रशस्यते ।  
 काश्वनाभिन वैशस्य कृष्णे नाप्यन्यजन्मनः ॥  
 यस्य प्रागायते शृङ्गे स्वमुखाभिमुखे सदा ।  
 सर्वेषामेव वर्षानां स च सर्वार्थसाधकः ॥  
 मार्जारपादकपिलो धन्यः कपिलपिङ्गलः ।  
 श्वेतो मार्जारपादस्तु धन्यो मणिनिभेष्वपि ॥  
 करटः पिङ्गलश्चैव श्वेतपादस्तथैव च ।  
 स्वच्छपादशिरा यस्तु द्विपादः श्वेत एव च ॥  
 कपिञ्चलनिभोधन्यस्तथा तिमिरसन्निभः ।  
 आकर्णमूलाच्छत्रं तु मुखं यस्य प्रकाशते ।  
 नान्दीमुखः स विज्ञेयो रक्तवर्णो विगोपतः ॥  
 श्वेतश्च जठरं यस्य भवेत् पृष्ठश्च गोपते ।  
 उदभः स समुद्राक्षः सततं कुलवर्धनः ॥  
 मल्लिकापुष्पचित्तय धन्या भवति पुङ्गवः ।  
 कमलैर्मण्डलैश्चापि चित्तो भवति गोप्रदः ॥  
 अतसीपुष्पवर्णश्च तथा धन्यतरः स्मृतः ।  
 एते धन्यास्तथाधन्यान् कीर्त्तयिष्यामि ते शृप ॥  
 कृष्णताल्पोष्ठदशना रुक्मशृङ्गगफाश्च ये ।  
 अव्यक्तवर्णा कृत्वाश्च व्याघ्रभस्मनिभाश्च ये ॥  
 ध्वाङ्कशृङ्गसवर्षाय तथा मूषकसन्निभाः ।



कुण्डाः क्षाणास्तथा खण्डा क्लेशः रास्यास्तथैव च ।  
 विषमश्चेतपादाय उद्भ्रान्तनयनास्तथा ॥  
 न ते वृषाः प्रमोक्तव्या न ते धार्यास्तथा गृहे ।  
 मोक्तव्यानाञ्च धार्याणां भूयो वक्ष्यामि लक्षणं ॥  
 स्वस्तिकाकारशृङ्गाय मेघोच्चसदृशखनाः ।  
 महाप्राणाश्चैव तथा मत्तमातङ्गगामिनः ॥  
 महोरस्का महोच्छ्वासा महाबलपरीक्षमाः ।  
 गिरः कर्णौ ललाटश्च बालधियरणाभ्रतथा ॥  
 नेत्रे पार्श्वे च कर्णानि शस्यन्ते चन्द्रसन्निभाः ।  
 श्वेतान्येतानि शस्यन्ते कृष्णस्य तु विशेषतः ॥  
 भूमौ कर्षति लाङ्गूलं सुस्थूलश्चैव बालधि ।  
 पुरस्तादुद्यतो नालो वृषभस्तु प्रशस्यते ॥  
 शक्तिध्वजपताकाभा येषां राजी विराजते ।  
 अनङ्गाहस्तु ते धन्या वित्तसिद्धिजयावहाः ॥  
 प्रदक्षिणा निवर्त्तन्ते स्वयं ये विनिवर्त्तिताः ।  
 समुन्नतशिरोघ्रीवा धन्यास्ते युधवर्षिणाः ॥  
 रक्तशृङ्गोपनयनाः श्वेतवर्णी भवेद्यदि ।  
 शफैः प्रबालसदृशैर्नास्ति धन्यतमस्ततः ॥  
 एते धार्याः प्रयत्नेन मोक्तव्या यदि वा वृषाः ।  
 धारिताश्च तथा सुक्ता धनधान्यविवर्षिणाः ॥  
 चरणाश्च मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपते ।  
 लाक्षारससवर्षश्च तं नीलमिति निर्दिशेत् ॥  
 वृष एव स मोक्तव्यो न स धार्यो गृहे भवेत् ।

तदर्थमेवाविरला लोके गाथा पुराणकौ ।  
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्यप्येको गयां व्रजेत् ॥

एवं वृषं लक्ष्मणसम्प्रयुक्तं  
गृहीद्वं क्रीतमथापि राजन् ।  
मुक्त्वा न शोचेन्नरणं महात्मा  
मी वा विधिं वै महते विधास्येत् ॥  
आदित्यपुराणात् ।

भानुरूवाच ।

शुचन्ति वृषभं ये तु नीलश्वेव सुशोभनं ।  
लाङ्गूलाकर्षसर्व्वाङ्गं शृङ्गयुक्तं मनोहरं ॥  
कार्तिकायां ददते यस्तु दत्त्वा पूजां न संशयः ।  
त्रिवर्षास्त्वथ गुर्विन्धो दद्याद्भावो वृषस्य च ॥  
सावित्रीश्च जपेत्तत्र तथा चैवाघमर्षण ।  
कर्णजाप्यं प्रदद्यात् तु वृषभस्य न संशयः ॥  
घण्टां लोहकृतां दद्यात् शृङ्गैश्च पटलेः शुभैः ।  
रुद्रस्यापि भोजयेच्च ब्राह्मणान्चै यथाविधि ॥  
यावन्ति रोमकूपाणि वृषभस्य भवन्ति वै ।  
गवाश्चैव तथा लोम यावच्छ्रयति वै मुने ।  
तावन्नोटिसउस्त्राणि रुद्रलोके महीयते ॥ .  
यत्किञ्चित् कुरुते पापं पुरुषो हस्तिकर्षितः ।  
ते सर्वे विलयं यान्ति गोपते परिमीचनात् ॥  
वृषभस्यैव शब्देन पितरः सपितामहाः ।  
आखण्डलेन दृश्यन्ते स्वर्गलोके न संशयः ॥

जले प्रक्षिप्य लाङ्गूलन्तोयञ्चोदरते वृषः ।  
 दशवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ॥  
 कूले समुच्छ्रिता यावच्छङ्गे लिखति मृत्तिकां ।  
 भक्ष्यभोज्यमयैः शैलैः पितरस्तेन तर्पिताः ॥  
 गवां मध्ये यदा चैव वृषभः क्रीडते तु यः ।  
 अप्सरसां सहस्रेण क्रीडन्ते पितरः सदा ॥  
 लाङ्गूलमुत्सृजन् यावत्तीर्थे संक्रीडते तु मः ।  
 अप्सरीगणसङ्घैश्च सेव्यन्ते पितरस्तदा ॥  
 सहस्रदत्तमात्रेण तडागेन यथाविधि ।  
 तस्मिन्नुया पितृणां वै सा वृषेण समीच्यते ॥

देवीपुराणात् ।

मनुकवाच ।

अश्वमेधसमं पुण्यं वृषोत्सर्गादवाप्यते ।  
 रिवत्यां वाश्विने मामि कृत्तिकां कार्तिकस्य वा ॥  
 गोविवाहोऽथ वा कार्थ्यां माघ्यां वै फाल्गुनेऽपि वा ।  
 शिवीमामङ्गलं चैव तृतीयायां महाफलं ॥  
 अश्वत्थोदुम्बरीयोगं विवाहविधिना भवेत् ।  
 सतीरणं भवेत्तीर्थं उत्सर्गं गोकुलेऽपि वा ॥  
 चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वौ वा सश्वतोऽपि वा ।  
 वत्सं सर्वाङ्गमपूर्णं कन्या सा वत्सिका भवेत् ॥  
 अलङ्कृत्वा यथाशीघ्रं उत्सर्गं कारयेन्मने ।  
 विवाहमेकवात्सर्यं नीलेन च लभते सदा ॥

वृषेण अश्वमेधस्य यागस्य लभते फलं ।  
 जायेरन् बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गथां व्रजेत् ॥  
 यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा हृषमुत्सृजेत् ॥  
 रोहिती यस्तु, वर्णेन शङ्खवर्णस्वरो वृषः ।  
 सलाङ्गूलं शिरः श्वेतं स वै नीलवृषः स्मृतः ।  
 अङ्गं वीत्सृज्य वै पूर्वं गां वालङ्गुल्य सञ्चतः ॥  
 तदाप्ते वामतश्चक्रं यास्ये शूलं समालिखेत् ॥  
 धातुना हेमतारेण आयमेनाश्रवाद्भयेत् ।  
 एषं कृत्वा अवाप्नोति फलं वाजिमखोदितं ॥  
 यमुद्दिश्योत्सृजेत्सं स लभेताविचारणात् ।  
 यथा गिवीमर्थारचा पूजिता सर्व्वकामदा ॥  
 एवं देवत्वयं यद्वा अनन्तं लभते फलं ।  
 मङ्गलं विहितं यच्च कृत्वा गोदानजं फलं ।  
 क्रतीः सहस्रं कृत्वा यत् वृषोत्सर्गादसप्रयात् ॥  
 वाराहपुराणात् ।

सुक्ता तु नीलकण्ठस्तु कौमुद्याः सम्पार्थमे ।  
 आङ्गं कृत्वा तु सुश्रीणि तर्पयित्वा हिजातयः ॥  
 दत्त्वा तिलोदकं पिण्डं पितृपतामहेषु च ।  
 नरा ये चात्र तिष्ठन्ति पतिताः पितृवाभ्यवाः ॥  
 तेषाम्नाता भविष्यन्ति नीलात्मृष्टी यथाविधि ।  
 गृहीत्वोडुम्बरं पात्रं कृत्वा कृष्णतिलोदकं ॥  
 विप्राणां वचनं कृत्वा यथाशक्त्वा च दक्षिणां ।  
 नीलकण्ठस्य लाङ्गुले तौयमभ्युत्सृजेद्यदि ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ॥  
 मुक्तमात्रेण शृङ्गेण नीलकण्ठेन भेदितं ।  
 उद्धृतं यदि सुश्रेणि पङ्कं शृङ्गगतं भवेत् ॥  
 बान्धवाः पितरस्तस्य नरके ये वसन्ति च ।  
 उद्धृता नरकात् सर्वे सोमलोकं व्रजन्ति ते ।  
 नीलकण्ठस्य मुक्तस्य बहुपुण्येन सुन्दरि ॥  
 षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षगतानि च ।  
 सोमलोके तु भुञ्जन्ति सर्वेऽमृतरसं सदा ॥

कालिकापुराणात् ।

अनिलाद् उवाच ।

नीलीत्पलसमप्रख्यः श्वेताङ्गश्चन्द्रमस्तकः ।  
 सुभूर्युवा लोहिताक्षो वृषभो नील उच्यते ॥  
 अथवा लोहितं पिङ्गं सुश्वेतं वा विमोचयेत् ।  
 चतुष्पात् सकलो धर्मी वृषोऽयं हरवाहनः ॥  
 तमुद्दिश्य समो कूप्यो विधिना येन मे शृणु ।  
 सोपवासः शुचिः स्नात्वा गवाञ्चैव हरालयं ॥  
 वितानद्दीपमुच्छाद्य विन्यसेच्छिवमूर्धनि ।  
 गन्धेन शुभगन्धेन स्नानं संकारयेच्छिवे ॥  
 पलैस्तु पञ्चत्रिंशद्भिः सर्पिषा यत्नतो बधः ।  
 समुद्धृत्य कषायैस्तु क्षाल्य कोशेन वारिणा ॥  
 भूयोऽप्यभ्यङ्गात् यत्नेन पञ्चगव्येन शङ्करं ।  
 ततः स्नाप्य शिवं भक्त्या कर्पूरागुरुचन्दनैः ॥

पूजयेत् कुसुमैः श्रेष्ठैः समालिप्य च चन्दनैः ।  
 भीवर्णपङ्कजं कार्यं पञ्चविंशद्दलाकुलं ॥  
 सरत्नञ्च न्यसेद्भूर्द्धिं केसरारुणं सकर्णिकं ।  
 वस्त्रयुग्मं तथा श्वेतं सूक्ष्मं दद्यात्सुशोभनं ॥  
 दत्त्वाद्यं बोधयेद्दीपं ततः षड्विंशसंख्यया ।  
 शीघ्रताम्नादिपात्रस्थं नीराजनन्तु कारयेत् ॥  
 ततो भूतबलिं दद्यात्सर्वदिक्षु प्रयत्नतः ।  
 पूजान्ते पूजयेद्विप्रानष्टौ दद्याच्च दक्षिणां ॥  
 ततो वेदीं चितानञ्च चतुर्हस्तं प्रकल्पयेत् ।  
 तत्रैवाग्निं समाधाय चरुत्रयं न्यसेद्बुधः ॥  
 स्थालीपाकञ्च रुद्राय यावकं चरुपायसं ।  
 तथा चाहुतये दत्त्वा एभीरीद्रवन्निस्ततः ॥  
 हरेः सर्वासु काष्ठासु मन्त्रेण विधिपूर्वकं ।  
 सार्द्धं त्र्यम्बकरोभिश्च ब्रह्मघोषेण वै ततः ॥  
 अभिषिञ्च्य त्रयं तन्तु विधिदृष्टेन कर्मणा ।  
 रक्तपीतामृतैः कल्पैः पुष्यैश्चापि विभूषयेत् ॥  
 संयुक्ते वस्त्रयुग्माभ्यां हेमवैदूर्यसम्भवे ।  
 घण्टिके कण्ठिकाभ्याञ्च वामयित्वा विभूषयेत् ॥  
 विकिरेञ्च ततो लाजान् जातवेदः प्रदक्षिणं ।  
 परोताञ्चलिना पुच्छं सङ्घेमेन तु धारयेत् ॥  
 हराय परमेशाय पुष्पोदकयुतेन च ।  
 हस्तादुत्क्षिप्य मीलन्धो मया दत्तमुदीरयेत् ॥  
 जङ्गामूर्धस्त्रिचावर्द्धं मीचयित्वा प्रदक्षिणं ।

( १२५ )

अङ्गयेत् चिगूलेन कुङ्कुमेन विपयितः ॥  
 दद्यादर्चयते कुम्भं प्रणम्येगश्च सीदकं ।  
 कर्षाईहेमविन्यस्तं सम्पूर्णं तिलसंयुतं ॥  
 तं चास्य वस्त्रयुग्मेन सहाचार्याय दापयेत् ।  
 शिवव्रतधरान् विप्रान् संयतांश्च विशेषतः ॥  
 हिरण्यवस्त्रदानेन व्रतस्थान् भोज्य दक्षयेत् ।  
 दीनाभ्यदुःखितानाञ्च भोजनञ्चानिवारितं ॥  
 अरण्ये चत्वरे यापि गोष्ठे वा मोचयेत् हृषं ।  
 न गृहे मोचयेद्दिहान् पुष्कलं कामनाफलं ॥

विष्णुधर्मोत्तरात् ।

मार्कण्डेय उवाच ।

अश्वयुक् शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्यां नराधिप ।  
 कार्तिके प्यथवा मासि हृषोत्सर्गन्तु कारयेत् ॥  
 ग्रहणे हि महापुण्ये तथा चैवायनद्वये ।  
 विषुवद्विहितये चैव सृताङ्गे वाम्बवस्य च ॥  
 सृताङ्गे यस्य यस्मिन् वा तस्मिन्नहनि कारयेत् ।  
 मातरं स्थापयित्वायं पूजयेत् कुसुमाक्षतैः ॥  
 मातृश्राद्धं ततः कुर्यात् वंशाभ्युदयकारकं ।  
 अकालमूलं कलसं अश्वत्थदलसेवितं ॥  
 तत्र रुद्रान् समावाह्य जपयेद्भूद्रदेवताः ।  
 सुसमिद्धं गवां मध्ये सुविस्तीर्य चूताग्रनं ।  
 पयसा अपयेद्दिहान् चरुं पौष्णं समाहितः ॥

तथैव पौरुषं सूक्तं कूपान्हाणि तथैव च ।  
 ततोऽङ्घ्रियीत वृषभमवस्कारः सुशिल्पवान् ॥  
 शूलेन दक्षिणे पार्श्वे वामे चक्रेण निर्दिशेत् ।  
 अङ्कितं स्रपयेत्पथात् खाने तस्य यथा पठेत् ॥  
 हिरण्यवर्णेति ऋचयतस्त्रो मनुजेश्वर ।  
 आपोहिष्टेति तिस्रस्र शम्भोदेवीति वाप्युत ॥  
 वक्षतर्क्ययतस्त्रस्तं तं वृषस्य नराधिप ।  
 अलङ्कृत्यात्ततः पद्याहम्यमान्यैव शक्तितः ॥  
 किङ्किणीभिश्च रम्याभिस्तथा चीनोऽशकैः शुभैः ।  
 ततोऽङ्घ्रिते जपेन्मन्त्रमिमं प्रयतमानसः ॥  
 वृषो हि भगवान् धर्मयतुष्याद्ः प्रकीर्तितः ।  
 वृषोमि तमहं भक्त्या स मां रक्षतु सर्व्वतः ॥

एतं युवानं वृषभं ददामि  
 गवां पतिं यूथपतिं महार्घं ।  
 अनेन सार्धंश्चरत प्रकामं  
 कामं तथा प्राप्नुत वक्षतर्क्यः ॥  
 एतं युवानं पतिं वो ददामि  
 तेन स्त्रीङ्कन्यश्चरत प्रियेण ।  
 सहस्रं हि प्रजया मातनूभि  
 स्तस्मारिषाम द्विषते सोमराजं(१) ।  
 मन्त्रं पितावक्ष इति प्रतीतं  
 जपेत कर्षे वृषभस्य सर्व्वे ।

१. श्रीवार्धनिर न समीचीनं ।



प्रचालयेत्तं वृषभं ततस्तु  
 पूर्व्यां दिशं वसतरीस्तु सर्वाः ॥  
 बासीयुगं ह्योतुरथ प्रदेशं  
 सुवर्णयुक्तं सष्टतश्च कांस्यं ।  
 शिल्पिप्रधानस्व तद्यैव मूल्यं  
 देयं तथा पुष्टिमुपैति राजन् ॥  
 विप्रास्तथान्नं दधिसर्पिषा युतं  
 सभोजनीयाः पयसा च मिश्रं ।  
 सत्सृष्टमात्रे वृषभे व्रजन्ति  
 तृप्तिं परान्नस्य पितामहा ये ॥  
 यस्मिंस्तडागे स जलं तृपात्तंः  
 पातुं समागच्छति तत् पितृणां ।  
 दिव्यान्तु पूर्णा सकला मङ्गीपते  
 लोके परे तृप्तिमसौ विधत्ते ॥  
 सरिहरां काञ्चिदद्योपयाति  
 तृष्णान्वितस्तस्य पितामहानां ॥  
 तृप्तिं विधत्ते सरिताम्बरिष्ठा  
 सुदीर्घं कालं विविधाम्बुवाहा ॥  
 दर्पणं पूर्णं स विद्याशघातै-  
 र्धरां यदा दारयते नरेन्द्र ।  
 पित्राद्यस्तस्य तदत्र कूटां  
 ध्रुवं लभन्तीति न संग्रयोऽत्र ॥  
 रोम्बाश्च तुल्यानि शतानि राजन्

मोक्षा तथा तस्य दिवं प्रयाति ।  
संवत्सराणां परिपूर्णकामः  
संसेव्यमानस्त्रिदशाङ्गनाभिः ।

इति वृषोत्सर्गविधिः ।

—000—

शतानीक उवाच ।

भगवन् केन विधिना त्र्योतव्यं भारतं नरैः ।  
चरितं रामभद्रस्य पुराणानि विशेषतः ॥  
कथञ्च वैष्णवा धर्माः शिवधर्मा अशेषतः ।  
सौराणां वापि विप्रेन्द्र श्रवणे उच्यतां विधि

सुमन्तुरुवाच ।

हन्त ते कथयिष्यामि पुराणश्रवणे विधिं ।  
इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या विगम्यते  
मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्माहत्यादिभिर्विभो ॥  
सायं प्रातस्तथा रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः  
तस्य विष्णुस्तथा ब्रह्मा तुष्यते गङ्गरस्तथा ॥  
प्रत्यूषे भगवान् ब्रह्मा दिनात्ते तुष्यते हरिः ।  
महादेवस्तथा रात्रौ शृण्वतां तृष्टिमाप्नुयात् ।  
पुराणानि द्वाष्टौ च तदेकं शृण्वतां विभो ।  
भारतं राजगादूलं शृणु तेषाञ्च यत् फलं ।  
विधानं वाचकस्येदं शृणु तावद्विगम्यते ॥  
शुद्धवासा गृहादेव स्यान् यत् समयान्वितं ।

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा वा तस्मिन् देवतैव हि ॥  
 तां विधानेन सर्वेषां अग्निगुरुवन्नृप ।  
 नमस्कृत्य यथा आद्यं शिवमस्त्विति चान्ततः ।  
 नान्यतो नृपशार्दूल सर्ववर्णमहीपते ॥  
 शुद्राणां पुरतो वैश्या वैश्यानां क्षत्रियास्तथा ।  
 क्षत्रियाणां तथा विपाः शृण्वन्तेऽप्यतः सदा  
 मध्यस्थितोऽथ सर्वेषां वाचको वाचयेन्नृप ।  
 ये च सङ्गरजा राजन् दूरात्तच्छूद्रपृष्ठतः ॥  
 ब्राह्मणं वाचकं विश्वामान्यवर्णजमाद्रात् ।  
 श्रुत्वाम्यवर्णजाद्राजन् वाचकान्नरकं व्रजेत् ॥  
 इत्थं हि शृण्वतां तेषां वर्णानामनुपूर्वशः ।  
 मासि मासि भवेद्राजन् पारणं कुरुनन्दन ॥  
 त्रयोदशमात्मनो राजन् पूजयेद्वाचकं नृप ।  
 मासि पूर्णे नृपश्चेष्ट दातव्यः स्वर्णमाषकः ॥  
 ब्राह्मणेन महावाहो द्वौ देयौ क्षत्रियेण तु ।  
 वाचकस्य नृपश्चेष्ट वैश्येनापि त्रयस्तथा ॥  
 शूद्रे णाप्यत्र चत्वारो दातव्याः स्वर्णमाषकाः ।  
 मासि मासि नृपश्चेष्ट श्रेयसा वाचकस्य तु ॥  
 प्रथमे पारणे राजन् वाचकं पूज्य शक्तितः ।  
 अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥  
 कार्तिकादि महावाहो कार्तिकं यावदेव तु ।  
 अग्निष्टोमं गोसवश्च ज्योतिष्टोमं तथैव च ॥  
 मैत्रावरुणं वाजपेयं वैश्यावश्च तथा विभुं ।

माहेश्वरं तथा ब्राह्मं पुण्डरीकञ्च भूपते ॥  
 आदित्ययज्ञस्य यथा राजसूयाश्रमिधयोः ।  
 फलं प्राप्नोति राजेन्द्र मासैर्द्वादशभिः क्रमात् ॥  
 इत्थं यज्ञफलं प्राप्य याति लोकानघोत्तमान् ॥  
 समाप्तिं पर्वणि तथा स्वयत्तथा तर्पयन् नृप ।  
 वाचकं ब्राह्मणञ्चैव सर्वकामैः प्रपूजयेत् ॥  
 गन्धमाल्यानि दिव्यानि वस्त्राण्याभरणानि च ।  
 वाचकाय प्रदद्यात्तु तस्मिन् विप्रान् प्रपूजयेत् ॥  
 हिरण्यं रजतं वस्त्रं गावः कांस्योपदीहनीः ।  
 दत्त्वा तु वाचकायैह श्रुतस्य प्राप्नुते फलं ॥  
 वाचकः पूजितो येन प्रसन्नास्तस्य देवताः ।  
 तस्माद्जनं सदा पूर्वं देयन्तस्य विदुर्मुधाः ॥  
 आदि तस्य द्विजो भुङ्क्ते वाचकः अहयाखितः ।  
 भवन्ति पितरस्तस्य तस्मा वर्षगतं नृप ॥  
 ब्राह्मणादिषु वर्षेषु यन्त्यर्थं वाचयेन्नृप ।  
 य एवं वाचयेद्राजन् स विप्रो व्याम उच्यते ॥  
 अतीत्यथा वाचयानी ज्ञेयोऽसौ पितृनामतः ।  
 इत्थंभूतो वसेद्यस्मिन् वाचको व्यामसंमितः ॥  
 देशेषु पत्तने राजन् स देगः प्रथमः स्मृतः ।  
 प्रणम्य वाचके भक्त्या यत् फलं प्राप्यते नरैः ॥  
 न तत्कृतुसहस्रेण प्राप्यते कुरुनन्दन ॥  
 यथैकतो ग्रहाः सर्वे एकतस्तुदिवाकरः ।  
 तथैकतो द्विजाः सर्वे एकतस्तु स वाचकः ॥

देवे कर्मणि पित्रो च पावनं परमं नृप ।  
 वाचकश्च यतिश्चैव तथा चैव षडङ्गवित् ॥  
 एते मर्ख्यं नृपश्रेष्ठ विज्ञेयाः पङ्क्तिपावनाः ।  
 त्रिविधं वाचकं विद्यात्सदारगुणभेदतः ॥  
 व्यावकश्च महावाही त्रिविधो गुणभेदतः ।  
 हावेतो कथ्यमानो त्वं निबोध गदतो मम ॥  
 अतिद्रुतं तथाऽस्पृष्टं खरसर्ष्वविवर्जितं ।  
 पदच्छेदविहीनञ्च तत्सङ्गावविवर्जितं ॥  
 अव्युध्यमानो ग्रन्थार्थं लोलसोत्साहवर्जितः ।  
 ईदृशं वाचयेद्यस्तु स विप्रश्च नरेश्वर ॥  
 क्रोधनोऽप्रियवादी च अज्ञातो ग्रन्थदूषकः ।  
 न च त्रुटयति कष्टानि स ज्ञेयो वाचकोऽधमः ॥  
 विस्पष्टमद्भुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा ।  
 तारस्वरसमायुक्तं रसभावविवर्जितं ॥  
 अव्युध्यमानो ग्रन्थार्थं वाचयेद्यस्तु वाचकः ।  
 स ज्ञेयो राजसो राजन् इदानीं सात्विकं शृणु ॥  
 ग्रन्थार्थं व्युध्यमानस्तु समग्रं कृत्स्नगो नृप ।  
 ब्राह्मणादिषु वर्णेषु अर्चयेद्दिविधिवन्नृप ॥  
 य एवं वाचयेद्राजन् स ज्ञेयः सात्विको बुधैः ।  
 अज्ञाभक्तिविहीनोऽसौ लोभी च दूषकस्तथा ॥  
 हेतुवादपरी राजन् तथासूयासमन्वितः ।  
 नित्यां नैमित्तिको काम्यामदददृष्टिणां नृप ॥  
 वाचकाय महावाही शृणुयाद्यस्तु मानवः ।

स ज्ञेशस्तामसो राजन् तामसो मानवः मदा ।  
 न तस्य पुरतो वीर वाचयेत् प्राज्ञ एव हि ॥  
 प्रसङ्गात् शृणुयाद्यस्तु, अडाभक्तिविवर्जितः ।  
 श्रोता कौतुकमात्रस्तु, स ज्ञेयो राजसो बुधैः ॥  
 सन्त्यज्य सर्वकर्मणि भक्तिश्रदामन्वितः ।  
 सततं पूजयानस्तु, वाचकं श्रुयात् नृप ॥  
 नित्ये नैमित्तिके काम्ये गुरवे च ददत्तथा ।  
 य एव वाचको वीर स ज्ञेयः सात्विको बुधैः ॥  
 व्यासः पूज्यः यावकाणां यथा व्यासवचो नृप ।  
 तस्मात् पूज्यो नृपश्रेष्ठ प्रथमं वाचको बुधैः ॥  
 आपत्काले च हृद्वी च तथाऽसौ गुरुवत् स्मृतः ॥  
 वैशाखसमये वीर तृतीयायान्तु सप्तत ।  
 कार्तिक्यामथ गार्घ्याच्च संपूज्यः प्रथमो भवेत् ॥  
 पर्वस्वेषु च विभो संपूज्य धर्मतः स्मृतः ॥  
 हिरण्यं च सुवर्णं च धनं धान्यं तथैव च ।  
 अन्नञ्चापि तथा पक्कं मांसञ्च कुरुतन्दन ।  
 दातव्यं प्रथमं तस्मै यावकैरतिभक्तितः ॥  
 दत्त्वा पुष्यं फलं तीर्थं पत्रमित्यनमेव च ।  
 सारस्वतञ्च यच्चान्यत्तस्मै देयं समस्ततः ॥  
 अथ सर्वैस्तथा कार्यं यावकैः पूजनं नृप ।  
 वाचकस्तु यथा नित्यं सुखमास्ति नराधिप ।  
 न पीडयति यथा इन्द्रैस्तथा कार्यं नराधिप ।  
 हेमन्ते लोमशं देयं कृत्रं प्राहपि चोत्तमं ॥

उपानही कालयोगे काली वै कुशलोमयी ॥  
 यदा दातुं न शक्नोति माषकं काचनस्य तु ।  
 ततस्तस्य तदा दद्यात् माषकं त्रेषसेऽनघ ॥  
 तद्भावे हिरण्यस्य वित्तशठां विवर्जयेत् ।  
 मृत्तिकापि हि दातव्या कुर्वता सफलं श्रुतं ॥  
 इत्येषा कथिता नित्या मासि मासि भवेत्ततः ।  
 नैमित्तिकी भवेद्वाजन् ग्रहणादिषु पर्वसु ॥  
 अमले वाससी राजन् गन्धमात्यविभूषणे ।  
 समाप्ते पर्वणि विभो दातव्ये भुक्तिमिच्छता ॥  
 श्रात्वा पर्वसमामित्तु वाचकं पूजयेद् बुधः ।  
 आत्मानमपिविन्दीय य इच्छेत् सफलं श्रुतं ।  
 नैमित्तिकीश्च नित्याश्च दक्षिणां न ददाति यः ॥  
 शृणोति च सदा तान् तस्य तत् निष्कलं फलं ।  
 चतुर्गुणा भवेद्वाजन् यः नित्यं दक्षिणा विभो ॥  
 ऐच्छकं भोगमाप्नोति इत्याह भस्वान् शिवः ।  
 इत्येष कथितो राजन् पुराणश्रवणे विधिः ॥

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा-  
 धीश्वर-सकलविद्याविशारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते  
 चतुर्वर्गचिन्तामणौ व्रतखण्डे  
 प्रकीर्णकव्रतानि ।

## अथ शान्तिकपोष्टिकानि ।



नीतः शान्तिमनः स्वदानसखिलस्त्रावैः सहस्रै रमो  
येनात्यर्थकदर्शितार्थिनिवहो दारिद्रदावानलः ।  
लीकं यः सततङ्कपालुहृदयः पुष्पाति लक्ष्णातुरं  
सोऽयं शान्तिकपोष्टिकानि गदिसुं हेमाद्रिरथोद्यतः ॥

तत्र विनायकलक्षणमुच्यते ।

आह याज्ञवल्क्यः ।

विनायकः कर्मविघ्नसिद्धार्थं विनियोजितः ।  
गणानामाधिपत्ये च रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥  
तेनोपसृष्टो य स्तस्य लक्षणानि निबोधत ।  
स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं शुष्काश्च पश्यति ॥

अत्यर्थमिति स्त्रौतसि ङ्गियते निमज्जति वा अथगाहमात्रस्य  
च बलवत्वात् ।

काषायवाससथैव क्रव्यादद्याधिरोहति ॥

क्रव्यादः, गृध्रव्याघ्रादीन् ।

अस्यजैर्गर्हभैरुद्रैः सहैकभावतिष्ठति ।

व्रजमानं तथात्मानं मन्यतेऽनुगतं परैः ॥

परैः शत्रुभिः, पृष्ठतो धावद्भिरभिभूयमानं मन्यते ।

विमानानि फलारम्भाः संगत्येति निमित्ततः ।

तेनोपसृष्टो लभते न राज्यं राजनन्दनः ॥



कुमारी न च भर्तारमपत्यङ्गर्भसङ्गता ।

आचार्यत्वं श्रीचियच्च न शिष्योऽध्ययनं तथा ॥

वणिक् लाभं न वाप्नोति कृषिश्चैव कृषोबलः ।

स्रपनं तस्य कर्त्तव्यं पुण्येऽङ्गि विधिपूर्वकं ॥

पुण्येऽङ्गि, अनुकूलनसत्त्वादियुतेऽङ्गि न रात्रौ ।

गौरसर्षपकल्हेन सान्द्येनोत्सादितस्य तु ।

‘उत्सादनमुदत्तं’ ।

सर्वोपधैः सर्वं गन्धैर्विलिप्तगिरसस्तथा ।

भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाचाः द्विजाः शुभाः ॥

शुभा अनूचानाः । नत्वारो द्विजाः स्वस्ति भवन्ती ब्रुवन्त्विति वाचाः । अस्मिन् समये गृह्योक्तविधिना पुण्याहवाचनं कुर्यादित्यर्थः ।

अश्वस्थानाङ्गस्थानाहस्त्रीकात् सङ्गमात् ऋदात् ।

सृत्तिकां रोचनां गन्धान् गुग्गुलुश्चाप्सु निक्षिपेत् ॥

या आहृता ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलगैर्ऋदात् ।

चर्मस्थानडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासनं तथा ॥

तत उक्तोदकसृत्तिकां गन्धादिमहितांयूतादिपल्लवोपशो भिंतान् तान्स्रग्दामवेष्टितकण्ठान् चन्दनेन चर्चितान् नवाहृतवसुभूपितांश्चतुरः कलगांश्च तिस्रपु पूर्वादिषु दिक्षु स्थापयित्वा शुचौ सुलिप्ते स्थण्डिले रचितपञ्चवर्णस्वस्तिके लोहितमानडुहं चर्मोत्तरलोमपाचीनग्रोवमास्तीर्थं तस्योपरि श्वेतवस्तुपच्छादितमासनं स्थाप्य तत्रोपविष्टस्य स्वस्तिवाचनानन्तरं जीवत्पतिपुत्राभिः रूपगुणशालिनीभिः कृतमङ्गलस्य गुरुरभिषेकं कुर्यात् ।

सहस्राक्षं शतधारसृषिभिः पावनं कृतं ।  
 तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमानाः पुनस्तु ते ॥  
 भगन्ते वरुणो राजा भगं सूर्यो वृहस्पतिः ।  
 भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो विदुः ॥  
 यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्धनि ।  
 ललाटे कर्णयोरक्षीरापस्तत् घ्नन्तु ते सदा ॥  
 कलशत्रये मन्त्रत्रयमुक्तं, चतुर्थं तु सर्व्वमन्त्रैर्भिषेकः ।  
 स्नातस्य सार्षपमूलं श्रुवेणोदुम्बरेण तु ॥  
 जुहुयाद्मूर्धनि कुशान् सव्येन परिगृह्य च ।  
 सव्यपाणिगृह्योत्कृशानस्तर्हीरं जुहुयात् ॥  
 मितय संमितश्चैव तथा शालकटं कटी ।  
 कूष्माण्डो राजपुत्रयेत्यश्रवाहसमन्वितैः ।  
 नामभिर्बर्षिमन्त्रे य नमस्कारसमन्वितैः ॥

प्रणवादिभिरिति शेषः ।

अनन्तरं लौकिकेऽग्नी स्थालीपाकविधिना चरुं उपयित्वा  
 तैरेषषड्भिमन्त्रैस्तस्मिन्नेवाग्नौ हुत्वा तच्छेषञ्च बलिमन्त्रे-  
 रिन्द्राग्नि यम-निर्ऋति वरुण-वायु भोमेगानत्रह्मामन्तानां नाम-  
 भिद्यतुर्थ्यन्तेर्नमोन्तद्भ्यो बलिन्दद्यात् ।

दद्याच्चतुष्पथे सूर्पं कुशानास्तीर्थं यज्ञतः ।

कृताकृतांस्तण्डलांश्च पल्लोदनमेव च ॥

कृताकृताः सकृदवहताः तण्डलाः पल्लं तिलपिटलम्भि-  
 यमोदनं पल्लोदनं ।

मत्स्यान् पक्षांस्तथैवामान् मांसमेतावदेव तु ।

चित्रं पुष्पं सुगन्धश्च सुराश्च त्रिविधमपि ॥

मूलकं पूरिकां पूषांस्तथैवोण्डरकस्त्रजः ।

दध्यन्नं पायसञ्चैव गुडपिष्टं समोदकं ।

उण्डरका पिष्टादिमध्यः ताः प्रोताः स्त्रजः, गुडपिष्टं गुडमिश्रं  
शाल्यादिपिष्टं ।

एतान् सर्वांनुपाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः ।

एतान्याहृत्य

ओं तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि

तन्नो दन्तो प्रचोदयात् । इति विघ्ने शं ।

सुभगायै विद्महे काममालिन्यै धीमहि तन्नो गौरो प्रचोदया-  
दिति अम्बिकां नमस्कुर्यात् ।

एवं विनायकं तज्जनन्यै संपूज्योपहारशेषमास्तीर्थं कुशे  
सुर्पे निधाय चतुष्पथे निदध्यात् ।

बलिं गृह्णन्निवमं देवा आदित्या वसवस्तथा ।

मरुतोऽथाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा यथाः ॥

असुरा यातुधानाश्च पिशाचा मातरो नगाः ।

शाकिन्यो यक्षवेतालयोगिन्यः पूतना शिवाः ॥

जम्बकाः सिद्धगन्धर्वा मालाविद्याधरानघाः ।

दिक्पाला लोकपालाश्च ये च विघ्नविनायकाः ॥

जगतां शान्तिकर्तारो ब्रह्माद्याश्च महर्षयः ।

भूषराः स्त्रे चराश्चैव ये चान्ये चोपदेशिकाः ॥

मा विघ्नो मा च मे पापं मा सन्तु परिपन्थिनः ।

सौम्या भवन्ति लम्बाश्च भूतप्रेताः सुखावहाः ॥

इत्येते चतुष्पथे बलिहरणमन्त्राः ॥

विनायकस्य जननीमुपतिष्ठेत्ततोऽम्बिकां ।

दूर्वासर्षपपुष्पाणां दत्त्वार्घ्यं पूर्णमञ्जलिं ॥

स कुसुमेनीदकेनार्घ्यं दत्त्वा दूर्वासर्षपपुष्पाणां पूर्णमञ्जलिञ्च  
दत्त्वा उपतिष्ठेत् वक्ष्यमाणमन्त्रेषु ।

रूपं देहि यमो देहि भगं भगवति देहि मे ।

सुखान् देहि धनं देहि सर्वान् वामांश्च देहि मे ॥

विनायकोपस्थाने भव्यवन्निल्लूहः ।

ततः शुक्लाब्जवर्धरः शुक्लमाब्जानुलेपनः ।

ब्राह्मणान् शीतवेह्याह्वयुष्मं गुरोरपि ॥

गुरोर्दक्षिणादानमप्यपि शब्दात् । विनायकोद्देशेन ब्राह्मणेभ्यः ।

एवं विनायकं पूज्यं चंदांश्चैव विधानतः ।

वर्षाणां फलमाप्नोति त्रियं ब्राह्मणैश्च कुत्तमां ॥

आदित्यस्य सदा पूजां तिलकं स्वाग्निद्रुमथा ।

महाभोरुपतश्चैव कुर्वन् सिद्धिर्भवति प्रयात् ॥

विनायकोपस्थाधिकारे ।

मविष्यत्पुराणे ।

करणे मूढभाषानमनीलान्तरगस्तथा ।

पिष्टभिद्याहृतो वातिश्रमान्निर्कटं नृप ॥

करणे विधेये कार्ये अनीलान्तरगः भूम्यादावसंलग्नः सन्न-  
न्तरौघे गच्छतीत्यर्थः ।

पश्यते नृपशार्दूल स्वप्नान्ते नात्र संशयः ।

तैलार्द्रगात्रविधुरं करवीरविमूषितं ॥

स्वप्नान्ते स्वप्नमध्ये । तथा

स्वप्नं तस्य कर्त्तव्यं पुर्येऽङ्घ्रि विधिपूर्वकं ।

गौरमर्षपकस्केन सक्तनोत्सादितो नरः ॥

शुक्लपक्षे चतुर्थ्याञ्च वारेण धिषणस्य च ।

तिथौ वीरजनक्षत्रे तस्यैव पुरतो नृप ॥

उत्सादित उदक्षितः । धिषणो वृहस्पतिः ।

सर्वौषधैः सर्वं गन्धैर्विसितशिरसस्तथा ।

भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्या हिजाः शुभाः ॥

व्योमकेशन्तु संपूज्य पार्ष्वतीं भीमजन्तया ।

कृष्णस्य पितरं वाथ अकर्मरश्मिनं तथा ॥

धिषणं क्लेदपुत्रञ्च कोणलक्ष्मीञ्च भारत ।

विप्रस्तकं वाहुलेयं नवकस्य च धारिणं ।

अश्वस्थानगजस्थान इत्यादिको ग्रन्थो याज्ञवल्कासमानः ।

अश्विकोपस्थानमन्त्रस्तु ।

रूपं देहि यशो देहि भगं भगवति देहि मे ।

पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वं कामाञ्च देहि मे ॥

अचलां कुरु मे देवि विपुलां ख्यातिसम्भवां ।

ख्यातिसम्भवा लक्ष्मी ।

इति विनायकस्वप्नं ।

बुद्धार उवाच ।

ज्ञानमन्यत् प्रवक्ष्यामि तवाङ्गं दुरितापहं ।  
 राजन् माहेन्द्रं पुष्पं सततं विजयावहं ॥  
 दानवेन्द्राव तु वने यज्जगाद् मनुः पुरा ।  
 धन्यं अग्रस्यमायुषं सर्वं शत्रुक्षयह्वरं ॥  
 प्रभातायाश्च शर्व्यां भास्करेऽभ्युदिते तथा ।  
 ज्ञायीत दानवनेष्ठ विधिदृष्टेन कर्मणा ॥  
 सोवर्षं राजतं क्लृप्तं चक्रवापि महीमवं ।  
 नादेयैः सारसैस्तीर्यैः कल्पवित्वा यथाविधि ॥  
 शीवधीर्विन्यसेत्तत्र समाभङ्गाः सुचिन्ताः ।  
 जया च विजया चैव तथा सूत्रफलैति च ॥  
 धूपनं मुखवीजा च भङ्गी च कुसुमानि च ।  
 शीरजं पत्रनिर्झार्यं देवीनिःसारमेव च ॥  
 फलिनो वराङ्गना चैव गजेन्द्रस्य च मन्त्ररी ।  
 सुद्रजाङ्गरजा चैव घने द्वे द्वे विभावरी ॥  
 महीषं मूर्त्तिके चैव तुम्बं यज्ञभुवं तथा ।  
 शशाङ्कमृगदर्प्यश्च दानश्च करिणस्तथा ।  
 शीवध्यः कथितास्तुभ्यं ज्ञानमन्त्रमतः शृणु ॥

श्रीं नमो भगवते रुद्राय धवलपाण्डुरीपचितभञ्जानुलित-

गाथाय ।

तद्यथा ।

जय जय विजय सर्वार्थवसुषु कलहविषहविवादिषु ।

जन्म जन्म मद्य मद्य सर्वप्रत्यर्थिका ।

( १२७ )

योऽसौ युगान्तकाले तु दिधक्षति इमां पुनः ।  
 रौद्रीं भूर्तिं सहस्राक्षः स त्वां रक्षतु जीवितं ॥  
 संवत्संक्रान्तितुल्यञ्च त्रिपुरान्तकरः शरः ।  
 सत्सर्वदेवमयः सोऽपि स त्वां रक्षतु जीवितं ॥

निखिर्नमित्यनि स्नाद्या ।

एवं स्नानन्तु तेनैव मन्त्रेण तिलतण्डुलं ।  
 घृताक्तं ज्वलते बद्धौ लुडुयात् प्रयतः क्षुचिः ॥  
 ततः संपूजनं कुर्याद्देवदेवस्य शूलिनः ।  
 घृतक्षीराभिषेकेण गन्धपुष्पफलाक्षतैः ॥  
 दीपधूपनमस्कारेस्तथा चान्नेन भूरिषा ।  
 गीतवाद्यैस्तु मधुरैर्वाङ्मयस्तिवाचनैः ॥  
 माहेश्वरस्नानमिदं हि कृत्वा  
 रक्षोहृणं शत्रुनिवर्हणञ्च ।  
 सर्वानवाप्नोति नरस्तु कामान्  
 यासाम काञ्चिन्ननसि स्थिताय ॥

इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तं माहेश्वरस्नानं ।

— ०००@००० —

पुष्कर उवाच ।

स्नानान्यन्यानि ते वक्ष्मि निबोध गदतो मम ।  
 रक्षोघ्नानि यशस्नानि मङ्गलानि विशेषतः ॥  
 स्नानं घृतेन कञ्चित्तमायुषीवर्धनं परं ।  
 राम गोशक्तता स्नानं परं सखीविवर्धनं ॥

गीमूत्रेषु तथा ज्ञानं सर्व्वपापनिवर्हणं ।  
 पञ्चगव्यजलज्ञानं सर्व्वव्याधिनिपूदनं ॥  
 ज्ञानं क्षीरेण कथितं बलबुद्धिविबर्धनं ।  
 ज्ञानञ्च कथितं दद्यात् परं लक्ष्मोविबर्धनं ॥  
 तथा दर्भीदकज्ञानं सर्व्वपापनिवर्हणं ।  
 पञ्चगव्यजलज्ञानं सर्व्वकार्यार्धसाधनं ॥  
 गवां शृङ्गीदकज्ञानं सर्व्वपापनिवर्हणं ।  
 पलाशविल्वकमलपुष्पज्ञानं पुरीहितं ॥  
 वचा हरिद्रा मण्डिता तगरं वाषके तथा ।  
 ज्ञानमेतद्विनिर्दिष्टं रक्षोघ्नं पापमुदनं ॥  
 वचा हरिद्रे हे सुस्ते ज्ञानं रक्षोघ्नं परं ।  
 चातुष्यञ्च वचा मन्थं धन्यं निधाविबर्धनं ॥  
 ज्ञानं पवित्रं माङ्गल्यं तथा ज्ञानवारिणा ।  
 ज्ञानादूनतरे किञ्चिद्रूपताम्बोदकैश्चातः ॥  
 तथा रत्नोदकैः ज्ञानं संधामि विजयान् कृत्वा ।  
 बैकुण्ठमध्यतः कृत्वा प्रबालैः परिचारयेत् ॥  
 तेन पात्रेषु यत् ज्ञानं सर्व्वकामपदं भवेत् ।  
 तथा पुष्पोदकज्ञानं भवेदारोग्यकारकं ॥  
 तथा बीजोदकज्ञानं सर्व्वबीजप्रसादकं ।  
 तथैवामलकज्ञानं पल्लवीनाशनं परं ॥  
 तिलसिद्धान्तकैः ज्ञानममाङ्गल्यप्रनाशनं ।  
 केवलैर्ब्यां तिलैः ज्ञानं पञ्चवा गौरलर्षपैः ।  
 ज्ञानं प्रियङ्गुना प्रोक्तं तथा सौभाग्यवर्धनं ॥



वन्ध्याककोटकीमूलं कुमारी पद्मवारिणी ।  
 ज्ञानं रोगविनाशाय क्लृप्तं प्रत्येकशो हिज ॥  
 मांशो सुरा चौरकनागपुष्यैः  
 सनामदानैररिनाशकेषु ।  
 कुतश्च कङ्कोलकजातिपूगैः  
 समस्तसौख्यञ्च सुतप्रदं स्यात् ॥

इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तनानाज्ञानविधिः ।

—०००—

युधिष्ठिर उवाच ।

रुद्रज्ञानं विधानेन कथयस्व जनार्दन ।  
 सर्व्वं दुष्टोपशमनं सर्व्वं शान्तिप्रदं नृणां ॥

कृष्ण उवाच ।

देवसेनापतिस्त्वन्दं रुद्रपुत्रं घृष्टाननं ।  
 भगव्यो मुनिशार्दूलः सुखासीनमुवाच ह ॥  
 सर्व्वं शोऽसि कुमार त्वं प्रसादाच्छुद्धरस्य वै ।  
 ज्ञानं रुद्रविधानेन ब्रूहि कस्य कथं भवेत् ॥

स्वाम् उवाच ।

मृतवत्ता तु या नारी दुर्भगा चतुर्वर्जिता ।  
 या सूते कन्यकां बन्धां ज्ञानमासां विधीयते ॥  
 अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां उपवासपरायणा ।  
 षट्ती यद्ये चतुर्दश्यां प्राप्ते सूर्य्यदिनेऽथ वा ॥

नद्योस्तु सङ्गमे कुर्यात्प्रदानयो विशेषतः ।  
 शिवालयेऽथवा गोष्ठे विविक्ते वा गृहाङ्गणे ॥  
 पाहितान्निं द्विजं ग्रामं धर्मज्ञं सत्यशालिनं ।  
 क्षान्नाद्यं प्रार्थयेद्देवं निपुणे रौद्रकर्कषि ॥  
 ततस्तु मण्डपं कुर्याच्चतुरङ्गमुदङ्गुलं ।  
 बह्वचन्दनमाल्यैश्च गोमयेनानुलेपितं ॥  
 तन्मध्ये स्त्रीतरलला संपूर्णं पद्ममालिखेत् ।  
 मध्ये तस्य महादेवं स्थापयेत् कर्षिकोपरि ॥  
 दद्याद्दलेषु नम्यादीन् चतुर्षु विधिपूर्वकं ।  
 इन्द्रादिलोकपालाञ्च दलेष्वन्येषु विन्यसेत् ॥  
 देवीं विनायकश्चैव स्थापयेत्तत्र पार्श्वेव ।  
 दत्तार्घ्यं गन्धपुष्पैश्च धूपं दीपं गुह्योदनं ॥  
 भस्मान्नाविधान् दद्यात् फलानि विविधानि च ।  
 चतुष्कोणेषु गृह्णारान्मण्डपदलभूषितं ॥  
 एकैकं विन्यसेद्द्वयान् सर्वार्थेष्वसमन्वितं ।  
 चतुर्हिंस्तु मण्डपस्य दद्याद्भूतबलिं ततः ॥  
 पाम्नेय्यां दिशि कर्त्तव्यं मण्डलस्य समीपतः ।  
 अम्बिकार्थं शुभे कुण्डे पत्रपुष्पैरलङ्किते ॥  
 लवणं सर्पिषा युक्तं घृतेन मधुना सह ।  
 मासं स्तोकेन लुह्यात् कृतहोमे नवपदे ॥  
 द्वितीयस्याम्बिकार्थेऽथ कर्त्ता च ब्राह्मणो भवेत् ॥  
 बह्वजाप्यङ्गदाचार्यं सितचन्दनचर्चितं ।  
 सितवस्त्रपरीधानं सितमाल्यविभूषितं ॥

शोभयेत् कण्ठैः कण्ठैः कर्षवेष्टाङ्गुलीयकैः ।  
 मण्डपस्य समीपस्थी जपेद्गुह्यान् विमलरः ॥  
 यावदेकादश गताः पुनरेव जपेच्च तान् ।  
 देवमण्डलवत् कार्य्यं द्वितीयं मण्डलं शुभं ॥  
 तस्य सध्ये तु या नारी श्वेतपुष्पैरलङ्कृता ।  
 श्वेतवस्त्रपरीधाना श्वेतगन्धानुलेपना ॥  
 सुखासनोपविष्टा या प्राचार्यी रुद्रजापकः ।  
 अभिविद्येत्ततश्चेनामर्कवचपुटाञ्जना ॥

चतुःषष्टिसंख्यानामेकादशकृत्यः ।

पवित्रामिन्द्रकीटाजगृहणोदावरीसृदं ।  
 सर्व्वोषधी रोचनाञ्च नदीतीर्थादकानि च ॥  
 एतत् संचिप्य कक्षये शिवसंघसुपूजिते ।  
 प्रापादतल्लोकेशान्तं कुचिदेशे विशेषतः ॥  
 सर्व्वार्द्धं लेपयेद्भक्त्या सुशीला काचिदङ्गना ।  
 रुद्राभिजमेन ततः स्थापयेत् ललनाञ्च तां ॥  
 तोयपूर्णाष्टकलशैरश्वत्थदलपूरितैः ।  
 सर्व्वतोद्दिक्स्थितैः पश्चात् स्थापयेत् कलशाक्षतैः ॥  
 एवं स्नाता स्थापकाय दद्याद् गां काञ्चनं तथा ।  
 हीमुरेवाच निर्दिष्टा दक्षिणो गौः पयस्विनी ॥  
 ब्राह्मणानामद्यान्येषां स्वस्वत्वा सुनिपुङ्गव ।  
 गोवस्त्रकाञ्चनादीनि दत्त्वा सर्व्वान् समापयेत् ॥  
 कृतेनामेव विभ्रेन्द्र रुद्रस्त्रानेन भामिनि ।  
 सुभगा कान्तिसंयुक्ता बहुपुत्रा प्रजाकृते ॥

सर्वेष्वपि हि मासेषु ब्राह्मणानुमते ह्यभं ।  
 तस्मादवश्यं कर्त्तव्यं पुत्रान् स्त्री सुखस्य च्छति ॥  
 या ज्ञानमाचरति रुद्रमिति प्रसिद्धं  
 अद्यान्विता द्विजवरानुमता नताङ्गी ।  
 दीधान् निहत्य सकलाश्च शरीरभाजो  
 भर्तुः प्रिया भवति भारत जीवन्मता ॥

इति भविष्यत्तरोक्तं रुद्रज्ञानं ।

—००००—

ईश्वर उवाच ।

शृणु षण्मुख तत्त्वेन ज्ञानं घटिकया परं ।  
 धारयिष्यन्ति ये वक्ष्ये घटिकां देवनिर्मितां ॥  
 तेषामर्थस्य कामस्य सौभाग्यं हृदिमिष्यति ।  
 पूर्वोक्तं मण्डलं कृत्वा गौरीं तत्रैव पूजयेत् ॥  
 कुङ्कुमागुरुकूर्पूरचन्दनेन विलेपयेत् ।  
 ऐशान्यां दिशि संस्थाप्य घटिकां मधुपूरितां ।  
 पुष्पमाल्यैरलङ्कृत्य रक्तसूत्रेण वेष्टयेत् ॥  
 हिरण्यं निक्षिपेत्तत्र न शून्यां कारयेद् बुधः ।  
 वस्त्रं च तु समाहृत्य गन्धान्मत्तचैव निक्षिपेत् ॥  
 कुङ्कुमागुरुकूर्पूरचन्दनेन विलेपयेत् ।  
 उशीरं चन्दनं मुस्तां बालकं सर्व्वं मौषधं ।  
 तथा चामलकीं दूर्वां क्षिपेद्गौरीचरणां बुधः ॥  
 शतमष्टोत्तरं कृत्वा गौरीं वै भूषयिष्यथा ।

ततोऽभिमन्त्र्य घटिकां गौरीमन्त्रेण तां पुनः ।  
 शताष्टाधिकजप्तेन अभिमन्त्रोदकं गुह्य ॥  
 ततोऽभिषेकं कुर्याद्द्वै योषितो वा नरस्य वा ।  
 घटिकाभिषिक्ता चेव या नारी मण्डले गुह्य ।  
 सुभगा सा भवेदित्यं नरस्य विधिवद्गुह्य ॥  
 अपुत्रा लभते पुत्रं अजीवा जीविनी भवेत् ।  
 अनेनैव विधानेन गुर्विणी यदि कारयेत् ॥  
 पुत्रं प्रसूयते सा तु महावीर्यपराक्रमं ।  
 राजा विजयमाप्नोति धारयित्वा सुसङ्करे ॥  
 या या रूपवती कन्या वरं न लभते सदा ।  
 सा घटिकाभिषेकेण सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥  
 येन येन हि भावेन घटिकां कारयेद्बुधः ।  
 तस्य तेन हि भावेन तत्फलं ददते बुधः ॥  
 धन्मेनोक्तं यत्रोक्तं सङ्घेपेण कथञ्चन ।  
 तत्सर्वं मूलमाश्रित्य अनेनैव तु कारयेत् ॥  
 मूलमाश्रित्य पूर्वोक्तमूलमन्त्रेणेत्यर्थः ।  
 न घटिकापरं किञ्चिदसौभाग्यकरणं मतं ।  
 न घटिकापरं स्कन्द धर्मकामार्थमोक्षदं ॥  
 घटिका धारयेद्यस्तु स कामानखिलान् लभेत् ।  
 क्रमुन्नी लभते पुत्रमधनो धनमःप्रुणत् ॥  
 इति भविष्यत्पुराणोक्तो घटिकाभिषेकः ।

कार्तिकेय उवाच ।

पूर्वं मेव त्वया ज्ञातं सन्ति बन्ध्या न हि स्त्रियः ।

दोषैस्तु विविधाकारैर्यद्विधातुविकारजैः ।

बन्ध्यात्वं जायते तासां तानाचक्ष्य प्रयत्नतः ॥

ईश्वर उवाच ।

ग्रहदीषाब् प्रवक्ष्यामि शृणु पुत्र यथार्थतः ।

द्वात्रिंशतिग्रहाः प्रीता नारीपीडाकरास्तु ते ॥

ग्रहाः क्रोमारिकाद्यान्ये तेऽपि द्वात्रिंशत्कीर्त्तिताः ।

चतुःषष्टिश्च संख्या वै ग्रहाणां क्रूरकर्मणां ॥

चतुःषष्टिसहस्राणि एकैकस्य प्रविस्तरः ।

तेषां मध्ये तु प्रोच्यन्ते चतुःषष्टस्तु नायकाः ॥

दोषैर्द्वादशभिर्वत्स ग्रहा गृह्णन्ति योषितं ॥

एकपात्रेण यानेन परशय्यासनेन तु ॥

परपुरुषसंयोगेन परतस्त्रविभूषणैः ॥

राशौष्णिककमान्येन एकभाजनभोजनैः ॥

केधोदकेन संसिक्तादन्यनार्यैर्बगूहनात् ।

पुत्रैर्होषैश्च संभैश्च ग्रहाः पौडाकराः स्मृताः ॥

प्रसन्नं गृह्णते पुष्यं गर्भेश्च तदनन्तरं ।

पश्चात् चीरन्ततो बालमेवमाहुर्न संशयः ॥

यदनामानि वक्ष्यामि सचरी रेवती शिवा ।

सुखमन्दी च लम्बा च पूतना कण्डपूतना ॥

गोमुखी च बिडाली च नद्या चैव महाकुला ।

काकोली च हसन्ती च अहहारी जवा तथा ।

( १२८ )

मुक्तकेयी त्रिदण्डी च अजासुखी च रोचना ॥  
 मुकुला पिङ्गला नाम पिटनासा तद्यापरा ।  
 स्कन्दग्रहास्तथा चान्ये सर्वेषां नायकाः स्मृताः ॥  
 रजनी कुम्भकर्णी च तापसी राक्षसी परा ।  
 मोदनी रोदनी चात्र धनदा च कुला तथा ॥  
 चतुःषष्टिः समाख्याता मातरो बालमातरः ।  
 भार्जकी जम्भकी भाम उपस्कन्द्य पञ्चमः ॥  
 बालानां पीडनाः सर्वे भ्रमन्ते बलिकांश्चिणः ।  
 बलिन्द्याद्विधानेन ततो मुञ्चन्ति नान्यथा ॥  
 चतुरस्रं कृतं चेत्त्रं समसूत्रं कृतं ततः ।  
 सप्तभागान् समान् सर्वान् कृत्वा ह्येवं विचक्षणः ॥  
 तेषामन्तुरुकीष्ठेषु नवपद्मानि कारयेत् ।  
 सबाह्याभ्यन्तरे वत्स चक्रमालिख्य यत्नतः ॥  
 अष्टपत्रं सितं श्रुभ्रं केसरेः सह कर्णिकैः ।  
 तेषु पात्रेषु च गणाः सर्व्वे तुष्टिं यथाक्रमं ॥  
 पूर्वादीं पूजयेत् सर्वान् तथाष्टाष्टकमष्टधा ।  
 शिवन्तु कर्णिकामध्ये पद्मेषु नवसु स्थितं ॥  
 कमले मध्यमे वत्स अङ्गैस्तु सहितं शिवं ।  
 पूजयेत् पूर्वविधिना कल्पयित्वा तु वासनं ॥  
 अस्य कर्माणि वक्ष्यामि येन मुञ्चन्ति योषितः ।  
 ज्ञात्वा तासां विकारांश्च सर्वाभरत्तभूषिताः ॥  
 यापयेच्च विधानज्ञः सोपवासपरायणः ।  
 यतीपातविनिर्मुक्ते ज्ञानह्युर्व्याप्नुभेऽहनि ॥

त्रिभूतरेषु रेवत्यां प्राजापत्ये पुनर्वसु ।  
 अश्विन्यामथ पुष्ये च नक्षत्रे रोहिणी तथा ॥  
 मातृशुद्धे शुद्धे वापि त्रिपथे वा चतुष्पथे ।  
 जीर्णकूपे तडागे वा नदीनां सङ्गमेषु च ॥  
 एकपथे श्मशाने वा देवतायतनेऽपि वा ।  
 अष्टम्यां राजपत्नीन्तु मध्याह्ने स्नापयेत्ततः ॥  
 पुष्यकामान्तु गोतीर्थे राजपत्नीन्तु सङ्गमे ।  
 मातृशान्तिं तु दीर्घायां श्मशाने मृतपुत्रिकां ॥  
 काकवस्त्रां जीर्णकूपे बन्ध्यां पुष्करिणीषु च ।  
 अभिचारकृतां नारीं पुरुषश्च विरेतसं ।  
 स्नापयेत्तान् प्रयत्नेन शिवायतनसङ्गमे ॥  
 आचार्यस्तु सुसंपूर्णः शुकवस्त्रः शुचिः सदा ।  
 अष्टहस्तप्रमाणेन चतुर्हस्तमथापि वा ॥  
 चतुर्हस्तं चतुर्द्वारं तोरणध्वजगोभितं ।  
 चन्द्राभन्तु कृतादीपं पुष्यमाख्योपगोभितं ।  
 स्नानपानैश्च नैवेद्यैर्विविधं कारयेद्वलिं ॥  
 त्रिरजोभिः समास्त्रिख्य मण्डलं सर्वकामिकं ।  
 श्वेतरत्नं तथा कण्ठं वर्णानाञ्च क्रमेण तु ॥  
 ईशो ब्रह्मा तथा विष्णुः रजमासधिपाः स्मृताः ॥  
 मण्डलस्योत्तरे भागे कुर्यात् स्नपनमण्डलं ।  
 चतुर्हस्तप्रमाणेन वर्णकैरुपगोभितं ॥  
 अकालमूलकलसां चतुर्हस्तप्रमाणतः ।  
 चूतपद्मवसंयुक्तान् तथैष्टपरिचेष्टितान् ।



हिरण्यकतद्रूर्वाभिरोषधीसङ्गसंयुतान् ॥  
 नद्याद्योभयकूलान्तु वल्मीकहृच्चमूलतः ।  
 गृहीत्वा मृदमल्पान्तु स्थापयेत् प्रथमे घटे ॥  
 द्वितीये गोमयं स्थाप्य तृतीये गन्धवारि च ।  
 चतुर्थे हेमरजते पञ्चमे सर्व्वमौषधं ॥  
 षष्ठे तीर्थाम्बुविन्दासः सप्तमे सप्तसागरं ।  
 कलशे चाष्टमे न्यस्य शङ्करं मातृभिः सह ।  
 अनेन विधिना मन्त्री त्वभिषेकं प्रदापयेत् ॥  
 मृतवत्सा जीवपुत्रा बन्ध्या चापि प्रसूतिका ।  
 अवीजा वीजतां याति स्त्री वाद्य पुत्रघोऽपि वा ।  
 अभिचारकृतं दोषं मन्त्रोऽयं नाशयेदिति ॥  
 अनेनैव हि योगेन मुख्येन सर्व्वबन्धुना ।  
 दुर्भगा सुभगा वापि कन्या प्राप्नोति सहरं ॥  
 हस्त्यश्वरथयानं वा सुकृष्टं कुण्डलानि च ।  
 धनधान्यहिरण्यानि येन वै तुष्यते गुरुः ।  
 येन तुष्टेन तुष्यन्ति देवता मातरो यथाः ॥

अथाभिषेकविद्या भवति । ओं रौं ह्रीं सौं वीषट् । अभिषे-  
 कोऽनेन क्लीकिते गर्भे ओं वृङ्कः । त्रीं स्वाहा । अनेनाभिषेक  
 भुक्तक्षये पुरुषः स्वातु । ओं श्रीलक्ष्मिं स्वाहा ।

पुष्यक्षये तु नारीश्वामभिषेकश्च स्थापयेत् ॥

ओं रौं ह्रीं स्वाहा । अनेन क्लीकिते गर्भे अभिषेकं द्रव्यं ।

यो जीवति तस्माच्छतेन क्षतं वा पतिं भ्रवं ।

ओं कां फट् । रौं स्वाहा ।

सर्षपैरक्षतैर्वापि तं देहस्ताडयेच्छिशोः ।  
मौनचेम्ब्रियते बालो रुदते जीवते भ्रुवं ॥

इति वन्ध्याभिषेकविधिः ।

—ooo@ooo—

मनुहवाच ।

इन्द्रादित्योपरागे च यन्मानमभिधीयते ।  
तत्सर्वं श्योतुमिच्छामि द्रव्यं मन्त्रविधानतः ॥

मत्स्य उवाच ।

यस्य राशिं समासाद्य भवेद्ब्रह्मणसम्भवः ।  
तस्य ज्ञानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधिसमन्वितं ॥  
चन्द्रोपरागं संप्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनं ।  
संपूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमास्थानुलेपनैः ॥  
सर्वमेवोपरागस्य समानीयोषधादिकं ।  
स्थापयेत्तुरः कुम्भान् चत्रणान् सलिलाम्बितान् ॥  
गजाश्वरथवस्त्रीकसङ्गमाद्गृह्णीकृत्वा ।  
राजहारप्रदेशाच्च मृदमानोय निक्षिपेत् ॥  
पञ्चगव्यञ्च कुम्भेषु पञ्चरत्नानि चैव हि ।  
रोचनापद्मशङ्खञ्च पञ्चभङ्गसमन्वितं ॥  
स्फटिकश्चन्दनञ्चैव तीर्थवारि मसर्षपं ।  
मजदस्तं कुङ्कुमञ्च तथैवीशीरगुग्गुलं ।  
एतत्सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेऽथावाहयेत्सुरान् ॥  
सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।

आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥  
 योऽसौ बहुतरो देव आदित्यानां प्रभुर्भूतः ।  
 सहस्रनयनचन्द्रः पीडामत्र व्यपोहतु ॥  
 सुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्धिरमितद्युतिः ।  
 चन्द्रोपरागसम्भूतामम्बिपीडां व्यपोहतु ॥  
 यः कर्मसाक्षी लोकानां भर्त्सराजेतिविभ्रुतः ।  
 यमचन्द्रोपरागोत्थां पीडामत्र व्यपोहतु ॥  
 रक्षोगणाधिपः साक्षात् प्रलयानलसंप्रभः ।  
 खड्गव्यपोऽतिभोमत्र रक्षःपीडां व्यपोहतु ॥  
 नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः ।  
 स जलाधिपतिचन्द्रः बह्वपीडां व्यपोहतु ॥  
 योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ।  
 चन्द्रोपरागकलुषं धनदेवो व्यपोहतु ॥  
 योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ।  
 चन्द्रोपरागपापानि विनाशयतु शङ्करः ॥  
 चैलोक्ये यानि भूतानि स्वावराणि चराणि च ।  
 ब्रह्मविष्णुर्कस्तूतानि तानि पापं हरन्तु ते ॥  
 पूजयेद्बहुगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवतां ।  
 एतानिव ततो मन्त्रान्वितश्च कनकान्वितां ।  
 प्राङ्मुखः पूजयित्वा तु सम्ब्रूयतीष्टदेवतां ॥  
 कलयं द्रव्यसंयुक्तं प्राप्तं बह्वक्षपम्बुषि ।  
 चन्द्रघटे निहृते तु कृते गोदीहमङ्गले ।  
 कृतज्ञानश्च तं घटं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥

अनेन विधिना वस्तु सग्रहं ज्ञानमाचरेत् ।  
 न तस्य ग्रहपीडास्वात् च बन्धुधनक्षयः ॥  
 परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभां ।  
 सूर्यग्रहे सूर्यनाम सहा मन्त्रेण कौर्त्तयेत् ॥  
 द्रव्यैस्त्रैरेव कथितं ज्ञानं नृपकुलोद्भव ।  
 अस्मिंस्तु पञ्चरागः ज्ञात् कथित्वा च सुभीमना ॥  
 य इदं नृशुशान्तिं चाववेहापि जानवः ।  
 सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्यस्तीक्ष्णमहीवते ॥  
 चन्द्रग्रहे नृप रविग्रहोत्पन्नान्वा  
 मन्त्रैरिजैः चमभिनन्वा ह्यभीदकुम्भान् ।  
 ज्ञानं करोति निवनेन नरस्य पीडा  
 न तस्य तं ब्रह्मता पुत्रं दुनोति ॥

इति मत्स्यपुराणोक्तं चन्द्रग्रहोत्परागज्ञानं ।

—००००००—

अघाती यमलज्जननमान्तिं व्याख्याप्तानो ग्रह्य भार्या गौर्ही  
 सी बह्ववा विकृतिं प्रसवेत् । प्रायश्चित्तीभवेत् पूर्वं दशाहे चतुर्णां  
 श्रीरहक्षाणां कषायमुपसंहरेत् । इक्षवटीदुम्बराग्रतश्चमीदेव  
 दारुगौरसर्पपास्तेषां सहिरस्त्रदूर्वाहरैश्च पञ्चवैरष्टौ कलयात्  
 पूरयित्वा सर्वोपधिना दम्बती ज्ञापयेत् । आपोर्दृष्टेति तिस्र-  
 भिः, कषायान्धिषेति पक्षेन्द्रेण पञ्चबाहणेनदमापः प्रवहतेत्यपा-  
 यमिति ज्ञापयित्वा कङ्काल्य तौ र्भेषु उपवेद्ययेत् । मासतं स्वास्ती-

पाकं अपयित्वाऽथभागाविद्वाण्याहुतीर्जुहोति । पूर्वोक्तस्यपन-  
मन्त्रैः स्थालीपाकं जुहोति । अन्नये स्वाहा । पवनाय स्वाहा ।  
मारुताय स्वाहा । यमाय स्वाहा । अन्तकाय स्वाहा । मृत्यवे  
स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा । अन्नये स्वष्टिकृते स्वाहा । गृहोत्पा-  
तेषूलकः कपोतो गृध्रः श्येनोवाविशेषस्ततः प्ररोहेवल्लरीको वा  
भवेदुदकुम्भप्रक्षलने, आसनशयनयानभङ्गे, गृहगोधिकाकृकला-  
शसरीसृपसर्पणे, कृत्रध्वजविनाशेऽप्यन्ये उत्पाते प्येतदेव प्राय-  
चित्तं ग्रहणशान्तिं प्रीक्षेन विधिना कृत्वाचार्याय वरं दत्त्वा  
स्वस्ति वाच्याशिशः प्रतिगृह्य शान्तिर्भवतीति ।

इति कात्यायनोक्तयमलजननशान्तिः ।

—०००—

पुष्कर उवाच ।

दन्तजन्मविशालानां लक्षणं तन्निबोध मे ।  
उपरि प्रथमं यस्य जायन्ते हि शिशोर्हिजाः ॥  
दन्तैर्वा सह यस्य स्याज्जन्म भार्गवसत्तम ।  
मातरं पितरं वाद्य खादेदाज्जानमेव वा ।  
तच्च शान्तिं प्रदक्ष्यामि तां मे निगदतः शृणु ॥  
गजपृष्ठगतं बालं नौस्थं वा स्यापयेद्भिज ।  
तदभावेन धर्मज्ञ काश्चनेन वरासने ॥  
सर्व्वीषधैः सर्व्वगन्धैर्बीजैः पुष्पैः फलैस्तथा ।  
पञ्चगव्येन रत्नैश्च पताकाभिश्च भार्गव ।  
स्थालीपाकेन दातारं पूजयेत्तदनन्तरं ॥

समाहृष्टाश्च कर्तव्यं तथा ब्राह्मणभोजनं ।  
 अष्टमेऽहनि विपानां तथा देया च दक्षिणा ॥  
 काञ्चनं रजतं गास भुवमाज्जानमेव वा ।  
 दन्तजम्बानि सामान्ये शृणु स्नानमतः परं ॥  
 भद्रासने निवेश्यश्च मृद्धिर्मूलैः फलैस्तथा ।  
 सर्वाधिः सर्वधीजैः सर्वगन्धैस्तथैव च ।  
 स्नापयेत् पूजयेच्चात्र वर्ज्जं सोमं ममीरणं ॥  
 प्रथमं स्नापयेत्तत्र देवदेवश्च केगवं ।  
 स तेषामेव जुहुयाद्भृतमग्नौ यथाविधि ॥  
 ब्राह्मणानान्तु दातव्या ततः पूजा च दक्षिणा ।  
 ततः स्वस्त्यहृतं बालं आसनेषूपवेशयेत् ॥  
 भासन्तं हस्तमूर्धानं बीजैः सुस्नापयेत्ततः ।  
 सुस्त्रिभैर्बालकानाञ्च तैश्च कार्यंश्च पूजनं ।  
 पूज्याश्चाविधवा नार्यो ब्राह्मणाः सुहृदस्तथाः ॥  
 इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तदन्तोत्पत्तिशान्तिः ।

— ० —

जनमारसमुत्पत्तिं प्रवक्ष्यामि वसन्तिकां ।  
 यदा लोभसमाविष्टः पीडयानो धनैः प्रजाः ॥  
 रमत्यभिद्रवन्नाजा न च धर्मेण तिष्ठति ।  
 वचस्तस्यानुवर्त्तन्ते प्रजा धर्मे विहाय ताः ॥  
 क्रीधलीभसमाविष्टाः साध्वचारविवर्जिताः ।  
 पूजयन्ते न चाभीष्टं देवान् विप्रांस्तथा पितॄन् ॥

( १२८ )

तास्वधर्माभिभूतासु ततो रुद्रः प्रकुप्यति ॥  
 अन्तकी एष भगवान् भूतानां प्रिय एव च ।  
 कुरुतेऽसौ विकारांश्च हेतुभूतः पृथग्विधान् ॥  
 ताराग्रहान् केतुदण्डान् राहुकाकवलाहकान् ।  
 ससूर्यसन्ध्याविक्रान्तिं घोरां खमृगपक्षिणः ।  
 भूमिकम्पोरुक्कनिर्घाताः शीतोष्णतिलविक्रयाः ॥  
 अतिवर्षमवर्षञ्च तथैवर्तुविपर्ययाः ।  
 शीघ्रधी रसहीनाश्च भवन्तीह विपर्यये ॥  
 रसवीर्यविहीनास्ता रोगानुत्पादयन्ति च ।  
 रुद्रप्रकोपनं तस्माज्जनमारं प्रसक्तं ॥  
 तस्मात् प्रसादयेत् यत्राहेवदेवं महेश्वरं ।  
 दैवज्ञानप्रदिष्टेन विधिना सुसमाहितः ॥  
 गाणपत्येन विधिना अथर्वशिरसा तथा ।  
 यामलेन विधानेन कुर्यादेवं प्रसादनं ॥  
 शिवसूक्तमुमासूक्तं जपेच्च शतरुद्रियं ।  
 बल्लुपहारविविधान् चत्वरेषु निवेदयेत् ॥  
 आवाहयेत्तं सगणं रुद्रं रात्रावहः शुचिः ।  
 ब्राह्मणान् भक्ष्यभोज्यैश्च दक्षिणाभिश्च पूजयेत् ॥  
 प्रसादिते ततो रुद्रे जनमारो निवर्त्तते ।  
 जप्य एवास निरतो नृपतिश्च यतेन्द्रियः ॥  
 युक्तो होममुपाश्रित्य नियमेन यथाविधि ।  
 एवं युक्तस्य नृपतेः कर्मसिद्धिः प्रशस्यते ॥  
 कर्मणस्तस्य मूलं हि अहधानो नृपः स्मृतः ।

उपोषितो नृपः ज्ञातः शक्रवस्त्रसमाहितः ॥  
 आम्बरस्थां स्वयं कृत्वा ततः शान्तिं प्रयोजयेत् ॥  
 धर्म्यान्ना धर्मविद्येषां राजा राजपुरोहितः ।  
 राजवंशगुणो येषां कुशलं तत्र वर्धते ॥

इति गर्गोक्तजनमारशान्तिः ।

—०१०—

अथ गोशान्तिः गर्गप्रोक्ता ।

व्याधयस्तु दय प्रोक्ता गवां वक्ष्यामि यादृशाः ।  
 उद्विम्बो हृदयघाही पतनो मोहनस्तथा ॥  
 तेषां रूपसमुत्थानन्तादृशं तद्गुर्वीमि वः ।  
 शान्तिकर्म च निर्दिष्टं यादृशं तत्र निर्मितं ॥  
 राक्षी गोष्ठेषु या गावो विव्रसन्ति यतस्ततः ।  
 उद्विम्बो नाम स व्याधिस्तेन चैव प्रजायते ॥  
 अन्तुप्रमोचं कुर्वन्ति नयनात् प्रपतन्ति च ।  
 हृद्रोगं तं विजानीयाद्गोषु रोगं विनिर्द्दिशेत् ॥  
 शोषितं यत्र कुर्वन्ति पुरीषं सूचयन्ति वा ।  
 प्रवेपमानाश्चक्षिताः पतिता व्याधिरुच्यते ॥  
 पुद्दारमच कुर्वन्ति मच्छलानि तद्येव च ।  
 भविष्यान्नांप्रियन्ती च मूढसंज्ञं विदुर्बुधाः ॥  
 पुरीषं पूतिकं वासां चोद्भ्रमन्तं प्रवर्तते ।  
 तं पूतनायर्हं विद्याद्गोषु रोगसमुत्थितं ॥  
 वदि जिह्वा विनिर्भन्व गीर्वां समभिधावति ।



कलिलो नाम नास्त्रेह गोषु व्याधिर्भवत्यपि ॥  
 रक्तानि जवनेदानि विप्रवन्ति श्रवन्ति च ।  
 मक्षिकायापि लीयन्ते व्याधिं विद्यास्तुदाकणं ॥  
 उदथाश्च मण्डलं याति वातेन क्षिप्यते च या ।  
 कर्णक्षेपगतिर्ज्ञेयो गोषु व्याधिः समुत्थितः ॥  
 क्षुरेण या न शक्नोति यातुमुल्लङ्घसंस्थिता ।  
 स्वैरकी नाम स ज्ञेयो गोषु रोगः समुत्थितः ॥  
 यस्याः स्फुरन्ति गात्राणि रोमाण्यूर्ध्वानि सन्ति च ।  
 उभौ च कर्णौ लम्ब्यते विद्यात्तं कर्णलम्बकं ॥  
 ईत्येते व्याधयो दिष्टा यथेज्या एव चापरे ।  
 तेषु तेषु यथोद्दिष्टं शान्तिकर्म प्रयोजयेत् ॥  
 ब्रह्मचारी गिरःक्रीडो निराहारः क्षमी शुचिः ।  
 आकरणां स्वयं कृत्वा ततः शान्तिं प्रयोजयेत् ॥  
 मन्नाः कषायवसना मूढा ये परिचारिणः ।  
 व्यङ्गाश्च स्रक्लिताश्चैव दूरतः परिवर्जयेत् ॥  
 कान्तांश्चिवाश्च कुष्ठांश्च तथा पक्षहतानपि ।  
 अन्त्यावसायिनश्चैव दूरतः परिवर्जयेत् ॥  
 अश्वत्थे वा पलाशे वा समदेशे त्वनूषरे ।  
 महास्थानैकहृत्त्रे वा देवगोष्ठेऽपि वा भवेत् ॥  
 मणकस्तु शुचिर्भूत्वा देवताद्युपकल्पयेत् ।  
 प्रतिष्ठाप्य ततो देवान् वेदोद्दुर्यात् प्रसाहतः ॥  
 पूर्वं कुशान् कुशान् मास्यं लाजानुज्जोमिकांस्तथा ।  
 मांसं पक्षाशनश्चापि तथैव हिमपिण्डिकां ॥

वृत्तसर्षपतैलेन सर्षपानघर्तास्तथा ।  
 मुक्तप्रतिसरान् गन्धान् समिधस्तु समाहरेत् ॥  
 उदुम्बरं पलाशञ्च खदिरं विष्वमेव च ।  
 अश्लेषञ्च शमीञ्चैव समिधस्तात्र कारयेत् ॥  
 चत्वार्यत्र सहस्राणि पर्वमात्राणि कारयेत् ।  
 ह्यस्त्रिवारवास्थीनि उल्लूकस्य समाहरेत् ॥  
 एतान्यस्थीनि धूपार्धं सर्वाण्येव समाहरेत् ।  
 यत्रया सञ्च संयुक्तं धूपङ्गेषु समानयेत् ॥  
 सुरावधिरसंयुक्तं मांसं पक्वामिषन्तथा ।  
 दिशाञ्च विदिशाञ्चैव बलिं कुर्यात् प्रदक्षिणां ॥  
 गावस्तु सर्वगोष्ठात्तु देवगोष्ठमुपानयेत् ।  
 आज्यधूपञ्च गन्धाञ्च द्वादशित्वा प्रदक्षिणां ॥  
 अग्निं प्रणीय विधिजत् परिस्तीर्य समन्ततः ।  
 बलेन विजयेद्यापि सुदुर्गं कर्म कारयेत् ॥  
 शान्तिमेतां प्रयुञ्जानः सावित्रीं मनसा जपेत् ।  
 एषा हि वेदमाता तु द्विजेः पूर्वमुदाहृता ॥  
 लाण्यच्छागस्य देहेन कर्माभ्यां यज्ञं शोभितं ।  
 समिधो जूहुयाच्छान्तो सर्वेषु च हृतेन च ॥  
 रक्षोघ्नतैलङ्गशरं रत्ननाम्नेन संयुतं ।  
 एवं तु जूहुयाद्विधौ ब्रह्मो गस्य विनाशनं ॥  
 पुण्यकर्मण्येव ज्ञानस्य शोभितं ह्यवयेत्ततः ।  
 यावन् न द्रुतेत्यस्य आधिं दृष्ट्वानुपातनं ॥  
 शमीमन्मस्तु शनिघ्नः जगत् यावकल्पथा ।

रक्षातैलेन संयुक्तं व्याधिः स्थाञ्जात्र मोहकः ॥  
 पाण्डुरस्य तु छागस्य वसां हृदयमेव च ।  
 मधु सर्पिष जिह्वाञ्च जुहुयात् पूतनागृहे ॥  
 अश्वत्थोदुम्बरः समित् ।  
 पलाशखादिरीमांसैः व्याधिः साम्यति दारुणः ।  
 कृष्णग्रीवस्य छागस्य छागल्या वा तथा भवेत् ॥  
 शोणितं सर्पिषा युक्तं जङ्घमाहारुणामये ।  
 वयोवृद्धस्य छागस्य वसां हृदयशोणितं ॥  
 अरिष्टाकृतसंयुक्तं कण्ठक्षेमस्य नाशनं ।  
 घृतं सर्पपतैलञ्च हृदयं कुक्कुटस्य च ॥  
 यथोपनीताः समिधा हाथयेच्चम्बकर्णिके ।  
 गवां शान्तिं यद्योद्दिष्टां यः प्रयुक्तां द्विजर्षभ ॥  
 कारयेच्च गवार्थं वा जपेयुष शतैर्वरं ।  
 तस्य पुत्राय पीत्राय धनधान्यन्तथैव च ॥  
 गावश्च सम्यग्वर्हन्ति लोके क्रीप्तिंमवाप्नुयात् ।

### शिवधर्मात् ।

—000—

ब्रह्मणा ब्रह्मपादेन स्तूयते प्रणवेन सः ।  
 स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहत् ॥  
 लम्बोदरेण देवेन गजवक्त्रेण सुस्ततः ।  
 स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहत् ॥  
 योऽर्चते च सदा भक्त्या विष्णुना प्रभविष्णुना ।

स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारिं व्यपोहत् ॥  
 सर्व्वरोगहरेषापि रविष्वा यः प्रणम्यते ।  
 स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहत् ॥  
 श्रीमतां रुचिराङ्गेषु घण्टाकर्णगणेन यः ।  
 नित्यं प्रणम्यते भक्त्या हृष्टेनानन्यचेतसा ॥  
 स शिवः शाश्वतो देवो गोषु मारीं व्यपोहत् ।  
 नित्यं रुद्रबलीपेती रुद्रभक्तिसमन्वितः ॥  
 घण्टाकर्णगणो देवः शिवज्ञानविधायकः ।  
 शिवयोगानुभावेन गोषु मारीं व्यपोहत् ॥  
 नमः शिवाय देवाय महादेवाय भाविने ।  
 रुद्राय स्थानवे नित्यं हरायोषाय ते नमः ॥  
 परमेशाय सिद्धाय मन्त्रसिद्धिप्रदायिने ।  
 चाम्बकाय महेशाय अनन्ताय नमोनमः ॥  
 अभिमन्त्रा सदा तीयमेतैर्मन्त्रैर्यथाक्रमं ।  
 प्रार्थयित्वा गवां देवं ततः सिद्धिर्भविष्यति ॥  
 य इदं पठते गोषु प्रस्थाने वा समागमे ।  
 आयुश्चान् बलवान् भोगी श्रीमानर्धपतिर्भवेत् ॥  
 देहान्ते च परं स्थानं स गच्छेत्प्रायः सगयः ।  
 सर्व्वपापविशुद्धार्थं गोशान्तिकमिदं पठेत् ॥

इति गोशान्तिः ।

—o—

सुश्रुतो रदराजश्च गर्गो मित्रजिदेव च ।

पृच्छन्ति वाहनागारं शालिहोत्रं तपोनिधिं ॥  
 हयानां मङ्गको घोरः कथं जायेत वै प्रभो ।  
 कथं वा शान्तिकं तेषां एतच्छुभ्रुत तां वद ॥  
 तागुवाच महातेजाः शालिहोत्रस्तपोनिधिः ।  
 स्थानेऽशुभे स्थापितानां सशस्त्रे वाघसंग्रहे ॥  
 हयानां मरको घोरो जायते नात्र संग्रहः ।  
 यस्य वा जन्मनक्षत्रं कर्मजं वाघ मानस ॥  
 मघादिकं सानुदायं वैनायिकमथापि वा ।

जन्मनक्षत्राश्चतुर्धदशमषोडशाष्टादशानां नक्षत्राणां मानसा-  
 हयः संज्ञाः ।

पीडयते सौरिस्त्र्यर्थाद्यैर्यदि वाप्यथ राहुणा ।  
 त्रिविधैर्वा तद्योत्पातैस्तस्य स्याद्वाजिमारणं ॥  
 यस्य वै ब्राह्मणाः क्रुद्धा देवा वा पितरोऽप्यथ ।  
 विनायकोपसृष्टो वा क्रुद्धा वा यस्य वाजिनः ॥  
 हयमारस्तु तस्य स्यात् स तु शान्तिकरो भवेत् ।  
 न वर्धन्ते हयात् पुत्रा रोगैः पीडयन्ति चापरे ॥  
 स्थानाहिवर्जनं कार्यं शल्योदररथमेव वा ।  
 कृत्वा कुर्वन्ति तत्रैव वासुदैवतपूजनं ॥  
 तथा नक्षत्रपीडायां स्नानं विहितमाचरेत् ।  
 पीडकश्च ग्रहः पूज्यो नक्षत्रमपि पीडकं ॥  
 विनायकोपसृष्टेन पूज्यो गणपतिर्भवेत् ।  
 मितश्च संमितश्चैव तथा शालकटं कटो ॥  
 कृष्णाण्डो राजपुत्रश्च पूज्या वै चाम्बिका तथा ।

यस्य वै ब्राह्मणाः क्रुधाः पूज्यास्त्वे ते न चान्यथा ।  
 देवानां पूजनं कार्यं यस्य क्रुधा दिवीकसः ॥  
 रात्रौ च वाहनागारे यदालिन्दापकर्षणं ।  
 कृते स्यात्तत्र कर्त्तव्यं गन्धर्वीणाञ्च पूजनं ॥  
 अदौपे स्यापिते स्थाने तथा शुचिविवर्जिते ।  
 स्थानापकर्षणं कृत्वा श्रियः पूजा विधीयते ॥  
 उच्चैःश्रवादयः पूज्या यस्य क्रुधास्तरङ्गमाः ॥  
 हयमारे तु संप्रप्ते हयानां वाप्युपद्रवे ।  
 इमं शान्तिं प्रवक्ष्यामि तस्मै निगदतः शृणु ॥  
 मोमयेनानुलिप्ते तु शभे देशे पराहितः ।  
 अहीराचोषितो भूत्वा शान्तिकर्म समारभेत् ॥  
 धीतशुक्लास्वरधरः शुक्लमान्यानुलिपनः ।  
 सोशीघालङ्कृतः गत्या हयैस्तैः शुचिभिः सह ॥  
 चत्वारो ब्राह्मणायास्य महायायूततन्दिताः ।  
 ऋग्वेदपारगक्षेको द्वितीयो यजुषां वरः ।  
 तृतीयः सामविश्वव्यसत्सुर्वाप्यशर्वणः ॥ ,  
 सर्वे व्यङ्गाः कुलीनाश्च शुचयः शीलसंयुताः ।  
 गृहीतास्वरसम्बोताः षड्वक्त्रकृत्वास्तथा ।  
 मध्येऽग्निकुण्डं कुर्वन्ति मण्डलन्तु समायतं ॥  
 त्रिदिक्षु विन्यसेत् कुम्भान् पुर्णानापभिवारिणा ।  
 रमपात्रं न्यसेत्तेषु ऐशान्यादिक्रमेण तु ॥  
 सर्पिषः पयसो दध्ना मधुनश्च यथाक्रमं ।  
 कुण्डस्य पूर्वभागे तु कुर्याद्देवैश्वरं पदे ॥

दक्षिणे तु यमं कुर्याद्दक्षिणं पश्चिमे तथा ।  
 उत्तरे च तथा भागे कुर्याद्दक्षिणं प्रभुं ॥  
 सर्वांस्तान् पूजयेद्विप्रा गन्धमाल्यानुलेपनैः ।  
 वस्त्रैर्धूपैरलङ्कारैस्तथैव वैद्यपूजनं ॥  
 तेषामवाप्य तस्मिन्मन्त्रराज्येन पावकं ।  
 यजुर्वेदविदः पूर्वं जपेदेन्द्रान्विशारदः ॥  
 याम्ये सोमं सामगस्तु वारुणं बह्वचोपि च ।  
 मन्त्रं कुबेरसंयुक्तं जपेद्विद्वानथर्वणः ॥  
 सुवर्णमङ्गतं वामः कांस्यङ्गाञ्च पृथक् पृथक् ।  
 पञ्चाणां दक्षिणा दत्त्वा हयमारात् प्रमुच्यते ॥  
 हयमारे तु संप्राप्ते हयानां वाप्युपद्रवे ।  
 इमां शान्तिं प्रवक्ष्यामि तस्मै निगदतः शृणु ॥  
 पूर्वोक्ते तु शुभे स्थाने पूर्वोक्तविधिना ततः ।  
 अग्निखण्डं दिशोऽग्न्यां पूर्वं वै पूर्वदक्षिणे ।  
 भूमौ कुर्वीत देवानां मण्डलेष्वपि पूजनं ॥  
 अत्र क्षिपत्यं कार्यं नैवकार्णिकस्वथर्वणः ।  
 आग्नेये त्वथ दिग्भागे वह्निपूजा विधीयते ॥  
 ऐशान्यां पूजनं वायोः पूर्वं तु सवितुर्भवेत् ।  
 सावितस्तु जपेन्मन्त्रं यजुर्वेदविशारदः ॥  
 आग्नेये वह्निवक्षैव सोमं सामविशारदः ।  
 सर्वमन्यत्तु कर्त्तव्यं पूर्वोद्दिष्टं विजानता ॥  
 उत्पातेषु निमित्तेषु वाजिनामिङ्गितेषु च ।  
 प्रायश्चित्तं प्रकुर्वीत ततः सर्वं प्रशाम्यति ॥

ह्यशालीक्षरे भागे स्थण्डिलं तत्र कल्पयेत् ।  
 तिरात्रोपोषितस्तत्र शान्तिं कुर्यात् पुरोहितः ॥  
 नववासोभिराक्षिप्तं स्थण्डिलम् चतुर्दशं ।  
 उदकुम्भास्तु चत्वारः स्थापनीयास्तुर्दश ॥  
 रसपात्राणि देयानि पूर्णं कुम्भे च सुशुत ।  
 शिरः स्नातः कृतोष्णीषो यथावत् कृतमण्डलः ॥  
 शुक्लवासा जितक्रोधो बहुत्वेन समौरितः ।  
 आहुतो जुहुयाद्ब्रह्मो ज्ञानेन सुसमाहितः ॥  
 पितामहाय रुद्राय स्कन्दाय वरुणाय च ।  
 अग्निभ्याश्चैव सूर्याय शक्राय च तथाम्भये ॥  
 वाहाय वाक् हरये अश्विन्यै देव्यै तथैव च ।  
 गन्धर्वेभ्यश्च सोमाय उच्चैःश्वस एव च ॥  
 देवता या भवेत्तत्र उत्पातस्य तु कारणी ।  
 मण्डले तां विदित्वा तु बलिभिर्द्यापि पूजयेत् ॥  
 अन्तमष्टाधिकं हुत्वा प्रतिदेवं पुरोहितः ।  
 ततस्तु पूजनं कुर्याद्देवानान्तु विशेषतः ॥  
 पादयोनिपदादीपधूपदीपादिलेपनैः ।  
 अधुपावससंमिश्रं विप्रा भोज्याः सदर्शिताः ॥  
 एकैकदेवसुहृद्भिर्दग्ग सम च पञ्च वा ।  
 सुवर्षसहितं वासी गाश्च कांस्यं दक्षिणां ॥  
 निष्कृत्वैर्षं तदा देयं शिराचम्पु महीभुजा ।  
 पुरोहिताय तुष्ट्यर्षं येन तुष्ट्यत्वसो हिजः ॥  
 वाचनान् पूजयेत् सर्वान् स्थावाप्य द्विजोत्तमान् ।



एतच्च शान्तिकं कार्यं नित्यमौत्पातिके सदा ॥  
 रक्षोघ्नस्तु यशस्वस्तु सर्वोत्पातविनाशनं ।  
 राक्षो विजयदं पुण्यं धनधान्यविवर्धनं ॥

इति शालिहोत्राश्वशान्तिः ।

— ००० —

अथ गजशान्तिः ।

तत्र पालकलक्षणानि पालकगृहीतगजलक्षणानि चामिधा-  
 याह पालकाप्यः ।

क्षरस्तत्रोपसर्गाय चरतीत्यभिलक्षयेत् ।  
 बल्लन् स कुक्षरान् हन्ति श्रेष्ठं वापि मतङ्गजं ॥  
 इमां तत्र क्रियाद्बुद्ध्यात् श्रेयोर्थी नृपतिः स्वयं ।  
 पूजयेद्यत्नतो रुद्रं विष्णुं सर्वाथ देवताः ॥  
 राक्षी भूतबलिचापि कर्त्तव्यो मासशोणितैः ।  
 सर्वासु गजशालासु चत्वरेष्ववरेषु च ॥  
 नगरात्सहस्रा राक्षी निर्णयेद्धारणान् ऋद्धिः ।  
 दिशि प्राच्यामुदीच्यां वा स्नानं जनमनोरमं ॥  
 मनोरमतरान् देशानपरेङ्गि मतङ्गजान् ।  
 सञ्चार्य्यचरणा राजन् वृक्षभङ्गटणाशनाः ॥  
 यथाविधि महामन्त्रैरेकाहारैस्तु संयतैः ।  
 सप्ताहमेव सञ्चार्य्या जपहोमपरायणैः ॥  
 पुरोहितस्तु कुर्वीत शान्तिं पापप्रणाशनीं ।  
 नर्षयित्वा द्विजांस्तत्र दक्षिणाभिष पूजयेत् ॥

महीमात्राय सप्ताहं शुचयः सगितव्रताः ।  
एकग्रतं निग्रिं स्नात्वा भुञ्जीरन् हविषोदनैः ॥  
वृषभङ्गदण्डाहारानिकस्थाने निवेद्येत् ।  
आरण्यकत्वं तेषान्तु सङ्कल्पं मनसा भवेत् ॥  
हविस्थानेषु यून्यस्तु गावः सप्ताहमेव च ।  
वासयेत् सह वत्सेषु वृषभैर्विहितैस्तथा ॥  
द्वितोरणं निवेश्याथ जलस्त्रीभयनीरजं ।  
स्वस्तिकस्तोषु चैकेकीभवेद्द्रोणोऽथ काञ्चनः ॥  
महामात्राय तत्रैव स्युस्ते स्थण्डिलवासिनः ।  
सुवर्णानां ग्रतश्चात्र विन्यस्यमुदकं द्विज ॥  
सामान्ययज्ञप्रोक्तं यत् स्नानं तदुपकल्पयेत् ।  
तीरणे च भवेत्कार्यं चतुर्मासविधौ तद्यथा ॥  
मन्त्रैर्जुहुयाद्द्विप्रस्तुः समिद्धिर्जातवेदसं ।  
सामान्ययज्ञं निर्वर्त्य यथाप्रोक्तं विधानवित् ॥  
मन्त्रैस्तु जुहुयादेतैः समिद्धिर्जातवेदसं ।  
इन्द्रेः सह मरुद्भिश्च गजेनैरावतेन च ॥  
उत्पातन्तु निगृह्णीयात् उदोच्यां स्नापयेत् गजान् ।  
एवं कृत्वा हविःशेषैर्बलिं प्रतिदिगं हरेत् ॥  
मन्त्रैस्तैरेव पूर्वोक्तैर्हविभ्यस्तेभ्य एव च ।  
दक्षिणस्यान्दिशि विप्रो ततो ह्योमं समाचरेत् ॥  
नामाग्नये विश्वेभ्यश्च भूतेभ्योऽथ बलिमया ।  
दक्षिणायां वारुणन्तु हरिद्राक्तोदनं बलिं ।  
द्विप्रो मन्त्रमिमं राजन् नियतेः सुस्वनेर्जपन् ॥

ये च पश्चिमायान्दिशि समाश्रिता रुद्रा रुद्रमनुष्याः रौद्राणि  
च भूतानि रोमाणि व्याधयन्त्येत्वारोग्यं व्याधयो जीवितं चास-  
त्तन्तेभ्य एव बलिः ।

पूर्वोत्तरान्दिशि तु हुत्वाहरेन्द्रायोदनं ।

सुसमाहितो बलिं हरेष्वथान्यायमिममंमन्त्रं विप्रो यत्नेन योजये-  
दिति नमो राक्षस-पिशाच-गन्धर्व-रक्षोभ्यो येषु पित्रं संस्मर्य एव  
प्राचाञ्चायत्तास्तेभ्य एव बलिंरिति बलिं सर्वेभ्यो दिशमिमं  
मन्त्रमुदीरयेत् ।

अग्नये पार्श्वानां सत्वानामपार्श्वानां सत्वानामधिपतये एव  
ते बलिः वायोरान्तरिक्षाणां सत्वानामधिपतये एव ते बलिः ।

रुद्राय च यथान्यायं क्रमेणोपहरेद् बलिं ।

ये ह्येषु ये तीर्थेषु ये वीक्षिषु तेभ्यो नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो  
हराम्यहं ।

येऽन्तरिक्षे ये निविष्टास्तु पृथिव्यां ये च संश्रिताः ।

तेभ्यो नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो बलिमेभ्यो हराम्यहं ॥

हुत्वा हुत्वा बलिं सम्यक् द्विजातीन् स्मृतिवाच्यं च ।

पूर्वोक्तेन विधानेन रागाक्षीराजते क्रमात् ॥

दत्त्वावगाहन्तेषाम् ततस्तीरं परं नयेत् ।

हारे द्वितीये नीराज्यास्तो नैव विधिना पुनः ॥

नीराजपेक्षं पञ्चाहं यथा राजजनन्ततः ।

सप्तमे संप्रवेश्येतान् कृतकोतुकमण्डलान् ॥

गीतवादिचण्डैश्च सहजान् स्मृतिवाच्यं च ।

सर्ववोजैः फलैः पुष्पैः शालगन्धैश्च पूजितान् ॥

सहिरण्यांस्ततः कुम्भान् शालाहारेषु विन्यसेत् ।  
 संसृष्टालङ्कितान् कृत्वा सर्वमभारपूजितान् ॥  
 भरहाजो मरुद्विष हृद्रोभूप उदाहृतः ।  
 तथा पुनश्च शालायां क्षेममङ्गलसम्भृतां ॥  
 प्रविशंश्चानिरुद्धस्तु स्तम्भे तिष्ठन् शरच्छतं ।  
 अरोगो बलवान् भूयो राक्षस्य च विजयावहः ॥

तथा ।

अङ्गस्तु राजा चम्पायां पालकाप्यं स्म पृच्छति ।  
 चातुर्मासीषु सर्वासु कथंसीराजयेद्भजान् ॥  
 प्रब्रूहि पृष्टमेतस्मै यथावन्निमित्तम ।  
 संपृष्टस्वङ्गराजेन पालकाप्यस्ततोऽत्रवीत् ॥  
 इदं शृणु महाराज यन्मन्तुं परिपृच्छसि ।  
 रोमाय नैर्ऋतिश्चैव तथा रत्नामि पन्नगाः ॥  
 पिशाचा गुह्यकाश्चैव गन्धर्वा राक्षसास्तथा ।  
 दानवाश्चैव यक्षाश्च कौमाराद्यापि ये यद्ग्राः ॥  
 ये अघोरा जयाद्याश्च ये च रुद्राश्च देवताः ।  
 उपसर्गाश्च ये केचित् पीडानक्षत्रजाश्च ये ॥  
 बलिं वा भोक्तुकामाश्च हन्तुकामास्तथाऽपरे ।  
 तथा क्रोडितुकामाश्च घोररूपा महाग्रहाः ॥  
 देवोपघाता ये चान्ये तत्र शक्तिं व्रजन्ति ते ।  
 एतदर्धं महीपाल गजनीराजनी स्मृता ॥  
 कार्तिकी प्रथमा राजन् द्वितीया फल्गुनी तथा ।  
 आषाढी तु तृतीया स्यात् तिस्रो नीराजनाः स्मृताः ॥

चतुर्मासी भवेत् कुर्याद् गजानां हितमिच्छता (१) ।  
 यथाहं देवतानाञ्च सिद्धानाञ्च बलिं हरेत् ॥  
 उष्ट्रान् पिकांश्च जालांश्च धान्यन्धधि घृतं मधु ।  
 पायसं मधु कल्पाशं लोहितान्नं गुडोदनं ।  
 सुप्रतिष्ठं भद्रपीठं दिव्यमाख्यानुलेपनं ॥  
 दीर्घाग्रान् हरितान् दर्भान् विप्राणाञ्चैव भोजनं ।  
 नवं शिवञ्च विधिवद्भोजोपस्करमाहरेत् ॥  
 आक्रान्तन्तगरोशीरं प्रियङ्गुञ्चोपराजयेत् ।  
 सर्वरक्षीषधैश्चापि धूपमाख्याञ्जनानि च ॥  
 रक्षाविधानं कुर्वीत गजानां स्वस्तिवाचनैः ।  
 गमागमेपि कर्त्तव्या शान्तिः सन्ध्याहयेपि च ॥  
 पुरोहितो दक्षिणतो जुहुयाद्ब्रह्मवाहनं ।  
 उत्तरे जुहुयाद्दैत्यः शुचिवस्त्रः समाहितः ॥  
 आहृतश्चीमवसनः शुचिर्भूत्वा कृताञ्जलिः ।  
 अष्टौ देवान् नमस्कृत्य गजानां स्वस्तिवाच्य च ॥  
 प्रजापतिं च विष्णुञ्च यमञ्चैव शचीपतिं ।  
 रुद्रञ्च बलदेवञ्च वरुणं धनदं तथा ॥  
 सेनापतिं नमस्यामि गजानां स्वामिनां प्रभुं ।  
 यज्ञभाण्डमथानीय यज्ञभूमिं प्रकल्पयेत् ॥  
 पूर्वोणान्तरतो वापि ब्राह्मणानुमते शिवे ।  
 प्रागुदक् प्रवणे देशे स्निग्धौषधिनगे समे ॥  
 पदक्षिणोदके चैव सर्वतः सुपरिक्रमे ।

गोमयेनोपलिप्याद्य यत्तभूमिं प्रवेशयेत् ॥  
 तस्मात्त्वनरकं तत्र भूमादृष्टादरक्षयः(१) ।  
 नोद्यानदेयोपहतान् नोर्द्विशक्नान् दृढान् खड्गान् ।  
 अगुगम्यान्नवान् सृक्षान् ऋजुत्रक्षानसुस्थितान् ।  
 उल्लेधान् हादगारतीन् धारयेत् विषक्षयः ॥  
 हस्त्यागाराणि सर्वाणि गोमयेनोपलेपयेत् ।  
 शुचीनि कारयित्वा षट् बलिभय विभूषयेत् ॥  
 स्थानेषु पुष्पमालाश्च करणे तोरणानि वा ।  
 राजाथ प्राजनान् सर्वान् गृहीत्वा चाक्षतोदकं ।  
 प्रीक्षयेत् स्तम्भमूलानि धरणीं परिघास्तथा ।  
 परिकर्मिणः सुस्राताः शुचयः शुक्लवाससः ॥  
 यावन्निर्व्वर्णकाले तु जम्भाभ्यासं नयेद्भजं ।  
 गान्तिञ्च जुहुयात्तत्र ब्राह्मणथैव वाचरेत् ॥  
 द्रव्यानि हस्त्यागाराणि तथा प्रश्रवणानि च ।  
 वरुणं तीर्थकन्याश्च नागानुदकदेवतान् ॥  
 सागरान् सरितथैव उदपानं सरांसि च यः ।  
 तडागानि च सर्वाणि सुरानभ्यर्चयेत्क्षुचिः ॥  
 प्रायश्चित्तानि कृत्वा च ततः पश्चात्पयेद्भजं ।  
 सर्वरत्नौषधैर्बीजैः पूर्णथैव विषक्षणः ॥  
 चन्दनैश्च यथा प्रीक्षैः स्नापयेद्वृत्तपूर्वगः ।  
 स्नातस्य तस्य नागस्य कारयेदाहृतानि तु ॥  
 हारिद्रं पिष्टमादाय पूर्यात् पश्चाद्भूलान्धयः ।

१. श्लोकार्थमिदं न सम्यक् प्रतिभाति ।

मङ्गलानि च सर्वाणि कारयेत्, चिचक्षणः ॥  
 रोचनया प्रियं यच्च सम्यग्ग्रामं समालभेत् ।  
 अङ्गि खलङ्कृतं हृष्टं तुर्याभिः समवसरेत् ॥  
 शोभितं वैजयन्तीभिर्न बद्धैः पञ्चरज्जुभिः ।  
 काञ्चना राजता वापि दिव्यवामः समन्विता ॥  
 यथिता क्षौमसूत्रेण नागरोयोरमिश्रिता ।  
 सभ्रूता पर्वताये च सर्वदेवनमस्कृता ॥  
 शतपासीनसुवर्णैर्गजानां स्वस्तये भवेत् ।  
 पारोग्गायैव नागानां नृपस्य विजयाय च ॥  
 मध्ये च स्वस्तिकं कुर्यात्स्वस्ति गच्छन्ति कुञ्जराः ।  
 भवकीर्यं तु लाजैय यच्चभूमिं समन्ततः ॥  
 कुयोदुम्बरशाखाभिः सर्वतः परिताडयेत् ।  
 काष्ठैः पलाशजैश्चापि सिद्धकोदुम्बरैस्तथा ॥  
 ण्योतीपिं जनयेद्यावत् समिद्धं वाचकं ततः ।  
 गृहीत्वा घोदकं पात्रं प्रोक्षयेद्दिव्यवाहनं ॥  
 अदिते नमस्ते । सरस्वति नमस्ते । देवसवितर्नमस्ते ।  
 उत्तिष्ठाय विवर्द्धस्व प्रभावं त्वरितं मम ।  
 विबोधयत्वप्सरसः सुभहस्ताश्च ब्राह्मणाः ॥  
 योगं मम प्रयच्छस्व प्रसन्नो ह्यव्यवाहन ।  
 शुवेषाम्ण्यं गृहीत्वाश्च शान्तिर्भवतु हस्तिनां ॥  
 स्वाहा । समिधे स्वाहा । स्रुवाय स्वाहा । भूः स्वाहा ।

भुवः स्वाहा ।

बुद्धो बोधय भूतानि ब्रह्माण्णामितोजसं ।

सहस्राक्षं भूतपतिं कुवेरं वरुणं यमं ॥  
 विष्णुञ्चैव महात्मानं तथा नारदपर्वतो ।  
 उद्दालकं काश्यपञ्च मरीचिं भृगुमेव च ॥  
 ऋषिमुख्यान्ममस्यामि सर्व्यानेव कृताञ्जलिः ।  
 आसिञ्चाज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः ॥  
 भवन्त्यरोगाः राजानः समृध्यन्ताश्च याजकाः ।  
 हिजे दानं प्रयच्छन्तु बलारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

दक्षं भूतानि गन्धर्वाः श्रोषण्यश्च दिशोगणाः ।  
 आदित्यमरुतश्चैव अग्निव्यो च तथा पहाः ।  
 गजानां संप्रयच्छन्ति बलारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

ऐरावतं पुष्यदन्तं कुमुदं वामनं तथा ।  
 पौण्डरीकं नीलवन्तं सार्वभौमं सुतेजसं ॥  
 सुप्रतीकञ्च नागेन्द्रं महाबलिनमेव च ।  
 महागजांस्तथैवान्यान् नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥  
 आसिञ्चाज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः ।  
 भवन्त्यरोगाश्च गजाः समृध्यन्ताश्च याजकाः ।  
 प्रयच्छन्तु च नागानां बलारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

आचेयं जमदग्निञ्च वसिष्ठं पुलहं क्रतुं ।  
 हीर्यं वरवरश्चैव पुलस्त्यं चवनं तथा ॥  
 वेदीक्षमाञ्च स्वाहाञ्च पर्वतं चात्र मालिनं ।



हिमवत्प्रमुखश्चापि समेतान् कुलपर्वतान् ॥  
 तथैव सर्वतोऽनन्तान् नमस्यामि कृताञ्जलिः ।  
 दिशो दश च ये नागा सर्वकालमधिष्ठिताः ॥  
 भूमिधराः भुजङ्गाश्च नमस्यामि कृताञ्जलिः ।  
 प्रासिच्याज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः ॥  
 भवन्तुरोगाश्च गजाः समृध्यन्ताश्च याजकाः ।  
 प्रयच्छन्तु च नागानां वर्णारोग्ययमांसि च ॥

स्वाहा ।

भूमिधरान् अभिमतान् महातेजान् महाबलान् ।  
 देवदत्तोद्भवाभोग्यान् श्चिर्भूत्वा कृताञ्जलिः ॥  
 अनन्तं प्रथमं वन्दे सर्वलोकाभिपूजितं ।  
 कर्कोटकं धूमविषं वासुकिश्च महाबलं ॥  
 कालीयश्चापि वन्दित्वा बलमुत्पलमेव च ।  
 हरिश्च विद्युज्जिह्वश्च कवलाखतरावुभौ ॥  
 उदयन्तमघादित्यं जिह्वायां परिलेहति ।  
 प्रथतं तं पुनश्चापि लाङ्गुलेन निषेवते ॥  
 अनुरागं महाभागः पञ्चशीर्षो महाबलः ।  
 नागो मन्दिपहश्चैव ये चापि धरणीधराः ॥  
 कृष्यन्तु स्वस्ति नागानां निर्वाणे तरणे तथा ।  
 भक्तर्भूमौ च ये नागा ये च ये दिशि गोचराः ॥  
 प्रासिच्याज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः ।  
 भवन्तुरोगाश्च गजाः समृध्यन्ताश्च याजकाः ॥  
 संप्रयच्छन्तु नागानां वर्णारोग्ययमांसि च ।

उत्तरेण जपेद्दिप्रः सेनायामपि कीर्त्तनं ॥  
 सेनापतिं शक्तिधरं राजानां स्वामिन् प्रभुं ।  
 षष्ठीप्रियं क्रीडरिपुं पद्मखं हादशेक्षणं ॥  
 रक्तमाल्याम्बरधरं घण्टाभरणकुण्डलं ।  
 ब्रह्मकं हादशभुजं कार्त्तिकेयं दुरामदं ॥  
 रक्तप्रतिसरं माल्यं प्रकृतं कामचन्दनैः ।  
 अर्चयेद्गुडसंयावपायमस्त्रिकादिभिः ॥  
 पूर्वदक्षिण दिग्भागं दक्षिणाञ्च दिग्ं तथा ।  
 तथैव नैऋतीं वन्दे पश्चिमाञ्च दिग्ं तथा ॥  
 वायव्याञ्चोत्तराञ्चैव तथा पूर्वोत्तरां दिग्ं ।  
 ततोऽर्द्धाञ्च दिग्ं वन्दे अदितिं देवमातरं ॥  
 अधिग्रये वसन्नागास्ताम्रमध्ये कृताञ्जलिः ।  
 आसिञ्चाज्याहुतिं तेषां भूयः स्वस्ति गजे पुनः ॥  
 भवन्तुरोगाय गजाः समृध्यन्ताञ्च याजकाः ।  
 संप्रयच्छन्तु नागानां वर्णारोग्ययगांसि च ॥ स्वाहा ।  
 स्वस्तिकापूपसंयावमधुलाजा घृतं तथा ।  
 हिरण्यञ्च सुवर्णञ्च वासांस्यभिनवानि च ॥  
 मैरेयञ्च सुराञ्चैव वाचेषा वरवारुणी ।  
 गुडोदनञ्च मालञ्च मद्यं कल्पावमेव च ॥  
 सर्व्वमेतदुपन्यस्तं घृहाणामशतो हितं ।  
 प्रतिगुप्तां सुगुप्तां वा बहुधां वद पाश्च नः ।  
 संप्रयच्छन्तु नागानां वर्णारोग्ययगांसि च ॥

स्वाहा ।

व्यपोहतु च पापानि इह राज्ञः शतं समाः ।  
 त्वया विसृष्टा आरण्या मानुषाणामसङ्गताः ॥  
 अविष्टुष्टं त्वया नास्ति भोक्तुमर्हसि कामदः ।  
 अपूतिमांसमामारं ह्युपधापरिचर्जितं ॥  
 अनारुढं मनुष्यैस्त, तमारुह्य च वृक्षरं ।  
 ग्रहणे च यथातत्त्वं सेनान्ये भद्रमस्तु, ते ।  
 संप्रयच्छन्तु नागानां वर्णारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

पादायधं ताम्रचूडं शतपत्रं मनोरमं ।  
 विचित्रपत्रक्लात्र कुक्कुटं दर्शयामि ते ॥  
 कुक्कुटं मे गृहाण त्वं सेनानि भद्रमस्तु, ते ।  
 संप्रयच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

प्रभूतवर्णलाङ्गूलं सर्वाङ्गसुसमाहितः ।  
 धीतमामलकं कल्कैः क्वागं सन्दर्शयामि ते ॥  
 क्वागं मम गृहाण त्वं सेनान्ये भद्रमस्तु, ते ।  
 संप्रच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

सहस्रशूलावनतं देवराजविलेपनं ।  
 प्रवरं सर्वमूलानां उशीरं दर्शयामि ते ॥  
 उशीरं मे गृहाण त्वं सेनान्ये भद्रमस्तु, ते ।  
 संप्रयच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

नैराश्विनीं त्विमां मालां सहस्राक्षेण धारितां ।  
 सभ्रूतां देवतानाञ्च राक्षसानां मनोहरां ॥  
 प्रीतिसञ्जननीं देवीं भूतनागनिषेवितां ।  
 आबाहेषु विवाहेषु क्षेत्रनीराजनोप च ॥  
 नागानाञ्च प्रवेशेषु मङ्गल्या वारुणी स्मृता ।  
 सुरा सुगन्धा सुरमा मदोकरमनोरमा ॥  
 पूजिता देवमनुजैः प्रसन्नी दर्शयामि ते ।  
 वारुणीं मे गृह्णाण त्वं सेनान्ये भद्रमस्तु ते ।  
 संप्रयच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च ॥

स्वाहा ।

पुरा देवासुरे युद्धे संग्रामे तारकामये ।  
 सेनानीः संस्कृतो देवैर्देवानाममितद्युतिः ॥  
 रक्ष सैन्यं सराजानं सेनान्ये भद्रमस्तु ते ॥  
 संप्रयच्छस्व नागानां वर्णारोग्ययशांसि च ।

स्वाहा ।

इमे शङ्खा मृदङ्गाश्च कांस्यवाद्यानि यानि च ।  
 वीणासर्पाणि पणवा गोधा परिवदन्तकाः ॥  
 आहुता मङ्गलार्थं वै वाद्यन्ते मधुरस्वराः ।  
 इहेकरात्रं दिवसं विजयाय नृपस्य च ॥  
 विविधानि च रूपाणि सम्यग्बुद्धा हृताग्ने ।  
 ह्वयमाननिमित्ततः रक्षणार्थं विनिर्दिशेत् ॥  
 ह्वयमाने क्षयं यान्ति यद्यस्मिन् सुदृढायते ।

चित्रघ्नः परुषथापि वसुगन्धस्तथेव च ॥  
 अतिवर्णां विचित्रय वल्लोकाकृतिसंस्थितः ।  
 होत्रिदायी च यो वल्लिर्हिजानां जयमादिशेत् ॥  
 कृत्मानः स्फुलिङ्गाद्यैः राज्ञो रूक्षा विरूपवान् ।  
 धूमवातगुतथाथ वर्गगन्धः समथ यः ॥  
 गौसुखाकृतसंस्थानो गवां संचयमादिशेत् ।  
 चिरेणोत्तिष्ठते यश्च क्षिपचैव प्रगाम्यति ॥  
 कृष्णवर्णां विधूमाश्च कृशरागन्ध एव च ।  
 लघुमानस्तद् वङ्गिराख्यति नृपतेर्विधं ॥  
 गृध्रोलूकनिभथापि राज्ञो मरणमादिशेत् ।  
 अश्वक्त्वर्णां दुर्गन्धो विप्रकीर्णशिखोऽनलः ॥  
 क्षिप्रं विनागयेद्राष्ट्रं सामान्यं सपरोहितं ।  
 राज्ञो मरणमेवापि श्वगन्धो यदाऽनलः ॥  
 हीनस्वनी यदा वङ्गिः कुणपथ हुताग्नः ।  
 सगन्धः स्याद्विवर्णय हतमाख्याति पार्थिवं ।  
 श्यावः पाटलकश्चैव वङ्गिर्विधनमादिशेत् ॥  
 विप्रकीर्णशिखापि वायसप्रतिनिम्बनः ।  
 राज्ञः कौषस्य नाशाय युवराजवधाय च ॥  
 तद्विधं कुरुते वङ्गिरतिधूमोद्यतिस्वनः ।  
 करे चोरसि दाहो च ह्येववाही च यो भवेत् ॥  
 तत्रार्थहानिं जानीयात्क्षिप्रत्वात्तदर्थने ।  
 करीषधूमसङ्काश इन्द्रायुधसमद्युतिः ॥  
 हृत्पत्रस्य क्षयं क्षिप्रं तद्विधो वङ्गिरादिशेत् ।

कर्षूर्वर्णो विकृतस्तु तथा चर्मसुगन्धिकः ॥  
 जननाशं तदाख्याति क्लममानो दृताशनः ।  
 हविर्हरिद्रावर्णाभो लेपमानो यथाऽनलः ॥  
 निगडाकृतिसंस्थानस्तथा शङ्कनिभाकृतिः ।  
 पाशाकृतिनिभश्चापि राज्ञो बन्धनमादिशेत् ॥  
 विष्किन्नशतसूर्याणामाकृतीरुदितस्वनः ।  
 वामतो यस्य गत्वा च धूमः प्रतिनिवर्त्तते ।  
 मत्स्यशीणितगन्धानां तुङ्गो यज्ञश्च जायते ।  
 राज्ञः पुत्रबन्धं विद्यात् शास्त्रपौत्रैरिमेहिजः ॥  
 अशुभान्यवमादीनि न निवेद्यानि भूपते ।  
 प्रामादाद्रिनिभश्चापि स्त्रीपशुः कलशाकृतिः ॥  
 प्रदक्षिणाकृतिशिखो हंसरत्नोदधिस्वनः ।  
 शङ्कप्रभमथाश्रानामेव दुःखभनिस्वनः ।  
 सुवर्णरजतप्रख्यः क्षीरपायमशम्यवान् ॥  
 शस्त्राणां कषचानाश्च वारणानां मण्डोपते ।  
 श्मशते यस्य चात्पथं संग्रामे ज्ञयमादिशेत् ॥  
 प्रहृष्टमनसश्चापि शुक्लाम्बरधरा यदि ।  
 ईशयेयुः शुभागारस्तद्भवेज्जयलक्षणं ॥  
 यदा गुरुस्वपसन्नो जहृयाहव्यवाहनं ।  
 महाभयं विजानीयात् नृपश्चापि गज्रादिकं ॥  
 अनन्यवाहनान् पूज्यान् दिव्यलक्षणसंयतान् ।  
 गदादीनि विशिष्टेन तोयेन स्नापयेद् बधः ॥  
 अन्यवाहान् द्विपहयान् सर्वांस्तान् ममाहितान् ।

बाह्यकुम्भोदकेनैव स्नापयेत्तत्र साधकः ॥  
 राज्ञे नोराजनं कुर्यात्तदहःषु च मन्त्रवित् ।  
 अन्येष्वेवग्रिधः कार्यः स हि रत्नाकरः परः ॥  
 राजानं वाहनान्यांथ तथान्यांश्च पुरोहितः ।  
 सर्वालङ्कारसंयुक्तान् सर्वमङ्गलसंयुतान् ।  
 कृत्वान्वाचयेत्पथाद् ब्राह्मणैरागिषा बहू ॥  
 दक्षिणामतुलान्दद्यादृत्विग्भ्यां गुरवे नृपः ।  
 वाहनञ्च सभूषाढामाचार्याथ प्रदापयेत् ॥  
 दासदासोकभृत्पिषु ग्रामादिषु च सर्वशः ।  
 सर्वालङ्कारसंयुक्तान् राजा वाहापरिस्थितान् ॥  
 साराहैयापि संयुक्तान् मत्तद्विपहृथोत्तमैः ।  
 ब्राह्मणैः स्तुतिवचनेऽर्च्यत्विग्भिः सह संयुतैः ॥  
 आचार्या राजभवनं नृपं संवेगयेत् स्वयं ।  
 पूर्वस्नानविगष्टेन कुम्भतोयेन मन्त्रवित् ॥  
 गजशालाश्च सप्रोक्ष्य वाजिशालान्तथैव च ।  
 सिद्धार्थतण्डुलतिलैः पुष्पैश्चाप्यवकीर्य च ॥  
 शालामध्ये नृसिंहश्च सुदर्शनमनामयं ।  
 पूजयेद् गन्धपुष्पादिसर्वालङ्कारसंयुतैः ।  
 सक्तभिः कृगरान्नेन कुर्याद्भूतबलिं बहिः ॥  
 ततः शालासु सर्वासु ब्राह्मणान् भोजयेदलं ।  
 ततः सवेशने कुर्यादाचार्या गजवाहिनं ॥  
 एवं शान्तिं प्रकुर्वीत निमित्ते सति तद्गुरुः ।  
 परिच्छेदस्य नृपतेर्भन्त्रवित्समाहितः ॥

सर्नकल्याणसंपूर्णः सर्वबाधाविवर्जितः ।

सुपुष्टराज्यवन्तन्तु नृपस्तेन महोयते ॥

इति गजशान्तिः ।

— ० —

गृहमध्ये स्थूणा विराहेत्कपोतो वायारमर्धं निपतन्त् ।  
 धायसो वा गृहं प्रविशेत् । गौर्गृहमारीहेत् । गौरात्मान प्रतिधा-  
 येत् । अनड्डान् वा मुदित उक्त्विखेदनग्नी वा धूमो जायते वन्सो-  
 कक्षोपजायते कृत्वाकनिर्यामञ्चापजायते । मण्डूकी अत्रष्टो वाम-  
 येत् । स्वप्नेऽस्थिदन्तपतने गृहपतिजायां महोपतयादन्ते अन्येषु  
 वा गृहोत्पातेषु अग्नेयजनात्मे खनप्रत्यग्निमुखान् कृत्वा स्थानो-  
 पाकं जुहोति । यत्र इन्द्रभयामह इति पुरोऽन्यत्र स्वस्तिदाग्निग-  
 स्पतिरितियाज्याया जुहोत्याज्यादादीरुपजुहोति यस्ते व्याख्याते ।  
 यत्र इन्द्राग्नी भवतामर्वाभिः यत्र इन्द्रायकृणारानदध्या । गमि-  
 न्तासो मासुवितायशयोः यत्र इन्द्रापूषणावाजमाती । कयानचित्त-  
 आभुवको अद्ययुक्ते भवानवः समनमाविति । स्वितिशत प्रभृति-  
 तुष्टामा धेनूवरप्रदानन् ।

अथास्त्रेण गमीपत्रेषु हतशेषं निदधाति ॥

शत्रोदेवी रभिष्टये आपो भवन्तु पीतये शंशोरभिस्रवन्तु नः ।  
 इति स्थानोसंचालनमाज्यगेषमुदकगेषञ्च पात्रां समानीय  
 एतेषूत्पातेषु उत्पन्नेषु विनयेत् । प्रोक्ष्णदा तच्छंशोरावृणोमह  
 इति ।



अन्तं संकृत्य ब्राह्मणान् संपूज्याशिषो वाचयित्वा त्रिवं शिव-  
मित्यद्भुतो व्याख्यातः ।

### अरुण उवाच ।

—ooOoo—

नानारोगहृतानां च आर्हिं तानां तद्यारिभिः ।  
आदित्याराधनं मुक्ता नान्यच्छ्रेयस्करं परं ॥  
तस्मादाराधयादित्यं सर्वरोगविनाशनं ।  
ग्रहोपघातहन्तारं सर्वोपद्रवनाशनं ॥  
पूजयानो जगन्नाथं भास्करं तिमिरापहं ।  
सूर्याग्निकार्यं सततं सिध्यथं सुखमाचरेत् ॥  
महाशान्तिरितिख्यातं सर्वोपद्रवनाशनं ।  
ग्रहोपघातहन्तारं दृढकायकरं परं ॥  
यत् कृते मम सूर्येण पुरा शान्तिर्धर्मादरात् ।  
सर्वपापहरं पुण्यं महाविघ्नविनाशनं ॥  
महोदयं शान्तिकरं लक्ष्मीममिति स्मृतं ।  
तालध्वजपताकाय महावस्त्राय ते नमः ॥  
स्वाहेति च दानायेह आहुतिं विस्मजेद् बुधः ।  
महोदराय श्वेताय पिङ्गाक्षाय महामते ॥  
स्वाहा पद्माधिपतये आहुतिं विस्मजेद् बुधः ।  
उत्तरादिष्मुख्यायेह महादेव प्रियाय च ॥  
श्वेताय श्वेतवर्णाय त्रिवेदाय नमो नमः ।  
शान्ताय शान्तरूपाय पिनाकवरधारिणे ॥  
ईशानदिष्मुख्यायेह स्वाहा ईशान आहुतिं ।

विसृजेत् खगशादूर्ल विधिवत्पावकीपम ॥  
 श्रुते देवं महात्मानं पापकं विधिवन्नृप ।  
 लोकपालमुखं देवं विगाहं यावदादरात् ॥  
 एवं हुताग्निकार्येषु स्वैरं खगवरोत्तम ।  
 लक्ष्मीमञ्च विधिवत्ततः शान्तिं समाचरेत् ॥  
 भूर्भुवः स्वरिति स्वाहा लक्ष्मीमविधिः स्मृतः ।  
 महाहोमे च वै सौर एष एव विधिः परः ॥  
 कृत्वेवमग्निकार्यन्तु सौरं खगवरोत्तम ।  
 लक्ष्मीमञ्च विधिवत्ततः शान्तिं समाचरेत् ॥  
 सिन्दूरारुणरक्ताभः पद्मरत्नान्तलोचनः ।  
 सहस्रकिरणो देवः समाश्वरघवाहनः ॥  
 गभस्तिमाली भगवान् सर्वलोकनमस्कृतः ।  
 करोति ते महाशान्तिं यद्दृषीद्वानिवारिणीं ॥  
 सुचक्ररथमारूढः अर्पा सारमयोऽम्बुजः ।  
 समाश्ववाहनो देवः शान्तये त्वस्मृतप्रभुः ॥  
 ग्रीतांशुरमृतांशुश्च क्षयद्विसमन्वितः ।  
 सोमः सौम्येन भावेण यद्दृषीद्वानिवारिणीं ॥  
 तप्तगैरिकसङ्काशः सर्वशास्त्रविगारदः ।  
 सर्वदेवगुरुर्विप्रीं अथर्वविश्वरः परः ॥  
 दृष्टस्मृतिरितिख्यातो अर्थशास्त्रपरथ यः ।  
 शान्तेन चेतसा शान्तिः परेण सुममाहितः ॥  
 यद्दृषीद्वानिवारिणीं करोतु तव शान्तिक ॥  
 सूर्यार्चनपरो नित्य प्रसादाद्वास्करस्य च ॥

हिमकुन्देन्दुवर्णाभदैवदानवपूजितः ।  
 महेश्वरस्तुतो वीरो महामौरो महामुनिः ॥  
 सूर्यार्चनपरो नित्यं शुक्रः शुक्रनिभः सदा ।  
 नीतिगाम्त्रपरो नित्यं ग्रहपीडां व्यपोहत् ॥  
 भिन्नास्त्रनचय प्रख्यम्हायाजः सुमहाद्युतिः ।  
 सूर्यपुत्रः सूर्यरतो ग्रहपीडां व्यपोहत् ॥  
 नानारूपधरोऽव्यक्तः रविज्ञानरतिषु गः ।  
 नोत्पत्तिर्जायते तस्य नोदयः पण्डितैरपि ॥  
 एकमूलो हिमूलश्च त्रिशिखः पञ्चचूडकः ।  
 सहस्रशिखरूपश्च इन्द्रकेतुरिव स्थितः ॥  
 सूर्यपुत्रोऽग्निपुत्रश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मजः ।  
 अनेकशिखरः केतुः स ते रुजं व्यपोहत् ॥  
 एते ग्रहाः महात्मानः सूर्यार्चनपराः सदा ।  
 शान्ति कुर्वन्ति मे हृष्टाः सदा कालहितैषिणः ॥  
 पद्मासनः पद्मवर्णः पद्मपत्रदलेक्षणः ।  
 कमण्डलुधरः श्रीमान् देवगन्धर्वसेवितः ॥  
 चतुसुप्तो देवपतिः सूर्यार्चनपरः सदा ।  
 सुरथेष्टो महातेजाः सर्वलोकप्रजापतिः ॥  
 ब्रह्मगन्धेन दिव्येन ब्रह्माशान्तिं करोतु वै ।  
 निष्कालतत्त्वविज्ञो यः कालवित् कालतत्परः ॥  
 पीताम्बरधरो देव आत्रेयीवरदः सदा ।  
 शङ्खचक्रगदापाणिः श्यामवर्णश्चतुर्भुजः ॥  
 अग्निः साक्षात्कृतो येन वनेषु परयेव यः ।

यज्ञदेवी तन्मी देवी गान्धर्वा मधुसूदनः ॥  
 सूर्यभक्त्यान्वितो नित्यं विगतिर्विगतिप्रियः ।  
 सूर्यध्यानपरो नित्यं विष्णुः शान्तिं करोतु मे ॥  
 हे मकुन्देन्दुसङ्काशो गोशुत्याभरणाऽरिहा ।

गोशुतयः सर्पाः ।

चतुर्भुजो महातेजाः पुष्पेन्दुः शशिशंखरः ।  
 चतुर्मुखो भस्मधरः श्मशाननिलयः सदा ॥  
 माताणां नियतश्चैव तथ च क्रतुसूदनः ।  
 वरो वरेण्यो वरदो देवदेवो महेश्वरः ॥  
 त्रैलोक्यनमितः श्रीमानादित्याराधने रतः ।  
 आदित्यपरमो नित्यमादित्यध्यानतत्परः ॥  
 आदित्यदेहसम्भूतः स मे शान्तिं करोतु वै ।  
 पद्मरागनिभा देवो चतुर्वदनपङ्कजा ।  
 अक्षमालापितकरा कमण्डलुधरा शुभा ॥  
 ब्रह्माणो सौम्यवदना आदित्याराधने रता ।  
 शान्तिं करातु ते प्रीत्या आशीर्वाद्पद्मा खग ॥  
 महाश्वेतेति विख्याता आदित्यदर्शिता सदा ।  
 महाश्वेतेति सेत्वस्मिन् ख्यातिं लोकं गता खग ॥  
 हिमकुन्देन्दुसङ्काशो महावृषभवाहिनो ।  
 त्रिशूलहस्ताभरणा गोशुत्याभरणा सती ॥  
 चतुर्भुजा चतुर्वक्त्रा त्रिनेत्रा पापनाशिनो ।  
 वृषध्वजा यानरता रुद्राणो शान्तिदाऽस्तु मे ॥  
 मयूरवाहना देवी सिंहवाहणविग्रहा ।

गतिहस्ता महाकाया सर्वालङ्कारभूषिता ॥  
 सूर्यरक्ता महावीर्या वनवासपरा सदा ।  
 कौमारी वरदा देवी शान्तिं सातु करोतु ते ॥  
 कञ्जचक्रधरा श्यामा पीताम्बरधरा खग ।  
 चतुर्भुजा च या देवो चतुर्वदनपङ्कजा ॥  
 सूर्यार्चनरता नित्यं सूर्य्यैकगतमानमा ।  
 शान्तिं करोतु ते नित्यं सर्वसुरविमर्दनो ॥  
 ऐरावतगजारूढा पविहस्ता महाबला ।

पविर्वाञ्जं ।

सहस्रलोचनादेवी वर्णतयम्पकेक्षणा ॥  
 सिंहगन्धर्व्वनमिता सर्वाभरणभूषिता ।  
 इन्द्राणी ते सदा वीर शान्तिमाशु करोतु वै ॥  
 वराहरूपा विकटा वाराहवरवर्णिनी ।  
 श्यामावदाता या देवो शङ्खचक्रगदाधरा ।  
 तर्जयन्तीह निःशेषं पूजयन्ती सदा रविं ॥  
 वाराहो वरदा देवो तव शान्तिं करोतु वै ।  
 अर्द्धकेगीटकटामाघा निर्मासा स्नायुबन्धना ॥  
 करालवदना घोरा खड्गघण्टोद्यता सती ।  
 कपालमालिनी घोरा खट्वाङ्गवरधारिणी ॥  
 आरक्तपिङ्गनयना गजचर्मनावगुण्ठिता ।  
 गायदाभरणा देवी श्मशानविनिवासिनी ।  
 शिवा रूपेण घोरेण शिवाराधभवङ्करी ॥  
 चामुण्डा चण्डरूपेण सदा रक्षाङ्करोतु मे ।

चण्डमुण्डकरा देवी चण्डमुण्डगता सती ॥  
 आकाशमातरो देव्यस्तथा लोकस्य मातरः ।  
 भूतानां मातरः सर्वास्तथा च पितृमातरः ॥  
 इवशुद्धैस्तु, पूज्यन्ते तास्तु देव्यो मनोषिभिः ।  
 मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे इति मातृमुखास्तु ताः ॥  
 पितामही तु तन्माता इहा या च पितामही ।  
 इत्येतास्तु पितामह्यः शान्तिं ते पितृमातरः ॥  
 सर्वमातृमुखादेव्यः खाद्युधाः शस्त्रपाणयः ।  
 जगद्ग्राह्य प्रतिशक्यो बलिकामा महोदयाः ॥  
 शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यमादित्याराधने रताः ।  
 शान्तेन चेतसा शान्ता शान्ता स्वं भव शान्तिदा ॥  
 सर्वविषयवयुक्तेन गात्रेण तनुमभ्यमा ।  
 पीतश्यामादिसौम्येन चित्रलेखेव शोभिता ॥  
 ललाटतिलकोपेतचन्द्रलेखाश्च धारिणी ।  
 चित्राम्बरधरा देवी सर्वाभरणभूषिता ॥  
 वरा स्त्रीमयरूपाणां शुभा गुणमहास्पदं ।  
 सर्वमन्त्रे तु सन्नुष्टा उमा देवी वरप्रदा ॥  
 साक्षादागत्य रूपेण शान्तेनामिततेजसा ।  
 शान्तिं करोतु ते प्रीत्या म्पादित्यचरणे रता ॥  
 भवलाबालरूपेण षड्वक्त्रः शिबिवाहनः ।  
 पूर्णेश्वरदत्तः श्रीमान् चण्डिखः शक्तिमान् विभुः ॥  
 कृत्तिकापत्यरूपेण समुदीतः सुरार्चितः ।  
 कार्तिकेयो महातेजा आदित्याहरदर्पितः ॥

( १३३ )

शान्तिं करोतु सततं फलं सौख्यञ्च सम्पदः ।  
 आत्रेयीमबलां जन्म तथारोग्यं खगाधिपः ॥  
 श्वेतवस्तुपरीधानस्तार्क्ष्यश्च कनकप्रभुः ।  
 शूलहस्ती महाप्राज्ञो नन्दीशो रविभात्रितः ॥  
 शान्तिं करोतु ते शान्तो धर्म्यं मतिमनुत्तमां ।  
 धम्म तरतु भो नित्यमचलं संप्रयच्छतु ॥  
 महादरी महाकायो गजवक्त्रो महाबलः ।  
 नागयज्ञोपवीतेन नागाभरणभूषितः ॥  
 सर्वार्थसम्पदाधारो गणाध्यक्षा वरप्रदः ।  
 भीमगात्रो भवो देवो नायकोऽथ विनायकः ।  
 करोतु ते महाशान्तिं प्रीतिं प्रीतेन चेतसा ॥  
 पीताम्बरधरा कन्या नानालङ्कारभूषिता ।  
 यमुना स्ताम्बिका पुण्या सर्व्वलीकनमस्कृता ॥  
 सर्व्वसिद्धिकरा देवी प्रभादात्परमा परा ।  
 शान्तिं करोतु ते माता भुवनस्य खगाधिप ॥  
 त्रिगुणान्नेन सर्व्वेण महामहिषमर्द्दनौ ।  
 धनुः-शक्ति-प्रहरण-खड्ग-पट्टिशधारिणी ॥  
 आर्जवोद्यतकरा सर्व्वोपद्रवनाशिनी ।  
 शान्तिं करोतु ते सौरा दुर्गा भगवतौ शिवा ॥  
 निर्द्दाम्सेन शरारेण सायुरज्ज्निबन्धनः ।  
 अतिसूक्ष्मोऽतिव्यक्तो यः अक्षोभः खिरोटी महान् ॥  
 सूर्यात्मको महावीर्य्यः सूर्य्यं च कृतमानसः ।  
 सूर्य्यभक्तिपरो नित्यं स ते शान्तिं प्रयच्छतु ॥

प्रसङ्गगणसैन्योऽसौ महाकटाक्षधारकः ।  
 अक्षमालार्पितकरस्त्राक्षसङ्गेश्वरी वरः ॥  
 चण्डपापहरो नित्यं ब्रह्महत्यादिनाशनः ।  
 शान्तिं करोतु ते नित्यं आदित्याराधने रतः ।  
 करोतु च महायोगी कल्पान्तास्ताः परस्परम् ॥  
 आकाशे मातरो देव्यस्तथा लोकस्य मातरः ।  
 भूतानां मातरः सर्वास्तथा देवस्य मातरः ॥  
 सूर्यार्चनपरा देव्यो जगद्ग्राह्य व्यवस्थिताः ।  
 शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं मातरः सुरपूजिताः ॥  
 ये रौद्रा रौद्रकर्माणो रौद्रस्थाननिवासिनः ।  
 मातरो रौद्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ॥  
 विघ्नभृतास्तथा चान्ये दिवि दिक्षु समाश्रिताः ।  
 सिद्धिं कुर्वन्तु ते नित्यं भयेभ्यः पान्तु सर्वदा ॥  
 ऐन्द्र्यां दिशि गता ये तु वञ्चहस्ता महाबलाः ।  
 हिमकुन्देन्दुपट्टीशनीलऋष्टाङ्गलोहिताः ॥  
 दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च पातालतलवासिनः ।  
 सूर्यार्चनरता ऐन्द्राः शान्तिं कुर्वन्तु ते मदा ॥  
 आग्नेय्यां ये स्थिताः सर्वे श्रुतहस्तागुपङ्गिनः ।  
 सश्वभक्तास्तु रक्तास्तु तथा वै रक्तभृङ्गणाः ॥  
 दिव्यान्तरिक्षा भौमाश्च आग्नेया भास्करप्रियाः ।  
 आदित्याराधनपराः शं प्रयच्छन्तु ते मदा ॥  
 यास्यां दिशि गता ये तु सततं दण्डपाणयः ।  
 ऋणाङ्गाः ऋणनेपथ्याः वरा वै ऋणलोहिताः ॥



दिव्यान्तरिक्षा भीमाद्य यमस्यानुचराः खम ।  
 आदित्याराधनपराः शं प्रयच्छन्तु ते सदा ॥  
 नैर्ऋत्यां संस्क्रता ये तु राक्षसा सत्यपाणयः ।  
 नीलाङ्गा नीलवर्णाश्च तथा वै नीललोहिताः ॥  
 दिव्यान्तरिक्षा भीमाद्य बिरूपाक्षानुगामिनः ।  
 आदित्यस्यार्चने नित्यं कुर्वन्त्वारोग्यमुत्तमं ॥  
 अपरस्यां वरा ये तु सततं कर्मपाणयः ।  
 कर्माभाः कर्मरूपाश्च सदा क्षणिकवीक्षणाः ॥  
 दिव्यान्तरिक्षा भीमाद्य आदित्याराधने रताः ।  
 कुर्वन्तु ते सदा शान्तिं वारुणा वरुणानुगाः ॥  
 वायव्यां संस्थिता नित्यं महावेगाक्षराः खगाः ।  
 पीताक्षाः पीतनिर्भासास्तथा वै पीतलोहिताः ॥  
 दिव्यान्तरिक्षा भीमाद्य आदित्याराधने रताः ।  
 सूर्यव्रताः शुभनसः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
 उत्तरायां दिशि गताः सततं निधिपाणयः ।  
 गिरिकाक्षाः कस्तूरिकास्तथा वै कृष्णलोहिताः ॥  
 दिव्यान्तरिक्षा भीमाद्य अलकाधिपवङ्गभाः ।  
 आदित्याराधनपराः शं प्रयच्छन्तु ते सदा ॥  
 ऐशान्यां संस्क्रिता ये च प्रशान्ताः शूलपाणयः ।  
 भस्मोद्भूतितदेहाश्च नीलकण्ठलोहिताः ॥  
 दिव्यान्तरिक्षा भीमाद्य पातालतलवासिनः ।  
 सूर्यपूजापरा नित्यं शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
 लोकापालानुया ह्येते महाबलपराक्रमाः ।

आदित्यं पूजयित्वा तु बलिभेषां विनिश्चिपेत् ॥  
 ततः सुशान्तसनसो लोकपालसमन्विताः ।  
 आग्नेयीसखलाः सर्वं शं प्रयच्छन्तु पूजिताः ॥  
 अमरावती नाम पुरी पूर्वभागे व्यवस्थिता ।  
 विद्याधरगणाकीर्णा सिद्धगन्धर्वसेविता ।  
 रत्नप्रकाररुचिरा महारत्नोपशोभिता ॥  
 तत्र देवपतिः श्रीमान् वप्पपाणिर्महाबलः ।  
 गोपतिर्गोसहस्रेण शोभमानेन शोभते ॥  
 ऐरावतगजारूढी गैरिकाभो महाद्युतिः ।  
 इन्द्रः सहस्रनयनः आदित्याराधने रतः ॥  
 सूर्यध्यानैकपरमः सूर्यभक्तिसमन्वितः ।  
 सूर्यप्रणामपरमः शान्तिं ते शीघ्रमृच्छतु ॥  
 आग्नेये दिव्यभागे तु पुरी तेजवती सदा ।  
 नानादेवगणाकीर्णा नानारत्नोपशोभिता ॥  
 तत्र ज्वालासमाकीर्णा हीमाहारसमद्युतिः ।  
 पुरा गोदेहिनां देहे ज्वलनं पापनाशनं ॥  
 आदित्याराधनपरा आदित्यगतमानसाः ।  
 शान्तिं करोतु ते देवा षड् पापपरिहृषं ॥  
 वैवस्वती पुरी रम्या दक्षिणे च महात्मनः ।  
 सुरनाद्यगणाकीर्णा पिटरस्योगणाकुला ॥  
 तत्रेन्द्रनीलसङ्घायो रत्नान्तावतलोचनः ।  
 महामहिषमारूढी रत्नसम्पन्नभूषणः ॥  
 अन्तकोऽथ महातेजाः सौरवर्षपरायणः ।

आदित्याराधनपरः क्षेमरोग्यं ददातु मे ॥  
 नैर्ऋते तु दिशो भागे पुरी कृण्वेति विद्युत् ।  
 महारक्षीगणाकीर्णा पिशाचप्रेतसंकुला ॥  
 तत्र स्कन्दनिभो देवो रक्तस्त्रग्वस्त्रभूषणः ।  
 खड्गपाणिर्भ्रमातेजाः करालवदनोज्ज्वलः ॥  
 राक्षसेन्द्रो वसेन्नित्यं आदित्याराधने रतः ।  
 करोतु ते महाशान्तिं धनं धान्यञ्च यत्नतः ॥  
 पश्चिमे तु दिशां भागे पुरी शुद्धवती शुभा ।  
 ऋषिसिद्धगणाकीर्णा नानारत्नसुशोभिता ॥  
 तत्र कुन्देन्दुसंकाशो हरिः पिङ्गललोचनः ।  
 शक्तास्वरधरो देवो पाशहस्तो महाबलः ॥  
 वरुणः परया भक्त्या आदित्यगतमानसः ।  
 रोगकाशादिसंकाशं तापं निर्व्वीपयत्वथ ॥  
 वायव्ये दिग्दिशि भागे तु पुरी गन्धवती शुभा ।  
 ऋषिसिद्धगणाकीर्णा हेमप्राकारतोरणा ॥  
 तत्र हीश्वरदेहस्तु कृष्णः पिङ्गललोचनः ।  
 पृथिव्याः प्रान्तसन्तानो ध्वजयष्टायुधोच्छ्रितः ॥  
 चरमः परमो देवो ग्रहेणैव परात्परः ।  
 क्षेमरोग्यं बलं शान्तिं करोतु सततं तव ॥  
 महोदया नाम पुरी मन्दिरेण महोदया ।  
 नानायत्तसमाकीर्णा नानारत्नीपशोभिता ॥  
 तत्र देवो गदाहस्तश्चित्रस्त्रग्वस्त्रभूषणः ।  
 हस्त्राद्युर्महातेजा हरिः पिङ्गललोचनः ॥

शान्तिं करोतु ते प्रीतः शान्तः शान्तेन चेतसा ।  
 यशोवतौ पुरौ रम्या ऐशानीं दिग्माश्रिता ॥  
 नानागणसमाकीर्णा नानाकृतसुरालया ।  
 तेजःप्राकारपर्यन्ता अनोपम्या महोज्ज्वला ॥  
 तत्र कुन्देन्दुसंकाशो अङ्गरागविभूषितः ।  
 त्रिनेत्रः शान्तरूपात्मा अक्षमालाधरो वरः ।  
 ईशानः परमो देवः सदा ते शान्तिं यच्छतु ॥  
 उमापतिर्महति जायन्मूर्च्छितशेखरः ।  
 भूर्लोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं निवसन्ति ये ।  
 देवी देवीसमाकीर्णा शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
 महर्लोकं जनलोकं तपोलोकं च ये स्थिताः ।  
 ते सर्व्वं मुदिता देवाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
 सत्यलोके तु ये देहास्त्वथ भोज्ज्वलविपदाः ।  
 सूर्यभक्ताः सुमनसो भयं निर्नाशयन्तु ते ॥  
 गिरिकन्दरदुर्गेषु वनेषु निवसन्ति ये ।  
 सूर्यार्चनपरा देवा रक्षां कुर्वन्तु ते सदा ॥  
 शरच्चन्द्रातिगौरेण देहेनामलतेजसा ।  
 सरस्वती सूर्यभक्ता शान्तिं यच्छतु ते सदा ॥  
 या तु चामीकरछाया सरोजकरपद्मवा ।  
 सूर्यभक्ता श्रिया देवी शान्तिं यच्छतु ते सदा ॥  
 हारेण सुविचित्रेण भास्वत्कनकमेखला ।  
 अपराजिता सूर्यपरा करोतु विजयं तव ॥  
 कान्तिका परमा देवी रोहिणी च वरानना ।

त्र्योमन्मृगशिरो भद्रमार्द्रा च परमोज्ज्वला ॥  
 पुनर्वसुस्तथा पुष्याः अश्लेषा च तथा खग ।  
 सूर्यार्चनरता नित्यं सूर्यभावेन भाविताः ।  
 पूर्वभागे स्थिता ज्येष्ठाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ।  
 नक्षत्रमातरो ज्येष्ठाः कुर्वन्तु रविनोदिताः ॥  
 अश्लेषा ततो ज्येष्ठा मूलं सूर्यपरं तथा ।  
 पूर्वाषाढा महावीर्या अषाढा चोत्तरा तथा ॥  
 अभिजिन्नाम नक्षत्रं अवश्यं बहुश्रुतं ।  
 एताः पश्चिमतो दीप्ता राजन्ते चानुभूतं च ॥  
 भास्करं पूजयन्त्येताः सर्वकाशं सुभाविताः ।  
 शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिश्च महाधिकां ॥  
 अग्निष्ठा शतभिषा वा तु पूर्वभाद्रपदा तथा ।  
 उत्तराभाद्रपदेवत्यावश्विनी च महामते ।  
 भरणी च महादेवी नित्यमुत्तरतःस्थिता ॥  
 सूर्यार्चनरता नित्यमादित्यगतमानसाः ।  
 शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं विभूतिश्च महार्थकां ॥  
 वृषो वृषाधिपः सिंहराशिर्दीप्तिमतां वरः ।  
 पूर्वेषु भासयन्त्येते सूर्ययोगपराः शुभाः ।  
 शान्तिं कुर्वन्तु ते भक्त्या सूर्यपादाब्जपूजकाः ॥  
 धनुः कन्या च परमा मकारस्यापि ऋषिमान् ।  
 एते दक्षिणभागे तु पूजयन्ति रविं सदा ॥  
 तुला-मिथुनकुम्भाश्च पश्चिमेन व्यवस्थिताः ।  
 सूर्यपादार्चनरताः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥

कर्कटो वृश्चिको मीन एते उत्तरतः स्थिताः ।  
 यजन्येते महाकालमादित्यं ग्रहनायकं ।  
 शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं स्वस्वीकृतज्ञानतत्पराः ॥  
 यतयः कृतपुण्याश्च ये स्मृताः सततं बुधैः ।  
 ऋषयः सप्तविंशत्याः प्रयान्ताः परमोज्ज्वलाः ।  
 सूर्यप्रसादसम्पन्नाः शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
 कश्यपो गालवो गार्ग्यो विश्वामित्रो महामुनिः ।  
 मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च मार्त्तण्डः पुलहः क्रतुः ॥  
 नारदो भृगुरात्रेयो भरहाजोऽङ्गिरा मुनिः ।  
 वाल्मीकः कौशिकः कण्वः गालव्योऽथ पुनर्वसुः ॥  
 गालङ्गायन इत्येते ऋषयो वै त्र्यम्बकाधिप ।  
 सूर्यध्यानेकपरमा आदित्याराधने रताः ॥  
 तारकोऽग्निमुखो दैत्यः कालनेमिर्भ्रहाबलः ।  
 एते दैत्या महात्मानः सूर्यभावेन भाविताः ॥  
 पुष्टिं बलं तथारोग्यं प्रयच्छन्तु सुरारयः ।  
 वैरोचनो हिरण्यक्षः सुपर्वा वसुलोचनः ॥  
 मधुकुन्दी मुकुन्दश्च दैत्यो रैवतकस्तथा ।  
 भावेन परमेणापि वक्रान्तायतलोचनः ।  
 महाभोगकृताटोपः शङ्कान्तकृतलक्षणः ॥  
 अनन्तो नागराजेन्द्र आदित्याराधने रतः ।  
 महापापचयं हत्वा शान्तिमाद्यु करोतु ते ॥  
 अतिश्वेतशरीरेण स्फुरन्मोक्तिकसन्निभः ।  
 नित्यं राजत्रियया युक्तो वासुकिः शान्तिमृच्छतु ॥

अतिपीतेन वस्त्रेण विस्फुरन् भोगसम्पदा ।  
 तेजसा चापि दिव्येन कृतस्वस्तिकलाञ्छनः ॥  
 नागराट् तक्षकः श्रीमान् नायकौघसमन्वितः ।  
 करोतु ते महाशान्तिं सर्वदोषविषापहः ॥  
 अतिकृष्णेन वर्णन जटाविकटमस्तकः ।  
 कण्ठे रेखात्रयोपितो घोरदंष्ट्रायुधीद्यतः ॥  
 कर्कोटको महाभागो विषदर्पोदलान्वितः ।  
 विवसन् सर्वमन्तापं हत्वा शान्तिं करोतु ते ॥  
 पद्मवर्णेन देहेन चारुपद्मायतेक्षणः ।  
 पञ्चविन्दुकताभासो ग्रीवायां शुभलक्षणः ॥  
 व्योमपद्मो महाभागः सूर्यपादार्चने रतः ।  
 करोतु ते महाशान्तिं महापापभयापहं ॥  
 पुण्डरीकनिभेनापि देहेनामिततेजसा ।  
 शङ्खशूलाङ्गरचितैर्भूर्पितो मूर्ध्नि सर्वदा ॥  
 महापद्मो महानागो नित्यं भास्करपूजकः ।  
 स ते शान्तिं श्रियं जन्म निर्मलं संप्रयच्छतु ॥  
 श्यामेन देहभारेण श्रीमान् कमललोचनः ।  
 विषदर्पवलीन्रत्तो ग्रीवायां रेखयान्वितः ॥  
 शङ्खपालः श्रिया युक्तः सूर्यपादकपूजकः ।  
 महाविषहरो हृष्टः स च शान्तिं करोतु ते ॥  
 अतिदेहेन गौरेण चन्द्रार्द्धकृतमस्तकः ।  
 दीप्ताभोगकृताटोपः शुभलक्षणलक्षितः ॥  
 कुलिशो नाम नागेन्द्री नित्यं सूरपरायणः ।

अपहृत्य विषं घोरं करोतु तव शान्तिकं ॥  
 अन्तरिक्षे च ये नागा ये नागाः स्वर्गसंस्थिताः ।  
 पाताले ये स्थिता नागाः सर्वेष्वत्र समाश्रिताः ।  
 सूर्यपादार्चनरताः शान्तिं कुर्वन्तु ते मदा ॥  
 नागिन्यो नागकन्याश्च तथा नागकुमारकाः ।  
 सूर्यभक्ताः सुमनसः शान्तिं कुर्वन्तु ते मदा ॥  
 य इमं नागसंस्थानं कीर्त्तयेच्छृणुयात्तथा ।  
 न तस्य सर्पा हिंसन्ति न विषं क्रमते मदा ॥  
 गङ्गा पुण्या महादेवो यमुना नर्मदा नदी ॥  
 गोमती चापि शोना च वरुणा देविका तथा ।  
 सर्वग्रहपतिं देवं देवेशं लोकनायकं ॥  
 पूजयन्ति मदा नद्यः सूर्यवद्भावभाविताः ।  
 शान्तिं कुर्वन्तु ते नित्यं सूर्यध्यानेकमानसाः ॥  
 नैरञ्जना नाम नदी शोनायापि महानदः ।  
 मन्दाकिनी च परमा तथा सत्यान्विता शुभा ॥  
 एताश्चान्याश्च वङ्गो वै भुवि दिव्यन्दरोत्तमाः ।  
 सूर्यार्चनपरा नद्यः कुर्वन्तु तव शान्तिकं ॥  
 महावैश्रवणो देवो यत्त राजो महाबलः ।  
 यत्तकोटिपरो वारो यत्तमन्त्रेपसंगुतः ॥  
 महाविभवसम्पन्नः सूर्यपादार्चने रतः ।  
 सूर्यध्यानेऋपरमः सूर्यभावेन भाविता ।  
 शान्तिं करोतु ते प्रीतः पद्मपत्रायतेक्षणः ॥  
 मणिभद्रो महायज्ञो मणिरत्नविभूषितः ।



सुमाद्रिः । [व्रतखण्डं ३२ अध्यायः ।

मनोहरेण हारेण कम्बुलम्बेन राजते ॥  
यच्चिणीयञ्चकन्याभिः परिवारितविग्रहः ।  
सूर्यार्चनसमायुक्तः करोतु तव शान्तिकं ॥  
सुवीरो नाम यच्चेन्द्रो मणिकुण्डलभूषितः ।  
ललाटे हेमपट्टेन प्रह्वेन विराजते ॥  
वापिको नाम यच्चेन्द्रः कण्ठाभरणभूषितः ।  
मुकुटेन विचित्रेण बहुरत्नान्वितेन च ॥  
यच्चन्द्रसमाकीर्णो यच्चकोटिसमन्वितः ।  
सूर्यार्चनपरः श्रीमान् करोतु तव शान्तिकं ॥  
धृतराष्ट्रो महाराजा नागयक्षाधिपः खग ।  
दिव्यपट्टोऽगुरुच्छदो मणिकाञ्चनभूषितः ॥  
सूर्यभक्तः सूर्यरतः सूर्यपूजापरायणः ।  
सूर्यप्रसादसम्पन्नः करोतु तव शान्तिकं ॥  
पूर्णभद्रो महायज्ञः सर्वालङ्कारभूषितः ।  
ललाटे हेमपट्टेन प्रह्वेन विराजते ॥  
बहुयज्ञसमाकीर्णो यच्चकोटिशतेन च ।  
सूर्यप्रणामपरमः सूर्यभक्त्या समन्वितः ।  
सूर्यार्चनसमायुक्तः करोतु तव शान्तिकं ॥  
विरूपाक्षाख्ययच्चेन्द्रो श्वेतवासा महाद्युतिः ।  
नानाकाञ्चनमालाभिरुपशोभितकाञ्चनः ॥  
सूर्यपूजापरो नित्यं कञ्चाद्यः कञ्चसन्निभः ।  
तेजसादित्यसङ्काशः करोतु तव शान्तिकं ॥  
अन्तरिक्षगता यज्ञाः ये यज्ञा सूर्यवासिनः ।

गिरिदुर्गेषु ये यक्षाः पातालतलवामिनः ।  
 नानारूपधरा यक्षा सूर्यभक्ता दृढव्रताः ॥  
 ये तद्भक्तास्तन्नसः सूर्यपूजाममृतसुकाः ।  
 शान्तिं कुर्वन्तु ते ऋषाः शान्ताः शान्तिपरायणाः ॥  
 यच्चिस्थो विविधाकारास्तथा यत्तकुमारकाः ।  
 यत्तकन्या महाभागा सूर्यस्यार्चनतत्पराः ॥  
 शान्तिं स्वस्वयन क्षेम बलं कन्याणमुत्तमं ।  
 मिद्धिमागु प्रयच्छन्तु नित्याच्च सुममाहिताः ॥  
 अर्चिताः सर्वतः सर्वे यक्षाश्चैव महाधिपाः ।  
 सूर्यभक्ता सदाकालं शान्तिं कुर्वन्तु ते पराम् ॥  
 सागराः सर्वतः सर्वे ग्रहरत्नानि सर्वगः ।  
 सूर्यस्याराधनपराः कुर्वन्तु तव शान्तिकं ॥  
 राजसाः सर्वतश्चैव धाररूपा महाबलाः ।  
 स्थूलाश्च राजसा ये तु अन्तरिक्षचरा ये ॥  
 पाताले राजसा ये तु नित्यं सूर्यार्चने रताः ।  
 प्रेतानामधिपाः सर्वे प्रेताश्च सर्वे तांशुखाः ।  
 अतिदीप्ताश्च ये प्रेता ये प्रेता रुधिरागनाः ॥  
 अन्तरिक्षचराः प्रेतास्तथाऽन्ये स्वर्गवामिनः ।  
 पाताले भूतले वापि ये प्रेताः कामचारिणः ॥  
 एकचक्रो रथो यस्य यस्तु देवो वृषध्वजः ।  
 तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
 ये पिशाचा महावीर्या ऋद्धिमन्तो महाबलाः ।  
 नानारूपधराः सर्वे नाना च गुणवत्तराः ॥

अन्तरिक्षे पिशाचा ये स्वर्गे ये च महाबलाः ।  
 पाताले भूतले ये च बहुरूपा मनोजवाः ॥  
 यस्याहं सारथिर्वीरि यस्य त्वं तुरगः सदा ।  
 तेजसा तस्य देवस्य शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
 अपम्मारग्रहाः सर्वे सर्वे वापि ज्वरग्रहाः ।  
 गर्भवालग्रहा ये च दन्तरोग्रहाश्च ये ।  
 अन्तरिक्षग्रहा ये च शान्तिं कुर्वन्तु ते सदा ॥  
 इति देवादयः सर्वे सूर्यज्ञानविधायिनः ।  
 कुर्वन्तु जगतः शान्तिं सूर्यभक्त्यैव सर्वदा ॥  
 जयः सूर्याय देवाय तमोमोहविरोधिने ।  
 जगतामिकसूर्याय भास्कराय नमोऽस्तु ते ॥  
 ग्रहोत्तमाय शान्ताय जयः कल्याणकारिणे ।  
 जयः पद्मविकाशाय बुद्धरूपाय ते नमः ॥  
 जयो दीप्तिविधानाय जयः कान्तिविधायिने ।  
 तमोघ्नाय अजेयाय अजिताय नमो नमः ॥  
 जयो वाजेयदीप्तेश सहस्रकिरणोज्वल ।  
 रयनिर्जितलोकाय बहुरूपाय ते नमः ॥  
 गायत्रीवेदरूपाय सावित्रीदयिताय च ।  
 धराधराय सूर्याय मार्त्तण्डाय नमो नमः ॥

सुमन्तुरूवाच ।

—०००००००—

एवं हि विहिता शान्तिररुणेन महीपते ।  
 श्रेयसे वैनतेन्द्राय गरुडाय महात्मने ॥

एवमन्येऽपि राजेन्द्र मानवाणाञ्च रोगिणः ।  
 अग्निन् कृतेऽग्निकार्यं तु नीकजास्ते भवन्ति हि ॥  
 तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यो अग्निकार्यो विधानतः ।  
 करणीयन्तु राजेन्द्र यदिदं गान्धिलक्षणं ॥  
 ग्रहोत्पातेषु दुर्भिक्षे उत्पातेषु च क्लृप्तगः ।  
 प्रवर्षमाने पृथगे लक्ष्मीमममन्वित ॥  
 त्रिपत्वा येऽग्निमुक्कन्तु ध्यात्वा रवि प्रयत्नतः ।  
 एव कृते भुवन्देवो वर्षते कामतो नृणां ॥  
 इत्येवं गान्तिकाध्याय यः पठेत्पुण्यार्दाप ।  
 तिहाय सर्वलोकांस्तु सृष्ट्यलोके महायते ॥  
 कन्यार्थी लभते कन्यां जयकामो जयं लभेत् ।  
 अर्थकामो लभेदर्थं पत्रकामः सर्वं लभेत् ॥  
 यं यं प्रार्थयते कामं शृणुते मानसो वृष ।  
 तं सर्वं गौघ्नमाप्नोति भास्करस्य प्रिया मयत ॥  
 श्रुत्वा गान्धिमिमां पण्ड्यां समयां कुरुनन्दन ।  
 संशामं प्रविशेद्यस्तु ध्यायमानो दिवाकरः ।  
 सर्वान् जित्वा रणे शत्रून् आनन्दपरमो भवेत् ॥  
 अक्षयं मोदते कालं अतिरक्ततगामनः ।  
 व्याधिभिर्नाभिभूयते पुत्रपौत्रप्रतिष्ठितः ॥  
 भवेदादिव्यमदृग्गन्धेजसा प्रभया तथा ॥  
 यमुद्दिश्य पठेद्द्वार वाचकी मानवं प्रति ।  
 न पीडयते त्वमो दीपेर्वातकम्पकफात्कौः ॥  
 नाकाले मरणं तस्य सर्वपापेन दुष्यते ।

न विषं क्रमते देहे न जडो मान्धमूकता ।  
 न चीत्यातभयं तस्य नचैवाऽरिभयं भवेत् ॥  
 ये रोगा ये महीत्याता ये ग्रहा यन्महाविषं ।  
 ते सर्वे प्रगमं यान्ति श्रवणादस्य भारत ॥  
 यत्पुण्यं सर्वतीर्थानां गङ्गादिषु निषेवितः ।  
 तत्पुण्यं कीटिगुणितं प्राप्नोति श्रवणादिभिः ॥  
 दशानां राजसूयानां अन्येषाञ्च विशेषतः ।  
 जोविहर्षशतं साग्रं सर्वबाधाविर्वाजितः ॥  
 गीघ्नथैव कृतघ्नश्च ब्रह्महा गुरुतल्पगः ।  
 शरणागतहन्ता च ये च विश्वासघातकाः ॥  
 दुष्टपापसमाचारः पिच्छहा माच्छहा तथा ।  
 श्रवणाच्चैव पाठेन मुच्यते सर्वपातकैः ॥  
 इतिहासमिदं पुण्यं अग्निकार्यमनुत्तमं ।  
 सूर्यभक्ते सदा देयं सूर्य्येण कथितं पुरा ॥  
 अरुणस्य महाताहो अरुणेनानुजस्य तु ।  
 अनुजेन पुरा प्रोक्तं भोजकानां महात्मनां ॥  
 सूर्य्यशर्ममुखानान्तु शाकदीपे महीपते ।  
 तेनापि कथितं मह्यं सर्वपापभयापहं ॥

इति भविष्यपुराणोक्ता महाशान्तिः ।

—००—

अथाद्भुतशान्तयः । तत्र मत्स्यपुराणे ।

मनुरुवाच ।

दिव्यन्तरिक्षे भीमेषु या शान्तिरभिधोयते ।

तामहं श्रोतुमिच्छामि महीत्यातेषु केगव ॥

मत्स्य उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि त्रिविधेष्वद्भुतेषु च ।

विशेषेण तु भीमेषु शान्तिं कुर्यान्नराधिप ॥

अभया चान्तरिक्षेषु भीमा दिव्येषु पार्थिव ।

विजिगीषुपराद्राजन् भूतिकामघ यो भवेत् ॥

विजिगीषुपरेणैव अभियुक्तस्तथा परैः ।

तथाभिचारशङ्कायां शत्रूणामपि नाशने ।

भये महति संप्राप्ते अभया शान्तिरिष्यते ॥

भूतेषु दृश्यमानेषु रौद्री शान्तिस्तथेष्यते ।

वेदनाशं समुत्पन्ने जने जाते च नास्तिके ।

अपूज्यपूजने जाते ब्राह्मी शान्तिस्तथेष्यते ॥

भविष्यत्यभियोगे च परचक्रभयेऽपि च ।

राष्ट्रभेदे च संप्राप्ते रौद्री शान्तिः प्रगस्यते ॥

त्राहातिरिक्ते पवने कले सर्वदिगुत्थिते ।

वैकृते वातजे व्याधौ वायवी शान्तिरिष्यते ॥

अनाष्टिभये जाते तथा विकृतवर्षणे ।

जलाशयविकारे च वारुणो शान्तिरिष्यते ॥

अभिशापभये प्राप्ते भार्गवी च तथाहिज ।

जाते प्रसववैकृत्ये प्राजापत्या मङ्गाभुज ।

उपस्कराणां वैकृत्ये त्वाद्दी पार्थिवनन्दन ॥

बालानां शान्तिकामस्य कोमारी च तथा कृप ।

आग्नेयीं कारयेच्छान्तिं संप्राप्ते वज्रिवैकृते ॥

( ११५ )

आन्नाभङ्गे तथा जाते जायाभृत्यादिसंचये ।  
 अश्वानां शान्तिकामस्य तदिकारे समुत्थिते ।  
 अश्वानां काममानस्य गान्धर्वी शान्तिरिष्यते ॥  
 गजानां शान्तिकामस्य तदिकारे समुत्थिते ।  
 गजानां काममानस्य शान्तिराङ्गिरसी भवेत् ॥  
 पिशाचादिभये जाते शान्तिस्तु, नैऋती स्मृता ।  
 अपमृत्युभये जाते दुःस्वप्नेऽपि महाभुज ॥  
 काम्यान्तु कारयेच्छान्तिं संप्राप्ते मकरे तथा ।  
 धननाशे समुत्पन्ने कौबिरो शान्तिरिष्यते ॥  
 वृक्षाणाञ्च तथार्थानां वैकृत्ये समुपस्थिते ।  
 भूमिकामस्तथा शान्तिं पार्थिवीञ्च प्रयोजयेत् ॥  
 प्रथमे दिनयामे च रात्रौ वा मनुजोत्तम ।  
 हस्ते स्वात्याञ्च चित्रायामादित्ये वाश्विने तथा ॥  
 आर्यस्त्रे सोमजातेषु वायव्येष्वङ्गतेषु च ।  
 द्वितीये दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन ॥  
 पुष्याग्नेयविशाखायां पितृजभरणीषु च ।  
 उत्पाता ये तथा भाग्ये आग्नेयीं तेषु कारयेत् ॥  
 तृतीये दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन ।  
 रोहिण्यां वैष्णवे ब्राह्मे वासवे विश्वदैवते ॥  
 ज्येष्ठायञ्च तथा मैत्रे ये भवन्त्यङ्गताः क्वचित् ।  
 ऐन्द्री भेषु प्रयोक्तव्या महाशान्तिः कुलोद्दह ॥  
 चतुर्थे दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन ।  
 सार्ष्णिपौष्णे तथाद्रायामहिव्रधे च दारुणे ॥

मूले वरुणदैवत्वे ये भवन्त्यद्भुतास्तथा ।  
 वारुणी तेषु कर्त्तव्या महाशान्तिर्महोचिता ॥  
 भिन्नमण्डलवेलासु ये भवन्त्यद्भुताः क्षचित् ।  
 शान्तिः शान्तिहयं कार्यं निमित्ते सति नाम्यथा ।  
 निर्निमित्तकृता शान्तिर्निमित्तमुपजायते ॥

बाणप्रहारा न भवन्ति यद्-  
 द्राजन्तृणां सन्धोहनेर्युतानां ।  
 दैवीपञ्चाता न भवन्ति तद्-  
 हर्मात्मनां शान्तिपरायणानां ॥

मनुस्वाच ।

अद्भुतानां फलं देव शमनञ्च तथा वद ।  
 त्वं हि वेत्सि विशालान्त ज्ञेयं सर्वमशेषतः ॥

मत्स्य उवाच ।

अत्र ते वर्णयिष्यामि यद्दुवाच महातपाः ।  
 अत्र मे हृद्गर्भस्तु सर्वधर्मक्षताम्बर ॥  
 सरस्तत्यां सन्नासौर्नं गार्भं पार्थिवमन्दन ।  
 पप्रच्छेति महातेजा गर्भो मुनिवरप्रियः ॥

अत्रिरुवाच ।

पश्यतां पूर्वरूपाणि जनानां कथयस्व मे ।  
 मगराणां तथा राज्ञां त्वं हि सर्वविदुष्यते ॥

गर्भ उवाच ।

पुरुषापचारनियमाद्पराञ्छान्ति देवताः ।  
 ततोपराधाद्देवानामुपसर्गः प्रवर्त्तते ॥



दिव्यान्तरिक्षं भौमञ्च त्रिविधं परिकीर्तितं ।  
 ग्रहर्षवैकृतं दिव्यमात्सरिचं निबोध मे ॥  
 सत्कापाती दिशान्दाहः परिवेशस्तथैव च ।  
 गन्धर्वनगरञ्चैव वृष्टिश्च विकृता च या ।  
 एवमादीनि लोकेऽस्मिन् आकाशानि विनिर्द्दिशेत् ॥  
 चरस्थिरभवं भौमं भूकम्पमपि भूमिजं ।  
 जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्तितं ॥  
 भौमञ्चाल्पफलं ज्ञेयं चिरेण परिपच्यते ।  
 अमयं मध्यफलदं मध्यकालफलं द्रुतं ॥  
 अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः शिवा भवेत् ।  
 समाहाभ्यन्तरे ज्ञेयमशुभं निष्फलं भवेत् ॥  
 अद्भुतस्य विपाकस्य द्विना शान्त्या न दृश्यते ।  
 त्रिभिर्वर्षैस्तु तद्भयं सुमहद्भयकारकं ॥  
 राक्षः शरीरे लोके च पुरे दारे पुरोहिते ।  
 पाकमायाति पुत्रेषु तथा वै कोशवाहने ॥  
 ऋतुस्वभावाद्राजेन्द्र भवन्त्यद्भुतसंज्ञिताः ।  
 शुभावहाश्च विज्ञेयास्तांस्त्वं मे वदतः शृणु ॥  
 वज्रा-शनि-महोक्तम्प-सन्धानिर्घात-मिःस्वनाः ।  
 परिवेष्टरजोधूम-रक्षाकांस्तमनोदयाः ॥  
 द्रुमेभ्योऽथ रसज्ञेही बहुशस्त्रफलोद्भवाः(१) ।  
 गोपक्षिमद्वृष्टिश्च शुभानि(२) मधुमाधवे ॥

(१) मधुपुष्पकलोद्भवा इति कश्चित् पाठः ।

(२) विशाच इति पुस्तकालये पाठः ।

तारोक्तापातकलुषं कपिलार्कन्दमण्डलं ।  
 अग्निज्वलनं स्फोटं धूमदिव्यानिलाहतं(१) ॥  
 रक्तपद्मरुणा सन्ध्या नभः स्रग्धर्णवीपमं ।  
 सरिताश्चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा शोषे शुभं वदेत् ॥  
 शक्रायुधपरिवेशी विद्युच्छुष्कविरोहणं ।  
 कम्पोदत्तनवैकृत्यं रमनं दरणं क्षितिः ॥  
 नद्युदपानसरसां तृष्टृर्ष्याभरणप्लवाः ।  
 शीर्षाणि वारिरोधानां वर्षासु शुभदानि च(२) ॥  
 दिव्यस्त्रीरूपगन्धर्वविमानाद्गतदर्शनं(३) ।  
 ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं वागमानुषो(४) ॥  
 गीतवादित्रनिर्वीषो वनपर्वतसानुषु ।  
 शस्यतृहीरसोत्पत्तिः शरत्काले शुभाः स्मृताः(५) ॥  
 शीतानिलतुषारत्वं नन्दनं मृगपक्षिणां ।  
 रक्षोयक्षादिषत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी ॥  
 दिशो धूमाश्वकाराद्युः शलभा वनपर्वताः ।  
 उच्चैः सूर्योदयास्तत्वं हेमस्ते शोभनाः स्मृताः ॥  
 द्विमपातानिलोत्पातविरूपाद्गतदर्शनं ।  
 दृष्ट्वाञ्जनाभमाकाशस्तारोक्तापातपिच्छरं ॥

- 
- (१) धूमरेचुजिराकुलमिति वा पाठ ।  
 (२) पतनवादित्रेद्यानां वर्षासु च अथावधमिति वा पाठ ।  
 (३) दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्व विमानाद्गतदर्शनमिति पाठान्तर ।  
 (४) दर्शनम् दिवाश्वरे इति क्वचित् पाठ ।  
 (५) अथापाः अरदि स्मृता इति वा पाठ ।

चित्रागर्भोद्भवास्त्रोषु गोजाम्बसृगपक्षिणां ।  
 पद्माङ्कुरसतानाश्च विकाराः शिशिरे शुभाः ॥  
 ऋतुस्वभावेन विनाङ्कुरस्य  
 जातस्य दृष्टस्य तु शीघ्रमेतत् ।  
 कृतागमा ग्रान्तिरनन्तरन्तु  
 कार्या यद्योक्ता वसुधाधिपेन ॥

इत्यङ्कुरशान्ती चोत्पातिक' ।

—०००—

गर्ग उवाच ।

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च ।  
 आरटन्ति च रोदन्ति प्रतिष्ठन्ति हसन्ति च ॥  
 उत्पत्तिञ्च निषीदन्ति प्रधावन्ति वसन्ति च ।  
 भूञ्जतो विचित्रपन्ते वा शाकप्रहरणध्वजान् ॥  
 अवाङ्मखा वा तिष्ठन्ति स्थानात् स्थानं भ्रमन्ति च ।  
 वमत्यग्निं तथाधूमं स्नेहरक्ते तथा वसां ।  
 एवमादीनि दृश्यन्ते विकाराः सहस्रोत्थिताः ॥  
 श्लिङ्गायतनक्षेत्रेषु तत्र वासं न रोचयेत् ।  
 राज्ञी वा शमनं तत्र स वा देशोऽविनश्यति ॥  
 देवयात्रासु चोत्पातान् दृष्ट्वा देशभयं वदेत् ।  
 पितामहस्वधर्मेषु तत्र वासं न रोचयेत् ॥  
 वसूनां वसुजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजं ।

ज्ञेयं सेनापतीनाञ्च यस्मात् स्कन्दशिरःखण्डजं ॥  
 लोकानां विष्णुवार्धयुद्धं विश्वकर्म्मसमुद्भवं ।  
 विनायकोद्भव ज्ञेयं गणानाञ्चैव नायक ॥  
 देवदेव नृपश्रेष्ठ देवस्त्रीषु नृपस्त्रियः ।  
 वास्तु देवेषु विज्ञेयं गृहाणामिव नान्यथा ॥  
 देवतार्चाविकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः ।  
 देवतार्चान्तु गत्वा वै तांस्तामाच्छाद्य भूषयेत् ॥  
 पूजयेत्तां महामाग गन्धमाल्यान्नमम्पदा ।  
 मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरं ॥  
 तस्मिन्प्रार्थनमात्रेण स्थालीपाकं यथाविधि ।  
 पुरोधो जुहुयादङ्गो समरात्रमतन्द्रितः ॥  
 विप्राय पूज्या मधुरान्नपानैः  
 सदर्शिनैः समदिनं दिजेन्द्र ।  
 प्राप्तिःश्रेष्ठे च क्षितिगोप्रदानैः  
 सकाञ्चनैः शान्तिभूपैति पापं ॥  
 इत्यङ्गुतशान्ती अर्चविक्रतांपशमर्नं ।

गर्ग उवाच ।

अग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे भृशमतिस्वरः ।  
 न दीप्यते त्वेभ्यनवान् स राष्ट्रः पीडयते नृप  
 प्रज्वलेद्द्रुमं यत्र तथार्द्रम्बा कयञ्चन ।  
 प्रासादतीरणहारं नृपवेश्मसुगलयं ।

एतानि यत्र दहन्ते तत्र राजभयं भवेत् ॥  
 विद्युता वा प्रदहन्ते तत्रापि नृपतेर्भयं ।  
 अनेगानि तमांसि स्युः विशालमुपपद्यते ।  
 धूमशानग्निजो यत्र तत्र विद्यान्महद्भयं ॥  
 तद्दिहिनान्ने गगने भयंस्याद्दृष्टिवर्जिते ।  
 दिवा सतारे गगने तद्यत्र भयमादिशेत् ॥  
 विकारसायुधानां स्यात्तत्र संग्राममादिशेत् ।  
 त्रिरात्रोपोषितस्तत्र पुरीधाः सुसमाहितः ।  
 समिद्धिः क्षीरवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च ॥

दद्यात्सुवर्णञ्च तथा हिजेभ्यो  
 गाक्षैव वस्ताणि तथा भुवञ्च ।  
 एवं कृते पापमुपैति नाशं  
 यद्ग्निवैकृत्यभय हिजेन्द्र ॥

इत्यङ्गुतशान्तौ अग्निवैकृत्यं ।

— ००० —

गर्ग उवाच ।

पुरेषु येप दृश्यन्ते पादपा दैवचीदिताः ।  
 वदन्ती वा हसन्ती वा स्रवन्ती वा रसं बहु ॥  
 प्ररोहा वा विना बाधं ग्राखा मुधुन्त्यसंक्रमं ।  
 फलं पृथ्यन्तथाकालं दर्शयन्ति त्रहायनाः ॥  
 पृष्ठावस्थान्दर्शयन्ति फलं पृथ्यं तद्यत्रभवं ।  
 क्षीरं स्नेहं सुरां रक्तं मधु तीर्थं स्रवन्ति वा ॥

पुष्यन्यरीगाः सहसा शुष्कं रोहन्ति वा पुनः ।  
 उन्निद्रन्तीह पतिताः पतन्ति च तद्योतिथताः ॥  
 तत्र वक्ष्यामि ते ब्रह्मन् विपाकफलमेव च ।  
 रोदने व्याधिमभ्येति हसने देवविभ्रमं ॥  
 शाखाप्रपातने कुर्यात् संयामे गोहृपातनं ।  
 बालानां मरणं कुर्यात् बालानां फलपुष्यतः ॥  
 क्षराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्यमनन्तरं ।  
 जयं सर्व्वं च गोक्षोरं स्रङ्गं दुर्भिक्षलक्षणं ॥  
 शुष्केषु संप्रहारेषु वीर्य्यमन्त्रं न रोडति ।  
 पर्व्वीतानां महाराजभयं भेदकरम्भवेत् ॥  
 स्थानात् स्थानन्तु गमने देशभङ्गं तथादिशेत् ॥  
 जल्पतस्वपि च वृक्षेषु रोदते वा धनक्षयं ॥  
 एतत्पूजितवृक्षेषु सर्व्वराष्ट्रीऽपि पच्यते ।  
 पुष्यैः फलैश्चाधिकृतै राज्ञो मृत्युस्तथादिशेत् ॥  
 अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः ।  
 आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमान्यैर्विभ्रूयेत् ॥  
 वृक्षोपरि तथाकञ्चं कुर्यात्पापप्रभान्तये ।  
 शिवमभ्यर्चयेद्देवं पशुघ्नायै निवेदयेत् ।  
 मूलेभ्य इति गृहीमान् कृत्वा रुष्टं जपत्ततः ॥

सध्याज्ययुक्तेन तु पायमेन  
 संपूज्य विप्रांश्च भवच्च दद्यात् ।  
 गीतेन नृत्येन तथाचनेन  
 देवं ह्यं पापविनाशहेतोः ॥  
 इत्यङ्ग तश्चान्ती वृक्षोत्पातशमन ।

गर्ग उवाच ।

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादिभयं मतं ।  
 अनृतौ तु दिनादूर्ध्वं वृष्टिर्ज्ञेया भयाय तु ॥  
 अनल्पे विज्ञता चैव विज्ञेया राजसूत्यवे ।  
 शीतोष्णताविपर्यया ऋतूनां रिपुजम्भयं ॥  
 शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्तभयं भवेत् ।  
 अङ्गारपांशुवर्षेषु नगरं संविनश्यति ।  
 मज्जास्थिस्रेहमांसानां जनमारभयं भवेत् ॥

गर्ग उवाच ।

प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्यमृगपक्षिणः ।  
 अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जलोद्भवाः ॥  
 स्थलजा वा जले यान्ति घोरं वा सन्ति निर्भयाः ।  
 राजहारे परहारे शिवा वाप्यशिवप्रदाः ॥  
 दिवा रात्रिचरा वापि रात्रौ वापि दिवाचराः ।  
 ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं वा तच्चोत्पातं विनिर्द्दिशेत् ॥  
 दीप्ता वा सन्ति सन्ध्यास्तु मण्डलानि च कुर्वते ।  
 रसन्ते विप्रियं यत्र तदा प्रेतफलं लभेत् ॥  
 प्रदीपे कुक्कुटावासो हेमन्ते वापि कोकिलः ।  
 अर्कोदयेऽर्कीभिसुखी शिवा यमभयं वदेत् ॥  
 गृहङ्गपोतः प्रविशेत् क्रव्यादा मुद्गिं लीयते ।  
 मधु वाऽमक्षिका कुर्यात् शूल्युर्गृहपतेभवेत् ॥  
 प्राकारदारगेहेषु तोरणापणवीथिषु ।  
 केतुच्छत्राबुधाख्येषु क्रव्यात् संपतते यदि ॥

जायन्ते वाघ वाल्मीका मधु वा सन्दने यदि ।  
प्रदेशो नाशमायाति राजा च म्रियते तदा ॥  
मूषिकान् शलभान् हृष्टा प्रभूतं जुह्वयं भवेत् ।  
काष्ठोष्णकास्थिशृङ्गास्याः खानोमरकवेदिनः ॥  
दुर्भिक्षवेदना ज्ञेयाः काका धान्यमूषो यदि ।  
जना अभिभवन्ति स्म निर्भया रणवेदिनः ॥  
काको मेघनयुक्तश्च श्वेतः स यदि दृश्यते ।  
राजा वा म्रियते तत्र तदा देशो विमश्रयति ॥  
उल्लूको वसते यत्र निपतेहा तथा गृहे ।  
ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्हननाशस्तथैव च ॥  
मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्भोमं सदक्षिणं ।  
देवाः कपोत इति च जप्तव्यं पञ्चभिर्हिजैः ॥  
सुदेव इति चैकेन देया गावः सदक्षिणाः ।  
जपेष्वाकुनसूक्तञ्च मनोवेदशिरांसि च ॥  
देवाः कपोतादयो मन्त्रा ऋग्वेदे प्रसिद्धाः ।  
गावश्च देया विधिवत् द्विजानां ,  
सकाशना वस्त्रयुगोत्तरीयाः ।  
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं  
सृगैर्हि जैर्वा विनिवेदितं यत् ॥  
इत्यङ्गतशान्तौ मृगपक्षिवैकतोपशमन ।

— ०००० —

गर्ग उवाच ।

प्रासादतारश्च च्छादं द्वारं प्राकारवेश्मनां ।



अनिमित्तस्तु पतितं दृढानां राजसृत्यवे ॥  
 रजसा वाष्पधूमेन दिशो यत्र समाकुलाः ।  
 आदित्यचन्द्रतारासु विवर्णा भयदृश्ये ॥  
 राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणासु विधर्मिणः ।  
 ऋतवस्तु विपर्यस्ता अपूज्यं पूजयेज्जनः ।  
 नक्षत्राणि वियोगानि तन्महद्बलक्षणं ॥  
 केतूदयोपरागे च छिद्रता शशिसूर्ययोः ।  
 फलं पुष्पं तथा धान्यं हिरण्याभरणानि च ॥  
 पांशुजस्तु(१) फलानाञ्च वर्षणे रोगजन्मयं ।  
 छिद्रश्चातिप्रवर्षायां शस्यानां प्रीतिवर्द्धनं ॥  
 विरजस्ते रवावभ्रे यद्वा च्छाया न दृश्यते ।  
 दृश्यते न प्रदीपे वा तत्र देशभयं भवेत् ॥  
 निरभ्रे वापि राक्षो वा श्वेतं याम्योक्तरेण च ।  
 इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा लक्ष्मापातं तथैव च ॥  
 दिग्दाहपरिवेषो च गन्धर्वनगरस्तथा ।  
 परचक्रभयं ब्रूयाद्देशोपद्रवमेव च ॥  
 सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां  
 होमस्तु कार्यो विधिवद्द्विजेन्द्रैः ।  
 धान्यानि गोकामनदक्षिणासु  
 देया द्विजानामघनाग्रहेतोः ॥  
 इत्यङ्गुतशाक्तौ दृष्टिवैज्ञतप्रशमनं ।

गर्ग उवाच ।

नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति वा ।  
 नद्या ऋदप्रञ्चतणा पिरमा हि भवन्ति च ॥  
 विवर्णकल्षं तप्तं फेनवर्जन्तु सङ्गुलं ।  
 क्षीरस्त्रेहसुरारक्तं वहन्ते बहुलोदकाः ।  
 घग्नासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं भवेत् ॥  
 जलाशया नदन्ते च प्रज्वलन्ति कश्चिन्ति वा ।  
 विजल्पन्तेऽतिजिह्वाश्च च्वालाधूम सृजन्ति च ॥  
 अखाते वा जलोत्पातः समर्था वा जलाशयाः ।  
 सगीतश्चाद् दृश्यन्ते जनमारोऽत्र सम्भवेत् ॥  
 दिव्याश्रोगोभयं सर्पिर्मधुनावावमेचन ।  
 जप्तव्या वारुणा मन्वास्त्रैस्त्वं हामा जले भवेत् ॥

मध्वाण्ययुक्तं परमाद्यमत्र

देयं द्विजानां द्विजभोजनार्थं ।

गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्ता-

स्तथोदकुम्भाः सकलाघगान्ति । १

इत्यङ्ग तस्मान्ती सलिलाशयवैकृत ।

— ००० —

गर्ग उवाच ।

अकालपसवा नार्थः कालातीतप्रजास्तथा ।

विकृतपसवाद्यैव युग्मपसवनास्तथा ॥

अमानुषाश्च घण्टाश्च सञ्जाता व्यञ्जनास्तथा ।

हीनाङ्गा अधिष्ठाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा त्रयः ॥

पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः ।

विनाशन्तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत् ॥

निर्वासयेत्तां नृपतिश्च राष्ट्रात्

स्त्रियश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः ।

यदृच्छन्कैर्ब्राह्मणतर्प्यैश्च

लोके ततः शान्तिमुपैति पापं ।

इति वैकृतशान्तौ प्रसववैकृतं ।

—000—

गर्ग उवाच ।

यान्ति यानान्ययुक्तानि युक्तान्यपि न यान्ति चेत्

चोद्यमानानि तत्र स्यात् महद्भयसमुत्थितं ॥

वाद्यमाना न वाद्यन्ते वाद्यन्ते वाप्यनाहताः ।

अचलाश्च चलन्तोऽव न चलानि चलन्ति च ।

उपस्करादिविक्रते धारं शस्त्रभयं भवेत् ॥

वायोस्तु पूजा द्विजपुङ्गवैश्च

कृत्वा तदुक्तांश्च जपेच्च मन्त्रान् ।

दद्यात् प्रभूतं परमात्मनः

सदक्षिणन्तेन शमोऽस्य भूपतेः ॥

इत्युपस्करवैकृतोपशमः ।

—000—

ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयंमादिशेत् ।  
 स्त्रियश्च कलहायन्ते वाचा निवृत्तिं बालकान् ॥  
 क्रियाणामुचितानाश्च विस्थितिर्यत्र दृश्यते ।  
 अग्निर्यत्र न दीप्येत ह्ययमानाषु शास्त्रिषु ॥  
 पिपीलिकाश्च क्रव्यादा यान्ति वास्तवितास्ततः ।  
 पूर्णकुम्भाः स्रवन्ते च हविर्वा विप्रलुप्यते ॥  
 मङ्गल्याः स्वामिनो यत्र न श्रुयन्ते समस्ततः ।  
 वेपथुर्बोधते वापि प्रोक्ताहे सति निन्दितः (१) ॥  
 न च देवेषु वत्तन्ते यथावद्ब्राह्मणेषु च ।  
 मन्दघोषानि वाद्यानि वाद्यन्ते विश्वराणि च ॥  
 गुरुमित्रद्विषो यत्र शत्रुपूजारता जनाः ।  
 प्राह्मणान् सुहृदोमान्यान् जनी यत्रावमन्यते ॥  
 शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिको यत्र जायते ।  
 राजा वा म्रियते यत्र सर्व्वदेशो विनश्यति ॥  
 राज्ञो विनाशे संप्राप्ते निमित्तानि निबोध मे ।  
 ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणांश्च विनिन्दति ॥  
 ब्राह्मणानवमन्येत ब्राह्मणांश्च जिघांसति ।  
 न तान् स्मरति कृत्येषु याचितञ्चावसीयते ॥  
 नमनश्च नचापिश्च प्रशंसा नाभिनन्दति ।  
 अपूर्व्वन्तु करं लोभात्तथा सम्प्लोहिते जने ॥

पूतांथाभ्यर्चयेत् मर्म्यक् सपत्नोकान् हिजोत्तमान् ।

भोज्यानि चैव कार्याणि सुराणां बलयस्तथा ॥

गावश्च देया दिजपुङ्गवेभ्यो

भुवन्स्तथा काञ्चनमम्बरञ्च ।

होमथ कार्यां हिजपूजनञ्च

धृषं कृते शान्तिमुपैति पापं ॥

इति मत्स्यपुराणीक्तान्यद्भूतशान्तिकानि

समाप्तानि ।

इति श्रीमहाराजाधिराज-श्रीमहादेवस्य समस्तकरणा

धोश्वर-मकलविद्याविगारद-श्रीहेमाद्रिविरचिते

चतुर्वर्गाचलात्मणौ व्रतखण्डे

. अद्भूतशान्तिकानि समाप्तानि ।





ASIATIC SOCIETY CALCUTTA





ASIATIC SOCIETY, CALCUTTA

